त्रिचत्वारिंशत्तमम्-अखिलभारतीयप्राच्यविद्यासम्मेलनम्-२००६

43rd All India Oriental Conference, 2006

शोधनिबन्ध-सारः

SUMMARIES OF PAPERS

Bahu-Fort, Jammu

संस्कृतविभागः

जम्मू विश्वविद्यालयः, जम्मू-तवी-१८०००६

INDIA'S FIRST ISO 9001 : 2000 UNIVERSITY

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

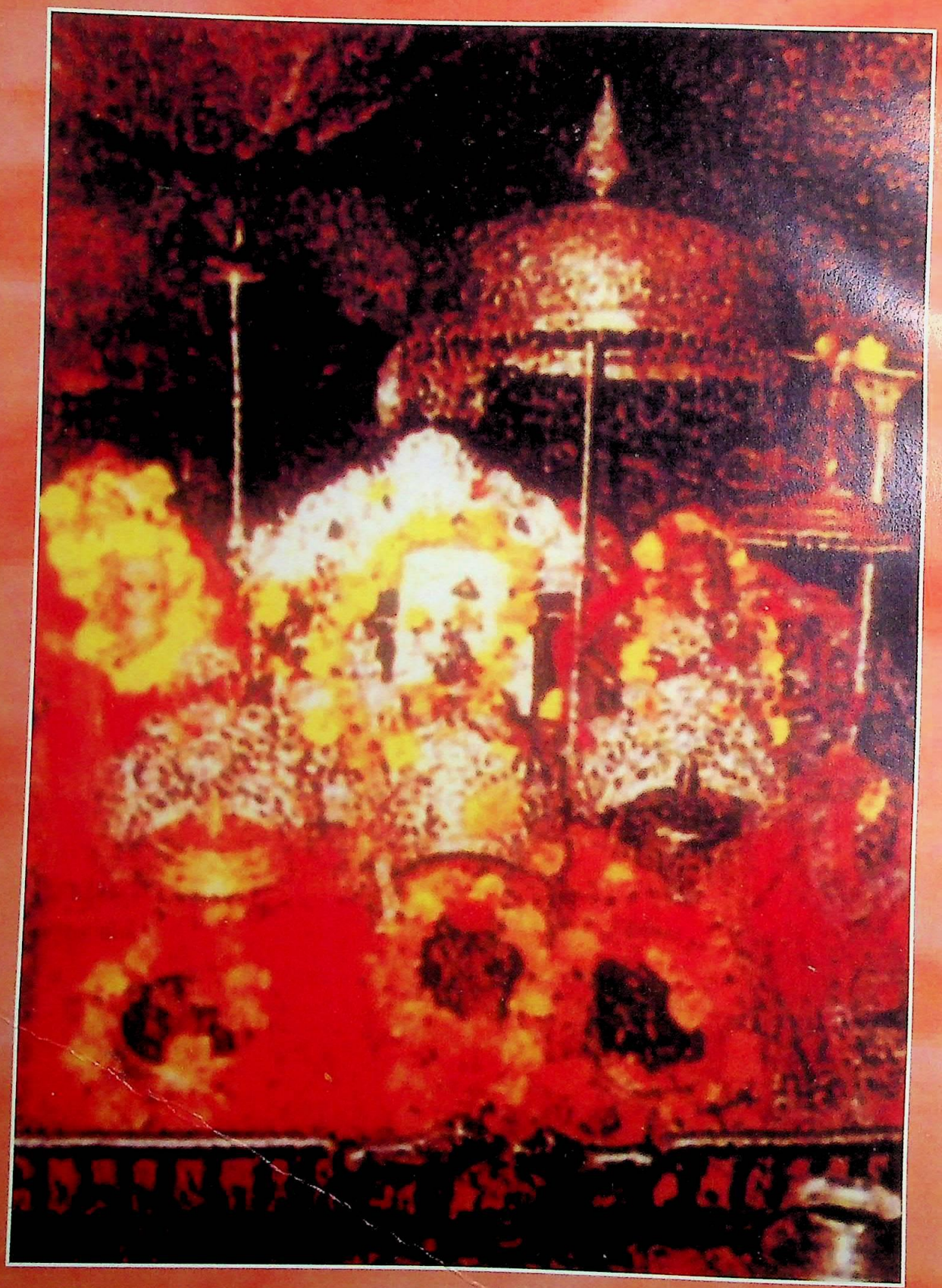

SHREE MATA VAISHNO DEVI JI

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

त्रिचत्वारिंशत्तमम्-अखिलभारतीयप्राच्यविद्यासम्मेलनम्-२००६

(१२-१४ अक्टूबर २००६)

शोधनिबन्ध-सारः

सम्पादकमण्डलम्

प्रो. शारदा गुप्ता
डॉ. जागीर सिंहः
डॉ. सुषमा देवी गुप्ता
प्रो. केदार नाथ शर्मा
डॉ. पुरुषोत्तम शर्मा
डॉ. रामबहादुर शुक्लः

सम्पादिका

प्रो. रमणिका जलाली

स्थानीयसचिवा, AIOC

संस्कृतविभागः

जम्मू विश्वविद्यालयः, जम्मू-तवी-१८०००६

India's first ISO 9001 : 2000 University

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकाशकः

संस्कृतविभागः

जम्मू विश्वविद्यालयः, जम्मू-तवी-१८०००६

प्रथमं संस्करणम् : २५०० प्रतिरूपाणि

मुद्रकः

ईस्टर्न बुक लिंकर्स

५८२५, न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर, दिल्ली-११०००७

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

43rd Session, All India Oriental Conference

12-14 October, 2006

SUMMARIES OF PAPERS

Board of Editors

Prof. Sharda Gupta
Dr. Jagir Singh
Dr. Sushma Devi Gupta
Prof. Kedar Nath Sharma
Dr. Purshotam Sharma
Dr. Rambahadur Shukla

Editor

Ramnika Jalali
Local-Secretary, AIOC

संस्कृतविभागः

जम्मू विश्वविद्यालयः, जम्मू-तवी-१८०००६

India's first ISO 9001 : 2000 University

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Published by

DEPARTMENT OF SANSKRIT

JAMMU UNIVERSITY, JAMMU-TAWI-180006

First Edition : 2500 Copies

Printed by

EASTERN BOOK LINKERS

5825, New Chandrawal, Jawahar Nagar, Delhi-110007

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

FOREWORD

It is in keeping with the practice of the past sessions of the All India Oriental Conference that the Volume of Summaries of the papers to be presented at the forthcoming session is being brought out. With each passing year the volume has been increasing in size which can be interpreted as a measure of the increasing interest of the scholarly community in the field of oriental studies in the country. The papers in the Volume represent a bewildering variety of topics to the unraveling of the knots of some of which the scholars have addressed themselves. From the ocean of the cumulative wisdom enshrined in the Volume surely many a pearl will pop out.

It is heartening that over the years more and more younger scholars are participating in the conference. They look upon it as the launching pad for their entry into the scholarly arena, as also the medium for proper assessment of their work the worth of which they may not be sure. A nod here and there would provide them with the necessary encouragement and incentive to go ahead with the line of their enquiry and the proper direction, if there is anything not in order.

It was a stupendous task to bring out the Volume of Summaries of Papers of the size and magnitude of the present Volume. Its editors deserve full plaudits for doing a fine job of it.

I am sure the Volume will be received as a stimulating thesaurus of researches in the field of oriental studies.

Satya Vrat Shastri

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PREFACE

We have immense pleasure in presenting this Volume of Summaries of Research Papers submitted to 43rd Session of All-India Oriental Conference, to be convened at University of Jammu, Jammu w.e.f. 12th-14th October 2006.

Almost twelve hundred summaries of papers pertaining to twenty one sections, is an overwhelming response to this session of AIOC. The topics are different to one another depicting the huge area of knowledge. This volume definitely be helpful to the scholars of different visions. It is our pleasure to include the views of such scholars in one compact and unique dimension which is a dynamic approach for the development of orientology.

We would record our gratitudes to all the scholars who have contributed their thoughts to this volume of 43rd session AIOC.

We would also like to convey our gratitudes to the self-less service, support and invaluable assistance rendered by the teachers, students and staff of Deptt. of Sanskrit, University of Jammu, Jammu.

We would record the help and generosity exhibited by the authorities and teachers of University of Jammu.

Our thanks and appreciation are due to Eastern Linkers, Delhi for their sincere coperation and untiring effort in making this venture successful in a very short duration of time.

Jammu 12-14, oct 2006.

Ramnika Jalali
Local Secretary

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CONTENTS

Sl.	Sections	Abbreviations	Pages
1.	VEDIC	V	1-152
2.	IRANIAN STUDIES	IR	153-158
3.	CLASSICAL SANSKRIT	CS	159-291
4.	ISLAMIC STUDIES	IS	293-297
5.	ARABIC AND PERSIAN	AP	299-305
6.	PALI AND BUDDHIST	P&B	307-324
7.	PRAKRIT AND JAINISM	PJ	325-353
8.	HISTORY	H	355-377
9.	ARCHAEOLOGY	ARCH	379-382
10.	INDIAN LINGUISTICS	IL	383-432
11.	PHILOSOPHY & RELIGION	PR	433-555
12.	DRAVIDIC STUDIES	DS	557-562
13.	TECHNICAL SCIENCES AND FINE ARTS	TS & FA	563-662
14.	SOUTH EAST ASIAN STUDIES	SEAS	663-666
15.	WEST ASIAN STUDIES	WAS	667-670
16.	MODERN SANSKRIT	MS	671-756
17.	MANUSCRIPTOLOGY	MSS	757-770
18.	EPICS & PURANAS	EP	771-859
19.	SANSKRIT & COMPUTER	SC	861-869
20.	INDIAN AESTHETICS AND POETICS	IA & P	871-912
21.	KASHMIR SHAIVA DARSHAN	KS	913-940
	COMPLIMENTRY LIST OF SUMMARIES		941-960

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CONTENTS

SECTION - 1

V	**VEDIC**		**1-152**
1.	हस्तिमल्लनाट्येषु वैदिकपरम्पराभिज्ञानम्	डॉ. विश्राम तिवारी, दरभंगा, बिहार	3
2.	वेदेषु प्रबन्धनचिन्तनम्	प्रो. महावीरः अग्रवालः, हरिद्वारम्, उत्तराञ्चलम्	3
3.	उपनयनसंस्कारे एकाग्निकाण्डस्थप्रोक्षणमन्त्रः	डॉ. रूपा, मैसूरु	4
4.	वेदाङ्गानां महत्त्वम्	डॉ. भगवन्नारायण मिश्र, (बिहार)	5
5.	वैदिकध्वनिविज्ञाने स्वरभक्तिः	डॉ. उमेश प्रसाद सिंह, वाराणसी	6
6.	ज्योतिषशास्त्रे अयनांशानुशीलनम्	डॉ. भारत भूषण मिश्र, जम्मू	6
7.	म. म. सामन्तचन्द्रशेखरस्य ग्रहस्पष्टीकरणावसरे ग्रहकक्षास्वरूपस्य परिकल्पना	सत्य स्वरूप बाजपेयी, वाराणसी यू.पी.	7
8.	सारावली : एकमध्ययनम्	श्रीरामचन्द्रमिश्रः, भद्रकः (ओडिसा)	7
9.	वेदापौरुषेयत्व समीक्षणम्	डॉ. रवीन्द्रनाथ भट्टाचार्यः, कलिकाता	8
10.	वेदभाषायाः तत्साहित्यस्य च महत्वम्		9
11.	विषय—वृष्टिसंसूचने वायोर्महत्त्वम्	डॉ. शत्रुघ्न त्रिपाठी, (जम्मू)	9
12.	अहरहः स्वाध्यायमधीयीत	डॉ. कृष्णदत्तमिश्रः, वाराणसी	10
13.	ऋग्वेदस्य शाखाविषयकम् पर्य्यालोचनम्	डॉ. उदयचन्द्र वन्द्योपाध्याय, पर्णश्री	11
14.	संस्कृतसाहित्ये क्रेतासुरक्षा	शिप्रा राय, त्रिपुरा	12
15.	प्रमोदचन्द्रकृत चन्द्रदूतपरिशीलनम्	वद्रिनारायणपूजारी, विजयपल्ली, (ओडिशा)	12
16.	वैदिकं विज्ञानम्	डॉ. राममूर्ति चतुर्वेदी, वाराणसी	12
17.	औपनिषदिकी पञ्चस्तरात्मिका शिक्षा	राम रतन खण्डेलवालः, हरिद्वारम् (उत्तरांचलम्)	13
18.	निरुक्ते शिक्षा : एकं विवेचनम्	डॉ. मंजु कुमारी पाण्डेयः, राँची	13
19.	उपनिषद्ग्रन्थदृष्ट्या शिक्षायाः स्वरूपम्	ज्ञान रञ्जन गङ्गेशः, राँची	14
20.	निरुक्तस्य पर्यावरणात्मकं परिशीलनम्	डॉ. रामाशीष पाण्डेयः, राँची	15
21.	कतिपय पाणिनि सूत्राणाम् विशेषव्याख्यानम्	डॉ. सत्येन्द्र शास्त्री, ग्वालियर	15
22.	परमाणुशब्दप्रवृत्तिनिमित्तविमर्शः	डॉ. रामकुमार, हिमाचलप्रदेश	16
23.	शब्दब्रह्मसमीक्षा	डॉ. रामानुग्रह शर्मा, राँची (झारखण्ड राज्यम्)	16
24.	यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्ते	डॉ. जयनारायण पाण्डेयः, राँची (झारखण्डः)	17
25.	पर्यावरणदिशा यज्ञमहत्वम्	शिशिर कुमार पाण्डेय, राँची	18

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

26.	वेदेषु मानवता	डॉ. प्रवीण देवी, अजीतमल, औरैया (उ०प्र०)	18
27.	वैदिकपाण्डुलिपीनां सम्पादने प्रो. व्रजबिहारी चौबे महोदयानां योगदानम्	डॉ. कन्हैयालाल पराशर, होशियारपुर	19
28.	शब्दशास्त्रीय बाधपदार्थ विचार:	प्रदीप कुमार पाण्डेय, इलाहाबाद (यू०पी०)	20
29.	पृत्वा तिष्ठत् दशाङ्गुलम्	डॉ. हरेकृष्ण मिश्र:, शान्तिनिकेतनम् (बंगाल)	21
30.	अग्निमीले पुरोहितं.....भाष्य समीक्षणम्	श्रीमती प्रणति महापात्र:, शान्तिनिकेतनम् (बंगाल)	21
31.	यज्ञतत्त्वविमर्श:	डॉ. कु. कुमुद कान्हे, रायपुर (छत्तीसगढ़)	22
32.	ऋग्वैदिकयुगे अंगनाधिकार:	श्रीसुबोध कुमार मिश्र भागवती, गुवाहाटी	23
33.	वैयाकरणमते शब्दार्थस्वरूपविमर्श:	डॉ. त्रिलोक नाथ झा, दरभंगा (बिहार)	23
34.	गर्भाधान संस्कार:	वंशीधरमिश्र:, झारखण्ड राज्यम्	24
35.	वेदाङ्गकल्पोक्त कृषि-शास्त्रम्	निरंजन मिश्र, पुरी	24
36.	वैदिकं स्वरविज्ञानम्	डॉ. ब्रह्मचारी व्यासनन्दन:, मुजफ्फरपुरम्	25
37.	वैयाकरणमते द्रव्यपदार्थविमर्श:	डॉ. विनय कुमार झा, दरभंगा (बिहार)	26
38.	पञ्चाङ्गस्य अङ्गानि	डॉ. रामगुलाममिश्र:, पटना	26
39.	समास:	डॉ. भारतचन्द्र महापात्र, राजौरी	27
40.	तद्धितप्रत्ययार्थ—परिशीलनम्	डॉ. विनोद कुमार झा, टोंक, (राजस्थान)	28
41.	आधुनिकसन्दर्भे सिद्धान्ततत्त्वविवेकस्य वैशिष्ट्यनिरूपणम्	हरकेश तिवारी, राजौरी	28
42.	प्रथमार्थविचार:	डॉ. श्रीमती मनीषा पाठक, रायपुर छत्तीसगढ़	29
43.	वैदिकिवाङ्मये समुद्रपदविमर्श:	डॉ. मञ्जुला देवी	30
44.	ऋग्वेदे गणपते: स्थानं महात्म्यं च	किरण र. नागपूरकर, अकोल (महाराष्ट्रं)	30
45.	वेदाङ्गेषु शिक्षाङ्गप्राथम्यम्	अशोक कुमार द्विवेदी, जौनपुरम्	31
46.	वृत्तिपञ्चकम्	सुबाषचन्द्रपाण्डेय:, वाराणसी (उ०प्र०)	32
47.	वेदा: प्रमाणम्	डॉ. वि. रामकृष्ण भट्ट:, कालडी, केरलप्रदेश:	32
48.	वैदिकदेवतातत्त्वंविश्ववबन्धुत्वञ्च	डॉ. महेन्द्र पाण्डेय:, वाराणसी	33
48A.	वेदाङ्गेषु ज्योतिषम्	श्री सुनील दत्त शास्त्री, जम्मू	33
49.	पाञ्चरात्रसंहिताओं में मुद्रा निरूपण	प्रो. अशोक कुमार कालिया, वाराणसी	34
50.	सूर्य जगत् की आत्मा है-एक वैज्ञानिक प्रतिपादन	डॉ. पुरुषोत्तम शर्मा, जम्मू	35
51.	वेदों में नारी की शैक्षिक स्थिति	अमोद कुमार सिंह, दरभंगा (बिहार)	36
52.	वैदिक काल में नारी शिक्षा	आचार्य देवांशु कुमार सिंह, आरा, बिहार	37
53.	सोमरस	डॉ. गंगादत्त शास्त्री, (जम्मू)	37
54.	वेदों का जीनोम—दर्शन	डॉ. कृतार्थ शंकर पाठक, सीवान	38
55.	जनजीवन एवं सूर्य—एक ज्योतिषीय दृष्टि	राजेश शर्मा, जम्मू	39
56.	प्राचीन वृष्टिविज्ञान—एक पर्यालोचन	डॉ. शालिनी सक्सेना, जयपुर	39

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

57.	वैदिक-वाङ्मय में कन्या	डॉ. शोभा रानी सहाय, छपरा	40
58.	वैदिक गायत्रीमन्त्र से निष्पन्न अन्य विद्याएँ	डॉ. रवीन्द्रकुमार खाण्डवाला, अहमदाबाद	41
59.	पञ्चमहायज्ञों की प्रासंगिकता	परशोत्तम शर्मा, जम्मू	41
60.	वेदों में ''वेदमाता गायत्री का महत्त्व''	डॉ. शील निगम, कानपुर	42
61.	ज्योतिषशास्त्र के आधार पर वृष्टिज्ञान	केशवदत्त शास्त्री, जम्मू	43
62.	अथर्ववेद में स्त्री कर्मों का अनुशीलन	डॉ. नीलम पाण्डेय, (लखनऊ)	43
63.	वेदप्रतिपादित मानवजीवनदर्शन	डॉ. धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी, राँची, झारखण्ड	44
64.	ऋग्वेद के अनुसार विवाह—संस्कार	पूनम लता, जम्मू	45
65.	यास्क का वैदिक अर्थविज्ञान	सुधीर कुमार पाठक, वाराणसी	46
66.	शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सामाजिक नैतिक मूल्य	शिव ज्योति शर्मा, जम्मू	46
67.	मांगलीक योग एवं परिहार	शामलाल, जम्मू	47
68.	वैदिक संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में नारी	डॉ. रेणु गुप्ता, जम्मू	48
69.	वैदिक काव्य—सौन्दर्य ''गायत्री, ओउम् एवं शान्ति पाठ''	डॉ. छाया रानी, अगस्त्यमुनि (रुद्रप्रयाग)	49
70.	Horoscope of Sanskrit Scholars	Dr. Jaya Shree	50
71.	पंचाग निर्माण (साधनार्थ विधि)	डॉ. नरेश कुमार शर्मा, जम्मू	51
72.	वैदिक-ऋषि याज्ञवल्क्य का आत्मवाद	डॉ. कृष्णचंद्र झा 'मयंक', दरभंगा	51
73.	आर्ष काव्यों में वाग्देवता सरस्वती का स्वरूप	डॉ. (श्रीमती) प्रेम लता मिश्रा, सुलतानपुर	52
74.	अथर्ववेद में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा	डॉ. कैलाश नाथ तिवारी	53
75.	भारतीय ज्योतिष में कालसर्प योग की प्रासंगिकता	डॉ. उमेश दत्त भट्ट, इलाहाबाद	54
76.	द्वादश भावों में शुक्र की अवस्थिति की मीमांसा	पुशविन्दर कुमार, जम्मू	54
77.	राहु स्वभाव मीमांसा	विजेन्द्र कुमार, जम्मू	55
78.	दशमहाविद्या का स्वरूप—विवेचन	डॉ. जगन्नाथ झा, (बिहार)	56
79.	वेद में स्वरप्रक्रिया	डॉ. कर्तार चन्द शर्मा, जम्मू	57
80.	श्वेताश्वतरोपनिषद् का श्रीमद्भगवद्गीता पर प्रभाव	शिवकुमारी त्रिपाठी, रायपुर (छत्तीसगढ़)	57
81.	यज्ञाश्रित वैदिक अर्थ व्यवस्था	डॉ. आशा रानी राय, कानपुर	59
82.	विश्व में मनुस्मृति की प्रासंगिकता	डॉ. अवधेश कुमार पाण्डेय, राँची	60
83.	वैदिक उद्योग धन्धों की वर्तमान प्रासंगिकता	डॉ. सुनीता केशरी, कानपुर	60
84.	वैदिक वाङ्मय में वीणा—एक विवेचन	डॉ. सुमन दुबे	61
85.	स्मृतिकालीन आश्रम व्यवस्था	डॉ. अखिलेश कुमार शुक्ल, लखनऊ	61
86.	कौशिक गृह्यसूत्र में प्रतिपादित स्वस्त्ययन कर्म-एक समीक्षा	डॉ. सुधाकर द्विवेदी, जौनपुर, उत्तरप्रदेश	63
87.	वेदों में आयुर्वेद	कु. राधा चतुर्वेदी, लखनऊ	64
88.	द्वादश भावों में वृहस्पति की अवस्थिति एवं मानव जीवन पर उसका प्रभाव	ओम प्रकाश शर्मा, जम्मू	64

CC-0. JK·Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

89.	वेदों में पर्यावरण	रणजीत कुमार पाण्डेय, वाराणसी	65
90.	ईशावास्योपनिषद् में पुरुषार्थचतुष्टयम्	प्रा. नरेश महाकाल	65
91.	'कोश साहित्य' में 'निघण्टु' का स्थान तथा यास्क कृत 'निरुक्त' का महत्त्व	विशाल भारद्वाज, अमृतसर	66
92.	ज्योतिषशास्त्र में सूर्य का स्थान	डॉ. चन्द्र मोहन झा, हथुआ (गोपालगंज)	67
93.	शतपथ ब्राह्मण के अनुसार राजनैतिक मूल्य	अनुराधा, जम्मू	67
94.	उपनिषद्कालीन शिक्षण-पद्धति—एक अध्ययन	डॉ. पीयूष बाला, जम्मू	68
95.	वैदिक वाङ्मय में ज्योतिर्विज्ञान	प्रो. वीरेन्द्र कुमार मिश्र, शिमला	69
96.	प्राग् जन्म संस्कार सूत्रसाहित्य के सन्दर्भ में	डॉ. देशराज शर्मा, शिमला	70
97.	ऋग्वेद में राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता का अनुशीलन	डॉ. श्रीमती अन्नपूर्णा मिश्रा, मुरादाबाद (उ०प्र०)	71
98.	ऋग्वेद में वर्णित सूर्य के रथ और सात घोड़ों की पौराणिक कथा का वास्तविक स्वरूप	डॉ. दिनेशचन्द्र शास्त्री, हरिद्वार	71
99.	ऋग्वैदिक उपनिषदों में प्राण-तत्त्व	प्रो. मुहम्मद इसराइल खाँ, गाजियाबाद (उ०प्र०)	72
100.	सम्भूत्या अमृतमश्नुते	संगीता खन्ना, नई दिल्ली	73
101.	वेदों में सैन्य-व्यवस्था	आचार्य ध्रुवपति पाण्डेय, बलिया, उत्तरप्रदेश	74
102.	आयुर्वेद में ओजक्षय	शीतल पुरी, जम्मू	74
103.	जन्मकुण्डली के आधार पर जातक की प्रकृति का ज्ञान	करण दास शास्त्री, जम्मू	75
104.	वैदिक काल में वर्णाश्रम व्यवस्था	योगेन्द्र कुमार शास्त्री अध्यापक, जम्मू	76
105.	वैदिक काल में नारी की दशा	पूजा शर्मा, जम्मू	77
106.	वैदिक सदाचार शास्त्र एवं इसकी आज के सन्दर्भ में प्रासंगिकता	डॉ. श्रीमति आशिमा जोशी, अम्बाला	78
107.	वैदिक काल में नारी अधिकार	कु. ऋतु शुक्ला, पलहीपट्टी, वाराणसी	79
108.	ऋग्वेद 10.85.1-5 में सोम का वैज्ञानिक स्वरूप	डॉ. अरुणा शुक्ला, होशियारपुर	80
109.	वेद में सुसह का सिद्धान्त	श्रीमती मंजु त्रिवेदी, होशियारपुर	81
110.	वैदिक वाङ्मय में गार्हस्थ्य-मर्यादा	डॉ. नाहीद आबिदी, शिवपुर, वाराणसी	82
111.	वैदिक साहित्य में अंगिरस तथा उसकी व्युत्पत्ति	वीना कुमारी, पठानकोट	83
112.	वेदों में कृषि-विज्ञान	डॉ. (श्रीमती) इन्दु शर्मा, कुरुक्षेत्र	83
113.	वैदिक अन्त्येष्टि संस्कार : एक विवेचन	डॉ. (श्रीमती) कृष्णा सैनी, होशियारपुर	84
114.	वैदिक साहित्य में प्रायश्चित्त विचार	डॉ. राजेन्द्र, कुरुक्षेत्र	85
115.	वेदार्थप्रकाशक निरुक्त	डॉ. रणवीर सिंह, कुरुक्षेत्र	86
116.	पूर्वाचार्यकृत पारिभाषिकसंज्ञा एवं पाणिनिकृत पारिभाषिकसंज्ञा की अन्वर्थता	पण्ड्या हेटाल एन., अहमदाबाद	87
117.	तैत्तिरीयोपनिषद् में शिक्षा-दीक्षा	कुलजीत, चण्डीगढ़	88

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

118.	ब्राह्मणग्रन्थों में सृष्टि-प्रक्रिया	डॉ. अशोक कुमार, जम्मू	88
119.	वैदिक कालीन सामाजिक स्थिति	आरती कुमारी, झारखण्ड	89
120.	वेदों में ग़ोवध एवं गोमांस भक्षण का कहीं भी वर्णन नहीं	प्रो. चन्द्र प्रकाश आर्य, करनाल, हरियाणा	89
121.	वैदिक काल में विधि-नियमों की संचालन व्यवस्था	डॉ. मधुबाला, सोनीपत (हरियाणा)	90
122.	कौषीतकि गृह्यसूत्र में संस्कारों का विवेचन	डॉ. आशा गुप्ता, सुलतानपुर (उ०प्र०)	91
123.	वैदिक यम-यमी संवाद : एक समीक्षा	देवानन्द आर्य, मुजफ्फरपुर	92
124.	चंन्द्रमा मनसो जात:	डॉ. अर्चना लालसिंग, अकोला	93
125.	वैदिक वाङ्मय के अधीन तंत्र!!		93
126.	वैदिकवाङ्मय में अतिथि-सत्कार परम्परा	डॉ. निरुपमा त्रिपाठी, स्वरूप नगर, कानपुर तथा जाह्नवी पटवर्धन, नवाबगंज, कानपुर	94
127.	वेदों में स्वास्थ्यरक्षा	सुदर्शनदेवार्य व्रती, नवापारा (उड़ीसा)	95
128.	वेदों में योग	कुञ्जदेव मनीषी, आमसेना (उड़ीसा)	96
129.	ऋग्वेद की ऋषिका सरमा : कतिपय विचारणीय बिन्दु	डॉ. श्रीमती इला घोष, कटनी (म०प्र०)	98
130.	उपनिषदों का व्यावहारिक पक्ष	डॉ. हरीश्वर दीक्षित, जौनपुर (उ०प्र०)	98
131.	शब्द की महत्ता	कु० कृष्णा दूबे, गोरखपुर	99
132.	कर्मफल मीमांसा : ऋग्वेद के सन्दर्भ में	रीना देवी, चण्डीगढ़	100
133.	ऋग्वेद में वर्णित सृष्टि-प्रक्रिया (आधुनिक सन्दर्भमें)	सीमा, चण्डीगढ़	101
134.	वेदों में नारी का स्थान	वन्दना, चण्डीगढ़	101
135.	क्रिया का स्वरूप (वाक्यपदीय के विशेष संदर्भ में)	अनिल कुमार, चण्डीगढ़	102
136.	श्रौतानुसारी याज्ञिक प्रक्रिया की दुरूहता एवं महर्षि दयानन्द	डॉ. वेदपाल, बागपत (उ०प्र०)	102
137.	दयानन्द-वाङ्मय में राजप्रजाधर्म	डॉ. मीनाक्षी शर्मा, चण्डीगढ़	103
138.	वेद तथा वसुधैवकुटुम्बकम्	डॉ. विजयकुमारी, जालन्धर	104
139.	ऋग्वैदिक सृष्टि प्रक्रिया (हिरण्यगर्भसूक्त पर आधारित)	डॉ. राधेश्याम पाण्डेय, लखनऊ	105
140.	वेदों में जीवन-मूल्य	जीवन आशा, जालन्धर (पंजाब)	105
141.	स्मृतियों में नारी एवम् न्याय व्यवस्था	जयश्री ए सकलकाले, अकाला (मह०)	106
142.	वैदिक वाङ्मय में पुनर्जन्म भावना	डॉ. हरिसिंह शास्त्री, रादौर (यमुनानगर)	107
143.	वेद वाङ्मय में वैद्यक शास्त्र का मूल उद्देश्य	वी.जे. बिदवय, अकोला (महा०)	107
144.	सूर्य-तत्त्व-मीमांसा	डॉ. सुधा गुप्ता, कानपुर	108
145.	अश्विनौ सूक्तों में लोक मंगल की भावना	डॉ. श्रीमती मालाप्पासी, जबलपुर (म०प्र०)	109
146.	वैदिक यज्ञविज्ञानवेत्ता "उन्नेता"	डॉ. रामहित त्रिपाठी, बस्ती (उ०प्र०)	110
147.	ऋग्वेद में वर्णित दाशराज्ञ युद्ध	विनीता कुमारी, बरेली	110

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

148. वेदों में काव्यशास्त्रीय तत्त्व	डॉ. रेखा शुक्ला, राजेन्द्रनगर, लखनऊ	111
149. केन सूक्त व केनोपनिषद् का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. अरुणिमा, मुजफ्फरपुर (उत्तरप्रदेश)	111
150. वैदिक साहित्य में ऋषभ-वर्णन	डॉ. रामजी राय, आरा (बिहार)	112
151. वेदों में मानवधर्म	डॉ. आशा रानी पाण्डेय, उन्नाव	113
152. ईशावास्य-उपनिषद में सम्भूति और असम्भूति—एक अर्थघटन	सुश्री राजवी ओझा, गाँधीनगर	114
153. वेद और विश्व कल्याण की अवधारणा	डॉ. प्रदीप कुमार दीक्षित, कानपुरदेहात (उ०प्र०)	114
154. महाकवि भास के नाटकों में निहित वैदिक तत्त्वज्ञान	डॉ. रीना अस्थाना, हरदोई (उ०प्र०)	115
155. ज्योतिष शास्त्र का परिचय	डॉ. राजेन्द्र झा, महरैल, मधुबनी (बिहार)	115
156. सामगान में कर्षण का स्वरूप	डॉ. पंकज माला शर्मा, चण्डीगढ़	116
157. वैदिक, आगम एवं आगमेतर साहित्य में कृष्ण	रश्मि सोनी, लाडनूँ (राजस्थान)	117
157A. धर्म एवं तत्वचिन्तन में यज्ञों का अवदान	डॉ. शारदा शर्मा, दिल्ली	117
158. यजुर्वैदिक पर्यावरण-विज्ञान		118
159. वेदोऽखिलो धर्ममूलम्	डॉ. पुष्पा झा, जबलपुर (मध्यप्रदेश)	118
160. वैदिक वाङ्मय में विश्वामित्र का व्यक्तित्व एवं उनकी वंशपरम्परा के सन्दर्भ	डॉ. अरुणा शुक्ला, नवांशहर	120
161. The Voyeurs and Exhibitionists of Vedic Ritual	G.U. Thite, Pune	120
162. Concept of Vedic Education Meant for Common People	Dr. Pranati Ghosal, Varanasi	121
163. Environmental Concern in the Vedas	Dr. Pranav Sharma, Pilibhit (U.P.)	122
164. Vedic Concept of anna-the primary requirement of being	Dr. Sukumar Chattopadhyay, Varanasi, (U.P.)	123
165. Methodology of Knowledge in the Vedic Tradition and Culture	Dr. Bahrain Ganguli, Kolkata	124
166. The Nature Of Āpaḥ As Reflected In The Ṛgveda	Dr. (Mrs.) Dipti Sarmah, Assam	124
167. Vedic Yājna	Dr. Devi Prakash Tripathi, Jhunjhunu	125
168. Social Value-oriented Education in the Śvetāśvatara Upaniṣad	Kalyani Goswami, Jorhat (Assam)	126
169. Ṛbhus The Vedic Minor Divinity as Refleted in the Ṛgveda	Ms. Bulbul Devi, (Assam)	126
170. The Evolutinary Threory of the Vedic Literatures	Dr. Kanhei Charan Swain, (Orissa)	127
171. Rudradatta on the Sacrificeris wife	Dr. Nirmala Kulkarni, Pune	128
172. Epithets of Agni in the Apri Hymns: A Study in the Light of Sri Aurobindo	Jagamohan Acharya, Vani Vihar	128
173. Swarup of God Śiva in the Śvetāśvatara Upaniṣad	Swati Shah	129

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

174. A Study of the 8th Book (KĀṆḌA) of the Atharvaveda(Ś)	Dr. T.N. Adhikari, Kolkata	129
175. Vedic Origin of *Gaṇeśa* : A Study	Dr. S.N. Mohapatra, Sundargarh, Orissa	130
176. Mathematics in Vedic Literature	Amarendra Biswal, Haryana	131
177. The Vedic Saṁhitās expose the consciousness on the Preservation of Nature	Jagadish Sarma, Guwahati	131
178. An Exhaustive Note on Prayoga Ratnamala Vyakarana	Dr. Ranjan Chakravarty, Assam	132
179. The concept of Charity (Daana) in the Rgveda	Dr. M.N. Joshi, Dharwad	133
180. Self-establishment of SELF (With special reference to Tattiriyabhasya Varttik)	Prof. Kaushal Kishore Srivastava, A.U.	133
181. Antiquity of Vedas Purāṇo-Vedic and archaeological evidences	Dr. Rai Gyan Narain Prasad, Gorakhpur	135
182. Features of Sārasvatavyākaraṇa of Anubhūtisvarūpāchārya	Sujith.S, Kariavattom	136
183. The Legend of Dīrghatamas	U.C. Sharma, Aligarh	137
184. Symbolic and Mimetic Fire Altars : A New Approach	Ramkrishna Bhattacharya, Kolkata	138
185. Ethics in Upanishads	Dr. Aditya Angiras, Hoshiarpur	138
186. Education in The Days of the Vedas : Its application and Relevence	Dr. Joy Krishna Mahanta, Assam	140
187. Marriage Hymns in the Saṃhitās : A Brief Study	Prof. Didhiti Biswas, Calcutta	140
188. The Veda: A Moral Code for Humanity	Dr. Narasingha Ch. Panda, Varanasi	141
189. Aditi in Vedic Rituals	Dr. Madhu Bala Ghay , Hosiarpur (Pb.)	142
190. A brief study of Skanda Sawmini,' 'Rkveda Bhasya'	H.Sadanandan Potti, Kerala	142
191. A Glimpse on Vedic Music	Dr. Sabita Devee, Guwahatti, Assam	143
192. Recreation system in the Aṣṭdhyāyī of Pāṇini	Mrs Bharti Goswami, Guwahati	144
193. Prthvi in Atharvaveda	Sajana,Thiruvananthpuram	145
194. The secret of Vaidiki Jajna Vidya	Dr. Kumudini Reader, Delhi University	145
195. The concept of Brahman in Ṛgveda and Early Upaniṣads	Dr. Dharmaraj Adai	146
196. Vedic Education Meant for common	Dr. Pranthi Ghosal, Varanasi	147
197. Educational Psychology, methods of inshuetions and the system of curriculum In the upaniṣads of the yajurveda		148
198. Accountability of Teachers in Vedic Period	Dr. Suchitra Mitra, Allahabad University Allahabad	149
199. Vedic tradition of Kerala	Dr. N.K. Sundareswaran	150

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

200. Education System In The Vedic Age: Its Application And Relevence — Dr. Joy Krishna Mahanta, Assam — 151

SECTION - 2

IR IRANIAN STUDIES 153-158

1. The Augment — Prof. (Dr.) Sharda Chaturvedi, Varanasi — 155
2. Indo-Persian Literary Culture & Central Asia Through Iranian Perspective — Prof. S.A. Hasan, JNU New Delhi — 156
3. Cultural relasionship between Iran and India in ancient era. — Hossein Mohammadi, Pune — 157
4. Soma in the Iranian Epics — Sayyad Hassan Alamdar Moghaddam — 157

SECTION - 3

CS CLASSICAL SANSKRIT 159-291

1. कालिदासकृतिषु दार्शनिकचिन्तायाः प्रतिबिम्बिनम् — डॉ. देबकुमार दास, कोलकाता — 161
2. कालिदाससाहित्येऽधरवर्णनम् — पण्डित सञ्जय कुमार पण्डा, बालेश्वरम्, ओडिशा — 161
3. मेघदूते पर्य्यावरणम् — श्रीमती अमिता दाशः, बालेश्बरम् — 162
4. भवानीदत्तप्रणीतं भर्तृहरिनिर्वेदम् : एकमध्ययनम् — डॉ. नरेन्द्रप्रसादः शुक्लः, छत्तिसगढ — 162
5. शुकनासोपदेशः-एकविंशशतके अस्य प्रासङ्गिकता — डॉ. पूर्बी घोष, वैस्ट बंगाल — 163
6. प्रभावतीपरिणयनाटकम्-एकं समीक्षणं रसविधानं च — डॉ. रामचन्द्र वी. गड्डे, तीर्थहल्ली (शिमोगा) — 164
7. त्रिविक्रमस्य मदालसा — डॉ. निरञ्जन मिश्रः, हरिद्वारः — 165
8. चाणक्यगघकाव्यनिर्माता कविशेखरः दिव्यसिंहमिश्रः — रूपवन्त पधानः, सुवर्णपुर — 166
9. प्रभावतीपरिणयनाटकम्—एकमध्ययनम् — डॉ. रवीन्द्र अम्बादास मूले, नासिक (महाराष्ट्र) — 167
10. आचार्योद्भटप्रतिपादितं काव्यदोषविवेचनम् — डॉ. प्रीति सिन्हा, लखनऊ — 167
11. भट्टिकाव्यस्य काव्यसौन्दर्य्यम् — शिप्रा राय, त्रिपुरा — 168
12. विश्वशान्तेरुपायाः — डॉ. कृष्ण कुमार झा, दरभंगा — 168
13. 'कालिदास-रचनासु-ब्रह्माण्डविज्ञानम्' — डॉ. अमरेन्द्र ठाकुर, मुजफ्फरपुर (बिहार) — 169
14. जगदेवकृतं रामगीतगोविन्दम् : एकमध्ययनम् — सुश्री भवानी टी. गाँवकर, कारवाड़, (कर्नाटक) — 169
15. संस्कृतमहाकाव्येषु कृष्णोदयम् — विनोद कुमार पाण्डेयः, राँची (झारखण्डम्) — 170
16. रसकल्पद्रुमे शान्तरसः — डॉ. (श्रीमती) कादम्बिनी दाशः, भुवनेश्वरः — 170
17. प्राचीनयुगे गुरुकुल-शिक्षा-पद्धति — भक्तवत्सलः, पटना — 171
18. माघे नारदस्य महत्त्वम् — गिरिजा देवी, राँची (झारखण्ड) — 172
19. माघे राजनीतेः समीक्षा — सुधा देवी, राँची (झारखण्ड) — 172
20. माघे मेघे गतं वयम् — सोनमन्ती देवी, राँची (झारखण्ड) — 172
21. कालिदासस्य मगधप्रेमविवेचनम् — अभय शर्मा, राँची (झारखण्ड) — 173
22. शाकुन्तले गान्धर्व विवाहस्य समीक्षा — रामावल्लभ शर्मा, राँची (झारखण्ड) — 173

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

23.	कण्वस्यौदार्य समीक्षा	उषादेवी, राँची (झारखण्ड)	173
24.	माघकाव्ये उद्धवनीते: समीक्षा	उमाकान्त मिश्र:, डालटनगंज (झारखण्ड)	174
25.	मेघे भूगोलवर्णन समीक्षा	कुंजविहारी शर्मा, राँची (झारखण्ड)	174
26.	माघ काव्ये वर्णित प्रकृति वर्णन समीक्षा	गणेशदत्त मिश्र:, राँची (झारखण्ड)	174
27.	रघुवंशे गोसेवाया महत्त्वम्	विद्यानन्द मिश्र:, राँची (झारखण्ड)	175
28.	रघुवंशेगुरोर्महत्वम्	सवितादेवी, राँची (झारखण्ड)	175
29.	रघुवंशे सन्ततेर्महत्वम्	रेणुदेवी, राँची (झारखण्ड)	175
30.	रघुवंशे नारी प्रतिष्ठाया: समीक्षा	सरस्वतीदेवी, झारखण्ड	176
31.	कुमार सम्भवे नारी वर्णन समीक्षा	वंशीधर मिश्र:, राँची (झारखण्ड)	176
32.	रघुवंशे प्रकृतिवर्णन समीक्षा	सन्तोषमिश्र:, राँची (झारखण्ड)	176
33.	कुमारसम्भवेवर्णितस्य पर्यावरण समीक्षा	जयकुमार पाठक:, राँची (झारखण्ड)	177
34.	मेघेयक्षपत्न्याश्चरित्र समीक्षा	सिद्धिदेवी, राँची (झारखण्ड)	177
35.	भवभूतेर्नाट्य कलाया: समीक्षा	चन्द्रावतीदेवी, राँची (झारखण्ड)	177
36.	मेघे करुण रसस्य विवेचनम्	वीरेन्द्र पाठक:, गया (बिहारराज्य)	178
37.	रासगोष्ठीरूपकम्-एकम् अध्ययनम्	श्रीमती नलिनी प्रभा दाश, भुवनेश्वर (ओडिशा)	178
38.	सामाजिकसमरसतायै संस्कृतम्	अभिनीतकुमार:, मुजफ्फरपुरम्	178
39.	श्रीगौरकृष्णोदयकाव्यसमीक्षा	श्रीनृसिंहनाथगुरु:, पुरी (ओडिशा)	179
40.	श्रीहर्षप्रभावित: कविसम्राट्	डॉ. सत्यनारायण आचार्य:, पुरी (ओडिशा)	180
41.	पण्डितराजाप्पय्यदीक्षियोर् उपमाविषयकं मतभेदसमीक्षणम्	डॉ. लल्लनप्रसादोपाध्याय:, जालन्धरस्थ	181
42.	शक्तिविमर्श:	अभिषेक पाण्डेय, वाराणसी	182
43.	कालिदासस्य कलादर्शनम्	डॉ. कृपाराम त्रिपाठी, बलरामपुर (उ०प्र०)	183
44.	संस्कृत साहित्यातील बालपात्रांचे कथविकासात योगदान	कु. मृणाली खानोरकर, नागपुर	183
45.	कालिदास्य काव्येषु भारत देशस्य वर्णनम्	श्रीमती विजया मानसिंहराव पाटिल, महाराष्ट्र	184
46.	उपनिषदग्रन्थदृष्ट्या शिक्षाया: स्वरूपम्	ज्ञान रंजन गङ्गेश, राँची	184
47.	व्याकरणं साहित्यं चेति शास्त्रद्वयं स्वतन्त्रमपि अन्योन्य-दृढसम्बन्धसहितम्	गुलाम दस्तगीर अ. बिराजदार:, मुंबई	185
48.	महाकवि कालिदासाच्या साहित्यवाङ्मयातील धर्मशास्त्रीय विवाह विचार	पं. मधुकरशास्त्री आर्वीकर, नागपुर	186
49.	कालिदास की आस्थाएं एवं आदर्श	डॉ. गौरी नाथ राय, बिहार	187
50.	शान्तोऽपि नवमो रस:	डॉ. उदयनाथ झा 'अशोक', पुरी, उड़ीसा	188
51.	काव्य सत्य-व्यापक सिद्धान्त पर नवीन दृष्टि	डॉ. लक्ष्मी शर्मा, जयपुर	189
52.	काव्शास्त्रीय परम्परा में जैनाचार्य हेमचन्द्र के देयांश	डॉ. आरती मिश्रा, बाराबंकी	190

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

53.	समाज निर्माण में संस्कृत की उपयोगिता	डॉ. अरुण दयाल, लखनऊ	191
54.	'पंचलिङ्गीप्रकरणम्' का वैशिष्ट्य	डॉ. हेमलता बोलिया, उदयपुर	192
54A.	क्षेमेन्द्र रचित चारुचर्या-एक नीतिकाव्य	डॉ. मधु बालासिन्हा, मुजफ्फरपुर	193
55.	भारतीय परम्पराओं के पोषक कालिदास	पं. राम नरेश राय, बेगुसराय	193
56.	प्राचीन भारतीय आर्थिक विचारों का इतिहास (कौटिल्य के विशेष संदर्भ में)	डॉ. कुन्ती देवी, जम्मू	194
57.	''भीष्म चरितम्'' महाकाव्य में 'देवव्रत भीष्म'	डॉ. पूर्णिमा आचार्य, वाराणसी	195
58.	शृङ्गार नायक-नायिकाएँ: मोहक परम्परा के आधार	डॉ. उर्मिला श्रीवास्तव, इलाहाबाद	196
59.	कालिदास के काव्यों में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा	डॉ. जयवीर सिंह यादव, इटावा	197
60.	सोमदेव सूरि विरचित 'नीतिवाक्यामृतम्' कालीन सामाजिक व्यवस्था	डॉ. ऋचा शुक्ला, लखनऊ	197
61.	राजस्थानीय रूपक परम्परा	डॉ. महेशचन्द, राजस्थान	198
62.	कालिदासीय काव्यों में नारी एवं विवाहवर्णन	निहालसिंह इमलिया, भरतपुर, राजस्थान	199
63.	कुमाऊँनी कवि गुमानी विरचित 'रामभक्तिमहिमा' (शतक काव्य) एक अध्ययन	डॉ. लज्जाभट्ट, लखनऊ	200
64.	सेवन्तिकापरिणय नाटक-रसविवेचन	डॉ. श्वेता रस्तोगी, लखनऊ	201
65.	'मृच्छकटिकम' में व्यवहार	डॉ. रुचि कुलश्रेष्ठ, मथुरा	202
66.	वात्सराज और उनकी नाट्यशैली	डॉ. नूतन स्मृति, उत्तरांचल	203
67.	बाणकालीन भारतवर्ष में शैक्षणिक स्थिति : एक अनुशीलन	डॉ. कादम्बरी शर्मा, छत्तीसगढ़	203
68.	कुमारसम्भवमें पार्वती का आध्यात्मिक सौन्दर्य	डॉ. सुधा बाजपेयी, लखनऊ	204
69.	कालिदास के ऋषि एक मूल्यांकन	सुश्री संगीता कुमारी, झारखंड	205
70.	'कुलाभिमान मिथ्याभिमान' पर क्षेमेन्द्र के विचार	डॉ. श्रीमति प्रेमलता कुमारी, बिहार	206
71.	संस्कृत वाङ्मयमें दास प्रथा एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य	डॉ. अपराजिता मिश्रा, जम्मू	207
72.	बहुपतित्व प्रथा के बदलते आयाम	आरती शर्मा, जम्मू	208
73.	कालिदास की नाटययात्रा (प्रयोगप्रर्धान्तासे प्रयोगविज्ञान तक)	कालिन्दी परीख	209
74.	संस्कृत साहित्य में परिधान	कु. प्रतिभा श्रीवास्तव, बरेली	210
75.	सौन्दर्य और प्रेम का उत्कृष्ठ समन्वय है- कर्पूरमंजरी	सत्यनारायण भारद्वाज, राजस्थान	211
76.	पारिजातहरण चम्पू का पौराणिक अध्ययन	धर्मपाल, जम्मू	212
77.	महाकवि कालिदास काव्येषु नारी	रामपाल गंगवार, इलाहाबाद	213
78.	संस्कृत वाङ्मय में पतिपरायणता एक-विवेचन	रोशी गुप्ता, जम्मू	214
79.	कालिदास की कृतियों में पर्वत	डॉ. प्रभाव सिंह ठाकुर, होशियारपुर	214

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

80.	कुब्जायत्रम् काव्य का समीक्षात्मक परिचय	चन्द्रिका देसाई, गुजरात	215
81.	संस्कृत साहित्यतील बालपात्रांचे कथविकासान योगदान	खानोरकर मूरनाली, नागपुर	216
82.	वनपालाच्या तिलकमञ्जरीतील दृष्टिगोचर सूक्ष्म-निरीक्षण दृष्टी	जगरूत दीपक, नागपुर	217
82A.	बुद्धचरित' व 'पद्यचूडामणि' काही प्रसंमांची तुल्ना	अंबोर आशा उदयराज, नागपुर	218
83.	कालिदासीय साहित्य में उभयमुखी प्रेम निरूपण	नबीता जम्वाल, जम्मू	218
84.	महाकवि कालिदासाच्या साहित्यवाङ्मययांतील धर्मशास्त्रीय विवाह विचार	पं. मधुकरशास्त्री, नागपुर	219
85.	शूद्रकाच्या मृच्दकटिकानून प्रतिबिंबित होणारे सामाजिक जीवन	शिखा शाहिना मोहम्मद, नागपुर	220
86.	संस्कृत रूपकों में विदूषक	डॉ. मोहन मिश्र उपाचार्य, भागलपुर	220
87.	बुद्धचरित का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. मधु कुमारी, भागलपुर	221
88.	मुद्राराक्षस में नायक की समस्या एक समाधान	डॉ. संगीता, मुजफ्फरपुर	222
89.	महाकवि कालिदास की स्त्री-विषयक धर्मशास्त्रीय दृष्टि	शिवशंकरकुमारो मिश्रा, वाराणसी	223
90.	महाभारत में वर्णित कथावस्तु के आलोक में वेणी संहार की कथावस्तु का नाटकीय दृष्टि से मूल्यांकन	डॉ. (श्रीमती) मीना शुक्ला, रांची	225
91.	कालिदास का शाप विद्यानिवास मिश्र की दृष्टि में	सञ्जय कुमार, वाराणसी	226
92.	रघुवंश महाकाव्य में पुष्प विवेचन : आधुनिक दृष्टि	ज्ञान प्रकाश, रांची	227
93.	कालिदास के नाटकों की नारी एवं वर्तमान नारी की सम्वेदनात्मक एकता	कु. पूजा मिश्रा, वाराणसी	228
94.	महाकवि भास के नाटकों में निहित वैदिक तत्त्वज्ञान	डॉ. रीना अस्थाना, हरदोई	228
95.	कालिदास के नाटकों में नारी-सौन्दर्य	डॉ. वन्दना वागीश्वरी, जम्मू	229
96.	भोजराज की कृतियों में कालिदासीय सन्दर्भ	डॉ. सदाशिव कुमार द्विवेदी, वाराणसी	230
97.	महाकवि दण्डी का संस्कार चिन्तन	अरुण कुमार मिश्र, लखनऊ	231
98.	कालिदास की रचनाधर्मिता का उद्देश्य	कुलदीप कुमार, जम्मू	232
99.	मिथिलाञ्चल की आध्यात्मिक परम्परा एवं उसका सामाजिक प्रभाव	प्रो. देवेन्द्र झा 'दीन', बिहार	232
100.	मृच्छकटिक कालीन गणिका जीवन एवं वैश्यावृति	डॉ. मिथिलेश कुमार, बिहार	233
101.	कालिदास का दुष्यन्त	रंजना कुमारी, सिवान	233
102.	महाकवि भास का परवर्ती कवियों पर प्रभाव	आचार्य डॉ० नागेश चन्द्र पाण्डेयः, प्रतापगढ़	234

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

103.	शब्दचित्रों का प्रमुख महाकाव्यों में प्रयोग	सोमप्रकाश, प्रतापगढ़	235
104.	हरविजयमहाकाव्य में चित्रालङ्कार	हरिचरण मीणा, कोटा	236
105.	अभिज्ञानशाकुन्तलम् में ध्वनि तत्त्व	डॉ. गोविन्द झा, बिहार	236
106.	''उत्तररामचरितम्'' में विषादः एक मनौवैज्ञानिक अभिगम।	श्री गमीर सिंह नारसिंह बारीया, गुजरात	237
107.	महाकवि कालिदास के भरतवाक्यों में पुरुषार्थ चिन्तन	डॉ. राजेन्द्र कुमार, दिल्ली	238
108.	भास की नाटकों में राम-चरित्रः एक समीक्षण	ऋचा रानी, बोकारो, इस्पात नगर	239
109.	लौकिक संस्कृत-सहित्य में स्वयंवर विवाह प्रथा	रजनी काटल, जम्मू	239
110.	अभिज्ञानशांकुतलम्-उपमाओं की विशेषताएँ	प्रा. जाधव मरलीधर सोपानराव, महाराष्ट्र	240
111.	भास की दृष्टि जीवन के प्रति	सुधा अन्ताल, जम्मू	240
112.	राधावल्लभ त्रिपाठी प्रणीत तण्डुलप्रस्थीयम् का प्रकरण वैशिष्ट्य	डॉ. बलवन्त कुमार शर्मा, शिमला	241
113.	भारतजनताहम्	डॉ. कृष्ण मोहन पाण्डेय, जौनपुर	242
114.	महाभारत की उपजीव्यता और संस्कृत नाटक	डॉ. लता पाण्डेय, नई दिल्ली	243
115.	संस्कृत रूपकों में प्रतिनायक	रेखा सिंह, इलाहाबाद	244
116.	संस्कृत साहित्य के विकास में श्रीद्वारकाशारदापीठ का योगदान	डॉ. जय प्रकाश नारायण द्विवेदी, द्वारका	245
117.	नायक भेदों की आचार से सीमक्षा	अनिल कुमार, जम्मू	246
118.	पारिजातहरण-महाकाव्य में प्रतिपादित तीर्थस्थलों का एक धर्मशास्त्रीय अध्ययन	मनीषा मिश्रा	247
119.	वासवदत्ता कथा में पुष्प वर्णन	डॉ. शिल्पी	248
120.	महाकवि भास का एकांकी दृष्टिकोण	डॉ. हरेन्द्र रजक, मुजफ्फरपुर	249
121.	महाकवि कालिदास एवं भवभूति(प्राचीन एवं अर्वाचीन समीक्षा के परिप्रेक्ष्य में)	डॉ. सविता रस्तोगी, ग्वालियर	249
122.	महाकवि भवभूति के रूपकत्रय में वर्णित राजनीतिक-जीवन मूल्य	डॉ. यादराम मीना, जोधपुर	251
123.	पुष्पदन्त की कृतियों का मूल्यांकन	डॉ. अरविन्द कुमार, बिहार	251
124.	महाकवि कालिदास के महाकाव्यों में दीपक	डॉ. गीता शुक्ला, लखीमपुर	252
125.	शंकराचार्य के स्तोत्र तथा उनके प्रिय शब्द	डॉ. श्यामकुमार झा, पं. बंगाल	253
126.	वाल्मीकि-समायण में रस-विवेचन	दिलोत्तम कुमार, सिमडेगा	253
127.	"शाकुन्तल" नाटक में चतुर्थ अंक का वैशिष्ट्य	दिलीपकुमार, मुजफ्फरपुर	254
128.	स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत-कवि-चेतना	डॉ. किरण सिंह सेंगर, मैनपुरी	255
129.	भोजराज की कृतियों में कालिदासीय सन्दर्भ	डॉ. सदाशिव कुमार द्विवेदी, वाराणसी	256
130.	मृच्छकटिक काल का सामाजिक जीवन	सुरेश द्विवेदी, बख्तियारपुर	257

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

131.	गौस्वामी हरिकृष्ण शास्त्री विरचित अत्याधुनिक भारतीय पञ्चमगद्यकाव्यस्वरूप "श्री-आचार्य-विजय:" साहित्यिक समीक्षा	डॉ. वाचस्पति शुक्ल, प्रतापगढ़	258
132.	मृच्छकटिक में प्रयुक्त अलंकार	सोनिया शर्मा, शिमला	259
133.	अश्वघोष विरचित सौन्दरनन्द के षष्ठ सर्ग में प्रयुक्त छन्द : एक विवेचन	डॉ. ध्रुव प्रसाद यादव, बिहार	260
134.	साहित्य वारिधि प्रो. कैलाशनाथ द्विवेदी का संस्कृत गद्य साहित्य- एक समीक्षा	गीताराम शर्मा, झालावाड़	261
135.	महाकवे वाणभट्टस्य कादम्बर्या प्रकृति वर्णन	सरस्वती कुमारी, बिहार	261
136.	संस्कृत अलङ्कार जगत् में 'शृङ्गारतिलक कर्ता रूद्रभट्ट'	डॉ. दिनेश कुमार शुक्ल, राजस्थान	262
137.	कालिदास के 'निकुम्भ' का प्रत्यभिज्ञान	डॉ. प्रतिभा त्रिपाठी, इलाहाबाद	263
138.	नैषधीयचरितम् में लोकविश्वास	सुश्री माधुरी यादव, इन्दौर	263
139.	भारतीय काव्यशास्त्र को कश्मीर का योगदान	पीर इरफत अहमद, श्रीनगर	264
140.	यमक-काव्यों में भट्टिकाव्य	डॉ. आशुतोष गुप्त, लखनऊ	265
141.	रामायण में ध्वन्यात्मकता	डॉ. अर्चना कुमारी दुबे	265
142.	पञ्चरात्र में गुरु द्रोण का प्रतिनायकत्व	डॉ. रामा शंकर रजक, मुजफ्फरपुर	266
143.	रघुवीर चरितम् महाकाव्य का अध्ययन	डॉ. मजू उपाध्याय, जम्मू	266
144.	कालिदासीय नाटकों में शाप	ज्योति श्रीवास्तवा, वाराणसी	267
145.	किरातर्जुनीयम् में गुप्तचर का चरित्र	शिशिर कुमार झा, दरभंगा	268
146.	'विट?' 'नहीं'	डॉ. संगीता गुन्देचा	268
147.	याज्ञिक की नाटयकृतियों में सङ्गीत शास्त्रीय तत्त्व	डॉ. प्रज्ञा शङ्कर, बरेली	269
148.	कविता का वस्त्वर्थ और उसके आधुनिक अनुषांग	डॉ. महराजदीन पाण्डेय, गोण्डा	270
149.	नाट्यविधा में उपरूपकों की स्थिति	कु॰ दीपारानी, जे.पी. नगर (उ॰प्र॰)	271
150.	भारतीय संस्कृति की सुरक्षा एवं नारी	अनुराधा, जम्मू	271
151.	Application of Dhvani in the Uttararāmacarita	Dr. Daya Shankar Tiwary, Delhi	272
152.	The Hero in Pancaratra of Bhasa	Dr. P.Syamala Devi, Kerala	273
153.	Contribution of Indrapati to Poetics	Dr. Roop Narayan Tripathi, Allahabad	274
154.	The Views of Kalidasa on Education	Dr. Ch. Durga Prasada Rao, Gudivada,	274
155.	Madanaketucarita -A Rare Prahasana from Kerala	Dr. C.S. Shashikumar, Thiruvananthpuram, Keral-9	275
156.	Khaṇḍacūlikā ùAn Appraisal	Dr. Śubhendu Kumār Siddhānta, W.B.	276
157.	Mm. Pdt. Krishnamadhava Jha and his works--	Shri Manamohan Dixit, Vileparley,	277
158.	Conception of Love in Kālidāsa's Works	Dr. Indira Saikia Bora, Assam	278

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

159. Kālidāsa's Vision of Life -A Study Based on Meghadūta	Dr. Reeja. B.Kavanal, Kerala	278
160. Vasu Praharāja and His works	Dr. Kshitiswar Dash, Balasore, Orissa	279
161. Kālidāsa and Rahasya	Smt. Basanta Manjari Dash, Orissa	280
162. Principles Governing the employment of Alaṃkāras --Ānandavardhana's View	Prof. Dr. Bidyut Baran Ghosh, Kolkata	280
163. The Kavyanusasana of Vagbhatta-II : A Critical Study	Prof. Dr. A.M. Prajapati, Gujarat	281
164. Status of Woman in Ancient India : An Observation	Mrs. Dipika Devi, Assam	282
165. Language of the Saṭṭaka of Rājaśekhara	Soma Roy, Kolkata	283
166. Puṁskokilakūjita in Kālidāsa	Dr. Abha Kulshreshtha, Delhi	283
167. Stridhana (As in Ancient anskrit Literature)	Dr. Shalini, Patna	284
168. A note on the structure and design of the Abhijñānaśākuntalam of Kālidāsa	Upendra Nath Sarma, Assam	284
169. Mahatam Nisseemanashcharitravibhutyah (महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः)	Dr. Kanta Bhatia, Delhi	285
170. New Interpretatin of Rasa against the Naturalistic Realistic Theatre	Prof. K.K. Jha, Muzaffarpur	286
171. New Manuscripts of Ratnavali - A Study	Johanson A.J, Kerala	287
172. Soundaranandam - A Study	Shibu Gopinath, Kerala	287
173. The World of Birds in Ancient Sanskrit Literature	Dr. Sumitra V. Bhat, Karnataka	288
174. Wordsworth and Kālidā : Astylistic Analysis of Ornamentation	Ms. Amrita Sharma, Karnal	289
175. Kālidāsa's Vision of Life-A Study Based on Meghadūta	Dr. Reeja. B. Kavanal, Kerala	289
176. Philosopher-Kings of Mithila		290

SECTION - 4

IS ISLAMIC STUDIES 293-297

1.	Bismillah is the cause of the grace of Allah Bismillah repels oppression. Bismillah is the Isme A zam	डॉ0 शैख सुबिजौद्दीन निजामुद्दीन, बलसाड़	295
2.	Sanskrit and Muslims : A Quest for Harmony	Dr. Rita Chattopadhyay, Kolkata	295
3.	پنجاب کی عشقیہ داستانیں: ہیر وراجھا کے خصوصی حوالے سے	ڈاکٹر عزیز عباس	297

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

SECTION - 5

AP	ARABIC AND PERSIAN		299-305
1.	Evolution of Arabic Language and Literature in Kashmir	Pz. Basheer Ahmad, Kashmir	301
2.	Persian Poetry in India and Germany	Zulfikar Ali, Delhi	303
3.	Women as Reflected in the Classicsl Persian Poetry	Abdul Halim, New Delhi	304
4.	Arab Political Societies in 19th and early 20th Centuries	Dr. Faiyazul Haqq, Allahabad	304

SECTION - 6

P&B	PALI AND BUDDHIST		307-324
1.	बौद्धधर्मदर्शने ब्रह्मविहारस्य महत्त्वम्	प्रो. रमेश कुमार द्विवेदी, वाराणसी	309
2.	चर्य्यापदस्य व्याख्याने मुनिदत्तरचिताया टीकाया: गुरुत्वविचार:	डॉ. अनीता वन्द्यापाध्याय, कोलकाता	309
3.	बोधिचित्त - विमर्श:	डॉ. धर्मदत्त चतुर्वेदी, सारनाथ, वाराणसी	310
4.	बौद्धार्थविचार:	डॉ. दयानाथ झा, बेगूसराय: (बिहार)	310
5.	बौद्ध साहित्य और मानवाधिकार : स्त्रियों और भ्रूण हत्या के सन्दर्भ में	सत्यदेव कौशिक, अलीगढ़	311
6.	पटिच्चसमुप्पाद [प्रतीत्यसमुत्पाद]	प्रो. हरीश ए. जोशी, भावनगर (गुजरात)	312
7.	भगवान बुद्ध और उनकी चिकित्सा	डॉ. कृष्णदेव प्रसाद वर्मा, बोधगया	312
8.	मिलिन्द प्रश्न का लोकदर्शन	डॉ. वीरेन्द्र कुमार अलंकार, चण्डीगढ़	313
9.	बौद्ध धर्म दर्शन में प्रतीत्य समुत्पाद का महत्त्व	श्रीमती शकुन्तला द्विवेदी, वाराणसी	314
10.	विसुद्धीमग्ग में सील की कल्पना	संतोष भोसले, (औरंगाबाद)	314
11.	बौद्ध दर्शन में अनात्मवाद का स्वरूप	मञ्जु बाला, कुरुक्षेत्र	315
12.	भारत में पुर्न उत्थान में श्रीलंका का योगदान	डॉ. आभारानी, बोधगया	315
13.	जातक वाङ्मय में वर्णित नारी की स्थिति	गौतम जीतेन्द्र, मुजफ्फरपुर	316
14.	बौद्ध दर्शन में निर्वाण का स्वरूप	डॉ. श्वेता जैन, जोधपुर	317
15.	बौद्ध प्रमाणलक्षण में 'अविसंवादि' पदकी सार्थकता	डॉ० धर्मचन्द जैन, जोधपुर	317
16.	औपनिषद दर्शन और प्राचीन सांख्य-योग दर्शन के साथ बौद्ध थेरवाद की तुलना	डॉ० दिलीप चारण, गुजरात	318
17.	Buddha as Interpreted by the Tagores	Sulagna Mukherjee	319
18.	Portrayal of Characters in Sarala Dasa's Mahabharata: Bhima and Yudhisthira	Dr. Niladri Bhusan Harichandan, Santiniketan (W.B.)	320
19.	Views about women in Jātaka Stories	Maitreyee Deshpande, Pune	321
20.	Folk Tales and Fables in Pali Literature : A Comparative Study	Bandana Mukherjee, Kolkata	322

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

21.	Upekkhā : The Sublime Ethical Ideal	Dr. Baidyanath Labh, Jammu	322
22.	Jammu in Ancient Buddhist Literature	By Lalit Gupta, Jammu	323

SECTION - 7

PJ PRAKRIT AND JAINISM 325-353

1.	आयरिय-महापण्णस्स थोत्तेसु भत्ती	समानी संगीत प्रश्न, लाडनूँ	327
2.	आयारङ्गम्मि महावीरो	रामभरोस पाण्डेय, वाराणसी	327
3.	रूवपुत्तलिआ कप्पूरमंजरी	डॉ. हरिशंकर पाण्डेय, वाराणसी	328
4.	जैन धर्म और हिन्दू धर्म	डॉ. पी.सी. जैन, जयपुर	329
5.	पुद्गल परमाणु का वैज्ञानिक विश्लेषण	डॉ. श्रीमती कृष्णा जैन, ग्वालियर (मध्यप्रदेश)	329
6.	विश्व शान्ति में अहिंसा का योगदान	डॉ. रजनीश शुक्ल, नई दिल्ली	330
7.	सुसढ कहा—एक समीक्षात्मक अध्ययन	हेमवती नन्दन शर्मा, लाडनूँ, जिला—नागौर (राज.)	331
8.	जैन धर्म में तप	नन्द कुमार तिवारी	331
9.	हेमचंद्राचार्यरचित त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित में निरुपित जैन रामायण-एक अवलोकन	डॉ० रूपा चावड़ा, गुजरात	332
10.	समराइच्च कहा एवं कुवलयमाला कहा में वर्णित सामाजिक एवं आर्थिक जीवन	प्रो० दुधनाथ चौधरी, बिहार	332
11.	श्रमण परम्परा में कषायहुड का स्थान	गोपाल प्रसाद, बिहार	333
12.	जैन दर्शन में जीव और कर्म का संबंध	डॉ० कमल कुमार जैन, पुणे	334
13.	महाकवि पुष्पदन्त रचित णायकुमार चरिउ	डॉ० रामेश्वर शर्मा, गया	334
14.	भारतीय संस्कृति के विकास में जैन-धर्म का योगदान	डॉ० सन्तकुमार मिश्र, हापुड़ गाजियाबाद	335
15.	जैन दर्शन का कर्मवाद	डॉ० विश्वनाथ चौधरी, भोजपूर बिहार	336
16.	अहिंसा-सिद्धांत और व्यवहार	डॉ० (श्रीमती) मंजुबाला, मुजफ्फरपुर, बिहार	337
17.	जैन शास्त्रों में वर्णित ध्यान की मनोवैज्ञानिक प्रासंगिकता	डॉ० रुसी जैन, होशियारपुर	337
18.	अपभ्रंश साहित्य में पउम चरिउ का स्थान	डॉ० रमाकान्त प्रसाद श्रीवास्तव, पटना	338
19.	प्राकृत कथा साहित्य में वाणिज्य एवं व्यापार	संगीता सिन्हा, पटना	338
20.	जैन व्रत कथा साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन	माला सिन्हा, पटना	339
21.	पं. आशाधर रचित धर्मामृत सागार में जैन धर्म के आस्तिक आयाम	डॉ. अलका बागला, झालावाड़	339
22.	जैन धर्म के क्षमापन पर्व की व्यवहारिकता	डॉ. अनिता जैन, वनस्थली, टोंक	340
23.	कंदर्पकंदलीकहा-अभ्यास	डॉ. सलोनी जोषी, अहमदाबाद	341
24.	भगवती आराधना में वर्णित सल्लेखना-चिन्तन एवं उसके प्रति समाज की मिथ्याधारणाएँ	डॉ. जिनेन्द्र जैन, लाडनूं	341

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

25.	जैन धर्म में आचार्य वीरविजय सूरि जी का प्रदान	प्रो. रीशीकेश. य. रावल, पालनपुर	342
26.	भिक्षा-विचार : जैन तथा वैदिक दृष्टि से (उञ्छ शब्द के सन्दर्भ में)	डॉ. अनीता बोथरा, पुणे	342
27.	कर्पूरमञ्जरी की भाषा	विपिन बिहारी मिश्र, आरा, बिहार	343
28.	महावीर के उपदेश : आधुनिक परिप्रेक्ष्य में	नरेन्द्र कुमार पाण्डेय, आरा	344
29.	जैन दर्शन में कार्य-कारण का स्वरूप	श्वेता जैन, लाडनूं	344
30.	करकण्ड चरिउ रस रजक	डॉ. मुकेश कुमार शर्मा, बचरी-पीरो (बिहार)	345
31.	जैन पुराणों में वर्णित वस्त्राभूषण (5वीं से 10वीं शती)	शीला जैन, जयपुर	345
32.	जैनशिक्षा	ओमप्रकाश पाण्डेय, वाराणसी	346
33.	मुक्तक काव्यों में गाथा सप्तशती का स्थान	डॉ. सच्चिदानन्द सिंह, भोजपुर (बिहार)	346
34.	पञ्चास्तिकाय का विवेचन	केशव नारायण मिश्रा	347
35.	गाथापति आनन्द	रमेन्द्रकुमार पाण्डेय, वाराणसी	348
36.	संबोधि में ध्यान	श्रीमती गीता पाण्डेय, वाराणसी	348
37.	वर्तमान राजनीति में जैन पुराणों की प्रासंगिकता	कु. अंजना बैराठी, जयपुर	349
38.	A Panaromic view of Pravachanasara: A Prakrit Work	Sh. Sudhakar k. Indi, Dharwad	349
39.	Comparative Study of Jain Philosophy with Sartrean Philosophy	Samani Shashi Prajna, Ladnun	350
40.	Jaina Concept of Pudgala	Shilpa Chheda	350
41.	'The Myth of Space Time'-	Varsha Shah, Mumbai	351
42.	Pre-requisites of Monkhood in Jainism	Ms. Neeta Malik, Mumbai	351
43.	The Concept of Transitory Nature of Things in Jain Philosophy	Dr. Kokila H. Shah, Mumbai	352

SECTION - 8

H HISTORY 355-377

1.	आसफविलाससमीक्षा	डॉ. जयश्री चट्टोपाध्याय, कलकत्ता	357
2.	जम्मू - इतिहासस्य संस्कृतस्रोतांसि	डॉ. धनिराम शास्त्री, जम्मू	357
3.	संस्कृत ग्रन्थों में कौशाम्बी वर्णन	डॉ. राजेन्द्र त्रिपाठी 'रसराज', इलाहाबाद	358
4.	निमिवंश और मिथिला	श्रीमती नन्दा झा, पुरी	359
5.	प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रमुख स्रोत - अष्टाध्यायी और महाभाष्य	प्रो./डॉ. गणेशदत्त भारद्वाज, होशियारपुर	359
6.	भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में जनपद सुलतानपुर की भूमिका	सन्तोष कुमार सिंह, सुलतानपुर	360
7.	उत्तरी भारत में राजपूत युगीन कला का विकास	डॉ. सविता कुमारी, आरा	361

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

8.	प्राचीन भारत में मृद्भांड उद्योग	शत्रुघ्नसिंह, लालगंज (बिहार)	362
9.	डोगरी लोकगाथा में ऐतिहासिक तथ्य	श्याम लाल रैना	362
10.	तक्षशिला की स्थापत्य एवं मूर्ति कला	सरस्वती कुमारी, बिहार	363
11.	पाटलिपुत्र का इतिहास लेखन	रामनिवास सिंह, पटना	364
12.	जम्मू नगर की स्थापना और इतिहास	सुरेश शर्मा, जम्मू	364
13.	Māgadha and Mekalādhipa of Harṣcarita of Bāṇa	Dr. Sudarshan Kumar Sharma, Parwanoo	365
14.	The History of Journalism in Asom	Anupoma Das, AIR, Guwahati	365
15.	Royal Patronage and Translation of Mahabharata into Assamese Language	Dr. Minati Hazarika	366
16.	Sanskrit Historiography under the Sultanate of Kashmir: Rajataranginis of Jonaraja and Srivara	Prof. Jigar Mohammed, Jammu	367
17.	Ang Cultural Research Centre & Influence of the Ancient world Civilization	P.T. Brahmvadi	368
18.	Jammu's Glorious Past	D.C. Prashant, Jammu	369
19.	King Ashoka's Marine Edict Referred to by Kshemendra of Kashmir	Dr. Ravindranath Vaman Ramdas, Thane	370
20.	Historical Elements Revealed in Visakhavijaya of Kerala Varmma	Dr. R. Kamla Kumari, Kerala	371
21.	Samyavada & Kautilya	Damador Choudhary, Assam	371
22.	Contribution of Kerala to Stotra Literature in Sanskrit - ABrief Survey	Dr. S.Remadevi Amma, Kerala	372
23.	Woman and Ritual in Ancient Kashmir	Rupali Maini, Jammu	373
24.	Public Women of Ancient Kashmir as reflected in the Literary Sources	Dr. Suman Jamwal, Jammu	374
25.	Svāmi Āgamānanda -A Social Reformer in Kerala	Padmadas K.L., Kalady	374
26.	Urbanization in Mithila : Problems & Prospects A Historical Analysis	Dr. Avanindra Kumar Jha, Darbhanga	375
27.	Śaktism in Early and Early -Medieval Kashmir	Dr. Hina. S. Abrol, University of Jammu	376
28.	India is a sovereign socialist secular Democratic Republic - An Analysis	Dr. Chandrashekhar Rai, Bhojpur	376
28A.	Political History of Jammu in Taushi -Satakam	Mr. Jagrut Joshi, Gujarat	377

SECTION - 9

ARCH ARCHAEOLOGY 379-382

1.	Antiquity of Vedas Purāṇo-Vedic and archaeological eveidences	Dr. Rai Gyan Narain Prasad, Gorakhpur	381

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

2.	Jewellery Depicted in Jayadeva's Gita - Govind	Ms. Neeta Malik, Mumbai	381
3.	Iconography of Sarsvati in Jaina Tradition	Dr. Renuka Porwal, Bombay	382

SECTION - 10

IL	**INDIAN LINGUISTICS**		**383-432**
1.	पाणिनीयतन्त्रे उपपदविभक्तीनां विमर्शः	डॉ. रमेश चन्द्र करः, विजयपल्ली (ओडीशा)	385
2.	व्याकरणाध्ययनपरम्परायामष्टाध्यायीपद्धतिः श्रेयस्करी	ऋद्धि नाथ झा, (बिहार)	385
3.	कतिपयपाणिनिसूत्राणांविशेषव्याख्यानम्	सत्येन्द्र शास्त्री, (ग्वालियर)	386
4.	निष्ठाप्रत्ययविमर्शः	श्रीमती अयोनिजाशास्त्री, झारखण्ड	387
5.	शब्दकौस्तुभरीत्या व्याकरणाध्ययन प्रयोजनविमर्शः	डॉ. गणपति भट्ट (कर्नाटक)	387
6.	स्वतन्त्रःकर्त्ता - इति सूत्रस्य दार्शनिकविवेचनम्	डॉ. तोयनिधि वैष्णव, रायपुर (छत्तीसगढ़)	388
7.	विशेष्य—विशेषणभावविमर्शः	डॉ. मधुसूदनपाण्डेय, औरंगाबाद	388
8.	भारतीयार्य भाषायाः कालानुसारेण वर्गीकरणम्	कृष्णकुमार झा, दरभंगा	389
9.	'वृद्धिरादैच्' सूत्रस्य प्राथम्यविषये कश्चिदभिनवो विचारः	डॉ. कमलेश कुमारः, गुजरात (अहमदाबाद)	390
10.	संस्कृत-व्याकरणदर्शन-क्षेत्रे भतृहरेः योगदानम्	डॉ. चितरञ्जनदयालसिंहकौशलः, कुरुक्षेत्रम्	391
11.	व्याकरणदर्शने आध्यात्मवादः	विमलेश झा, लखनऊ (उत्तरप्रदेशः)	391
12.	वैदिकक्रियापदानां निर्वचने प्राच्य-पाश्चात्यानां विमर्शः	डॉ. सुबोध कुमार नन्द, वेस्ट बंगाल	392
13.	धातूनां विशिष्टार्थवृत्तिता	डॉ. गोपबन्धुमिश्रः, वाराणसी	393
14.	षडर्थको शिक्षा	जयप्रकाश साहु, अमरावती (महाराष्ट्रम्)	393
15.	सम्प्रदानत्व विचारः	डॉ. पूर्णिमा केलकर, रायपुर (छत्तीसगढ़)	394
16.	स्थान्यादेशयोर्वाचकत्वविमर्शः	डॉ. सुबोध शर्मा, रा.सं.सं., गरली परिसरे	394
17.	प्रथमार्थविचारः	श्रीमती मनीषा पाठक, रायपुर (छत्तीसगढ़)	395
18.	शब्द ब्रह्म समीक्षा	पं० रामानुग्रह शर्मा, राँची (झारखण्डराज्यम्)	396
19.	अधिकारसूत्रसमीक्षणम्	डॉ. भगवत् शरण शुक्लः, इलाहाबाद	397
20.	भाषासु संस्कृतस्य वैशिष्ट्यम	पण्डित प्रताप चन्द्र शतपथी, ब्रह्मपुरम्	397
21.	ध्वनिः	पृभमदेव शास्त्री, शिमला	398
22.	मूर्धन्यादेशविषये भाषावैज्ञानिकचिन्तम्	डॉ. अखिलेशश्वरप्रसादशुक्लः, गोण्डा	398
23.	शब्दसाधुत्वम्	डॉ. रविशंकरपाण्डेयः, वाराणसी (उ०प्र०)	399
24.	द्वन्द्वसमासे वृत्तिः	प्रो. राजीवरंजनसिंहः, वाराणसी (उ०प्र०)	399
25.	धातूनां समानार्थकत्वं सम्भवति न वा	डॉ. दिगम्बरचन्द्रठाकुरः, वाराणसी (उ०प्र०)	400
26.	उपपदविभक्तिविमर्शः	डॉ. अमरचन्द्रठाकुरः, वाराणसी (उ०प्र०)	400
27.	व्याकरणस्य-वेदाङ्गत्वम्	डॉ. सुनील कुमार झा, मधुबनी (बिहार)	400

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

28.	व्याकरणशास्त्रस्य प्रयोजनानि	डॉ. त्रिलोक झा, दरभङ्गा (बिहार:)	401
29.	सूत्राणां लक्षणानि	रामसेवक झा, दरभङ्गा (बिहार)	402
30.	व्याकरण शास्त्र के प्रमुख प्रयोजन	संजीव कुमार पाठक, जम्मू	402
31.	अष्टाध्यायी: कतिपय ऐतिहासिक तथ्य	डॉ. उषा किरण, राँची	403
32.	महाभाष्य के सन्दर्भ में 'षष्ठी शेषे' (पा० 2.3.50) सूत्र का विवेचन	डॉ. भीमसिंह, कुरुक्षेत्र	404
33.	वात्स्यवरदाचार्य कृत तत्त्वसार में वर्णित आदेश शब्द का विवेचन	डॉ. सुधा शुक्ला (लखनऊ)	404
34.	महाभाष्य के सन्दर्भ में 'चार्थे द्वन्द्व:' सूत्र पर विचार	ममता शर्मा	405
35.	पदविभाजन में उपसर्गों का स्थान	सुनीता तक्षक, कुरुक्षेत्र	406
36.	हलबी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों का अर्थ वैज्ञानिक चिन्तन	डॉ. भावना श्रीवास्तव एवं श्रीमती सुनीता पटेल, भोपाल	406
37.	कारक-प्रक्रिया में कृदन्त प्रत्ययों का अध्ययन	डॉ. गुञ्जन गर्ग, भरतपुर (राजस्थान)	407
38.	प्राचीन कालीन भारतीय आर्य भाषा एक अध्ययन	श्रीमती डॉ. पुष्पकरम्, मुजफ्फरपुर (बिहार)	408
39.	मृच्छकटिकम् में भाषाओं का स्वरूप	श्रीमती मञ्जू सचान, कानपुर	409
40.	सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनगत अव्ययीभावसमास-विधायक सूत्र (3.1.26.30) : एक विवेचन	सुश्री ज्योति: शर्मा, कुरुक्षेत्र	410
41.	हिन्दी में दीर्घ 'ई'कारांत पुलिंगवाची संज्ञाएँ— एक अध्ययन	सदाशिव खवाड़े	411
42.	ओंकार से उद्भूत—व्याकरण	डॉ. अमरनाथ ठाकुर, सिवान	411
43.	समासान्तर्गत सामर्थ्य-विचार	डॉ. सुमन कुमारी, कुरुक्षेत्र	412
44.	पाणिनीय तन्त्र में लिंग और वचन की व्यवस्था : एक समीक्षा	प्रोफेसर श्रीकृष्ण शर्मा, कुरुक्षेत्र	413
45.	वाक्य एक अखण्ड सत्ता	डॉ. शोभा रानी, होशियारपुर	413
46.	क्त्वार्थ-विवेचन	डॉ. अरविन्दकुमार, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)	414
47.	भारतीय भाषा विज्ञान	खेमराज शास्त्री, जम्मू	415
48.	आचार्य काशकृत्स्न और उनका शब्दानुशासन : एक विश्लेषणात्मक परिचय	रविन्द्र कुमारी, कुरुक्षेत्र	416
49.	पाणिनीयव्याकरण में बहिरङ्ग और अन्तरङ्गशास्त्र की स्थिति : एक विवेचन	संजीव कुमार, कुरुक्षेत्र	416
50.	सारस्वत व्याकरण में तद्धित प्रत्यय अण्, इञ्, वतु, मतु	अजय कौशिक, कुरुक्षेत्र	417
51.	'युवोरनाकौ' इत्येतत्सूत्रस्य समीक्षणम्	पुष्पा दीक्षित, बिलासपुर (छत्तीसगढ़)	418
52.	॥ पाणिनये नमः ॥ असिद्धवदत्राभात् -एक समीक्षण	अभिजित् दीक्षित, बिलासपुर (छत्तीसगढ़)	418
53.	डोगरी महाकाव्य में प्रयुक्त तत्सम तद्भव शब्दावली	सरिता खजरिया, जम्मू	419

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

54.	शतकत्रय का भाषाशास्त्रीय वैशिष्ट्य	श्री मृत्युंजय कुमार, भागलपुर	420
55.	पाणिनिव्याकरण में इष्टिवचन	दिनेश चन्द्र शर्मा, बरेली (उ०प्र०)	421
56.	Treatment of Compound Consonants In Aryan Languages	Prof. (Dr.) Sharda Chaturvedi, Varanasi	422
57.	The Vṛttisūtra Controversy : A Possible solution	Mrs. Nalini Prava Dash	423
58.	Scope of the Pāṇinian rule ''anabhihite''2.3.1	Reeta Bhattacharya, Birati, Kolkata	424
59.	Some Linguistic Concepts of Saussure and Panineeyam	Dr. E.N. Narayanam, Kerala	425
60.	Bhartṛhari's approach to Vākya-śakti	Dr. Gayatri Rath, Vanivihar	425
61.	Linguistics Analysis of Mahanaya Prakaska	Dr. Satyabhama Rajdan, Kashmir	426
62.	Critical Analysis of Grammarians' Adhyāsa : A Word-Meaning Relation	Raghbir Singh, Hoshiarpur	426
63.	On Yama in Sanskrit Phonetics	Girish K Jha, Patna	427
64.	Pen Names of Women Vachana Writers	Dr. Rajeshwari Maheshwaraiah, Dharwad	428
65.	Russell and Sabara on Meaning	Bhupesh Sarma	429
66.	Sanskrit Matri Bhashi -s (S M D-s) in Jammu and Kshmir vis-a-Vis other states of our country	Jitedra Kumar Tripathi, Lucknow	429
67.	Apasabdavicara	Malhar Kulkarni, Mumbai	430
68.	Treatment of कित्-ङित् प्रकरण (P.1.2.1.26) in the Post-Pāṇinian Systems of Sanskrit Grammar	Narayan Prasad, Pune	431
69.	Role of Sanskrit in the evolution of Malayalam language	Dr. Naduvattom Goplakrishnan, Thiruvananthapuram	432

SECTION - 11

PR PHILOSOPHY & RELIGION 433-555

1.	भर्तृहरिमते शब्दब्रह्मण: स्वरूपम्	डॉ. कामदेव झा, नन्योला (अम्बाला), हरियाणा	435
2.	मूकपञ्चशत्यामद्वैतभावना	डॉ. जी.एस.आर. कृष्णमूर्ति, तिरुपति	436
3.	आचारो दुराचारो न भवेत्	डॉ. ललितकुमारसाहु:, ओडिशा	436
4.	न्यायसम्मत प्रत्यक्षस्वरूपम्	डॉ. महेश झा, पुरी	437
5.	संस्कृतवाङ्मये भारतीयसंस्कृतेर्मूलस्वरूपम्	संजू प्रसाद ध्वानी, यमकेश्वर पौडी (गढवाल)	437
6.	न्यायदर्शनेषु शरीरविचार:	ईश्वरचन्द्रदे, श्रीविहार, (पुरी)	438
7.	आत्मबोधिनी : एकं दार्शनिकमध्ययनम्	श्रीमती पुष्पलता बेहेरा, बालेश्वरम्	439
8.	अद्वैतवेदान्तेऽध्यासस्वरूपम्	डॉ. शुद्धानन्दपाठक:, नवदिल्ली	439
9.	श्रीमद्भगवद्गीतायां ब्रह्मस्वरूपविमर्श:	सर्वानन्दमिश्र:, श्रीविहार, पुरी (ओडिशा)	440

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

10.	वृत्तान्ताख्यव्याख्यादिशा अष्टाङ्गयोगविचार:	डॉ. कम्भम्पाटि साम्बशिवमूर्ति:, जयपुरम्	441
11.	शब्दमणिमयूखस्य वैशिष्ट्यम् चिन्तामणिकृतशब्दलक्षणञ्च	डॉ. हरेराम त्रिपाठी, दिल्ली	442
12.	चरकसंहितायां निगदितं कर्मविज्ञानम्	डॉ. उमारानी त्रिपाठी, वाराणसी	443
13.	स्वत्वस्य लौकिकत्वविचार:	सुश्री कादम्बिनी साहु, पुरी (ओडिशा)	443
14.	रामानुजाचार्यस्य धार्मिक योगदानम्	डॉ. मनोज कुमार पाण्डेय:, राँची	444
15.	अद्वैतवेदान्तेऽध्यासस्वरूपम्	डॉ. शुद्धानन्दपाठक:, नवदिल्ली	444
16.	न्यायमतेन अन्यथाख्याति:	प्रो. वी.आर. दीक्षित, कनौटक	445
17.	ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या	ज्वाला किशोर मिश्र, वाराणसी (उ०प्र०)	446
18.	अद्वैतवेदान्ते ईश्वरस्वरूपविचार:	डॉ. एस.एन. रमामणि, नई दिल्ली	446
19.	यौगिकग्रन्थिदर्शनम्	व्रजकिशोरस्वाईं, पुरी (ओडिशा)	447
20.	कार्मण शरीर-सूक्ष्मशरीरयोरवधारणा - एकं समीक्षणम्	डॉ. प्रेमलाल: शर्मा, होशियारपुर	447
21.	पौराणिकसाहित्ये शाङ्ख्यसिद्धान्तानां विवेचनम्	डॉ. परमेश्वरसिंह राजपुरोहित:, जोधपुरम् (राज०)	448
22.	तन्त्रशास्त्रे हादि विद्या	डॉ. शैलकुमारी मिश्र, इलाहाबाद (यू०पी०)	449
23.	न्यायमते अर्थानां प्रत्यक्षयोग्यता	प्रो. शङ्कर दयाल द्विवेदी, इलाहाबाद	450
24.	परमाणुशब्दप्रवृत्तिनिमित्तविमर्श:	डॉ. रामकुमार शर्मा, गरली (हि०प्र०)	450
25.	शब्दब्रह्म	डॉ. अनीता त्यागी, रामपुर	451
26.	प्रभाकरमते मोक्षस्वरूपम्	डॉ. गायत्री शुक्ला, रायबरेली (उ०प्र०)	452
27.	सांख्यतत्त्वकौमुदी दृष्ट्या पञ्चविंशतितत्त्वानि	संघमित्रा रथ, भुवनेश्वर	453
28.	धर्मशास्त्रेषु स्त्रीधनम् (याज्ञवल्क्यस्मृतिसंदर्भविशेषे)	डॉ. विनीत घिल्डियाल, गढवालस्थम्	454
29.	नित्यसूरिसद्भावविचार:	डॉ. चक्रवर्ती राघवन, तिरुपति	454
30.	जीवनस्य परमपुरुषार्थ:	कुमारी गीता बनर्जी, वाराणसी	455
31.	रामानुजदर्शन में सृष्टिविचार	डॉ. रश्मि सिंह, बांदा	455
32.	भारतीय चिन्तन और अद्वैतवेदान्त	डॉ. शारदा गुप्ता, जम्मू	456
33.	अपरिग्रह-आधुनिक संदर्भ में	डॉ. रणजीत कुमार, पटना	457
34.	ठाकुर गुमानसिंह कृत 'योगसूत्र-पद्यात्मक टीका' का वैशिष्ट्य	डां. धीरज प्रकाश जोशी, उदयपुर	457
35.	माठरवृत्ति और चीनी अनुवाद की साधारण असमानताएं	डॉ. श्रीमती अर्चना गिरि, उत्तरप्रदेश	458
36.	भूतेषु भूतेषु विचित्य धीरा: प्रेत्यात्माल्लोकादमृता भवन्ति	डॉ. शरत प्रभा, पूर्णिया	459
37.	वैश्विक संकट का निदान है सनातन धर्म	डॉ. इन्दु प्रकाश मिश्र 'इन्दु', इलाहाबाद	459
38.	जगत् और संसार	रामकुमार शर्मा, लखनउ	460
39.	अद्वैत तत्त्वज्ञानातील भक्तीचे स्थान	नेक अनुउपमा, नागपुर	461

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

40.	गीता एक विश्लेषणात्मक दृष्टि	ममता पाण्डेय, दरभंगा	462
41.	दैनिक युग में गीता की उपयोगिता एवं महत्व	मिस सन्धया, जम्मू	463
42.	वर्तमान में चार्वाक के नीति शास्त्रीय सिद्धांत की प्रासंगिकता	श्रीमति सोनी मुण्डा, झारखंड	463
43.	भारतीय दर्शन में कारण-कार्य विचार	अनुराग पाण्डेय, इलाहाबाद	464
44.	कर्म और परमात्मा नवधा भक्ति	रेणुका जे मासार, गुजरात	465
45.	पातंजल योगसूत्र–स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा एक संदर्भ परक समीक्षा	डॉ. चन्द्रनाथ झा, दरभंगा	465
46.	महर्षि अष्टावक्र का अद्वैतवाद	रिपुदपमन सिंह, लखनऊ	466
47.	न्याय दर्शन में आत्मा एवं मोक्ष	डॉ. कंचन गुप्ता, टिहरी	466
48.	कर्म	डॉ. संगीता विद्यालंकार, ज्वालापुर	467
49.	आत्रेय रामानपुज का शक्तिवाद	डॉ. दीपक कुमार, आरा	468
50.	पुरातन योग	डॉ. कञ्चन माला, सीतामढ़ी	468
51.	दर्शन अध्यात्म एवं विज्ञान में अन्तर्सम्बन्ध–एक विवेचन	डॉ. हरिकान्त मिश्र, चित्रकूट	469
52.	विश्व शान्ति में अहिंसा का योगदान	डॉ. रजनीश शुक्ल, नई दिल्ली	470
53.	राजनीतिक अवधारणाओं में मन्त्रणा और सेनापति–निरूपण	विभाकुमारी झा	471
54.	जैन न्याय और आचार्य प्रभाचन्द्र	योगेश कुमार जैन, लाडनूं (राजस्थान)	471
55.	गायत्री की तन्त्र-पक्षीय सिद्धि का प्रथम चरण : कुण्डलिनिजागरण	कु. राजकुमारी, कानपुर	472
55A.	संख्या का अतिरिक्त पदार्थत्त्व (पदार्थ तत्त्वनिरूपण के परिप्रेक्ष्य में)	डॉ. अनिता राजपाल, दिल्ली	473
56.	भारतीय और पश्चात्य प्रबन्ध दर्शनमें भिन्नताएँ	डॉ. प्रिया खादर, भोपाल	473
57.	श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित मन का स्वरूप	डॉ. ब्रह्मानन्द पाठक, लखनऊ	474
58.	प्राप्तव्यों का मूल सन्निहित है श्री मद्भगवतगीता में	आशा रानी	475
59.	गोरक्षदर्शन में प्राप्त शिव एवं शक्ति का स्वरूप	सुजाता मंगोत्रा, जम्मू	476
60.	वेदांत और मानव जीवन	श्री जी. एन. बारीया, गुजरात	476
61.	आधुनिक युग में यम-नियम की उपयोगिता	रीता भल्ला, शिमला	477
62.	श्रीमद्भगवद्गीता तथा योग	डॉ. श्वेता शर्मा, हिसार	478
63.	जीवन दर्शन एवं गुरूतत्त्वचिंतन	डॉ. विनोद कुमार सिंह, कैमूर	479
64.	श्रीमद्भागवतम् में दिव्य प्रेम दर्शन –एक विवेचन	डॉ. जय शंकर झा, दरभंगा	480

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

65.	श्रीमद्भागवत में सृष्टि-प्रक्रिया	डॉ. श्रीप्रकाशराय, कैमूर, बिहार	481
66.	पातञ्जल योग के अनुसार चित्त का स्वरूप, भूमियाँ एवं वृतियाँ	तरसेम कुमार शर्मा, जम्मू	481
67.	योग का महत्त्व	गोविन्द लाल, जम्मू	482
68.	विशिष्टाद्वैत दर्शन में ईश्वर का स्वरूप	डॉ. नरेश दीक्षित, लखनऊ	482
69.	वैदांत के पंचमदेव दर्शन में ब्रह्म का अवलोकन	विशाखा कुमारी, दरभंगा (बिहार)	483
70.	हाटेश्वरी माता का ऐतिहासिक महत्व	हितेन्द्र आर. दुल्टा, शिमला	484
71.	भारतीय दर्शन में योग की अवधारणा	पवन कुमार, अमृतसर	485
72.	प्राचीन भारत में दण्ड व्यवस्था	प्रो. के. पी. सिंह, अम्बाला, हरियाणा	486
73.	"धर्म" और "सम्प्रदाय"-एक अनुचिन्तन	डॉ नीलम पाठक, रांची	487
74.	बल्लभ-दर्शन में 'ख्याति'	डॉ. गिरिधर गोपाल शर्मा, दिल्ली	488
75.	श्रीमद्भगवद्गीता में धर्म तत्त्व	डॉ. नलिनी शुक्ला, लखनऊ	489
76.	सामाजिक विनिमय के सिद्वान्त एवं वर्तमान सामाजिक परिवेश में इसकी उपयोगिता एक दार्शनिक विवेचन	वन्दना, पटना	489
77.	औपनिषदिक अध्यात्म ज्ञान का प्रथम सोपान 'सदाचार' तथा वर्तमान में उसकी प्रांसगिकता	डॉ लता गर्ग, सहारनपुर	490
78.	धर्मशास्त्र में योगशास्त्र	मेघना श्रीवास्तव, इलाहाबाद	491
79.	विशिष्टाद्वैत वेदान्त को लोकाचार्य का अवदान	पूनम पाण्डेय, इलाहाबाद	492
80.	गीता : एक व्यवहारिक अध्ययन	मञ्जरी सिन्हा, इलाहाबाद	492
81.	भारतीय आस्तिक दर्शनों में प्रमाण मीमांसा	डॉ. नीतू सिंह, सुल्तानपुर	493
82.	अरविन्द की दृष्टि में सौर-मण्डलीय-देवता	डॉ. हेरम्ब पाण्डेय, वाराणसी	494
83.	भारतीय चिन्तन परम्परा में नीति निर्धारक तत्व-एक समीक्षा	डॉ. बी. एन झा, बिहार	494
84.	गीता तथा आत्मपरमात्मानुभूति	डॉ. सनन्दन शर्मा, रोहतक	495
85.	वेदान्त में स्वास्थ्य-चिन्तन	अजीत कुमार शास्त्री, घोरडी	496
86.	भक्ति में तन नहीं, मन चाहिए	श्रीमती ए. निशा, गाजियाबाद	496
87.	शंकराचार्य के स्तोत्रों में अन्न दर्शनों का प्रभाव	डॉ. डाहयापुरी एच. गोस्वामी, गुजरात	497
88.	भारतीय संस्कृति की पोषिका-माँ गंगा	डॉ. रचना शर्मा, मीरजापुर	498
89.	ईसाई धर्म में पाप एव प्रायश्चित की अवधारणा	डॉ. विनय कुमार सिन्हा, पटना	498
90.	शाङ्करवेदान्त में अध्यास का निरूपण	विवेकमणि त्रिपाठी, वाराणसी	499
91.	वात्स्यवरदाचार्य कृत तत्वसार में वर्णित आदेश शब्द का विवेचन	डॉ. सुधा शुक्ला, लखनऊ	500

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

92.	अद्वैत वेदान्त दर्शन में मानव व्यक्तित्व की मीमांसा	डॉ. सरोज कौशल, जोधपुर	501
93.	ईशावास्योपनिषद्	रूवी कुमारी, नालन्दा	501
94.	श्रीमद्भगवद्गीता में 'लोक' शब्द की अवधारणा	डॉ. राजेश लाल मेहरा, मध्यप्रदेश	502
95.	मनोनुशसनम् एवं पातंजल योग सूत्रः एवं अध्ययन	डॉ. प्रकाश सोनी (वर्मा), मुम्बई	503
96.	भारतीय दर्शन में कर्म की अवधारणा	डॉ. बिनोद कुमार चौधरी, नालन्दा	504
97.	दर्शन में धर्म का स्वरूप	मो. मेराज अहमद, श्रीनगर	505
98.	दर्शन का स्रोत धर्म एक अध्ययन	कृष्ण कुमार शास्त्री सूद	505
99.	योगकारिका में चित्तपरिकर्मविमर्श	रजनी सिन्हा, वाराणसी	506
100.	ज्योतिष शास्त्र में सप्तम भाव की समीक्षा	डॉ. उमेशभग, मधूबनी	506
101.	श्रीमद्भागवतीयंसाङ्ख्यदर्शनम्	करुणेश कुमार पाण्डेय, वाराणसी	507
102.	श्रीमद्भगवद्गीता तथा योग	डॉ. श्वेता शर्मा, हिसार	507
103.	भारतीय चिन्तन परम्परा में नीति निर्धारक तत्व : एक सर्वेक्षण	डॉ. बी.एन. ओझा, पटना	508
104.	भारतीय दर्शन में योग की अवधारणा	पवन कुमार, अमृतसर	509
105.	योगतन्त्र की दृष्टि में कुण्डली (चक्र) तत्त्व विमर्श	डॉ. रोहित पाण्डेय, वाराणसी	509
106.	योगतन्त्रागमदृष्ट्या मुद्रा स्वरूप विमर्श	डॉ. राघवेन्द्र जी दूबे, वाराणसी	510
107.	सांख्य की प्रकृति और वेदान्त की माया	डॉ. कु. उषा माथुर, मेरठ	511
108.	परमहंस : एकविमर्श	डॉ. परमात्मा दुबे, सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि.वि.	512
109.	शङ्कर-मण्डन-शास्त्रार्थ-समीक्षा	डॉ. अमर नाथ झा, मुजफ्फरपुर (बिहार)	512
110.	सद्धर्म पुण्डरीक में धर्म की अवधारणा	प्रो. एस.पी.शर्मा, अलीगढ़	513
111.	गीता का भक्तियोग : भगवत्प्राप्ति का सहज मार्ग	डॉ. नन्द किशोर ठाकुर, दरभंगा	513
112.	संस्कृतसाहित्य में तारकब्रह्म अथवा तारकमन्त्र	डॉ. महेश दत्त शर्मा, बदायूँ (उ०प्र०)	514
113.	अद्वैतवेदान्त की वर्तमान में प्रासङ्गिकता	डॉ. रामसेवक दुबे, इलाहाबाद	515
114.	Divakara and Navya-Nyaya : A Critical Study	Prof. G. Narayan Swami, Chennai	516
115.	The concept of Brahman in Ṛgveda and Early Upaniṣads	Dr. Dharmaraj Adat, Kalady, Kerala	517
116.	The Concept of Tapas and Indian Theology	Dr. Asha Goswami, Delhi	517
117.	A Tryst with the Divinity	Dr. Uma Deshpande, Baroda	518
118.	The Bhagavat-Gītā --A New Scientific Approach	Dr. Parvati Banerjee, Varanasi	518

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

119. A Glimpse into Sṛṣṭibhedavāda	Dr. Sunanda Y. Shastri, Gujarat	519
120. Divakara and Navya-Nyaya : A Critical Study	Dr. Satchidanand Mishra, Sagar (M.P)	519
121. Divakara : A Critical Study	Dr. Amarnath Pandey, Lucknow	520
122. Prof. R.D. Ranade's Philosophy of Mysticism	Dr. N.V. Kulkarni	520
123. The Doctrine of Bhāvādvaita and its place in the System of Advaita Vedānta	Dr. Sujata Purkayastha, Gauhati	521
124. Influence of Vedanta on Indian Life	Dr. C.A. Shalla, Karivattom, Kerala	521
125. Contribution of K.M.Jha to Navya-Nyaya Philosophy	Dr. Naveen Chandra Mishra, Surat	522
126. Russell and Sabara on Meaning	Bhupesh Sharma	523
127. Epithets of Agni in the Apri Hymns : A Study in the Light of Sri Aurobindo	Jagamohan Acharya, Vani Vihar	523
128. The Concept of Devotion in the Neo-Vaisnavite Srimanta Sankardeva's Philosophy	Dipika Roy Medhi, Guwahati	524
129. The concept of *ŚARĪRA ŚARĪRI BHĀVA*	Acharya Varadarajan R, Vadodara	525
130. Concept of social Evolution in Aurobindo's Metaphysics	Dr. Nabanita Das, Gopalgaon, Orissa	526
131. Moksha a critical study with reference to Samkhya philosophy	Pankaj Sharma, Guwahti, Assam	526
132. The philosophy of Śrī Nārāyaṇa Guru	Dr. Kalyani Kutti Ponnatu, Maduari	527
133. The means of knowledge in the Sāṁkhya system	Dr. P. K. Sasidharan Nair, Tamil Nadu	527
134. Concept Obstacles to Samādhi in the Yogavārttika of Vijñānabhikṣu	N. Sivamikkani, Maduri, Tamilnadu	528
135. The philosophy of Sri Chattampi Swamikal	V.Radhakrishnan Nair, Maduri	529
136. Devottee, Devction and reality in the Yoga system	R. Surendranath Thamburaj, Tamilnadu	529
137. The phases of Sabījasmādhi in the yoga system-A conceptual Analysis	T.S. Kumaran, Madurai-India	530
138. Yama and Niyama in a new perceptive; a study based on the yogasūtras of Patañjali	P.P.Sudarasan, Madurai, Tamilnadu	530
139. Vākya Vṛtti- A study	A. Srividya, Madurai, Tamilnadu	531
140. Steps to the attainment of knowledge -A steps based on the Aparokṣānubhūti	N.Mohana, Maduari, Tamilnadu	531
141. Madhva Vedanta Mein Jagat Ka Swarup	Vimalesh Kumar Thakur, Delhi	532
142. The concept of Devotion in The neo-Vaisnavite Srimata Sankardeva's philosophy	Dipika Roy Medhi, Guwahati	532

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

143. Human Welfare in Bhagavad Gītā	Suneti Mishra, Cuttack	533
144. Pholosopher - Kings of Mithila	Gangadhar Jha Shastri, Mithila, Bihar	534
145. A Discussion on Adhyāsa	Dr. Sumita Chaudhry, W.Bengal	535
146. Summary of Bhartrihari Nirvedam	SVR Murthy, Puri	535
147. An Essay on Suicide with Special Reference to G.R. Malkani and Aurthur Schophenhauer	Dr. Sumitra Purkayasthu, Jorhat	536
148. The theory of Atman as conceived by Sri Sri Thaku Anukulachandra; Fulfiller the best	Dr. Niranjan Mishra, Jharakhanda	537
149. Priestess in Mannarassala -A Rare Specimen of Serpant Worship in South India	Dr. Anand Dilip Raj, Kerala	538
150. Bhakti in Jagaddhar Bhatt's Stuti Kusumanjali	Brijnath Watal Betab, Delhi	539
151. Concept and means of mokṣa in Advaita Vedānta	Dr. P.Upalsala Devipillai,	540
152. Cosmology in Samkhya	Dr. S.Geethamony Amma, Kerala	540
153. Sankhya and Yoga as Presented in Narayaniya	Dr. G. Usha Kumary, Thirmananthpuram	541
154. Vedanta Philosophy as Depicted in Sri Aurobindo's Poetry	Dr. Amalendu Chakrabarty, Gauhati	542
155. An Analysis of J.Krishnamurti's Concepts of Love and War	Dr. Dinesh Kumar, Patna	542
156. Glimpse of Śarīras (Comparative View of Vedānta and Sāṁkhya Systems)	Dr. Shakuntala Punjani, Delhi	543
157. 'The Purusha' concept in Gita	Suresh Kumar P.T., Kerala	544
158. Ancient Śaiva System : Text and Practice	Dr. T. Ganesan, Ponidcherry	545
159. The Prābhākaras Mīmāṁsā and the Vaiśeṣika System-A Comparative Study	Purnima Ghosh, Kolkata	546
160. Priestess in Mannarassala -A Rare Specimen of Serpant worship in South India	Dr. Anand Dilip Raj, Kerala	547
161. Introduction to Cosmology in Indian Philosophy	Lekha Subhash, Kerala	547
162. Chief end of life : Nyaya view	Dr. Krishna Chakraborty, Calcatta	548
163. Value based education through Yoga Darsana	Saswati Nath, Bhubaneswar	548
164. The concept of Brahman in Ṛgveda and Early Upaniṣads	Dr. Dharmaraj Adat, Kerala	549
165. Concept of 'Self' in Hinduism	Chandni Sinha, Patna	550

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

166.	The-Guru-Parampara-in-Upanisad	Dr. Nirmala Nayak, Khurda	551
167.	The Neo-Vaisnav Religion of Sankaradeva	Dr. Rubi Mahata, Assam	551
168.	Cosmic Influence of the Subconcious	M.K. Adettiwar, Pune	552
169.	Relation in Mimamsa	Prof. Rajendra Nath Sarma, Guwahati	553
170.	Arthāpattipramāṇam -A discourse in the Light of Mīnāmsā Philosophy	Dr. Snigdha Das Roy, Assam	553
171.	Srimanta Sankaradeva -A Religious Refofrmer	Sri Dibyajyoti Mahanta, Nagaon (Assam)	554

SECTION - 12

DS DRAVIDIC STUDIES 557-562

1.	कन्नड़ से हिन्दी में अनुदित काव्य : एक अनुशीलन	डॉ. भारती हिरेमठ, कर्नाटक	559
2.	Indo Aryan Words in the Dravidian	Etymological Dictionary	559
3.	Family Names in North Karnataka	Dr. (Smt.) Shree S. Herlekar, Dharwad	560
4.	Pen Names of Women Vachana Writers	Dr. Rajeshwar Maheshwaraiah, Dharwad	561
5.	Kerala Tribes and their Languages	Vidhu Narayan UCC, Aluva-2	562

SECTION - 13

TS & FA TECHNICAL SCIENCES AND FINE ARTS 563-662

1.	कालिदासकाव्येषु पर्यावरण-संरक्षण-चिन्तनम्	डॉ. प्रकाश चन्द्र पन्तः, हरिद्वारम्, उत्तराञ्चलम्	565
2.	परिवेशो हि प्रासङ्गिकः	डॉ. लक्ष्मणचरण विश्वालः, बालेश्वरम् (उत्कलम्)	565
3.	स्वस्थ जीवनधारणे आयुर्वेदस्य योगस्य च प्रयोजनम्	डॉ. अनादिचरण बेहेरा, बालेश्वरम्	566
4.	देवपूजोपचारेषु गान्धर्वकलायाः प्रासङ्गिकता	डॉ. श्रीनिवास आचार्य, पुरी, (ओडिशा)	567
5.	संस्कृतस्य व्यवसायात्मकं महत्त्वम्	डॉ. सन्तोष कुमार पाण्डेयः, राँची (झारखण्ड)	568
6.	धर्मशास्त्रे अशौचस्य वैज्ञानिकत्वम्	डॉ. अतुल कुमार नंदा, पुरी (ओडिशा)	568
7.	वृष्टिलक्षणविमर्शः -कृषिपराशरे आधुनिकविज्ञाने च	डॉ. अरुणकुमारमण्डलः, शान्तिनिकेतनम्	569
8.	पर्यावरणम्	डॉ. नगेन्द्रनाथ झा, जम्मू	570
9.	वृष्टि-विज्ञान-परिशीलनम्	डॉ. विनोदानन्द झा, बिहार	570
10.	वैदिक साहित्ये (वाङ्मये) कृषिः	डॉ. सुदेश गौतम, शिमला	571
11.	याज्ञवल्क्यस्मृतौ आधुनिक चिकित्साशास्त्रे च शरीरसंरचनाविचारः	डॉ. राधागोविन्दत्रिपाठी, तिरुपतिः	572
12.	रघुवंशमहाकाव्ये पर्यावरण विचारः	डॉ. फूलकान्त मिश्रः, बिहार	572
13.	ज्योतिर्विज्ञाने भूजलपरिज्ञानम्	डॉ. मिथिलाप्रसाद त्रिपाठी, मध्यप्रदेश	573
14.	संस्कृते आरोग्य विज्ञानम्	डॉ. रामाधार द्विवेदी, मध्यप्रदेश	574
15.	वैदिक साहित्य के परिप्रेक्ष्य में नृत्य कला	डॉ. सुषमा देवी गुप्ता, जम्मू	574
16.	शुभाशुभफल प्राप्ति में रत्नों का योगदान	दीपाली खजूरिया, जम्मू	575

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

17.	मूर्च्छना पद्धति एवं मूर्च्छना वाद्य	डॉ. (सुश्री) सरिता निगम, कानपुर	576
18.	भारतीय सौन्दर्यशास्त्र और संगीत कला	डॉ. रीता तिवारी, बस्ती, उ०प्र०	577
19.	प्राचीन भारतीय दर्पण-विज्ञान	डॉ. शैलजा पाण्डेय, इलाहाबाद	578
20.	दुर्ग-संरचना प्राचीन भारत में राजा एवं प्रजा की सुरक्षा-जागरुकता के प्रतीक	विद्याधर सिंह, जम्मू	578
21.	कामविज्ञान (शास्त्र) का प्रयोजन	डॉ. श्री नारायण सिंह, वाराणसी	579
22.	नाट्यशास्त्र में वर्णित सांगीतिक तत्त्व (गीत, वाद्य एवं नृत्य)	डॉ. पुष्पलता अग्रवाल, इलाहाबाद	580
23.	आयुर्वेद में वात ज्वर	अर्चन परिहार, जम्मू	581
24.	आयुर्वेदिक सिद्धान्तों द्वारा मधुमेह-चिकित्सा	सीमा साहनी, जम्मू	582
25.	नारायण विलास में केन्सर	डॉ. शक्तिकुमार शर्मा 'शकुन्त', राजस्थान	582
26.	संङ्गीत के संस्कृत ग्रन्थों में वाद्य उपकरणों की परम्परा और विकास	डॉ. रेखा त्रिपाठी, इलाहाबाद	583
27.	कालिदास के ऋषि एक मूल्यांकन	सुश्री संगीता कुमारी दुमका, झारखंड	584
28.	यौगिक परम्परोक्त प्राणायाम एवं उसका चिकित्सकीय लाभ	अमर बाजपेयी, वाराणसी	585
29.	'मानवाधिकार' शिक्षा का महत्त्व	धनेश्वर पण्डित	586
30.	वृक्षारोपण एवं वास्तुचिन्तन	डॉ. शीला चौबीसा, जयपुर	587
31.	वास्तुविज्ञान का मूलस्रोत है वैदिक वाङ्मय	अमनकुमार शर्मा, जम्मू	588
32.	वास्तुशास्त्रीय पुरनिवेश: आधुनिक नगरस्थापत्य -हेतु दिशा निर्देश	प्रो. केदार नाथ शर्मा एवं विद्याधर सिंह (शोध छात्र) जम्मू	589
33.	संस्कृत साहित्य में स्त्रियों के साम्पत्तिक मानवाधिकार	डॉ. सुनीता जायसवाल, उत्तरप्रदेश	590
34.	संस्कृत ग्रन्थों में स्वप्नोल्लेखों की वैज्ञानिकता	डॉ. गोविन्द गन्धे, ग्वालियर	590
35.	सूर्य-स्तवन का भैषज्य मूल्यांकन	भोलेन्द्र पाण्डेय, जमशेदपुर	591
36.	वैदिक सामगान: शास्त्रीय संगीत का मूलाधार	डॉ. निशा पाठक, कानपुर	592
37.	भद्रवाही भाषा में उपलब्ध औषधि नामों का अध्ययन आयुर्वेद के परिप्रेक्ष्य में	डॉ. नंजला राठौर, जम्मू	593
38.	हृदय रोग, निदान और उपाय -आयुर्वेद की दृष्टि में	शीतल शर्मा, जम्मू	593
39.	वास्तुशास्त्रीय गृह-निर्माण में मुख्य-द्वार-निर्णय	मोहिन्द्र नाथ शर्मा, जम्मू	594
40.	वैदिक साहित्य में पर्यावरण चिन्तन: एक वैज्ञानिक दृष्टि	डॉ. नन्दन भार्गव, कोटा	595
41.	प्राचीन संस्कृत साहित्य में देवप्रासाद निर्माण के हेतु एवं प्रयोजन	मञ्जु देवी, जम्मू	596

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

42.	हिमाचल प्रदेश की संस्कृति में लोक-नृत्यों का साहित्यिक महत्त्व	डॉ. मुकेश कुमार शर्मा, शिमला	596
43.	भारतीय प्राचीनेतिहास के कालक्रम की समीक्षा	प्रो. डा. दामोदर झा, होशियारपुर	597
44.	राजस्थान में संकलित जैन चित्र संपदा (11 वी श. से 19 वी श. तक)	डॉ. (श्रीमती) कमला गर्ग, जयपुर	599
45.	स्वतन्त्र भारत की चित्रकला में बिम्ब-विधान	श्री योगेन्द्र गुप्ता, जयपुर	600
46.	कादम्बरी का वास्तुपरक विश्लेषण	राजेश कुमार रावत, ग्वालियर	601
47.	अथर्ववेदीय मनौवैज्ञानिक चिकित्सा	डॉ. दीनानाथ 'आचार्य', बिहार	601
48.	भारतीय चिकित्सा शास्त्रों में वानस्पतिक चिन्तन	डॉ. मीरा शर्मा एवं रश्मि शर्मा, आगरा	602
49.	भीतरगाँव व अहिच्छत्रा की मृण्मय कला	डॉ. रागिनी रॉय, आगरा	604
50.	मालविकाग्निमित्रम् में चौंसठ कलाएँ	डॉ. पुष्पा गुप्ता, दिल्ली	605
51.	कौटिल्य कालीन कृषि व्यवस्था एवं आज के परिपेक्ष्य में उसकी उपादेयता	डॉ. अवधेश राय, पटना	606
52.	कामसूत्र के अध्ययन का औचित्य	डॉ. राकेश कुमार, मुजफ्फरपुर	607
53.	नाट्यशास्त्र में निरूपित रंगशाला का गणितीय विधान	अरूण कुमार त्रिपाठी, इलाहाबाद	608
54.	महाकवि कालिदास के श्रव्य काव्यों में अपराध, दण्ड एवं न्याय : एक अध्ययन	प्रो. डॉ. महेश्वर प्रसाद सिंह, मुजफ्फरपुर	608
55.	कौटिलयकृत अर्थ शास्त्र का राजनीतिक विवेचन	डॉ. जीवानन्द झा, बिहार	609
56.	मनुष्य की अद्वैत प्रकृतिमें प्राणायाम की सार्थकता	डॉ. रमेश सिंह, जम्मू	610
57.	वेदों में पर्यावरण	रणजीत कुमार पाण्डेय, वाराणसी	611
58.	शुक्रनीति में न्याय ओर राज्य	श्रीमती नूतन वाला, बिहार	611
59.	वैदिक वाङ्मय में कृषि-विज्ञान	डॉ. रत्नेश कुमार झा एवं डॉ. रागिनी झा, बिहार	612
60.	हृदयनारायणदेव का सङ्गीतशास्त्र-विषयक मौलिक योगदान	सुमन लता श्रीवास्तव, जबलपुर	613
61.	वामनावतरणम् का नायक	गोपीचन्द्र शर्मा	614
62.	उपनिषदों में स्वप्न	डॉ. रजनी, मुजफ्फरपुर	614
63.	गुप्तकालीन भारतीय शिल्पकला में अभिव्यंजित कण्ठाभूषण	डॉ. शिवा धमेजा	615
64.	'समराङ्गण सूत्रधार में देवप्रसाद निर्माण एवं भूमिचयन'	बोरडे गंजू, जम्मू	615
65.	कालिदास की नाट्यभाषा	श्रीनिवास, मुजफ्फरपुर	617
66.	वैदिक साहित्य में अर्थ पुरूषार्थ	डॉ. बाल कृष्ण शर्मा, मुजफ्फरपुर	618
67.	नवजात का प्रथम भक्ष्य (गृह्यसूत्रों के परिप्रेक्ष्य में)	शिशुपाल, चण्डीगढ़	618

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

68.	महाभारत का युद्ध एवं आधुनिक रक्षा शस्त्र	राजीव कुमार त्रिपाठी, इलाहाबाद	619
69.	आयुर्वेद और स्वास्थ्य	जगदीश प्रसाद वैद्य, टाण्डा	620
70.	भास्कराचार्य–एक संक्षिप्त अनुशीलन	विपिन कुमार, लखनऊ	620
71.	संस्कृत रूपकों में स्वप्न	राहुल, वाराणसी	621
72.	वेदो में प्रतिफलित मानवाधिकार	विजय शंकर द्विवेदी, इलाहाबाद	622
73.	गीता–गणित कसौटी पर	डॉ. ए.बी. चन्द्रमौलि, सहारनपुर	623
74.	अजीर्णोपचार	देवेन्द्रा कुमारी शर्मा, जम्मू	623
75.	सामाजिक परिवर्तन में धर्म की भूमिका	अजय प्रताप सिंह, लखनऊ	624
76.	भारतीय राजनैतिक दर्शन में रवीन्द्र नाथ टैगोर का योगदान	विजय प्रताप सिंह, लखनऊ	624
77.	राज्यसृष्टि एवं राजनीतिक संस्थायें प्राचीन संदर्भमें	विपुर पचौरी, दिल्ली	625
78.	शुल्ब साहित्य में अङ्गुल प्रमाण–पत्र	डॉ. (श्रीमती) गीता त्रिपाठी, सुल्तानपुर	625
79.	पर्यावरण संरक्षण एवं वाल्मीकि रामायण	डॉ. भारतेन्दु द्विवेदी, ज्ञानपुर	626
80.	यौगिक परम्परोक्त प्राणयाम एवं उसका चिकित्सकीय लाभ	अमर वाजपेयी, वाराणसी	627
81.	जैन और वैदिक परंपरा में वनस्पतिविचार (इन्द्रियों के संदर्भ में)	डॉ. कौमुदी बालदोटा, पुणे	628
82.	संदेश काव्यों में शिल्प विधान	बालकृष्ण प्रजापति, म.प्र.	628
83.	वेदों में आयुर्वेद	कु. राधा चतुर्वेदी, लखनऊ	629
84.	प्राचीन एवं वर्तमान दण्ड व्यवस्था	डॉ. नीलम त्रिवेदी, कानपुर	629
85.	संस्कृत लेखन एवं शिक्षणकी आधुनिक समस्याऐं	डॉ. प्रभावती चौधरी, जोधपुर	630
86.	शेखावाटी के भित्तिचित्रों में जगदेव परमार : जीवन मूल्य के संदर्भ में	डॉ. पुष्पा दुल्लर, वनस्थली विद्यापीठ (राज॰)	632
87.	निसर्ग की विराट कला दीर्घा और ललित कलाएँ	डॉ. अन्नपुर्ण शुक्ला, वनस्थली विद्यापीठ (राज॰)	632
88.	नाथद्वारा शैली को कलात्मकता	किरन सरना, राजस्थान	633
89.	नालन्दा कला का विकास पूर्व एवं वर्तमान परिपेक्ष्य में	डॉ. चन्द्र भूषण मिश्र एवं प्रतिमा मिश्र, नालन्दा	634
90.	Rational Scientific Explanation of Selected Sanskrit Words with a special reference to Kalidasa	Dr. Krishna Dass, Chhattisgarh	635
91.	Plant Morphology in Vrikshayurveda	Dr. Nirmal Trikha, Delhi	636
92.	The Yamyottaraturiya Yantra (Instrument for Meridinal Wall) of Indian Observatory	Prof. Brijesh Kumar Shukla, Lucknow	637
93.	Mayamatam: A comprehensive Treatise on Housing, Architecture and Iconography	Dr. (Mrs.) Bidyut Lata Ray, Nayagarh	638

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

94.	In Quest of Antiquity of Leprosy : Early Indian Context	Dr. Sukla Das, Kolkata	638
95.	An Approach to Arts in Narayaniyam	Kamal Anand, Delhi	639
96.	Folk Culture and Festival in the Karpūramañjarī	Dr. Suchitra Roy Acharyya, Kolkata	640
97.	Concept of Gene in Ancient Sanskrit Literature	Prof. Ramnika Jalali, Jammu	640
98.	The Spy-system in Kauṭilya's State Craft	Kalyani Dash, Balasore (Orissa)	641
99.	Polo and Horse Culture in Manipur	Dr. M. Kirti Singh, Imphal, Manipur	642
100.	Sanskrit Matrimonial Terms, Their Adaptation in Bengali, Hindi and Oriya : A Study	Devaraj Panda, Puri (Orissa)	643
101.	Reservation in India : Why, for Whom, How Much and How Long?	Dr.Prasanta Kumar Mohanty, Orissa	643
102.	Hypertension (Uchraktachap) and its treatment in ayurveda	Dr. Nishu Raina, Jammu	644
103.	Some Essential Meterials for Construction Works in Ancient India	Dr. Nandita Bhattacharjee Goswami, Assam	645
104.	Forty Images of Mango-Blossoms in Kālidāsa	Prof. Sushma Kulshreshtha, Delhi Dr. Abha Kulshreshtha, Delhi	646
105.	Ecology in *Meghadūtam*	Dr. Rabiprasad Mishra, Puri	647
106.	Bāṇabhaṭṭa on Animal Life	Dr. Rajendra Kumar Sharma, Hoshiarpur	648
107.	The evolution and integration of 'Type' (During industrial revolution)	Ankan Garg, Jaipur	648
108.	Environmental Education for sustainable Development	Purnima, Patna	649
109.	Relevance of Kautilya's Arthshastra in Modern Age	Km. Manjulika Singh, Allahabad	650
110.	AIDS --Ayurvedic Aspect	Vaidya R.P. Bhide, Maharastra	651
111.	Eco-Religious Awareness Through Pilgrimage Literature	Dr. Krishna Murari Sharma, Hoshiarpur	652
112.	Some Aspects of Vedic Aeronautics	Ms. Paramba Shree Yogamaya, Orissa	653
113.	Pustak Vachana Kala in Sanskrit Literature	Dr. Deepak Kalia, Delhi	654
114.	Military use of plants and animals as depicted in Kautilya's *Arthaśāstra*	Dr. (Mrs.) Mukta Biswas, Gauhati	655
115.	The Elements of Greek Tragedy in Viswanatha's Plays	Dr. Namudri Janaki, Delhi	655
116.	The Impact of the Indian classics on Telugu Drama and Theatre	Dr. Ramavarapu Saratbau, Visakhapnam	656
117.	Family Planning in Ancient India	Depika Bhattacharya, Calcutta	657
118.	Conservation of Environment in Puranas	Dr. M. V. Praphulla, Bangalore	658

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

119.	Importance of Traditional and indigenous knowledge for health care in the era of IPR under WTO in India.	Dr. Raj Kumar Sen, Kolkata	659
120.	Status of Women in the society of Arthaśāstra	Rekha R., Kerala	659
121.	Embryology Depicted in Garuda Purna	Dr. V.K.Hampiholi, Kumta, Karnatka	660
122.	Socio-Economic status of medicinal plants in Atharvaveda	Smitha Sabu, Kerala	661
123.	स्वस्तिक-An ancient mystic-auspitious	Dr. Hari Shankar Pandey, Varanasi	661

SECTION - 14

SEAS — SOUTH EAST ASIAN STUDIES — 663-666

1.	Shaivism in South East Asia	Aditii Bajpai, Lucknow	665
2.	Sanskrit Studies in South-East Asia	Dr. Amar Singh, Kurukshetra	665

SECTION - 15

WAS — WEST ASIAN STUDIES — 667-670

1.	Arab Political Societies in 19th and early 20th Centuries	Dr. Faiyazul Haqq, Allahabad	669

SECTION - 16

MS — MODERN SANSKRIT — 671-756

1.	पावकप्रभा—परिचयः	डॉ. सी. ललिता राणी, तिरुपति [आं.प्र.]	673
2.	कविमार्गजुषां नवीनं दिग्दर्शनम्— ''गङ्गाजलं दूषितम्''	डॉ. बुद्धेश्वरषडङ्गी, तिरुपति (आं०प्र०)	673
3.	आधुनिकसंस्कृतोपन्यासक्षेत्रे नूतनं दिग्दर्शनम् ''तथापि वन्द्या मम मातृभूमिः''	डॉ. अजय कुमार नंदा, तिरुपति	674
4.	जननीकाव्यनिर्माता प्रोफेसर हरेकृष्ण शतपथी	अशोक कुमार होता, वरगटम, (ओडिशा)	675
5.	आचार्य मनुदेव भट्टाचार्यस्य अप्रतिमा काव्यवैशारदी	डॉ. मनुलता शर्मा, वाराणसी	675
6.	आख्यायिकाक्षेत्रे म०म० बालकृष्णमिश्रस्यावदानम्	डॉ. लक्ष्मीनाथ झा, दरभंगा बिहार	676
7.	अकबरी कालिदास-गोविन्दभट्टस्य काव्यानुशीलनम्	डॉ. कैलाश नाथ द्विवेदी, (औरैया) उ०प्र०	676
8.	त्रिपाठिशर्मणः संस्कृतकृतीनां विभिन्नदृष्ट्या मूल्यायनम्		677
9.	संस्कृतप्रचारस्य अनावश्यकता	गणेश थिटे, पुणे	678
10.	लोकभाषा संस्कृतम्	जयप्रकाश, इलाहाबाद	679
11.	'भारतजनताहम्' इत्यस्य एकं समीक्षणम्	डॉ. कृष्णमोहनपाण्डेय, जौनपुर	679
12.	कथासरित्सागरे दोहददुर्गतिः	ड.जयश्री चट्टोपाध्याय, कलिकातातः	680

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

13.	डॉ० रामकुमारशर्म्मविरचितस्य भरतचरितमहाकाव्यस्य समीक्षा	डॉ. सनन्दनकुमारत्रिपाठी, कांगड़ा	681
14.	आधुनिकसंस्कृतकविताया वैश्विकी जागरूकता	डॉ. जनार्दन प्रसाद पाण्डेय मणि, इलाहाबाद	681
15.	महाकविः दामोदरस्यवैशिष्ट्यम्	डॉ. रामचन्द्र शास्त्री, जम्मू	682
16.	साम्प्रतिकशिक्षापद्धतौ प्राचीनभारतीयशिक्षा-व्यवस्थायाः आवश्यकता	डॉ. सनतकुमाररथः, प. बंगाल	683
17.	'वत्सराजकृत 'रुक्मिणी-हरणे' वैदर्भी	डॉ. रामजियावन पाण्डेयः, टाँडा, (उ०प्र०)	683
18.	श्रीहर्षप्रभावितः कविसम्राट् उपेन्द्रभञ्जः	डॉ. सत्यनारायण आचार्यः, पुरी	684
19.	श्रीगौरकृष्णोदयकाव्यसमीक्षा	श्रीनृसिंहनाथगुरुः, पुरी (ओडिशा)	684
20.	स्वातन्त्र्यसंभव-महाकाव्ये कश्मीर-वर्णनम्	डॉ. भारतेन्द्र पाण्डेयः, मेरठ	685
21.	'रत्नमाला व्याकरणम्' एकं पर्यालोचनम्	श्रीनारायण चन्द्र शर्मा (बामुन्दी), असम	686
22.	संस्कृत-पत्रिकासु ''सम्भाषण-सन्देश'' मासिकपत्रिका समालोचनात्मकम् अध्ययनम्	डॉ. बृहस्पति मिश्रः, विलासपुर (हि०प्र०)	686
22A.	नाट्यरसविवेचने रसवसुमूर्त्तिकारस्य पाण्डित्यप्रगल्भः	डॉ. शशिकान्त द्विवेदी, कोलकाता	687
23.	स्तोत्रकाव्येषु दयाशतकस्य स्थानम्	डॉ. चक्रवर्ति रङ्गनाथन्, तिरुपतिः	687
24.	तौषी शतकम् पर गङ्गालहरी का प्रभावः	डॉ. दुर्गा जोशी, अमरेली	688
25.	सारङ्गारण्यस्य संस्कृत विदुषां योगदानम्	दीनबंधु मांझी, छपरा	688
26.	वर्त्तमानसमये संस्कृतमाध्यमेन संस्कृताध्यापनस्य औचित्यम्	डॉ. बैद्यनाथ मिश्रः, छपरा (बिहारः)	689
27.	डॉ. राजेन्द्र प्रसादस्य गीता गुरु पण्डित भरत मिश्रः	ज्ञानप्रकाश पाण्डेय, छपरा	689
28.	संस्कृताध्ययन का कीर्ति-ग्रन्थ-संस्कृतशतकम्	मस्तेता देवराज, शिमला	690
29.	प्रो. हरिदत्त शर्मा की कविता में छन्दोविधान	डॉ. विनोद कुमार गुप्त, नई टिहरी (टि०ग०)	691
30.	धीरोदात्त नायक महात्मा गान्धी	डॉ. कमल किशोर, जम्मू	691
31.	'नेहरूमहाकाव्यम्' पर एक काव्यशास्त्रीय एवं सौन्दर्यपरक दृष्टि	आचार्य डॉ. हेशचन्द्र शर्मा, भिलाईछत्तीसगढ़	692
32.	आधुनिक संस्कृत साहित्य-यात्रा वृत्तान्त के विशेष सन्दर्भ में	डॉ. शीतलचन्द्र शर्मा, छत्तीसगढ़	693
33.	आचार्य महावीर प्रसादशर्माकृत ऋतंवदा-काव्य में जीवन-मूल्य	डॉ. आर. आर. मलिङ्ग, हरियाणा	695
34.	प्रो. अशोक कुमार कालिया कृत ''सुधा भोजनम्'' में अलङ्कार	डॉ. शालिनी मिश्रा, लखनऊ	695
35.	उद्दाम लेखनी का शब्दचित्र–'भाति ते भारतम्'	डॉ. उमेश दत्त भट्ट, इलाहाबाद	696
36.	आधुनिक संस्कृत की विविध काव्य विधाएँ	डॉ. लालाशंकर गयावाल, राजस्थान	697
37.	राजस्थानीय संस्कृत कथाओं में सामाजिक समस्याओं का समाधान	सुश्री अर्चना मंगल, भरतपुर, राजस्थान	698

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

38.	बीसवीं शताब्दी के संस्कृत काव्यों में समाकालीन चेतना	डॉ. शान्ति जैन, आरा	698
39.	राजस्थानीय संस्कृत उपन्यास साहित्य	सुश्री सपना, भरतपुर, राजस्थान	699
40.	डॉ. बनमाली बिश्वाल की समसामयिक कविताएँ	श्रीमती कविता गयावाला, राजस्थान	700
41.	जीवन दर्शन और लोक संवेदना– डॉ. बनमाली बिश्वाल की कथाओं में	अर्चना तिवारी, फतेहपुर	701
42.	डॉ. रामजीठाकुर का कृतित्व परिचय	आचार्य सुनीला झा, उजान, दरभंगा	702
43.	आधुनिक संस्कृत कविता के शिल्प के बदलते आयाम	डॉ. हर्षदेव माधव, अहमदाबाद	703
44.	''सीमा'' में परस्परतन्त्रता एवं हृदयपरिवर्तन के स्वर	श्रीमती डॉ. पर्णम शर्मा, बिहार	703
45.	कतमेन दिग्तिभागेन गतः सजाल्भः	डॉ. रूधूबेन एम. पटेल, पालमपुर, बी.के.	704
46.	बकुलभूषणकृत संयुक्ता का सिंहपाल वृत्तांत और शाकुन्तला का धनमित्र प्रसंग एक तुलना	पटेल वैशाली जे., पालमपुर, बी.के.	704
47.	स्वरूपपरिचयोयोगः	डॉ. सतीरमण झा, बिहार	705
48.	कुमाऊँनी कवि गुमानी विरचित 'रामभक्तिमहिमा' (शतक काव्य) : एक अध्ययन	डॉ. लज्जा भट्ट, नैनीताल	706
49.	जम्मू नरेश रणवीर सिंह द्वारा संस्कृत का अभ्युत्थान	डॉ. रमा शर्मा, जम्मू	707
50.	ऋतुपर्णा की कविताओं की प्रसंगिकता आज के परिप्रेक्ष्य में	किशोरी लाल सिंह, इलाहाबाद	707
51.	संस्कृत-साहित्य में नारी अधिकारों की समीक्षा	डॉ. राजेश कुमारी मिश्रा (राजश्री), शिमला	708
52.	उपन्यास विधा के अन्तर्गत 'रयीशः'–सहसमीक्षा	कौशल कुमार तिवारी, कोटा	709
53.	डॉ. 'मणि' के गीत साहित्य का सामाजशास्त्रीय पक्ष	डॉ. मार्कण्डये प्रसाद पाण्डेय, उत्तरप्रदेश	709
54.	मणि जी की कृतियों में भगवद्भक्ति के स्वर	इन्दिरा पाण्डेय, इलाहाबाद	710
55.	जनार्दन 'मणि' विरचित 'नीराजना' का युगीन परिदृष्य	डॉ. शेषनारायण त्रिपाठी, उत्तरांचल	710
56.	आधुनिक काव्यशास्त्र तथा रीति-निरूपण परम्परा (सत्रहवीं अठारहवीं शताब्दी)	प्रतिमा त्रिपाठी, लखनऊ	711
57.	पुरन्ध्रीपञ्चकम् में नायिकामेनकावात्सल्यम् रूपक के विशेष सन्दर्भ में	गीतिका शर्मा, जम्मू	712
58.	राजस्थनीय संस्कृत ध्वनिरूपक परम्परा एवं प्रो. हरिराम आचार्य कृत 'पूर्वशाकुन्तलम्'	डॉ. (श्रीमती) सरिता भार्गव, कोटा	712
59.	आधुनिक संस्कृत नाटकों में स्वयंवर विवाह	परवीन बाला, जम्मू	713

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

60.	"तवी" नदी का भौगोलिक चित्रण "तौषशितकम्" मुक्तक काव्य के विशेष सन्दर्भ में	मधुबाला, जम्मू	714
61.	डुग्गर स्तुति महाकाव्य में अलंकार योजना	रेणूका सम्बयाल, जम्मू	715
62.	भारतीय संस्कृति में सुख का स्थान	हरि नारायण उपाध्याय, लखनऊ	715
63.	पण्डित रामजी ठाकुर की रचनाओं की समीक्षा-सारांश	सत्येन्द्र नाथ झा, मुजफ्फरपुर	717
64.	पण्डित मथुराप्रसाद दीक्षित के नाटकों में राष्ट्रीय भावना	शशी प्रभा, जम्मू	718
65.	उजान गाँव की सारस्वत सेवा	पिंकी कुमारी झा, मुजफ्फरपुर	718
66.	'भीष्मचरितम्' महाकाव्य में 'देवव्रत भीष्म'	डॉ. पूर्णिमा आचार्या, वाराणसी	719
67.	अभिनव नाटक सेतुबन्ध में राष्ट्रभावना	डॉ. अरुणा शर्मा, कुरुक्षेत्र	720
68.	गढ़वाल के संस्कृत कवि: और उनके काव्य	प्रो. जे. के. गोदियाल, उत्तरांचल	721
69.	डॉ. रामकिशोर मिश्र प्रणीत खण्ड काव्य बालचरितम : एक अवलोकन	डॉ. देवेन्द्र सिंह सोलंकी, मेरठ	722
70.	शूद्रक कालीन राजनीतिक स्थितियों	नरेश प्रसाद सिंह, पटना	723
71.	उन्नीस्वीं शताब्दी से पचाद्वर्ती काल के संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्यस्वरूप	पवन कुमार, इलाहाबाद	724
72.	पार्थचरितामृतम् में "कर्मयोग" भगवद्गीता के विशेष संदर्भ में	लक्ष्मीकान्त ओझा, दिल्ली	725
73.	प्रो. सुषमा कुलश्रेष्ठ-संस्कृत साहित्य को योगदान	डॉ. पुष्पा गुप्ता, दिल्ली	726
74.	पण्डित 'निरंकुश' का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व समीक्षण सारांश	श्रीमती प्रभा झा, मुजफ्फरपुर	727
75.	साहित्य वारिधि प्रो. कैलाशनाथ द्विवेदी का संस्कृत गद्य साहित्य-एक समीक्षा	गीताराम शर्मा, राजस्थान	728
76.	कालिदास के रूपकों का शिल्प विधान: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	आदित्य नाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर	729
77.	रघुकुल कथा वल्ली महाकाव्य का वस्तु वैभव	ज्योत्सना त्रिपाठी, सुल्तानपुर	730
78.	रघुकुल कथावल्ली महाकाव्य में स्त्री प्रशासन का ऐतिहासिक विश्लेषण	दीप्ति त्रिपाठी, वाराणसी	730
79.	वाल्मीकि आश्रम की सीता	निर्मला त्रिपाठी, बलरामपुर	731
80.	डॉ. राम किशोर मिश्र प्रणीत संस्कृत रूपकों में नारी–एक अध्ययन	डॉ. रुचि गुप्ता, बड़ौत	731
81.	राजस्थान के संस्कृत काव्यशास्त्रीय आचार्यो का समान्य परिचय	गोयल नूतन, राजस्थान	732

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

82.	डॉक्टर हरिनारायणदीक्षितविरचित 'राधाचरितम्'' एक समीक्षत्मक दृष्टि	डॉ, किरन टण्डन, नैनीताल	732
83.	मेघदूत में पर्यावरण की वैज्ञानिकता	साधना मिश्रा, लखनऊ	734
84.	सतीप्रथा का साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्य	डॉ. संजय कुमार, अरविन्द कमार, पटना	735
85.	मृगया: आधुनिकता की आम्रमञ्जरी	प्रो. डॉ. सी. बी. बालस, गुजरात	735
86.	कन्नड से हिन्दी में अनुदित काव्य: एक अनुशीलन	डॉ. भारती हिरेमठ	736
87.	महाभारत में वर्णित कथावस्तु के आलोक में वेणीसंहार की कथावस्तु कानाटकीय दृष्टि से मूल्यांकन	डॉ. श्रीमती मीना शुक्ला, राँची	736
88.	संस्कृत महाकाव्यों में रामकथा	डॉ. ओरंगजी दुबे, पटना	737
88A.	स्व. डॉ.ग.बा.पलसुढेज़ी का संस्कृत साहित्य को योगदान	आशा गुरजार, पुणे	738
89.	गजल संविधान पर 'मत्तवारणीं	डॉ. रामविनय सिंह, देहरादून	738
89A.	संस्कृत साहित्य में वर्णित दुर्योधन-एक व्यक्तित्त्व	अनुराधा सिंह, वाराणसी	739
90.	चम्पूरामायण में कलात्मक सौन्दर्य	श्रीमती नीलिमा चौधरी, कानपुर	739
91.	संस्कृत वाङ्मय में मूल्यशिक्षण	डॉ. शुचिता दलाल, नागपुर	740
92.	आधुनिक संस्कृत साहित्य में नियतकालिक साहित्य	कु. रुपालीनथमल चौधरी, अकोला(महाराष्ट्र)	741
93.	जनार्दन मणिप्रणीत-अबलासामर्थ्यम् नाटक में नारी-चेतना	रोशनी असवाल (उ०प्र०)	742
94.	शुकसन्देश में प्रकृति चित्रण	अनु खुल्लर, पटियाला	743
95.	Ashadhasya Prathamadivase : A Critical Appraisal	Dr. Pramod Bharatiya, Mussoorie	744
96.	Prabhananda's contribution to World Religion	Dr. Chandramouli S. Naikar, Dharwad	745
97.	Sentiment of love as reflected in Banamali Biswal's Sanskrit poem	Radha Raman Pandey, Allahabad	745
98.	Shrooyate Na Tu Drisryate / Kandhe par betha tha shap	Dr. Meera Kant, New Delhi	746
99.	Madhava-Yashh-Sarojam	Dr. Subhash Sharma, Jaipur	747
100.	Imagery in Ratnakantha's Ratnasataka	Prof. Ved Kumari Ghai, Jammu	748
101.	Poetology of Brahma-Vaivatra-Purāṇa	Arun Ranjan Mishra, Orissa	749
101.	The Ślokamālā of Pt. Bhabadev Bhagavati	Gokulendra Narayan Deva Goswami, Guwahati Assam	750
103.	Treatment of Ramakatha in Sri Sankardev's Nata	Dr. Junu Mahanta, Chabua, Assam	750

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

104.	Kalidas in Oriya Folk- play and Kalidas's possible Orissan Origin Synopsis	Prof. Dr. Prahlad Charan Mohanty, Gopalagan, Balasore	751
105.	Lord Jagannath in modern Sanskrit Literature	Dr. Chandra Bhushan Jha, Delhi	752
106.	Translation of Sanskrti Kavyas into Telgu : The problems with vacabulary	Prof. D.C. Reddy, Tirupati	752
107.	शेक्सपीयरशतकम् : An appraisal	Prof. C.V. Mehta, Petlad	753
108.	Brahmānanda Svāmi Śivayogi's Concept of Women Education	Jayanisha K, Kerala	754
109.	Admirations of Hanumantadas	Dr. Girish D. Akamanchi	755
110.	Marriage Principles of Maithila Brahmaṇas : A Scientific Analysis	Dr. Kalika Dutta Jha, Dar	755
111.	Contribution of Kerala to Stotra Literature in Sanskrit - A Brief Survey	Dr. S.Remadevi Amma, Kerala	756

SECTION - 17

MSS MANUSCRIPTOLOGY 757-770

1.	आन्ध्रप्रदेशीय संस्कृताभिलेखवाङ्मयविमर्शः	धूळिपाळ रामकृष्णः, विजयवाड़ा	759
2.	सादृश्यता के आधार पर शारदा एवं गुरुमुखी लिपि का अध्ययन	डॉ. संगीता शर्मा, जम्मू	759
3.	प्राचीन-दुर्लभ पाण्डुलिपि-एक अध्ययन ''राजगृहनिर्माणप्रकार''	पुरोहित प्रफुल्ल एम-, गुजरात	760
4.	Development of Bengali Script according to manuscript	Dr. Debi Mondal, Calcatta	760
5.	Preservation and Conservation of Palm-leaf Manuscripts in orissa	Dr. Medha Kumari, Puri, Orissa	761
6.	Develpment of manuscripts on Colophon and post Colophon	Dr. Balaram Mondal, Kolkata	762
7.	K.T. Pandurangi's Collection of Some Vedic Manuscripts : A Short Survey	Nabanarayan Bandyopadhyay, Kolkata	762
8.	Indigenous Methods & materials for Preservation of Manuscripts	Pradhan Dhirendor Ray, Puri	763
9.	Cataloguing of Manuscripts	Pooja Sood, Punjab	764
10.	Prayogaklṛpti of Śivaśroṇa	Prof. Braj Bihari Chaubey, Hoshiarpur	765
11.	Preventive Conservation of Manuscripts	A.R. Krishnakumar, Hoshiarpur	766
12.	A note on Cataloguing Problems of Manuscripts	Dr. Ramesh Chander, Hoshiarpur	767
13.	Problems in Editing Malyalam Manuscripts	Dr. P. Visalakshyy, Kerala	768
14.	A brief study of Skanda Swamini's 'Rkveda Bhasya' Manuscripts	H. Sadanandan Potti, Kerala	768

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

15.	A Study of Temple related Copper Plate records in plate Medieval South Kerala	Deepu J.S., Kerala	769
16.	The Pictorial Manuscripts in the ORI & Mss. Library Karyavottom	H.S. Potti, Trivandrum	770

SECTION - 18

EP EPICS & PURANAS 771-859

1.	रामायणकाले शिक्षाया: अवधारणा	श्री हरीशचन्द्र गुरुरानी, हरिद्वार (उत्तराञ्चल)	773
2.	रामायणे राष्ट्रियभावना	श्री प्रकाशचन्द्र जोशी, हरिद्वार (उत्तराञ्चल)	773
3.	अध्यात्मरामायणस्य दार्शनिकतत्वम्	पं. सीताराम दास शास्त्री, उडीसा	774
4.	स्त्रीधनम्	डॉ. सुनीता महान्ति, पुरी	774
5.	श्रीविष्णुसहस्त्रनामान्तर्गते दशप्रमुखनाम्नां व्युत्पत्ति-विवेचनम् (शाङ्करभाष्यस्य-आलोके)	कुमारी शिवानी, कुरुक्षेत्रम् (हरियाणा)	775
6.	महाभारतस्य तिथि:	डॉ. कृष्ण नारायण पाण्डेय, 'भरद्वाज'	776
7.	प्राचीनविवाहसंस्कारस्य वैज्ञानिकत्वम्	विक्रमकुमारराउत, पुणे	776
8.	दत्तकपुत्रग्रहणविधि:	श्रीजगमोहनमिश्र:, पुणे	777
9.	धर्मस्य निर्णयो ज्ञेयोमिथिला व्यवहारत:—सारांश:	डॉ. इन्द्र नाथ झा, मुजफ्फरपुर	777
10.	दुर्गासप्तशत्यां ज्योतिषतत्त्वम्	आचार्य गोविन्दराम शास्त्री, जम्मू	778
11.	धर्मशास्त्रे मीमांसान्यायानां सञ्चार:	डॉ. खगेश्वरमिश्र:, पुरी	779
12.	वैदिकयुगेधर्मस्य स्वरूपम्	गुणीता माड़वा, वाराणसी	779
13.	स्त्रीणाम् आपद्धर्म:	शशिनाथठाकुर:, वाराणसी (उ०प्र०)	780
14.	आदिकाव्य कथानकम्	तिवारी माध्वी, वाराणसी	780
15.	वर्तमान समय में नैतिक मूल्यों का क्षरण	डॉ. गीता शुक्ला, प्रतापगढ़ (उ०प्र०)	780
16.	रामायणकालीन अर्थव्यवस्था की आधुनिक सन्दर्भों में उपयोगिता	डॉ. श्रीमती मनोरमा गुप्ता, कानपुर	781
17.	पौराणिक साहित्य एवं आधुनिक भारत	डॉ. सुरेन्द्र प्रसाद यादव, कटिहार (बिहार)	782
18.	पुराणों में योग	डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा, जम्मू	782
19.	धर्मशास्त्र में विधवा का पुनर्विवाह	डॉ. शुकदेव भोइ, वाराणसी	783
20.	याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार प्रायश्चित्त व्यवस्था	डॉ. ममता शर्मा, जम्मू	783
21.	वाल्मीकीय रामायण में अन्तर्हित अन्तरेन्द्रिय बिम्ब	डॉ. गीता अग्रवाल, पूर्णिया (बिहार)	784
22.	श्रीमद् भागवत और प्रणवभागवतम् तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. कल्पना द्विवेदी	785
23.	रामायण में ध्वन्यात्मकता	डॉ. अर्चना कुमारी दुबे, राजस्थान	785
24.	वाल्मीकि रामायण में राजतन्त्र	डॉ. गीता परिहार, मुरादाबाद	786
25.	वाल्मीकि रामायण में शकुन-अपशकुन	डॉ. दिनेश कुमार शर्मा, डॉ. (श्रीमती) सोमवती शर्मा, एटा, उ०प्र०	787

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

26.	भुशुण्डि रामायण में वर्णित श्री राम की रास लीलाएँ	डॉ. चन्द्रप्रभा गंगवार, बरेली (उ०प्र०)	788
27.	सुन्दरकाण्ड की उपजीव्यता	डॉ. सिद्धार्थ शंकर सिंह, छपरा	789
28.	हिन्दू नीतिशास्त्र में अन्तर्निहित धर्माधर्म की संकल्पना, एक अवलोकन	घनश्याम भट्टः, दिल्ली	789
29.	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण और आधुनिक युद्ध के सिद्धान्त	मानस शरण तिवारी, इलाहाबाद (उ०प्र०)	790
30.	पुराणों में त्रिविध उत्पात विवेचन	पारस राम, जम्मू	790
31.	रामायण कालीन नारी की अवस्थिति— एक अनुशीलन दृष्टि	अवनीश कुमार, जम्मू	791
32.	धर्म की परिभाषा व स्वरूप	वेदवती द्विवेदी, कानपुर	792
33.	वाल्मीकि रामायण में कूटनीति	श्वेता गुप्ता, हरिद्वार	792
34.	वर्तमान में चार्वाक के नीति शास्त्रीय सिद्धांत की प्रासंगिकता	श्रीमती सीनी मुण्डा, राँची (झारखण्ड)	793
35.	रामायण में वर्णित नारी के संवैधानिक स्थान की प्रासङ्गिकता	डॉ. सन्ध्या, जम्मू	793
36.	महाभारत में धर्म के लक्षण : स्वरूप और महत्त्व	डॉ. प्रीति सागर, अल्मोड़ा, उत्तराञ्चल	794
37.	रामायण में जीव विज्ञान	डॉ. कनक लता दुबे, इलाहाबाद	795
38.	प्राचीन साहित्य में पुराणों का माहात्म्य	सुशान्त गौरव, भागलपुर (बिहार)	795
39.	जीवन में संस्कारों की आवश्यकता क्यों ?	सुरेन्द्र कुमार, जम्मू	796
40.	अग्नि पुराण में दान का विधान	सीता राम शर्मा, जम्मू	797
41.	वीर महाकाव्यों में सूर्य का स्वरूप	अखिलेश्वर प्रसाद सिंह, जमशेदपुर	797
42.	वैदिक यज्ञ और वाल्मीकि रामायण	डॉ. वत्सला उपाध्याय, राजस्थान	798
43.	पुराणों में सूर्य का रहस्य एवं महत्त्व	विद्यावती सिंह, जमशेदपुर (झारखण्ड)	799
44.	पौराणिक सन्दर्भ के आलोक में हर्षचरितम्	ब्रह्मानन्द साहु, राँची	799
45.	वाल्मीकि रामायण में शकुन	बबिता स्लाथिया, जम्मू	800
46.	विष्णुपुराण और भागवत के स्तोत्रों का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. रवीन्द्र पटेल, गुजरात	801
47.	अग्निपुराण के अनुसार दान का महत्त्व	डॉ. सुदेश कुमार शर्मा, जम्मू	802
47A.	महर्षि वाल्मीकि की मनोवैज्ञानिक अवधारणा	शुकदेव शर्मा, होशियारपुर, (पञ्जाब)	802
48.	वाल्मीकि-रामायण में यज्ञ विधान	नरेन्द्र कुमार, कादीपुर, सुलतानपुर	803
49.	महाभारत के उपाख्यानों का सांस्कृतिक परिशीलन	धनञ्जय सिंह, सुलतानपुर (उ०प्र०)	804
50.	विष्णुपुराण का साहित्यिक परिशीलन	ज्ञानप्रकाश दूबे, कादीपुर, सुलतानपुर	805
51.	हरिवंशपुराण का सांस्कृतिक परिशीलन : एक सामासिक विवेचन	वन्दना मिश्रा, कादीपुर, सुलतानपुर	805
52.	वाल्मीकि रामायण में वर्णित राजधर्म	राजभूषण, जम्मू	806

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

53.	स्मृतियों में पुत्र का महत्त्व तथा प्रकार	मीरा ठाकुर, होशियारपुर	807
54.	न्याय-व्यवस्था में साक्षी की भूमिका मनु स्मृति के सन्दर्भ में	इन्दुप्रकाश रैणा, जम्मू	808
55.	मत्स्यपुराणोक्त भवन-निर्माण हेतु भूमि-चयन विधि	प्रवीण कुमारी, होशियारपुर	809
56.	आध्यात्मिक जीवन का मर्म एवं समाज निर्माण में अध्यात्म का योगदान	डॉ. सुशील कुमारी वर्मा, कानपुर	810
57.	पुराणों में भुवनकोश की स्थिति	अनिल कुमार पोरवाल, लखनऊ (उ०प्र०)	810
58.	वाल्मीकि रामायण में वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था	श्री प्रकाश पाण्डये, राजस्थान	811
59.	अग्नि पुराण में व्यवहार शास्त्र एवं व्यवहार	डॉ. आशा शर्मा, भिण्ड (म०प्र०)	812
60.	रामायण में ध्वन्यात्मकता	डॉ. अर्चना कुमारी दुबे, राजस्थान	813
61.	रामायण में शक्तितत्व-निरूपण	सच्चिदानन्द पाठक, बेगूसराय (बिहार)	814
62.	मर्यादा पुरुषोत्तम राम से सम्बन्धित अनुत्तरित प्रश्न	डॉ. सम्पूर्णानन्द उपाध्याय, फैजाबाद (उ०प्र०)	815
63.	भारतीय चिन्तन परम्परा में नीति निर्धारक तत्व : एक सर्वेक्षण	डॉ. बी.एन. ओझा, पटना	816
64.	शिवपुराण का दार्शनिक महत्व	डॉ. कमला कुमारी उपाध्याय, औरंगाबाद (बिहार)	816
65.	पं० विश्वेश्वरनाथ रेऊ कृत विश्वेश्वरस्मृति - आधुनिकतम स्मृति ग्रन्थ	श्वेता सिंह, दयालबाग (आगरा)	818
66.	महाभारत में नैतिक मूल्यों की अवधारणा	डॉ. इन्दु तिवारी, उन्नाव	819
67.	'पार्श्वनाथ चरित' महाकाव्य में अभिव्यक्त सांस्कृतिक परिवेश	डॉ. हरि किशोर प्र० सिंह, मुजफ्फरपुर (बिहार)	819
68.	पुराणों में सोमनाथ - प्रभास क्षेत्र की महिमा	डॉ. सुनील निलाबर, राजकोट (गुजराज)	820
69.	महाभारतान्तर्गत विष्णुसहस्रनाम—एक अनुशीलन	डॉ. दिवांशु कुमार, छपरा (बिहार)	821
70.	रामायणीय आख्यानों के परिप्रेक्ष्य में स्त्री सम्मान	डॉ. रेणु बाला	822
71.	श्रीमद्भगवद्गीता में धर्मतत्व	डॉ. नलिनी शुक्ला, लखनऊ	823
72.	पुराणों में ऐतिहासिक तथ्य	नीरू रानी, चण्डीगढ़	824
73.	उपनिषदों का सन्देश और वर्तमान युग	सुशील कुमार, चण्डीगढ़	824
74.	पापाराधवृत्ति तथा गीता	शाम सुन्दर, चण्डीगढ़	825
75.	'विष्णु पुराण' में मायामोह का प्रसंग	आर.के. श्रीवास्तव, रायपुर (छत्तीसगढ़)	826
75A.	स्मृति साहित्य में प्रतिपादित ब्रह्मचर्याश्रम की प्रासंगिकता	डॉ. अतिया दानिश, सहारनपुर	826
76.	पुराणों में भौतिक भूगोल (ब्रह्म-वैवर्तपुराण के विशेष संदर्भ में)	डॉ. प्रणव देव, झालावाड़ (राज०)	828
77.	संस्कृत साहित्य में धर्म मीमांसा	डॉ. राजकृष्ण, यमुना नगर (हरियाणा)	829
78.	व्रतोपवास की जीवनोपयोगिता	डॉ. शिव शङ्कर, लखनऊ	829

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

79.	चित्रकूट में राम-द्वारा अनुज भरत का राजधर्मोद्बोधन	श्रीमती दुर्गादेवी पाण्डेय, टाँडा, (उ०प्र०)	830
80.	गरुड़ पुराण में पुरुषार्थ - चतुष्टय	डॉ. अल्पना शर्मा, टोंक बनस्थली (राजस्थान)	831
81.	वाल्मीकि रामायण की सूक्तियों का समीक्षात्मक अध्ययन	उमाकान्त राय, वाराणसी	831
82.	पुराण साहित्य को कश्मीर का योगदान	मुशर्रफ शफी, श्रीनगर	832
83.	हरिविलास महाकाव्य में रस	रत्नेश्वर मणि त्रिपाठी, लखनऊ	833
84.	राजनीतिक अवधारणाओं में मन्त्रणा और सेनापति-निरूपण	विभा कुमारी झा, पटना	833
85.	विश्वशिवशिल्पिनी 'औपनिषद् संस्कृति'	डॉ. जितेन्द्र शर्मा, चित्रकूट, सतना (म०प्र०)	834
86.	पौराणिक साहित्य एवं आधुनिक भारत	डॉ. सुरेन्द्र कुमार यादव, कटिहार (बिहार)	835
87.	वाल्मीकीय रामायण में अन्तर्हित अन्तरेन्द्रिय बिम्ब	डॉ. गीता अग्रवाल, पूर्णिया (बिहार)	835
88.	रामायणकालीन अर्थव्यवस्था की आधुनिक सन्दर्भों में उपयोगिता	डॉ. श्रीमती मनोरमा गुप्ता, स्वरूपनगर कानपुर	836
89.	महाभारत के वनपर्व में वर्णित आख्यानों में प्रतिपादित राजनैतिक स्थिति	डॉ. कु. मञ्जुल माथुर	837
90.	वाल्मीकि द्वारा निरूपित सीता चरित्र	डॉ. अभिमन्यु सिंह, लखनऊ	837
91.	भट्ट लक्ष्मीधर विरचित ''चक्रपाणिविजय'' महाकाव्य में प्रकृति वर्णन	अनुराधा जायसवाल, लखनऊ	838
92.	The Bhagavat-Gītā---A New Scientific Approach	Dr. Parvati Banerjee, Varanasi	839
93.	The Tragedy of Kunti	Dr. Hemlata Bittharia, Gwalior	839
94.	Valmiki--Re-interpreted	Dr. P. Laila, Trivandrum	840
95.	Sapta Mātṛkā-s: Fictions and Facts	Dr. Madhusudan Mishra	842
96.	Humānism in the Mahābhārata	Shiuli Ghose, Birbhum (W.B)	842
97.	Disc of Kṛṣṇa in the Great Bhārata War	Dr. Gopal Krishna Dash, Orissa	843
98.	Contribution of Maharishi Bharadwaj in World-wide Aviation Development	Dr. Pranav Sharma, Pilibhit (U.P.)	844
99.	The Spiritual Position of Women in the Manusmrti-A genral Survey	Dr. Mrs. V. Suparna, Madurai	845
100.	Rama the Ideal Idol of Valmiki	Pandit Padmanav Tripathy, Cuttack	845
101.	Smārttaprāyaścittasamgraha-An Analysis	Dr. K.V.VAsudevan, Guruvayoor	846
102.	Bhartrihari's Renunciation	SVR Murthy, Puri	847
103.	Human Values in Kathopaniṣad	Managayatri Rath, Bhubaneswar	848
104.	Environmental Awareness in the Rāmāyaṇa	Dr. Sarat Chandra Prida, Orissa	849
105.	Culture During the Period of the Epics	Dr. Usha Galay, Agra	850
106.	Karna As a Hero	Dr. N. Kumary Lekha, Tiruvananthapuram	851

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

107.	The Ramayana -An Ethical Code for Indian Society	Prof. D. Narasimha Reddy, Tirupati	852
108.	Keralaite Sanskrit Commentaries on Bhāgavata	Vijay Kumar M., Kalady	852
109.	Bhāgavata Traditions in Kerala Theatre	Damodharan. P.M., Kerala	853
110.	Traditional Wisdom of Environmental Protection in the Rāmāyana	Prof. Ramesh C. Sharma, Srinagar	854
111.	Pancamahāpātaka-s as seen in the Prāya-ścittasamuccaya of Trilocanaśivacārya	Dr. R. Sathyanarayanan, Pondicherry	855
112.	Draupadi Re-Created	M.N. Shylaja, Bangalore	855
113.	Administrative Set-up as Depicted in Vālmiki Ramayanā	Kunal Mehta, Jalandhar	856
114.	Prakṛti in the Purāṇas : A Study	Dr. Hiran Sarma, Assam	857
116.	Persian Poetry in India and Germany	Zulfikar Ali, JNU	858
117.	Humānism in the Mahābhārata	Shiuli Ghosh, Birbhum	858
118.	Culture During the Period of the Epics	Dr. Usha Galav, U.P.	859

SECTION - 19

SC SANSKRIT & COMPUTER 861-869

1.	संस्कृतपरम्परायां कम्प्यूटरविज्ञाने च स्मरणशक्तिः	डॉ. खगेन्द्र पात्रः, राउरकेला (ओडिया)	863
2.	कृत्रिम बुद्धिमत्ता के संसार में संस्कृत की उपादेयता	डॉ. इन्द्रारानी, फिरोजाबाद (उ०प्र)	863
3.	कंप्यूटर पर देवनागरी लिपिमें कार्य करने की समस्या	डॉ. शिवदेव सिंह मन्हास, जम्मू	864
4.	अनुवृत्ति-एक संगणकीय पद्धति	योगेश्वर शुक्ल, भोपाल	865
5.	संस्कृत की उपयोगिता : सङ्गणक की दृष्टि से	प्रज्ञा यादव, लखनऊ	865
6.	Sanskrit suits best to the computer : A retrospect and prospect	Banamali Biswal, Allahabad	866
7.	Concept of Memory power in Sanskrit Tradition and Computer Science-A Study	Dr. Khagendra Patra, Rourkela, Orissa	867
8.	Vedas and Computers	Narottam Mishra, Darbhanga, Bihar	868

SECTION - 20

IA & P INDIAN AESTHETICS AND POETICS 871-912

1.	काव्ये हास्यरसस्यावस्थितिः	सन्तोष कुमार पाण्डेय, उत्तराञ्चल	873
2.	रसकल्पद्रुमे शान्तरसः	डॉ. (श्रीमती) कादम्बिनी दाशः, भुवनेश्वरः	874
3.	आचार्योद्भटप्रतिपादितं काव्यदोषविवेचनम्	डॉ. (श्रीमती) प्रीति सिनहा, लखनऊ	874
4.	लोकभाषा संस्कृतम्		875
5.	रसस्य प्रत्येयता-प्रतिपादकस्थले काव्यप्रकाश-स्याधुनिकव्याख्यातृणां प्रमादः	डॉ. विजयपालशास्त्री, जयपुर (राजस्थान)	875

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

6.	काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्	डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी, वाराणसी	877
7.	उत्कर्षहेतवः प्रोक्ता गुणालङ्काररीतयः-- आलोचनमेकम्	डॉ. खगेन्द्रनाथ देव शर्मा, बरपेटा (असम)	877
8.	काव्ये रसस्य शाब्दवोधविषयताविमर्शः	मृदुला राय, शान्तिनिकेतनम्, (बंगाल)	878
9.	संस्कृतकाव्यशास्त्रेषु गुणतत्त्वविमर्शः	श्रीयुक्त गिरिजाशंकर पतिः, मयूरभञ्जः	878
10.	काव्यशास्त्रीयलोकचिन्तनम्	डॉ. बालकृष्णशर्मा, ग्वालियर	879
11.	गुणसङ्घटनासम्बन्धविमर्शः	डॉ. श्रीनिवास ओझा, वाराणसी	880
12.	भारतीयपाश्चात्ययोः काव्यसिद्धान्तेषु साम्यवैषम्यञ्च	अरुणेश्वर झा, कपिस्थल	880
13.	चमत्कारतत्त्वं चमत्कारसम्प्रदायश्च	प्रो. रामप्रतापः पूर्वाचार्यः, जम्मू	881
14.	भारतीय-सौन्दर्यशास्त्र-काव्यशास्त्र-समीक्षणम्	प्रो. हरिदत्त शर्मा, इलाहाबाद	882
15.	गीतगिरीशम् : एक परिचय	डॉ. शालिमा तबस्सुम, अल्मोड़ा	883
16.	रस स्वरूप विमर्श	गोविन्द कुमार मिश्र, वाराणसी	884
17.	सितारों के आगे यह कैसा जहान् है	जितेन्द्र महाजन, पंजाब	885
18.	आनन्दवर्धनकृत औचित्य-विचार	कु. आभा शुक्ला, लखनऊ	886
19.	काव्य का स्वरूप एवं आनन्दवर्धन	डॉ. दीपा अग्रवाल, इलाहाबाद	887
20.	काव्य हेतु : प्राचीन व अर्वाचीन दृष्टि डॉ. ब्रह्मानन्द शर्मा के परिप्रेक्ष्य में	डॉ. डॉली जैन, राजस्थान	888
21.	मधुपर्णी में लालित्य विधान	डॉ. सुशीलकुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु', सुलतानपुर	889
22.	लहरीदशकम् में उपमा अलंकार विषयक सौन्दर्य विधान	समीर कुमार पाण्डेय, सुल्तानपुर	889
23.	पंचकुल्या में गुण-विधान	डॉ. बीना सिंह, गोण्डा	890
24.	रघुवंश में करुण रस : एक विवेचनापरक समीक्षा	सुनील कुमार विश्वकर्मा, इलाहाबाद	891
25.	राजशेखरकृत काव्यमीमांसामें कवि शिक्षण परम्परा	अनीता विश्वकर्मा, लखनऊ	892
26.	''मधुच्छन्दा'' गीतिकाव्य	मधु शर्मा, कोटा	892
27.	श्लेषालङ्कार तथा अभिधामूलक ध्वनिः	रितु बाला	893
28.	पण्डितराज जगन्नाथ की औचित्य दृष्टि	वेद प्रकाश डिंडोरिया, होशियारपुर	894
29.	वाक्य का लक्षण	राजेन्द्र कुमार वर्मा, होशियारपुर	894
30.	मुक्तक-काव्य एवं गीति-काव्य : तुलनात्मक स्वरूप	डॉ० ताराकान्त शुक्ल, झाड़खण्ड	895
31.	कालिदासीय विशेषण : औचित्य-विमर्श	डॉ. शशिकान्त राय, चण्डीगढ़	895
32.	मम्मटकाव्यलक्षणाक्षेपनिराकरणम्	प्रो० रहसविहारी द्विवेदी	896
33.	काव्यात्मा रस पुनरावलोकन	अरविन्द कुमार द्विवेदी, चंडीगढ़	897
34.	20वीं शताब्दी के कतिपय काव्यशास्त्रियों की काव्यप्रयोजन विषयक मीमांसा	राजमङ्गल यादव, दिल्ली	897
35.	आनन्दवर्धन कृत औचित्य विचार	आभा शुक्ला, लखनऊ	898
36.	संस्कृतसाहित्यशास्त्र में चमत्कारतत्त्व	लीना केशवानी, काशी	899

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

37.	ध्वनि सिद्धान्त की वर्तमान प्रासंगिकता	डॉ. ज़मीरपाल कौर, परिमाला	899
38.	पूर्वराग : औचित्य और उपादेयता	डॉ. ए. के. दीक्षित, उन्नाव	900
39.	डोगरी महाकाव्य में अलंकार योजना	प्रो. अर्चना केसर, जम्मू	901
40.	ध्वन्यालोक के आलोक में अन्य सम्प्रदाय	डॉ. श्रद्धा सिंह, भुसावर	902
41.	संस्कृत काव्यशास्त्र को महर्षि वाल्मीकि का योगदान	प्रो. रविन्दर कौर, पटियाला	902
42.	Literary Contributions of Venidutta Jha	Dr. H.P. Varma, Patna	903
43.	The role of language in literary aesthetic delight: A Comparative Study of Indian and Western thoughts	Dr. (Mrs.) A.R. Tripathi, Lucknow	904
44.	Shaḍakshara's Poetic Beauty	Prof. Jaya G. Dandavatimath, Dharwad	905
45.	Treatment of Lakṣaṇā in the text of Sāhityasāra	Dr. Jayanti Tripathi, Poona	905
46.	Vāmana's Purposes of Poetry-A Review	Prof. K.V. Venkateswara Rao	906
47.	Poetology of Brahma-Vaivatra-Purāṇa	Arun Ranjan Mishra, Orissa	906
48.	Rasa Theory & Health Care: A Medical Approach to poetics	Dr. Khagendra Patra, Orissa	907
49.	A Note on Bharata's treatment of metres	Goutam Choudhury, Assam	908
50.	The Unpublished One-Act Plays of Orissa based on devotion towards Lord Viṣṇu	Dr. Trinath Hota, Orissa	908
51.	Erotic Elements in Goṣṭhīrūpakas of Orissa	Bijayalaxmi Acharya, Bhubaneswar	909
52.	Rasasutra and Objective : Correlative	Dr. H.Sudharmany, Kerala	910
53.	Aucity	Vijayakumari P.V., Kerala	910
54.	Kumarasambhavam Canto and Acarya Mommata's followed Judgement	Dr. Vijay Pandya, Ahmedabad	911
55.	Kaṅsamaya and Bhavabhūti	Dr. Ajay Kumar Jha, Delhi	911

SECTION - 21

KS KASHMIR SHAIVA DARSHAN 913-940

1.	न सन्ति याथार्थ्यविद: पिनाकिन:	श्रीमती तारा पाण्डेय:, राँची	915
2.	शक्ति विज्ञान	डॉ. जागीर सिंह, जम्मू वि०वि०, जम्मू	915
3.	तांत्रिक शिवाद्वयवाद का समग्रतावादी चिन्तन और आधुनिक सन्दर्भ	डॉ. मीरा रस्तोगी, लखनऊ	916
4.	सिद्ध सम्प्रदाय में साधना का स्वरूप	डॉ. (श्रीमती) लक्ष्मी शुक्ला, ग्वालियर	917
5.	स्वात्मस्वरूप की प्राप्ति ही भैरवावाप्ति है-एक दृष्टि	डॉ. रामबहादुर शुक्ल, जम्मू	918
6.	दशमहाविद्या का स्वरूप—विवेचन	डॉ. जगन्नाथ झा, वेगूसराय	919
7.	कश्मीर शैव दर्शन में योग विवेचन	जिया लाल, जम्मू	919
8.	श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानकर्मसमुच्चय सिद्धान्त	डॉ. सी.के. झा, अम्बाला, हरियाणा	920

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

9.	काश्मीर शैव दर्शन	बलदेव चंद, जम्मू	921
10.	योगतन्त्र की दृष्टि में कुण्डली (चक्र) तत्त्व विमर्श	डॉ. रोहित पाण्डेय, वाराणसी	921
11.	योगतन्त्रागमदृष्ट्या मुद्रा स्वरूप विमर्श:	डॉ. राघवेन्द्र जी दूबे, वाराणसी	922
12.	काश्मीर शैवागम में मातृकाविलास	डॉ. ओम कुमार, जम्मू	923
13.	काश्मीर शैव दर्शन एवं सांख्य दर्शन में तत्त्वों का विवेचन	डॉ. धमेन्द्र शर्मा ''पुन्छी''	924
14.	काश्मीरी-शैव-दार्शनिक परम्परा में आचार्य योगराज का योगदान	डॉ. क्षमा शुक्ला, इलाहाबाद	924
15.	प्रत्यभिज्ञादर्शन में बन्ध और मोक्ष	डॉ. वीना कुमारी, जम्मू	925
16.	काश्मीर शैव दर्शन के प्रमुख ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार— एक सर्वेक्षण	सुरेश बाला, जम्मू	926
17.	वामन पुराण में वर्णित शैव सम्प्रदाय	पूनम शर्मा, जम्मू	926
18.	पर्यन्त-पञ्चाशिका में प्रतिपादित मत विषयक आलोचन	विनोद, जम्मू	927
19.	वीरशैवागमों का विकास	विनय प्रकाश मिश्र, सुलतानपुर	927
20.	काश्मीर शारदापीठ एवं द्वारका शारदापीठ शांकरमत विवेचन	डॉ. रमेश चन्द्र मुरारी, द्वारका	928
21.	शैव धर्म	डॉ. करतार चन्द शर्मा, जम्मू	929
22.	काश्मीर शैव दर्शन के अनुसार तत्त्वों का वर्गीकरण	गीतारानी, जम्मू	930
23.	संस्कृत साहित्य में ''अर्द्धनारीश्वर''	सुश्री रश्मि शाक्या, सागर	931
24.	प्रतीक नाटक अमृतोदय में आगमिक सिद्धान्त	डॉ. नन्द किशोर चौधरी, दरभंगा	932
25.	वसुगुप्त के शिवसूत्रों की समीक्षा	डॉ. वाहिद नसरू, श्रीनगर	933
26.	स्पन्दवाद और सृष्टिविज्ञान	डॉ. देवेन्द्र सिंह, इलाहाबाद	934
27.	The Mystical Experience According to Abhinavagupta	Dr. Narasingha Ch. Panda, Varanasi	935
28.	Applied Aspects of Āgamic Philosophy	Dr. Shitala Parasad Pandey, Varanasi	935
29.	Rudra And Kāma	Dr. T. Devarajan, Trivandrum	936
30.	Tantric Texts of Orissa	Dr. Balaram Panda, Orissa	936
31.	Rudra in the Vedic Rituals	Bani Bhattacharyya, Kolkata	937
32.	Kashmir Saivism in the Kathāsaritsāgara	Dr. (Mrs.) Nirmal Trikha, Delhi	937
33.	Bhāvapuṣpa a Saiddhāntika-concept of worship : A Study	Dr. Nibedita Rout, Pondicherry	938
34.	A General Introduction of Siddha Philosophy	Swami Dharmananda Saraswathi, Kerala	939
35.	Svarṇagrāma-Vāsudeva and his commentaries on Tantrasārasaṅgraha and Prayogasāra	S.A.S. Sarma, EFEO Pondicherry	940

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CONTENTS

COMPLIMENTRY SUMMARIES 941-960

1.	V	वैदिकवर्णव्यवस्थाया:मूलाधार:	डॉ. राजेश्वरमिश्र:, कुरुक्षेत्रम्	943
2.	V	गौतम-धर्मसूत्र में वर्णित राजधर्म (मनुस्मृति के आलोक में)	वेदप्रकाश, कुरुक्षेत्र	943
3.	V	वैदिक संहिताओं में गो-महिमा	डॉ. कृष्णा देवी, कुरुक्षेत्र	944
4.	V	सरस्वती का ऋग्वेदीय आधार	सदानन्द, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)	944
5.	V	वैदिक उषासानक्ता का स्वरूप		945
6.	V	वेदे रुद्र पदार्थस्य चर्चा	डॉ. शिव प्रसाद अग्निहोत्री, कर्णपुरम्	946
7.	V	ऋग्वैदिक उषस् सूक्तों का समीक्षात्मक अध्ययन	कु. तृप्ति गोस्वामी, पीलीभीत (यू०पी०)	947
8.	V	Vedic Idea : Peace And Harmony in Contemporary Crisis	Dr. Vimla Devi, Zamania	948
9.	CS	कालिदास की सूक्तियों में राजधर्म	कमलेश, कुरुक्षेत्र	948
10.	CS	महाकाव्यों की परम्परा और विकास-कुमारसम्भव के विशेष सन्दर्भ में	प्रो. वेदप्रकाश उपाध्याय, चण्डीगढ़	949
11.	CS	माघ में पदपूर्वार्ध वक्रता	डॉ. जयप्रकाश नारायण, लखनऊ	950
12.	P&B	धर्मकीर्ति के अनुसार स्वभाव हेतु विचार	देवीसिंह, कुरुक्षेत्र	950
13.	P&B	आर्यदेव कृत चतु:शतक में शून्यवाद की अवधारणा		951
14.	P&B	बौद्ध दर्शन में अनात्मवाद का स्वरूप (मिलिन्दपञ्ह के विशेष परिप्रेक्ष्य)	मञ्जु बाला, कुरुक्षेत्र	951
15.	P&B	सुवर्णप्रभाससूत्र में षट्पारमिताएँ		952
16.	PJ	Concept of Matter	Ramashish Prasad Singh, Begusarai	953
17.	PJ	Indian Marriage as Depicted in Jain Literture	Dr. Vimal A. Bafana, Pune	954
18.	PJ	जैन दर्शन में अर्थक्रियाकारित्व	डॉ. दामोदर शास्त्री, नई दिल्ली	955
19.	PJ	मानवाधिकार तथा जैन दर्शन	कु० सीमा जैन, जयपुर (राज०)	956
20.	H	प्राचीन भारत में शूद्र नारी	डॉ. पाण्डेय अजय शंकर, पटना	957
21.	H	Antiquity of the term 'mandir' and its synonyms	Dr. Samarendra Narayan Arya, Patna	957
22.	H	जैनराजतरङ्गिणी में वर्णित कश्मीर की ऐतिहासिक व राजनैतिक अवस्था	डॉ. अरुणा शर्मा, जम्मू	958
23.	H	सीतामहीमण्डलस्य धरहरवाग्राम:	प्रो. राधारमण ठाकुर:, देवघरस्य	959
24.	IL	संस्कृत व्याकरण में लिङ्ग विचार		959
25.	IL	पदविभाजन में उपसर्गों का स्थान	सुनीता तक्षक, कुरुक्षेत्र	960
26.	IL	श्री विष्णुसहस्रनामान्तर्गते दशप्रमुखनाम्नां व्युत्पत्तिविवेचनम्	कुमारी शिवानी, कुरुक्षेत्रम्	960
27.	IL	निरुक्त के प्रथम अध्याय में वर्णित कृदन्त		961

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

28.	IL	बांदा जनपद की बोली में अवशिष्ट संस्कृत भाषा	डॉ. रामप्रकाश गुप्त, बांदा (उ०प्र०)	961
29.	PR	The Influence of Sanskrit on Comparative Philology and Linguistics	Dr. A.P. Francis, IIAS Shimla HP	962
30.	PR	वाधूल स्मृति में प्रतिपादित नित्यं एवं नैमित्तिक कर्म एक विवेचन		962
31.	PR	गौडपाद कृत माण्डूक्यकारिका के अन्तर्गत 'अजातवाद' का स्वरूप	सीमा रानी, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)	963
32.	PR	कर्म एवं पुनर्जन्म की धर्मशास्त्रीय अवधारणा		963
33.	PR	Yoga based on the Experiential knowledge in Bhagavad Gītā		964
34.	PR	अग्निहोत्रकर्म्मण: सोपपत्ति निरूपणम्	प्रो. लक्ष्मीश्वर झा वेदविभागे, नई दिल्ली	965
35.	PR	Impact of Indian Philosophy on William Cowper	Dr. D.N. Pandey, Banasthali, Rajasthan	965
36.	PR	The Concept of Ultimate Reality in the Upaniṣads	Bagmita Sandilya	966
37.	PR	Liberation : A meeting point of Sankara and Aquinas	Dr. A.P. Francis, IIAS, Shimla HP	967
38.	TS&FA	कुमाऊँनी लोककला (रंग एवं रंगयोजना)	डॉ. कृष्णा बैराठी, अल्मोड़ा	967
39.	TS&FA	A Glimps of the Golden History of Indian Medical Scientists	Dr. Kanwal K. Sharma, Meerut (U.P.)	968
40.	TS&FA	वास्तु एवं धर्म	तिलकराज शर्मा, जम्मू	969
41.	MS	आसफविलास - एक अध्ययन	प्रो. डॉ. आर.पी. मेहता, अहमदाबाद	970
42.	MSS	शारदालिपि का उद्भव एवं विकास	कु० वर्षा जैन, सागर (म०प्र०)	970
43.	EP	Draupadi Re-created	M.N. Shylaja, Bangalore	971
44.	EP	रामायणयुगीन नारी के दायाधिकार	डॉ. मंजू शर्मा, जम्मू	972
45.	EP	स्कन्दपुराणे स्त्रीविमर्श:	हेमा देवी, छपरा	972
46.	EP	महापुराण में उल्लेखित वस्त्राभूषण	डॉ. सुदर्शन मिश्र, आरा (बिहार)	973
47.	EP	रामायणयुगीन नारी के दायाधिकार	मञ्जुशर्मा, जम्मू	974
48.	EP	Man - Woman relationship as depicted in the epics	Tapati Mukerjee, Kolkata	974
49.	EP	Treatment of Rāmakathā in Śri Sankaradeva's Nāta	Dr. Juhu Mahanta, Assam	975
50.	EP	स्कन्दपुराणे स्त्रीविमर्श:,	हेमादेवी, छपरा	976
51.	KS	देवी कालोत्तरागम से मुक्ति	दीपा गुप्ता, लखनऊ	976
52.	KS	कश्मीर शैव दर्शन में शक्तितत्त्व की अवधारणा	डॉ. श्रद्धा सिंह, भुसावर	977
53.	KS	Kali Myth in Southern Keraia	Dr. Sheeja R.S., Kerala	978

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 1

VEDIC

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-1

हस्तिमल्लनाट्येषु वैदिकपरम्पराभिज्ञानम्

डॉ. विश्राम तिवारी, दरभंगा, बिहार

हस्तिमल्लाभिधोयं महाकविर्वत्सगोत्रोत्पन्नविप्रावतंसस्य परमविदुषो गोविन्दभट्टस्य तनुजात आसीत्। गोविन्दभट्टो हि स्वसमयस्य विश्रुततत्त्वदर्शी विद्वान् आसीत्, यो हि स्वामिनः समन्तभद्रस्य हृदयग्राहि अनन्यपवित्रं देवागमस्तोत्रं बहुशः श्रावं श्रावं मुदा मिथ्यात्वञ्चापहाय जैनमतमेवाङ्गीचकार। स्वर्णयक्षीदेव्याः समाराधनजातप्रसादप्रभावात् खल्वमुना विद्याविशारदेन षट्पुत्ररत्नानि समधिगतानि। षडेव भ्रातरः सम्यक्सरस्वतीसमुपासकाः कृतिनः कृतिमन्तश्चाभूवन्। तत्रापि पञ्चमोऽयं तत्तनूजो महाकविर्बभूव। पितृपरम्परातोऽयमपि जैनशासनभक्तिप्रियो जातः। कथमस्य नाम हस्तिमल्लो जातमितिविषये स्वयमेवाऽमुना स्वकृतविक्रान्तकौरवस्य प्रथमाङ्कपरिमाणभागे समुक्तं यत् 'कश्चिन्मदत्तो गजो युद्धेऽनेन स्वभुजबलेन सुवशीकृतः। ततो मुदान्वितेन पाण्ड्यदेशनरेशेन सहर्षममुष्मै इयं संज्ञा प्रादायि, विधिवत्पुरष्कृतश्च। मयाऽत्र निबन्धे जैनमतपरकस्थलानि सङ्क्षेपतः संकेतितानि विधास्यन्ते। अतःपरमत्रैव प्रसङ्गे कविवरस्य पूर्वसंस्कारबलाद् विशेषरुचिकराद्वा समुद्धारितानां वैदिकसंस्कृत्यनुसारिप्रसङ्गानां गवेषणापरकेण मया तत्त्वोपनिबन्धनं विधास्यते। दिङ्मात्रं यथा—'मैथिलीकल्याणे' वसन्तपूजायाः वर्णनं सीतासख्या विनीतया चर्च्यते। 'असौ दग्धोऽनङ्गः' इत्यादि पद्ये कविवरेण कामारिणा कामदेवस्य दहनरूपा वैदिकसंस्कृतेः विश्रुतिः स्मारिताऽस्ति। अस्य नाटकेषु नगराणां, पात्राणां, वंशानामपि नामानि वैदिकसंस्कृत्यनुकूलनानि सन्तीति परिशीलनपूर्वकं परिष्कृतं विधास्यते। सीतायाः स्वयंवरे भगवतः शङ्करस्य पिनाकाख्यं धनुः स्थापितमासीदिति वृत्तान्तन्नैव प्रच्छन्नमस्ति। एवमनेकानि स्थलानि ईदृशानि सन्ति, यानि वलोक्य कविवरहस्तिमल्लस्य वैदिकसंस्कृत्यभिज्ञत्वं सिद्धयति।

❋

V-2

वेदेषु प्रबन्धनचिन्तनम्

प्रो. महावीरः अग्रवालः, हरिद्वारम्, उत्तराञ्चलम्

वेदेषु सर्वाः विद्याः प्रत्यक्षाप्रत्यक्षरूपेण, समासेन विस्तरेण वा विलसन्तीत्यत्र नास्ति संशयावसरः। यथा प्राचीनाः वाल्मीकि, व्यास, मनु, गौतम, कणाद, कपिलप्रभृतयो महर्षयः वेदानां सर्वज्ञानमयत्वं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्वीकुर्वन्ति तथैव महर्षि दयानन्दोऽपि श्रुतीनां सर्वविद्यामयत्वमुररीकरोति। यथा आध्यात्मिकं ज्ञानं चतुर्षु वेदेषु प्राचुर्येण वरीवर्त्ति तथैव भौतिकं विज्ञानमथ च राजधर्म, प्रशासन, प्रबन्धनादिकमपि सविस्तरं समुपलभ्यते।

साम्प्रतिके काले विश्वस्मिन्नपि विश्वे यानि परिमित साधनानि सन्ति तैरपरिमितस्य ऊर्जाव्ययस्य क्षतिपूर्त्तिः कथं भवेत्? सर्वेजनाः सीमितसाधनैः असीमं कार्यं निष्पादयितुं कथं समर्थाः स्युरित्यस्ति महान् विचारणीयो विषयः।

यक्षप्रश्नस्यास्य समाधानाय यत्र विचार्यते, चिन्त्यते वा तदिदं प्रबन्धनम्। वर्त्तमान समये विद्यमानेषु महत्त्वपूर्ण विषयेषु प्रबन्धनस्य महत्त्वमन्यूनम्। यद्यपि पाश्चात्यपौर्वात्यविद्वद्भिः विषयेऽस्मिन् बहुचिन्तितं, लिखितमपि तथापि वैदिक दृष्ट्या विचारणे कृते सति प्रबन्धनस्य सर्वहितसाधकं, विश्वबन्धुत्वोत्पादकं, समृद्धिदायकमतीव रमणीयं स्वरूपं समुपस्थितं भवति।

प्रबन्धनक्षेत्रे प्रबन्धकस्य तत्सहयोगिनां कर्मकराणां च महत्त्वपूर्णं स्थानं भवति।

*

V-3

उपनयनसंस्कारे एकाग्निकाण्डस्थप्रोक्षणमन्त्रः

डॉ. रूपा, मैसूरु

उपनयनसंस्कारे आचार्यः माणवकाय 'उपनयनात्पूर्वं तस्मै समुद्रादूर्मिः (ए. 2.3.2) इत्यनेन मन्त्रेण माणवकाय प्रोक्षणं करोति। (एतत् आपस्तम्बगृह्यसूत्रानुसारम्।) अस्य मन्त्रस्य स्थूलार्थः - समुद्रान्मधुयुक्तस्तरङ्गः मम समीपे आगतः। तरङ्गकारणीभूताः किरणा अपि आगतास्सन्ति। एते किरणास्त एव यैरस्माकं पितरः (देवताभिस्सह) सपीतिं प्राप्तवन्तः। एभिः किरणैरहममृतत्वं समश्नुयामिति। 'सूर्यस्य रश्मिभिः पितरः सपीतिं कृतवन्तः। एभिः रश्मिभिरहममृतत्वमश्नुयामित्यत्र किञ्चिद्विवरणमपेक्ष्यते। 'पितरः देवताभिस्सह सोमपानं कृतवन्तः। सोमपानस्य कारणं सोमलता। सोमलतावर्धनाय कारणं वृष्टिः। वृष्ट्याः कारणं सूर्यकिरणाः। अतः सूर्यकिरणैः पितरः देवताभिस्सह समानपानं प्राप्तवन्तः इत्यर्थः। ईदृशानां सोमपानकारणीभूतानां किरणानां प्रकाशेनाहममृतत्वं प्राप्नुयामित्यर्थः। 'अमृतत्व'मित्युक्ते 'शाश्वतसुखं' 'ब्रह्मानन्दः'। सोमपानस्य कारणं सूर्यकिरणाः, अमृतत्वप्राप्तेः कारणं ज्ञानसूर्यकिरणाः। 'ज्ञानेनाहममृतत्वं विन्देय' इति तात्पर्यम्।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-4

वेदाङ्गानां महत्त्वम्

डॉ. भगवन्नारायण मिश्र, (बिहार)

संस्कृत साहित्ये वेदानां महत्त्वं स्वयं सिद्धम्। वेदानां सम्यगर्थावबोधनाय वेदाङ्गानि प्रवृत्तानि। तानि च षट्-शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्दः ज्योतिष, व्याकरणमिति। वेदरूपस्य शरीरस्य पादौ छन्दः, हस्तःकल्पः, अयनंज्योतिषम् श्रोत्रम् निरुक्तम्, घ्राणै शिक्षा, मुखं व्याकरणम्। इमानि सान्ति वेदाङ्गानि (एतेषां महत्त्वं निरीक्ष्य पाणिनीय शिक्षायां प्रतिपाद्यते यथा—

छन्दः पादौ तु वेदस्य, हस्तो कल्पोऽथपठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥

पा.शि. श्लो. 14-42

1. शिक्षा – शिक्षाग्रन्थाः विशेषतः वर्णोच्चारणविधिं वर्णयन्ति।
2. छन्दः – वेदेषु मन्त्राः प्रायशः छन्दोबद्धा एव। अतः वृतज्ञानाय छन्दः शास्त्रम् अनिवार्यम् अस्ति।
3. कल्पः – कल्पसूवेषुविविधाध्वराणां संस्कारादीनां च वर्णनं प्राप्यते। मन्त्राणां विविधकर्मसुविनियोगः प्रतिपाद्यते।
4. ज्योतिषतम् – शुभमुर्हूतमाकलनाय ज्योतिषस्योदयोऽभूत्। सूर्यचन्द्रादिग्रहाणां नक्षत्राणां च गतिः निरीक्ष्यते परीक्ष्यते विविच्यते च। ज्योतिषस्यमहत्त्वमुच्यते।
5. निरुक्तम् – निरुक्ते क्लिष्ट वैदिक शब्दानां निर्वचनं प्राप्यते। यास्कप्रणीतं निरुक्तमेव प्रमुखः ग्रन्थः। अत्र वैदिक-शब्दानां संग्रहात्मकः ग्रन्थः निघण्टुः कथ्यते।
6. व्याकरणरणम् – व्याक्रियन्ते विविच्यन्ते शब्दाः अनेनेति व्याकरणम्।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-5

वैदिकध्वनिविज्ञाने स्वरभक्तिः

डॉ. उमेश प्रसाद सिंह, वाराणसी

स्वरभक्तिरिति पदोऽयं द्विधा व्याख्यातुं शक्यते। प्रथमं तावत् स्वरभक्तेः शाब्दिकार्थः स्वरवर्णेन विभाजनमिति। भक्तिरिति शब्दः विभक्तार्थात् भज् धातोः निष्पन्नः जायते। वस्तुतस्तु संयोगस्थले संयुक्तवर्णानामुच्चारणे उच्चारणस्थाने करणस्य स्पर्शनेऽसौविध्यं भवति। तत्र संयुक्तव्यञ्जनयोरमध्ये स्वरांशस्यागमेन तयोः संयुक्तव्यञ्जनयोः विभाजनं भवति। तत्स्वरांशेनविभाजनं स्वरभक्तिनाम्ना ख्यायते। अपरं तावत् स्वरस्यभक्तिः स्वरभक्तिरित्युच्यते। भक्तिः अंशः। यथोक्तं त्रिभाष्यरत्ने—''भक्तिः भागः अवयवः एकादेश इति यावत्''। स्वरभक्तिः स्वरस्यांशं भवति। वस्तुतः संयोगे संयुक्तव्यञ्जनानामुच्चारणे उच्चारणस्थाने कारणस्य स्पर्शनेऽसौविध्यं जायते। यस्मात् परिस्थितिविशेषे संयुक्तव्यञ्जनयोर्मध्ये स्वरांशस्यागमः भवति स स्वरांशस्यागमः स्वरभक्तिनाम्ना ख्यातः।

स्वरभक्तिस्थलम्, स्वरभक्तिभेदः, स्वरभक्तत्युच्चारणकालः स्वरभक्तिस्वरूपविषये आचार्याणां मतसाम्यं न विद्यते। शौनकानुसारमेकेषामाचार्याणां मते स्वरभक्ति ऋवर्णात्मकं भवति। एवं ज्ञायते यत् रेफोष्मयोः संयोगेरेफात् पराया स्वरभक्तिः सा ऋर्णात्मिका भवति। यथा कर्हि इत्यत्र रेफात् परः जायमाना स्वरभक्तिः ऋकारस्वरूपा भवति। परञ्चान्येषामाचार्याणां मते स्वरभक्तिः ऋकारस्वरूपा भवति।

*

V-6

ज्योतिषशास्त्रे अयनांशानुशीलनम्

डॉ. भारत भूषण मिश्र, जम्मू

प्रसङ्गेऽस्मिन् सायननिरयणयोः मध्ये अयनांशमेवान्तम्। तत्रायनांशः कः कुत्रोत्पद्यते कियत् भवतीति समेषां प्रश्नानां सयुक्तिकं समीक्षणं शोधपत्रेऽस्मिन् कृतमस्ति। वस्तुतस्तु अयनांशज्ञानं अयन (उत्तरायण-दक्षिणायन) वशात् सर्वप्रथमं आचार्यैः कृतम्। अतः अंशात्मकमन्तरं सन्दृश्य अयनांश इति प्रोक्तम्। ज्योतिषशास्त्रस्य बहवः लघुसिद्धान्ताः अयनांशोपरि आस्श्रिताः वर्तन्ते यत्रायनांशस्य साधु-साधनेन साधुपरिणामं चोपलभ्यते। आचार्यैः स्वरूपप्रयोगक्रियानुशीलनेन शोधकार्येण च यत्-यत् अन्तरं या प्रक्रियासु अन्तरं च प्राप्ता सा चातीव चमत्कारीकः अद्यापि। विभिन्नसिद्धान्तानुसारेण अयनांशविषये भिन्नं भिन्नं मतं परिणामं चोपलभ्यते। एवमेव अयनांशस्य गतिविषये, भ्रमणभगणे, सम्पात (अयनांश) चलने च बहु अन्तरं भजते, इत्यस्य मीमांसाऽपि विविधतार्किकयुक्त्या अत्रोपलभ्यते। यद्यपि कालज्ञापकं नाड़ीवृत्तं ग्रहज्ञानात्मकं क्रान्तिवृत्तं भिन्न-भिन्न पृष्ठीयकेन्द्रैःनिर्मियते। अनयोः सम्पात एव गोलसन्धिः

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उच्यते। आकाशीय गणनस्याः इदमेव मूलतथ्यम् एवमत्र न केवल शास्त्रीय प्रमाणैः अपितु व्यावहारिक ज्योतिषोपरि सिद्धान्तज्योतिषस्य महत्वांकनमपि विविधपक्षैः प्रतिपादितमस्ति। शून्यायनांशकालज्ञानपूर्वकं नवीनमतानुसारं इदानीं वेधसाध्यायनांशस्य चर्चाऽपि सन्दृश्यते। अयनांशस्य चक्रभ्रमणेनोत्पन्नमन्तरस्य प्रकाशनमपि सविस्तरं सप्रमाणं सयुक्तिकं चोपपद्यते। यद्यपि प्राचीनग्रन्थेषु अयनयोः ज्ञानविषये मतान्तरं प्राप्यते, तथाऽपि तस्य आनयनं एका सरणिवद्धपरम्परया शास्त्रेषूपलभ्यते। एवमत्र वैदिककालादारभ्य केतकर प्रभृति दैवज्ञानां मतं तथा च यूरोपीय वैतानिकानां सारमतं च प्रतिपादितमस्ति। अयनांशेन धर्मशास्त्रीय ये केऽपि विषयाः प्रभाविताः सन्तितेषां यथास्थिति चर्चाऽपि शोधपत्रस्य वैशिष्ट्यं प्रदर्शयति।

❋

V-7

म. म. सामन्तचन्द्रशेखरस्य ग्रहस्पष्टीकरणावसरे ग्रहकक्षास्वरूपस्य परिकल्पना

सत्य स्वरूप बाजपेयी, वाराणसी यू.पी.

सूर्यसिद्धान्ते शीघ्रमन्दपरिधि कल्पनास्यो उदाहरणं भवति, युक्तिवादिना भास्करेण एतस्य स्पष्टीकरणार्थं प्रतिवृत्ताभङ्गो कल्पिता। तेनकथितं ''यस्मिनवृत्ते भ्रमति खचरोनास्यमध्यं कुमध्ये'' एतेन स्पष्टं भवति यत् ग्रहकक्षायाः केन्द्रं भूकेन्द्रं अस्ति। किन्तु शीघ्रमन्दोच्चाभ्यामाकृष्टो ग्रहोऽन्यस्मिन् वृत्ते परिभ्रमति, अत्र केन्द्रद्वयं सञ्जातं। एकं तु भूकेन्द्रम अपरं तु प्रतिवृत्तकेन्द्रम्, उभय वृत्तयोः केन्द्रे एकस्यां नीच्चीच्चं सरलरेखायां वर्त्तते, उभययोः अन्तरे अन्त्यफलज्या तुल्यं अन्तरं वर्त्तते। वृत्तस्य एकंकेन्द्रं भवति। अत्र ग्रहस्पष्टीकरणार्थं या क्षेत्रयुक्तिः उपस्थापिता तत्र केन्द्रद्वयं सञ्जातम्। केन्द्रद्वयाभ्यां उत्पन्नं वृत्तं दीर्घवृत्तमेव भवति। यत् अर्वाचीन, ज्योतिर्विदभिः सुप्रतिपादितम्। किन्तु आधुनिक दीर्घवृत्त कल्पनोसमयतः स्वल्पकालं पूर्वं आचार्य चन्द्रशेखरैः एतस्मिन् विषये बहुविचारितम्। दीर्घवृत्तशब्दस्तु तदा नाविस्कृता।

❋

V-8

सारावली : एकमध्ययनम्

श्रीरामचन्द्रमिश्रः, भद्रकः (ओडिसा)

सारावल्याख्यस्य ग्रन्थस्य प्रकाशनमद्यावधिं यावन्न जातम्। एतस्मादेव कारणात्सारावल्याः मातृकामन्विष्य शोधार्थी सर्वप्रथमस्याः सम्पादनं विकीर्षति। इदानीं शोधचिकीर्षुः पार्श्वे अस्याः सारावल्याः

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चतस्रः मातृकाः वर्तन्ते। यद्यपि शोधकार्यास्य कृते मुख्यविषयत्वेन गृहीतस्य ग्रन्थस्यनाम सारावली एवास्ति, परन्तु एकस्यां मातृकायां क्वचित्क्वचित् ताजिकसार इत्यपि लिखितं वर्तते। शोधकार्येस्मिन् ग्रन्थस्यास्य पाठभेदपुरस्सरं सम्पादनं करिष्यते, ततश्च सारावल्याख्यान्यैः ग्रन्थैः सहाऽस्य समीक्षणमपि विधास्यते।

ग्रन्थस्यास्य प्रणेता म.म. रुचिपत्युपाध्यायः मिथिलादेशवासी, दैवज्ञशिरोमणेः कस्यचिन्नीलकण्ठस्य पुत्र आसीत्, यश्च खलु कर्महावंशीयः आसीत्। अनेनैव हि रुचिपतिना लघुभास्करीयस्यापि एका व्याख्या विहितेति सारावलीग्रन्थाज्ज्ञायते।

सारावल्यां वर्षतन्त्रस्य प्रायः सर्वे विषयाः राजन्तेतराम्। ग्रन्थेऽस्मिन् वर्षफलार्थं तिथिवाराद्यानयनम्, राशिस्वरूपम्, ग्रहस्वरूपम्, भावस्वरूपम्, ग्रहसाधनम्, लग्न-भाव-दृष्टि-बलसाधनानि, पञ्चवर्गीयचक्रम्, नवांशकाः, द्वादशवर्गीयचक्रम्, हर्षस्थानानि, योगत्रयम्, त्रिराशिकनाम, वर्षेशनिर्णयः, वर्षेशफलम्, मुन्थहानिरूपणम्, मुन्थहाप्रतिभावफलम्, अरिष्टविचारः, अरिष्टभंगः, राजयोगाः, मिश्रकाध्यायः, भावफलम्, दशान्तर्दशाफलम्, मासप्रवेशानयनम्, मासप्रवेशफलम्, अन्याःदशारित्यादिविषयाः कीर्तिताः।

*

V-9

वेदापौरुषेयत्व समीक्षणम्

डॉ. रवीन्द्रनाथ भट्टाचार्यः, कलिकाता

प्रत्यक्षादीनि षड्विधप्रमाणानि वर्तन्ते तैश्च ज्योतिष्टोमादीनामिष्टप्राप्तिसाधनत्वम्, कलञ्जभक्षणादीनाम-निष्टसाधनत्वं वेदं विना ज्ञातुं न शक्यते। अतः यो लौकिकोपायं प्रत्यक्षाद्यविषयं यो वेदयति ज्ञापयति वा स वेदः: अत एवोक्तं—

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता॥

अतो वेदस्य लक्षणं तावत्प्रामाणिकविद्वद्भिर्महर्षिवर्यैरिष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः इत्युररीकृतम्। अत्र लौकिकपदेन प्रत्यक्षानुमानयोर्व्यावृत्तिः। अनुभूयमानस्य स्वक्रन्दनवनितादेरिष्टप्राप्तिहेतुत्वमौषधसेवनादेरनिष्टपरिहारहेतुत्वञ्च प्रत्यक्षता सिद्धम्। स्वेनानुभूयमानस्य पुरुषान्तरगतस्य च तथात्वमनुमानगम्यम्। अनेनैव मार्गेण भाविजन्मगतसुखदुःखादिकमपि अनुमानगम्यत्वमिति चेत्, न। तद्विशेषस्यावगन्तुमशक्यत्वात्। न खलु ज्योतिष्टोमादिरिष्टप्राप्तिहेतुः, कलञ्जभक्षणादिरनिष्ट-परिहार हेतुरित्यममुमर्थं वेदव्यतिरेकेणानुमानसहस्रेणापि तार्किकशिरोमणिभिरवमन्तुं न शक्यते। वेदो

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मन्त्रब्राह्मणात्मकः। अत एतल्लक्षणोपेतो वेदोऽस्मान् पालयति। तथा हि श्रूयते—मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयमिति। वेदस्यापौरुषेयस्येदमेव लक्षणं भवितुमर्हति नान्यत्।

*

V-10

वेदभाषायाः तत्साहित्यस्य च महत्त्वम्

भारतीयसाहित्ये यत् प्रधानभूतं साहित्यं तदेव प्रपञ्चेऽपि परमप्राचीनमिति। वेदविज्ञान विहीनेन मनुजेन भारतीयं बौद्धमतं न सम्यगधिगन्तुं शक्यम्। ज्ञानार्थको वेदशब्दः पवित्रं ज्ञानं अथवा पवित्रं ग्रन्थं सूचयति। ज्ञानस्यैव मूलस्रोतोरूपेण ऋग्वेदादीनां वेदशब्द बोध्यम्। केवलमतनिरूपपराणां भारतीयसाहित्यानां आविर्भावकालस्य प्राचीनस्य स्वभावमपि प्रकाशयति। तस्मात्कालात् परमुत्पन्ना ग्रन्थाः साक्षान्मतेन सम्बन्धरहिता अपि वेदमतस्य निरूपणे सहायका एवासन्। भाषायाः प्राचीनतमं स्वरूपम् ऋग्वेदे एव दृश्यते। तेन तस्याः प्राचीनतमस्वरूपावधारणाय न ऋग्वेदादन्यत्प्रमाणम्। वैदिक साहित्यस्य सर्वातिशायि वैशिष्ट्यं न शब्दैरभिव्यक्तुं शक्यते। यदेव संस्कृतसाहित्यस्य वैशिष्ट्यं तत्सर्वं वैदिकसाहित्येवेति न अतिशयोक्तिः।

*

V-11

विषय—वृष्टिसंसूचने वायोर्महत्त्वम्

डॉ. शत्रुघ्न त्रिपाठी, (जम्मू)

''कलावन्नगताः प्राणाः इति धिया कलियुगे प्राणाः अन्नगताः सन्ति। तच्चान्नं वृष्टेरधीनमस्ति, यथाह वराहमिहिरः ''अन्नं जगतः प्राणा प्रावृट्कालस्य चान्नमायत्तम''। भगवता कृष्णेनाऽपि गीतायां'' अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः इत्युक्तम्। अस्माकं पूर्वजामहर्षयः आध्यात्मिकप्राधान-भारतवर्षे भौतिकसाधनस्यापि गणना सूक्ष्मरीत्या सम्पादितवन्तः। प्राच्यविज्ञानज्योषिशास्त्रे एतादृशानां विषयाणां गणना सम्यक्तया प्रतिपादिता वर्तते। कः वृष्टिकारकः योगः? कदा वृष्टिः? अनावृष्टिः कदा? कानि च वृष्टिकारकतत्त्वानि, इत्यादयः विषयाः प्राचीनाचार्यैः बहुकालपूर्वमेव विशदीकृताः। तत्रेदं वृष्टिज्ञाने वायोर्महत्त्वमङ्गीकृत्य किञ्चिदुपस्थाप्यते।

वृष्टिवाय्योर्मध्येऽअविनाभाव सम्बन्धः वर्तते। वायुज्ञानं विना मेघोत्पत्तेरारभ्य वर्षणं यावत् न काऽपि मेघनिर्माणसंघटना संभवति। यथोक्तं ऋग्वेदे ''उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिवर्षणयथा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पुरीषिणः (ऋग्वेद 5।55।5) मेघनिर्माणप्रक्रियामभिलक्ष्य कालिदासेन मेघदूते प्रोक्तं ''धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः'' इति।

वस्तुतः मेघोत्पत्तौ प्रमुखाधारः जलं ज्योतिश्च वर्तते। आभ्यां निर्गतो वाष्पः धूमो वा वायुना प्रेरितः आकाशे शैत्यमनुप्राप्य घनीभूतो मेघरूपतां भजते। एवं मेघगर्भधारणकाले वायोरवदानमति महत्त्वपूर्णं भवति।

❋

V-12

अहरहः स्वाध्यायमधीयीत

डॉ. कृष्णदत्तमिश्रः, वाराणसी

वेदानां वेदस्य वा अध्ययनं अवश्यकरणीयं कर्त्तव्यम्।

अध्ययनं नाम गुरुमुखोच्चारणपूर्वकं शिष्यानूच्चारणम्। गुरुमुखोच्चारणपूर्वकं वेदाध्ययनमवश्यमेव कर्त्तव्यमित्यर्थः। उपनयनसंस्कारानन्तरं सर्वेषां वेदानां द्वयोरेकस्य वा स्वप्रज्ञानुसारमध्ययनं कर्त्तव्यम्। यथोक्तं याज्ञवल्क्येन—'वेदानधीत्य वदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्' इति। एकस्यैव वेदस्य पक्षे पितृपितामहादिभिः परम्परया प्राप्त एव वेदोऽध्येतव्यः। अत एवोक्तं—''अहरहः स्वाध्यायमधीयति''। 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' इति। अत्र श्रुतौ स्वपदः परम्परया प्राप्तस्य वेदस्यार्थे प्रयुक्तः। वेदाध्ययनं नित्यमेव, न तु काम्यम्। अनध्ययनेन पतितः जायते। यथोक्तं पुरुषानुशासने—'वेदस्याध्ययनं नित्यमनध्ययने पातात्' इति। वेदः सखा। येन सखारूपः वेदः त्यक्तः तस्य वाचि भागो न भवति। सः सुकृतस्य पन्थामपि न वेत्ति। यथोक्तं ऋग्वेदे—

यस्तित्याज सखिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्॥

अध्ययनं त्रिधा-ग्रहणं धारणं ब्रह्मयज्ञश्च। गुरुमुखोच्चारणानूच्चारणं ग्रहणम्। अभ्यासेन ग्रहणस्य संरक्षणं धारणम्। ग्रहीतस्य च वेदभागस्य नियमेन पारायणं ब्रह्मयज्ञश्च।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-13

ऋग्वेदस्य शाखाविषयकम् पर्य्यालोचनम्

डॉ. उदयचन्द्र वन्द्योपाध्याय, पर्णश्री

अनन्ता वै वेदाः (तै. ब्रा 3.10.11.4), किन्तु वेदचतुष्टयस्य नाम साहित्यसंसारे श्रूयते। आदौ वेदशास्त्रः अविभक्तः आसीत् परन्तु व्यासेन अवरे काले ऋगादिभेदेन वेदविभागादिकम् कृतम्। काले प्रत्येकस्य वेदस्य पाठान्तरात् कर्मभेदाच्च शाखाविभागः सञ्जातः। ऋग्भाष्यभूमिकायाम् सायणाचाय्येण एवमेव शाश्पाविभागस्य कारणम् प्रदर्शितम्। वायुपुराणेहपि आमायते—'सवास्ता हि चतुष्पदाः सर्वश्चैकार्थवाचिकाः। पाठान्तरे पृथग्भूत्वा वेदशाखा यथा तत॥' (61 अः) शाखायाः अवान्तरविभागः चरणशब्देन आम्नायते। महाभाष्यमते ऋग्वेदस्य एकविंशति शाखा, परन्तु चरणव्यूह-मते शाखासप्तका आसन्। एतेषु विभागपञ्चकाः एवम् क्वचित् दृश्यते—शाकलाः, वाष्कलाः, आश्वलायनाः, शाङ्खयनाः, मान्डुकेयाश्चेति। ऊदुम्बराणाम्, ऐतरेयिनाञ्च पृथक् पृथक् शाखा आसीत्। मुद्गलो, गालवो, गार्ग्य शैशिरियादि भेदः शाकलशाखायाः उपविभागः। एतेषाम् पृथक् पृथक् संहिताऽपि आसीत् इति केचन। आश्वलायनशाङ्खायनादिश्रौतसूत्रे, चरणव्यूहे ऋक्प्रातिशाख्ये, वर्गद्वयवृत्तौ च ऋग्वेदस्य शाखा-विषये आलोकपातः परिदृश्यते। पदपाठकारस्य शाखा शाकलात् भिन्ना न वा इति विचारोहऽपि शाखालोचनायाम् अपेक्षते। अस्माकम् प्रबन्धे ऋग्वेदस्य शाखाविषये उपलब्धानाम् प्रमाणानाम् पर्य्यालोचनम् उपस्थापयिष्यामः।

❋

V-14

संस्कृतसाहित्ये क्रेतासुरक्षा

शिप्रा राय, त्रिपुरा

संस्कृतसाहित्ये क्रेतासुरक्षायाः विषयः पूर्वमेव आसीत्। न केवलं वैदिकसाहित्येषु, अपि तु स्मृतिशास्त्रे, लौकिकसंस्कृतसाहित्येषु च क्रेतासुरक्षा विद्यते। वाजसनेयिसंहितायां तुलादण्डञ्च उल्लेखः दृश्यते। विविधेषु स्मृतिविषयकग्रन्थेषु क्रेतासुरक्षायाः विषयः विद्यते। मनुसंहितायां, याज्ञवल्क्यसंहितायाः व्यावहाराध्याये, अर्थशास्त्रे च क्रेतासुरक्षाविषयञ्च उल्लेखः दृश्यते। मत्कृतप्रबन्धे क्रेतासुरक्षा इति विषयः संस्कृतसाहित्येषु कुत्र कुत्र आलोचितः इति चेष्टा मया क्रीयते।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-15

प्रमोदचन्द्रकृत चन्द्रदूतपरिशीलनम्

वद्रिनारायणपूजारी, विजयपल्ली, वरगडम्, (ओडिशा)

संस्कृतसाहित्यम् अतीव सुविशालम्। अस्य मनोहारिता सुप्रसिद्धा। साहित्यस्य विविधाः विभावाः अस्य महिमानं प्रकटयन्ति। प्रतिभावन्तः कवयः स्वरुच्यनुसारेण साहित्यं निर्माय सहृदयहृदयानि आह्लादयन्ति। संस्कृतसाहित्यस्य सुप्रसिद्धं काव्यं महाकविकालिदासविरचितं मेघदूतम्। तदनुसारेण विरचितानि अनेकानि दूतकाव्यरत्नानि संस्कृतसाहित्यभाण्डागारं विमण्डयन्ति। आधुनिकसंस्कृतकाव्यनिर्मातृषु पुरीस्थ-श्रीजगन्नाथसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य साहित्यविभागस्य उपाचार्य्यः डॉ. प्रमोदचन्द्रमिश्रः अन्यतमः। तद्रचितं सरलतरलपदावलीविमण्डितं चन्द्रदूतकाव्यम् आधुनिककविसमाजाय सरलकाव्यनिर्माणदिग्दर्शनं प्रददाति। अत्र मनोहारिणीभावाभिव्यक्ति, आह्लाददायिनी नगरवर्णना, विषयानुकुलसमुचितपदयोजना च कमर्प्यानर्वचनीयम् आनन्दं प्रयच्छति। काव्यस्य आदिमपद्यम् अत्र उदाहरणत्वेन प्रदस्यते। यथा—

आसीत् कश्चिद्रसिकयुवको दार्जिलिं भूमिभागे
त्यक्त्वा पत्नीं चपलनयनां कार्य्यभारात् कदाचित्।
वैवश्येन स्वगुरुवचनात् श्रीजगन्नाथदेशं
प्राप्तः प्रेम्णाऽतितरलहृदा शङ्खतीर्थं सुरम्यम्॥

काव्यस्यास्य समग्रः परिचयः मूलप्रबन्धे प्रदास्यते।

*

V-16

वैदिकं विज्ञानम्

डॉ. राममूर्ति चतुर्वेदी, वाराणसी

''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'' इति श्रुत्या वेदान्तवेद्यस्य ब्रह्मणः स्वरूपलक्षणे ज्ञानमित्यपि सन्निविष्टम्। तत्र ज्ञानं नाम निरपेक्षप्रकाशः, तस्यैव निरपेक्षप्रकाशरूपस्य ज्ञानस्य विविधंरूपं विशिष्टं रूपं वा विज्ञानमुच्यते। तच्च वेदमन्त्रेषु निगूढत्वात् ततः समुपलब्धत्वाच्च वैदिकविज्ञानमुच्यते। ज्ञानमेकं, विज्ञानमनेकमिति द्विधा स्वरूपं जायते तस्यैव ज्ञानरूपस्य निरपेक्षप्रकाशस्य। तत्र विभिन्नेषु जागतिकपदार्थेषु किमप्येकं तत्त्वं सर्वत्र समानं प्राप्यते, तदेवैकंनिपेक्षप्रकाशरूपं ज्ञानमुच्यते, पुनः तस्यैवैकतत्तस्य विभिन्नं बहुविधो जागतिकं रूपं विज्ञानमिति वक्तुं शक्यते। तच्च ज्ञानं सूक्ष्मतमं निरपेक्षप्रकाशरूपं, येन शास्त्रेण साहित्येन वा अन्विष्यते तदपि विज्ञानशब्देन व्यवहियते साम्प्रतिकैः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकल्पितेशोधपत्रे केन प्रकारेण एकमेव ज्ञानं विभेदेन विज्ञानरूपतामादधातीतिविषये भूयांसो विचाराः प्रकटयिष्यन्ते, तथा किमिदं वैदिकं विज्ञानमितिवस्तुतत्त्वं सप्रमाणं निरूपयिष्यत इति दिक्।

*

V-17

औपनिषदिकी पञ्चस्तरात्मिका शिक्षा

राम रतन् खण्डेलवालः, हरिद्वारम् (उत्तरांचलम्)

प्राचीनभारतीयवाङ्मये उपनिषदः महत्त्वपूर्णं स्थानं भजन्ते। ज्ञानागाररूपे उपनिषदः प्रख्याताः। तत्र शिक्षायाः विविधमानदण्डाः निर्धारिताः सन्ति। उपनिषत्सु शिक्षाशब्दः सर्वप्रथमं बृहदारण्यकोपनिषदि तैत्तिरीयोपनिषदि च प्राप्यते। सामान्यतः शिक्षायाः अर्थः विद्योपादानं भवति परमुपनिषत्सु शिक्षायाः संकुचितार्थः तथा व्यापकार्थः उभावप्यर्थौ प्रतिपादितौ। परं भारतीयपरम्परा शिक्षायाः व्यापकार्थमुरिकरोति। वर्तमानशिक्षाशास्त्रिणः शिक्षायाः विधिस्वरूपान् परिभाषयन्ति, परं शिक्षायाः व्यापकार्थस्य वैशद्यं परिलक्ष्य ता परिभाषाः निर्विवादरूपेण शिक्षायाः सार्वभौमिकायाः सार्वकालिकायाः च गरिमायाः प्रातिनिध्येऽक्षमा सन्ति। अतः शिक्षायाः प्रच्छन्नव्यापकतां दृष्ट्वा शिक्षां उपनिषदां सन्दर्भे परिभाषणं समीचिनमिति मे मतिः।

औपनिषदिकी शिक्षा प्रमादरहिताजीवनं प्रचलमाना प्रक्रियास्ति। एतस्या नैसर्गिक प्रवृत्तिमुल्लिखन् तैत्तिरीयोपनिषदि ऋषिः शिक्षायाः पञ्चस्तरान् उल्लिखति-अधिलोकम्, अधिज्योतिषम्, अधिविद्यम्, अधिप्रजम्, अध्यात्मं च। औपनिषदिकी शिक्षा ज्ञानस्योपर्युक्तपञ्चस्तरेषु पूर्णा भवति। अधिलोकस्तरे मानवः विविध भूततत्वानां ज्ञानमाप्नोति, अधिज्योतिषि नक्षत्राणामाग्नेयतत्त्वानाञ्चज्ञानं भवति, एवमधिलोकाधिज्योतिष्स्तरयोः परिज्ञानानन्तरमेव सः तं ज्ञानमन्यत्र संक्रमितुमर्हति। अधिविद्यस्तरे ज्ञानस्य स्वरूपं ज्ञायते।

*

V-18

निरुक्ते शिक्षा : एकं विवेचनम्

डॉ. मंजु कुमारी पाण्डेयः, राँची

निरुक्तं निघण्टौ संकलितानां वैदिकशब्दानामर्थावबौधे निर्वचनम्। निरुक्तग्रन्थेषु समुपलब्धं निरुक्तं महर्षियास्कस्य रचना विद्यते। अन्ये निरुक्तग्रन्थाः सम्प्रति नोपलभ्यन्ते। निरुक्ते निरुक्ते मन्त्राणां व्याख्यानकाले पदानां निर्वजनकाले चानेके विषयाः संकेतिताः सन्ति तेषु शिक्षा-विषयकं विवेचनमपि महत्त्वपूर्णमस्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सामान्यरूपेण शिक्षा ज्ञानार्जनस्य विद्याग्रहणस्य च वाचिका विद्यते। शिक्षा ज्ञानार्जनस्य महत्त्वपूर्णसाधनं वर्तते यस्मिन् समग्रा विद्याः समायतन्ति। येन माध्यमेन व्यक्तेर्व्यक्तित्वस्य विकासो भवति ज्ञानं सम्प्राप्य नराः स्वे-स्वे कर्मणि दक्षा भवन्ति सा शिक्षेति। सम्यक् शिक्षामधिगमाय शिक्षकस्य शिक्षार्थिनः शिक्षा विषयस्य चावश्यकता भवति। निरुक्ते शिक्षकाः शिक्षार्थिनः शिक्षा-विषयाश्च संकेतिताः। गुरोर्गौरवं कदा भवति केन प्रकारेण शिक्षा-देया भवति, शिष्याणां ज्ञानग्रहणयोग्यता कीदृशी भवति कस्मै शिष्याय ज्ञानं देयम् कस्मै ज्ञानं न देयम्। गुरोः शिष्येण सह सम्बन्धः कीदृशो भवेदिति निरुक्तपद्धत्या सर्वं शोधपत्रेऽस्मिन् विवेचितम्।

❋

V-19

उपनिषद्ग्रन्थदृष्ट्या शिक्षायाः स्वरूपम्

ज्ञान रञ्जन गङ्गेशः, राँची

अधुना शिक्षायाः यथा स्वरूपं दृष्यते तत् आकस्मिकं न, अपितु पुराकालतः एव प्रचलत् अस्ति। उपनिषद्ग्रन्थेषु अपि शिक्षायाः विषये विस्तृततया विवेचनम् अस्ति। उपनिषद्शब्दस्य एकः अर्थः-गुरोः समीपे उपविष्य शिक्षाग्रहणम् अपि भवति। प्रायशः प्राचीने काले जनाः एतस्य अर्थम् एवमेव स्वीकुर्वन्ति स्म। 'शिक्षा' शब्दः शिक्ष्वद्योपादाने धातुना निष्पन्नः। यस्य तात्पर्यं ज्ञानार्जनं प्रसारणञ्च अस्ति। उपनिषद्ग्रन्थानुसारेण शिक्षायाः। अर्थः—ज्ञानं विद्या वा भवति। सा विद्या द्विधा भवति-परा अपरा च। उभयोः ग्रहणमेव शिक्षा। एतया विद्यया आत्मज्ञानप्राप्तिरेव एतस्य उद्देश्यं—''विद्याऽमृतमश्नुते''। अतः एतस्य पाठ्यचर्यायां परा-अपरा उभयोः सामञ्जस्यं भवति सम्। एतेषां विषयाणां पाठनार्थं स्वाध्यायः, उपदेशः प्रहेलिका, सूत्रं, व्युत्पत्तिः, कथा, दृष्टान्तः इत्यादीनां विधीनां समयानुकूलम्, अवसरानुकूलञ्च प्रयोगो भवति स्म। पठनं-पाठनं विद्यालये न भूत्वा यत्र गुरुः वसति स्म तत्रैव भवति स्म। उपनिषद्काले अनुशासनस्य तात्पर्यमात्मानुशासनेन भवति स्म। एतस्मिन् कालेऽपि छात्र-अध्यापकाश्च ब्रह्मचर्यस्य पालनं कुर्वन्ति स्म। छात्रः एकः साधकः भूत्वा मनसा, वाचा, कर्मणा विद्याध्ययने संलग्नः भवति स्म। आचार्यः ब्रह्मनिष्ठः असाधारणगुणसम्पन्नः वेदस्य ज्ञाता भवति स्म तथा अध्ययनान्तरं समावर्तनसमये दीक्षां ददाति स्म—सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यान्माप्रमदः-----इत्यादि।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-20

निरुक्तस्य पर्यावरणात्मकं परिशीलनम्

डॉ. रामाशीष पाण्डेयः, राँची

महर्षियास्कस्य निरुक्तं संस्कृतजगति निरुक्तेषु विश्रुतम्। निरुक्तं तु निघण्टौ पठितानां वैदिकपदानां निर्वचनं प्रस्तौति। तत्र निर्वचनक्रमे पर्यावरणजन्यस्य स्थितेः संकेतो गृह्यते। परि+आ+वृ+ल्युट् प्रत्ययेन निष्पन्नेन पर्यावरणशब्देन परितः आवृणोति यत्तत्यपर्यावरणम्। येनावरणेन जना जीवा वा आवृतास्तिष्ठन्ति तदेवावरणं पर्यावरणं कथ्यते। परि उपसर्गस्यपरितः आवरणस्यार्थे आ+वृ धातोः प्रयोगोऽपि निरुक्ते प्राप्यते। वेदान्त प्रक्रियायां पञ्चतन्मात्राभिर्जायते स्थूलशरीरोत्पत्तिर्यैः श्रोत्रव्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणाख्यानि ज्ञानेन्द्रियाणि वाक् पाणिपादपायूपस्थाख्यानि कर्मेन्द्रियाणि क्रमशः प्रभावितानि भवन्ति। सृष्टिप्रक्रियायां छान्दोग्योपनिषदि प्राप्यते-तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः आकांशाद्वायुर्वायोरग्निरवने रापोऽद्भ्यः पृथिवीति।

निरुक्ते प्राप्यते—आकाशगुणः शब्दः, शब्दोगुणो यस्य एवं भूतः आकाशः, आकाशाद्वायुर्द्विगुणः स्पर्शेन, वायोर्ज्योति स्त्रिगुणं रूपेण, ज्योतिषोऽपेक्षया आपश्चतुर्गुणा रसेन, अद्भ्यः पृथिवी पञ्चगुणागन्धेन। पृथिव्याश्चस्थावरजंगमात्मकश्चराचररूपः भूतसंघः जायते। पृथिव्याः सर्वेषां प्रकृतिभूतानां गुणानां योगात् तेषां समेषां तत्त्वानां प्रभावस्तत्रस्थितेषु जीवेषु भवत्येवेति विचार्यते विविधपर्यावरणम्। विविधपर्यावरणेषु प्राकृतिकं सामाजिकं मानसिकं शैक्षिकं पारिवारिकंमित्यादीनि पर्यावरणानि। निरुक्ते विवेचितानि प्राकृतिकपर्यावरणे आकाशावरणं वायुतत्त्वावरणमग्नितत्त्वावरणं जलतत्त्वावरणं पृथिवीतत्त्वावरणञ्च विवेचितम्।

*

V-21

कतिपय पाणिनि सूत्राणाम् विशेषव्याख्यानम्

डॉ. सत्येन्द्र शास्त्री, ग्वालियर

पाणिनेः अद्वितीयाकृतिः अष्टाध्यायीपुस्तकमस्ति। शब्दविधाया प्राचीनतमः ग्रन्थोऽस्ति। पाणिनि मुनिना एव संस्कृतभाषां अमरताप्रदत्त । व्याकरणेप्रकृतिप्रत्ययस्य विचाराः उदातानुदातस्वरित स्वराणां विचारास्वरसंचारनियमासन्धि नियमा इत्यादीनां वर्णनं प्राप्यते। व्याकरणं सर्ववेदानां पारिषदमस्ति। पाणिने भाषाकेवलं संस्कृतभाषा एवं नैव अपितु सर्वसाधारणव्यावहारिकीं भाषा अस्ति। कतिपय पाणिनिसूत्राणां विशेषव्याख्यानम् इति विषयं आधृत्य कतिपय सूत्राणि अस्माभिव्यवहारिकीं शिक्षां प्रददति। तेषां विश्लेषणं प्रस्तूयते। अष्टाध्यायीजगन्माता इति सुप्रसिद्धमस्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

1. संसारे प्रथमं वृद्धिं अपेक्षितं भवति तदनन्तरं गुणस्य उपार्जनं भवति। अष्टाध्यायां अपि प्रथमं सूत्रमस्ति वृद्धिरादैच (1।1।1 अष्टा.)। इदं संज्ञासूत्रमस्ति। आ ऐ औ इत्येतेषां वर्णानां वृद्धिसंज्ञा भवति। यथा भागः, त्यागः साग। नायकः चायक इत्यादयः प्रयोगाः। सिद्ध्यन्ति। शब्दनिर्माणेवृद्धिं आवश्यकमस्तितथैव व्यावहारिकीं शिक्षां विषयेवृद्धिं प्रथमं आवश्यकं अस्ति। जनाः अपि प्रथमं स्ववृद्धिं इच्छन्ति तत्पश्चातगुणोवर्णनं कुर्वन्ति। पाणिनिना द्वितीयं सूत्रम् लिखितम् अदेङ्गुणः (1।1।2 अष्टाः) अ ए ओ इत्येषां वर्णानां गुण संज्ञा भवति। यथा चेता, नेता, स्तोता कर्ता हर्ता इत्यादय प्रयोगाः सिद्ध्यन्ति। अस्माभिः गुणाधानं कर्त्तव्यम् इति शिक्षां वर्तते।

❋

V-22

परमाणुशब्दप्रवृत्तिनिमित्तविमर्शः

डॉ. रामकुमार, हिमाचलप्रदेश

जातिर्गुणः क्रियायदृच्छाचेति चतुष्टयी। शब्दानां प्रवृत्तिरिति महाभाष्यानुसारिणामालङ्कारिकाणां मुकुल-मम्मटभट्टादीनां सिद्धान्तः। अस्याऽव्याप्तिः परमाणुशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्ते परमाणुत्वे। परमाणुत्वं हि न जातिः, पृथिवीत्वादिभिः साङ्कर्यात्। नापि गुणः, नित्यत्वेन विशेषाधानहेतुत्वाभावात् साध्यत्वाभावान्न क्रिया। शब्दरूपत्वाभावेनापि यदृच्छा च। मुकुलभट्टमते परमाणुत्वं पारिमाण्डल्यशब्दाभिधेयमणुपरिमाणरूपं शुक्लादिगुणसदृशत्वेन महत्त्वव्यावर्तकतया विशेषाधानहेतुत्वेन गुण एव। काव्यप्रकाशस्य कतिपये व्याख्यातारोऽपीदमेव मन्यन्ते। मम्मटस्यतद्व्याख्यातृणांच केषाञ्चिन्मतेऽणुपरिमाणरूपे परमाणुत्वे वैशेषिकाणां गुणत्वव्यवहारः पारिभाषिकोभाक्त इति यावत्। वस्तुतस्तु पदार्थप्राणप्रदत्वेन परमाणुत्वस्येजातित्वमेव। इत्थं मुकुलादिमते परमाणुशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तं परमाणुत्वं गुण एव, मम्मटादिमते तु जातिरेव। तत्र गुणत्व पक्षं निराकृत्य जातित्वपक्षएव विविधम् प्रमाणैरत्र शोधनिबन्धे सिद्धान्तितः।

❋

V-23

शब्दब्रह्मसमीक्षा

डॉ. रामानुग्रह शर्मा, राँची (झारखण्ड राज्यम्)

अनादि निधनं ब्रह्म शब्द तत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्त्ततेऽर्थ भावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शब्दष्वेवाश्रिता शक्तिर्विश्वस्यास्य निबन्धिनी।
यन्नेत्रः प्रतिभात्माय भेदरूपः प्रतीयते प्रतीयते॥

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥

एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः स्वर्गे लोके च काम धुक् भवति। ज्ञत्यादिना यदेकं प्रक्रिया भेदैर्बहुधा प्रविभज्यते॥ ''तद् व्याकरणमागम्य परब्रह्माधि गम्यते'' (वाक्यपदीयम्) इत्यादि वाक्य पदीयात्। ''सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे'' इति वार्त्तिके सर्वशब्दानां घटत्वादिरूपा सत्योपाध्यवच्छिन्नं ब्राह्मैव वाच्यम् इति।

*

V-24

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्ते

डॉ. जयनारायण पाण्डेयः, राँची (झारखण्डः)

वेदाः विश्वस्य प्राचीनतमाः ग्रन्थाः सन्ति। तत्र अथर्ववेदः अन्तिमः ग्रन्थः विद्यते। वैदिककर्मकाण्ड-दृष्ट्या अथर्ववेदस्य महत्वपूर्णं स्थानं विद्यते। वैदिककर्मकाण्डानां संचालनं चतुर्णाम् ऋत्विजां तत्त्वावधाने भवति। तेषु ब्रह्मणः स्थानं मुख्यं विद्यते। अस्य पदस्य अधिकारी अथर्ववेदज्ञः एव भवति। स्वयं ऋग्वेदः कथयति—''यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्ते।'' यज्ञस्य प्रथमज्ञानं सर्वप्रथमम् अथर्वा ऋषिः अदात्।

ईश्वरः यज्ञस्वरूपः। तस्य सम्पूर्णा सृष्टिः प्राकृतयज्ञात्मका। भारतीय संस्कृतिः यज्ञपरकैव। अथर्ववेदः वर्णयति—''स यज्ञः तस्य यज्ञः।'' अथर्वा ऋषिः काम्यति यत् नद्यः सर्वदा प्रवहरणशीला भवेयुः, वायुः प्रवातु, पक्षिणः उत्पतन्तु। अस्माकं वाचः यज्ञसम्बर्द्धनं प्रकुर्वन्तु। अतः समस्तसुखप्रदातृयज्ञः सर्वदा हविषा अनुष्ठेयम्—

''सं स्रवन्तु नद्यः संवातः संपतत्रिणः।
यज्ञमिमं वर्धयतां गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि॥''

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-25

पर्यावरणदिशा यज्ञमहत्त्वम्

शिशिर कुमार पाण्डेय, राँची

भारतीयसंस्कृतौ वेदपुराणेषु च पर्यावरणसंरक्षणार्थं यज्ञस्य महत्त्वं प्राचुर्य्येण वर्णितमस्ति। वेदानां मुख्य प्रवृत्तिः यज्ञानुष्ठानमुखा दृश्यते। ऋग्वेदस्य प्रारम्भमेव यज्ञोपकरणस्य स्मरणादेव भवति—''अग्निमीले पुरोहितम्, यज्ञस्य देवमृत्विजम्, होतारं रत्नधातमम्।'' यजुर्वेद शब्दस्यार्थः एव विद्यते यज्ञप्रतिपादको ग्रन्थः। 'देवाः यज्ञमतन्वत' यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः' 'यज्ञोऽध्ययनं दानम्' (छा०) आदि वचनैः ज्ञायते यत् यज्ञः धर्मस्य सर्वोत्तमः प्रथमः स्कन्धः अस्ति।

यतः यज्ञैः पर्यावरणं पवित्रं संरक्षितञ्च भवति। विभिन्नानामोषधीनां वनस्पतीनाञ्च योगे उपयोगो भवति। येव अनेकेषां रोगकृमीणां विषाक्तगैसीय पदार्थनाञ्च विनाशो भवति यज्ञैनैव प्रकृतिः शक्तिसम्पन्ना जायते। पृथ्वीजलतेजो वायुः आकाशादि पञ्चतत्त्वैः सृष्टि संरचना जाता। एतेषु तत्त्वेषु शुद्धो वायुः जलञ्च मानवानां प्राणिनां च कृते अपरिहार्ये विद्येते। धृतदुग्धादिकैः अन्नैः गुग्गुलादिध्वनीयद्रव्यैश्च वायुः सुवासितं पर्यावरणं परिशुद्धञ्च भवति। यज्ञस्य महत्त्वं प्रतिपादयितुम् ईश्वरः यज्ञरूपः कथ्यते, तस्य कृतिश्च प्राकृतिकयज्ञरूपा च। अयं यज्ञः समस्त भुवनस्य नाभिः। अयं दीर्घायुष्यं शतायुष्यञ्च प्रददाति। यज्ञात् पर्जन्यो भवति, पर्जन्यादन्नसम्भवः सम्पद्यते। इत्थं पर्यावरण संरक्षणे जीवानां परिपाले च यज्ञस्य महत्त्वपूर्णं योगदानमस्ति।

*

V-26

वेदेषु मानवता

डॉ. प्रवीण देवी, अजीतमल, औरैया (उ०प्र०)

भद्रं वै वृणुते भद्रं युञ्जन्ति दक्षिणम्।
भद्रं वैवस्वते चक्षुर्बहुत्रा जीवितो मनः॥

ऋ०—10/164/2

ऋग्वेदस्य उपर्युक्तमन्त्रेणैव प्रकटीकृतः यत् भद्रस्याकांक्षीपुरुषः न केवलं मानवं प्रति अपितु इतरप्राणिनम् प्रत्यपि शुभदृष्टिं निक्षिपेत्। इयं भावना विद्यते वेदेषु। धर्मार्थकाममोक्षरूपचतुर्विधपुरुषार्थ साधनेनैव जीवन लक्ष्यं भवति। एतत् पुरुषार्थसाधनाय वैदिकसाहित्यमनवरतमुपयुज्यते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संक्षेपेण विश्वकल्याणाय विश्वप्रेमपरिवर्धनं, कर्तव्यनिर्वहणस्त्रीणामादरं, न्यायमार्गेण धनोपार्जनं, उदारता, दया, सत्यभाषणं, मधुरभाषणं सत्संगमः, सुपथगमनं, पवित्रता, सदाचरणमित्याद्यंशा सर्वदोपयुक्ताः भवन्तीति एतादृशानि बीजानि वेदेष्वनेकत्रोपलभ्यन्ते।

मानवता स्थापयितुं वेदेषु नैके उंपदेशाः विद्यन्ते। सर्वप्रथमन्तु स्वयमेव दुरितानि दूरीकर्तुं प्रार्थना कृता। अनेन प्रकारेण पारिवारिकसौहार्दतायै उपदेशोऽस्ति।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यच्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥

*

V-27

वैदिकपाण्डुलिपीनां सम्पादने प्रो. व्रजबिहारी चौबे महोदयानां योगदानम्

डॉ. कन्हैयालाल पराशर, होशियारपुर

कस्यापि देशस्य संस्कृति-संरक्षणे हस्तलिखितग्रन्थानामस्ति विशिष्टं महत्त्वम्। संस्कृतभाषायां हस्तलिखितग्रन्थानाम् अपारनिधिरस्ति। अतिप्राचीनकाले अस्माकं पूर्वजा ऋषयोमुनयश्च जीवनोपयोगि-विषयानधिकृत्य नैकान् गम्भीरग्रन्थान् रचितवन्तः। तेषामीदृशी भावनाऽऽसीत् यत्तैर्विरचितैर्ग्रन्थैर्न केवलं भाविभारतीया सन्ततिरुपकृता भविष्यति प्रत्युत विश्वसमुदायस्य विविध-ज्ञान-विज्ञान-क्षेत्रेषु दिशानिर्देशोऽपि भविष्यति। खेदस्यायं विषयोऽस्ति यद् हस्तलिखितग्रन्थान् प्रति सर्वत्रौदासीन्यवशाद् बहवो हस्तलिखितग्रन्थास्तु कालकवलिताः सञ्जाताः। अवशिष्टपाण्डुलिपीनामस्ति महती संख्या या स्वमोक्षं (प्रकाशनम्) प्रतीक्षते।

वैदिक पाण्डुलिपीनाम् मोक्षकरणे राष्ट्रपतिपुरस्कारभाजां होशियारपुरस्थ पंजाब विश्वविद्यालयस्य वि.वि. संस्कृत व भारत-भारती-अनुशीलन संस्थानस्य पूर्व निदेशकानामेवं सम्प्रति होशियारपुर एव संज्ञान वैदिक अध्ययन एवं शोधकेन्द्रस्य निदेशकानां प्रो. व्रजबिहारी चौबे महोदयानामनुपमं योगदानमस्ति। प्रो. चौबे महोदयैरधोवर्णित वैदिक पाण्डुलिपीनां समालोचनात्मकं सम्पादनं कृतम्—

1. वाधूलश्रौतसूत्रम्—कृष्णयजुर्वेदीयस्यास्य श्रौतसूत्रस्य विशदभूमिकया सूचिभिश्च समलङ्कृतम् समालोचनात्मकं संस्करणम् 1993 खिष्टाब्दे प्रकाशितम्। अस्य पूर्णा पाण्डुलिपिः दुष्प्राप्याऽऽसीत्। प्रो. चौबे महोद्यैर् दीर्घकालपर्यन्तं प्रयत्नो विहितः। एभिरेव सम्पूर्णा पाण्डुलिपिः विस्तृत-प्रस्तावनया परिशिष्टेन च सह प्रकाशिता। अस्य पुरोवाक्-लेखको दाण्डेकर महोदयो वर्तते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

2. वाधूल-स्मृतिः—अस्या विशद्भूमिकया विविधाभिरनुक्रमणीभिश्च समलङ्कृतम् हिन्दी-अनुवाद-सहितं समालोचनात्मकं संस्करणम् 2000 तमे ईस्वीयवर्षे प्रकाशितम्। वैष्णव सम्प्रदायस्येयं स्मृतिर्वैष्णव-ब्राह्मणानामाचारसंहिता वर्तते।

3. वाधूल-अन्वाख्ययानम्—अस्य समालोचनात्मकं प्रथमं संस्करणम् विस्तृतभूमिकया विविधाभिरनुक्रमणीभिः सह पाठविमर्शादियुतं 2001 तमे इस्वीयवर्षे प्रकाशितम्।

4. वाधूलप्रायश्चित्तम्—श्रौतयज्ञसम्बन्धितस्यास्य ग्रन्थस्य विशदभूमिका सहितं परिशिष्टैरनुक्रमणीभिश्च भूषितं पाठ विमर्शादिपूर्वकं समालोचनात्मकं पूर्णावस्थायाम् प्रथमं संस्करणम् 2001 तमे खिष्टाब्दे प्रकाशितम्।

5. आश्वलायनशाखीयऋग्वेदसंहिता—अस्याः संहितायाः सम्पादनम् कृतम्।

6. आश्वलायन श्रौतसूत्रम् (भाग 2 व 3) देवव्रातव्याख्यायुतं प्रकाशितम्।

*

V-28

शब्दशास्त्रीय बाधपदार्थ विचारः

प्रदीप कुमार पाण्डेय, इलाहाबाद (यू०पी०)

व्याकरणेन हि शब्दसंस्कारो भवति। तत्राऽप्रयुक्तानां कश्चन नूतनानां शब्दानाम् अथवा प्रयुक्तानां शब्दनामिति विचारप्रसङ्गे भगवता भाष्यकारेण भणितं यत् "**प्रयुक्तानामदिमन्वाख्यानमिति**" अर्थात् लोके प्रयुक्तानां शब्दानां संस्कारः पाणिनिप्रोक्तव्याकरणेन भवति। परन्तु शब्दसंस्कारप्रसङ्गे नानानियमाः प्रोक्ताः सन्ति व्याकरणे। यथा—**पूर्वपरनित्याऽन्तरङ्गाऽपवादानामुत्तरोत्तरवलीयः** इति। अनया परिभाषया क्रमेणोत्तरोत्तर बलवत्वं बोध्यते। तथा चेदं सिद्धति यत् सर्वापेक्षया, अपवादो बलवान् भवति। उक्तमपि—**अन्तरङ्गादप्यपवादो बलवान्** पूर्वमर-० इति परभाषायामपिना परनित्ययोरपि समुच्चयः।

अन्तरङ्गादप्यपवादो बलवान् भवति। संग्राहकेऽस्मिन् वाक्ये घटकतया प्रविष्टोयोऽपवाद शब्दः तस्याऽर्थो निर्वचनं कर्तुमाह—

"**येन नाप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति**" इति

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-29

पृत्वा तिष्ठत् दशाङ्गुलम्

डॉ. हरेकृष्ण मिश्रः, शान्तिनिकेतनम् (बंगाल)

पुरुष सूक्तस्य प्रथममन्त्रस्य अन्तिम-पादोऽयं न केवलम् ऋग्वेदे अपितु अन्यत्रापि प्राप्यते सामान्य परिवर्तनेन साकम् पृत्वा, वृत्वा अथवा स्पृत्वा इत्यादि शब्दानां वैकल्पिकः प्रयोगः प्राप्यते मन्त्रेऽस्मिन्। वस्तुतः बहुप्रचारितस्य पुरुष सूक्तस्य प्राप्तिः बहुषु स्थानेषु परिवर्तनेन साकमेव प्राप्यते, सूक्तस्यास्य प्राप्तिस्थानानि भवन्ति—

ऋग्वेदः—10

यजुर्वेदः (माध्यन्दिनम्)—31.1

यजुर्वेदः (काण्वम्)—35.1

अथर्ववेदः (शौनकः)—19.6

अथर्ववेदः (पैप्पलादः)—16.5

सामवेदः —617-621

तैत्तिरीय आरण्यकम्—3.12

सर्वत्रैव ''दशाङ्गुलं'' इत्येतस्य पदस्य प्रयोगः दृश्यते।

❋

V-30

अग्निमीले पुरोहितं.....भाष्य समीक्षणम्

श्रीमती प्रणति महापात्रः, शान्तिनिकेतनम् (बंगाल)

ऋग्वेदस्य प्रथममण्डलस्य प्रथम-सूक्तस्य प्रथम-मन्त्रोऽयं मह्यपि बहुभिः वह्वालोचितः तथापि प्रबन्धोऽस्मिन् पुनः तस्य मन्त्रस्य समीक्षणं भविष्यति। समीक्षणस्य आधारः भविष्यति तस्य व्याख्यायां व्यावृताः वैदिक व्याखकर्तारः, भाष्यकर्तारः च, अत्र प्रबन्धेस्मिन् भाष्यकर्तृषु मुख्यतः सायण-माधव-स्कन्द-दयानन्दादीनां ग्रहणं भविष्यति। ततः विषयानुरुपाया आलोचनायाः कृते वेदव्याख्या कर्तृषु आलोचकेषु वा श्री अरविन्दस्य, म्याक्समुल्लार महोदयस्य, म्याक्डेनाल्-महोदयस्य, उमेशचन्द्र विद्यालंकारस्य

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मधुसूदन ओझा महोदयस्य च निगमनिरुक्तद्यनुरूपं पुनः वयक्तिक-चिन्तनानुरूपं तुलनात्मकमध्ययनं परिशीलनं समीक्षणं वा भविष्यति।

*

V-31

यज्ञतत्त्वविमर्शः

डॉ. कु. कुमुद कान्हे, रायपुर (छत्तीसगढ़)

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। वेदाः हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः।
यज्ञेन यज्ञमजयन्त देवा स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्॥

ऋ० 5-164-50

देवाः यज्ञेन यज्ञम् अजयन्त। यज्ञो वै भगवान् विष्णुः इति प्रसिद्धम्। अमरकोषकारः कथयति— यज्ञः सवो ऽध्वरो यागः सप्ततन्तुः मखः क्रतुः इति। तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे। पुरुष सूक्त श्रीमद् भगवद्गीतायामपि तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् इत्युक्तम्।

तैत्तरीय संहितायाम्—ज्यायमानो वै ब्राह्मणाः त्रिभिः ऋणवान् जायते, यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः, स्वाध्यायेन ऋषिभ्यः--------। स्वर्गकामः नरः यजेदवश्यम्। सांसारिकाः यज्ञम् जन्मना प्रारभेयुः।

अस्माकं पूर्वजाः धार्मिकाः आसन्। गृहे-गृहे यज्ञसंख्या आसन्। ते पंचमहायज्ञाः कुर्वन्ति स्म। यथा—

(1) वेदादेः पठनं ब्रह्मयज्ञः।

(2) वैश्वदेवहोमः स देवयज्ञः।

(3) अतिथीनां अन्नादिना पोषणं मनुष्ययज्ञः।

(4) बलिहरणं भूतयज्ञः।

(5) पितृणामन्नोदकादिना तृप्ति संपादनं पितृयज्ञाः एतान् यज्ञान् अहरहः कुर्वीत इति श्रुतेरनुपालनं कर्वन्ति स्म।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-32

ऋग्वैदिकयुगे अंगनाधिकारः

श्रीसुबोध कुमार मिश्र भागवती, गुवाहाटी

वेदानां मध्ये ऋग्वेदः आदौ एव प्राप्यते। ऋग्वैदिकयुगे अंगनानाम् अधिकारविषयकं पर्यालोचनं भवेत्। तस्मिन् काले गार्हस्थधर्मेषु, विवाहादि संस्कारेषु, धर्मक्षेत्रेषु, नियोगेषु, सैनिककार्येषु, शिक्षाक्षेत्रेषु इत्यादि बहुविषयेषु अंगनानाम् अधिकाराः आलोचिताः वर्तन्ते। वस्तुतः साम्प्रतिककालेन सह ऋग्वैदिकयुगस्य कीदृशं सादृश्यं वर्तते तदेव पर्यालोचनम् एव अस्य गवेषणापत्रस्य मुख्योद्देश्यम्।

*

V-33

वैयाकरणमते शब्दार्थस्वरूपविमर्शः

डॉ. त्रिलोक नाथ झा, दरभंगा (बिहार)

अत्रेदं विचार्यते यच्छब्दार्थस्वरूपविमर्शावसरे अनेके दार्शनिकाः विवदन्ते। तत्र केषांचिन् मते द्रव्यस्य शब्दार्थत्वम्, अपरेषां मते जातिविशिष्टद्रव्यस्यपदार्थत्वम्, अन्येषां मते जातेरेवपदार्थत्वं स्वीकृतं वर्तते। तत्र विभिन्नैस्तर्कैः स्वीयं मतं पुष्णन्ति दार्शनिकाः। तत्र मीमांसकाः जातावेव शक्तिं स्वीकुर्वन्ति। तन्मते जातिरेव-शब्दार्थः सर्वैः पदैर्जातिरेव अभिधीयते। अतः जातावेव सङ्केतः स्वीकरणीयः। जातौ—अर्थक्रियाकारित्वाभावात्जात्याव्यक्तिरक्षिप्यते अर्थात् अर्थापत्तिप्रमाणेन व्यक्तेर्बोधः संजायते—इति। नैयायिकास्तु "जात्याकृतिव्यक्तयः पदार्थः" इति सूत्रदिशा त्रयाणां जात्यादीनां पदार्थत्वं मन्यन्ते। अर्थात् पदजन्यप्रतीतिविषयत्वं त्रिषु जात्याकृति व्यक्तिषु समानतया वर्तते। अतः त्रयाणां जात्याकृतिव्यक्तीनां पदार्थत्वं स्वीकर्त्तव्यम् इति तेषाम् अभिप्रायः। संक्षिप्ततया जातिविशिष्टव्यक्तावेव सङ्केतो गृह्यते नहि केवलं जात्याव्यक्त्या वा प्रयोजनं सिद्धयति। जातेरचेतनत्वात् व्यक्तेश्चानन्त्यादेकत्र सङ्केतः कर्तुं नैव युज्यते। अतः जातिविशिष्ट व्यक्तावेव सङ्केतो गृह्यते। ततश्च जातिविशिष्ट व्यक्तिरेव शब्दार्थः सिद्धयति। तत्र वैयाकरणाः शब्दार्थस्वरूपनिर्णयावसरे सम्यग् विचारं प्रस्तुवन्ति। तन्मते नैव केवलं जातेः शब्दार्थत्वं स्वीक्रियते न वा व्यक्तेः। अतः उभयोः पदार्थत्वं अवश्यमेवं स्वीकरणीयं लक्ष्यानुरोधात्। अतएव तन्निर्णयावसरे भगवता-भाष्यकृता पतञ्जलिना महाभाष्ये प्रोक्तं यत् "किं पुनराकृतिः पदार्थः आहोस्विद् द्रव्यम् उभयत्र विचारणायां स्वकीयं मतं दत्तं यद् उभयं पदार्थः इति।" नहि एकेन पदार्थेन् शब्दार्थेन वा लक्ष्यं सिद्धयति—इति।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-34

गर्भाधान संस्कारः

वंशीधरमिश्रः, झारखण्ड राज्यम्

षोडश संस्कारेषु गर्भाधानाख्यः संस्कारः प्रमुखो भवति। पुरुषस्य यादृशी भावनाभवति तादृशी सन्ततिर्मातुर्गभेऽवतरति। वसुदेवेन भगवद् भावनयाकृते देवक्यां गर्भाधाने भगवान् भूलोके भूमेः कष्ट हरणायावतरितः। साम्प्रतिके काले संस्कारोऽयं दूषितोऽस्ति। अस्य रौद्रं भयप्रदं फलंदृश्यते भूमण्डले। शोधे पल्लवितोऽयं विचारः

*

V-35

वेदाङ्गकल्पोक्त कृषि-शास्त्रम्

निरंजन मिश्र, पुरी

कृषि एव अस्माकं जीवनस्य मूलम्। अस्माकं देशंस्तु कृषिप्रधानः। कृष्या एव मनुष्यानां जीवनयात्रा सिध्यति। अतएव वैदिक मनीषिभिः कृषिकर्मणो दिव्यत्वं समुकल्पितम्। संप्रति कृषेः उन्नत्यर्थं विज्ञानस्य सहायतया कृषिकर्म क्रियते। उन्नतानां वीजानां अन्वेषणं, कृषिसाधानां वैज्ञानिकी करणं, कृषि भूमेः वैज्ञानिकं परीक्षणं इत्यादिनां सम्यगतया सम्पादनाय सर्वकारेण सर्वविधयत्नं कृतं विद्यते। यस्मिन् देशे क्षेत्राणि सम्यग् कृष्यन्ते तत्र धनधान्यं वर्धते। कारणं कृषिएव सर्वश्रेष्ठं धनमस्ति। ऐहिपारलौकिक उभय सुखशान्ति लाभाय कृषेः परमावश्यकता अस्ति। कृषिसमृद्धयैव राष्ट्रस्य अभ्युदयो भवतीति सुनिश्चितम्।

अतः यथार्थेन भगवान् पतञ्जलिः आह *''अर्थवानयं देश उच्यते यस्मिन् गावः सस्यानि च वर्त्तन्ते इति।''* कृषिः श्रियः सौख्यस्य सौन्धर्यस्य च निधानम्। संप्रति अस्माकं देशः कृषिं प्रति सविशेषं जागरुकोऽस्ति, यतोहि कृषेरभ्युदयेन एव अस्माकं राष्ट्रः मुर्धन्यस्थानमवाप्तुं शक्नोति। एतदर्थं ऋग्वेदे कृषेः वर्णना दृश्यते *''अक्षैर्मादिव्या कृषिमित् कृषष्व, वितेरमष्व वहुमन्यः मानः।''* सांप्रतिक युगे अन्नं परित्यज्य नकोऽपि जीवः स्थातुं सक्यते। अतः अन्नउत्पत्नार्थं कृषिविषयकं ज्ञानं नितान्तमावश्यकम्। शुक्लयर्जुवेदस्य काण्वशाखायां कृषेः उपयोगिता विषये वर्णनं दृश्यते। यत् यथा—

''युन्नक्त सीरा वियुगा तनुध्वं कृधेयोनौ वपतेह बीजम्।
गीराच सृष्टि स्सभरा असन्नोनेदीय इत्श्रुन्य पक्वमेयात्॥''

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-36

वैदिकं स्वरविज्ञानम्

डॉ. ब्रह्मचारी व्यासनन्दनः, मुजफ्फरपुरम्

चतसृषु वेदसंहितासु वैदिकस्वराणां विशिष्टं महत्त्वं विराजते। वैदिकमन्त्राणामुच्चारणक्रमे एतेषाम् उदात्तानुदात्तस्वरितस्वराणां वैज्ञानिकता अर्थपरिवर्त्तनदृष्ट्या अतिविशिष्टा। प्रतिशाख्येषु शिक्षाग्रन्थेषु च विशेषस्वरनियमानां विवेचनं प्राप्तं भवति इत्यस्मिन् प्रसङ्गे प्रातिशाख्यकाराणां शिक्षाकाराणाञ्च मतव्यतिरिक्तं वैयाकरणानां मतमप्युपलभ्यते वैदिकभाषायाः स्वरविषयकनियमानां तेषाञ्च वैशिष्ट्यानां पूर्णरूपेण विवेचनं कृतं वैयाकरणैरपि। महाभाष्यकारेण महर्षिणा पतञ्जलिना वैदिकस्वराणां वैज्ञानिकविश्लेषणं कुर्वता इत्थं भणितम्—

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग् वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुस्वरतोपरतोपराधात्॥

(महाभाष्ये पस्पशाह्निके)

मन्त्रस्थपदानामर्थनिर्धारणे स्वराणां सम्यगुच्चारणमेव सहायकं भवति। पदेषु स्वराणां स्थानपरिवर्त्तन-द्वारा अर्थपरिवर्त्तनं जायते। स्वरेषु स्थानकारणत्वात् अस्य नामकरणं नित्यस्वरः समासे प्रकृतिस्वरर्वा भवति। वैदिकवाङ्मयस्याधिकांशभागे गेयकारणत्वात् प्रयुक्तानाम् अच्-धर्म-रूपस्वराणां त्रिविधं स्वरूपं विद्यते तन्नामत्रैस्वर्यम्। महर्षिणा पाणिनिना त्रैस्वर्यं प्रति त्रीणि सूत्राणि विरचितानि—उच्चैरुदात्तः (पा०सू० 1.2.29), नीचैरनुदात्तः (पा० 1.2.30), समाहारः स्वरितः (पा० 1.2.31)। उदाहरणं यथाक्रमानुसारम्—अ, अ, अं।

ऋक्यजुअथर्वसंहितासु त्रैस्वर्यस्य एतत् रूपं मिलति। परन्तु, सामवेदस्य गानसंहितायाम् अस्याभावः दृश्यते। अस्यां संहितायां 'सप्तस्वरपद्धतिः' विद्यते। सामगाने प्रयुक्ते स्वरसप्तके ये स्वराः सन्ति तेषां नामानि—क्रुष्टु-प्रथम-द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ-मन्द्र-अतिस्वार्याश्च। अपरं नाम विद्यते शिक्षाग्रन्थे-षड्ज-ऋषभ-गान्धार- मध्यम-पञ्चम-धैवत-निषादाश्च।

सामगानपरम्परायां कष्ट्वादय एव सप्तस्वराः प्रचलिताः सन्ति। तत्र स्वराङ्कनप्रक्रिया एतादृशी भवति—एकतः सप्ताङ्काः। (1,2,3,4,5,6,7) निर्दिष्टाः भवन्ति मन्त्राणामुपरि मन्त्रान् पदानि वा अन्तरा च। अवरोहक्रमे 1,2,3,4,5 एते अङ्काः निर्दिश्यन्ते तथा च आरोहक्रमे 5,4,3,2,1 लिख्यन्ते। हस्तसञ्चालनमाध्यमेन वीणादिवाद्ययन्त्रद्वारा च पञ्च-सप्तस्वराणामर्थवैचित्र्यं वैज्ञानिकं रहस्यञ्च प्राप्येते। एको सामगानमन्त्रः द्रष्टव्यः—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[3]काऽऽस्त्वा[1]। सत्यौ[4] 3मा[2]3 दा[4]नां[5]म्। मा[1]। [32]हिष्ठोमा[1]त्सा[2]दन्ध। सा औ[2] हो[2] हा[2]इ। [1]दृढा यिदा[2]। [3]रुजौहो[2]3। [1]हुम्मा[2]। वा[1]ऽ2सो3ऽ5 हा[2]यि॥

उदात्तादिप्रचय-(एकश्रुति) वैदिकस्वराणां मन्त्रार्थरक्षार्थं मन्त्रार्थबोधार्थसन्दर्भे च महती विशेषता परिलक्ष्यते। अनेन प्रकारेण संक्षेपतः मम शोधलेले वैदिकस्वराणां विवेचनम् अभवत् भविष्यतीति वा।

*

V-37

वैयाकरणमते द्रव्यपदार्थविमर्शः

डॉ. विनय कुमार झा, दरभंगा (बिहार)

पदार्थतत्त्वनिर्णयावसरे बहूनि मतानि प्रतिपदं दृष्टिगोचराणि भवन्ति। अत्र विषये बहवः सम्प्रदायाः प्रचलिताः सन्ति। सर्वेषां सम्प्रदायानां पृथक्-पृथग् वर्तते किमपि वैशिष्ट्यम्। तत्र सर्वे शास्त्रधुरिणाः विद्वांसः स्व-स्व मतानुसारं स्वकीयं पक्षं समुपस्थापयन्ति विभिन्नैः प्रमाणैः तर्कैश्च प्रमाणयन्ति च। तत्र कस्य मतं ग्राह्यं कस्य च मतं हेयम् इति कृत्वा नैव निश्चिन्वन्ति विद्वांसः। तर्कबलात् समेषां विदुषां मतानि संगृहितानि सन्ति। प्रायः सर्वे सम्प्रदायवादिनः स्वकीयमतानुसारमेव पदार्थतत्त्वस्य निर्णयं कुर्वन्ति। अत्र विषये यथामति संक्षेपतया कमपि विचारं प्रस्तौमि। तत्र ये खलु द्रव्यपदार्थवादिनः सन्ति तेषां मते अर्थक्रियाकारितायां द्रव्यस्यैव उपादेयतया तदेव प्रवर्तकम् अस्ति लोकानाम्। अर्थात् जनाः द्रव्यम् (व्यक्तिम्) आदायैव कस्मिंश्चिद् कर्मणि प्रवर्तन्ते। अत्रायं भावो यद् व्यक्तिरेव प्रवृत्ति-निवृत्ति योग्याभवतीति कृत्वा व्यक्तिरेव (द्रव्यं) पदार्थत्व- मिति स्वीकर्त्तव्यः। अर्थात् पदजन्यबोधविषयता व्यक्तावेव वर्तते नान्यत्र। अतः व्यक्तरेव पदार्थत्वं स्वीकरणीयम् अपि च व्यक्तेश्चेतनत्वात् तत्रैव सङ्केतः कर्तुमुचितः। जातेरचेतनत्वात् तत्र क्रियान्वयिता नैव युज्यते। क्रियायाः मूर्त्तवृत्तित्वात्। वस्तुतस्तु एकस्यैव द्रव्यतत्त्वस्य विभिन्नैः दार्शनिकैः भिन्नं-भिन्नं स्वरूपं नामभेदेन भिन्नतया वर्णितम्।

*

V-38

पञ्चाङ्गस्य अङ्गानि

डॉ. रामगुलाममिश्रः, पटना

विश्वस्मिन् सर्वाणि व्यावहारिकाणि अथवा पारमार्थिकानि कार्याणि कालाधीनानि सन्ति। कालबोधक-शास्त्रं केवलं ज्यौतिषमस्ति। "प्रत्यक्षं ज्यौतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ" इति। त्रिस्कन्धज्यौतिषस्य सिद्धान्त-स्कन्धे "सूर्यसिद्धान्तः" बह्वादरेण स्वीकृतः। यतोहि अस्य गणितम्

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अन्यसिद्धान्तापेक्षया सूक्ष्मम्—'आदित्यसिद्धान्तभवं च सूक्ष्मम्' इत्युक्तिवशात् स्पष्टम्। कालज्ञानार्थमेव भारते पञ्चाङ्गस्य निर्माणं भवति। इदमाधृत्य वार-तिथि-नक्षत्र-योग-करणानि ज्ञायन्ते। पूर्वं सिद्धान्तग्रंथानुसारेण पञ्चाङ्गस्य निर्माणं भवति स्म। पश्चात् तन्त्र-करणग्रन्थैः सुगमप्रकारेणास्य निर्माणं प्रारब्धम्। सृष्ट्यादित इस्टकालपर्यन्तमहर्गणवशाद्-ग्रहानयनस्य प्रक्रिया यत्रमस्ति तदेव सिद्धान्तग्रन्थः। कलियुगादित इष्टकालावधि अहर्गणवशाद्ग्रहानयनस्य प्रक्रिया तन्त्रे तथेष्टशकाब्देनाहर्गणंद्वारा ग्रहसाधनविधिर्यत्रास्ति तदेव करणग्रन्थः।

'मकरन्दः' तन्त्रग्रन्थोस्ति। ज्योतिर्विदपण्डितमकरन्दाचार्येण सरलप्रक्रियाद्वारा पञ्चाङ्गनिर्माणार्थं श्रीसूर्यसिद्धान्तमाधृत्य 'मकरन्दसारिणी' नामको ग्रन्थो निर्मितः। मकरन्दसारिण्यां पञ्चाङ्गनिर्माणार्थं किञ्चित् पद्यान्यपि सन्ति किन्तु तानि सामान्यजनेभ्यो नोपयुक्तानि। अतएव दैवज्ञदिवाकरो 'मकरन्दविवरणं' नामाख्यं ग्रन्थं रचितवान्। अस्योदाहरणं 1540 शकाब्दे दैवज्ञशिरोमणिना विश्वनाथेन स्पष्टतो लिखितम्। विवरणकारेण सूर्यसिद्धान्तोक्त स्पष्टग्रहसाधनविधिः न स्वीकृता। एवमेव श्रीमद्विष्णुदैवज्ञादिपण्डितैरपि अस्वीकृतेयं विधिः।

❋

V-39

समासः

डॉ. भारतचन्द्र महापात्र, राजौरी

''समसनं समासः'' समसनं शब्दस्यायमभिप्रायः मिलनमित्यर्थः। तञ्च पृथगर्थपदानामेकार्थो-परिस्थितिजनकत्वरूपमित्यर्थः। तत्र समसनमनेकेषां पदानामेकपदमित्यादि यत्संक्षेपणं समासः कथ्यते। तद्यथा भा० ज० पा०—भारतीय जनता पार्टीः। एन० सी०—नैश्नल कान्फ्रेंस्। पी० डी० पी०—पब्लिक डेमोक्रेटिक पार्टीः। स० पा०—समाजवादी पार्टीः। स च समासो बहुविधोभवति। समास विषये विद्वद्भिः मत-मतान्तराणि प्रदत्तानि सन्ति। केशाचिंन्मते समासः पचंधा, केषाचिंन्मते अष्टविध इति भवित।

द्वन्द्वो द्विगुरपि चाहं मदगेहे नित्यमव्ययीभावः।
तत्पुरुषः कर्मधारयो येनाहं स्याम्बहुव्रीहिः॥

अत्र द्वन्द्वसमासः, द्विगुसमासः, अव्ययीभावसमासः, तत्पुरुषसमासः, कर्मधारयसमासः, बहुव्रीहिसमासः इति समासः षडविधः परिगणितोऽस्ति। ''सुगमसंस्कृतव्याकरणे'' अव्ययीभावसमासः, तत्पुरुषसमासः, कर्मधारयसमासः, द्विगुणसमासः, बहुव्रीहिसमासः, द्वन्द्वसमासः, नञ्तत्पुरुषसमासः, अलुक-समासः अष्टविधा परिगणिताः, सन्ति। ''लघुसिद्धान्तकौमुद्यानुसारेण'' समासः पञ्चधा तद्यथा केवलसमासः, कर्मधारयस्य भेदः द्विगुः, बहुव्रीहिसमासः, द्वन्द्वसमासः इति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अव्ययीभावसमासः—प्रायेण पूर्वपदार्थ प्रधानः अव्ययीभावः यथा अधिहरि।

*

V-40

तद्धितप्रत्ययार्थ—परिशीलनम्

डॉ. विनोद कुमार झा, टोंक, (राजस्थान)

संस्कृते शब्दरचनायाः दृष्ट्या द्वौ प्रत्ययौ महत्त्वपूर्णौ वर्त्तेते-कृत् प्रत्ययः तद्वित-प्रत्ययश्च। कृत् प्रत्ययः धातुभ्यः विहितः भवति। यथा धातुभ्यः (शुद्धः कृदन्तो वा) विविधान् प्रत्ययान् विधाय अनेकानि नामानि=प्रातिपदिकानि निष्पद्यन्ते, तथैव प्रातिपदिकेभ्यः विविध-तद्वितप्रत्ययान् कृत्वा तद्धितान्तशब्दाः सम्पद्यन्ते। इमे तद्धितप्रत्ययाः विभिन्नान् अर्थान् अभिलक्ष्य उत्पदद्यन्ते। तद्धितप्रत्ययः समर्थसुबन्तेभ्यः विकल्पेन भवति। समर्थपदेन अत्र कृतसन्धिः गृह्यते। पाणिनि-अष्टाध्याय्यां महत्तमं प्रकरणं तद्धित-प्रकरणमस्ति। अष्टाध्याय्याः चतुर्थे पञ्चमे च अध्याये तद्धितप्रत्ययाः वर्णिताः सन्ति।

संस्कृतसाहित्यस्य अधिकांशः भागः तद्धितान्तानां प्रयोगेणपरिपूर्णः राजते। तद्धितान्ताः शब्दाः यथा—लौकिकः, वैदिकः, धार्मिकः, वैयाकरणः मीमासकादयश्च। "**तद्धिताः**"—4/1/76 इत्यतः आरभ्य पञ्चमाध्यायस्य समाप्तिं यावत् पठितसूत्रेभ्यः विहिताः प्रत्ययाः तद्धितसंज्ञकाः भवन्ति। 'तद्धित' एका अन्वर्थसंज्ञा विद्यते। यथा—तेभ्यः=प्रयोगेभ्यः हिताः तद्धिताः। तद्धितप्रत्ययः प्रयोगाणां निष्पत्तौ हितकरत्वात्=सहायकत्वाद् एव तद्धितः उच्यते।

ऐतिहासिकदृष्ट्या अपि अस्य प्रकरणस्य विशिष्टं महत्त्वं वर्त्तते। अत्र पाणिनिकालिक-भारतवर्षस्य प्राचीन-स्थानानां, जनपदानां नगरादीनाञ्च उल्लेखेन सह अनेकासाम् ऐतिहासिकव्यक्तीनां कुल-कृति-व्यवसाय-समाजिक रीति-रिवाज-भक्ष्याभक्ष्यादीनाञ्च वास्तविकं ज्ञानं भवति।

*

V-41

आधुनिकसन्दर्भे सिद्धान्ततत्त्वविवेकस्य वैशिष्ट्यनिरूपणम्

हरकेश तिवारी, राजौरी

भारतीय ज्योतिष सिद्धान्तस्य समुपलब्धेषु मानक ग्रन्थेषु सिद्धान्ततत्व विवेकाख्यः ग्रन्थोऽन्यतमः। अत्र सर्वेसिद्धान्तीयाः विषयाः व्याख्याताः सन्ति। प्रायशः प्रमुख स्थलेषु ग्रन्थकारेण स्वीकया प्रतिभायाः

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रदर्शनं अपिकृतम्। वरेण्याविदुषां सिद्धान्तानां खण्डनं स्वकीय मतस्य च उपस्थापनं ग्रन्थेऽस्मिन् दरिदृश्यते।

गणितेऽपि एतेषां महानश्रमः दृश्यते केचन नवीनसिद्धान्ताः अप्यत्र उपस्थापिताः आचार्येण अन्तरिक्षस्य विस्तरेण परिचय पुरःसरं सृष्टिप्रकृयात आरभ्य शेषवासना पर्यन्तं सगणितं प्रायशः ग्रहगणित, ग्रहण, शृङ्गोन्नति, पातसाधनादि सर्वे विषयाः सम्यक् प्रतिपादिताः।

ग्रन्थस्य विस्तारं अवलोक्य तथा च प्रमुख विषयाणां प्रायसः सर्वेषु ग्रन्थेषु प्रतिपादनं चावलोक्य पृष्टपेषणं न स्यात् इति मनसि सम्प्रधार्य केवलं कमलाकरस्य विशिष्ट सिद्धान्तानां एव समीक्षणं शोध प्रबन्धेऽस्मिन् मया कल्पितम्।

अत्र पूर्वाचार्याणां मतानां कमलाकर कृतं खण्डनं उपस्थाप्य तस्य औचित्य प्रदर्शनपुरःसरं ग्रन्थकारस्य मतस्य समीक्षणं प्रतिपादनं च अस्मिन् प्रबंधे इति अस्माकं मानसम्।

तथा च सौर सम्प्रदायस्य पोषकीय सिद्धान्तः अतीव प्रमाणिकः व्यवहारिकश्च इत्यपि अस्माभिः साधनीयम्।

यन्त्राणां विषयेऽपि यथास्मिन् ग्रंथे विवेचनं वर्तते। तस्याधारेण तस्योपयोगित्वं निरूपयन् तस्य आधुनिक सन्दर्भे महत्वमप्युस्थापनीयं वर्तते।

*

V-42

प्रथमार्थविचारः

डॉ. श्रीमती मनीषा पाठक, रायपुर छत्तीसगढ़

कारकरूपे विभक्त्यर्थे विचार्यमाणे तदनुषङ्गेण प्रथमाविभक्तिरपि विचार्यते। तद् विषये "अभिहिते प्रथमा" इति केषाञ्चिन् मतम् (महाभाष्ये 2.3.46) तिङादिभिरभिहिते कर्मादौ कारके प्रथमा। तिङादिभिरित्यस्य तिङ्कृत्-तद्धित-समासैरित्यर्थः। क्वचिन्निपातेनाप्यभिधानं भवति। तद्यथा—पच्यते ओदनः देवदत्तेन इत्यादौ तिङा कर्मणोऽभिधानम्, मांसपचनो, वह्निः - इत्यत्र मांसः पच्यते येनासौ मांसपचना इत्यर्थे ल्युटा करणाभिधानम्। गोघ्नोऽतिथिः इसत्र गां हन्ति असौ इति व्युत्पत्या क प्रत्ययेन सम्प्रदानाभिधानम्। प्रस्कन्दनः स्तम्भः - इत्यत्र प्रस्कन्दत्यस्मादिति व्युत्पत्तौ पञ्चम्यर्थे ल्युटा अपादानाभिधानम्। निशाननी शाणा - इत्यत्र निशान्यते तीक्ष्णीक्रियतेऽस्यां शस्त्रादिकमिति अधिकरणे ल्युटा अधिकरणस्याभिधानम्। पचति देवदत्तः इत्यादौ कर्तरि तिङा कर्तुरभिधानम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कृतं कटः इत्यत्र कृता कर्माभिधानम्।
औपगवः इत्यत्र तस्येदमित्यणा तद्धितेन सम्बन्धाभिधानम्।
चित्रगुः इत्यादौ समासेनापि सम्बन्धस्याभिधानम्।

वस्तुतः अभिहितलक्षणायां प्रथमाया वृक्षः पर्वतः इत्यादौ क्रियारहिते पदमात्रे प्रयुक्ते तिङादिभिरनभिहिते सति प्रथमा न प्राप्नोति। तत्र विधेया प्रथमा।

*

V-43

वैदिकिवाङ्मये समुद्रपदविमर्शः

डॉ. मञ्जुला देवी

संस्कृतवाङ्मये समुद्रपदस्य व्यापकः प्रयोगो दरीदृश्यते। यद्यपि समुद्रशब्दस्यार्थो मूलत उदधिरेवास्ति तथाप्येतद् व्यतिरिक्तेष्वपि अर्थेषु समुद्रपदस्य व्यवहार उपलभ्यते वैदिकसाहित्ये। समुद्रशब्दोऽयमनेकार्थः। तद् यथा—**समुद्रः उदकस्थानानि उदकं वा** (ऋ०वे०, 10.30.3; वा०स०; 17.4; तै०स०, 4.2.8.1); **समुद्रः अन्तरिक्षम्** (ऋ०वे०, 1.163.1; वा०स०, 23.48, श०ब्रा०, 9.4.2.5); **समुद्रः परमात्मा** (ऋ०वे०, 10.177.1; ऐ०आ०, 2.3.3; तै०स०, 7.5.25.2); **समुद्रः लोकाः** (वा०स०, 13.31); **समुद्रः आदित्यः** वा०स०, 13.16; श०ब्रा०, 114.2.2.2); 9.2.3.18 समुद्रोवायुः (तै०स०, 4.7.12.3; श०ब्रा०, 14.2.2.2) **समुद्रोऽग्निः** (ऋ०स०,4.58.1; 10.5.1; 10.5.1; वा०स०, 17.89); **समुद्रः सोमः** (ऋ०स०, 1.110.1; 9.2.5; 9.101.6); **समुद्रो धृतम्** (ऋ०स०, 4.58.1; तै०स०, 4.2.10.2); **समुद्रो मनः** (वा०स०, 13.53; श०ब्रा०, 7.5.2.52); **समुद्रः कामः** (अ०वे०, 3.29.7; तै०ब्रा०, 2.2.5.6); **समुद्रो वाक्** (ऐ०ब्रा०, 5.16; ता० महाब्रा०, 7.7.9); समुद्रः संख्याविशेषः (वा०स०, 17.2; श०ब्रा०, 7.3.1.39)। एवमेतावदर्थवैविध्यं समुद्रपदस्य वेदेषु बहु चर्चितमस्ति।

*

V-44

ऋग्वेदे गणपतेः स्थानं महात्म्यं च

किरण र. नागपूरकर, अकोल (महाराष्ट्र)

गजास्योऽयं कथयतेऽस्य मुखंगजास्यम्। शरीरं नरस्य। गजश्च ब्रह्म। यतः गम्यते प्राप्यते योगिजनै-रितितमः यतो जगदिदंजायते सः जः (यस्मात् बिम्बतया प्रणवात्मक जगत् जायते

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अतोऽस्योर्ध्वभागः निरुपाधिब्रह्मरूपः। अधोभागः नरात्मकः सोपधिखं मायोपहितेब्रह्म तत्त्वमसीति महावाक्य दृष्ट्यस्या-शिरस्तत्पदार्थेऽधोभागस्त्वं पदार्थः। असिक्रियया प्रतिपादयप्रतिपादकभावः सम्बन्धः।

ब्रह्मवैवर्तमौद्गल्वायु-भविष्य सौरादिषु महानिर्वाण-डामरादितन्त्रग्रन्थेषु च गणेशस्य विचारः कृतः हिन्दीभाषायामपि गणेश समन्वय किन्तु भगवततत्त्वपुराणविमर्श-भारतीय प्रतीकविद्यादिषु विचारः जातस्तत्र पाश्चात्यविदुष्या ए गेद्दीत्रीमत्याऽपि पुस्तकमेकं व्यलेखि।

वस्तुतस्तु स्वरूपव्याक्रियौव च पराक्रियैवं गणेशस्य स्वरूपप्रस्तावे विषयोऽयम् प्रकाशतामेष्यति। परं स्वतंत्ररूपेण इदम् आवश्यकम् इति कृत्वा निरूप्यते भारतीय संस्कृतौ मान्यतायां चेदमुद्घोष्यते यदस्यपूजनेन विघ्नव्रजाः क्षयं यान्ति तथा च पद्मपुराणे—

गणेशं पूजयेद्यस्तु विघ्नस्तस्य न जायते।

वराहपुराणे—नमस्ते गजवक्त्राय नमस्ते गणनायक, विनायक नमस्तेस्तु नमस्ते चण्डविक्रम॥ 1॥ नमस्तेऽस्तु विघ्नकर्त्रे, नमस्ते सर्पमेखली सर्वदेव नमस्काराविघ्नं कुरु सर्वदा॥ 2॥

वैदिक स्वरूपम्—भारतीय संस्कृतौ वेदाः प्रमाणमिति न कस्यापि विदितमेवं च यस्य चर्चा वेदेषु नास्ति तस्य प्रामाणिकत्वे सन्देहे न आश्चर्यमत एव गणेशस्य प्रामाण्ये वैदिकं स्वरूपन्तस्यसाध्यते।

❋

V-45

वेदाङ्गेषु शिक्षाङ्गप्राथम्यम्

अशोक कुमार द्विवेदी, जौनपुरम्

श्रुत्यपरपर्यायो वेदोऽस्माकं भारतीयानां ज्ञानविज्ञानस्य धर्मस्य च आधारभूत स्तम्भः—'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।' अस्यैकैकमप्यक्षरं परमं पूतं ज्ञानवर्धकं च मन्यते। यतो हि भाषा भावयोर्द्वयोरपि दृष्ट्या वेदाः दुर्बोधाः दुरूहाः अतिगम्भीराश्च सन्ति, अतः शब्दराश्यात्मनो वेदस्य स्वरूपसंरक्षणार्थं, तदुच्चारण धर्मावबोधार्थं, तदीयार्थस्य सम्यक् प्रत्ययनार्थं च शिक्षादीनां षड्वेदाङ्गनामुद्भवो जातः। वेदाङ्गानि, यथा च एतेषांमनया संज्ञया एव सूच्यते अङ्गवत् वेदानां तत्प्रतिपाद्यस्य च सहायकानि सहकारीणि वा सन्ति—'अङ्गयन्ते ज्ञायन्ते वेदाः अमीभिरिति वेदाङ्गानि।' अतएव पाणिनीय शिक्षायां 'तस्मात्साङ्गधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते', महाभाष्ये च 'षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च' इति प्रकारेण साङ्गस्यैव वेदस्य अध्ययनाय निर्देशो वर्तते।

अथर्ववेदस्य मुण्डकोपनिषदि—'द्वे विद्ये वेदितव्ये—पराचैवापरा च। तत्रापरा ऋग्वेदोयजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्यौतिषमिति।' इत्यस्मिन् वाक्ये अपर विद्यायां

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वेदचतुष्टयानन्तरं षड्वेदाङ्गेषु शिक्षाङ्गस्यैव प्रथम स्थाने परिगणना कृतास्ति। अतोऽभ्यर्हितं पूर्वमिति न्यायेन शिक्षाया प्राधान्यं प्राधम्यं च स्वत एवं सिद्धम्। एतदतिरिक्तं एतेनेदमपि प्रतीयते यत् षड्वेदाङ्गेषु शिक्षायाः प्राथम्यमृषीणामप्यभिमतमिति। यतो हि शिक्षां बिना वैदिकानां शब्दानां मंत्राणां वाविकलमुच्चारणं भवितुं नार्हति।

*

V-46

वृत्तिपञ्चकम्

सुबाषचन्द्रपाण्डेयः, वाराणसी (उ०प्र०)

वर्तनं वृत्तिरिति व्युत्पत्त्या अस्य अर्थः व्यवहारो भवति। अर्थोपस्थापने कथं शब्दो व्यवहरति इत्येवास्ति शब्दनिष्ठा शक्तिः वृत्तिरपरनामधेया। किन्तु व्याकरणदर्शने तन्त्रकौशलप्रयुक्तशब्दरूपेणापि अस्य प्रयोगो दृश्यते। तत्र परार्थाभिधानं वृत्तिः इति लक्षणं कृतम्। परशब्दस्य कोऽर्थः? किञ्च इदं पदार्थाभिधानम्? कतिप्रकारकञ्च? इति सर्वे विषयाः व्याकरणदर्शनदृष्ट्या अस्मिन् शोधलेखे पर्यालोचिताः।

*

V-47

वेदाः प्रमाणम्

डॉ. वि. रामकृष्ण भट्टः, कालडी, केरलप्रदेशः

मनुकूलोद्भवानां समेषां सनातनः सदाश्रयो भवति धर्मः। ''धर्मो विश्वस्यजगतः प्रतिष्ठाः'' इति सर्वजगत्प्रतिष्ठात्वं धर्मस्य ब्रूते श्रुतिः। ''वेदोऽखिलो धर्ममूलमिति वेदमूलको धर्म इति मनुरवदत्। तथा भूतोवेदः प्रमाणमिति न्यायमीमांसा दर्शनानि स्वीकुर्वन्ति। किन्तु शब्दस्यनित्यत्वानित्यत्वभेदेन वेदस्य पौरुषेयत्वापौरुषत्वमङ्गीकृत्य स्वस्वाशास्त्रसिद्धांतं संरक्षन्ति सूरयो विद्वन्मणयः।

शब्दोऽनित्य इति पक्षावलम्बिनो गौतमकणाद बादरायणमहर्षयः। सकर्तृकत्वं वेदस्येति स्वीकुर्वन्ति एते। ''बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे'' इति सूत्रेण वैशेषिकदर्शनं तु कृतिजन्यत्वं वेदस्य स्मारयति। ''वाक्यकृतिर्वाक्य-रचना सा बुद्धिपूर्वा वक्तृयथार्थवाक्यार्थ ज्ञानपूर्वा वाक्यरचनात्वात्'' इत्युपस्कार-कारोऽप्यनुमानेन कृतजन्योवेदे इति प्रमाणयति। अतएव ''शब्द तदुपजीवि प्रमाणातिरिक्त प्रमाणजन्य प्रमित्यविषयार्थकत्वे सति शबद जन्यवाक्यार्थज्ञानाजन्यप्रमाण शब्दत्वं वेदत्वमिति लक्षयति वेदमुपस्कारः। न्यायनयज्ञाः—''वेद जन्यप्रमा वक्तृयथार्थ वाक्यार्थज्ञानजन्या शब्दप्रमात्वात्, चैत्रवाक्यजन्यप्रमावत्'' वेदः

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri and eGangotri/SA

पौरुषेयः वाक्यत्वात् भारतादिवत्'' इत्याद्यनुमानेन नित्य सर्वज्ञ सर्वदोषनिर्मुक्तपरमेश्वर एव वेदकर्त्ता इति साधयन्ति। इत्थञ्चोभयत्रेश्वर कर्तृकत्वात् वेदः प्रमाणमिति।

*

V-48

वैदिकदेवतातत्त्वंविश्ववबन्धुत्वञ्च

डॉ. महेन्द्र पाण्डेयः, वाराणसी

वेदः आदिकालादेव अखिलराष्ट्रस्य मानवादर्शजीवनधर्मादिविद्यानां संवाहकोऽस्ति। विश्वे सर्ववर्णजातिप्रभृतयः पृथक् पृथग् सत्यपि प्रायः सर्ववर्णप्रभतिषु देवाराधनाः स्थिताः सन्ति। सर्वेमानवाः स्व स्व धर्मे निरताः पृथक् पृथग् रूपेण वाय्वान्तरिक्षसूर्यचन्द्रनक्षत्रादिरूपेषु आराध्यदैवकोटिं प्राप्नुवन्तः यथा-यथा समयम् अराधयन्ति। देवता अपि अनेकधारूपेण भूत्वा सर्वेषां वर्णजातिप्रभृतिभ्यः इप्सितप्रदाः भवन्ति। यथा देवालयः चर्चः मस्जिदः गुरुद्वारादयः। सर्वेषां प्रभृतीनां आराध्यः अनेकेरूपे एक एवः। कथतमपि निरुक्तशास्त्रे—महाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तुयते, एकस्यात्मनो देवा प्रत्यङ्गानि भवन्ति। इतरेतर जन्मानः इतरेतरप्रकृतयो भवन्ति। तासां महाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति। —नि० 7.2.

एवं ब्रह्मसूत्रभाष्येऽपि—**एकैका देवता बहुभी रूपैरात्मानं प्रविभज्य बहुष यागेषु युगपदं गतां गच्छतीति परैश्च न दृश्यते। अन्तर्धानादिक्रियायोगात्।**

—ब्र०सू०शां०भा०, 1.3.27.

*

V-48

वेदाङ्गेषु ज्योतिषम्

श्री सुनील दत्त शास्त्री, जम्मू

ज्योतिषशास्त्रं वेदाङ्गेषु परिगण्यते। यत्र वेदाङ्गत्वेन प्राचीनत्वं दृश्यते। तत्रैव वर्तमानलोकजीवने ज्योतिषमाध्यमेन स्वकार्यसाधनार्थमद्यापि समीचीनता प्रमाणीक्रियते। वेदेषु ज्योतिषशास्त्रस्य मूलभूतं बींज सन्निहितमस्ति। ज्ञानोत्पादकः प्रकाशोत्पाद्कश्च इदं शास्त्रं मुण्डकोपनिषदि, छान्दोग्योपनिषदि ज्योतिषशास्त्रस्य विवरणमुपलभ्यते। आचार्यभास्करेण षण्णां वेदाङ्गानां वर्णनं कृतम्। ज्योतिषं यज्ञानां कालं वर्णयति,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एवञ्च सुष्ठुकाले कृतं यज्ञमेव सफलं भवति अशुभकाले कृतं कर्म निष्फलं ज्ञेयम्। वेदाङ्गस्य स्वरूपनिदर्शनपूर्वकं ज्योतिषस्य श्रेष्ठत्वम् आचार्यलगधेन प्रोक्तं यद इदं मूर्ध्नि स्थितमिवाऽस्ति।

विष्णुधर्मोत्तरपुराणेऽपि वेदाङ्गानां वर्णनमुपलभ्यते। यथोक्तं ब्राह्मण्डपुराणस्य सृष्टिखण्डे ''इतिहासपुराणाभ्यां वेदा वेदं समुपबृहयेत'' वस्तुतः ज्योतिषशास्त्रं ''ग्रहनक्षत्राण्यधिकृत्य कृतो ग्रन्थः'' येन प्रकारेण तमस्थितपदार्थानां ज्ञानं दीपमाध्यमेन भवति, तथैव ज्योतिषशास्त्रेण प्राक्जन्मार्जितकर्मणः प्रभावः कालज्ञापकेन शास्त्रेणैव ज्ञायते। ज्योतिषशास्त्रं विद्यासु अर्थकरी विद्या परिगण्यते, परन्तु अत्र अर्थातिरिक्तोऽपि बहवः पक्षा विचारणीयाः सन्ति-यथोदाहरणं राजा स्वकार्ये मन्त्रिणामुपयोगं करोति तथैव ज्योतिषशास्त्रं मन्त्रीवाचरति पदे-पदे।

तैत्तरीब्राह्मणे ज्योतिषशास्त्रस्य कालमानपुरससरं संवत्सरमासाऽहोरात्रदीनां तथा च पूर्णिमऽष्टमी-सहिताना तिथीनां वर्णनं प्राप्यते। एवमेवात्र नक्षत्राणां चन्द्रेण सह, संवत्सराणां नक्षत्रेण, ऋतुनां संवत्सरेण तथा मासानामृतुभिः सह सम्बन्धः प्रतिपादितो वर्तते। कृष्णजयुर्वेदेऽथर्ववेदे तैत्तिरीयब्राह्मणे च नक्षत्राणामुल्लेखः स्पष्टता लक्ष्यते। ज्योतिषशास्त्रान्तरर्गतेऽङ्कगणित-बीजगणित-रेखागणितादीनां गणनाऽपि आर्यैः कृता। भारतीयजीवनस्य हेतुभूतानां वेद-वेदाङ्गानां महत्वं महत्त्वपूर्णमस्ति। यतो यत्र इदं शास्त्रं यज्ञविधानं वर्णयति, तत्रैव मानवस्य मार्गनिर्देशकत्वेन स्पष्टोदेश्यं सूचयति।

*

V-49

पाञ्चरात्रसंहिताओं में मुद्रा निरूपण

प्रो. अशोक कुमार कालिया, वाराणसी

विशेष प्रकार की प्रतीकात्मक अथवा सङ्केतात्मक भाषा ही 'मुद्रा' शब्द का अभिप्रेतार्थ है। 'मुद्रा' नाम की यह भाषा सम्भवतः प्रसिद्ध रूढ भाषाओं से भी प्राचीन है तथा भावाभिव्यक्ति की प्रबल समर्थ साधन है। अपने भावों तथा अभिप्रायों की अभिव्यक्ति के लिए मनुष्य अपनी सहज प्रवृत्ति के अनुसार हाथों और अंगुलियों का प्रचुर उपयोग करता रहा है। कभी वह मुख से भाषा का प्रयोग करते हुए तथा कभी मूक रह कर भाषा-प्रयोग न करते हुए भी अर्थाभिव्यक्ति-सौकर्य-हेतु हाथों और अंगुलियों का सहारा लेता है। इस प्रकार इनकी सहायता से मनुष्य की भाषा में आश्चर्यमयी सम्प्रेषणीयता-शक्ति आ जाती है। यह प्रक्रिया सार्वकालिक और सार्वभौम है। हाथों और अंगुलियों की इसी भङ्गिमा-विशेष को 'मुद्रा' शब्द से अभिहित किया जाता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भारत में मुद्राओं के स्वरूप, प्रयोग आदि विषयों पर गम्भीर चिन्तन तथा मनन हुआ है, और उन्हें शास्त्रीय रूप प्रदान किया गया है। मुद्राओं का विशद शास्त्रीय विवेचन मुख्यतया दो विशिष्ट विधाओं में उपलब्ध होता है। प्रथम-कला की मुद्राओं को 'हस्त' तथा 'हस्ताभिनय' भी कहा गया है। द्वितीय-यौगिक तथा तान्त्रिक पूजा और साधना पद्धतियों में। तान्त्रिक तथा यौगिक साधना पद्धतियों में प्रयुक्त होने वाली मुद्राएँ ही यहाँ विवेचनीय विषय है।

*

V-50

सूर्य जगत् की आत्मा है—एक वैज्ञानिक प्रतिपादन

डॉ. पुरुषोत्तम शर्मा, जम्मू

वेदों के सूर्य-विषयक सूक्तों के अध्ययन से सूर्य के भव्यरूप का हमें पूर्णपरिचय उपलब्ध होता है। वेदों में सूर्य और सौर ऊर्जा के विषय में पर्याप्त सामग्री है। सूर्य ही क्रिया भेद के कारण नाना देवों के रूप में कल्पित किया गया है। अतः वही सविता, वही विष्णु, वही पूषा है और समस्त भुवनों का वही आधार है। ''तस्मिन्नर्पितं भुवनानि विश्वा'' सूर्य सौरमण्डल के ग्रह-उपग्रहों आदि का पूर्णरूपेण नियन्ता है। ज्योतिर्विज्ञानानुसार भी सूर्य सौरमण्डल का प्रधान ग्रह है। इसकी दिव्य रश्मियाँ समस्त जीव-जन्तुओं को प्रभावित करती हैं। जन्मकुण्डली में सूर्य की स्थिति से जातक का आत्मबल, हिंसात्मक प्रवृत्ति, क्रोध, तेज, पितृसुखादि का विचार विभिन्न भावगत सूर्य ही से किया जाता है। सूर्य किरणें कामधेनु के समान हैं। आयुर्वेद में 'सूर्य स्नान' से रोग चिकित्सा की बहुत सी चर्चाएँ हैं। सूर्य के ही कारण वसन्तादि छः ऋतुओं की सत्ता है। वायु के संचरण का भी यही कारण है। इन्हीं कारणों से वेदमन्त्रों में सूर्य को आत्मा (SOUL) कहा गया है— (''सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'', ऋक्. 1.115.1) वेदों में उल्लेख है कि सूर्य से ऊर्जा का दोहन त्रित (इन्द्र, गन्धर्व और वसु) ने किया। इन्द्र ने ऊर्जा का ज्ञान प्राप्त किया। गन्धर्वों ने परीक्षण तथा वसुओं ने इसको मूर्तरूप दिया। वसु वे विद्वान् हैं जो भौतिकविज्ञान के विशषज्ञ हैं। संक्षेप में वेदों के अनुसार 'सप्त आदित्याः' तथा ''नाना सूर्याः'' अर्थात् सूर्य अनेक हैं। और I. सम्भवतः सात सौरमण्डल हैं। तैत्तिरीय आरण्यक में सात सूर्यों के नाम हैं—आरोग, भ्राज, पटर, पतंग, स्वर्णर, ज्योतिषीमान् और विभाज। II. वेदों के अनुसार इन्द्र ने योगदृष्टि द्वारा सूर्य की परिधि को देखा है। III. सूर्य में धब्बे (Spots) हैं। IV. दीर्घतमस् ऋषि द्वारा योगदृष्टि से सूर्यमण्डल के चारों ओर विशाल ''शकमयं धूमम्'' गैस का अवलोकन। V. सूर्य की किरणें समस्त पदार्थों को रंग (Colour) प्रदान करती हैं। VI. गोपथ और ऐतरेय ब्राह्मणों के अनुसार सूर्य का उदयास्त नहीं होता। सूर्य तो अपने स्थान पर हमेशा ज्योतिर्मय रहता है—''स

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा एष (आदित्यः) न कदाचनास्तमेति नोदेति''। VII. अथर्ववेदानुसार सूर्य प्रदूषण शोधक है। यह समस्त दृष्ट और अदृष्ट प्रदूषण कारक कृमियों (Germs) को नष्ट करता है। VIII. यजुर्वेदानुसार सूर्य में प्राण (Oxygen) और अपान (Hydrogen) दोनों शक्तियाँ हैं। सूर्य हाइड्रोजन को जलाता है और उससे आक्सीजन (प्राणवायु) को देता है। इस प्रकार सूर्य अपनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा पवित्र किरणों से सारे वायुमण्डल को शुद्ध करता है। IX. अथर्ववेद के अनुसार सूर्य की किरणें समुद्र से जल को भाप के रूप में ऊपर ले जाती हैं और पृथ्वी पर वर्षा करती हैं। अतः सूर्य ही वर्षा का कारण है। X.यजुर्वेदानुसार सूर्य की सुषुम्ण नामक किरण चन्द्रमा को प्रकाशित करती है—''सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः 18.40'' अतः महर्षि यास्क के अनुसार भी सूर्य चन्द्रमा को प्रकाश देता है। सूर्यादि ग्रहों की प्रशंसा के लिए प्रमाण रूप में हस्तलिखित ग्रह-पद्धति का यह श्लोक उचित एवं यथार्थ ही है—

''ग्रहाः राज्यं प्रयच्छन्ति, ग्रहाः राज्यं हरन्ति च।
ग्रहैः व्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यं स चराचरम्॥''

❋

V-51

वेदों में नारी की शैक्षिक स्थिति

अमोद कुमार सिंह, दरभंगा (बिहार)

समाज एवं राष्ट्र में स्त्री एवं पुरुष का योगदान समकक्ष है, अतः पुरुष के समान ही नारी शिक्षा की आवश्यकता स्वाभाविक है। वैदिक काल में सन्तान के जीवन निर्माण का उत्तरदायित्व माता-पिता के ऊपर ही होता था। (बृहदारण्यकोपनिषद् 1.57) वेदों में नारी के जो कर्त्तव्य निर्धारित किये गए हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि वैदिक कालीन नारी शिक्षित, कला निपुण एवं ज्ञानी भी थी। वैदिक युग में विद्याध्ययन प्रारम्भ करने के लिए उपनयन संस्कार को अनिवार्य कृत्य माना गया है। जो कि कन्याओं का भी किया जाता था तथा वह ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई विभिन्न विषयों में शिक्षा ग्रहण करती थीं। अतः स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान उच्च शिक्षा ग्रहण किया करती थी। ऋग्वेद में नारी ने आत्मगौरवपूर्वक घोषणा की है—''मैं ज्ञानवती हूँ'' घर की प्रमुख और शत्रुनाशिका हूँ। (ऋग्वेद 10.159.2) ऋग्वेद का 'विदुषी' शब्द स्त्री के सुशिक्षित होने का परिचायक है।

अथर्ववेद में विद्याप्राप्ति पद्धति का स्पष्टतः उल्लेख किया गया है अथवा ऋषि ने यज्ञ में कन्या के वर्चस्व को स्वीकार किया है। उपर्युक्त विषय के आलोक में इस शोधपत्र में वेदकाल में नारी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शिक्षा के विविध आयाम जैसे—धर्म, अध्यात्म, दर्शन, व्याकरण, आगम, चित्रकला, गान्धर्वविद्या, वीणा, गणित आदि विषयों में नारी की शैक्षणिक स्थिति पर विचार किया गया है।

*

V-52

वैदिक काल में नारी शिक्षा

आचार्य देवांशु कुमार सिंह, आरा (भोजपुर) बिहार

प्राचीन भारत में दीर्घकाल तक शिक्षा का तात्पर्य वैदिक शिक्षा रहा, जो वैदिक युग में बिना किसी लिंग भेद के स्त्री-पुरुष दोनों को उपलब्ध होती थी। स्त्रियाँ वैदिक साहित्य का अध्ययन करती थी, धार्मिक, दार्शनिक विचार-विमर्श करती थीं, यहाँ तक कि कुछ वैदिक ऋचाओं की रचयिता भी थीं। वे ब्रह्मचर्य आश्रम की समाप्ति के उपरान्त ही कन्या विवाह योग्य होती थी। स्त्रियों के शैक्षिक अधिकारों की पुष्टि के लिए वैदिक साहित्य में पर्याप्त एवं सन्तोषजनक प्रमाण उपलब्ध होने के बाद भी वैदिक तथ्यों के आलोक में ही विचारणीय हैं कि तत्कालीन सामाजिक संगठन पितृसत्तात्मक था। राजनैतिक जीवन में भी पुरुषों का वर्चस्व था। सभाओं में स्त्रियों की उपस्थिति राजनीति में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका की ओर संकेत नहीं करती। ऐसी स्थिति में शिक्षा की अधिकारी होते हुए भी समाज में कितनी स्त्रियाँ विधिपूर्वक शिक्षा प्राप्त कर रही थी, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। यद्यपि कुछ वैदिक स्त्रियों को वैदिक मन्त्रों की रचयिता एवं उद्गात्री के रूप में स्मरण किया जाता है परन्तु तथ्य यह है कि परवर्ती परम्परा में उनकी संख्या को बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत किया गया है। ऋग्वेद में प्राप्त 27 विदुषी स्त्रियों के सन्दर्भों में से अधिकांश दैवी, अर्द्धदैवी पौराणिक चरित्र एवं अमूर्त भावनाओं के द्योतक शब्द हैं। मात्र 9-10 ब्रह्मवादिनी स्त्रियों को ही वास्तविक मानवीय स्त्रियों की संज्ञा दी जा सकती है।

*

V-53

सोमरस

डॉ. गंगादत्त शास्त्री, (जम्मू)

सोमरस वैदिक यज्ञों का एक प्रसिद्ध पेय है। इसे यज्ञ की अग्नि में आहुत किया जाता था। इस सम्बन्ध का एक मन्त्र है—"जातवेदसे सुनवाग सोमम्" अर्थात् हम जातवेदस अग्नि में सोमरस

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

की आहुतियाँ देते हैं। यह सोमरस क्या था? इत्यादि सब प्रश्नों का उत्तर ऋग्वेद के नवम मण्डल में मिल जाएगा। ऋग्वेद के अनुसार इस रस में एक अद्भुत उन्मादन शक्ति होती थी, जिसे पीने से स्वर्गीय दृश्य दिखाई देते थे तथा मन एकाग्र हो जाता था। वेद ने इसे देवों का पेय तथा अत्यन्त पवित्र द्रव्य माना है। यह मुञ्जवान् नामक पर्वत में लता के रूप में मिलता था, जो चन्द्रकिरणों के साथ ही घटती-बढ़ती थी। इसमें मनुष्य को चिरयुवा रखने की शक्ति थी इसी कारण इसमें अमरता भी देखी जाती थी। इसकी आहुतियों के धुएँ में आकाश से बादल लाने की शक्ति थी। यह आकाशीय तथा वायवीय प्रभाव के साथ सूर्य तथा चन्द्रमा के प्रकाश से भी परिप्लावित था। इन तत्त्वों की शक्ति इसमें ओतप्रोत रहती थी इसीलिए इसके पीने से मनुष्य में एक दैवी प्रकाश पैदा हो जाता था। समयावधि के साथ यह औषधि लुप्त होकर मनुष्य की पहचान से दूर हो गई।

❋

V-54

वेदों का जीनोम—दर्शन

डॉ. कृतार्थ शंकर पाठक, सीवान

'ऋग्वेद' के 'नासदीय सूक्त' के अनुसार सृष्टि के पूर्व 'काम' की विद्यमानता थी, तथा उसी से सिसृक्षा का प्रादुर्भाव हुआ तथा 'नाम—रूपात्मक' सृष्टि उत्पन्न हुई, जिसका रहस्य ऋषि-मुनियों द्वारा ज्ञातव्य है। अतएव, आधुनिक जीनोम-युग की पूर्व-पीठिका के रूप में वैदिक युग का अवलोकन किया जा सकता है। मानवों का हमशक्ल मानव बना, विपरीत स्वभाव वाले जीव के संयोग से विशेष गुण-युक्त जीव की कल्पना और उसकी उत्पत्ति, जीवों के भविष्य का निर्धारण, माता के गर्भाशय की जगह परखनली, रक्त-बैंकों के तर्ज पर वीर्य-बैंकों की स्थापना, ताकि मनचाही उम्र, गुण और स्वभाव पाया जा सके, कुदरती अंगों के बजाय कृत्रिम अंगों की रचना और उसके प्रत्यारोपण की सफलता की 'दंभी' घोषणा; यह दूसरी बात है कि संयुक्त राष्ट्र-संघ की इकाईयों द्वारा दया और मानवीयता की आर में, उस पर, रोक लगा दी गई हो; कर प्रकृति, ईश्वर अथवा सृष्टि की शाश्वतता के प्रति विकास की मदांधता में डूबी दृष्टि-सहित-दृष्टि-हीन मनु-संतानों द्वारा अविश्वास किया जाता है। अतः हमें सृष्टि के शाश्वत मूल्यों के रक्षार्थ अपनी वर्त्तमान विश्वजनीन समस्याओं के समाधानार्थ प्रस्तुत होने का साहस दिखाना चाहिए।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-55

जनजीवन एवं सूर्य—एक ज्योतिषीय दृष्टि

राजेश शर्मा, जम्मू

जिस प्रकार ब्रह्म के बिना ब्रह्माण्ड की कल्पना अर्थात् सृष्टि सम्भव नहीं है, उसी प्रकार सूर्य के बिना इस सौर जगत की सृष्टि सम्भव नहीं है क्योंकि सूर्योदय के साथ ही इस जगत में जन जीवन का कार्य प्रारम्भ होता है और प्राणियों को अपने दैनिक कार्यों में प्रवृत होने की स्वतः प्रेरणा मिलती है अतः सूर्य को चल और अचल, जड़ और चेतन दोनों प्रकार से सृष्टि की आत्मा कहा गया है। सूर्य ही दिन, रात, तिथि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, मन्वन्तर और कल्प आदि को उष्णता आदि प्रदान करते हैं। जिससे मनुष्य, पशु-पक्षी और पेड़-पौधे वनस्पति आदि सभी जीवन शक्ति प्राप्त कर बलिष्ठ एवं सुरक्षित रहते हैं।

ज्योतिषीय दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि जन्मकुण्डली में भी सूर्य को आत्मस्थानीय माना गया है, जैसे शरीर बिना आत्मा के जड़वत् होता है वैसे ही जन्मकुण्डली में सूर्य की स्थिति है। सूर्य एक महनीय ग्रह है जो संसार के मूल में अपनी प्रभावी भूमिका निभाता है—शायद इसलिए काल को भी सूर्य के कारण परिवर्तित होना पड़ता है। यथा—

'चक्रवत् परिवर्तते कालः सूर्य वशात्' एवं "**सरति आकाशे सूर्यः, सुभति कर्मणि लोकं प्रेरयति**" इस तथ्य से भी हम मान सकते हैं कि सूर्य सम्पूर्ण संसार को प्रेरणा देने वाला ग्रह है जो शुभग्रह होने की स्थिति में मानव को जहाँ निरोग रखता है, लेकिन पापग्रह की स्थिति में सूर्य जातक को रक्त से सम्बन्धित विविध रोगों को देने के साथ-साथ अपयश का भागी भी बनाता है।

*

V-56

प्राचीन वृष्टिविज्ञान—एक पर्यालोचन

डॉ. शालिनी सक्सेना, जयपुर

प्रकृति के विविध अवयवों के सम्मेलन से अखण्ड ब्रह्माण्ड की सृष्टि हुई है। इसमें विद्यमान समस्त जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, नाना प्रकार के दृश्य एवं अदृश्य पदार्थ और शक्तियाँ इसकी विविधता में सम्पूर्णता का प्रतीक हैं। किसी भी राष्ट्र की समृद्धि का आधार वहाँ का सन्तुलित पर्यावरण होता है जिसमें मानवीय गतिविधियों और प्राकृतिक परिस्थितियों के बीच समन्वय होता है। सन्तुलित पर्यावरण का अनिवार्य घटक वर्षा है। वर्षा जल के आधार पर ही औषधि वनस्पतियों का उत्पादन

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सम्भव है। आज वर्षाजल के अभाव में भूमि का जलस्तर लगातार घटता जा रहा है। वर्षा का सम्बन्ध पर्जन्य से है और पर्जन्य यज्ञ पर आधारित है। इस शाश्वत सत्य को अनुभव करके ही वैदिक ऋषि ने यज्ञ को वर्षा का हेतु कहा है—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि, पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवन्ति पर्जन्यो, यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥

यज्ञों के अनुष्ठान से उत्तम वृष्टि होकर विपुल धन उपजता है जिसे ग्रहण कर मनुष्य आनन्दित होते हैं। वैदिक ऋषि प्रकृति की अनन्त क्षमताओं से परिचित था, इसलिए उसने प्रकृति के प्रत्येक घटक को देवत्व प्रदान कर उनकी पूजा की है। समस्त पर्यावरण का आधार वर्षा है। वर्षा सम्पूर्ण सम्वत्सर का आधार भी है। वृष्टि प्रक्रिया का वैज्ञानिक विवेचन करते हुए वैदिक ऋषियों ने वर्षभर में होने वाले प्राकृतिक परिवर्तनों, निमित्तों एवं शकुनों के आधार पर वर्षा का पूर्वानुमान करने की विधि का सूत्रपात किया। अपने सूक्ष्म ज्ञान के द्वारा वे वर्षाकाल से पहले ही आगामी वर्षाकाल की स्थिति का सम्यक् ज्ञान कर लेते थे। वर्षा के पूर्वानुमान में उपयोगी इन निमित्तों, शकुनों एवं प्राकृतिक परिवर्तनों का पर्यालोचन कर उनकी प्रासंगिकता का प्रतिपादन ही इस शोधपत्र का उद्देश्य है।

❋

V-57

वैदिक-वाङ्मय में कन्या

डॉ. शोभा रानी सहाय, छपरा

वर्तमान में घटता लिङ्गानुपात दर आज राष्ट्रिय समस्या बनती जा रही है। आवश्यकता है हमें वैदिक-कालीन शिक्षा-व्यवस्था के सदृश ही कन्याओं को सबल एवं सुशिक्षित बनावें ताकि वे आगे चलकर भार्या की परिधि से बाहर निकलकर समाज में अपनी अस्मिता 'अबला' की जगह सबला की प्राप्ति करे। आधुनिक समय में कन्याओं को भारवत् न मानकर उनका सही एवं सार्थक परिपोषण एवं संरक्षण किया जाय तो पुरुषों की तुलना में ये भावी नारियाँ समाज को सबल एवं सुदृढ़ बनायेंगी।

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाऽथास्तं वि परेतन॥

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-58

वैदिक गायत्रीमन्त्र से निष्पन्न अन्य विद्याएँ

डॉ. रवीन्द्रकुमार खाण्डवाला, अहमदाबाद

वेद के विद्वानों के लिए गायत्रीमन्त्र का महत्त्व सर्वविदित है। गायत्री की उपासना समस्त भारतवर्ष में प्रचलित है। इस मन्त्र की व्याख्या ऋषियों, आचार्यों एवं मनीषियों ने अपने-अपने अनुभव के अनुसार प्रस्तुत की है। तन्त्रग्रन्थों में गायत्रीमन्त्र का निजी महत्त्वपूर्ण स्थान है। तन्त्रग्रन्थों में और अन्यत्र गायत्रीमन्त्र का अन्य मन्त्रों के साथ विनियोग दर्शाया गया है।

गायत्रीमन्त्र के अतिरिक्त ऐसा कोई वैदिक मन्त्र प्रायः प्राप्त नहीं होता कि जिससे अन्य विद्याएँ बन सके। गायत्रीमन्त्र का अन्य मन्त्रों के साथ संयोजन कर के ही उत्तरषोडशी, शताक्षरी श्रीविद्या, मृतसंजीवनीविधा, मधुविद्या या अमृतपानविद्या और बलातिबलाविद्या का निर्माण हो सकता है। अतः गायत्रीमन्त्र अत्यंत प्रभावशाली मन्त्र है। वेदकालीन ऋषियों एवं मनीषियों ने इन्हीं विद्यायों को निष्पन्न करके ऐहिक और मारमार्थिक सिद्धियों को प्राप्त किया था।

प्रस्तुत संशोधन-पत्र में गायत्रीमन्त्र के साथ कौन से अन्य मन्त्र हैं कि जिससे ये सभी विद्याएँ निष्पन्न होती हैं? और प्राचीन समय में किस-किस ने ये विद्याएँ सिद्ध कर ली थी इस पर वेदों, उपनिषदों और तन्त्रशास्त्र के आधार पर विचार किया जाएगा।

❋

V-59

पञ्चमहायज्ञों की प्रासंगिकता

परशोत्तम शर्मा, जम्मू

वैदिक संहिताओं में मानव को स्पष्ट निर्देश है कि मनुष्य को अपनी दिनचर्या में पञ्चमहायज्ञों को स्थान देना चाहिए। आचार्य मनु पञ्चमहायज्ञों को बताते हुए कहते हैं कि अध्यापन ही ब्रह्मयज्ञ है, तर्पण करना ही पितृ यज्ञ है। दैवताओं को हव्य प्रदान करना दैवयज्ञ है एवं बलि प्रदान करना भूत यज्ञ है तथा अतिथियों का सम्मान करना मनुष्य यज्ञ है। मनुष्य को पाँच प्रकार के यज्ञ गृहस्थ आश्रम में किए जाने वाले दैनिक हिंसाओं के पाप शमन हेतु करने चाहिए। मनुस्मृति में भी वर्णित कि गृहस्थ व्यक्ति नित्यप्रति चुल्ली प्रेषणी उपस्कर (झाडू) कण्डनी तथा जलकुम्भ आदि के द्वारा जो पाँच प्रकार की जीव हिंसा करता है, उनके निवारण के लिए मनुष्य को पाँच प्रकार के यज्ञ करने चाहिए तभी उनसे होने वाले पापों से मनुष्य को निवृत्ति मिल सकती है। लेकिन आज वर्तमान

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

काल में इन पाँच प्रकार के यज्ञों के सम्पादन में कमी देखने को मिलती है केवल ग्रामीण परिवेश में ही पितृयज्ञ एवं मनुष्य यज्ञों के होने के संकेत मिलते हैं, जबकि नागरिक जीवन में केवल ब्रह्म की मीमांसा ही स्वाध्याय के रूप मानी जा सकती है। यही कारण है कि आज समाज में मानव जहाँ स्वाध्याय न करने के कारण ब्रह्म यज्ञ को नहीं करता दिखता है, वहीं पितृयज्ञ न करने के कारण वंश वृद्धि निरोध एवं देवयज्ञ तथा भूत यज्ञ न करने के कारण मानसिक एवं आत्मिक अशान्ति के दर्शन गृहस्थों के जीवन में देखने को मिलते हैं जबकि अतिथि सत्कार केवल आंशिक रूप में किए जाने से आज समाज में स्नेह, प्यार, लगाव, श्रद्धा एवं आस्था तिरोहित होती दिखती है।

❋

V-60

वेदों में ''वेदमाता गायत्री का महत्त्व''

डॉ. शील निगम, कानपुर

'वेद' शब्द का अर्थ है 'ज्ञान'। ज्ञान के चार भेद हैं—ऋक्, यजुः, साम और अथर्व। वेद ऋषियों के तपःपूत अनुभूति के प्रकाश पुञ्ज हैं। किसी भी प्राणी की सूक्ष्म एवं स्थूल, आन्तरिक एवं बाह्य क्रियाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण करने पर यह प्रतीत होता है कि उसकी समस्त चेतना इन्हीं चार क्षेत्रों के अन्तर्गत प्रवाहित हो रही है। (1) ऋक्—कल्याण माधुर्य, (2) यजुः—पौरुष या मोक्ष, (3) साम—मनोरंजन, संगीत, (4) अथर्व—धन संग्रह, कहा जाता है। ब्रह्मा को चतुर्मुख इसीलिये कहा जाता है कि वे चार प्रकार की ज्ञान धाराओं का निष्क्रमण कर रहे हैं।

सृष्टि उत्पन्न करने का विचार आते ही ब्रह्मा में एक स्फुरणा उत्पन्न हुई जिसका नाम 'शक्ति' है। 'शक्ति' के द्वारा दो प्रकार की सृष्टि उत्पन्न हुई, एक जड़ दूसरी चैतन्य। जड़ सृष्टि का संचालन करने वाली शक्ति 'प्रकृति' तथा चैतन्य सृष्टि का संचालन करने वाली शक्ति 'सावित्री' अथवा 'गायत्री' है। यह चारों प्रकार के 'ज्ञान' अथवा चारों 'वेद' उस चैतन्य शक्ति के ही स्फुरण हैं जिसे शास्त्रकारों ने 'गायत्री' नाम से सम्बोधित किया है। इस प्रकार चारों वेदों की माता होने के कारण इन्हें 'वेदमाता' गायत्री के नाम से अभिहित किया जाता है। ज्ञान विज्ञान का मूल स्रोत होने के कारण ही गायत्री 'वेदमाता' कहलाई। वेदों में निहित समस्त ज्ञान बीज रूप में 'गायत्री' में ही निहित हैं। सद्बुद्धि की प्रेरक होने के कारण 'गायत्री' महाशक्ति को ऋतम्भरा प्रज्ञा भी कहा जाता है। विवेक और श्रद्धा का संगम ऋतम्भरा कहलाता है, तथा विवेक श्रद्धा से युक्त प्रज्ञा, तथा सम्यक् विचारभाव से युक्त दिव्य प्रवाह ही 'युगशक्ति गायत्री' है।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-61

ज्योतिषशास्त्र के आधार पर वृष्टिज्ञान

केशवदत्त शास्त्री, जम्मू

दैवज्ञ श्री जीवनाथ द्वारा विरचित वनमाला में सामयिक लक्षणों से वर्षा का ज्ञान कहा है, जिससे हमें यह ज्ञान होता है कि किन-किन लक्षणों से तथा किस प्रकार की स्थिति होने पर वर्षा होने की सम्भावना होती है।

यदि वर्षाकाल में उदित होते हुये सूर्य गर्म किये हुये सोने के समान कान्तिमान तथा निर्मल विद्रुमणि के समान कान्तिमान हो और किरणों से तपा हुआ, अर्थात् दोपहर के समय अत्यन्त प्रखर हो तो ऐसी स्थिति में पृथ्वी पर बहुत शीघ्र वर्षा होती है।

उदयाचलमागतो दिनेशः कनकामेऽमलविद्रुमच्छविश्चेत।
प्रतपन् किरणेन दुर्निरीश्यो द्रुतमभः पतति क्षितौ तदानीम्॥

अर्थात् जल में मिठास न रहे गो पशु के नेत्रों के समान अथवा कौए के समान थोड़ा नीला (श्वेत नील) आकाश होगा, दिशा स्वच्छ हो, मछली, मच्छ भूमि पर जाने की इच्छा करें, मेंढक बार-बार शब्द करे, तो यह सब अतिशीघ्र वर्षा आने के लक्षण होते हैं। तात्पर्य यह हुआ कि इन लक्षणों के कारण से ही शीघ्र वृष्टि होगी और भी कहा है कि जब वर्षाकाल में यदि हवा चलती हो, सूर्य तेज किरणों से उदित हो। तालाब, नदी, नाले में यदि मछलियाँ झुण्डबाँध कर जल से बाहर पृथ्वी पर उछलती हों, पानी में मेंढकों के शब्द से कोलाहल मचा हो तो बुद्धिमान व्यक्ति को यह जान लेना चाहिये कि समस्त पृथ्वी पर पर्याप्त वर्षा होगी।

*

V-62

अथर्ववेद में स्त्री कर्मों का अनुशीलन

डॉ. नीलम पाण्डेय, (लखनऊ)

मनुष्य के व्यावहारिक जीवन से अभिचार का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। सम्पूर्ण विश्व में अभिचार का महत्त्व विभिन्न संस्कृतियों में मिलता है। धर्म एवं सम्प्रदायों की भिन्नता के कारण उसके अनेक स्वरूप हैं। अभिचार कर्मों का उल्लेख सर्वप्रथम अथर्ववेद में मिलता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अभिचार शब्द की व्युत्पत्ति 'अभि' उपसर्ग पूर्वक 'चर्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय के योग से की गई है। अथर्ववेदीय स्त्रीकर्मों से सम्बद्ध सूक्तों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है, एक तो वह जिसमें पत्नी को वश में करने पति प्राप्ति आदि अनेक प्रकार के अभिचार कर्म हैं, दूसरे प्रकार के मन्त्रों को पवित्र मन्त्रों की श्रेणी में रखा जा सकता है, इसमें नवजात शिशु की रक्षा, विवाह एवं नवविवाहित दम्पत्ति के लिए आशीर्वाद की प्रार्थनायें हैं। इन मंत्रों के प्रयोग से वर-वधू के पारस्परिक सम्बन्धों में वृद्धि होती है। अथर्ववेद के स्त्रीकर्म में प्रथम वर्ग से सम्बन्धित मंत्रों की ही प्रधानता है।

प्रथम वर्ग से सम्बद्ध सूक्तों का अध्ययन करने से विदित होता है कि अथर्ववेद में सूक्तों का प्रयोग पति-प्राप्ति के लिए किया गया है। कौशिक सूत्र के अनुसार उनमें से एक सूक्त में कुमारी पति-प्राप्ति के लिए धान और तिल चबाती है, तत्पश्चात् उसे हवन करने का विधान है।

*

V-63

वेदप्रतिपादित मानवजीवनदर्शन

डॉ. धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी, राँची, झारखण्ड

विश्वकल्याणविधायक एवं सर्वविधज्ञानप्रकाशदायक वैदिक वाङ्मय में निहित ज्ञानराशि मानवमात्र का मार्गदर्शन करती है। लौकिक जीवनचर्या को किस प्रकार संयमित करके मनुष्य स्वयं को भगवत्प्राप्ति के योग्य बना सकता है—इसका सुस्पष्ट निर्देश वेदों में प्राप्त होता है। वस्तुतः वेदों की इच्छा है कि व्यक्ति के चित्तवृत्तिरूप राज्य में प्रतिपल, पवित्र, वरेण्य एवं उर्वर विचार सरिता बहती रहे जिससे अन्तःकरण की सद्वृत्तियाँ जाग्रत होती रहें (ऋग्वेद-3/62/10)।

मानवमात्र को अपनी क्रियाएं मोक्षप्राप्ति को ध्यान में रखकर करनी चाहिए। इसको ध्यान में रखकर की गई क्रियाएं चरित्र-निर्माण में सहायक होती हैं (यजुर्वेद-40/11)। ब्रह्मज्ञान की चेष्टा मनुष्य को सम्माननीय स्थान दिलाती है (यजुर्वेद-30/5,2/35)। मन्त्रद्रष्टा ऋषियों का कथन है कि हमें सन्मार्ग पर चलना चाहिए। समस्त उत्तम ज्ञानों, मार्गों और लोकों को जानते हुए मनुष्यों को असद्व्यवहार से दूर रहना चाहिए (यजुर्वेद-5/36)। दुराचरण से स्वयं को पृथक् रखकर सदाचार का भागी बनना चाहिए (यजुर्वेद-4/28)। परस्पर मिलकर रहना चाहिए। धन-धान्य और सम्पत्ति को परस्पर समानरूप से बाँटकर उसका भोग करना चाहिए। परस्पर प्रेम भाव रखते हुए राग-द्वेष से दूर रहना चाहिए (ऋग्वेद-10/191/2)।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-64

ऋग्वेद के अनुसार विवाह—संस्कार

पूनम लता, जम्मू

ऋग्वेद भारत का ही नहीं अपितु संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ है। वैदिक विचारधारा के स्वरूप को समझने के लिये जितनी मौलिक सामग्री ऋग्वेद में मिल सकती है उसकी दूसरी संहिताओं की सामग्री में तुलना नहीं की जा सकती। वैदिक-संहिताकाल में विवाह को एक पवित्र संस्कार माना जाता था। ऋग्वेद के विवाह सूक्त में विवाह के उद्देश्य, आदर्श और विधि का वर्णन किया गया है।

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्वाथाथास्तं वि परेतन॥ (ऋग्वेद-10/85/33)

भारतीय संस्कृति में विवाह कामाचार एवं भोग का साधन नहीं, यह दो आत्माओं का पवित्र मिलन है, जो देवताओं और अग्नि की साक्षी में सम्पन्न होता है। विवाह एक संस्कार है। संस्कार का अर्थ—दोषों का नाश करने वाला और गुणों को जन्म देने वाला कर्म। विवाह संस्कार से आत्मा की उन्नति होती है। इस संस्कार के द्वारा पति-पत्नी में उत्पन्न होने वाला प्रेम पवित्र होता है। संतान धर्मनिष्ठ बनती है। इस संस्कार से बंधे हुए पति और पत्नी धर्म, अर्थ और कामरूपी पुरुषार्थों में मर्यादा का कभी भी अतिक्रमण नहीं कर पाते।

विवाह संस्कार का प्रथम रूप से उल्लेख विश्व के सर्वप्रथम ग्रन्थ ऋग्वेद में सूर्या और सोम के विवाह रूप में उपलब्ध होता है। विवाह संस्कार की आवश्यकता एवं 'विवाह' शब्द के अर्थ का भी प्रथम रूप से उल्लेख ऋग्वेद के ब्राह्मण ग्रन्थ 'ऐतरेय' में पृथिवी और सूर्य के विवाह रूप में हुआ है। ऋग्वेद के विवाह सूक्त में ब्राह्मविवाह तथा गान्धर्व-विवाह का संकेत भी मिलता है। विवाहोपरान्त गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए संतानोत्पत्ति करना शास्त्रीय नियम है और मुख्य प्रयोजन भी। विवाह एक सांसारिक अव्यवस्था को दूर करने वाला संस्कार है। इसी से पुरुष सुसंस्कृत, सभ्य एवं धर्मात्मा बनता है। विवाह संस्कार ने मनुष्य को व्यवस्थित किया और परिवार दिया।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-65

यास्क का वैदिक अर्थविज्ञान

सुधीर कुमार पाठक, वाराणसी

वैदिक ऋषियों ने आप्तावस्था में वेदमन्त्रों का दर्शन किया था। शिष्यों ने उन्हें सुनकर याद किया। शिष्यों-प्रशिष्यों द्वारा सुनकर मन्त्रों के स्मरण करने की परम्परा प्रारम्भ हुई। सुनकर स्मरण करने की परम्परा के कारण ही इन मन्त्रों को श्रुति भी कहा जाता है। चूँकि मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने आप्तावस्था में मन्त्रों का दर्शन किया था अतः उनके भाव को समझने की जो धारा ब्राह्मणग्रन्थों से प्रवाहित हुई वह वेदाङ्गग्रन्थों से होती हुई आज भी अविरल गति से बह रही है।

वेदाङ्ग छः है—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त और ज्योतिष। जैसा कहा गया है—

शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं तथा।
कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः॥

वेदाङ्गों में निरुक्त का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि वेदमन्त्रों के अर्थज्ञान में निरुक्त साक्षात् रूप से सहायक है। यद्यपि व्याकरण, छन्द और ज्योतिष भी वेदों के उपकारक तो हैं किन्तु ये साक्षात् रूप से वेदार्थज्ञान में सहायक नहीं हैं। वेदार्थपरिज्ञान में निरुक्त के असाधारण महत्त्व तथा वेदोपकारकत्व का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि निघण्टु की व्याख्या होते हुए भी इसकी गणना वेदाङ्गों में की गयी है।

निरुक्त में यास्क ने निघण्टु के शब्दों की व्याख्या करने से पूर्व अपने शास्त्र में प्रवेश करने वालों के लिए विस्तृत भूमिका दी है जिसमें पद के भेद, शब्दों का धातुजसिद्धान्त, निरुक्त की उपयोगिता, निर्वचन के सिद्धान्त आदि उपयुक्त विषयों पर विचार किया गया है।

❋

V-66

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सामाजिक नैतिक मूल्य

शिव ज्योति शर्मा, जम्मू

मानव अपने नित्य दैनिक जीवन में विभिन्न प्रकार के सामाजिक प्राणियों के साथ जिस प्रकार का व्यवहार करता है, वही उसका आचरण कहलाता है। शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर कथन प्राप्त होता है कि कोई भी ब्राह्मण म्लेच्छ वाणी का प्रयोग न करे, क्योंकि ये आसुरी भाषा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

है। शतपथ ब्राह्मण में हमें चतुर्वर्णों का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। एक स्थान पर पति-पत्नी के जीवन को दाने के दो दलों की भाँति माना गया है। पुरुष के लिए बिना पत्नी के जीवन को असर्व तथा अधूरा कहा गया है। सामाजिक नैतिक मूल्य के अन्तर्गत स्त्री के लिए कथन प्राप्त होता है कि यदि वह अपने किसी पाप-कर्म को छिपाएगी तो उससे स्वजनों का अहित होगा। व्यक्ति को चाहिए कि वह समाज में स्तुति योग्य व्यक्ति की ही स्तुति करे, पितरों-पूर्वजों को नमस्कार करे तथा देवों का यजन करे, समाज में किसी को भी दुष्टता का व्यवहार नहीं करना चाहिए; क्योंकि उससे दरिद्रता, रोग, संतानहीनता, पशुहीनता तथा अप्रतिष्ठा की प्राप्ति होती है। समाज में एक-दूसरे को हानि न पहुँचाने का भी शतपथ ब्राह्मण में स्पष्टतः निर्देश प्राप्त होता है। सामाजिकता की श्रेणी के अन्तर्गत शतपथ ब्राह्मण में रीछ, व्याघ्र, नीच पुरुष, चोर, डाकू आदि से सुरक्षित रहने के लिए कहा गया है कि दो ग्रामों के बीच की सीमाएँ परस्पर मिली होनी चाहिए। सामाजिक नैतिकता के अन्तर्गत शतपथ ब्राह्मण में कथन प्राप्त होता है कि लोगों को उनके मंगल नामों से ही बुलाना चाहिए। इसके लिए कारण बतलाया गया है कि जैसे बहुकार (बहुत काम करने वाला), श्रेयस्कर (कल्याण करने वाला), जो ऐसे नाम वाला होता है, वह मनुष्य वाणी से भी सदैव कल्याण ही बोलता है। शतपथ ब्राह्मण में सामाजिकता की दृष्टि से स्त्री की हत्या को वर्जित किया गया है। क्योंकि स्त्री को साक्षात् करुणा की देवी "श्री" का अवतार माना गया है।

*

V-67

मांगलीक योग एवं परिहार

शामलाल, जम्मू

अधिकतर ज्योतिर्विद् जन्म कुण्डली का मिलान करते समय केवल दो बातों का ध्यान रखते हैं कि लड़का-लड़की मांगलीक तो नहीं? आपस में कितने गुण मिलते हैं? जबकि केवल इन दो बातों से काम नहीं चलता व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर मांगलीक को अमांगलीक के साथ जीवन बिताते देखा गया है और दो मांगलिकों में एक मृत्यु अथवा सम्बन्ध-विच्छेद होते देखा है।

"मुहूर्त्त संग्रहदर्पण" में मांगलीक योग के विषय में बताया गया है—

"लग्ने व्यये च पाताले जामित्रे चाष्टमे कुजे।
कन्या भर्तुविनाशाय भर्ता कन्या विनाशकः॥"

परिहार बताते हुए कहा है—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

''कुज दोषवती देया कुज दोषवते किल।
नास्ति दोषो न चानिष्टं दम्पत्योः सुखवर्धनम्॥''

और भी ग्रन्थों में बताया गया है।

अजे लग्ने चापे पाताले वृश्चिके कुजे।
धूने मृगे कर्कि चाष्टौ भौमदोषो न विद्यते।

मंगल अथवा मांगलीक दोष का निर्णय कुण्डली विशेष में सभी ग्रहों के पारस्परिक अनुशीलन के पश्चात् ही करना चाहिए। सभी लग्न कुण्डलियों में मांगलीक दोष का प्रभाव एक जैसा नहीं होता। ''सारावली'' में कहा गया है—''सर्वे त्रिकोणनेतारो ग्रहा शुभफलदाः॥''

इसी भान्ति

स्वोच्चस्थितः शुभफलं प्रकरोति पूर्णम्।
नीचर्क्षगस्तु विपलं रिपु मन्दिरेऽल्पम्।
भाव सर्वे शुभपतियुता वीक्षितः वा शुभेशैं—
तत् तद्भावाः सकलफलदा पापदृक्यायोगहीनाः।

वर-कन्या की कुण्डलियों का मिलान करते समय उनके सुखी एवं सम्पन्न दाम्पत्य जीवन के लिए मांगलीक योग अवश्य देखना चाहिए।

❋

V-68

वैदिक संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में नारी

डॉ. रेणु गुप्ता, जम्मू

प्राचीन भारतीय समाज में नारी ने अपने आचरण, कार्य और गुणों के कारण समाज में इस प्रकार ख्याति प्राप्त कर ली थी कि उसके बिना समाज का कोई भी सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक कार्य परिपूर्ण नहीं हो सकता था। उसने स्वर्ग तुल्य सुखों को गृहस्थी में पृथ्वी पर एकत्र कर दिया, इसलिए नारी समाज में सम्मान, श्रद्धा और परिवार के लोगों का स्नेह प्राप्त करती थी। उसके पवित्र विचारों की जीवन-पर्यन्त और मृत्यु के पश्चात् भी प्रशंसा की है। उसका त्याग एवं प्रसन्नता ही परिवार को सुगृहस्थ बनाता है। समाज में नारी अपने सुकृत्यों से सम्मान पाती थी और श्रद्धा की दृष्टि से देखी जाती थी।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पुरुष ने संसार रूपी समुद्र से पार होने के लिए और गृहस्थी में परम सुख प्राप्त करने के लिए जगत् की शक्ति महामाया दुर्गादेवी से प्रार्थना की कि मुझे मन की इच्छा के अनुसार चलने वाली मनोहर, अर्थात् सौम्य स्वभाव वाली पत्नी प्रदान करो, जो दुर्गम संसार रूपी सागर से तारने वाली और उत्तम कुल में उत्पन्न हुई हो।

❋

V-69

वैदिक काव्य—सौन्दर्य
''गायत्री, ओउम् एवं शान्ति पाठ''

डॉ. छाया रानी, अगस्त्यमुनि (रुद्रप्रयाग)

शास्त्रों की सम्पत्ति रूप वेदों की माता गायत्री ही मानी गई है। निश्चित रूप से चारों ही वेदों की उत्पत्ति इसी से हुई है। 'वेद' शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'ज्ञान'। ज्ञान के चार भेद हैं— ऋक्, यजु, साम और अथर्व। माँ गायत्री के गर्भ में स्थित यह ज्ञान अत्यन्त ही शुद्ध, सर्वांगपूर्ण एवं परिमार्जित है कि यदि मनुष्य इसके विषय में जानले और तदनुसार जीवन में व्यवहार करे तो निश्चय ही लोक-परलोक सभी सुधर कर सभी प्रकार से सुख और शान्तिदायिनी हो सकते हैं।

''गायत्र्येव मता माता वेदानां शास्त्रसम्पदाम्।
चत्वारोऽपि समुत्पन्ना वेदास्त्वस्या असंशयम्॥''

'गायत्री छन्दसामहम्' अर्थात छन्दों में गायत्री छन्द मैं ही हूँ।

'भूर्भुवः स्वरिति चैव चतुर्विंशाक्षरास्तथा।
गायत्री चतुरो वेदा ओंकारःसर्वमेव तू॥'

अर्थात भूर्भुवः स्वः यह तीन महाव्याहतियां चौबीस अक्षर वाली तथा चारों वेद निःसंदेह ओंकार स्वरूप हैं। बृहस्पति जी के मतानुसार देवत्व और अमृतत्व आदि की जननी गायत्री को प्राप्त करने के बाद कुछ भी शेष नहीं रह जाता है।

'गायत्री प्रत्यग्ब्रह्मैक्य बोधिका' अर्थात् गायत्री प्रत्यक्ष अद्वैत ब्रह्म बोधक है। संसार की जन्मदात्री प्रकृति है और जगत का पालन कर्त्ता पुरुष है। जगत का पिता के स्थान से माता का स्थान सौ गुणा अधिक है।

छान्दोग्य उपनिषद में ॐ की उद्गीथ, उद्गीथ के 'उत' 'गी', 'थ' शब्दों से, प्राणरूप से,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सूर्य रूप से, शरीरस्थ वायु व्यान् के रूप में, अधिदैव और अध्यात्म के रूप में उपासना दी गई है। वेद एवं उपनिषद उस विश्व समुदाय के लिए है जिसके हृदय में प्रेम, विश्वबन्धुता, अपनापन, सह अस्तित्व, सहकार, संवाद सहयोग भरा है। जिसके मन में संयम, संकल्प, साधना, सदाचार और सम्पूर्ण प्राणिसमुदाय के लिए स्नेह है, समत्व है, सन्तुलन है।

शान्ति का तात्पर्य निश्चेष्ट रहने से नहीं, अपितु समुचित प्राकृतिक नियमों के पालन एवं सनातन सुख समृद्धि और अनश्वर सुसंस्कृत आचरणों से है। सभी प्राणी आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र एवं सम्पूर्ण पर्यावरण से ही अस्तित्व में हैं। सभी का अस्तित्व बना रहे, हमारे जीवन पीढ़ी दर पीढ़ी बने रहें, शान्ति पाठ इस दृष्टि से न केवल पाठन मात्र के लिए अपितु जीवन विधान, भावनात्मक एवं व्यावहारिक, शास्त्रीय संविधान समझने के लिए भी है। इसका पूर्णतः पालन करके हम सौ वर्ष जी सकते हैं तथा विश्व को आतंक, अपहरण, शोषण और अनेकशः अनाचारों से सुरक्षित कर सकते हैं। प्राकृतिक आपदाएं, दैवीय आपदाएं, मानवीय आपदाएं हमें समय-2 पर पीड़ित करती रहती हैं उन पर विजय प्राप्त करने का भी यह अच्छा उपाय है।

*

V-70

Horoscope of Sanskrit Scholars

Dr. Jaya Shree

इस शोधपत्र सारांश में संस्कृत भाषा में निपणात पंडित लोगों के Horoscope के कौन से ग्रहयोग थे? इस विषय पर प्रबंध पढूँगी इस प्रबंध का (article) का सारांश भेजा है। ग्रहयोग - गुरु ग्रह—अच्छा होना चाहिए। गुरु का चंद्र के साथ नवपंचम योग या लाभयोग चाहिए। शनि ग्रह—तन मन धन से विद्या प्राप्ति देता है। दृढ़ निश्चय देता आहे खडतर तपस्या करने की इच्छा रहती है। शनि भाषा का कारकत्व ही संस्कृत प्राचीन विद्या, उत्खननशास्त्र विद्या, पुरातन विद्या है। शनि ग्रह की राशि मकर-कुंभ है। और शनि 7, 9 और 11 स्थान में हो तो बहुत अच्छा फल (विद्याभ्यास) देता है। लग्न जन्म का समय का लग्न (Asc) वो स्थिर 2, 5, 8, 11 वृषभ सिंह वृश्चिक और कुंभ का हो। तो विद्याभ्यास दृढ़निश्चय से हो जाता है। मिथुन, कन्या, धनु और मीन इस राशि का लग्न (Ascdent) जन्म के समय हो तो लग्न बौद्धिक अधिपणन में अव्वल रहते हैं। नवनिर्मिति अच्छी होती है। इस अप्रबंध में विद्वान संस्कृत के लोगों की जन्मकुंडली के ग्रहयोग का विवेचन किया है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-71

पंचाग निर्माण (साधनार्थ विधि)

डॉ. नरेश कुमार शर्मा, जम्मू

शास्त्र अनेक हैं—

अनन्तसारं किल शब्द शास्त्रं, स्वल्पं तथायुर्वहवश्चविघ्नाः।
सारं ततो ग्राह्यमुपास्य फल्गुंहसेर्यथा क्षीरमिवाम्वुमह्यात्॥

उपर्युक्त सूक्ति के अनुसार किसी भी शास्त्र का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन क्षणभंगुर जीवन के अल्पकाल में सम्भव नहीं है। उसमें भी ज्योतिष शास्त्र वेदांगभूत होने के कारण उतना ही विशालकाय है जितना स्वयं वेद, फिर भी मैंने ''यत सारभूतम् तदुपालनीयम्'' का अवलम्बन करते हुए ज्योतिष महार्णव (महासमुद्र) में से योगायोग एवं अन्यजीवनोपयोगी तथ्यों का विवेचन प्रस्तुत इस पत्र में समाहित करने का प्रयास किया है। पंचाग निर्माण के क्षेत्र में ज्योतिष सिद्धान्त ग्रन्थों में सर्वप्रथम अहगर्ज साधर कर अनुपात द्वारा मध्यम ग्रह लाकर विभिन्न संस्कारों से संस्कृत दृक सिद्ध ग्रहों का स्पष्टीकरण करने का निर्देश है तथा तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण पंचाग साधनार्थ विधि का वर्णन मिला है।

*

V-72

वैदिक-ऋषि याज्ञवल्क्य का आत्मवाद

डॉ. कृष्णचंद्र झा 'मयंक', दरभंगा

'अत् सातत्य गमने' धातु से व्युत्पन्न 'आत्मा' शब्द लौक्य (देखने योग्य) लातव्य (लाने योग्य) तथा ध्यातव्य है। यास्क ने अततेर्वा, आप्तेर्वा के रूप में 'आत्म' शब्द की व्युत्पत्तियाँ प्रस्तुत की हैं। सतत गमन कर्त्ता तथा व्यापक के रूप में आत्मा की प्रस्तुति होती है। वेदांत में अग्नि को इसकी मूर्धा कहा गया है। सूर्य-चन्द्र इसके चक्षु हैं, दिशाएँ श्रोत हैं तथा वेद मंत्र ही इसके वचन हैं। वायु प्राण के रूप में कथित है। विश्व हृदय तथा पृथ्वी पद है। यही विश्वान्तरात्मा है।

मैथिल याज्ञवल्क्य ने सविता देवता की आराधना के द्वारा परा-विषयिणी सिद्धि प्राप्ति की थी। वृहदारण्यक उपनिषद् में आत्मा विषयक इनके अनेक मंत्र विद्यमान हैं। अपनी अर्द्धांगिनी मैत्रेयी के प्रति याज्ञवल्क्य ने कहा था—'नवाऽरे पत्युः कामायं पतिः प्रियों भवति, आत्मनस्तु कामाथ पति

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रियो भवति।' इसी प्रकार पुत्र, जाया वित्त क्षत्र, धर्मादि को आत्मा के साथ संयुक्त किया गया तथा 'आत्मा वा अरे! द्रष्टव्यः' की घोषणा की गई। यह आत्मा श्रोतव्य, मनतव्य तथा निदिध्यासितव्य भी है।

मैथिल याज्ञवल्क्य 'मधु-विद्या के प्रस्तोता के रूप में विश्रुत हैं।' अयमात्मा सर्वेषां भूतानां मध्वस्यै (वृ. उप.)—इस श्रुति के अनुसार आत्मा सारे प्राणियों के लिए 'मधु' रूप में कथित है तथा सारे प्राणी आत्मा के लिए मधु है, ऐसा कथन भी द्रष्टव्य है।

*

V-73

आर्ष काव्यों में वाग्देवता सरस्वती का स्वरूप

डॉ. (श्रीमती) प्रेम लता मिश्रा, सुलतानपुर

भारतीय जीवन और साधना में 'सरस्वती' का अप्रतिम स्थान है। ऋग्वेद में 'सरस्वती' नाम नदी तथा देवता दोनों रूपों में प्रयुक्त हुआ है—

द्विविधा हि सरस्वती विग्रहवद्देवता नदी रूपा च। — ऋक 1/3/13

निघण्टु में भी 'सरस्वती' के ये दोनों अर्थ स्वीकृत हुए हैं—

(क) सरस्वत्यः नदीनामसु पठित्। — निघण्टु 1/13

(ख) सरस्वती वाङ्नामसु पठितम्। — निघण्टु 1/11

आर्ष ग्रन्थों, पुराणों, महाकाव्यों आदि में भी सरस्वती का स्वरूप अनेकशः इन्हीं दोनों रूपों में वर्णित है। ऋग्वेद में 'सरस्वती' नाम प्रथमतः नदी के लिये प्रयुक्त हुआ है अथवा वाक् देवता के लिए—इस संबंध में निश्चयपूर्वक कुछ भी कहना दुष्कर है। चूँकि भारतीय चिन्तन धारा में 'जड़ में चेतन की कल्पना' करने की परम्परा प्रारम्भ से ही रही है। अस्तु सभ्यता के ऊषाकाल में दृश्य (भौतिक रूप नदी) से अदृश्य (वाक् देवता) की कल्पना हुई होगी—ऐसी विद्वत् विचार धारा है।

यहाँ सरस्वती शब्द की व्युत्पत्ति भी ध्यातव्य है। प्रियव्रत वेदवाचस्पति ने 'सरस्वती' की निष्पत्ति करते हुए लिखा है—"सृ गतौ। गतेर्ज्ञानमप्यर्थः। सरति प्रवहति गुरोः शिष्यं प्रतीति सरोज्ञानम्। सर्वधातुभ्योसुनः। उणादि 4/1/89, इत्यौणदिकोसुन् प्रत्ययः। सरो विद्यते यस्यां सा सरस्वती। ताद्वितो मतुप्।"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

—वेदों के राजनीतिक विद्धान्त पृ.सं. 484 अर्थात् गत्यर्थक 'सृ' धातु से असुन् प्रत्यय का योग करने पर 'सरस' शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है—गतिशील जल अथवा ज्ञान। इस आधार पर सरस्वती के अनेक अर्थ बन जाते हैं। सभी अर्थों में जल अथवा ज्ञान का सूत्र अन्तर्निहित रहता है।

'दुर्गासप्तशती' (प्राकृतिक रहस्यम्, श्लोक 15) में सरस्वती महाविद्या, भारती, वाक्, आर्या, ब्रह्मी, वेदगर्भा, सुरेश्वरी, महाधेनु आदि कही गयी हैं। अथर्ववेद (9/2/5) की धेनु (सर्वान् कामान् धयति। सर्वकामदुहा) ही परवर्ती साहित्यों में महाधेनु अथवा वाग्धेनु है।

*

V-74

अथर्ववेद में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा

डॉ. कैलाश नाथ तिवारी

आज के समान 'पर्यावरा संरक्षण' के स्वतंत्र विषय के रूप में चिन्तन की अवधारणा वैदिक काल में नहीं थी। वैदिक ऋषियों ने पर्यावरण को समग्र सृष्टि से अभिन्न रूप में प्रतिपादित कर जीवन के साथ अनुस्यूत कर दिया था। प्रकृति और मानव जीवन में सामंजस्य एवं संतुलन ही पर्यावरण संरक्षण था। अथर्ववेद में भूमि, जल, वायु, अग्नि, पर्जन्य और आकाश को मात्र जड़ प्रकृति न मान कर उनमें देवत्व की उद्भावनाऐं की गई है। इसी प्रकार नदी, वृक्षों, वनस्पतियों, पर्वतों आदि में भी चेतनता की कल्पना करते हुए उनसे कल्याणकारी होने की प्रार्थनाऐं हैं।

प्रकृति के साथ साहचर्य एवं सदुपयोग की भावना अथर्ववेद की अपनी मौलिक विशेषता है। अथर्ववैदिक चिकित्सा विज्ञान में अन्य विधियों के अतिरिक्त प्राकृतिक चिकित्सा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आवास गृह के साथ उपवन, कुल्या, कूप, बाबड़ी आदि का उल्लेख मिलता है। यज्ञों का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है और पर्यावरण संरक्षण में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

अथर्ववेद में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक सभी क्षेत्रों में सामंजस्य एवं संतुलन का निर्देश हुआ है जो पर्यावरण संरक्षण के व्यापक चिन्तन का द्योतक है।

अथर्ववेद में केवल बाह्य जड़ प्रकृति का प्रदूषण ही नहीं अपितु शारीरिक एवं मानसिक प्रदूषण रोकने की भी उद्भावना की गई है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-75

भारतीय ज्योतिष में कालसर्प योग की प्रासंगिकता

डॉ. उमेश दत्त भट्ट, इलाहाबाद

भारतीय ज्योतिष में जातक के भविष्य की तमाम चिन्ताओं के विवेचनार्थ मनीषियों द्वारा भिन्न-भिन्न आधारों पर पृथक्-पृथक् दृष्टि से अनेकों योगों का परिकल्पन किया गया है। ये सभी योग जन्म-पत्र में नवग्रहों के विविध संयोगों के परिणाम स्वरूप ही उद्घाटित हुए हैं। वर्तमान जन्म की भावी चिन्ताओं एवं समस्याओं को पूर्वजन्मकालिक कर्मजन्य (शाप द्योतक) विभिन्न योगों के आलोक में भी देखने समझने का प्रयास एवं तज्जन्य समस्याओं से निजात पाने का उपाय सुझाया गया है यथा—शर्पशाप, पितृशाप, मातृशाप आदि-आदि।

राहू और केतु अथवा केतु और राहु की वक्री गति के मध्य जब शेष सभी ग्रह जातक की जन्म पत्री में स्थित होते हैं तब कालसर्प योग उद्घाटित होता है। यह योग कितने प्रकार का होता है? इसका संबन्ध अन्य शापित जन्म पत्रिकाओं से होता है अथवा नहीं? इसके स्वतंत्र अस्तित्व की विचारणा कितनी प्रासंगिक है? अन्य शापित योगों से यह भिन्न है अथवा उन्हीं परिकल्पित योगों में अन्तर्मुक्त है? इसके स्वतंत्र अस्तित्व की परिकल्पना तथा उसके दुष्प्रभावों से बचने का प्रबन्धन भारतीय ज्योतिष की दृष्टि से कितना अपरिहार्य है? प्रस्तुत शोध में इन्हीं सब बिन्दुओं की सतर्क विवेचना प्रस्तुत की गई है।

*

V-76

द्वादश भावों में शुक्र की अवस्थिति की मीमांसा

पुशविन्दर कुमार, जम्मू

ज्योषिशास्त्र में शुक्र को सौम्य ग्रह माना गया है। द्वादश भावों में शुक्र की उपस्थिति से बालक पर पड़ने वाले प्रभाव को भावानुसार अभिव्यक्त किया जा सकता है। यदि जन्म समय में शुक्र मेष का हो तो वह जातक विविध प्रकार के वाहनों से युक्त, घर और नगर का मालिक, देश-विदेश में भ्रमण करने वाला, कवियों से युक्त और शत्रु विहीन होता है। जातक के जन्म के समय वृष राशि का शुक्र हो तो अनेक पुत्र-स्त्री के सुख से युक्त, सुगन्धित वस्तुओं में रुचि रखने वाला, कृषिकार्य करने वाला, लक्ष्मीवान शत्रु रहित होता है। जातक के जन्मसमय में यदि मिथुन का शुक्र हो तो जातक विज्ञान, कलाशास्त्रज्ञान का ज्ञाता, निरन्तर प्रसिद्धि प्राप्त करने वाला सुन्दर शरीर वाला

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri Foundation and eGangotri

तथा कामी होता है। कर्क राशि में शुक्र हो तो वह जातक कार्य व धर्म में लीन, विद्वान, बलवान, गुणियों में सरल व प्रधान इच्छित सुख व धन से युक्त सुन्दर शरीर वाला, उत्तम न्यायकर्ता, स्त्री व मद्यपान करने से अधकि रोगों से पीड़ित एवं अपने दोषों से दुखी होता है। यदि सिंह का शुक्र हो तो मनुष्य सन्तोषी, सुखी, यशस्वी, उपकारी, साहसी, सम्मान पाने वाला चतुर तथा शिल्पज्ञ होता है। उत्पति के समय कन्या राशि में शुक्र हो तो वह जातक अल्पचिन्ता करने वाला, सरल चतुर, परोपकारी, तीर्थ एवं सभा में पीड़ित होता है। यदि तुला राशिस्थ शुक्र हो तो वह जातक परिश्रमी, वीर, नवीन वस्त्रों का प्रेमी, विदेश में तत्पर निपुणता से रक्षा करने में चतुर, कठिन कायों में चंचल, धनी, शोभनीय, ब्राह्मण व देवता की पूजा से पण्डित एवं सौभाग्यवान होता है। वृश्चिक राशि में शुक्र हो तो वह जातक झगड़ालू, घातक, जनता में बदनाम, कुव्यसन से गुप्तेन्द्रियों में रोग, अल्प धन वाला होता है। यदि जन्मसमय में धनु का शुक्र हो तो धन, पुत्र, स्त्री से सुखी, मन्त्र, शुभ्शील युक्त, कवि प्रेमी एवं वैरागी होता है। मकर राशिस्थ हो तो ऐसा व्यक्ति शत्रुजयी, सत्ता एवं अधिकार प्राप्त करने वाला, विदेशवासी, वाहन द्वारा त्रास पाने वाला, कफरोगी, एकान्तवासी अथवा कवियों के सम्पर्क में रहने वाला होता है। कुम्भ राशिस्थ शुक्र हो तो वह जातक उद्वेग रोग से पीड़ित, व्यर्थ के कार्यों में सदा तत्पर, परस्त्री गामी अधर्मी, गुरुजन एवं पुत्रों से शत्रुता करने वाला होता है। जन्मकाल में मीन का शुक्र हो तो राजा से धन प्राप्त करने वाला शत्रु का धनहारी, दीन को धन देने वाला होता है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि शुक्र की अवस्थिति में जातक अन्ततः सुखभोग की प्राप्ति कर ही लेता है। विशद विवेचन शोधपत्र में व्याख्यायित किया गया है।

*

V-77

राहु स्वभाव मीमांसा

विजेन्द्र कुमार, जम्मू

ज्योतिषशास्त्र में नवग्रह के रूप में राहु भी एक महनीय ग्रह के रूप में समादृत है वैसे तो यह ग्रह छाया ग्रह के रूप में प्रसिद्ध है, लेकिन फिर भी यह मानव को अपने स्वभाव के अनुरूप प्रभावित कर ही देता है। राहु को कालपुरुष का दुःख माना जाता है शायद इसलिए इसे फणि, सर्प तथा तमो गुणों वाला ग्रह भी कहते हैं। इसे एक राशि का भ्रमण करने में 18 मास तथा द्वादश राशियों का भ्रमण करने में 18 वर्ष का समय लगता है। इसका स्वभाव तमोगुणी, मलिन, वायु तत्त्व प्रधान है तथा यह दक्षिण-पश्चिम का स्वामी एवं पाप ग्रह भी माना जाता है। इसका वर्ण नीला, लिंग स्त्री, जाति म्लेच्छ, अवस्थावृद्ध, नेत्र शनि जैसे स्वरूप वाला, आकृति दीर्घ, पद-पदहीन, तत्त्व वायु, गुण

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तमोगुणी, प्रकृति-वात, स्वभाव दारुण, धातु सीसा, वस्त्र कम्बल, आधि देवता राक्षस, दिशा-नैर्ऋत्य, रत्न गोमेद, वाहन व्याघ्र, प्रतिनिध पशु घोड़ा, ऊँट तथा सर्प संज्ञा अशुभ है। इसका प्रभाव विशेषकर पिण्डलियों पर एवं पॉव पर ही देखा जाता है और जन्म कुण्डली में इसकी विविध भावों में उपस्थिति के अनुसार जातक के परिश्रम, साहस, दुर्भाग्य, चिन्ता, दुर्गुणों तथा पितामह आदि के सम्बन्ध में विचार किया जाता है। यह दीर्घसूत्री किन्तु तीक्ष्ण बुद्धि वाला ग्रह है। शुभ ग्रह के साथ रहने पर यह इसके शुभत्व को कम करता है एवं जिस स्थान एवं भाव पर रहता है उस भाव के प्रभावों को प्रभावित करता है। दैवज्ञ लोग इस ग्रह की शान्ति के लिए गोमेद नामक रत्न या राहु जप की मन्त्रणा मानव जन को देते हैं। यह ग्रह अपनी महादशा, अन्तरदशा एवं प्रत्यन्तरदशा में विविध रूपों में जातक को प्रभावित करता है जिसका विस्तार से विवेचन शोधपत्र में किया जायेगा है।

*

V-78

दशमहाविद्या का स्वरूप—विवेचन

डॉ. जगन्नाथ झा, (बिहार)

श्रुति भगवती शक्त्युपासना के विविध रूपों का वर्णन करती है। ऋग्वेद के कतिपय मन्त्रों में पुरुषोत्तम प्रिया प्रकृति का भव्य मानवीकरण किया गया है तथा इसे 'ब्रह्म प्रचोदिनी' कहा गया है। प्रकृति ब्रह्म की प्रेरणा करती हैं तथा इस ब्रह्म की आनन्द तथा लीला विषयिणी वैचित्री का प्रसार करती हैं। विद्या वाचस्पति मधुसूदन झा ऐसे विश्वविश्रुत वेदविद् शक्ति, बल तथा क्रिया के रूप में शक्ति की तीन कोटियाँ निर्धारित करते हैं। केनोपनिषद् के अनुसार भगवती उमा—जो पराविद्या रूपिणी हैं—देवताओं के प्रति यक्ष-स्वरूप ब्रह्म का परिचय देती हैं। पुराणादि ग्रन्थों में भगवती की लीला-वैचित्री का बहुविध वर्णन हुआ है। ये विद्याविद्या रूपा वर्णित हैं। साधकों, उपासकों के निमित्त भगवती विद्या हैं। इनके द्वारा परा प्रथित होती है। असुरों को ये अविद्या में बद्ध करती हैं।

यह कथा सर्वविदित है कि शिव के समक्ष जगदम्बा के दश विग्रह प्रकट हुए थे, जिन्हें दश महाविद्या कहा गया है। शाक्तमत में काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी तथा कमला की महती साधना पल्लवित है। प्रथमा महाविद्या काली है। 'कलयति जनयतीति काली' के रूप में काली शब्द की व्युत्पत्ति दी जाती है। काली जनयित्री, संहार करती हैं तथा ये महाकाल की शक्ति भी हैं।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-79

वेद में स्वरप्रक्रिया

डॉ. कर्तार चन्द शर्मा, जम्मू

वैदिक ज्ञान को ऋषियों ने अपनी अत्यधिक तपस्या और साधना के बल पर आत्मसात् किया और फिर उस ज्ञान को आगे बढ़ाने के लिये ऋषियों ने उस ज्ञान का उपदेश अपने योग्य शिष्यों को दिया। इस प्रकार वैदिक ज्ञान की मौखिक परम्परा का आरम्भ हुआ और यह परम्परा सदियों से चलती आ रही है। इस मौखिक परम्परा के सतत् प्रवाहमान रहने का कारण है ऋषियों की साधना और वैदिक मन्त्रों की उच्चारण-प्रक्रिया के नियमों का ज्ञान भी प्रदान करते हैं। उच्चारण प्रक्रिया के भेद से मुख्यत: तीन प्रकार के स्वरों की जानकारी प्राप्त होती है—

स्वर: उच्च: स्वरोनीच: स्वर स्वरित: एव च।
स्वर प्रधानं त्रैस्वर्यं व्यञ्जनं तेन सस्वरम्॥

इन तीनों स्वरों के नाम क्रमश: उदात्त, अनुदात्त और स्वरित हैं। इन स्वरों के उच्चारण में हस्त निर्देश का विधान भी है—अर्थात् 'यथा वाणी तथा पाणी'। वेद में इन स्वर निमयों का बहुत ज्यादा महत्त्व है क्योंकि स्वर के अशुद्ध उच्चारण से वैदिक पदों का अर्थ बदल जाता है, जिससे कभी-कभी मन्त्र के अशुद्ध पाठ करने वाले की हानि हो जाती है जैसे—

मन्त्रो हीन: स्वरतो वर्णतों वा मिथ्याप्रयुक्ते न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रु: स्वरतोऽपराधात्॥

आज इस वैदिक पाठ की परम्परा का लोप होता जा रहा है इसीलिये आज का संस्कृत का विद्यार्थी वैदिक मन्त्रों का पाठ करने में असक्ष्म होता जा रहा है, साथ ही वैदिक मन्त्रों के अर्थ को समझने में कठिनाई महसूस कर रहा है। प्रस्तुत शोध-पत्र वैदिक स्वरप्रक्रिया और उच्चारण प्रक्रिया के महत्त्व को दर्शाने की दिशा में एक विनम्र प्रयास है।

❋

V-80

श्वेताश्वतरोपनिषद् का श्रीमद्भगवद्गीता पर प्रभाव

शिवकुमारी त्रिपाठी, रायपुर (छत्तीसगढ़)

उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति उप + नि इन दो उपसर्गों के साथ सद् धातु में क्विप् प्रत्यय करने पर होती है। सद् धातु का तीन अर्थ में प्रयोग होता है—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(1) विशरण - विनाशक (2) गति (ज्ञान-प्राप्ति) तथा (3) अवसादन याने शिथिल करना इन अर्थों के अनुसार उपनिषदयति सर्वार्थ कर संसारं विनाशयति संसारकारण भूताम् विद्यां च शिथिलयति ब्रह्म च गमयति इत्युपनिषद्।

उपनिषद् का प्रमुख नाम वेदान्त भी है और वेदों का चरम तात्पर्य उपनिषद् में ही वर्णित है। इस प्रकार ब्रह्म विद्या या अध्यात्म विद्या के चरम रहस्यों को बतलाने वाली उपनिषद् ही है।

श्रीमद् भगवद् गीता को समस्त उपनिषदों का सार कहा गया है। आदि गुरु शंकराचार्य ने इसे दुर्विज्ञेय कहा है। सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल नंदनः। उपनिषदों का सार होने से गीता अपने आप में ब्रह्म विद्या योगशास्त्र कहलाती है।

उपनिषद् एवं गीता की भाषा एवं शैली भिन्न-भिन्न होने के बावजूद भी वेदों का परम चरमोत्कर्ष लक्ष्य एक ही है, वह ब्रह्म या सत्य की खोज। दोनों पवित्र ग्रंथों का अहेतुक उद्देश्य है कि मानव जीवन मूल्यों पर आधारित रहस्यों को स्पष्ट कर इस लोक एवं परलोक में परमशांति प्रदान करना। इसी आशय से श्वेताश्वतरोपनिषद् का श्रीमद्भगवद्गीता पर मुख्य प्रभाव पड़ा है। उसका विषय की दृष्टि से तुलनात्मक अन्वेषण निम्न विषयों पर किया गया है।

(1) ईश्वर शरणागति से शाश्वत सुख।

(2) क्षर + अक्षर = पुरुषोत्तम।

(3) ईश्वर की प्रकृति।

(4) आराधना रूप यज्ञ, योग साधन।

(5) शान्ति की प्राप्ति।

(6) ज्ञेय क्या है?

(7) विश्वरूप - विराट रूप।

(8) ईश्वर क्या है?

(9) अव्यक्त के उपासक - प्रकृति-माया।

(10) परम सिद्धि की प्राप्ति।

(11) ईश्वरीय अंश - जीवात्मा।

(12) शुद्ध चेतन तत्व।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(13) समस्त कर्मों के अधिष्ठाता - ईश्वर।

(14) हम सब सनातन हैं - आत्मा का स्वभाव।

(15) क्षेत्र - क्षेत्रज्ञ।

❋

V-81

यज्ञाश्रित वैदिक अर्थ व्यवस्था

डॉ. आशा रानी राय, कानपुर

किसी भी राष्ट्र का सर्वाङ्गीण विकास वहाँ के अर्थ-व्यवस्था पर ही निर्भर करता है। जिस प्रकार विभिन्न कालों में अर्थव्यवस्था का आधार कृषि, उद्योग-धन्धे, कुटीर उद्योग, पशुपालन आदि रहें हैं। उसी प्रकार वैदिक युग में कृषि, पशुपालन व उद्योग धन्धों के अतिरिक्त यज्ञ भी अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार स्तम्भ रहें हैं। इन यज्ञों में अश्वमेध यज्ञ, राजसूय यज्ञ, पुरुषमेध, दशपूर्ण मास, अग्निष्टोम आदि प्रतिष्ठित और दीर्घ काल तक चलने वाले यज्ञ होते थे। जिसके द्वारा अनेक-विध कुटीर और लघु उद्योगों का नियमन स्वत: ही तत्कालीन समाज द्वारा हो जाता था लेकिन इन उद्योगों का एक महत्त्वपूर्ण गुण यह होता था कि यह केवल लाभ व स्वार्थ का ही ध्यान नहीं रखते थे बल्कि धार्मिक आधार का अन्वेषण करती हुई दृष्टिगोचर होते हैं। जिससे समाज का सर्वाङ्गीण विकास हो सके "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध कस्य स्विद्धनम्।" यहाँ पर भोग लिप्सा में लिप्त न होकर त्यागपूर्वक धन का उपभोग करना ही वैदिक संस्कृति का प्राण तत्व था जो व्यक्तिगत कल्याण के साथ-साथ सामूहिक कल्याण के सिद्धान्त की धर्ममूलक स्थापना करता है।

तत्कालीन समय में यज्ञ पर आधारित उद्योगों में महत्त्वपूर्ण उद्योग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, शैलूष, सभाचर, रथकार, वप्ता, इषुकार, विदलकारी, कंटकीकारी, रजक, चर्मकार, कोशकारी, हस्तिप, अश्वप, आंजनीकारी, गोव्यच्छ, चरकाचार्य, गणक, दावप आदि अनेकों प्रकार के उद्योग धन्धे प्रचलित थे।

उपर्युक्त अनेक उद्योग धन्धे, यज्ञों को सफल बनाने में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपनी सम्यक् भूमिका निभाते थे। इनके द्वारा वस्तुओं का सामूहिक उत्पादन और विनिमय ही वैदिक अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ रूप प्रदान करते थे। अत: यज्ञ "सर्वे भवन्तु सुखिन:" के सिद्धान्त को चरितार्थ करते थे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वर्तमान अर्थव्यवस्था प्रणाली, तत्कालीन अर्थव्यवस्था के सहयोग से एक ऐसा माडल तैयार कर सकती है, जिसमें केन्त्रीय अर्थव्यवस्था और राजकीय अर्थव्यवस्था को समन्वित रूप में एक सुदृढ़ रूप प्रदान किया जा सकता है, जिससे बेरोजगारी की समस्या को संभवत: शायद समूल नष्ट किया जा सकता है ताकि सामाजिक कल्याण की दिशा में नई सृजनात्मक अर्थव्यवस्था का निर्माण हो सके।

*

V-82

विश्व में मनुस्मृति की प्रासंगिकता

डॉ. अवधेश कुमार पाण्डेय, रॉची

स्मृति का शाब्दिक अर्थ होता है स्मरण से निर्धारित धर्माधर्म विवेक। स्मृति शब्द स्मृ आध्याने धातु से क्तिन् प्रत्यय के द्वारा निष्पन्न होता है। हैम कोश के अनुसार स्मृति शब्द स्मरण, धी, इच्छा एवं शास्त्र का वाचक है।

न केवल भारतीय संस्कृति पर बल्कि विश्व की विभिन्न संस्कृतियों पर मनु द्वारा प्रतिपादित वयवस्थाओं पर गम्भीर प्रभाव आज भी झलकता है। भारतीय संस्कृति के साथ-साथ विश्व संस्कृति में मनु ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। नवीन शोध के अनुसार उत्तरी चीन के समाज में मनु धर्मशास्त्रों का प्रचलन था। वहाँ के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक व्यवस्था के आधार मनु थे। मनु का नाम ईरान, सुमेरिया, मिश्र आदि देशों में आज भी फैला है। चीन के कई कबीलाई गाँवों में आज भी मनु देवता की पूजा की जाती है। इन देशों में कानूनी और सामाजिक ढाँचे का आधार मनु धर्मशास्त्र ही है। मनुस्मृति विश्व के कई देशों के लिए प्रासंगिक है। मिस्र के 'माइनीज' और 'म्नेअस' से मनु का बोध होता है।

*

V-83

वैदिक उद्योग धन्धों की वर्तमान प्रासंगिकता

डॉ. सुनीता केशरी, कानपुर

वर्तमान युग अर्थ प्रधान युग स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। सम्पूर्ण विश्व और अधिक और अधिक धन की चाह में दु:खी है, फलस्वरूप धन बढ़ रहा है परन्तु शान्ति घट रही है। विद्वान अर्थशास्त्री

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अपने-अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर रहे हैं। अनेकों उद्योग धन्धे व रोजगार के साधन उपलब्ध कराये जाने पर भी मानव सुख स्वप्न प्रतीत होने लगा है। यहाँ तक कि पूँजीवाद और साम्यवाद निरर्थक प्रतीत होने लगा है। ऐसे में वैदिक आर्थिक चिन्तन और उसके क्रियान्वयन के द्वारा उसकी वर्तमान प्रासंगिकता का महत्व बढ़ जाता है।

राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिये आय के अन्य संसाधनों के अतिरिक्त उद्योग धन्धों का भी अत्यन्त महत्व है। छोटे बड़े अनेक उद्योगों के माध्यम से राष्ट्र की समस्त खनिज सम्पदा का ठीक-ठीक उपयोग होता है। वैदिक साहित्य का गहन अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समय में भी अनेक उद्योग विकसित अवस्था में स्थापित थे। जिनमें वस्त्र निर्माण उद्योग, आभूषण बनाना, धातु उद्योग, चर्म उद्योग, चटाई उद्योग, भोजन व यज्ञादि के पात्र, जलयान व वायुयान, विद्युत चालित यान, गृह निर्माण कला, शास्त्रास्त्र बनाने के कारखाने आदि अनेक उद्योग हैं जो अर्थोपार्जन के साधन बनते थे।

आज अर्थ प्राप्ति के संसाधनों की पवित्रता नष्ट होती जा रही है प्रत्येक मनुष्य केवल अपने स्वार्थ पर ही ध्यान दे रहा है। जिससे अनेक प्रकार की समस्यायें समाज में स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही हैं। यदि हम प्राचीन और अर्वाचीन अर्थोपार्जन के साधनों का समन्वय तथा वैदिक अर्थतन्त्र के अनुसार भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय कर सके तो राष्ट्र को ऐश्वर्य के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ होने की निश्चितता निश्चय ही बढ़ जायेगी। ऐसी अर्थव्यवस्था 'सर्वेभवन्तु सुखिनः' के सिद्धान्त को निश्चित रूप से चरितार्थ करेगी।

*

V-84

वैदिक वाङ्मय में वीणा—एक विवेचन

डॉ. सुमन दुबे

वैदिक वाङ्मय में वीणा नामक वाद्ययंत्र को वाद्ययन्त्रों का आदि स्रोत माना गया है। वैदिक काल में 'वीणा' सबसे अधिक लोकप्रिय और मनोरम वाद्य था। 'वीणा' नामक वाद्ययंत्र के लिये प्रारम्भ में 'वाण' शब्द का प्रयोग किया गया है। वाण का अर्थ था वाद्य परवर्ती वैदिक काल में वाण शततन्तु (सौ तार) वाली वीणा के अर्थ में मिलता है। ऋग्वेद के अनुसार इससे सात धातु (स्वर) निकलते हैं। इन धातुओं का नाम उस युग में वाणी भी मिलता है।

शाकटायन ब्राह्मण में वीणा विषयक एक बड़ी ही रोचक कथा आती है कि किसी समय असुरों ने कण्व मुनि को अंधेरी कोठरी में बंद कर दिया तथा उनके नेत्रों को भी बंद कर दिया

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

और यह आदेश दिया कि उषागमन की बात कहकर वे अपने ब्राह्मणत्व की प्रतिष्ठा को प्रमाणित करें। कण्व मुनि के ब्राह्मणत्व की रक्षा के लिए आश्विन देवता ने अपने प्रातःकाली वीणा वादन से उन्हें उषःकाल की सूचना दी जिससे असुरों ने कण्व मुनि को असुरों के बंधन से मुक्त कर दिया। ब्राह्मणों में वीणा वादक को ''वीणागाथिन्' कहा गया है। शत्पथ ब्राह्मण में ''वीणागाथिन्'' शब्द वादकों के समूह के नायक का द्योतक है। इस प्रकार वैदिक वाङ्मय में वीणा नामक वाद्य यंत्र एक प्रमुख सांगीतिक वाद्य यंत्र के रूप में वर्णित किया गया है।

*

V-85

स्मृतिकालीन आश्रम व्यवस्था

डॉ. अखिलेश कुमार शुक्ल, लखनऊ

प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में आश्रम व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण स्थान था। भारतीय मनीषियों ने मानवजीवन का परम उद्देश्य पुरुषार्थ चतुष्ट्य को माना धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष संज्ञक चतुर्विध पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए शतायु के परिमाण के अनुसार मानव जीवन को चार भागों में विभाजित किया गया है, जिसे आस्त्रम के रूप में जाना जाता है। आश्रम शब्द—'श्रम' धातु से 'धञ्' प्रत्यय पूर्वक निष्पन्न हुआ है। जिसके दो प्रमुख अर्थ लगाए गए हैं। (1) वह स्थान जहां तपस्वी तपस्या करते हैं। (2) मानव जीवन की चार अवस्थाएं।

इस दृष्टि से मानव जीवन की चार अवस्थाओं को ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थआश्रम, वानप्रस्थाश्रम, संन्यास आश्रम के नाम से जाना जाता है। मनुष्य के कार्यों का समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक विधि से अध्ययन कर जीवन के मूलभूत कर्तव्यों को इन्हीं चार आश्रमों में विभाजित कर दिया गया। प्रस्तुत शोधपत्र में स्मृतिकालीन भारतीय समाज में आश्रम व्यवस्था का क्या स्वरूप रहा है? इस तथ्य पर प्रकाश डाला जा रहा है। जिसके अन्तर्गत निम्न बिन्दुओं पर विचार किया जाना है—

(1) वेदों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में यद्यपि आश्रम शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है, किन्तु उत्तरवैदिक काल मे आश्रम व्यवस्था की पृष्ठभूमि तैयार हो गयी थी।

(2) आश्रम व्यवस्था अपना व्यवस्थित रूप सूत्रकाल तक धारणकर चुकी थी, और स्मृतिकाल में यह पूर्ण विकसित हुई।

(3) स्मृतियों में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आश्रम स्वरूप सुव्यस्थित रूप में प्राप्त होता है जिसमें मनुष्य के जीवन के संस्कारों का निर्माण, कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का निर्धारण शिक्षा तथा समाज के प्रति दायित्व निर्वाह आदि सभी पक्षों का अधिग्रहण हो जाता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri Foundation, 2024

(4) आश्रमव्यवस्था के व्यावहारिक पक्ष की उपादेयता जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति में समाहित हुई है।

❋

V-86

कौशिक गृह्यसूत्र में प्रतिपादित स्वस्त्ययन कर्म-एक समीक्षा

डॉ. सुधाकर द्विवेदी, जौनपुर, उत्तरप्रदेश

वैदिक गृह्यसूत्र वाङ्मय में कौशिक गृह्यसूत्र अपनी विविधता एवं विलक्षणता के लिए प्रसिद्ध हैं इसमें न केवल संस्कारों का वर्णन किया गया है अपितु सम्पूर्ण मानव जीवन को ही समाहित कर दिया गया है। यद्यपि स्वस्त्ययन या कल्याण की भावना मानव जीवन से सम्बद्ध सम्पूर्ण कर्मों में देखी जा सकती है इसी कारण से सभी कर्मों को स्वस्त्ययन कर्म कहा जा सकता है तथापि कौशिक गृह्यसूत्र इसका पक्षधर नहीं है इसमें कुछ कर्मों को ही स्वस्त्ययन कर्म की संज्ञा प्रदान की गई है। ये कर्म हैं-हिंसक जन्तुओं से रक्षार्थ स्वस्त्ययन कर्म, मार्ग स्वस्त्ययन कर्म, रूद्रप्रेतादि स्वस्त्ययन कर्म, सर्पादि स्वस्त्ययन कर्म, गो स्वस्त्ययन कर्म, ग्राम-पत्तन तथा गृह स्वस्त्ययन कर्म, अन्न स्वस्त्ययन कर्म, बन्धनगतव्यक्ति स्वस्त्ययन कर्म, अग्नि स्वस्त्ययन कर्म, नावतरण स्वस्त्ययन कर्म, नष्टद्रव्यप्राप्त्यर्थ स्वस्त्ययन कर्म एवं आयुष्य निमित्तक स्वस्त्ययन कर्म।

इन कर्मों की समीक्षा में तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक पक्ष की भूमिका अहम् एवं सर्वोपरि है। तुलनात्मक दृष्टि से अन्य गृह्यसूत्रों में एतादृश कर्मों का प्रायः अभाव है केवल कहीं-कहीं इनका आभास मात्र मिलता है। आलोचनात्मक दृष्टि से कौशिक गृह्यसूत्र में प्रतिपादित स्वस्त्ययन कर्म स्वयं में परिपूर्ण हैं। विधानों एवं कर्मकाण्ड की दृष्टि से ये कर्म अत्यन्त ऋजु एवं सरल हैं। इनमें विनियुक्त मन्त्रों में विनियोग सामर्थ्य स्पष्ट परिलक्षित होता है। ये कर्म तत्कालीन समाज में प्रचलित आस्था एवं विश्वास के परिचायक हैं। स्वस्त्ययन कर्मों के विवेचनोपरान्त सारांश रूप में यही कहा जा सकता है कि ये कर्म तत्कालीन सामाजिक चेतना एवं विचारों के अनुरूप हैं क्योंकि इनमें सामाजिक जीवन में व्यक्तिगत कल्याण कामना का भाव प्रमुख है। सामान्यतः मानव स्वभाव से ही अपने विविध समाजिक एवं व्यक्तिगत क्रिया-कलापों के प्रति अविश्वस्त एवं शंकालु होता है, उसे मार्ग आदि में हिंसक जन्तुओं एवं भूत-प्रेतादि से भय उत्पन्न हो जाता है। इसी भय के निवारणार्थ प्राचीन मनीषियों ने इन कर्मों का विधान किया होगा। कौशिक गृह्यसूत्र इसी भावना से प्रभावित होकर कल्याणार्थ किये जाने वाले इन कर्मों को स्वस्त्ययन कर्म की संज्ञा प्रदान करता है।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-87

वेदों में आयुर्वेद

कु. राधा चतुर्वेदी, लखनऊ

मनुष्य के द्वारा प्राकृतिक वातावरण के दुरुपयोग के कारण उत्पन्न उसके स्वास्थ्य की समस्याओं का प्राकृतिक जड़ी बूटियों के द्वारा निदान ही आयुर्वेद है। वैदिक काल से ही मनुष्य अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक रहे हैं। अत: आयुर्वेदिक चिकित्सा की उत्पत्ति वैदिककाल से ही प्रारम्भ हो गयी थी।

ऋग्वेद में आयुर्वेद के आचार्यों का उल्लेख है, जिसमें ''दिवोदास'' और ''भारद्वाज'' प्रमुख हैं, इनसे शल्य और काय चिकित्सा का प्रचार पृथ्वी पर हुआ (ऋग्वेद-1-8-11)। किन्तु इसका विस्तृत विवरण अथर्ववेद (10-2) में प्राप्त होता है। आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद भी कहा जाता है। इसमें आयुर्वेद के सभी अंगों का तथा प्रत्येक अंगों के द्वारा दी जाने वाली चिकित्सा का वर्णन है। आज वर्तमान समय में देशी-विदेशी जितनी भी चिकित्सा पद्धतियां हैं, उनमें अपनी आयुर्वेदिक चिकित्सा ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण, रोगों का पूर्ण रूपेण निदान करने वाली है।

❋

V-88

द्वादश भावों में बृहस्पति की अवस्थिति एवं मानव जीवन पर उसका प्रभाव

ओम प्रकाश शर्मा, जम्मू

समस्त भूमण्डल द्वादश राशियों में विभक्त है, अतएव मानव की जन्मकुंडली में बारह भावों का समांकलन भी होता है। मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ व मीन। जन्मकुंडली में स्थित प्रत्येक भाव का अपना-अपना महत्त्व है। बारह भावों के अलग-अलग नाम होते हैं जैसे प्रथम भाव का नाम तनु आदि। इन बारह भावों में प्रथम भाव को लगन संज्ञा दी जाती है। प्रमुख रूप से लग्न से ही जातक के शुभ-अशुभ फल का विचार किया जाता है। तनु आदि बारह भावों की पांच विशिष्ट संज्ञाएं भी होती हैं, जिन्हें अलग-अलग नामों से बताया गया है।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-89

वेदों में पर्यावरण

रणजीत कुमार पाण्डेय, वाराणसी

मनुष्य एवं अन्य प्राणी जगत, वृक्ष-वनस्पतियों के चारों ओर पञ्च महाभूतों की अवस्थिति ही पर्यावरण है। जब ये समृद्ध होते हैं तो हमें जीवन एवं निरोगता प्रदान करते हैं और जब ये दूषित हो जाते हैं तो हमारी चिन्ता का विषय बन जाते हैं। आज औद्योगिक युग में पर्यावरण का उपयोग अपने स्वार्थ के लिए मनुष्यों द्वारा किया जाता है, जिससे पर्यावरण की समस्या पूरे विश्व में विकराल रूप ले चुकी है।

वैदिक काल में सृष्टि साम्यावस्था में थी। ऋषियों ने प्रकृति की इस प्रकार से व्याख्या की है कि प्रदूषण की समस्या ही उत्पन्न न हो-''माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।'' (अथर्ववेद-12-1-12) अथर्ववेद में पूरा सूक्त ही पृथ्वी को समर्पित है। वृक्ष या वनस्पतियां पृथ्वी की उर्वरा शक्ति बढ़ाने तथा वर्षा में सहायक हैं। अतः वनस्पतियों को बढ़ाने की बात कही गयी है-''वनस्पतिं वन आस्था पयध्वम्।'' (ऋग्वेद-10-101-11) वेदों में वनस्पतियों को शान्ति का कारण भी बताया गया है-''वनस्पतिं शमितारम्।'' (यजुर्वेद-28-10)।

वेदों में पर्यावरण के सभी घटकों तथा पर्यावरण प्रदूषण के निवारण की बात भी कही गयी है, पर्यावरण की शुद्धता के लिए यज्ञों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

वेद हमारे पथप्रदर्शक ही नहीं जीवन भाग्यविधाता है, उनमें ऋषियों-मुनियों ने जिस प्रकार से पर्यावरण की व्याख्या की है वह प्रादेशिक स्तर पर, राष्ट्रीय स्तर पर तथा वैश्विक स्तर पर आज भी प्रासंगिक है। वेद में पर्यावरण के समस्या के समाधान की ओर संकेत हैं-''यत् ते भूमिं विश्वनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।'' (अथर्ववेद-12-1-37)

❋

V-90

ईशावास्योपनिषद् में पुरुषार्थचतुष्टयम्

प्रा. नरेश महाकाल

वेदांतसाहित्य भारतीय दर्शन, संस्कृति, सभ्यता, चिंतन में सर्वोच्च है। यहां का जनमानस और जीवनशैली में उसका प्रभाव स्पष्टतया दिखाई देता है। ''चतुर्विध पुरुषार्थ'' को मानवजीवन

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

का उद्देश्य माना जाता है। जिसका महत्त्व आज तक भारतीय संस्कृति में रहा है। भारतीय संस्कृति और भारतीय दर्शन दोनों का परस्पर निकट का संबंध रखते हैं।

भारतीय दार्शनिकसाहित्य में ईशावास्योपनिषद् अग्रसर है। यह प्राचीनतम उपनिषद् सिर्फ 18 मन्त्रों में गहनतम तत्त्वज्ञान को सरलतम शैली में प्रस्तुत करता है। यहां चतुर्विध पुरुषार्थ को ईशावास्योपविषद् में किस प्रकार से प्रस्तुत किया गया है? इस विषय पर यह संशोधन पत्र कुछ प्रकाश डालने कि कोशिश करता है।

*

V-91

'कोश साहित्य' में 'निघण्टु' का स्थान तथा यास्क कृत 'निरुक्त' का महत्त्व

विशाल भारद्वाज, अमृतसर

आचार्य यास्क (ई. पू. 7वीं शताब्दी) के समय में शब्दकोश मात्र के लिये 'निघण्टु' शब्द का प्रयोग किया जाता था। 'निघण्टु' से अभिप्राय वैदिक शब्द कोश से है, जिसमें प्रधानतया 'ऋग्वेद' के महत्त्वपूर्ण एवं क्लिष्ट शब्दों का संग्रह किया गया है। इन शब्दों के अर्थ का ज्ञान हो जाने पर वेद का अर्थ समझना अत्यन्त सरल हो जाता है। इस 'निघण्टु' को 'कोश-साहित्य' का प्रथम ग्रन्थ कहा जा सकता है, क्योंकि इससे प्राचीन किसी भी भाषा का कोई भी कोश-ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता है। 'महाभारत' के 'शान्ति पर्व 342-86-87' में प्रजापति कश्यप को 'निघण्टु' का आदि प्रणेता बताया गया है-

आचार्य यास्क कृत 'निरुक्त', 'निघण्टु' का व्याख्या ग्रन्थ है। 'निरुक्त' शब्द की व्याख्या करते हुए 'सायणाचार्य' का कथन है-''**अर्थाऽवबोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्र तद् निरुक्तम्**'' अर्थात् अर्थ ज्ञान हेतु स्वतन्त्र रूप से जो पदों का संग्रह है, वही निरुक्त कहलाता है। ''निरुक्त के बिना कोई ऐसा शास्त्र नहीं है, जो तात्पर्यानुसार सभी शब्दों का निर्वचन करे। 'निरुक्त' वेदमन्त्रों के 'देवता-ज्ञान' में भी सहायक है। वेदाङ्गों में 'निरुक्त' की गणना 'निरुक्त' के महत्त्व को स्वतः ही सिद्ध करती है। इस प्रकार निर्वचन शास्त्र के सिद्धान्तों, वेदव्याख्या सम्बन्धी 'ऐतिहासिक', 'अधियाज्ञिक' एवं 'आध्यात्मिक' आदि अनेक प्रवृत्तियों इत्यादि के ज्ञान की दृष्टि से 'निरुक्त' तथा इसके प्रणेता 'आचार्य यास्क' का अत्यधिक महत्त्व स्वीकार किया जाता है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-92

ज्योतिषशास्त्र में सूर्य का स्थान

डॉ. चन्द्र मोहन झा, हथुआ (गोपालगंज)

''सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'' (ऋग्वेद 1-115-1)

उपर्युक्त वैदिक ऋचाओं से स्पष्ट होता है कि सूर्य सम्पूर्ण चराचर जगत के आत्मा है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार समस्त ब्रह्माण्ड की राशि-नक्षत्र और ग्रहों से आलोड़ित होता है। इन सबको नियंत्रित करने वाला एक नक्षत्र सूर्य ही है, जो ग्रह-नक्षत्रों के राजा कहे गए हैं। इस तरह ज्योतिषशास्त्र में सूर्य का महत्वपूर्ण स्थान है।

ज्योतिष विज्ञान के अनुसार सूर्य सौर मण्डल के प्रधान ग्रह हैं। इनकी दिव्य रश्मियां समस्त जीव-जन्तुओं को सद्य: प्रभावित करती हैं। इनमें अक्षय ऊर्जा कोश एवं शक्ति का संचरण होता रहता है। संसार की समस्त वनस्पतियाँ सूर्य किरणों से ही पुष्ट एवं संवर्धित होती हैं। ऐसे में इनको चराचर के जीवन का आधार कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। फलित ज्योतिष के जातक ग्रन्थों में जन्माङ्ग चक्र के बारह भाव हैं। इन द्वादश भावों में सूर्य की विभिन्न स्थितिवश जीवन-प्रसंगों में होने वाली शुभाशुभ जटिलता को आसानी से जाना या परखा जा सकता है।

सूर्य किरणें कल्पवृक्ष तुल्य हैं। इनसे समस्त मनोवांछित वस्तुएं तो प्राप्त होती ही हैं, खासकर इनसे रोगों का निदान भी बहुत सुलभ है। प्रात:कालीन सूर्यकिरणों का सेवन करना चाहिए।

*

V-93

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार राजनैतिक मूल्य

अनुराधा, जम्मू

राज्य व्यवस्था एवं राष्ट्र की रूपरेखा पर प्राचीन भारतीय वाङ्मय का बहुमुखी व्यापक तथा शाश्वत प्रभाव परिलक्षित होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में राष्ट्र को सुचारु तरीके से निर्वहण के लिए राजनीति को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। राजनीति नियमों के उचित क्रियान्वयन के लिए चुने गए व्यक्ति को 'राजा' अथवा 'सम्राट' अथवा 'राजन' आदि के द्वारा सम्बोधित करते हैं। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार राजा वही हो सकता है, जिसे अन्य राजागण स्वीकार करें दूसरा कोई नहीं। अत: राजपद की प्राप्ति के लिए हिंसा नहीं करनी चाहिए। जिस प्रकार शिकारी पशु का वध कर डालता है उसी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकार निरंकुश राजा भी प्रजा के लिए विनाशकारी सिद्ध होता है। प्रजाजनों की उन्नति करके उन्हें समृद्धि से परिपूर्ण करना राजा का कर्तव्य है। सत्यनिष्ठा, दृढ़ता तथा दान देकर पुनः वापिस न लेना आदि को राजा के विशिष्ट मूल्यों में समाहित किया जाता है। दण्ड देकर कुमार्ग पर जाने वाले व्यक्तियों को सन्मार्ग पर अग्रसर करने, पारस्परिक संघर्ष को शान्त करके तथा उनके साथ बन्धु के समान आचरण करता हुआ राजा ही श्रेष्ठ कहलाता है। राजा को आवश्यकता के अनुसार कोमलता एवं कठोरता का समान रूप से आश्रय लेना चाहिए। उचित अवसर आने पर जो ऐसा आचरण करता है, वह समस्त कार्यों को सिद्ध करता हुआ अपने शत्रुओं को अपने वश में रखता है। तपस्वियों के निर्विघ्नम एवं रमणीय यज्ञादि कृत्य राजा की शक्तिमत्ता, प्रजापालन एवं राजनीतिक मूल्यों के अन्तर्गत प्रमुख हैं। सेवकों के साथ हास-परिहास करना राजा के लिए उचित नहीं है तथा राजनीतिक मूल्यों के सर्वदा प्रतिकूल है। कार्य के लिए भेजे गए ऐसे सेवक रहस्यों को प्रकट कर कार्यसिद्धि को प्रायः समाप्त ही कर देते हैं। न्याय व्यवस्था में यमराज का आदर्श उपस्थित करके, उसे दीन, हीन, वृद्ध, रोगादि का उचित रक्षण तथा भरण पोषण करना चाहिए। आपत्ति काल में प्रजा की रक्षा हेतु कोश की भी वृद्धि करनी चाहिए। दयालुता एवं सत्यवादिता को राजा के कर्त्तव्ययुक्त राजनीतिक मूल्यों में प्रमुख माना गया है। व्यसनों का त्याग करने वाला राजा प्रजावर्ग में पूर्ण आदर तथा सम्मान प्राप्त करता हुआ प्रतिष्ठा तथा यश का पात्र होता है।

इस प्रकार से शतपथ ब्राह्मण के अनुसार संक्षेप में राजनीतिक मूल्यों का वर्णन किया गया है जिन पर शोधपत्र में विस्तार से चर्चा की जाएगी।

❋

V-94

उपनिषद्कालीन शिक्षण-पद्धति—एक अध्ययन

डॉ. पीयूष बाला, जम्मू

प्राचीन-परम्परा में शिक्षण-कार्य पुस्तकों की सहायता के बिना ही होता था। विशेष रूप से वेदों की शिक्षा के लिए सुन्दर और व्यवस्थित नियम थे। वेदों के लिए पद, क्रम, जटा, घन आदि के रूप में अध्ययन और अध्यापन होता था। उदात्त आदि स्वरों के विषय में विशेष ध्यान दिया जाता था। शुद्ध उच्चारण शिक्षा का विशेष अंग था। अतः पाणिनीय शिक्षा में कहा गया है कि मन्त्रों के पाठ में वर्ण और स्वरों की अशुद्धि नहीं होनी चाहिए, अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

शिक्षण-विधि मौखिक थी और छात्रों को आचार्य द्वारा बताई गई सभी बातों को कंठस्थ करना होता था। प्रत्येक पाठ के आरम्भ में छात्र-गुरु का चरण स्पर्श करते थे और उससे पाठ प्रारम्भ

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करने की प्रार्थना करते थे। गुरु गम्भीर वाणी से मन्त्रों का उच्चारण करते थे और छात्र उसका अनुसरण करते थे। गुरु उच्चारण किए गए मन्त्रों की व्याख्या भी करते थे। शिक्षण समाप्त होने पर छात्र गुरु के चरणों का स्पर्श करके विदा लेते थे। इस प्रकार प्रश्नोत्तर तथा शंका समाधान भी साथ-साथ चलते थे। स्वाध्याय शास्त्रार्थ उपदेश या भाषण मनन व चिन्तन इत्यादि शिक्षण विधियां थीं। श्रवण, मनन व निधिध्यासन तीन प्रमुख पद्धतियों का वर्णन बृहदारण्यक उपनिषद् में पाया जाता है।

शोधपत्र में उपनिषद्कालीन शिक्षण-पद्धति के विभिन्न तत्त्वों का वर्णन किया जाएगा। यथा—

1. शिक्षक
2. शिष्य
3. शिक्षक-शिष्य संबंध
4. छात्र-अनुशासन
5. शिक्षण संस्थाएँ एवं अर्थव्यवस्था
6. शिक्षण विषयक कतिपय सिद्धान्त एवं धारणाएँ तथा नारी शिक्षा।

*

V-95

वैदिक वाङ्मय में ज्योतिर्विज्ञान

प्रो. वीरेन्द्र कुमार मिश्र, शिमला

वैदिक वाङ्मय कर्मकाण्ड एवं ज्ञानकाण्ड उभयविध ज्ञान का मूल स्रोत है। कर्मकाण्ड के अन्तर्गत यज्ञादि का विधान है। यज्ञानुष्ठान के लिए समय विशेष की आवश्यकता होती है। समय का ज्ञान कराने वाला ज्योतिषशास्त्र है। यथा यज्ञादि विषयक मन्त्रों का साधन वेद है तथैव काल विशेष का वर्णन करने वाले शास्त्र का उल्लेख वेद में न हो यह कैसे सम्भव है? आज जिस रूप में ज्योतिष प्राप्त होता है उसका भी मूल वेद ही है। किसी भी प्रकार का ज्ञान-विज्ञान हो, सभी का मूल किसी न किसी रूप में वेद में उपलब्ध होगा ही। वेद ईश्वर के निःश्वास[1] जो हैं। समस्त सृष्टि उसी परब्रह्म से है। अतएव समस्त ज्ञान का स्रोत वेद ही है।

ज्योतिर्विज्ञान षडङ्ग वेद है। मुण्डकोपनिषद्[2] में छः वेदाङ्गों का उल्लेख है। ज्योतिष की श्रेष्ठता के विषय में उल्लेख है कि जिस प्रकार मयूरों के शिर पर शिखा और नागों के मस्तक पर मणि रहती है उसी प्रकार से वेदाङ्ग शास्त्र में ज्योतिष का सर्वश्रेष्ठ स्थान है।[3]

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ज्योतिष के अन्तर्गत ऋतु, मास, संवत्सर, तिथि, नक्षत्र आदि का वर्णन किया जाता है। वेद में उक्त सभी का विधिवत् उल्लेख प्राप्त है। अत: नि:सन्देह कहा जा सकता है कि वेद सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान का स्रोत है।

1. यस्य नि:श्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
   निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ महेश्वरम्॥—ऋग्वेद भाष्य भूमिका-श्लोक-2

2. तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद: सामवेदोऽथर्ववेद: शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं
   छन्दो ज्यातिषामिति। मुण्डकोपनिषद् 1.1.5

3. यथाशिखामयूराणां नागानां मणयो यथा।
   तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्ध्नि स्थितम्॥ वेदाङ्ग ज्योतिष श्लोक संख्या - 4

*

V-96

प्राग् जन्म संस्कार सूत्रसाहित्य के सन्दर्भ में

डॉ. देशराज शर्मा, शिमला

सूत्रसाहित्य के अन्तर्गत गृह्यसूत्रों में विवेचित संस्कारों का महनीय स्थान है। संस्कारों से परिशोधित जीवन स्वस्थ, उत्तम गुणों से सम्पन्न एवं ब्रह्मपद प्राप्ति का परिचायक होता है।

गर्भाधान संस्कार से लेकर भावी सन्तान के जन्म से पूर्व माता एवं शिशु की सर्वविध सहज सुरक्षा के द्योतक संस्कारों को प्राग् जन्म संस्कार कहा जाता है। गर्भाधान, पुंसवन, गर्भरक्षण सीमन्तोन्नयन एवं सूतिकागार संस्कार इन संस्कारों की श्रृंखला में प्रतिष्ठित हैं। इन संस्कारों के सम्पादनार्थ वैदिक मनीषियों द्वारा निर्दिष्ट वैदिक मन्त्र, औषधीय जड़ी-बूटियाँ, अमृत-तुल्य दिव्य पदार्थ तथा अन्य प्रयुज्य सामग्री भावी सन्तति एवं माता की सहज सुरक्षा में निहित हैं। प्राग् जन्म संस्कारों के विधि-विधान में प्रयुज्य सामग्री एवं वैदिक मन्त्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन संस्कारों का मौलिक उद्देश्य न केवल लोक व्यवहार की परम्परायें तथा शास्त्रीय मान्यतायें ही हैं बल्कि वैज्ञानिक आधार भी है। इन संस्कारों को सम्यक् समय पर विधिवत् सम्पादित किए जाने से भावी सन्तति पुरुषत्वयुक्त, ओजस्वी, तेजस्वी, मेधावी, स्वस्थ, शूरवीर, कर्मवीर, दानवीर एवं वैभवशाली होती है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-97

ऋग्वेद में राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता का अनुशीलन

डॉ. श्रीमती अन्नपूर्णा मिश्रा, मुरादाबाद (उ०प्र०)

राष्ट्रीय-एकता एवं अखण्डता के आधार-तत्त्व ऋग्वेद में अनेक प्रसंगों में उपलब्ध होते हैं। कई मंत्रों में देवताओं से प्रार्थनाओं के माध्यम से राष्ट्रीय-एकता को सुदृढ़ बनाने की कामना की गई है। वह परमेश्वर सबका कल्याण करने वाला है, जिस प्रकार पिता अपने पुत्र को उत्तम-ज्ञान देता है, उसी प्रकार वह परमेश्वर हम सभी राष्ट्रवासियों को उत्तम-ज्ञान देकर हमें संयुक्त करें, अर्थात् हमारे हृदय में ऐसे भाव जागृत हों, कि हम सभी राष्ट्रवासी परस्पर मिलजुलकर अपने राष्ट्र का कल्याण करें—यही मन्तव्य निम्न मंत्र में उद्धृत है—

''स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव,
सचस्वा नः स्वस्तये॥'' (ऋग्वेद 11/1/9)

''मित्रावरुण'' देवता से भी, सूर्य द्वारा जलवृष्टि इव, राष्ट्र के सभी प्राणियों का सबका समान कल्याण करने की प्रार्थना की गई है, जिससे सुखी व समृद्ध होकर सभी राष्ट्रवासी परस्पर मिलकर राष्ट्र के अभ्युदय में प्रवृत्त हों—

कवी नो मित्रावरुण तुविजाता उरुक्षया।
दक्षं दधाते अपसम्॥ (ऋग्वेद 1/2/9)

निस्सन्देह, सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय आज भी किसी भी राष्ट्र के सर्वांगीण विकास हेतु नितान्त आवश्यक एवं सर्वथा ग्राह्य है। वे कालातीत एवं देशातीत है—

Though Vedas are the oldest, but their theme is the latest.

*

V-98

ऋग्वेद में वर्णित सूर्य के रथ और सात घोड़ों की पौराणिक कथा का वास्तविक स्वरूप

डॉ. दिनेशचन्द्र शास्त्री, हरिद्वार

ऋग्वेद शाकल संहिता के प्रथम मण्डल का पचासवाँ सूक्त सूर्य सूक्त के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अधोलिखित दो मन्त्र बड़े ही प्रसिद्ध हैं—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ओं सप्त त्वां हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य।
शोचिष्केशं विचक्षण॥

ओं अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः॥ (1-50-8, 9)

इन दोनों मन्त्रों में पुराणों की मान्यतानुसार सूर्य्य के रथ और सात घोड़ों की कथा निहित है। पुराणों के अनुसार सूर्य्य एक देवविशेष है जो सात घोड़ों के रथ में बैठकर आकाश में भ्रमण करता है। पुराणों में यह एक प्रकार की कथा बन गयी है और जिसको आस्थावान् लोग सत्य मानते हैं। आचार्य सायण द्वारा उक्त मन्त्रों का जो अर्थ किया गया है उस पर भी पुराणों की इस विचारधारा का प्रभाव स्पष्टरूप से देखा जा सकता है। परन्तु वेदों में यह एक प्रकार का अलंकार है अथवा स्पष्टरूप से पदार्थविद्या का एक सत्य सिद्धान्त है। हम अपने इस शोधपत्र में वैदिक वाङ्मय और आधुनिक विज्ञान-साहित्य के आधार पर उपर्युक्त मान्यता के वास्तविक स्वरूप का उद्घाटन करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास करेंगे कि सूर्य्य का प्रकाश सात प्रकार की किरणों से बना है। सूर्य की किरणें वायुमण्डल के जलकणों में होकर मिलने से पृथक्-पृथक् होकर अलग-अलग रंग की दिखाई देती हैं और आकाश में इन्द्रधनुष दिखाई देने का कारण भी यही है। ऋग्वेद और अथर्ववेद के अन्य अनेक मन्त्रों में सूर्य्य की सात किरणों का उल्लेख सप्तरश्मि, सप्ताश्व, सप्तसप्ति आदि शब्दों से भी हुआ है। इन 'सप्ताश्व' आदि का स्थूल अर्थ सामान्य सात घोड़ों वाला बताना तो निरी काल्पनिक और बच्चों की बातें हैं। 'अश्व' शब्द का मूल यौगिक अर्थ 'अतिशीघ्र चलनेवाला' होता है। सूर्य्य की किरणों का प्रकाश से शीघ्र चलनेवाला संसार में और कोई भी दूसरा पदार्थ नहीं है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार भी तो इन किरणों की आवृत्ति (Frequency) प्रति सेकेण्ड 10 अरब से 10 खरब हर्ट्स है। इसलिए इन किरणों का नाम 'अश्व' है। इस तरह पुराणों की उक्त विचारधारा का वास्तविक अभिप्राय क्या है? इसको ही प्रस्तुत पत्र में वैज्ञानिक तरीके से स्पष्ट करने की कोशिश की जायेगी।

*

V-99

ऋग्वैदिक उपनिषदों में प्राण-तत्त्व

प्रो. मुहम्मद इसराइल खाँ, गाजियाबाद (उ०प्र०)

तैत्तिरीय-उपनिषद् का कथन है कि प्राण से ही सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं तथा उत्पन्न हो कर प्राण के साथ रहते हैं तथा अन्त में अपनी सत्ता को खोकर प्राण में ही विलीन हो जाते हैं (तै०उ०

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

3/3)। **ऐतरेय-उपनिषद्** में वर्णित है कि आत्मा पूर्व से ही विद्यमान था। उस आत्मा ने जगत को उत्पन्न किया, जिस की परिधि में मनुष्य भी था, जो नेत्रों, कानों, मुख, शरीर आदि से संयुक्त था। प्राण के साथ आत्मा उन सब में प्रविष्ट हो गया, जिस प्राण के साथ व्यान, उदान, समान आदि सभी चेतन तत्त्व सङ्गत थे (ऐ०उ० 1/1)। इस उपनिषद् के प्रथम अध्याय के द्वितीय भाग में प्रदर्शित है कि संसार के आत्मा के द्वारा उत्पन्न पदार्थ मनुष्य के विभिन्न अवयवों में प्रवेश कर गये। **ऐतरेय-उपनिषद्** के तृतीय अध्याय में हृदय, मन, चेतन (बोध), कला एवं विज्ञानों का ज्ञान, बुद्धि, दृष्टि, आभास, विचार, विद्या, बुद्धिमत्ता, स्मरण-शक्ति, निश्चित संकल्प, जीवन-प्रवृत्ति, आनन्देच्छा, दशनेच्छा, स्पर्शेच्छा इत्यादि उसी एक आत्मा के विभिन्न नाम हैं।

*

V-100

सम्भूत्या अमृतमश्नुते

संगीता खन्ना, नई दिल्ली

''सम्भूत्या अमृतमश्नुते'' इस वैदिक उद्घोष की समसामयिक फलश्रुति क्या है और क्या है और क्या होनी चाहिए?—ये समाजदर्शन के क्षेत्र में ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर स्वयं एक प्रश्न है। यजुर्वेद 40.11 का मन्त्र है—

''सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते॥''

जो संघभाव एवं असंघभाव दोनों को एकत्र उपयोगी जानता है, वह असंघभाव से मृत्यु को दूर करके संघभाव से अमरत्व को प्राप्त करता है। यह वैदिक उद्घोष व्यक्ति एवं समाज धर्म का एक ऐसा समन्वयात्मक स्वरूप प्रस्तुत करता है, जिसका सुखी एवं सार्थक मानवजीवन के लिये विशेष महत्त्व है। वैदिक दर्शन का ''इष्टापूर्त'' आज के व्यक्तिधर्म एवं राष्ट्रधर्म का स्थानी है, यह सत्य है, लेकिन फलश्रुति तथावत् नहीं। ''एकोऽहं बहुस्याम'' की उदात्तभावना से विहित समाज विघटन की स्थिति में क्यों और कैसे पहुँच गया? क्या यही इसकी नियति है? या नहीं? समाज में विसंगतियों का बीज क्या है? विधान शक्तियाँ क्या है? संघनिष्ठा किस प्रकार व्यक्तिनिष्ठा की पूरक हो सकती है? संघभाव से अमरत्व की प्राप्ति का सिद्धान्त किस प्रकार मुखर होकर निहित स्वार्थो को अभिभूत कर सकता है? एतदर्थ सैद्धान्तिक प्रारूप, मान्य परम्परा एवं शास्त्रीय प्रमेयों के, आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में, पुनः आकलन की आवश्यकता है। जिससे सिद्धान्त एवं व्यवहार की अविसंवादकता को स्पष्ट करने में सहायता मिल सकती है एवं उस दरार को भी स्पष्ट किया जा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सकता है जिसके कारण 'सिद्धान्त' व्यवहार तक नहीं पहुँच पाते। इन्हीं विचारों के मन्थन की एक झलक प्रस्तुत शोध-पत्र में मिलेगी।

*

V-101

वेदों में सैन्य-व्यवस्था

आचार्य ध्रुवपति पाण्डेय, बलिया, उत्तरप्रदेश

प्रायः प्रत्येक राष्ट्र में शान्ति व्यवस्था को भंग करने वाले शत्रु रहते हैं। ये अव्यवस्था-अशान्ति फैलाने का प्रयास करते रहते हैं। इन शत्रुओं को नष्ट करना एवं शान्ति व्यवस्था को सुरक्षित करना राजा का परमकर्त्तव्य है। उक्त शत्रुओं को दो भागों में बाँट सकते हैं—(1) आभ्यान्तर शत्रु (2) वाह्य शत्रु। अतः राष्ट्र की सुरक्षा के लिये सेना की नितान्त आवश्यकता है।

वेदों में सेना का विविध उल्लेख प्राप्त है, यथा—यजुर्वेद में विशेष रूप से दो शब्द आते हैं। (1) आशुषेण, (2) श्रुत-सेन। "नमः आशुषेणाय चाशुरथाय च" (यजु० 16, 34) "श्रतुसेनाय च नमः" (यजु० 16, 35)। आशुसेना का अभिप्राय ज्ञात होता है कि वह सेना जो आवश्यकतानुसार शीघ्र कार्य क्षेत्र में पहुँचे और तुरन्त कार्यवाही करें। यह प्रायः (Rapid Action Force) के समान सद्यः कार्यवाही के लिये है। साथ ही आशुरथ का भी प्रयोग है। सेना का दूसरा अंग श्रुतसेना ज्ञात होता है जो अपनी कुशलता के लिये विख्यात थी। ऋग्वेद में महा सेना का उल्लेख है इसके विषय में कहा गया है कि ये महासेनायें शत्रुओं को भून डालती थी। (ऋग्० 07, 4, 19)। इससे स्पष्ट है कि सेना के भी दो आकार थे। छोटी सेना, बड़ी सेना।

*

V-102

आयुर्वेद में ओजक्षय

शीतल पुरी, जम्मू

श्लेष्मा से रहित कुछ लालिमा तथा पीलापन लिये हुए जो श्वेत पदार्थ हृदय में रहता है उसे ओज कहते हैं। उस ओज की वृद्धि से प्राणी की वृद्धि होती है तथा उस के क्षय हो जाने पर प्राणी क्षीण हो जाता है। ओज दो प्रकार का होता है—पर ओज तथा अपर ओज। आज की विकृति तीन प्रकार से होती है—विस्रंस, (च्युत) व्यापत, क्षय।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

त्रयो दोषा बल स्योक्ता व्यापद्विस्त्रंसनक्षयाः

(सु०सं०, XV-30)

आघात, धातुक्षय, क्रोध, चोट लगने से, शोक, चिन्ता, श्रम, अनशन इन कारणों से हृदय अथवा ओजोवह ध्वनियों से निकले ओज का क्षय होता है। आयुर्वेद के मत से चिकित्सा में पथ्य का बहुत महत्त्व है।

वैद्य नोलिम्ब राज ने तो यहाँ तक लिखा है कि "यदि आदमी पथ्य सेवन करे तो औषधि सेवन की आवश्यकता ही नहीं रह जाती और यदि मनुष्य अपथ्य सेवन करे तो औषधि व्यर्थ जाती है।" आयुर्वेद में प्राप्त औषधि चिकित्सा एवं भेषक चिकित्सा का विस्तार से वर्णन करते हुए ओजपक्ष का विस्तार से विवेचन शोध पत्र में दिया गया है।

*

V-103

जन्मकुण्डली के आधार पर जातक की प्रकृति का ज्ञान

करण दास शास्त्री, जम्मू

वेदाङ्गों में जिस तरह से ज्योतिष-शास्त्र को चक्षु का स्थान प्राप्त है, वही स्थान ज्योतिष में जन्मकुण्डली को प्राप्त है। जन्मकुण्डली उस दीपक के समान है, जो अन्धकार में रखी प्रत्येक वस्तु को आलोकित कर देता है। जन्मकुण्डली जातक के भूत, भविष्य, एवं वर्तमान को स्पष्ट कर देती है। अतः कहा भी है जिस व्यक्ति की जन्मकुण्डली नहीं, उसका जीवन अन्धकारमय है—

"यस्य नास्ति किल जन्मपत्रिका या शुभाऽशुभम् प्रदर्शिनी।
अन्धकं भवति तस्य जीवनं दीपहीनमिव मन्दिरं निशि॥"

जन्मकुण्डली केवल जातक के भूत, भविष्य, एवं वर्तमान को ही स्पष्ट नहीं करती, अपितु जातक के रंग, रूप, प्रकृति, विद्या, बुद्धि, स्वास्थ्य, पारिवारिक-सुख, शत्रु-मित्र, आर्थिक-लाभ आदि का भी लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है।

जातक के प्रकृति-ज्ञान के लिए जन्मकुण्डली का प्रथम भाव, प्रथम भाव का स्वामी, प्रथम भाव के स्वामी की स्थिति, प्रथम भाव में स्थित ग्रह, एवं प्रथम भाव पर विभिन्न ग्रहों की दृष्टि का अध्ययन विशेष महत्त्वपूर्ण है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रस्तुत शोध-पत्र में लघु जातक, सारावली, जातकालंकार, फलदीपिका, बृहत्पराशरहोराशास्त्रम् इत्यादि ग्रन्थों के आधार पर जन्मकालीन ग्रहों की स्थिति से जातक की प्रकृति का विवेचन किया जाएगा।

*

V-104

वैदिक काल में वर्णाश्रम व्यवस्था

योगेन्द्र कुमार शास्त्री अध्यापक, जम्मू

मनुष्य प्रारम्भ में समस्त मानव समाज स्वत: ही अपने धर्मानुसार सामाजिक एवं व्यवहारिक जीवन व्यतीत कर रहे थे। उस वैदिक काल में **वसुधैव कटुम्भकम्** की भावना उनके हृदय में भरी होती थी। कोई भी मनुष्य अपनी सीमाओं का अतिक्रमण स्वप्न में भी नहीं करता था। जिस वस्तु या द्रव्य के लिए उस ने कभी परिश्रम नहीं किया होता था, उसको स्वप्न में भी प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करता था इसलिए यह कहना सर्वदा युक्तिसंगत है कि प्रारम्भिक समाज स्वत: ही धर्म, नैतिकता और शिष्टाचार की मर्यादाओं में बँधा हुआ था। अत: वैदिक काल में शासन और दण्ड संहिताओं की कोई आवश्यकता नहीं थी। बाद में जब मानव समाज में भौतिकवाद, स्वार्थपरायणता, उद्दण्डता के दुर्गुणों ने जन्म लेना प्रारम्भ कर दिया तो समाज में सुख-शान्ति और मानव मर्यादाओं की रक्षा के लिए व्यवस्थाओं की आवश्यकताओं का अनुभव होने लगा था तो देश और समाज के समस्त कार्यों का विधिवत संचालन करने के लिए शासन और वर्णाश्रम व्यवस्थाओं के निर्माण करने पड़े थे। सृष्टि को सुचारु रूप से चलाने के लिए चारों आश्रमों के पृथक-पृथक गुण, कर्म एवं धर्म वैदिक शास्त्रानुसार होते थे ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, संन्यासाश्रम यह चार आश्रम वैदिक काल में अपने-अपने स्थान पर प्रधान होते थे।

1. ब्रह्म ब्रह्मचर्य

मनुस्मृति में लिखा है कि गुरु के आश्रम में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता हुआ तीनों वेदों को पढ़कर 24 वर्ष पर्यन्त गृहस्थ आश्रम धारण करें।

2. गृहस्थाश्रम

मनुजी का कथन है कि वैदिक काल में जो मोक्ष और संसार के सुख की इच्छा करता था वह गृहस्थाश्रम धारण करता था। तीनों आश्रम गृहस्थ पर निर्भर रहते थे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

3. वानप्रस्थ

यजुर्वेद में लिखा है कि गृहस्थ की सारी सुख-सुविधाएँ त्यागकर तपश्चर्या, सत्संग, ज्ञान और पवित्रता को प्राप्त करते थे।

4. संन्यासाश्रम

वैदिक काल में पचासवें वर्ष से पचहतरवें वर्ष पर्यन्त वानप्रस्थ को त्यागकर सत्योपदेश: एवं विद्यादान से उन्नति करना सन्यासी का धर्म होता था।

समस्त मानव समाज को अनुभव हुआ कि सम्पूर्ण राष्ट्र को उन्नति के पथ पर अग्रसर किया जाये उसके लिए चार वर्णों के निर्माण करने पड़े थे।

चातुर्वव्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्यम॥

भ०गी० 4-13

अर्थात् भगवान् गीता में कहते हैं कि चारों वर्ण गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार मेरे द्वारा ही उत्पन्न हुए हैं जैसे—1. ब्राह्मण के शम दमादि कर्म, 2. क्षत्रिय के युद्धादि कर्म, 3. वैश्य के व्यापारादि कर्म 4. शूद्र के तीनों वर्णों की परिचर्या रूपादिकर्म। इन के विभागादि करके पृथक-पृथक कार्यों का उत्तरदायित्व दिया गया था। यदि इसे गुण, कर्म स्वाभानुसार ही रहने दिया जाता तो आज भारत में इस प्रकार का शोषण, जातिवाद और परस्पर विद्वेष कभी नहीं होता और भारत के लोगों में स्वाभाविक समरसता होती।

*

V-105

वैदिक काल में नारी की दशा

पूजा शर्मा, जम्मू

विश्व के प्राचीनतम वाङ्मय में वेदों का स्थान नि:सन्देह महत्त्वपूर्ण है। वेदों के रूप में गूँजने वाली ऋषियों की वाणी का मङ्गलमय स्वर चाहे इस धरती के साधारण जनों के लिए बोधगम्य न हों, परन्तु संस्कृति ने उन पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। सृष्टि का श्रीगणेश नारी एवं पुरुष दोनों के पारस्परिक गुणों के आधार पर ही माना गया है। समूचा वैदिक संहिता-साहित्य नारी के विविध रंगों से रंगा पड़ा है। हिन्दू संस्कृति के स्वरूप को बतलाने के लिए रामायण एक महान्

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आदर्श ग्रन्थ है। भारतीय आर्य संस्कृति का स्थान बड़े ही महत्त्व का था। आर्य शास्त्रों ने स्त्रियों को जितना ऊँचा स्थान दिया उसी के साथ ही उनके जीवन को संयम तथा सेवा से अनुप्राणित कर पवित्रतम बनाने की चेष्टा की थी। वैदिक संहिताओं में नारी की अपने पति के प्रति अटल भक्ति परिलक्षित होती है। शुद्धता और नैतिकता की नींव बनी नारी विपत्तियों में महाक्रान्ति रूप धारण कर महाशक्ति में अवतरित होती रही। मनुस्मृति धर्मशास्त्र में भी स्त्री जीवन के कर्त्तव्य पर अधिक बल दिया गया है। ऋग्वेद के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वैदिक समाज के अनुसार नारी के बिना गृह की कल्पना नहीं की जा सकती। वैदिक-संहिताओं में नारी के पतिव्रत की अनेक कथाएँ हैं। इस बीसवीं शताब्दी का समाज कल्पना भी नहीं कर सकता है कि वैदिक युग में नारी का कितना अधिक सम्मान था। शरीर के दो भागों को मानते हुए दाहिना भाग पुरुष का, और वाम-भाग नारी का माना गया है।

समाज रूपी भवन में कमनीयता, पवित्रता एवं दृढ़ता लाने के लिए आवश्यक है नारी के उस स्वरूप को सम्यक् रूप में संवारा जाये, नारी नरक की खान नहीं है। उन्नति और उत्थान का स्वर्णिम सोपान है।

*

V-106

वैदिक सदाचार शास्त्र एवं इसकी आज के सन्दर्भ में प्रासंगिकता

डॉ. श्रीमति आशिमा जोशी, अम्बाला

विश्व में प्राचीनतम एवं प्रौढ़तम काव्य वेदों में मानव जीवन को पूर्णता प्रदान करने की अद्भुत क्षमता है। मानव जीवन का कोई भी क्षेत्र ऋषि की प्रतिमा दृष्टि से अछूता नहीं है, चाहे जिस दृष्टि से विचार किया जाय, यहाँ समृद्धि की पराकाष्ठा ही दृष्टिगत होती है। सृष्टि के आदि में ऋषियों द्वारा दृष्ट ईश्वरीय ज्ञान स्वरूप वेद समस्त सदाचारों व नैतिक मूल्यों का जन्मदाता है। आचार मानव जीवन का सार है। जीवन के सम्यक् व उत्कृष्ट संचालन के लिए आचारों की आवश्यकता है। आचारवान् मनुष्य ही संसार में यश, आयु, सुख सब कुछ प्राप्त करता है तथा आचारहीन मनुष्य इन सब वस्तुओं से वंचित रहता है। 'आचार' शब्द का अर्थ अत्यधिक व्यापक होता है। जिसके अन्तर्गत धर्म-नीति तथा ग्राह्य एवं त्याज्य कर्म आदि का समावेश है। आज मनुष्य भौतिकता एवं विलासिता की ओर दौड़ रहा है परन्तु उसने अपनी आध्यात्मिक दृष्टि को बन्द कर रखा है। मनुष्य केवल 'स्वहिताय' एवं 'स्व-सुखाय' की लिप्सा से ओत-प्रोत होकर येन-केन प्रकारेण धनार्जनाय प्रयासशील है। उसके जीवन से धर्म, दया, सत्य, अहिंसा, मैत्री, सष्णिुता आदि गुण लुप्त होते जा रहे हैं तथा अधर्म,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मिथ्यावचन हिंसा, द्वेष, घृणा आदि स्वहित आदि गुणों ने अपना स्थान बना लिया है। ऐसी स्थिति में मानव स्वयं अशान्त एवं दु:खी होकर भ्रमित होता जा रहा है।

ऐसी स्थिति में वैदिक सदाचार शास्त्र मनुष्य को दिशा निर्देश कर सकते हैं, जहाँ प्रत्येक मन्त्र ही आचार रत्न से भरा पड़ा है। वैदिक ऋषि, ऋत, सत्य, अहिंसा, सर्वकल्याण, मैत्री आदि गुणों से परिपूर्ण है। वह कहता है : 'तन्मे मन: शिव-सङ्कल्पमस्तु।' वैदिक ऋचाओं में श्रद्धा, नमन, पूजन, समर्पण, पटकल्याण के साथ ही परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए आचार निहित हैं। इतना ही नहीं समाज के प्रति भी हर व्यक्ति का आचार क्या हो? इस विषय में भी वेदों में पर्याप्त मन्त्र हैं।

वर्तमान विषय पतनोन्मुख स्थिति में वैदिक सदाचार शास्त्र ही भ्रमित मानव को रास्ता दिखा सकता है। जिससे मानव स्व-कल्याण करते हुए अखिल विश्व के हित हेतु प्रयास कर सकता है। प्रस्तुत शोध निबन्ध में इन्हीं बिन्दुओं पर विचार किया गया है।

*

V-107

वैदिक काल में नारी अधिकार

कु. ऋतु शुक्ला, पलहीपट्टी, वाराणसी

वेद अर्थात् श्रुति ज्ञान-विज्ञान के अपार भण्डार हैं तथा हमारी भारतीय संस्कृति के आधार हैं। किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृत की समृद्धशालिनी परम्परा का ज्ञान उस देश में नारी की स्थिति से होता है। नारी को संस्कृति की वाहिका माना गया है। विधाता की सर्वोत्तम परिकल्पना नारी का सृष्टि के विकास क्रम में प्रभूत योगदान रहा है। नारी की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन करने के पूर्व उसके अतीत पर दृष्टि डालना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हो जाता है। नारी का सर्वाधिक सशक्त, सम्पन्न एवं सर्वोत्कृष्ट स्वरूप वेदों में प्राप्त होता है। वैदिक युग में नारी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आदरणीय थी। उसे अपने व्यक्तित्व के विकास हेतु पर्याप्त अवसर प्रदान किए गए थे। वह पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, शासनिक तथा शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न अधिकारों से अधिकृत थी। तत्कालीन नारी समराङ्गण में भी पुरुष का साथ देती हुई दृष्टिगोचर होती है। समाज के परिष्करण एवं परिवर्धन में वह पुरुष की समान रूप से सहयोगिनी रही है। सहिताकाल में नारी को परमेश्वर की आदि शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। भारतीयों के सभी आदर्श स्त्री रूप में अभिव्यक्त होते हैं। विद्या, विभूति एवं शक्ति के रूप में क्रमश: सरस्वती, लक्ष्मी एवं दुर्गा के रूप में नारी की सर्वत्र पूंजा की जाती थी। उस काल में स्त्रियाँ धर्म का तथा समाज की

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्राण थीं। तत्कालीन नारी एवं पुरुष दोनों अर्द्धनारीश्वरत्व की संकल्पना को परिपुष्ट करते हुए दृष्टिगत होते हैं। नारी के प्रति जितना उदारवादी दृष्टिकोण उस युग में था, उतना आज का समाज कल्पना नहीं कर सकता।

*

V-108

ऋग्वेद 10.85.1-5 में सोम का वैज्ञानिक स्वरूप

डॉ. अरुणा शुक्ला, होशियारपुर

वैदिक देववाद में सोम देवता का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऋग्वेद का सम्पूर्ण नवम मण्डल जो पावमान सूक्त के नाम से प्रसिद्ध है, उसके 114 सूक्तों में सोम का ही विस्तृत विवेचन है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के अन्य मण्डलों के अन्तर्गत भी कतिपय सूक्तों एवं मन्त्रों में सोम का स्वरूप विवेचित है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में वर्णित सोम के विषय में जो अध्ययन हुआ है वह मुख्यतः सोम को एक पेय रूप में मानकर ही किया गया है जिसकी आहुति सोमयाग में इन्द्रादि देवताओं को दी जाती है। किन्तु इन सब वर्णनों में प्रतीकात्मकता की प्रधानता है। सोम वस्तुतः कोई लता नहीं, बल्कि सृष्टि का वह तत्त्व है जिसका अग्नितत्त्व के साथ संयोग होने पर विविध प्रकार की ब्रह्मण्डीय सृष्टि होती है। ऋग्वेद के सभी सूक्तों में वर्णित सोमविषयक प्रतीकात्मकता का विस्तृत वर्णन करना यहाँ हमें अभीष्ट नहीं। केवल ऋ० 10.85.1-5 मन्त्रों में सोम का जो स्वरूप विवेचित हुआ है उसी का उल्लेख करना इस पत्र का प्रतिपाद्य है।

ऋ० 10.85.1-5 में जो सोम का तात्त्विक स्वरूप विवेचित हुआ है वह संक्षेप में इस प्रकार है—

1. सोम पृथिवी पर उत्पन्न कोई लता नहीं है, बल्कि वह तत्त्व है जो द्युलोक में स्थित है।

2. द्युलोक से ऊपर महः, जनः, तपः तथा सत्यम् लोक हैं किन्तु सामान्य रूप से द्युलोक के अन्तर्गत उनका भी उल्लेख किया जाता है। वस्तुतः महः, जनः, तपः तथा सत्यम् नाम से प्रसिद्ध लोक सोम की उत्तरोत्तर सूक्ष्म तत्त्वात्मक सत्ता के वाचक हैं। सोम तत्त्व ही द्वादश आदित्यों को शक्ति प्रदान करता है। इसीलिये मन्त्र में कहा गया कि सोम से ही आदित्य बलवान होते हैं। सोम ही उसको ऊर्जा प्रदान करता है। यदि सोमतत्त्व न हो तो सम्पूर्ण सौर मण्डल ऊर्जाहीन होकर समाप्त हो जाये। पृथिवी जो भूतल पर

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निवास करने वाले सभी जीवों को समुचित भोजनप्रदान करके महान कहलाती है, उसकी महानता का कारण सोम ही है। सूर्य और चन्द्र के माध्यम से पृथिवी पर आता हुआ सोम ही पृथिवी को अन्नवती बनाता है।

3. सामान्य व्यक्ति पृथिवी पर उपलब्ध एक विशिष्ट ओषधि के रस को सोम समझता है और यह गर्व करता है कि हमने सोमपान किया है। ओषधियों में उत्पन्न रस सोम का स्थूलतम रूप है। उसके सूक्ष्मतम रूप को विद्वान् ही समझ सकते हैं, सामान्य जन की वहाँ गति नहीं।

4. महान् आकार-विज्ञान जिसे आच्छद्विधान या छन्दोविज्ञान कहा जाता है, उसके द्वारा सोम सुरक्षित है उसका पान कोई भी पार्थिव व्यक्ति नहीं कर सकता। अग्नि के साथ संयुक्त होकर ही सोम किसी वस्तु को आकार देता है। अग्नि-सोम मिश्रण में मात्रा-भेद से ही आकार-भेद होता है।

5. चन्द्रमा को भी सोम कहा जाता है जिसकी एक-एक कला प्रतिदिन 15 दिन तक बढ़ती है और 15 दिन तक एक-एक कला क्रमशः क्षीण होती है। कृष्ण प्रतिपदा से अमावस्यापर्यन्त एक-एक कला क्षीण होने को ही देवताओं द्वारा प्रतिदिन सोम का एक अंश पान किया जाना तथा शुक्ल प्रतिपदा से पूर्णिमापर्यन्त प्रतिदिन उसकी एक-एक कला का बढ़ना देवताओं द्वारा उस सोम का पुनर्जीवित किया जाना कहा गया है। सम्पूर्ण देव शक्तियाँ उस पर ही आश्रित है। इसीलिये इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अग्नीषोमोत्मक कहा गया है।

*

V-109

वेद में सुसह का सिद्धान्त

श्रीमती मंजु त्रिवेदी, होशियारपुर

मानव जीवन में पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रिय एवं वैश्विक समन्वय स्थापित करना एक महती समस्या है। विश्व क चिन्तक, राजनेता, उपदेशक सभी अपनी-अपनी दृष्टि से समन्वय की बात करते हैं किन्तु समस्या का समाधान होता नजर नहीं आता, क्योंकि सबकी दृष्टि में उनके चिन्तन में कहीं न कहीं कमी अवश्य रह जाती है। ऐसा कोई सर्वमान्य सिद्धान्त नहीं दिखाई पड़ता जो सबके लिये लागू हो। वेद में इस समस्या के समाधान के लिये तीन सूत्र दिये गये हैं, जो सर्वत्र, सर्वकालिक एवं सब पर समान रूप से लागू होते हैं, वे सिद्धान्त सूत्र हैं—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

1. संगमन का सिद्धान्त

2. संवदन का सिद्धान्त

3. संमनन का सिद्धान्त

इन्हीं सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत पत्र में किया गया है और निष्कर्ष रूप में यह प्रतिपादित किया गया है कि वैदिक समन्वय सिद्धान्त सूत्रों के आचरण से पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रिय एवं वैश्विक समन्वय स्थापित हो सकता है। इस उद्देश्य को प्राप्त करना ही वेद का भरतवाक्य है।

*

V-110

वैदिक वाङ्मय में गार्हस्थ्य-मर्यादा

डॉ. नाहीद आबिदी, शिवपुर, वाराणसी

वैदिक वाङ्मय में नारी के लिए कई शब्दों का प्रयोग हुआ है जो समाज में उसकी स्थिति को स्पष्ट करता है जैसे वह मेना, ग्रा, स्त्री, योषा, वामा, सुन्दरी, प्रमदा, ललना, गृहिणी, कामिनी, रमणी, जननी, भामा, जाया, भार्या आदि। माता, पत्नी, भगिनी, पुत्री आदि सभी रूपों में पूजनीय होने से वह महिला कहलाती है। मनुस्मृति 3/4 में आदेश है कि गुरु की अनुमति पाकर और विधिपूर्वक समावर्त्तन संस्कार करके स्नातक द्विज शुभ लक्षणों से युक्त अपने वर्ण की भार्या के साथ विवाह करें। विवाह की प्रथा दो हृदयों को एककर गृहस्थ में प्रवेश कराती है। यह द्वैत को मिटाकर अद्वैत की ओर अभिगमन भूमा जैसे संस्कृति के उच्च स्तर का द्योतक है। ऋग्वेद 10/8/1

विवाह के पश्चात् गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करते ही नारी साम्राज्ञी बन जाती थी। अथर्ववेद 14/1/43, 44 मंत्र में इसका स्पष्ट उल्लेख है। ऋग्वेद 10/85/42 में स्त्री के लिए कहा गया है कि परस्पर प्रेमपूर्वक रहते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिए। ऋग्वेद 3/53/4 के अनुसार जाया ही घर है। ऋग्वेद 3/53/6 में भी यही भावना है। ऐतरेय ब्राह्मण में जाया का जायात्व उसके संतति प्रसव से माना गया है। वाशिष्ठ धर्मसूत्र 13/48 में माता का पद सर्वश्रेष्ठ माना गया है। गौतम धर्मसूत्र 2/56 और मनुस्मृति 2/145 में माता गौरव की अधिकारिणी है। बृहदारण्यक उपनिषद 6/4/17 में पंडिता दुहिता की उत्पत्ति की इच्छा का उल्लेख है। महाभारत 5/38/10 भी स्त्रियों को पूज्य, पुण्यवती तथा घर की शोभा कहता है। महाभारत 13/126/26 स्त्री वध को ब्रह्महत्या कहता है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-111

वैदिक साहित्य में अंगिरस तथा उसकी व्युत्पत्ति

वीना कुमारी, पठानकोट

अंगिरस शब्द वैदिक ऋचाओं में अनेक स्थानों पर मिलता है। अंगिरस की व्युत्पत्तिवामन आप्टे कोष में अङ्क-अस् इसट् के रूप में उणादिकोष की टीका में स्वामी दयानन्द जी ने अनक्ति व्यक्ति करोति इति। वाचस्पत्यम् में अंग-अच् करके की गई। अंग को अग्नि प्रत्यय करके डिरागमः किया गया है। जिसका अर्थ ब्रह्मा के मुख से पैदा होने वाला अपने नाम से प्रसिद्ध ऋषि बतलाया गया है। यहाँ विचार करें तो ऐसा लगता है जो सर्वाधिक गतिशील है, उसे अंगिरस कहते हैं। स्वामी दयानन्द जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के वेदोत्पत्ति विषय प्रकरण में अंगिरस का अर्थ ईश्वर ग्रहण किया है, साथ ही यह भी लिखा—अथर्ववेद उस प्रभु के मुख के समान है। आगे अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, सूर्य से सामवेद की उत्पत्तिमानी गई। अथर्ववेद की उत्पत्ति अंगिरा ऋषि से हुई। इस प्रकार चारों वेद क्रमशः अंगिरा ऋषि से हुए। अर्थात् अग्नि, वायु, सूर्य और अंगिरा नामक ऋषि से पैदा हुए। श्री अरविन्दोजी ने वेद रहस्य के प्रथम खण्ड में अंगिरस का अर्थ गतिशील किरणें किया है। व्याकरण के अनुसार व्युत्पत्ति करते हुए हम भले ही किया कोई अर्थ ग्रहण करें। यदि उन्मुक्त साहित्यिक दृष्टि से विचार करें तो उनका व्युत्पत्तिरूप इस प्रकार भी हो सकता है—अंगिभूतो रसाः यस्य सः। आत्मिक आनन्द ही जिसका मुख्य अंग है, उसे अंगिरस कहते हैं। ब्रह्माण्ड के अंग पृथ्वी आदि पदार्थों के प्राण रूप और शरीर के अंगों को अन्तर्यामी रूप से रस रूप होकर रक्षा करने वाला अंगिरा शब्द अर्थ का वाचक है।

अंगानि रसयति यः सोऽपि अंगरसः
सर्वे रस अंग रूपेण वर्तन्ते यस्मिन सोऽपि अंगरसः।

❋

V-112

वेदों में कृषि-विज्ञान

डॉ. (श्रीमती) इन्दु शर्मा, कुरुक्षेत्र

भारत आरम्भ से ही कृषिप्रधान देश रहा है। वेदों में यत्र तत्र सर्वत्र ऐसे सन्दर्भों का बाहुल्य है जो उस युग में उपलब्ध कृषि विज्ञान से सम्बद्ध है। अथर्ववेद में विराट् ब्रह्म को इरावती के नाम से अभिहित किया गया है और उसे दुहकर कृषि और सस्य की प्राप्ति का उल्लेख है। इतना

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ही नहीं, भूमि के प्रकार, उसकी उर्वरता को बनाए रखने में सहायक तत्त्वों का उल्लेख भी वैदिक वाङ्मय में उपलब्ध होता है। कृषि के आविष्कार के बारे में दो सन्दर्भ प्राप्त हैं एक के अनुसार देवों ने जंगलों को काटकर भूमि को कृषि योग्य बनाया था। दूसरे के अनुसार कृषि का आविष्कार बेनपुत्र पृथु द्वारा दर्शाया गया है। इसका समर्थन महाभारत और श्रीमद् भागवत पुराण में भी मिलता है। वैदिक संहिताओं में कृषि के लिए भूमि तैयार करने, बीजारोपण, सिंचन एवं फसल की कटाई तक करने के साधनों का बीजरूप में उल्लेख मिलता है। जलवायु की अनुकूलता और भूमि की उर्वरता को बनाए रखने के लिए भी परामर्श उपलब्ध होते हैं। क्षार मृत्तिका का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि उन दिनों भी लोग इसके दोषों से परिचित थे। इसके लिए ईरिन् शब्द का प्रयोग किया गया है। कृषि के लिए वृष्टि के महत्त्व को आंकते हुए भूमि को पर्जन्य की पत्नी कहा गया है। यजुर्वेद में यज्ञ द्वारा कृषि-वृद्धि की चर्चा यह सिद्ध करती है कि यज्ञ के माध्यम से लोग अच्छे उत्पादन में सफल होने का भरसक प्रयास करते थे। भूमि को नमस्करणीय माना गया है तथा हानिकारक जन्तुओं और कीटों को नष्ट करने का परामर्श भी उपलब्ध होता है। वेदों में सिंचाई के सम्यक् साधनों के उल्लेख के साथ-साथ फसलों के क्रम का उल्लेख तथा उन दिनों उत्पन्न किए जाने वाले अनाजों का भी उल्लेख मिलता है। आज रबी और खरीफ के नाम से जो फसलें प्रसिद्ध है, उनका उल्लेख भी तैत्तिरीय संहिता में उपलब्ध होता है।

*

V-113

वैदिक अन्त्येष्टि संस्कार : एक विवेचन

डॉ. (श्रीमती) कृष्णा सैनी, होशियारपुर

हिन्दू परम्परा के अनुसार अन्त्येष्टि मानव-जीवन का अन्तिम संस्कार है। यह संस्कार मृतक के सम्बन्धियों द्वारा परलोक में उसके सुख व कल्याण के लिए किया जाता है। ऐसा करना मृतक के प्रति उसका स्नेह एवं प्रेम-भावना का परिचायक है। वैदिक साहित्य में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त की जाने वाली कुछ विधिविहित क्रियाओं को संस्कार शब्द से अभिहित किया गया है। संस्कार शब्द की व्युत्पत्ति 'सम्' पूर्वक 'कृञ्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करके की गई है। (सम् + कृ + घञ् = संस्कार)। संस्कार शब्द से यही अर्थ लिया जाता है—संस्कृत करना, शुद्ध करना। वस्तुतः संस्कार मानव के आध्यात्मिक अभ्युदय, शुद्धीकरण एवं संस्कृत करने के लिए समय-समय पर किए जाने वाले अनुष्ठान विशेष हैं। विभिन्न ग्रन्थों में इनकी संख्या भिन्न-भिन्न मानी गई है। परन्तु गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त सोलह संस्कारों को ही प्रमुख माना गया है। अन्त्येष्टि सोलहवाँ तथा अन्तिम

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संस्कार है जिस का अर्थ है अन्त में होने वाली इष्टि। इसे अन्त्येष्टि कहने का यही अभिप्राय है कि शरीर का यह अन्तिम संस्कार है—भस्मातःशरीरम्। यजुर्वेद 40, 15 अन्य संस्कारों की भाँति इसकी भी अपनी महत्ता है। जन्मोत्तर संस्कारों के द्वारा व्यक्ति इस लोक को जीतता है तथा मरणोत्तर संस्कार के द्वारा परलोक को जीत लेता है। शव को नष्ट करने के संसार की अलग-अलग जातियों में चाहे भिन्न-भिन्न प्रकार रहे हों परन्तु ऋग्वेद एवं परवर्ती वैदिक साहित्य में शव को जलाने तथा दफनाये जाने का ही उल्लेख मिलता है।

*

V-114

वैदिक साहित्य में प्रायश्चित्त विचार

डॉ. राजेन्द्र, कुरुक्षेत्र

वैदिक साहित्य में उपलब्ध 'प्रायश्चित्त' की उद्भावना अपने मूल में मानव के आचार पक्ष को नियन्त्रित और मर्यादित करने की रही है। यद्यपि वेद संहिताओं में इसके बीज संकेत अवश्य उपलब्ध होते हैं, परन्तु यह विचार परवर्ती संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रन्थों और स्मृति-ग्रन्थों में उत्तरोत्तर विस्तार पाता गया है। इसके लिए ''प्रायश्चित्ति'' पद का भी बहुशः उल्लेख मिलता है। अनेक प्रकार से इस पद की व्युत्पत्ति कर इसके कई अर्थ किए जाते हैं। अर्थों के विस्तार का यह विकास क्रम अत्यन्त रोचकता के साथ अपने समय की धार्मिक और सामाजिक प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन भी कराता है।

पापों से विमुक्त होने की लोगों की बलवती लालसा ने उत्तरवर्ती वैदिक साहित्य में प्रायश्चित्त को अत्यन्त लोकप्रिय विषय बना दिया। एतदर्थ साहित्य में पापों की पहचान की जाने लगी, जिससे उनके शमन हेतु प्रायश्चित्त का विधान किया जा सके। **सामविधान ब्राह्मण** ने अनेक सामाजिक और धार्मिक पापों से विमुक्त होने के लिए प्रायश्चित्त के रूप में अनेक उपाय सुझाए हैं। प्रायः सभी स्मृतियों ने पापों और उनके फलस्वरूप मिलने वाली अलौकिक सजा से बच निकलने के अनेक उपायों की प्रायश्चित्त के रूप में पहचान की है। इनमें मानसिक प्रताड़न और शारीरिक श्रम से लेकर आर्थिक दण्ड तक का विधान किया गया है। इसे तप और दान के रूप में परिभाषित किया गया है। मानसिक प्रताड़ना और शारीरिक श्रम से जुड़े प्रायश्चित्त को **तप** एवम् आर्थिक दण्ड से जुड़े प्रायश्चित्त को **दान** की कोटि में रखा गया है। प्रायश्चित्त के रूप में दी जाने वाली सजा की प्रक्रिया पुरोहित की निगरानी में पूरी होती थी। यह वस्तुतः राज्य की न्याय-व्यवस्था के समानान्तर चलने वाली धार्मिक न्याय-व्यवस्था बन गई थी, जो वस्तुतः शोषण और घृणा की मानसिकता से संचालित होने लगी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

थी। पुराणों के निरन्तर प्रभावशाली होते जाने पर 'प्रायश्चित्त' की रूपरचना ने विभीषिका का रूप धारण कर लिया था। ''प्रायश्चित्त-विवेक'' नामक ग्रन्थ का सामाजिक अध्ययन इसके महत्त्वपूर्ण तथ्य उपलब्ध कराता है। ''चित्त के विशोधन'' की पद्धति के रूप में उद्भावित 'प्रायश्चित्त' अन्ततः धार्मिक और सामाजिक शोषण का हथियार बन गया। प्रायश्चित्त के बदलते अर्थ और रूप वस्तुतः एक श्रेष्ठ विचार की त्रासद परिणति है।

❋

V-115

वेदार्थप्रकाशक निरुक्त

डॉ. रणवीर सिंह, कुरुक्षेत्र

वेदवाणी के ऋष्यभिप्रेत यथार्थ स्वरूप को पहचान कर समझना अत्यन्त आवश्यक है। निरुक्तकार यास्क ने जहाँ एक ओर वेदव्याख्या के परम्पराप्राप्त साधनों और सिद्धान्तों का प्रामाणिक वर्णन एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया है वहीं दूसरी ओर वेद के ऋष्यभिप्रेत अर्थ को प्रकाशित करने का सफल प्रयास भी किया है। निरुक्त में वेदव्याख्या के निरुक्तशास्त्रसम्मत सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए तथा वैदिक देवताओं के प्रचलित एवं वास्तविक स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए वेदव्याख्याकारों के लिए मानदण्ड स्थापित किए गए हैं। परिणामतः प्राचीन-अर्वाचीन, पौरस्त्य-पाश्चात्य आदि सभी वेदार्थकारों के लिए यास्क ने पथप्रदर्शक का कार्य किया है।

प्रस्तुत शोधपत्र में वेदाङ्गों में निरुक्त के महत्त्व पर विचार करते हुए निरुक्त के लक्षण का विवेचन किया गया है। निरुक्त की संरचना के प्रेरक बिन्दुओं पर दृष्टिपात करते हुए यास्क से पूर्ववर्ती नैरुक्तों और उनके स्वयं के आधार-ग्रन्थ निघण्टु पर विचार किया गया है। निरुक्त की निर्वचन-प्रक्रिया पर विचार करते हुए निरुक्त के प्रयोजनों, पदों की वृत्तियों एवम् उनके विषयों, निर्वचन-प्रकारों, यास्क के वेदार्थ-विषयक विचारों, विभिन्न वेदार्थ प्रक्रियाओं के निष्पादक यास्क के उद्धरणों का अनुशीलन किया गया है। साथ ही वेदव्याख्या की नैरुक्त प्रक्रिया के साथ-साथ अधिदैवत प्रक्रिया, अधियज्ञ प्रक्रिया, अध्यात्म प्रक्रिया एवम् ऐतिहासिक प्रक्रिया पर निरुक्त के आलोक में विचार किया गया है।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-116

पूर्वाचार्यकृत पारिभाषिकसंज्ञा एवं पाणिनिकृत पारिभाषिकसंज्ञा की अन्वर्थता

पण्ड्या हेटाल एन., अहमदाबाद

पाणिनि से पूर्वाचार्यों ने पारिभाषिकसंज्ञाओं का प्रयोग अपने ग्रन्थों में किया था। भाष्य तथा व्याख्याग्रन्थों से उनका परिचय मिलता है। शब्दशक्ति के अनेक अर्थों के अभिधान में सर्वात्मना समर्थ होते हुए भी किसी विशेष अर्थ में उसका नियन्त्रण कर देना ही संज्ञा विधान है। कैयर ने इसी बात को शब्दार्थ सम्बन्ध के नित्यत्व की सम्युष्टि में स्पष्ट रूप से कहा है। शौनक ने संज्ञा शब्दों के परिज्ञान की आवश्यकता पर बल दिया है। संज्ञा का विषय एक शास्त्र से निर्धारित नहीं किया जा सकता पतञ्जलि एवं कैयर की उक्तियों से संज्ञा शब्दों के संक्षिप्ततम रूप की तथा अर्थलाघव के उद्देश्य से प्रयुक्तसंज्ञाओं में उस अनावश्यकता की चर्चा की गई है। जिस से उन संज्ञाओं को कार्य निर्वाहार्य तथा अन्वर्थ माना जाता है। उसमें अन्वर्थता क्या है? क्या योगिकार्थ का उनके संज्ञियों में कुछ सामञ्जस्य हो सकता है? वह पाणिन्युपज्ञात है कि पूर्वाचार्य प्रयुक्त? ऐसी कुछ बातों को ध्यान में रखकर पाणिनीय-तन्त्र में कुछ संज्ञाओं की अन्वर्थता को प्रमाण-पुरस्सर बताने का प्रयास प्रस्तुत लेख में किया है।

*

V-117

तैत्तिरीयोपनिषद् में शिक्षा-दीक्षा

कुलजीत, चण्डीगढ़

हमारे प्राचीन ग्रन्थों में 'तैत्तिरीयोपनिषद्' में शिक्षा पर विशेष रूप से विचार किया गया है। अध्याय के लिए इसमें वल्ली (लता) शब्द का प्रयोग हुआ है। स्कूल या कालेज एक प्रकार की वाटिका है। विद्यार्थी वहाँ पर जो कुछ सीखें, उसमें सौन्दर्य की अनुभूति तो होनी चाहिये। यह सभ्यता का अनिवार्य अंश है। पहली वल्ली 'शीक्षावल्ली' है। अनुवाक नौ में शिक्षा के मौलिक नियमों का वर्णन है। यह नियम अध्यापकों और शिष्यों को बताते हैं कि वह किस उद्देश्य के साथ विद्यालय में एकत्र हुए हैं। शीक्षावल्ली के दूसरे अनुवाक में वाणी के उचित प्रयोग के लिये वर्ण, स्वर, मात्रा, प्रयत्न, साम और सन्धि का पूरा ख्याल रखने की बात कही गई है। दीक्षा के इस आदर्श में कई बातों का वर्णन है। यह स्वभाविक ही है कि एक व्यक्ति को एक विशेषण का ही महत्त्व दीखता

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

है और दूसरे को गुण का। अनुवाक 11 में आदर्श दीक्षान्त भाषण दिया गया है।

आचार्य दीक्षा देते हुए कहता है कि—

सत्य बोलो, धर्म पर चलो।

स्वाध्याय से प्रमाद न करो इत्यादि।

शिक्षा के उद्देश्य के साथ उसके लिये उचित वातावरण का भी वर्णन है।

इस प्रकार तैत्तिरीयोपनिषद् में शिक्षा और दीक्षा के सम्बन्ध में जो बाते कहीं गई है वह प्रशंसनीय और अनुकरणीय है।

*

V-118

ब्राह्मणग्रन्थों में सृष्टि-प्रक्रिया

डॉ. अशोक कुमार, जम्मू

पुरातन वैदिक वाङ्मय में तो मुख्यरूप से इसी सृष्टि-सिद्धान्त को स्थापित किया गया है, क्योंकि बिना विश्वोत्पति मत का प्रतिपादन किये, किन्हीं भी अन्य विचारों की स्थापना नहीं की जा सकती। अतः वेदवर्णित यज्ञों के प्रयोग-पक्ष के सन्दर्भ में विश्वोत्त्पति का सिद्धान्तरूपक अत्यन्त वैज्ञानिक ढंग से दर्शाया गया है। ऋग्वेद से उपनिषद् तक के वैदिक साहित्य में सृष्टि के आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक तीनों पक्ष विद्यमान् हैं।

ऋग्वेद वर्णित पुरुषसूक्त की व्याख्या सर्वदेववादी है, क्योंकि जो कुछ है और जो कुछ होगा वह सब यही पुरुष है। ब्राह्मणग्रन्थों में यही पुरुष "प्रजापति" नाम से अभिहित है। श०ब्रा० 11.1.6.2 ..... संवत्सरे पुरुषः सम्भवत् सप्रजापति। ब्राह्मण ग्रन्थीय मान्यता के अनुसार ब्रह्मद्वारा स्वरूप प्राप्त प्रजापति अथवा ब्रह्म के तूष्णीमनसोदभूत। सा०वि०ब्रा० 1-1-स तूष्णीं मनसाध्यायत। तस्य यन्मनासीत्, स प्रजापतिरभवत्। प्रजापति ने अपने बहुप्रजा कामना से प्रेरित होकर सृष्टि का कार्य सम्पादित किया। उनके भूः भुवः तथा स्वः इत्यादि शब्दोच्चारण से क्रमशः पृथिवीः अन्तरिक्ष तथा स्वर्ग लोकों का निर्माण हुआ।

प्रजापति की सृष्टि जिज्ञासा विश्व के प्रायः प्रत्येक पदार्थ के सृजन के पूर्व हुई, यह बात ब्राह्मणग्रन्थों में 'सोऽकामयत्' इस वाक्य के बहुल प्रयोगों से पुष्ट होती है। प्रजापति के दीप्तियुक्त नेत्रों से आदित्य की उत्पत्ति स्वीकार की गयी है तथा चन्द्रमा की उत्पत्ति उसके मनस् से। इसी प्रकार

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्राय: समस्त देवता प्रजापति द्वारा सृष्ट हुए। तत्पश्चात् प्रजापति द्वारा मानव, पितरों तथा तिर्थक आदि जीवों की भी उत्पत्ति हुई, जिसका वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों में यत्र-तत्र उपलब्ध होता है।

❋

V-119

वैदिक कालीन सामाजिक स्थिति

आरती कुमारी, झारखण्ड

ऋगवैदिक समाज समतामूलक समाज थी। इसमें सामाजिक विभेद, सामाजिक वर्गीकरण एवं श्रेणीकरण इत्यादि अनुपस्थित थे। यद्यपि ऋगवेद के 10वें मंडल के पुरुषसूक्त में वर्णव्यवस्था का उल्लेख मिलती है किन्तु यह वर्ण-व्यवस्था अनार्यों सें आर्यों की विशिष्टता को सुरक्षित रखने का प्रयास थी।

वैदिक कालीन समाज की सामाजिक संरचना वंश परंपरा पर आधारित थी जिसमें वंश, कुल तथा परिवार का विशेष महत्त्व था। परिवार पितृसत्तात्मक तथा संयुक्त होता था। विवाह एक संस्कार के रूप में स्थापित था। समाज में एकल विवाह लोकप्रिय था यद्यपि बहुविवाह के भी उदाहरण प्राप्त होते थे। समाज में विधवाविवाह तथा नियोग प्रथा की अनुमति थी। बालविवाह, दहेजप्रथा, सतीप्रथा प्रचलित नहीं थी।

उत्तरवैदिक समाज में अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं यथा सामाजिक जीवन में आश्रम व्यवस्था का उद्भव, कृषि आधारित व्यापार की शुरुआत, धार्मिक क्रियाकलापों में पुरोहित का महत्त्व बढ़ना, घुमक्कड़ तथा कबीलाई समाज का स्थायी समाज में परिवर्तन, शिल्प का विकास, राजनीतिक जीवन में राजपद की गरिमा में वृद्धि, करारोपण प्रणाली का विकास इत्यादि महत्वपूर्ण थे।

❋

V-120

वेदों में गोवध एवं गोमांस भक्षण का कहीं भी वर्णन नहीं

प्रो. चन्द्र प्रकाश आर्य, करनाल, हरियाणा

वेदों में बार-2 गौ को अघ्न्या कहा गया है। अत: उसे मारने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। अथर्व० (9/7/1-26) के पूरे सूक्त में 1-26 तक मंत्रों में विश्वरूप में गौ की महिमा का वर्णन है

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

और अन्त में कहा गया है कि गाय ही विश्वरूप है, सर्वरूप है और यही गो रूप भी है—'विश्वरूपं सर्वयपं गोरूपं।' अथर्व० (11/2/09) में परमात्मा द्वारा पाँच प्रकार के पशुओं में गाय को प्रथम स्थान दिया गया है। अथर्व० (8/9/25), (8/9/26) में कहा है कि सम्पूर्ण धरातल एक ही विश्वरूपी गौ है। अथर्व० (9/1/4) में गौ को आदित्यों की माता, वसुओं की बेटी, प्रजाओं का प्राण, अमृत की नाभि, घृताक्त, मधुकशा कहा गया है। अ० (9/10/5) में गाय को अघ्न्या एवं सौभाग्यदात्री कहा है। अ० (10/10/1) में गाय को अवध्या बताते हुए जन्म लेते समय, जन्म हो जाने पर उसे नमन किया गया है। यहाँ तक कि उसके बालों और खुरों को भी नमन किया गया है। अ० (10/10/4) में गौ को द्युलोक, पृथ्वी और जलों को सुरक्षित रखने वाली तथा सहस्त्रधाराओं से दूध देने वाली कहा है। ऋग्वेद (8/101/15) में गाय को निर्दोष, निष्पाप बताकर उसका वध न करने का निर्देश दिया है—'मा गाम् अदितिं वधिष्ठ।' यजु० (4/19-20) में गौ को चित, मन, धी, दक्षिणा, यज्ञिया, अदिति आदि कई नामों से पुकारा गया हैं।

वेद में गाय को अघ्न्या कहा है। उसको मारने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। ऋ० (1/64/27), अथर्व० (9/10/5) तथा अ० (10/10/1) में गौ को अघ्न्या कहा है, वह अवध्या है। वेद में गोघातक को प्राणदण्ड का विधान है। अथर्व० (1/16/4) कहता है कि यदि कोई गाय को मारता है तो हम उसे गोली से बींध देंगे। वेद में गाय को लात मारना भी अपराध है। अथर्व० (13/1/56) कहता है कि जो गाय को पैरों से प्रहार करता है, वह समूल नष्ट हो जाता है। यजु० (34/8) कहता है कि गोघातकों को भिक्षा नहीं देनी चाहिए। ऋ० (10/87/6) कहता है कि जो व्यक्ति मनुष्य का, घोड़े का, गाय का मांस खाता है, उसके सिर को कुचल देना चाहिए। वेद गाय को अदिति-न काटने योग्य / न मारने योग्य कहता है। पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के अनुसार वेदों में 137 बार गाय के लिए अघ्न्या शब्द का प्रयोग हुआ है। अथर्व० (12/4/6) कहता है कि जो गाय के दोनों कानों को चिह्न करने के लिए खोदता है वह मानो देवताओं के शरीर को ही खोदता है।

*

V-121

वैदिक काल में विधि-नियमों की संचालन व्यवस्था

डॉ. मधुबाला, सोनीपत (हरियाणा)

वैदिक कालीन विधि और प्रशासन की व्यवस्था से ज्ञात होता है कि उस समय प्रशासन की व्यवस्थित प्रगति के अवरोधक कई असामाजिक तत्त्व विद्यमान थे और ये विजित आदिवासियों

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

की आक्रान्त भावनाओं के फलस्वरूप और सम्भवत: विजेताओं की कठोर दमन नीति की प्रतिक्रिया में सक्रिय थे।

अपराध और अराजकता को हम विधि और प्रशासन के स्रोत कह सकते हैं। संहिताओं एवं ब्राह्मणग्रन्थों में ऐसे अपराधों की गणना है जिन्हें आजकल अपराध ही नहीं माना गया, जैसे— बड़ी बहन के रहते हुए छोटी के साथ विवाह करना। दूषित नख, कुरूप दाँतों को भी अपराध माना है। सबसे अधिक चोरी के अपराध का उल्लेख है। स्तेनों, तस्करों और मलिम्लुओं की अवांछित चेष्टाएँ व्यक्त करती हैं कि समाज के कुछ व्यक्ति शासन से असंतुष्ट थे, अर्थ-व्यवस्था के सार्वजनिक लाभों से वंचित थे और हेय प्रकारों को अपनाने में विवश थे। वैदिक कालीन दण्ड-व्यवस्था का स्वरूप वास्तव में इन तत्त्वों के स्वरूप का परिचायक है। आर्य संस्कृति में विधि-नियम अटल थे।

*

V-122

कौषीतकि गृह्यसूत्र में संस्कारों का विवेचन

डॉ. आशा गुप्ता, सुलतानपुर (उ०प्र०)

प्राचीन काल से हिन्दू समाज में संस्कारों का संयोजित विधान रहा है। जीवन में इसकी संयोजना का मुख्य कारण है कि मनुष्य का वैयक्तिक और सामाजिक विकास हो सके तथा उसका दैहिक और भौतिक जीवन सुव्यवस्थित हो सके। इसीलिए वैदिक काल से ही, मानव जीवन के सर्वाङ्गीण विकास के लिए उसमें संस्कारों को विशिष्ट रूप से समायोजित किया गया। जिस प्रकार चित्रकर्म में सफलता प्राप्त करने के लिए विविध रंग अपेक्षित होते हैं, उसी प्रकार चरित्रनिर्माण भी विभिन्न संस्कारों द्वारा होता है। इस प्रकार सविधि संस्कारों के अनुष्ठान से संस्कृत व्यक्ति में विलक्षण तथा अवर्णनीय गुणों का प्रादुर्भाव हो जाता है।

संस्कारों का उदय वैदिक काल या उससे पूर्व हो चुका था। शास्त्रीय दृष्टि से 'संस्कार' गृह्यसूत्रों के विषय क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं, किन्तु यहाँ भी संस्कार शब्द का प्रयोग मीमांसकों के अर्थ में किया करते हैं और 'पञ्चभू' संस्कार और 'पाक-संस्कार' का वर्णन करते हैं, जिससे वे यज्ञिय भूमि को मार्जन, सेचन, और शुद्धि तथा आहवनीय सामग्री के तैयार करने का आशय लेते हैं।

यज्ञ में आहुति दी जाती है तो उसे 'हुत' कहते हैं। इसके अन्तर्गत विवाह सीमन्तो-नयन पर्यन्त संस्कार आते हैं। अग्नि में आहुति देने के पश्चात् जब ब्राह्मणों तथा अन्य व्यक्तियों को दान,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दक्षिणा दी जाती है तो उसे प्रहुत कहते हैं। इसमें जातकर्म से लेकर चौल पर्यन्त समस्त संस्कारों का समावेश हो जाता है। दक्षिणा देने के अनन्तर जब कोई स्वयं अन्य व्यक्तियों से उपहार प्राप्त करता है, तो उसे आहुत कहते हैं। 'उपनयन' और 'समावर्तन' संस्कार इसके अन्तर्भूत हैं।

गृह्यसूत्र साधारणतया विवाह संस्कार से आरम्भ कर समावर्तन पर्यन्त दैहिक संस्कारों का प्रतिपादन और वर्णन करते हैं। उनमें से अधिकांशत: अन्त्येष्टि संस्कार का उल्लेख नहीं करते। गृह्यसूत्रों में वर्णित संस्कारों की संख्या 11 से लेकर 18 तक है। विभिन्न सूचियों में संस्कारों के नामों में अन्तर्भेद भी है। कहीं संख्या में वृद्धि और कहीं न्यूनता दृष्टिगोचर होती है। कौषीतकि गृह्यसूत्र ऋग्वेद की तीसरी शाखा मानी जाती है। इसमें सभी संस्कारों का वर्णन प्राप्त होता है। इसमें विवाह प्रथम तथा अन्त्येष्टि संस्कार अन्तिम माना गया है। इस गृह्यसूत्र में पाकयज्ञ का विशद वर्णन है। कौषीतकि गृह्यसूत्र में केवल पाँच अध्याय हैं, जबकि अन्य गृह्यसूत्रों में छ: अध्यायों का वर्णन प्राप्त होता है।

इस प्रकार हम कौषीतकि गृह्यसूत्र का सार प्रस्तुत कर रहे हैं। उपरिलिखित का विस्तृत विवेचन आगे प्रस्तुत किया जाएगा।

❋

V-123

वैदिक यम-यमी संवाद : एक समीक्षा

देवानन्द आर्य, मुजफ्फरपुर

वेदों में प्रतीकात्मक रहस्यों को सरलतम ढंग से समझाने के उद्देश्य से संवाद सूक्तों की रचना हुई है। संवाद के माध्यम से किसी भी तथ्य की गहराई को समझना सरल हो जाता है। सहोदरों एवं अति विशिष्ट सम्बन्धियों में विवाह एवं यौन-सम्बन्ध में 'यम-यमी-संवाद' अत्यन्त विशिष्ट है।

'यम-यमी संवाद' वैदिक साहित्य में ही अतिसीमित रूप में उपलब्ध है। ऋग्वेद के दशम मण्डल का दशवाँ सूक्त 'यम-यमी संवाद' कहलाता है। किञ्चित् पाठाधिक्य से यह सूक्त अथर्ववेद (18.1) तथा वृहद्देवता (6.154) ग्रन्थ में भी आया है। ऋग्वेद में इस सूक्त के देवता 'यम-यमी' है किन्तु अथर्ववेद में इन मन्त्रों का ऋषि 'अथर्वा' और देवता 'यम' हैं। इसमें एक भाई-बहन का काम-सम्बन्धी वार्तालाप है। कुछ भाष्यकार यम-यमी को सहोदर युगल मानते हैं तो अन्य सगोत्र किन्तु सहोदर नहीं।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-124

चंन्द्रमा मनसो जातः

डॉ. अर्चना लालसिंग, अकोला

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥

हे दिव्यगुणयुक्त प्रभु आपकी कृपा से सर्वश्रेष्ठ सत्यविद्यादि कल्याणकारी गुण युक्त बुद्धि हमें प्रदान कीजिए, उसी के फलस्वरूप देव अर्थात् विव्दान और पितर अर्थात ज्ञानी होकर ही हम सभी लोग नित्य आपकी उपासना करते रहें। मंगला चरण के स्वरूप में उपरोक्त पंक्तियाँ प्रभुचरणों में समर्पित करते हुए मैं यथामति इस जगत् की उत्पत्ति के विषय में अपने विचार अभिव्यक्त करना चाहती हूँ। सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में ऋग्वेद में महत्वपूर्ण चर्चा की गई है। शुक्ल यजुर्वेद के पुरुष सूक्त एवम् हिरण्यगर्भः सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति के संबंध में विशेष रूप से उल्लेख आया है। इस दृश्यजगत की उत्पत्ति का कारण क्या है? इस तरह के अनेक प्रश्न मन में उत्पन्न होते हैं। जिनका आंशिक रूप से समाधान इस चर्चा से हो सकता है ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
श्रोत्राव्दायुश्चे प्राणश्च मुखाद्ग्निर जायत॥

सभी के हृदय को आह्लादित करने वाले चन्द्र की उत्पत्ति मन से हुई है, उनकी आँखों से सूर्य उत्पन्न हुआ है, कान से वायु तथा प्राण और मुख से अग्नि उत्पन्न हुआ है। यह दिव्य पुरुष कौन है? क्या यही सृष्टि का उत्पत्तिकर्ता है।

"सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्" इत्यादि ऋचा में यही कहा गया है कि दिव्य सच्चिदानंद परमेश्वर पुरुष असंख्य सिर वाला, असंख्य नेत्रों वाला तथा असंख्य पैरों वाला है। वह पृथ्वी को चारों ओर से व्याप्त करके दश अङ्गुल परिमाण में स्थित है।

❋

V-125

वैदिक वाङ्मय के अधीन तंत्र!!

सर्वं खल्विदं ब्रह्म!! वेद एक अपौरुषेय ब्रह्माण्ड ज्ञान मूलक भंडार है। जो कर्मकाण्ड एवं ज्ञानकाण्डों से सुसज्जित खुललित देदीप्यमान सदाचार है। जिसने जीवों को देखने की ऊर्जा प्रदान

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

की है। और जिस प्रकाश के माध्यम से आभ्यन्तर एवं वाह्य जगत् देखा जाता है। **सूर्य आत्मा जगतः तस्थुषश्च!!** उसी प्रकाश में जीव अवतरित एवं समाहित होते हैं। **यतोवाश्मानिभूतानि जायन्ते यतो वा अभि संविसन्ति!!** वेद ज्ञान है। और वेद का ज्ञान विना षडङ्ग का संभव नहीं है। उसकी व्याख्या तो स्मृति अर्थात् धर्म ग्रन्थ है। **श्रुतिस्तु वेदोविज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः!!** लेकिन वेद और स्मृति का हृदयंगम भाग आगम एवं विवेक है। जिसे साख्य शास्त्र एवं मीमांसा शास्त्रों में उत्कृष्ट स्थान है। लेकिन कलिकाल व्याप्त होने के कारण वेद स्मृति आदि मंत्र मार्ग निर्विष सर्प के समान शक्तिहीन हो गए हैं जो उद्देश्य पूर्ण कराने में समर्थ नहीं हैं। और मानव सांसारिक वासनाओं में लिप्त अल्पायु है। ऐसी परिस्थिति में कल्याणकारी एवं तत्र शास्त्र ही है। जो लौकिक एवं अलौकिक आकांक्षाओं की पूर्ति करने में समर्थ है। इतना ही नहीं वेद सम्मत हिन्दू कर्म का विश्व कोष है। जिसमें हिन्दू धर्म के कर्म साधन एवं सिद्धियाँ अंकित है। **स निगमागम भेदा द्विविधः** जो धर्मग्लानि के समय में भी अपना गौरव अक्षुण्ण रखता है।

*

V-126

वैदिकवाङ्मय में अतिथि-सत्कार परम्परा

डॉ. निरुपमा त्रिपाठी, स्वरूप नगर, कानपुर
तथा **जाह्नवी पटवर्धन,** नवाबगंज, कानपुर

वेद आर्यों की सभ्यता, संस्कृति एवं साहित्य का आदिस्रोत तथा उद्गम स्थान है। उच्चादर्शों से युक्त 'अतिथिसत्कार' की उदात्त परम्परा वैदिकसाहित्य के प्रायः प्रत्येक भाग में दृष्टिगोचर होती है।

'ऋग्वेद' में अनेक स्थानों पर 'अग्नि' को 'अतिथि' की संज्ञा प्राप्त है। (ऋग्वेद 6/7/1 तथा 4/1/20, 3/3/8, 5/4/5 इत्यादि) इसी प्रकार यजुर्वेद तथा सामवेद के संहिता ग्रन्थों में भी अग्नि को 'अतिथि' कहा गया है (यजुर्वेद 7/24, 33/8 तथा सामवेद उत्तरार्चिक 8/3/1)

अथर्ववेद के नवें काण्ड में अतिथिसत्कार तथा सत्कार का विशद् वर्णन छः सूक्तों में प्राप्त है (अथर्ववेद 9/6-11) यहाँ अतिथि सेवा को यज्ञ का रूप दिया गया है तथा 'अतिथिसत्कार' के कर्ता को शुभफल की प्राप्ति तथा न करने वाले के लिये अनिष्ट बताया गया है।

इसी प्रकार ऐतरेयब्राह्मण तथा शतपथ ब्राह्मण में सोमराजा के आतिथ्य का वर्णन दृष्टव्य है (ऐतरेय ब्राह्मण 3/4/1 तथा शतपथब्राह्मण 3/3/2/2-3)

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

'तैत्तिरीयउपनिषद्' में अतिथि को देव की संज्ञा दी गई है तथा अतिथिसत्कार को व्रत की संज्ञा देते हुए गृहस्थ द्वारा उत्तम रीति से आतिथ्य करने का उपदेश वर्णित है (तैत्तिरीय उपनिषद् शिक्षा वल्ली नवम्, एकादशअनुवाक्, तथा भृगुवल्ली अनुवाक् 10) 'कठोपनिषद्' में यमपत्नी के सद्वचन तत्कालीन 'आतिथ्य' की उदात्त भावना के परिचायक हैं। (कठोपनिषद् अध्याय 1 वल्ली 1 मन्त्र संख्यां 7, 8, 9)

*

V-127

वेदों में स्वास्थ्यरक्षा

सुदर्शनदेवार्य व्रती, नवापारा (उड़ीसा)

ईश्वरीय ज्ञान होने से वेद ज्ञान का कोष है। वेद प्रत्यक्ष एवं अतीन्द्रिय सब प्रकार के ज्ञान की उपलब्धि का आदि स्रोत है। वेद मनुष्य के अभ्युदय एवं निःश्रेयस् सिद्धि के लिए अपेक्षित सम्पूर्ण ज्ञान का भी अक्षय भण्डार है। उसी सर्वज्ञानमय वेद में मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य मुक्ति (मोक्ष) को प्राप्त होना है। यह भी निर्विरोध सत्य है कि मुक्ति तभी सम्भव है, जब शरीर स्वस्थ व रोगरहित होगा। तभी तो लोक एवं साहित्य में ये उक्तियाँ प्रसिद्ध हुई **'पहला सुख नीरोगी काया'** **'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'** (कालिदास, कुमारसंभव) धर्म का प्रथम साधन शरीर ही है, **धर्मार्थकाममोक्षाणमारोग्यं मूलमुत्तमम्** (चरक० सू० स्था० 1/15) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का प्रधान कारण आरोग्य है। अब विचारणीय विषय यह है रोग और आरोग्य (स्वास्थ्य) है क्या चीज? इसका उत्तर एक पंक्ति में इस प्रकार है **'रोगस्तु दोष वैषम्यं दोषसाम्यमरोगता'** (अ०ह०सू० 1/20) अर्थात् दोषों का विषम हो जाना रोग है, और इनका सम्यक् याने साम्यावस्था में होना आरोग्य अर्थात् स्वास्थ्य है। वात, पित्त और कफ ये तीन जब साम्यावस्था में होते हैं, तब इन्हें **धातु** कहा जाता है। तब मनुष्य स्वस्थ रहता है। जब ये कम अधिक याने विषमावस्था में होते हैं, तब ये दूषित होने से **दोष** कहलाते हैं। अर्थात् धातुओं का इस प्रकार विषयस्थिति को प्राप्त होना रोग का कारण है। शरीरस्थ दोष ही आयुर्वेद के **स्थावरं जङ्गमं कृत्रिमं च** (सुश्रु० कल्पस्थान 2/30) के कथनानुसार स्थावर जङ्गम और कृत्रिम ये तीन प्रकार के विषों में से किसी एक विष के अन्तर्गत आ जाते हैं। यहीं से रोग का आरम्भ होता है, तथा इस शारीरिक वा मानसिक रोग के कारण मानव का जीवन जीना अत्यधिक जटिल हो जाता है। जीवन का ध्येय बदल जाता है, और समस्त ध्यान इसकी निवृत्ति में ही लगा रहता है। मनुष्य चाहता हुआ भी इससे दूरी नहीं बना पाता। अतः वेदों एवं इसके उपवेदों विशेष आयुर्वेद में स्वास्थ्य को बनाये रखने एवं रोगी पुरुष के विकारों को शमन करने के लिए अनेक

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उपाय पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। जैसे चरक संहिता में कहा गया है—**त्रय उपस्तम्भाः शरीरस्य आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति** (सू० 11/32) शरीर रूपी भवन को स्थिर रखने के लिए आहार(ऋत, मित एवं हिताहार) निद्रा और ब्रह्मचर्य ये तीन आधार स्तम्भ हैं। इनमें से एक के दुर्बल होने से शेष दोनों ही दुर्बल हो जायेंगे। इस प्रसंग में वेद के निम्नोक्त मन्त्र द्रष्टव्य हैं। **यदश्नासि यत्पिबसि धान्यां कृष्याः पयः। यदाद्यं यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि** (अथर्व-8/2/19) महावैद्य परमपिता परमेश्वर मनुष्यमात्र के लिये कहते हैं—हे मनुष्यों! कृषि से उत्पन्न हुए धारण और पोषण करने के साधनरूप चावल जौ, अन्न फलादि जो भी खाते हो, जो कुछ भी जल तथा दूध पीते हो, खाने योग्य भोजनरूप पका अन्न या पका भोजन और जो भी भोजन से अतिरिकत वस्त्र-पात्र, स्थानादि उपकरण का प्रयोग करते हैं सबको तुम्हारे लिये विषदोष से रहित करता हूँ। तथा अन्यत्र और भी कहा **यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवो चमहं त्वत्** (अथर्व-9/8/10) अर्थात् मैं समस्त रोगों के विषों को तुम्हारे अन्दर से दूर करता हूँ। यहाँ मन्त्रों का अभिप्राय स्पष्ट है कि यदि तुम्हारा स्वस्थ जीवन के लिये सतत् अभिलाषा एवं पुरुषार्थ रहा साथ में सन्तुलित आहार एवं प्राकृतिक जीवन भी रहा तो अवश्य सभी चीजें तुम्हारे लिये विषदोष से रहित होंगी। वेद एवं आयुर्वेद असावधानी से किसी को कोई रोग आ भी घेरा तो इससे मुक्त होने के लिये अनेक उपाय बतायें हैं जैसे—(1) सूर्यकिरण चिकित्सा (2) प्राण चिकित्सा (3) यज्ञ चिकित्सा (4) जल चिकित्सा (5) मानसिक चिकित्सा (6) मन्त्र चिकित्सा (7) हस्तस्पर्श चिकित्सा (8) उपचार चिकित्सा (9) मृत चिकित्सा (10) औषधीय चिकित्सा आदि हैं, इनका विस्तृत वर्णन संगोष्ठी में पढ़े जाने वाले शोधपत्र में किया जायेगा। अस्तु!

*

V-128

वेदों में योग

कुञ्जदेव मनीषी, आमसेना (उड़ीसा)

मनुष्य जीवन का लक्ष्य ईश्वर को प्राप्त करना और अन्यों को प्राप्त करवाना है। इस उद्देश्य की सार्थकता योग से सम्भव है। प्राचीन मनीषियों की चिन्तनधारा **योगादेव तु कैवल्यम्** इसी उपरोक्त बात की ओर ही संकेत करता है। महर्षि पतञ्जलि योगदर्शन के **योगश्चित्तवृत्तिनिरोध**—सूत्र 1/2 में चित्त के वृत्तियों को रोकने को ही योग (समाधि) कहा। योग शब्द युज् समाधौ दिवादिगणीय धातु से घञ् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है, अतः योग शब्द का शाब्दिक अर्थ समाधि अर्थात् चित्तवृत्तियों का निरोध है। यद्यपि योग शब्द युजिर् योगे तथा युज् संयमने धातुओं से भी सिद्ध हो

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सकता है। किन्तु वहाँ योग्य शब्द का अर्थ यथाक्रम योगफल - जोड़ तथा नियमन होगा। जो कि योगदर्शन के योगश्चित्तवृत्तिनिरोध सूत्रोक्त योग की परिभाषा के अन्तर्गत न होने से अभीष्ट नहीं होगा। अतः युज् समाधौ धातु से निष्पन्न योग शब्दार्थ ही यहाँ स्वीकार्य है।

कठोपनिषद् में यमाचार्य जी भी योग की परिभाषा में चित्तवृत्तियों को निरोध करना योग कहा है।

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ॥ 6/11॥

इन्द्रियों की स्थिर धारणा को योग कहते है, जिसकी इन्द्रियाँ स्थिर हो जाती है, वह अप्रमत्त हो जाता है, प्रमादहीन हो जाता है, सावधान हो जाता है, योग का अभिप्राय है, प्रभव तथा अप्यय। शुभ संस्कारों की उत्पत्ति होना प्रभव कहलाता है, तथा अशुभ संस्कारों का नाश अप्यय कहलाता है।

योग के साथ मनुष्य का सम्बन्ध अनन्त काल से है, योग के बिना मुक्ति अर्थात् अपरमित आनन्द की कल्पना करना खपुष्प के समान है। लघकाय चींटी से लेकर बृहत्काय व्हेल मछली तक (इसमें मनुष्य भी शामिल है) सबकी चाह आनन्द को प्राप्त करना है। तथा आनन्द योग से सम्भव है। भौतिक सुख सुविधा, धन, मान, सम्मान, सम्पत्ति से नहीं। सांसारिक भौतिक साधनों से सुख की प्राप्ति अवश्यम्भावी है, क्योंकि सुख का अर्थ जिन साधनों से इन्द्रियाँ तृप्त होती हैं। किन्तु सांसारिक साधनों से आत्मा को तृप्त नहीं किया जा सकता। आत्मा को तो परमात्मा रूपक रसास्वादन की आवश्यकता है, जिसके सेवन से आत्मा आनन्दी कहलाता है। (रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति) अतः आनन्द गुण की प्राप्ति के लिये, जन्म मरण के बन्धनों से छूटने के लिये, परमात्मा के गोद में बैठने के लिये सबको योग साधना को समझना एवं अपनाना अत्यन्त आवश्यक है। योग का अर्थ आज व्यायाम, आसन, प्राणायाम को ले लिया गया है। किन्तु ये सब योग का अंग विशेष मात्र हैं। वास्तविक योग का अर्थ तो चित्तवृत्तियों को निरोध करने के लिये यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि का नियमित अनुष्ठान करना है। जिससे असंप्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है एवं जीवात्मा 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्ष तक परमात्मा के आनन्द में रहता है।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-129

ऋग्वेद की ऋषिका सरमा : कतिपय विचारणीय बिन्दु

डॉ. श्रीमती इला घोष, कटनी (म०प्र०)

शौनक की बृहद्देवता में उल्लिखित रोमशा, लोपामुद्रा, विश्ववारा, अपाला, घोषा, जुहू, सूर्या आदि 27 ब्रह्मवादिनी ऋषियों में एक नाम सरमा का भी है जो ऋग्वेद के 10म मण्डल में निबद्ध 'सरमा-पणिसंवाद' (सूक्त सं० 108) के 11 मन्त्रों में से 06 मंत्रों की ऋषि है; जो पाणियों द्वारा अपहृत गायों का पता लगाने के लिये इन्द्र की दूती के रूप में बलपुर पहुँचती हैं और पाणियों के साथ संवाद कर अपने स्वामी इन्द्र का अभिप्राय स्पष्ट करते हुये, सभी प्रकार के प्रलोभनों से ऊपर उठकर अपने कर्तव्य का पालन करती हैं।

किन्तु परवर्ती परम्परा में सरमा को 'देवशुनी' (देवताओं की कुतिया) कहा गया है। उनपर, पाणियों के साथ मिल जाने और अपने स्वामी से विश्वासघात करने का आरोप लगाया गया है। इस बुद्धिजीवी समाज के सम्मुख प्रश्न यह है कि क्या 'सरमा' सचमुच देवशुनी थी? क्या एक शुनी द्वारा देवों के दौत्य कर्म का सम्पादन और पणियों से प्रगल्भतापूर्वक संवाद संभव था? क्या इन्द्र जैसे देवराट् एक शुनी को दूत के रूप में नियुक्त करते? क्या पणि एक शुनी को 'सुभगे' (हे सुन्दरि:) कहकर संबोधित करते अथवा उसे अपनी भगिनी बनाकर गोभाग देने के लिये तत्पर होते? 'सरमा-पणि-संवाद' में ऐसा कोई भी संकेत नहीं है जो सरमा के शुनित्व और विश्वासघात को प्रमाणित करता हो अत: मेरा दृढ़ अभिमत है कि सरमा निश्चित रूप से एक दूती की योग्यता से सम्पन्न दिव्य स्त्री एवं ब्रह्मवादिनी ऋषि हैं।

सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय में; एक स्त्री द्वारा शत्रु राष्ट्र में जाकर निर्भीकतापूर्वक दौत्य धर्म के निर्वाह का यह संभवत: प्रथम और अन्तिम उदाहरण है जो स्त्री की निष्ठा, तीक्ष्णबुद्धि और प्रत्युत्पन्नमतित्व का सूचक है। यह वैदिक नारी की गौरवगाथा का एक महत्वपूर्ण अध्याय है।

*

V-130

उपनिषदों का व्यावहारिक पक्ष

डॉ. हरीश्वर दीक्षित, जौनपुर (उ०प्र०)

व्यावहारिक जीवन में व्यक्ति त्याग एवं दान के द्वारा उत्कृष्टता के उच्चतम शिखर पर पहुँच सकता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि **कठोपनिषद्** अनुपयोगी वस्तु के दान का निषेध करता है। पितृ-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

परितोष, आत्मज्ञान, तथा श्रेय के वरण का उपदेश करता है। धन-वैभव की नि:सारता तथा भौतिक सुख का निषेध करता है। **तैत्तिरीयोपनिषद्** में सत्य, धर्म, स्वाध्याय, सद्व्यवहार, देवकार्य, पितृकार्य, अतिथि-पूजा, श्रद्धा तथा श्रेय की प्राप्ति तथा अविद्या से मुक्ति का उपदेश करता है। **ईशावास्योपनिषद्** निरन्तर कर्म करते हुए जीवन जीने, ''मा गृध: कास्यस्विद्धनम्'' - लालच न करने, तथा सर्वात्मवाद या अभेद दृष्टि का उपदेश करता है। कर्म की प्रधानता, परमात्मा का स्वरूप, विद्या एवं अविद्या, तथा सम्भूति एवं असम्भूति आत्मज्ञान एवं मोक्ष ईशावास्योपनिषद् का उद्देश्य है। **श्वेताश्वतरोपनिषद्** योगसाधना द्वारा आत्मा में ही परमात्मा का साक्षात्कार करता है। **वृहदारण्यकोपनिषद्** में भी मैत्रेयी एवं याज्ञवल्क्य संवाद द्वारा धन की नि:सारता एंव अमरत्व प्राप्ति हेतु ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया गया है। **मुण्डकोपनिषद्** में भी ब्रह्मविद्या का उपदेश, सत्यमेव जयते का उद्घोष तथा माण्डूक्योपनिषद् में आत्मा एवं ब्रह्म की एकता / अभेद तथा ओंकारोपासना द्वारा ब्रह्म का ज्ञान एवं मुक्ति का उपाय बताया गया है। यों तो उपनिषद् सम्पूर्ण ज्ञानदर्शन का कोष है क्योंकि इसमें गुरुपदिष्ट उपदेश ही भरे पड़े हैं, जिनके प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष उपयोग से हम अपना जीवन सफल बना सकते हैं। उपर्युक्त सभी तथ्यों का सविस्तर एवं ससन्दर्भ विवेचन उक्त विषयक शोध-पत्र में किया गया है।

*

V-131

शब्द की महत्ता

कु० कृष्णा दूबे, गोरखपुर

संस्कृत व्याकरण दर्शन में शब्द को ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया गया है। भर्तृहरि ने अपने प्रकरण ग्रन्थ वाक्यपदीयम् के प्रथम काण्ड जिसे मुख्यत: आगम काण्ड कहा जाता है, में शब्दब्रह्म के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥

वा० प०—1/1

अर्थात् शब्दब्रह्म अनादिनिधन, अक्षर, जगत्कारण, नित्य और चेतन स्वरूप है। शब्दब्रह्म की अनाद्यन्ता देश और काल के परिच्छेद से रहित है।

नित्य स्फोटात्मक बृद्धिस्थ शब्द ही भर्तृहरि के मत में शब्दब्रह्म है, जो समस्त प्राणियों में चैतन्य रूप से विद्यमान रहता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पूर्ण लोक वाग्व्यवहार में निबद्ध है—

ब्रह्मेदं शब्दनिर्माणं शब्द शक्ति समन्वित्।
विवृतं शब्दमात्राभ्यस्तावेव प्रविलीयते॥ वा० प०—1/

इसके साथ ही यह वाग्रूप सभी विद्याओं, कलाओं और शिल्पों की प्रयोजिका है—

सा सर्वविद्याशिल्पानां कलानां चोपबन्धनी। वा० प०—1/116

संसार में ऐसी कोई भी प्रमा नहीं है जो शब्द से सम्बद्ध हुए बिना सम्भव हो—

न सोऽस्ति प्रत्ययों लोके यः शब्दानुगमादृते। वा० प०—1/114

शब्दब्रह्म जागतिक व्यवहार के लिए व्यवहारिक वर्गों का रूप ग्रहण करता है। समस्त जगत शब्द का ही परमाणु है वैखरी वाक् के रूप में प्रत्यक्ष परम चैतन्य या परमेश्वर ही शब्दब्रह्म है।

*

V-132

कर्मफल मीमांसा : ऋग्वेद के सन्दर्भ में

रीना देवी, चण्डीगढ़

समस्त प्राणी जगत् कर्मों को करता हुआ जीवन यापन कर रहा है। हमारे द्वारा किए गए कर्म नष्ट हो जाते हैं अथवा उनका फल हमें मिलता है। इस विषय में ऋग्वेद इस मत का समर्थक है कि किए हुए कर्मों का फल हमें अवश्य भोगना पड़ता है वह कर्म चाहे शुभ हों या अशुभ किए कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है वह कर्म चाहे भूत या वर्तमान किसी भी काल में किए गए हों। ऋग्वेद में अनेकों स्थानों पर अशुभ कर्मों के फल से मुक्ति के लिए प्रार्थनाएं की गई हैं व्यक्ति अपने किए कर्मों को स्वयं ही भोगता है अन्य कोई इसमें सहभागी नहीं बन सकता।

ऋग्वेद में सकाम कर्म का अनेक स्थानों पर उल्लेख है। यज्ञादि क्रियाओं के करते समय उच्चारित मन्त्रों द्वारा धन-धान्य, सुख समृद्धि, वीर सन्तान, दीर्घ जीवन, गौ, अश्व आदि की कामनाएं की गई हैं।

इस प्रकार ऋग्वेद मं निष्काम कर्म के स्पष्ट संकेत नहीं मिलते। अर्थात् निष्कर्षतः हम कह सकते हैं ऋग्वेद सकाम शुभ कर्मों का समर्थक प्रतीत होता है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-133

ऋग्वेद में वर्णित सृष्टि-प्रक्रिया (आधुनिक सन्दर्भ में)

सीमा, चण्डीगढ़

ऋग्वेद में सृष्टि उत्पति दर्शन एवं विज्ञान के विशुद्ध ज्ञान का अभूतपूर्व समन्वय है। ऋग्वेद विज्ञान का ग्रन्थ नहीं है किन्तु सृष्टि-उत्पति सम्बन्धित सम्पूर्ण दर्शन के रहस्यों को प्रकाश में लाने के लिए जितने विज्ञान की आवश्यकता है उतना विज्ञान उसमें निहित है। वेद में दर्शन के निर्वाह के परिप्रेक्ष्य में जितना विज्ञान निहित है यह अत्यन्त आश्चर्य का विषय है। ऋग्वेद में सुरक्षित सृष्टि-उत्पति, पदार्थ की अवस्थाओं आदि से सम्बन्धित जो अनेक रहस्यमय विवरण वर्णित हैं। वे आधुनिक विज्ञान की परिकल्पना द्वारा निर्धारित तथ्यों से अत्यन्त सदृश्यता रखते हैं। आदि सृष्टिकाल में बृहत् अग्नि पिण्ड उद्भूत हुआ था, ऋग्वेदानुसार इस घटना का प्रतीक हिरण्यगर्भ है। और आधुनिक विज्ञानानुसार भी सृष्टि का आरम्भ एक महाविस्फोट से होता है। वैज्ञानिकी भाषा में इसे बिग-बैंग का नाम दिया गया, किन्तु कई ऐसे तथ्य हैं जिनका वर्णन वेदों में तो उपलब्ध हैं, यद्यपि विज्ञान उसका समाधान करने में असक्षम है और जिसके कारण विज्ञान दिन-प्रतिदिन नये-नये अन्वेषण करता जा रहा है।

*

V-134

वेदों में नारी का स्थान

वन्दना, चण्डीगढ़

अथर्ववेद के अनुसार ब्रह्मचर्य आश्रम की समाप्ति के उपरान्त ही कन्या विवाह के योग्य होती है।

कन्याओं का वेदाध्ययन उपनयन संस्कार से आरम्भ होता था। विभिन्न प्रमाणित साक्ष्यों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि वैदिक-मन्त्रों के साक्षात्कार में पुरुष ऋषियों के साथ-साथ स्त्री ऋषिकाओं ने भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ऋग्वेद की चौबीस ऋषिकाओं, वेदों में स्त्रियों को यज्ञानुष्ठान में भाग लेने, विवाह-काल में वर-वधू दोनों के एक साथ मन्त्रोच्चारण करने के अनेक विधान प्राप्त होते हैं, जो तत्कालीन नारी की प्रतिष्ठित-छवि को परिलक्षित करने में पूर्ण सहायक हैं।

वेदों की यह मान्यता है कि स्त्री-पुरुष, वृद्ध सबके शरीरों में समान प्रकार की आत्मा का निवास होता है। एक ही जीवात्मा कर्मानुसार कभी पुरुष रूप धारण करती है और कभी स्त्री-शरीर—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

'त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी' (अथर्व० 10.8.27) अत: मौलिक रूप से वैदिक संस्कृति में स्त्री और पुरुष में कोई अन्तर नहीं हैं। दोनों अन्योन्याश्रित हैं तथा दोनों का समान श्रम, त्याग और उत्तरदायित्व ही समाज को पूर्ण रूप प्रदान करता है। यही सत्य है तथा आज भी इसी तथ्य की आवश्यकता समीचीन है।

*

V-135

क्रिया का स्वरूप (वाक्यपदीय के विशेष संदर्भ में)

अनिल कुमार, चण्डीगढ़

क्रिया शब्द को प्रतिपादित करने के लिए आख्यात, तिड़न्त, धातु आदि अनेक शब्दों का व्यवहार होता है। प्रस्तुत शोध-पत्र में यह स्पष्ट किया गया है कि एकार्थी प्रतीत होने वाले इन शब्दों का वैशिष्ट्य क्या है? विषय के सन्दर्भ में यहाँ मुख्यत: वाक्यपदीय के अनुसार क्रिया का स्वरूप प्रतिपादित है। यहाँ बताया गया है कि क्रिया गर्भस्थ शिशु के समान अदृष्ट है तथा अनेक अवान्तर व्यापारों का समूह है। सिद्ध अथवा साध्यावस्था जिसे साध्यत्वेन कहना अभीष्ट हो 'क्रिया' कही जाती है। क्रिया के अन्तर्गत आने वाले अवान्तर व्यापारों को एक लड़ी में पिरोने का कार्य बुद्धिविशेष करती है। क्रिया का हम सम्पूर्णरूप से प्रत्यक्ष नहीं कर सकते क्योंकि क्रिया अवान्तर व्यापारों का एक समूह है।

यहाँ पतञ्जलि प्रतिपादित क्रिया-परिभाषा को भी समाहित किया गया है।

*

V-136

श्रौतानुसारी याज्ञिक प्रक्रिया की दुरूहता एवं महर्षि दयानन्द

डॉ. वेदपाल, बागपत (उ०प्र०)

ऋग्वेद में—"पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्या: पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभि:" (1.164.34) इस प्रहेलिकात्मक जिज्ञासा का समाधान "इयं वेदि: परो अन्त: पृथिव्या: अयं यज्ञो भुवनस्य नाभि:" (35) के रूप में उपलब्ध है। अथर्ववेद के अनुसार—

एतस्माद्वा ओदनात् ------- यज्ञमसृजत॥ 11.3.52-53

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ब्रह्माण्ड का परिज्ञान कराना यज्ञ का प्रयोजन है। वेद के उपर्युक्त तथा एतादृश अन्य स्थलों पर वर्णित यज्ञ तथा उसके प्रयोजन का परिज्ञान परवर्ती कर्मकाण्डीय ग्रन्थों में वर्णित यज्ञों के माध्यम से अर्जित करना असम्भव नहीं तो दुर्ज्ञेय अवश्य है। श्रौतसूत्रों में वर्णित याज्ञिक प्रक्रिया प्रायः आडम्बरपूर्ण, अनपेक्षित रूप से विस्तृत तथा दुरूह है।

हविः संस्थान्तर्गत दर्शपौर्णमास, अग्न्याधानम् एवं अग्निहोत्रम् के पश्चात् तृतीय स्थानी है। प्रस्तुत पत्र में इसी का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है।

अग्निहोत्री के लिए अमावस्या और पूर्णिमा के दिन क्रमशः दर्श और पौर्णमास कर्तव्य कर्म है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी दर्शपौणमास का विधान किया है। उनके अनुसार—दैनिक अग्निहोत्र की सोलह आहुति देकर पौर्णमासी के दिन अग्नि, अग्नीषोम तथा विष्णु के लिए स्थालीपाक की तीन विशिष्ट आहुति हैं। अमावस्या के दिन अग्नीषोम के स्थान पर 'इन्द्राग्नी' के लिए आहुति दी जाती है।

इस प्रकार महर्षि ने श्रौतसूत्रीय दुरूहता के स्थान पर यज्ञ संस्था को सरलतम स्वरूप प्रदान करते हुए दुरूह विधि की अपेक्षा सुगम विधि प्रस्तुत की है।

❋

V-137

दयानन्द-वाङ्मय में राजप्रजाधर्म

डॉ. मीनाक्षी शर्मा, चण्डीगढ़

प्रकृत शोधपत्र का विषय 'दयानन्द-वाङ्मय में राजप्रजाधर्म' है। दयानन्द-वाङ्मय में वेदोक्तधर्म, सृष्टिविद्या, पुर्नजन्म, वर्णाश्रम-धर्म आदि विषयों के अतिरिक्त 'राजप्रजाधर्म' विषय पर भी विशेष प्रकाश डाला गया है। उक्त विषय 'राजप्रजाधर्म' को दो भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम भाग में 'राजधर्म' और द्वितीय भाग में 'प्रजाधर्म' का वर्णन है। राजा को पिता के समान और प्रजा को पुत्र के समान अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए। दयानन्द-वाङ्मय में राजा और उसके कार्यक्षेत्र पर चर्चा की गई है, जिसके अन्तर्गत राज्यव्यवस्था, राजा की नियुक्ति एवं पदच्युति, राजा के कर्त्तव्य एवं राजधर्म, राजा की अर्थनीति, दण्डनीति, सैन्यनीति एवं युद्धनीति, तीन सभायें एवं सभापति की अनिवार्यता, मन्त्रियों की नियुक्ति एवं राजा के द्वारा मुख्यमन्त्री के साथ गुप्त मन्त्रणा करने के विशेष ढंग से प्रकाश डाला गया है। दयानन्द-वाङ्मय में प्रजाधर्म और उसके

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विविध पक्षों के अन्तर्गत प्रजा शब्द का अर्थ, प्रजा के कर्त्तव्य, प्रजाधर्म का महत्त्व, राजा और प्रजा के सम्बन्ध, राजा का प्रजा के प्रति उत्तरदायित्व और प्रजा के राजा के प्रति कर्त्तव्यों पर भी गम्भीरता से विचार किया गया है।

*

V-138

वेद तथा वसुधैवकुटुम्बकम्

डॉ. विजयकुमारी, जालन्धर

विश्व के साहित्य में वेदों का न केवल प्राचीनतम प्रत्युत् सृष्टि-विज्ञान की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्मृतियों, पुराणों आदि में वेद नित्य, अपौरुषेय और अप्रमेय कहे गये हैं। इनका महत्त्व केवल प्राचीनतम साहित्य होने के नाते नहीं अपितु इसलिए भी है कि वेद समस्त विश्व के लिए हैं, मानवमात्र के लिए हैं। संसार का कोई भी मानव वेद से लाभ उठा सकता है। मनु के अनुसार वेद पितृजनों, देवों तथा मनुष्यों सबके लिए स्थायी सनातन ज्ञान की आँखें हैं।

''पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।''

वेदों में 'मैं' और 'मेरा' के स्थान पर 'हमारा' शब्द का प्रयोग हुआ है। अथर्ववेद में ऋषि कहता है—

माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता न उ नः पिपर्त्तु॥ (12.1.12)

वैदिक युग में अनेक संस्कृतियों को ग्रहण करने वाले तथा अनेक भाषाओं को बोलने वाले सभी में पृथ्वी रूपी एक घर के सदस्य होने का विचार विकसित हो चुका था। इसी विचार से ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' का सामञ्जस्य स्थापित हो चुका था। हमारे देश में एक कुटुम्बवाद की विचारधारा अत्यन्त प्राचीनकाल से चली आ रही है—

अयं निजः परो वेत्ति गणना लघुचेतसाम्।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-139

ऋग्वैदिक सृष्टि प्रक्रिया

(हिरण्यगर्भसूक्त पर आधारित)

डॉ. राधेश्याम पाण्डेय, लखनऊ

वैदिक संहिताओं में ऋग्वेद सबसे प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण है। इसे हम भारतीय संस्कृति, धर्म एवं दर्शन का मूलस्रोत कह सकते हैं। मैक्समूलर का कथन है—''जब तक पृथिवी पर पर्वत और नदियाँ रहेगी तब तक लोकों में ऋग्वेद की महिमा का प्रसार होता रहेगा।'' सृष्टि उत्पत्ति में 'हिरण्यगर्भ' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'हिरण्यगर्भ सूक्त' की प्रथम ऋचा में कहा गया है—सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ (प्रजापति) उत्पन्न हुआ। वह उत्पन्न होते ही सभी वस्तुओं का एक अद्वितीय स्वामी हो गया। उसने विस्तृत द्युलोक को और इस पृथ्वी को धारण किया। हम किस देवता का हवि से विधान करें।

सूक्ति की प्रत्येक ऋचा में प्रश्न किया गया है—हम किस देवता की हवि द्वारा पूजा करें और अन्तिम ऋचा में इस देवता को साक्षात् प्रजापति कहकर सम्बोधित किया गया है। कस्मै देवाय- किस देवता के लिए। 'किम्' का चतुर्थी एक वचन 'कस्मै'। सायण के अनुसार 'किम्' का प्रयोग प्रजापति के लिए किया गया है। उसके लिए नपुंसकलिङ्ग का प्रयोग उसके अनिर्ज्ञात स्वरूप के कारण किया गया है। 'क' शब्द को सृष्टि के लिए इच्छा करने वाले प्रजापति का वाचक माना जाता है। 'क' का अर्थ 'सुख' भी है और इस अर्थ में भी यह प्रजापति का वाचक है।

*

V-140

वेदों में जीवन-मूल्य

जीवन आशा, जालन्धर (पंजाब)

वेदों में जीवन-मूल्यों की सुदृढ़ स्थापना के लिए उत्तम समान-व्यवस्था की बात कही गई है। वेदों में ऐसी समाज व्यवस्था का प्रतिपादन किया है जिसमें सभी लोग एक साथ चलें।

जीवन-मूल्य सच्चे अर्थों में तभी चरितार्थ होता है जब बहुजनहिताय-बहुजनसुखाय होता है। इसलिए वैदिक संहिताओं में अनेक मन्त्रों में परोपकार एवं दान का सन्देश दिया गया है।

प्राचीन ऋषियों ने ईश्वर द्वारा प्रदत्त वेद-विज्ञापन एवं आध्यात्मिक तत्त्व ज्ञान का उपयोग

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करते हुए जीवन में जिन प्राप्तव्य लक्ष्यों को निर्धारित किया है उन्हें भारतीय संस्कृति में पुरुषार्थ-चतुष्ट्य के नाम से जाना जाता है। उसी को ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नामों में विभक्त किया है। मानव की मूलभूत आवश्यकताएँ इन्हीं चारों पुरुषार्थों से पूर्ण होती हैं। ये भारतीय संस्कृति के चार स्तम्भ माने जाते हैं। इस प्रकार सदाचार परोपकार दान इत्यादि इसके आधार हैं। इस प्रकार वेद में प्रतिपादित उपर्युक्त जीवन-मूल्यों का सदुपयोग करने से मानव को सुख प्राप्त होता है तथा दुरुपयोग से मानव दु:ख का भागी बनता है।

*

V-141

स्मृतियों में नारी एवम् न्याय व्यवस्था

जयश्री ए सकलकाले, अकाला (मह०)

श्रुतिस्तु वेदोविज्ञेयः धर्मशास्त्रस्तु वै स्मृतिः।

स्मृति ग्रंथों में आचार, सोलह संस्कार, ब्रह्मचारी के कर्तव्य, चारों आश्रम, गृहस्थाश्रम के कर्तव्य, प्रायश्चित्त, दिव्य आदि विषयों के साथ व्यवहारपद का उसके अंगों के साथ विस्तार से चर्चा है। याज्ञवल्क्य ने व्यवहाराध्याय के प्रारंभ में व्यवहारपद की व्याख्या करते हुए कहा है कि जब आचार एवं रूढ़ी के विरुद्ध कोई व्यक्ति त्रस्त होता है, तो वो पीड़ित व्यक्ति राजा से निवेदन करे तो वो व्यवहार का विषय होता है।

मनु ने ऋणारान, निक्षेप, स्त्रीपुंस, स्त्रीसंग्रहण, साहस, स्तेय आदि अट्ठारह व्यवहार के अंतर्गत आने वाले विषयों की चर्चा की है। स्त्रीपुंस एवं स्त्रीसंग्रहण ये दो विषय इन अट्ठारह विषयों में नारी से से संबधित है। स्त्री-पुरुषयोः मिथुनीभावः संग्रहणम्। ये व्याख्या याज्ञवल्क्य की टीका मिताक्षरा में दी गयी है। संग्रहण के तीन प्रकार सभी आचार्यों ने विशद किये हैं।

वसिष्ठ स्मृति में ब्राह्मणी पर अत्याचार करने के लिये बाकी तीनों वर्णों के लोगों को जलाकर मारने की सजा निर्धारित की है। वसिष्ठ स्मृति 21.1-5 किन्तु ब्राह्मण यदि सजातीया पर अत्याचार करता है तो वो केवल कृच्छ्र नामक प्रायश्चित्त से मुक्त हो जाता है।

मनु ने सभी चार वर्ण के लोगों के लिये यही अपराध करने पर भिन्न-भिन्न सजा सुनायी है। संग्रहण के साथ-साथ कन्या अपहरण, कन्या के विषय में अपप्रचार, उसके दोषों का उद्घाटन आदि के लिये भी सजा निर्धारित की है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कुछ अपराध ऐसे थे जिनमें नारी ही अभियुक्त होती थी। यदि नारी से हत्या होती है तो कौटिल्य ने उसे पानी में डुबाकर मारने के लिये कहा है। यदि वो व्यभिचारिणी है तो याज्ञवल्क्य ने ऐसी नारी को कम से कम भोजन देना, भूमि पर शयन करना एवं उसका अपमान करना जैसे जीवन व्यतीत करने की आज्ञा दी है।

❋

V-142

वैदिक वाङ्मय में पुनर्जन्म भावना

डॉ. हरिसिंह शास्त्री, रादौर (यमुनानगर)

पुनर्जनम का अर्थ है एक शरीर त्याग करके दुबारा जन्म लेना अर्थात् नया जन्म लेना। पुनर्जन्म कर्मों के कारण होता है। जननमिति जन्म पैदा होना ही जन्म है। 'जनीप्रादुर्भावेदिवादि आत्मनेसेट धातु से 'सर्वधातुभ्यो मनिन्' इस उणादिसूत्र से मनिन् प्रत्यय होने पर जन्म शब्द बनता है।'' इसके पर्यायवाचक शब्द जनुः, जननम्, जनिः, उत्पत्तिः, और उद्भव शब्द हैं।'' पुनः फिर या दोबारा जन्म पुनर्जन्म, इसके अन्य नाम हैं गतजन्म, पुनर्भव, परलोक आदि।

पुनर्जन्म भारतीय संस्कृति एवं दर्शन का मान्य सिद्धान्त है जिसे आस्तिक ही नहीं अपितु जैन और बौद्ध दर्शन भी स्वीकार करते हैं। वेद, उपनिषद्, दर्शन एवं पुराणों में पुनर्जन्म को बिना किसी विवाद के जीवन दर्शन का आधारभूत सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। भारतीय दर्शन के अनुसार आत्मा नित्य एवं विभु है। उसमें ज्ञातृत्व, भोक्तृत्व और कर्तृत्व की शक्ति नित्य रूप में विद्यमान रहती है। यह आत्मा जब प्रकृतिस्थ रहता है, तब वह जीवात्मा कहलाता है तथा मन और इन्द्रियों के माध्यम से कर्त्ता, भोक्ता और ज्ञाता बन जाता है। सांख्य के अनुसार पुरुष प्रकृति के साहचर्य से स्वयं को कर्त्ता एवं भोक्ता मानता है। फिर अज्ञान नष्ट हो जाता है और तत्त्वज्ञान हो जाता है। तब पुरुष मुक्त हो जाता है।

❋

V-143

वेद वाङ्मय में वैद्यक शास्त्र का मूल उद्देश्य

वी.जे. बिदवय, अकोला (महा०)

स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का रक्षण करना और रोगी के रोग को दूर करना यही आयुर्वेद का प्रयोजन है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वेदों में मानव तथा समस्त प्राणियों के कल्याण की कामनायें की है। प्राय: वैदिक साहित्य में प्राथनाओं को आधिक्य है। इन मंत्रों में भिन्न-भिन्न विषयों को लेकर इच्छायें व्यक्त हुई है। मानव जीवन में शारीकि तथा मानसिक स्वास्थ्य का महत्व सर्वतोपरी है। 'सर्वमेव परित्यज्य शरीरम्रुपालयेत्।' अर्थात् बाकी सब काम छोड़कर शरीर का रक्षण करना चाहिये। तो यह बात स्पष्ट है, कि वेदों में भी स्वास्थ्य की कामना करने वाले अनेक मन्त्र है। और उन सब मन्त्रों में वैद्यक शास्त्र का उद्देश्य अन्तर्निहित है। चारों ही वेदों में वैद्यक तथा औषधी विज्ञान के संदर्भ में मन्त्र पाये जाते हैं। किन्तु अथर्ववेद में इसका प्रमाण अधिक है। इसलिये आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद माना गया है। वैद्यक शास्त्र के उद्देश्य वेद वाङ्मय में अत्र-तत्र उपलब्ध है। उनका वर्गीकरण कुछ बिन्दुओं में हम इस प्रकार कर सकते हैं।

1. **मृत्यु के कारणों का निवारण—**

मृत्यु के भय से मुक्ति या अकाल मृत्यु के निवारण हेतु वेदों में अनेकों प्रार्थनायें हैं।

"**मृत्योः पदं योपयन्तः।**" ऋ० 10.18.2 अथर्व 12.2.30

मृत्यु के कारणों को दूर करें।

"**उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।**" यजुर्वेद—3.60

जिस प्रकार पका हुआ फल स्वयं ही दण्ठल से अलग हो जाता है उसी प्रकार हम मृत्यु के भय से मुक्त हों।

2. **दीर्घायु की प्राप्ति**
3. **इन्द्रियाँ स्वस्थ एवं कार्यक्षम रहें**
4. **आचार-विचार की शुद्धि**
5. **रोगों के कारणों का उन्मूलन**
6. **औषधि की प्राप्ति**

❋

V-144

सूर्य-तत्त्व-मीमांसा

डॉ. सुधा गुप्ता, कानपुर

"सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" - (ऋग्० 1/115/1, यजु० 7/42) तच्चदर्शियों से लेकर विज्ञान-वेत्ताओं तक सभी एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि 'सूर्य ही जगत की आत्मा है।' ये ही

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri Foundation USA

मानवीय जीवन, प्रज्ञा और विज्ञान के आदि उत्स हैं। सूर्य से ही ब्रह्माण्ड उत्सर्गित हैं। ये ही पृथ्वी के नियामक और प्रकाशक हैं। इतना ही नहीं सूर्यविरञ्चिनारायणशङ्करात्मा है। वस्तुतः यह 'त्रयीमयत्व' ही सूर्यतत्त्व हैं। 'जगच्चक्षु', 'गुरुणां गुरुः', 'शतधा वर्तमान' सूर्य की सैकड़ों क्रियाएँ निष्क्रिय ब्रह्म की अनन्तानन्त क्रियाओं की भाँति अनगिनत हैं। पुनरपि सूर्य के मुख्य-मुख्य कर्म-प्रकाश एवम् उष्मादान, धी को प्रेरित करना, ग्रह-उपग्रहों की सृष्टि एवम् उनका धारण, उनका संचालन प्रभृति, काल-नियन्त्रण, उनकी निर्लिप्तता तथा पवित्र करने की क्रिया आदि है। ज्योतिष-शास्त्र तथा चिकित्सा विज्ञान की प्रणालियों के लिए यह बहुत उपयोगी है। मित्र, वरुण, अग्नि, चक्षुः, प्राण, अपान, जठर, वायु और जल के ये अद्भुत प्रवर्तक हैं।

गायत्री महाविज्ञान तो सूर्य का ही विवेचन है। गायत्री महामन्त्र के देवता सूर्य का ही दूसरा नाम सविता भी है। सविता की अधिष्ठात्री देवी होने के कारण गायत्री का दूसरा नाम सावित्री भी है। इस प्रकार ये दोनों एक ही आद्यशक्ति के 'ज्ञान और विज्ञान' नामक दो पहलू है।

❋

V-145

अश्विनौ सूक्तों में लोक मंगल की भावना

डॉ. श्रीमती मालाप्पासी, जबलपुर (म०प्र०)

वैदिक देवता पौराणिक देवताओं से सर्वथा भिन्न हैं। ये तो विश्व का निर्माण और संचालन करने वाले विभिन्न भौतिक घटकों और आध्यात्मिक तत्त्वों के नाम हैं।

ऋग्वेद में अश्विनौ की स्तुति लगभग 50 सूक्तों में की गई है जहाँ उनके रूप मंडन और कर्म चेतना के लिये अनेक विशेषणों का प्रयोग किया गया है। साथ ही इनके रथ का वर्णन भी पर्याप्त मिलता है—

अभो ह स्थो रथ्याऽराथ्येभिः। ऋग्० 1/157/06

वैसे तो अन्य देवों के साथ-साथ उनके वाहनों के वर्णन भी मिलते हैं परन्तु वे तत्-तत् देवों की सवारी के रूप में वर्णित हैं; परन्तु अश्विनों का रथ मात्र उनके भ्रमण के लिये नहीं हैं अपितु वह सामान्य जन की आवश्यक वस्तुओं का परिवहन भी करता है। इतना ही नहीं अन्य देवों को भी जन-कल्याण के लिये इनके रथ की आवश्यकता है।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-146

वैदिक यज्ञविज्ञानवेत्ता ''उन्नेता''

डॉ. रामहित त्रिपाठी, बस्ती (उ०प्र०)

वैदिक यागानुष्ठानों की सफलता योग्य ऋत्विजों पर अवलम्बित रही है। ऋत्विज् यज्ञविज्ञान के सरहस्य आनुष्ठानिक प्रक्रिया के ज्ञाता होते हैं। यज्ञ के पाङ्क्तत्व सिद्धि जहाँ एक ओर उसके चार अङ्गों—देवता, मन्त्र, द्रव्य एवं दक्षिणा के योग सम्भव है वहीं दूसरी ओर ऋत्विज् नामक पंचम अङ्ग का अकेले आधे भाग की पूर्णता में योगदान निश्चित है। ऋत्विजों में प्रधान तथा सहायक दो मुख्य वर्ग हैं। सहायक ऋत्विजों के भी अर्धिन्, पादिन् और तृतीयिन् नामक तीन कोटियाँ हैं। महर्त्विजों में अध्वर्यु का तृतीय श्रेणी का सहायक ऋत्विज् उन्नेता कहलाता है। जो सोमयागों के अनुष्ठान में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। यद्यपि सभी ऋत्विजों का यज्ञस्थल में अपना-अपना निज माहत्म्य सिद्ध है तथापि उन्नेता नामक ऋत्विज अपने निज निर्विकल्प क्रिया-कलापों द्वारा सोमयज्ञों की प्रकृति यज्ञा अग्निष्टोम से लेकर अन्य सभी विकृति यागों में सहयोग करता है। प्रातःसवन माध्यन्दिनसवन और सायं-सवन के उन्नयन कार्यों का अकेला सम्पादक होने के कारण इसकी उन्नेता संज्ञा है। इस शोध-निबन्ध में अर्षसाहित्य से प्राप्त सन्दर्भों के आधार पर एक परिशीलन प्रस्तुत किया गया है, जिसके माध्यम से यह स्पष्ट करने का यत्न किया है कि बिना 'उन्नेता' के कोई भी सोमयाग अनुष्ठान सम्पन्न नहीं हो सकता। उन्नेता वैदिक यज्ञविज्ञान का प्रमुख ज्ञाता एवं सम्पादक सिद्ध है।

*

V-147

ऋग्वेद में वर्णित दाशराज्ञ युद्ध

विनीता कुमारी, बरेली

देवासुर संग्राम के अतिरिक्त वैदिक काल में आर्यों और दासों के युद्ध हुए। महाभारत की तरह यह युद्ध भी आपस में ही हुआ था। प्राचीन आर्य-समाज अनेक जातियों में बँटा हुआ था। उनके मध्य सदैव विप्लव तथा परस्पर आक्रमण होते रहते थे। ये विप्लव उनके पारस्परिक ईर्ष्या के ही परिणाम थे। कभी-कभी किसी जाति का राजा युद्ध द्वारा पड़ोसी राज्य में अपने प्रशासन-विस्तार के स्वप्न उजागर करता था। इसके उत्तर में दूसरा राज्य आक्रमण व शत्रु के विजय अभियान को रोकने के लिये संगठित होता था। ऋग्वेद में अनेक मन्त्र व सूक्त हैं जो युद्ध-विप्लव तथा विजय की ओर सङ्केत करते हैं। ऋग्वैदिक काल में कोई भी ऐसा द्रष्टा नहीं था जो शत्रु के पराजय के लिये प्रार्थना व मन्त्रों का सङ्कलन न करता हो। 'इन्द्र' वह महान वैदिक देवता हैं जिन्हें लगभग

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सभी युद्धों के विजय श्री के वरण का श्रेय प्रदान किया गया है। इन्हें शत्रु के दुर्गों को नष्ट करने वाला, उनके राज्यों पर विजय प्राप्त करने वाला तथा उन्हें स्वयं नियन्त्रण में लाने वाला शक्तिशाली योद्धा के रूप में वर्णित किया गया है।

*

V-148

वेदों में काव्यशास्त्रीय तत्त्व

डॉ. रेखा शुक्ला, राजेन्द्रनगर, लखनऊ

वैदिक कवि की कल्पना का विलासी रूप ऋग्वेद में प्राप्त होता है। कवि होने के साथ-साथ काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का वर्णन करने में भी उसकी प्रवृत्ति स्थान-स्थान पर परिलक्षित होती है। यद्यपि उस समय भरतमुनि भामह, अभिनवगुप्त आनन्दवर्धन मम्मटाचार्य सदृश उद्भट काव्यशास्त्री नहीं थे तथापि मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने अपनी कविता के ब्याज से काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का उद्घाटन किया है। विविध सूक्तों में काव्य के प्रयोजन, उसके हेतु उसके स्वरूप, अलङ्कार, गुण रीति एवं वृत्ति को प्रदर्शित किया है। उनके मन्त्रों का अनुशीलन करने पर ज्ञान होता है कि काव्यशास्त्र के विविध सिद्धान्तों की प्रतिष्ठापना आधुनिक काव्यशास्त्र से अत्यन्त पूर्व हो चुकी थी। काव्यशास्त्र के समस्त मूलतत्त्वों तथा उसके व्यवहारिक रूपों का निदर्शन वेदों में स्थान-स्थान पर दृष्टिगत होता है। एक स्थल पर ब्रह्मानन्द सहोदर रस की चर्चा करते हुए ऋषि कहता है जो पवमान ऋचाओं के रूप में ऋषियों द्वारा सम्भृत रस का अध्ययन करता है वह पवित्र तथा स्वादिष्ट अन्न का आनन्द लेता है-उनके लिए सरस्वती क्षीरादि का दोहन करती है—

यः पावमानी रध्येत्यृषीभिः संभृतम् रसम्।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना॥
---तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ऋग्वेद 9/67/31-32

*

V-149

केन सूक्त व केनोपनिषद् का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. अरुणिमा, मुजफ्फरपुर (उत्तरप्रदेश)

केन सूक्त व केनोपनिषद् के तुलनात्मक अध्ययन के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि विषय-वस्तु की दृष्टि से दोनों में बहुत समानता है। दोनों का प्रारम्भ 'केन' शब्द से होने से केन

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सूक्त व केनोपनिषद् नाम रखा गया। दोनों ही आध्यात्मिक उपदेश करने वाले हैं। दोनों का ही आध्यात्मिक उपदेश अतुलनीय है। प्रश्नों की दृष्टि से केन सूक्त बृहत्काय है। केन सूक्त के अन्तर्गत आए प्रश्नों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक। जबकि केनोपनिषद् में हम केवल प्रश्नों की दो ही विधाएँ पाते हैं—आध्यात्मिक व आधिदैविक।

प्रकृत लेख में सामान्यतः केन सूक्त व केनोपनिषद् में आए प्रश्नों का तुलनात्मक वर्गीकरण करने के पश्चात् दोनों के आध्यात्मिक व सामाजिक पक्ष की विशेष समीक्षा की गई है।

केन सूक्त व केन उपनिषत् दोनों का ही अध्यात्म विज्ञान चरम कोटि का है। केन सूक्त में जहाँ शरीर के प्रत्येक अंग की ओर ध्यान करके उसके रचयिता का स्मरण किया वहीं केन उपनिषत् में शरीर व मन के प्रेरक ब्रह्म को कथानक के माध्यम से सर्वशक्तिमान् सिद्ध किया। दोनों का लक्ष्य एक परम ब्रह्म ही है। दोनों का अध्यात्म विज्ञान प्रकार विधा से भिन्न होता हुआ भी बहुत कुछ समान है। केन सूक्त ही मानों केन उपनिषत् ऋषि के अध्यात्म विज्ञान का प्रेरक हो।

ये दोनों ही सामाजिक ज्वलन्त समस्याओं के निराकरण में विशेष उपयोगी सिद्ध होंगे।

*

V-150

वैदिक साहित्य में ऋषभ-वर्णन

डॉ. रामजी राय, आरा (बिहार)

जैन परम्परा में ऋषभ को आदि तीर्थंकर स्वीकार किया गया है। इस आदि तीर्थंकर का वर्णन जैनेतर वैदिक साहित्य में भी उपलब्ध है। वैदिक साहित्य के श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण मार्कण्डेय, कूर्मपुराण, अग्निपुराण, वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, वराहपुराण, नारदीयपुराण, शिवपुराण के अतिरिक्त मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में भी ऋषभ की चर्चा किसी न किसी रूप में अवश्य मिलती है। वैदिक साहित्य से भी पता चलता है कि ऋषभ का जन्म नाभिराज की पत्नी मेरूदेवी के गर्भ से हुआ था। जैन ग्रन्थों में मेरू के स्थान पर मरू शब्द का प्रयोग मिलता है जो शब्द भिन्नता का परम्परागत रूप ही प्रतीत होता है।

श्रीमद्भागवतपुराण में विष्णु के चौबीस अवतारों में ऋषभ को आठवाँ अवतार माना गया है। विष्णुपुराण के अनुसार ऋषभ के सौ पुत्र हुए जिनमें भरत सबसे बड़े थे। ऋषभ ने अपना उत्तराधिकारी भरत को बनाया, तभी से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार भरत के पुत्र का नाम सुमति था। कूर्मपुराण ऋषभ के सौ वीर पुत्रों ने भरत को अग्रज मानता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शिवपुराण में आदिनाथ का अट्ठाइस योगावतारों में नौवाँ अवतार माना गया है। महाभारत के अनुशासन पर्व में शिव के अनेक नामों में एक नाम ऋषभ भी बताया गया है।

ऋग्वेद में ऋषभ को ज्ञान के प्रतिपादक एवं दु:खों का नाश करने वाला कहा गया है। यजुर्वेद में ऋषभ से प्रार्थना की गयी है कि वे अज्ञान अन्धकार को दूर कर मुक्ति का मार्ग अपनायें। इसी तरह अथर्ववेद में मनुष्यों से कहा गया है कि वे ऋषभदेव का आह्वान करें। मनुस्मृति में प्रथम दिन ऋषभ को युग के आदि में मार्गदर्शक और सुख सूरपूजित बताया गया है।

❋

V-151

वेदों में मानवधर्म

डॉ. आशा रानी पाण्डेय, उन्नाव

भौतिकवाद के इस युग में आत्मकेन्द्रित मनुष्य ने धर्म के जिस स्वरूप को आत्मसात कर लिया है वह मात्र जीवनपद्धतियाँ हैं जो संकीर्णता और अलगाववाद की जन्मदात्री हैं। परिणामस्वरूप हमारी चेतना जड़ता से प्रभावित हो गयी है। संप्रति हमारा जड़ मानवशरीर तो विद्यमान है परन्तु उसकी चेतनता रूप मानवधर्म लुप्तप्राय हो गया है।

वास्तविक धर्म तो वह जो सृष्टि नियमानुसार जीवन को सुचारु रूप से संचालित करते हुए आत्मोन्नति के मार्ग को प्रशस्त करता है। तथा जीवन को दानवता, पशुता से हटाकर मानवता स्नेह, सामंजस्य, सहानुभूति, सहयोग और सेवा भाव को जागृह कर सच्चा मानव बनाने में सहायक होता है।

''यत्र विश्वं भवत्येकनीडम'' ''सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु'' ''मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे'' आदि उदात्त भावनाओं से भावित वैदिक धर्म विषमता रहित शोषण मुक्त मानवीय जीवनमूल्यों से प्राणित आदर्श समाज की संकल्पना को चरितार्थ कर सकता है। एतदर्थ आर्यधर्म या वैदिकधर्म को सनातन तथा सार्वभौम मानव धर्म माना जाता है। सनातन, सार्वभौम मानवधर्म की कसौटी यही हो सकती है कि उसमें मानवता के उत्कृष्ट पद के लिये पूरे सम्मान गौरव और उसके प्रति शुद्ध न्याय तथा सत्य के व्यवहार का स्थान हो। आर्यधर्म के इन प्राणप्रद मौलिक सिद्धान्तों को मनसा, वाचा, कर्मणा अपनाये बिना हम उसके प्रकाशमान स्वरूप को जगत के समक्ष प्रकट नहीं कर सकते।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-152

ईशावास्य-उपनिषद में सम्भूति और असम्भूति—एक अर्थघटन

सुश्री राजवी ओझा, गाँधीनगर

ईशावास्य-उपनिषद् में भारतीय संस्कृति के आधारशिला के मूलमंत्र समाविष्ट है। इस उपनिषद् विस्तार में छोटा है किन्तु अर्थ में गहनतम है। इस उपनिषद् में कई मन्त्र ऐसे हैं जो अर्थघटन की समस्या खड़ी करते हैं। इसमें सम्भूति और असम्भूति ये दो शब्द ऐसे हैं जिसका नये सिरे से अर्थघटन करने का यहाँ इस शोधपत्र में प्रयास किया गया है।

*

V-153

वेद और विश्व कल्याण की अवधारणा

डॉ. प्रदीप कुमार दीक्षित, कानपुर देहात (उ०प्र०)

वेद आर्य जाति का सर्वस्व है। वेद मानव मात्र के प्रकाश स्तम्भ और शक्ति व ज्ञान के स्रोत हैं। वेदों की महिमा अपार है। विश्व को सर्वप्रथम ज्ञान देने का श्रेय वेदों को ही है। जहाँ वेदों की ज्योति है, वहाँ प्रकाश है, उन्नति है, सुख है, शान्ति है और सतत् विकास है। वेदों का स्वाध्याय प्रत्येक व्यक्ति समाज, राष्ट्र और विश्व की उन्नति का साधन है, विश्व बन्धुत्व का प्रेरक है और विश्व धर्म का संस्थापक है। महर्षि मनु वेदों को सर्वज्ञानमय समस्त विद्याओं का आधार तथा आदि स्रोत के रूप में मानते हुए कहते हैं—

यः कश्चित्कस्यचिद् धर्मोमनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥

वेदों में विश्व कल्याण की भावना पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगोचर होती है। संसार के सभी प्राणी तेजस्वी हों, निरोगी हों, समृद्धशाली हों, त्यागशील हों, कर्मठ, आलस्यहीन हों, पुरुषार्थी हो ऐसे दिशा निर्देश प्रत्येक वेद में हैं—

"इच्छन्ति देवः सुन्वन्तं न स्वजाय स्पृहयन्ति।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः"

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-154

महाकवि भास के नाटकों में निहित वैदिक तत्त्वज्ञान

डॉ. रीना अस्थाना, हरदोई (उ०प्र०)

भास की नाट्यकला पूर्णरूपेण वेदों से प्रभावित है। संक्षिप्त संवादात्मक शैली, पात्र चित्रण, नेपथ्य विधान, नृत्यगीत के लिए शैलूष (नट) हास्य के लिए कारि (विदूषक) का प्रयोग ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के अनुसार ही किया गया है। सङ्गीत की गीत नृत्य तथा तट् तन्त्री एवं सुषिर वाद्यों का प्रयोग भी सामवेद व अथर्ववेद से प्रभावित है।

वस्तुतः वैदिक भावों की पृष्ठभूमि पर भास के नाटक सफल एवं सिद्ध कहे जा सकते हैं। लौकिक के किसी अन्य नाटककार में वेदों की ऐसी अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है। जिस स्वाभाविकता एवं सहजता से वैदिक तत्वों को भास ने अपने नाटक में प्रस्तुत किया है वह निश्चय ही प्रशंसनीय है इस प्रसङ्ग में श्रीहर्ष की प्रशस्ति द्रष्टव्य है—

सूत्रधारकृतारम्भैनाटकैर्बहुभूमिकैः
सपात कैर्यशोलेभे भासो देवकुलैरिव॥

*

V-155

ज्योतिष शास्त्र का परिचय

डॉ. राजेन्द्र झा, महरैल, मधुबनी (बिहार)

सभी मानव सृष्टि के सुख की प्राप्ति के लिए अहर्निश संलग्न है। अग्नि से लेकर कम्प्युटर सदृश पदार्थो का निर्माण मानवों ने इसी स्वभाव के कारण हुई। मानव मात्र का स्वभाव है कि वह प्रत्येक घटनाओं के कारणों को जानना चाहता है। कारणों को जानकर उन्हें आनन्दानुभव होता है मनुष्यों के इसी कमजोरी ने ज्योतिष शास्त्र का जन्म दिया है।

साधारण रूप से सूर्यादि ग्रह एवं नक्षत्रों का ज्ञान प्राप्त करने वाले शास्त्र की व्युत्पत्ति ज्योतिषां ग्रह नक्षत्रादि पदार्थानां बोधकं शास्त्रं की गई है। ज्योतिष शास्त्र की परिभाषा आचार्य उपर्युक्त प्रकार से दी है। इस शास्त्र में प्रधान रूप से ग्रह, नक्षत्र, धूम-केतु जयोतिः का स्वरूप परिभ्रमण—काल, ग्रहण एवं नक्षत्रों गति-स्थिति के अनुसार किया गया। जिस शास्त्र में इसका विस्तारपूर्वक अङ्गों का वर्णन किया जाता हो वह शास्त्र ज्योतिष शास्त्र है। भारतीय ज्योतिश शास्त्र में डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

महोदय ने कहा है कि भारतीय ज्योतिषशास्त्र को प्राचीन एक मौलिक भारतीय विद्वान ही सिद्ध नहीं करते हैं बल्कि अनेक विदेशी विद्वानों ने भी इसको स्वीकार की है।

वैदिक साहित्य के प्रकाण्ड विदेशी विद्वान प्रो० मेक्स मूलर के अनुसार भारत वासो आकाश मंडल और नक्षत्र मंडल आदि के बारे में अन्य देशों की ऋणी नहीं है। फ्रान्सीसी पर्यटक प्रभकवास वर्निया महोदय ने भी भारतीय ज्योतिष ज्ञान की भी प्रशंसा की है। फान्सीसी यात्री तरवीनियर ने भी भारतीय ज्योतिष में अपना पक्ष रखा है। वैदिक साहित्य के प्रकाण्ड विदेशी विद्वान् प्रो० मेक्स मूलर ने भी प्रशंसा की है।

*

V-156

सामगान में कर्षण का स्वरूप

डॉ. पंकज माला शर्मा, चण्डीगढ़

प्रत्येक भाषा में रचित साहित्य के उच्चारण का अपना एक स्वरूप होता है। विश्व की प्राचीन भाषाओं में जो उपलब्ध साहित्य उसमें यह उच्चारण वैशिष्ट्य स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है। वैदिक भाषा की यह विशेषता है कि उदात्त, अनुदात्तादि स्वर का प्रयोग जहाँ शब्दों के अर्थ निर्धारण के लिये किया गया वहाँ इनमें विशेष प्रकार की गेयता भी थी। इसलिये वैदिक भाषा में प्रयुक्त स्वर बलाघात तथा स्वराघात दोनों से सम्बन्धित हैं। वैदिक ऋचाओं का गान किया जाता था इसलिये उसमें स्वरों के उतार-चढ़ाव के नियमों का पालन किया जाता था।

सामवेद की आर्थिक संहिता इसी त्रय स्वर पद्धति पर आधारित थी। इसमें गेयात्मकता तो थी लेकिन ऋग्पद में किसी भी प्रकार का विकार स्वीकार्य नहीं था। किन्तु धीरे-धीरे स्वराघात पर आधारित उच्चारण एक विशेष रूप धारण करता गया जो त्रैस्वर्य पद्धति से अलग होकर स्वतन्त्र रूप से सप्त स्वर पद्धति को प्राप्त हुआ। इस सप्त स्वर पद्धति वाले गान में ऋग्गत पदों में विकार तथा नये सार्थक या निरर्थक पदों के आगम भी गान की सुविधा के लिये किये जाते थे। परिणामतः सामगान का स्वतन्त्र अस्तित्व, स्थापित हुआ। 'का साम्नो गतिरिति। स्वरिति होवाच' इस सिद्धान्त के अनुसार यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ऋचा के गान का स्वरमय रूप ही साम है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-157

वैदिक, आगम एवं आगमेतर साहित्य में कृष्ण

रश्मि सोनी, लाडनूँ (राजस्थान)

प्राचीन भारतीय कला, साहित्य एवं संस्कृति में श्रीकृष्ण का महत्वपूर्ण स्थान है। कृष्ण से सम्बन्धित दर्शन एवं भक्ति की व्यापकता को देखते हुए इस बात में संदेह नहीं है कि भारतीय धर्मसाधना, साहित्य एवं समाज पर श्रीकृष्ण के स्वरूप एवम् चरित्र का प्रभाव हजारों वर्षों से चला आ रहा है। श्रीकृष्ण की लीलाओं से संबन्धित कथाएँ वैष्णव, जैन और बौद्ध संप्रदायों से संबन्धित साहित्य में विविध रूपों में प्राप्त होती है। वैष्णव संप्रदाय की दृष्टि से भगवान श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार के रूप से संबन्धित में विविध रूपों में स्वीकृत किये जाते हैं तो जैन-परम्परा में वे एक भावी तीर्थंकर के रूप में। बौद्ध-परम्परा में वे अवतार के रूप में मानकर उनके प्रति अपनी आस्था प्रकट की है। इन तीनों सम्प्रदायों के अतिरिक्त कुछ अन्य सम्प्रदायों के साहित्य में भी श्रीकृष्ण सम्बन्धी विविध कथाएँ देखने मे आती है। 'कृष्ण' वैदिक काल से लेकर अद्यतन किसी-न-किसी रूप में काव्य दृष्टि से विकसित रहे हैं। ऐसी स्थिति में डॉ. भंडारकर का मत है कि इस विकास क्रम में कृष्ण के अन्तर्गत अनेक भारतीय तथा अभारतीय विचारधाराएँ समाहित हो गई हैं।

❋

V-157

धर्म एवं तत्त्वचिन्तन में यज्ञों का अवदान

डॉ. शारदा शर्मा, दिल्ली

वेद हमारी संस्कृति के ज्ञान तथा विज्ञान के स्रोत हैं। वेद का धर्म के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है भारत में जितने भी आस्तिक धर्म हैं उनकी उत्पत्ति वेद से ही हुई है। इसलिए कहा गया है कि **'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'** अर्थात् समस्त धर्म का मूल वेद ही है। वेद के द्वारा निर्दिष्ट साधन को ही धर्म कहते हैं अर्थात् वेद विहित प्रेरणा ही धर्म है।

भारतीय मान्यता के अनुसार वेद की परम्परा कब से प्रचलित हुई। इसका निर्णय सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही सम्बद्ध है। वेद की परम्परा और उसमें प्रतिपादित कर्मानुष्ठान की प्राचीनता भी वेद के साथ ही है। वैदिक संहिताओं को देखें तो इसमें यज्ञ का नाम और बिखरी हुई सामग्री इध्म, बर्हि आज्य और अध्वर्यु पभृति ऋत्विजों के नाम देखने को मिलते हैं। वेद में जिन अनुष्ठानों का वर्णन है, उसके दो विभाग किये गये हैं—1. अनुष्ठान विषयक विभाग (कर्मकाण्ड) 2. दार्शनिक

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विभाग (ज्ञानकाण्ड)। इसमें कर्मकाण्ड का सीधा सम्बन्ध वैदिक यज्ञों से है जो मूर्त्तरूप में दिखाई देता है। दूसरा ज्ञानकाण्ड जो आत्मिक साधना पर निर्भर है। **'यज्ञो वै श्रेष्ठतमम् कर्मः'** - यज्ञ वैदिक साहित्य की सर्वोत्कृष्ट देन है। यज्ञ वेद मन्त्रों के पाठ से किया जाता है और यज्ञ में विधिवत आहुति डाली जाती है। **'यजर्षि यज्ञे समिधः'** आर्यों ने यज्ञ विधि को अपनाया और बुद्धि की वृद्धि का साधन बनाया। यज्ञ का सारांश ब्रह्म है और यज्ञ के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति लक्ष्य है। **'ब्रह्म यज्ञस्य तत्वम्'**। वैदिक यज्ञों का मानव जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है।

*

V-158

यजुर्वैदिक पर्यावरण-विज्ञान

यजुर्वेद को यज्ञीय-विज्ञान का शास्त्र स्वीकार किया जाता है जिसमें विभिन्न याग, कर्मकाण्डों की व्याख्या है। इसी के साथ यजुर्वेद पर्यावरण-विज्ञान का अद्भुत ग्रन्थ रत्न भी है। पर्यावरण प्रदूषणों को समाप्त करने हेतु यजुर्वेद के उपाय अद्भुत एवं अलौकिक हैं। वर्तमान में पर्यावरणीय प्रदूषण जिस प्रकार से ताण्डव कर रहे हैं और जीव जगत् को दंशित कर रहे हैं, कौन नहीं जानता? पर्यावरणीय प्रदूषण आतंकवाद से भयंकर है क्योंकि आतंकवाद जीवितों को मारता है और प्रदूषण जीवन की सम्भावनाओं को ही मिटाता है। यजुर्वेद के अनुसार पर्यावरण एक देव तत्त्व है जिसके विभिन्न अंग हैं। पर्यावरण और वरुण देवता समानार्थक हैं क्योंकि दोनों के मूल में वृञ्वरणेधातु है। अग्नि, वायु, चन्द्रमा, वसुगण, रुद्रगण, आदित्यगण, मरुद्गण, विश्वेदेवा, बृहस्पति, इन्द्र, वरुण सभी देवता पर्यावरण के अंग हैं। इसलिए इन देवताओं से सुखी जीवन की प्रार्थनाएँ की गई हैं। वर्तमान में भी जिसके पास जो वस्तु होती है उससे उसकी ही अपेक्षा की जाती है। देवगण हमारी आयु को पुष्ट करें।

*

V-159

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

डॉ. पुष्पा झा, जबलपुर (मध्यप्रदेश)

भारतीय संस्कृति की मान्यता है कि वेद से ही धर्म प्रादुर्भूत हुआ है। धर्मशास्त्रकारों ने वेद को धर्म का मूल कहा है—''वेदो धर्ममूलम्'' (गौतम धर्मसूत्र 1/1)। मनु के अनुसार सम्पूर्ण वेदधर्म के मूल हैं—''वेदोऽखिलो धर्ममूलम् (मनुस्मृति 1/6)।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कोष-ग्रन्थों के अनुसार 'धर्म' शब्द के अभिधेयार्थ—सम्प्रदाय आदि के प्रचलित आचार का पालन तदनुसार कर्तव्य, जाति, कानून, नैतिक गुण, कर्तव्यशास्त्र विहित आचरण-क्रम, न्याय, पवित्रता, औचित्य, स्वभाव, मूलगुण विशेषता, यज्ञ, सत्संग, भक्ति, रीति प्रणाली, उपनिषद् आदि हैं। इस शब्द का अर्थ क्रमशः परिवर्तित होते हुए मनुष्यों के कर्तव्यों एवं आचार विधि के अनुसार यह जीवन के करणीय कर्मों को व्यवस्थित करके, सम्पूर्ण जीवन को विकसित करते हुए, परमलक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति के योग्य बनाता है।

क्रान्तदर्शी ऋषियों की सत्यान्वेषणपरक, अनुभूतियों के कोष वेदों का मुख्य प्रयोजन मोक्षप्राप्ति होने के कारण, उनमें धर्म-विषयक विधियाँ स्पष्ट रूप से वर्णित नहीं हैं तथापि उनमें लोक-कल्याण विषयक निर्देश प्रासंगिक रूप से आते हैं जो जीवन का मार्गदर्शन करते हैं।

वेदों की सभी शिक्षायें सार्वभौम हैं। वे मनुष्य को हिन्दू, ईसाई, मुसलमान आदि बनने का नहीं अपितु मनुष्य बनने का आदेश देते हैं। प्राणिमात्र के कल्याण का मार्ग, प्रशस्त करते हुए, उच्च कोटि की मानवता को वरण करने वाले मूल्य वेदों में प्रतिपादित हैं।

वैदिक धर्म विश्वधर्म की भूमिका है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक ही सर्वभूतमय आत्मा से अधिष्ठित होने के कारण विश्ववाद की कल्पना यजुर्वेद में मिलती हे—"यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्" (यजुर्वेद 32/8)।

मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म मानवता है। सबके प्रति समभाव रखने से शान्ति और आनन्द का आविर्भाव होता है। इसी समभाव का वरणीय स्वरूप ऋग्वेद में उपलब्ध होता है—

समानी वः आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ (ऋग्वेद 10/191/4)

अर्थात् सबके संकल्प एक हों, हृदय और मन एक हों जिससे सब मिलकर जीवन में एक लक्ष्य को पा सकें। मानव प्रेम से संघटित होकर रहें और सबके सुख-दुःख आदि को समान रूप से जाने तो विश्व का उत्थान अवश्यम्भावी है—

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥ (ऋग्वेद 10/191/2)

धर्म के मूल वेदों का यह सन्देश है कि आधिभौतिक समृद्धि काम्य है, ध्येय नहीं। भौतिकता और आध्यात्मेकता के बीच सम्यक् सामंजस्य से समस्त दुःखों का निदान सम्भव है। योग-क्षेमात्मक अभ्युदय तथा पारलौकिक सद्गति आदि सर्वविध कल्याण का प्रापक धर्म, वेद से ज्ञेय है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-160

वैदिक वाङ्मय में विश्वामित्र का व्यक्तित्व एवं उनकी वंशपरम्परा के सन्दर्भ

डॉ. अरुणा शुक्ला, नवांशहर

विश्वामित्र वैदिक काल का एक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व है। उनके द्वारा दृष्ट सावित्री-गायत्री मन्त्र जो गायत्री मन्त्र के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध है, भारतीय परम्परा में प्रत्येक हिन्दू के लिये उसका ज्ञान आवश्यक है। कोई भी धार्मिक कृत्य नहीं, कोई भी संस्कार नहीं जिसमें इस मन्त्र का उपयोग न होता हो। उपनयन संस्कार में तो इस मन्त्र की दीक्षा गुरु के द्वारा शिष्य को अनिवार्य रूप से दी जाती है। वैदिक काल से लेकर आज तक भारतीय संस्कृति के वाहक सभी ग्रन्थों में चाहे संहितायें हो, अथवा ब्राह्मण ग्रन्थ हो, अथवा रामायण-महाभारत ऐतिहासिक काव्य, हो अथवा पुराण, परवर्ती काव्य, महाकाव्य ही क्यों न हों सबमें उनके व्यक्तित्व का चित्रण विविध रूप में वर्णित मिलता है। इस पत्र में केवल वैदिक वाङ्मय में वर्णित उनके व्यक्तित्व तथा उनके वंशजों के विषय में ही चर्चा करुँगी।

कात्यायन की सर्वानुक्रमणी के अनुसार विश्वामित्र ऋग्वेद के तृतीय मण्डल में संकलित सभी 62 सूक्तों के ऋषि हैं। उन्हीं के नाम पर सम्पूर्ण तृतीय मण्डल वैश्वामित्र मण्डल के नाम से प्रसिद्ध है। किन्तु इसी मण्डल के कतिपय सूक्तों अथवा सूक्तगत मन्त्रों के मन्त्रद्रष्टा के रूप में ब्रह्म (ऋ० 3.31) अङ्गिरस घोर (3.36.10), प्रजापति (ऋ० 3.38) तथा जमदग्नि (3.62.16-18) का भी वैकल्पिक ऋषि के रूप में उल्लेख किया जाता है। सर्वानुक्रमणी के अनुसार इस तृतीय मण्डल में कुछ सूक्त ऐसे भी मिलते हैं जिनके द्रष्टा विश्वामित्र के वंश के ही ऋषि है। ऋग्वेद 3.33 के 13 मन्त्रों में विश्वामित्र तथा विपाट् एवं शुतुद्री नदियों का संवाद वर्णित है।

*

V-161

The Voyeurs and Exhibitionists of Vedic Ritual

G.U. Thite, Pune

During the last quarter of the century there is a remarkable growth in the interest of Indians in vedic studies and rituals. There is a revival of vedism as it were. While in northern India the scholars are studying the

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

veda from the point of view of science and technology, ecological awareness and relevance-mantra in general, in southern India in addition to these features the vedists are interested in performing vedic rituals. Numerous Śrauta rituals are performed. These performances attract large crowds of voyeurs. The performers, who include both amateurs and professionals, are more interested in exhibitionism rather than the faith in the ritual. The concepts of 'Globalisation', marketeering, investment, profit-making, advertising, sponsorship etc. are gaining ground in these performances. The real spirit of vedism is however missing in all these studies and performances. The academic, philological approach to the veda is conspicuously absent.

*

V-162

Concept of Vedic Education Meant for Common People

Dr. Pranati Ghosal, Varanasi

References to the famous brahmin and kṣatriya scholars, narratives on their names (as they have been recorded in the Vedas) suggest that Vedic education, being purely religious and literary in character, was meant for few limited people who were fit and eager for a dedicated life in the quest of Supreme Truth. Hence, it was not meant for the mass of common people (i.e. non-brahmin lower castes). That Vedic education was preserved for limited eligible persons (especially brahmins) and not for common public has been established in the *Nirukta* (II.3-4) also. Yāska with a citation from the ṚV (*vidyā ha vai brāhmaṇam ājagāma* - SṚV quoted in the *Nirukta*) has established this theory. Sāyaṇācārya also (while determining the eligibility for Vedic studies) in his introductory commentary to the ṚV has boldly rejected women's and *śūdras*' right to the Vedic studies (*strī śūdrayos tu satyāmapi jñanāpekṣāyām... vede'dhikāraḥ pratiṣiddhaḥ*).

We are to mention here that in spite of all these prohibitions it cannot be said that India represented a one-sided development and total darkness in the side of *śūdras*. Existence of some *śūdra* scholars/seers,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

like Aitareya Mahīdāsa (*Aitareya Brāhmaṇa*), Kavaṣa Ailūṣa (AB VIII.1, ŚāB XII.1) and their wonderful literary contribution are clear evidences that *śūdras'* prohibition for Vedic studies was not maintained very hard and fast. The VS (XXVI.2) enjoins a liberal passage, which refers to the imparting of Vedic lessons to all the people irrespective of their caste. With reference to this context, it may not be inconsistent to mention KS (IX.16), which prescribes a ritual for the proper recognition of a non-brahmin Vedic scholar. Again it is interesting to note Vrātyas' behaviour (who in spite of not being initiated instruct others - AV XVth chapter) - which suggests that even teaching the people by members of low castes was prevalent (although, such a case was rare). Further the Dharma-Sūtras also refer to the system of study and teaching by non-brahmin teachers (ApDS II.2.4.25-26, BDS I.2.3.42-43, GDS I.7.1-4) indicate that not only they were provided with education, but recruited also, in order to maintain the flow of educaiton uninterrupted in the time of distress.

❋

V-163

Environmental Concern in the Vedas

Dr. Pranav Sharma, Pilibhit (U.P.)

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
ऐनं विदन्ति वेदेन, तस्मात् वेदस्य देवता॥ —ऋग्वेद 68.9

The knowledge which was meditated and observed first of all by the Rishis is called Veda, Veda symbolises the entire knowledge. The eternal knowledge which the Rishis perceived in their meditation is known as Vedas. In the history of Indian culture, the Vedas has a glorious place. The inumerabic pharaseology of the science of spirit is called Veda. Just as eyes are needed for the observation of material world so, are Vedas to know the mystery of infinity.

Nature has always been deifiable for the Indians whether the worship of the Sun for magnificence, or for the women for the boon of long life of their husbands, or the poor dreaming to be a Kuber, or the lust of

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri Foundation USA

knowledge in a student, or the worship of life giving rivers, for all these we have to go to the shelter of the Vedas.

Rigved describes the daily life of a poet

एषस्य कारुर्जरते सूक्तैरग्रे, बुधान उषसां सुमन्मा।
इषा तं वर्धदध्वया पयाभिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

❋

V-164

Vedic Concept of anna-the primary requirement of being

Dr. Sukumar Chattopadhyay, Varanasi, (U.P.)

Anna 'food' is the basic need of each and every worldly being. It is considered as the primary substance of all existence which leads to a realistic materialism. The Vedic literature gives a comprehensive idea of this term with numerous occurrences.

Every being is desirous of food by nature because living of any being is possible only by food. The gross material body is sustained by food i.e. absolutely depending on food for subsistence. Because of this comprehensive nature *anna* is identified with the Supreme Being (brahman). Several elements in the form of divinites like Sun, fire etc. are supposed to preside over articles of food. Some compound forms with *anna* indicate the social status like *annapati-* 'the lord of food', *annapatya* 'the lordship of food' and *annapatnī* 'a goddess presiding over food'.

The term *anna* is derived from the root *ad-* 'to eat' with the suffix *kta*. Etymologically it means 'anything eaten' but its conventional meaning is only food or victuals. This primary sense is later developed to denote boiled rice; bread corn, food in a mystical sense or the lowest form in which the Supreme Soul is manifested, the coarsest covering of the Supreme Spirit. The Nighaṇṭu records twenty eight synonyms of food (II.7) but in the same text (I.12.64) it is recorded also as a synonym of water.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-165

Methodology of Knowledge in the Vedic Tradition and Culture

Scientific (Relative) and Spiritual (Absolute) Methodology in Astika Schools

Dr. Bahrain Ganguli, Kolkata

This paper has four chapters. The first chapter deals with the meaning of the tradition in Vedic culture. The second chapter explains the relative and the absolute methodologies as found in the Upanishads and various philosophical texts. The analysis includes textual evidence.

The third chapter raises the question regarding whether the relative and the absolute methodologies are quite different from each other or, there is a possibility of integrating both. The forth chapter shows that the two methodologies can be unified. Indeed, this has been done by every astiba school of Indian philosophy.

The Paper concludes that if we regard the relative methodology as a final one, because it is scientific, we will not reach out goal of knowing the absolute truth. The relative methodology can only give us ''relative'' knowledge.

*

V-166

The Nature Of Āpaḥ As Reflected In The Ṛgveda

Dr. (Mrs.) Dipti Sarmah, Assam

The word, Āpaḥ, which always occurs in the plural number is found in the Ṛgveda as the name of female divinities who are personifications of all waters in general. Waters are born in the mid-region or in the indestructible nature of water. The vedic Aryans used the word Āpaḥ (which always occurs in the plural number) to indicate all waters which never being destroyed essentially remain in the same every where and thus are immortal.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

In the invocations of Āpaḥ two distinct characteristics of these divinities come to the forefront. One is that of mothers and the other that of healers and purifiers. They are time and again lauded as mothers. The concept of the water-goddesses as healers or purifiers seems to be closely connected with their being looked upon as mother- goddesses. This has further led to the concept of these goddesses as holy mothers. We come across many statements in the Ṛgveda, which seem to identify the juice of soma with the waters. Āpaḥ are called the source of madhu. The sweetness contained in water has been called the exhilarating drink of Indra. In the ṚV Soma is said to have had its origin in the celeṣtial waters, i.e. in the rains.

❋

V-167

Vedic Yājna

Dr. Devi Prakash Tripathi, Jhunjhunu (Raj.)

The Period upto AD 300 is important for religious history of India. I have used scattered archaeological source such as epigraphic, numismatic excavated material's to construct the picture of Yājnas. Mainly three kind of Yājnas were popular in ancient Indians. Some Yājnas were Ekāh some were Ahīn and orher's were Satra, all were performed very frequently under the consideration period. Study of Vedic Yājna's e.g. Aśvamedha, Vājapeya, Rājasuya, Trirātra, Gargātirātra, Chandogapavamānatrirātra, Angirastrirātra, Aptoryām, Agnyādheya, Anālambhaṇiya, Gavāmayana, Angirasāmayan, Agniṣtoma, Ukthya, Brihaspatisava, Sadyaskra, Daśarātra, Śatātirātra, Trayodaśarātra, Ṣodasyatrirātra performed by such royal personages as Puśyamitra Sunga, Śātkarṇi, Sarvatāta, Devimitra, Śilavarmana, Balavardhan, Somadeva, Balasimha, Bhavanāga, Pravarasena, Dharmatrāta. Yājna plateforms have been brought to light by archaeological excavations at Kalibanga, Lothal, Purola, Kalsi, Kaushambi and Nagarjunakonda etc. The ritualistic details and significance of these sacrifices have also been discussed on the basis of Vedic literature.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-168

Social Value-oriented Education in the Śvetāśvatara Upaniṣad

Kalyani Goswami, Jorhat (Assam)

The Upaniṣads, literature of four thousand years old are not social treatise. Yet we find some important social value-oriented teachings scattered in the pages of the vast Upaniṣadic literature. The social value-oriented education contained in the Śvetāśvatara Upanisad can be accepted as guiding light for te development of a society. In their universality they have relevance not only for Indian society but for whole human society. The teachings of this Upaniṣad brings to us a great message that all people of our human society are the sons of immortality. The Upaniṣad announces--

''Listen to me O children of immortality'' (ŚU. II.5). This Upaniṣadic call unites people of the society in the bond of immortality. Through it, our society gets a new integration. It is also ringing in the ears of the people of our society the wonderful words of unity. Through the concept of one God i.e. Cosmic Self this Upaniṣad teaches men the lesson of co-existence washing out the feeling of separateness and selfishness from their heart. Through self-sufficient Brahman the Upaniṣad inspires man to be independent by manifesting human qualities hidden within them.

❋

V-169

Ṛbhus The Vedic Minor Divinity as Refleted in the Ṛgveda

Ms. Bulbul Devi, (Assam)

The text of the Ṛgveda shows that the seers of this Veda have addressed to the natural forces like air, water, light etc. These forces of nature are worshiped as great Gods of the universe. The great Gods and Goddesses of the Ṛgveda possess well defined characteristics. As against this the minor divinities are characterized by the obscurity of their char-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri

acteristic features. In certain cases it becomes difficult to ascertain the precise nature of such Gods and Goddesses. As an examle may it be mentioned in the case of Ṛgveda. Many minor divinities are important on the ground that they contributed greatly to the growth and development of Indian religion. An attempt has been made in the present paper to discuss the minor God Ṛbhus as reflected in the Ṛgveda.

*

V-170

The Evolutinary Threory of the Vedic Literatures

Dr. Kanhei Charan Swain, Mayurbhanj (Orissa)

Aum̐ Dharma Sānsthāpynārthāya samabhavāmi Yuge Yuge, Bh. Gita. IV.8.(A). As Srikrishna says, ''For the re-establishment of Dharma I born age to age.'' Similarly the Heiratic groups of people of the society are always thinking about the betterment of society. In the Vedic age they may be Vedic Ṛṣis, in the middle age they may be reformer just like Śaṅkarācārya, Rāmānuja etc. and in the modern age Mahatma Gandhi, Gopabandhu, Balgangadhar Tilak etc. They were the well-wisher of the society. In the Vedic age Ṛṣis could see the Vedic mantras through Kaṭhorra tapasyā. So it is said that Ṛṣayaḥ mantra draṣṭāraḥ na tu kartāraḥ. These Vedic mantrās, are nothing but the knowledge of per excellence. It was declared as 'sacred knowledge' as ''divine revelation'' on account of its age as well as its content. Then gradually all the Veidic literature evolved to reform and regulate the society. This small stream like little paper is going to prove about the evolutionary theory of the Vedic literature to the honourable learned scholars, who have the ocean like knowledge.

If they will recognise this small stream, then it will be Bhāgirathi. As it is said in Sākuntalam̐.

āparitoṣādviduṣām na sādhu manye prayogavijnānam̐.
valavad api śikṣitānām̐ ātmanya pratyayam cetaḥ SK.1.2.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-171

Rudradatta on the Sacrificeris wife

Dr. Nirmala Kulkarni, Pune

Role of sacrificeris wife in the solemn ritual was a debatable issu even in ancient India. Some hold that her role was complemantray to that of her husband. However, according to others her role was quite independent. The present paper discusses view of Rudradatta on the same issue, especially on her absence in the ritual. It sheds light on the changing image of sacrificers wife.

Rudradatta is a commentator of Āpastamba Śrautasūtra. Jamison (2000) has scanned the main Śrauta texts to lay hold on the exact nature of wife's role. However, she has not taken into account the commentatorial literature. Thus, the present paper would be an addition in the present issue.

*

V-172

Epithets of Agni in the Apri Hymns: A Study in the Light of Sri Aurobindo

Jagamohan Acharya, Vani Vihar

Veda gave us an image of spiritual and psychological experience. The European scholars have developed their interpretation with the commentary of Sayana as their base. Sayana's interpretation is ritualistic where as the interpretation of the west is more materialistic. Swami Dayananda gave multi meaning of the roots in the Sanskrit language. He has tried to show that God has the existence of different gods in due to his power. Sayana attempts to preserve the traditional interpretation in his time. Sri Aurobindo has propounded a new interpretation based on psychological, symbolical, metaphysical and philosophical justification.

These in their own line also explain the Epithets of Gods. Agni is the chief terrestrial deity personification of the fire of the sacrifice, which

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

is center of ritual poetry of the Veda. some epithets of Agni exhibit a semi-independent character. The apri sukta is traditionally recited in the agnistoma rite. They are all invoking through the mouth of Agni. The epithets of Agni in the apri sukta like tanunapat, narasamsa etc have been traditionally interpreted Sri Aurobindo's interpretation are noteworthy.

The present paper wills high thought the significance of Sri Aurobindo interpretation that is a new light in the Vedic tradition of interpreation.

*

V-173

Swarup of God Śiva in the Śvetāśvatara Upaniṣad

Swati Shah

The Śvetāśvatara Upaniṣad is one of the earlist manifestation of bhakti and devoton to the particular God. In this Upaniṣad bhakti is directed towards the GodŚiva. This, we can say from some references found in the Upaniṣad. At several places the word Śiva is employed but we can not say with any certainity that the word Śiva in those places denotes a personalized God Śiva. However, there are some places a personalized God Śiva is mentioned and devotion and bhakti are also found for this God. This paper tries to discuss the word Śiva in the context of bhakti and divotion in the Śvetāśvatara Upaniṣad.

*

V-174

A Study of the 8th Book (KĀṆḌA) of the Atharvaveda(Ś)

Dr. T.N. Adhikari, Kolkata

We have exercised a plan to prepare a kāṇḍa-wise study of the Atharvaveda (Śaunaka) and the first one has been projected in the last AIOC (Varanasi, 2004). Primarily we have taken into consideration of those kandas where the commentary of Sāyaṇa(?) is presently missing.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Thus the 5th book (Kāṇḍa) was studied in the previous attempt. This time, the 8th book, the part of which goes without Sāyaṇa-commentary is taken up. According to W D. Whitney, the second grand division begins from book 8. This kāṇḍa has 5 Anuvākas; a total no. 14 Sūktas (hymns), which are comparatively lengthy in size than earlier kāṇḍas. There lies disagreement between Whitney and Visvabandhu in sukta-division in each Anuvāka. One special characteristic feature of this kāṇḍa is that there are a number of Paryāya-hymns where each verse is completed with the expression---''***ya evaṃ veda***'' which is a familiar prosaic expression in the Brāhmaṇa literature. In the proposed paper, the content, the special characteristics of the book, the import of the paryāya-hymns etc. are to be discussed, hymn by hymn, in order to introspect the true face of this Veda placing aside the veil of misinterpretation shrouded with it.

❋

V-175

Vedic Origin of *Gaṇeśa* : A Study

Dr. S.N. Mohapatra, Sundargarh, Orissa

Gaṇeśa in the name of *Gaṇapati* plays a very important role in both Aryan and Non-aryan culture. Though the word *Gaṇeśa* does not occur at all in *Vedas*, yet its' synonym *Gaṇapati* occurs a few times in *Vedas* and as such *Gaṇeśa* or *Gaṇapati* is a vedic deity. But it is also a fact that unlike *Agni* and *Indra* etc. it has not been invoked much in Vedic *Sūktas*. Also it will not be improper to note here that *Gaṇapati* is not an independent deity in *Ṛgveda*. In the entire Ṛgvedic verses the word *Gaṇapati* occurs only twice: (Ṛv. II 23.1 & Ṛv. X 112.9) once is addressed to *Bṛhaspati* and another to the most famous Vedic god *Indra*. But the same has occurred several times in later vedic *saṁhitās* (VS 23.19, TS. 2.3.14.3a, MS. 3.12.20:116.11.; KS.10.13a) as well as in *Brāhmaṇas* and *Upaniṣads* (KB. 8.5;9.6, AB.1.21, CB. 13.2.8.4; KṢA.4.1) Not only this, the same is also found in some *Śrautasūtras* (ĀPŚ, 20.18.1, MC. 9.2.4; AC, 4.6.3) etc.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-176

Mathematics in Vedic Literature

Amarendra Biswal, Haryana

Mathematics is a very important science. Its rules are as much exact as those of logic. Mathematics like logic is useful in the other branches of knowledge. The term ''Gaṇita'' Finds in the Ṛgveda Saṁhitā, Yajurveda Saṁhitā and Taittiriya Saṁhitā. In fact elements of basic education in Vedic India consisted of 'Lekha' (alphabets, reading and writing), 'Rupa' (drawing and geometry) and 'Gaṇana' (calculation-Mathematics).

In the Yajurveda Saṁhītā (vājasaneyī) the following numeral denomination is given. eg. Eka (1), Daśa (10), Śata (100), Sahasra (1000), Ayuta (10,000), Niyuta (100,000), Prayuta (1,000,000), Arbuda (10,000,000), Nyarbuda(100,000,000), Samudra (1,000,000,000), Madhya (10,000,000,000), Anta (100,000,000,000)), Parārdha (1,000,000,000,000).

The very important contribution of the vedic culture to the science of mathematics is the decimal place value system and the symbol-zero.

*

V-177

The Vedic Saṁhitās expose the consciousness on the Preservation of Nature

Jagadish Sarma, Guwahati

The relation between the environment and the human being is interdependent. Without one, it is impossible to survive in this world. Therefore, ancient Ṛṣis have resorted to ancient texts to describe Indian ideas about the cosmological working of nature and to recover an understanding of balance and harmony within that world. Human relationship to the natural world is a prerequisite not only for a sound life but also for the very existence itself. In the *Ṛgveda* (1.1.9), the seer Prays- ''Oh, Agni, like a father to his son, be thou easy of access to us; be with us for our

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

welfare''. In the Atharvaveda, an entire hymn, the *Pṛthivīsūkta* has been devoted to praise of mother Earth. The verses of this hymn integrate many of the thoughts of Hindu seers concerning the concept of nature, the dependence of human beings on earth, and the resultant respect required. The five great elements that constitute our environment, e.g. *ākāśa, vāyu, tejas, ap* and *Pṛthivī*, are evaluates of Prakṛti; they are distinctive elaboration of primal energy. The offerings that are made to the deity represent the best of each of the five elements. In the Vedic Saṁhitās, we have found the tremendous praise and propitiation of these five elements of nature for peace and healthy life of the entire living beings.

❋

V-178

An Exhaustive Note on Prayoga Ratnamala Vyakarana

Dr. Ranjan Chakravarty, Assam

Sanskrit language was fully developed during the age of Pāṇini Sanskrit Grammar written before Pāṇini by the sages are not completely available now a days. It is only Pāṇini's Astādhyāyī, which is available completely. All branches of this grammar are with us in their complete volumes. Pāṇinis Aṣṭādhyāyī is an authentic grammar and he accomplished the grammar very carefully and wrote it in a systematic way.

Even after the existence of the most efficient Pāṇinis Aṣṭādhyāyī, there are number of post Pāṇinian or Non-Pāṇinian systems of Sanskrit grammar have come down to us. Amongst those systems of Sanskrit grammar the Prayoga-ratna-mālā-Vyākaraṇa is worthy notable, which is known as 'The Kāmarūpa School of Sanskrit grammar'. Thus the present paper contains on elaborate and exhaustive discussion about the system Prayoga-ratnamālā-Vyākaraṇa with apt illustrations.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-179

The concept of Charity (Daana) in the Rgveda

Dr. M.N. Joshi, Dharwad

The hymns in Rgveda are classified into two gross groups, as one those pertaining to religious matters and second one is of those pertaining to temporal matters. While the group of hymns on religious matters advocate Dharma, gods and goddesses and other matters of religion, the temporal hymns express the great thought of Vedic Rishis on non-religious subjects which depict the social life of the Vedic days. The Vedic Rishis impart deep thoughts even on temporal matters such as Daana, Marriage, black magic, historical events of Local kings. In the Rgveda we find in many places the names of the kings, their dynasties and details of the charitable acts which they had performed, and also the names of Rishis who accepted the gifts from them. Such hymns are called 'Daanasthuti'. From times immemorial charity was considered as the supreme duty or Dharma. The Upanishads pray Daana, Tapas and Yajna as 'Trayo-dharma-skandhah'. These Daanasthuties in Rgveda praise the gods who inspired the kings to give in charity many valuable items. E.G. (1) Rgveda VI. 47-23 (2) Rgveda X-107-2 (3) Rgveda X.117. 1-7 These Rgvedic verses glorify the institution of charity and tell us that donors go to the haven and the society also flourishes by the act of charity. Charity brings pleasant and happy relations between the individuals, families and other people. The donor achieves temporal as well as spiritual benefits thereby. The present paper attempts a detailed study of this.

❋

V-180

Self-establishment of SELF (With special reference to Tattiriyabhasya Varttik)

Prof. Kaushal Kishore Srivastava, A.U.

Ultimate reality in Advāitvedānta is SELF. SELF doesn't depend on pramanas to prove it. This is self-established supreme and only reality,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

''Tattiriyopinshadbhashya varttika'' of Sureshwarāchārya portrays its selfestablished nature.

There are Scriptural texts which declare that Brahman is of the nature of consciousness and that the Self is identical with Brahman.

The self is therefore, of the nature of consciousness. It is through consciousness that everything, whether it is an object in the external world, or one's own body whether it is a mental state like pleasure or mind itself, is knonw by itself the internal organ (antahakarana) which is material and cannot cognize or reveal anything. If it gets the status of a knower (jnātā), it is because of the fact that consciousness, which is the Self, is reflected therein. The internal organ, carrying the reflection of consciousness, knows itself as ''I'' (Aham). In the same way it knows other objects which are presented to it as ''this'' (idam). Starting from the internal organ which is material and which is other that the Self, every object is known only through consciousness. Even the mental mode is known through the witness-consciousness. The internal organ is never constant. It is subject to modifications. The mental modes, i.e. the changes of internal organ, which appear and disappear one after another, are known only through the Witness-consciousness which alone is eternal and self luminous. A series can never be aware of itself as a series. It can be known only through another factor which is both permanent and a witness to it. That the mental modes are in a state of flux can be known only through the witness-conciousness.

It is usual to say that we gain our knowledge of things through some pramāna. But a pramāna can function as a pramana only through the help of consciousness. We can go even one step further. The every distinction between pramāna and apramāna presupposes the work of consciousness. If we say that something is a pramana and that something else is not pramana, it is because of the witness-consciousness. In the same way it is only through the witness-consciousness, says Sureshvara, that we are able to distinguish a valid cognition (pramā) from an erroneous one (abhāsa-jnāna). Consciousness which is presupposed in all acts of knowing is the basis of all knowledge. While other objects are established through consciousness, the latter is self-established (Svatahsiddha) for it

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

is self-luminous by its very nature. The Self which is consciousness is said to be self-luminous in the sense that, while it is not revaled by any other means or agency, it reveals other objects.

How Pramanas become futile in knowing the Self? What is the state of knower and known? The self which cann't be known through words and mind, how becomes realized? These questions have, thoroughly been thought and answered in this research-article.''

*

V-181

Antiquity of Vedas

Purāṇo-Vedic and archaeological evidences

Dr. Rai Gyan Narain Prasad, Gorakhpur

As per the Hindu view, Vedas have æons old thought whose language were cyclically reviewed and renewed by the Saptaṛṣis who illuminate them probably in every (or alternate?) Tretāyuga (of most recent cycle 7308-3708 BC). Saptaṛṣis illuminated Vedas according to the directions of the heavenly beings (or depending on the movement of the cosmic bodies). Hindu view tells us that all the four branches (pādas i.e. chatuṣpāda) of Vedic canon (Samhitā, Brāhmaṇa, Āraṇyaka, Upaniṣad) were developed in Tretā Yuga in a parallel fashion. At the end of Tretāyuga (c.3700BC), single Vedic canon had the quadruped face. At the end of Dvāparayuga (c. 1300BC), Veda-Vyāsa systematized and divided the Vedic canon into four separate groups -- Ṛks (deals with Agni i.e. rajas tattva), Yajus (Jala i.e. sattava tattva), Sāman (Vāyu i.e. tamas tattva) and Atharvan (the Purusa and the Prakrti) Samhitās along with their separate Brāhmaṇas, Ārayaṇkas and Upaniṣads. The photographs taken by LANDSAT (USA), IRS-IC (India), SPOT (France), ERS 1/2 (Europe) etc., satellites reveal the facts about the origin, evolution and drying epochs of Sarasvati river, which is totally matched with the Denton-Karlen's 6^0C average global temperature plot and the internal Purāno-Vedic evedences. Ṛgveda, 11/41/16, (c. 7000-4000 BC) mentions the first stage of Sarasvari river, (as the

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

naditamā, ambitamā, and devitamā i.e. supreme and almighty among all the rivers), along with its seven tributaries excluding the Gangā and Yamunā. In Yajurveda, XXXIV/11 and Atharvaveda VI/30/1, (c. 4000-3000 BC), mentions middle stage of only five rivers (Dṛṣdvati, Satluj, Chenāb, Vyāsa, and Rāvi) flow. Mahābhārata epic (III/80/118) describes the contemporary (c. 1300 BC) geographical situation of the almost the last stage of dried Sarasvati river left only in the form of the water-tanks/ lakes at a number of widely scattered sites such as Brahmasara, Jyotisara, Katesara, Kātasara, Pāndusara, Ravisara, etc. Memoir 42 of GSI, Bangalore has published a number of maps showing the complete root of the dried river Sarasvati. Archaeologists excavated more than 1200 ancient sites along the route of dried Sarasvari River and believe that in Vedic period, Sarasvati River was quite navigable from the Bay of Khambhāta up to the Mathurā via Lothala, Dholāvira, Ganeverivala, Kālibangan, Banawali, Pontadoona, Rākhigarhi, and Indrapṛṣtha.

*

V-182

Features of Sārasvatavyākaraṇa of Anubhūtisvarūpāchārya

Sujith.S, Kariavattom

Sārasvatavyākaraṇa is generally ascribed to Anubhūtisvarūpāchārya of the 13th century A.D. The *Sārasvatavyākaraṇa* is a work with simplicity as its main feature. The work treats the entire subject-- 1494 *sūtra* as against the 4000 of Pāṇini. The language of the sutra is easy, and in their interpretation we have not to follow the guidance of any *paribhāshās*. No book on *paribhāshās* has come down to us in connection with this school. Judged by the total number of *sūtras*, *Aṣṭādhyāyī* is heavier and difficult than *Sārasvata*. The most complicate features have been completely discarded by Anubhūtisvarūpāchārya. Right from the alphabet to the *ktvā prakriyā which* is the last topic dealt with in the *Sārasvata*, the *sūtras* run in a continuous flow without any interruption. No complication of *Sapātasaptādhyāyī* and *Tripātī* is seen in the *Sārasvatavyākaraṇa*.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

There is wide acclaim for Pāṇinian grammar, in the modern context, in the sense that it is the best suitable for computers. Pāṇini has been a topic of interest in the Artificial Intelligence (AI) community. But it is difficult to grasp the entire ideas contained in the *sūtras* of Pāṇini and to apply them in appropriate context. It is evident from the analysis of some of the examples taken from *Siddhāntakaumudī* that *Sārasvatavyākaraṇa* is comprehensive and competent enough to explain all the grammatical particulars. The total number of *sūtras* of *Sārasvatavyākaraṇa* is comparatively much less than that of the *Siddhāntakaumudī*. The time and energy necessary for processing and applying the *Sārasvata* in are much less. *Sārasvata* is verv good for Computer assisted programmes for analyzing, teaching and learning Sanskrit. In the light of all these, *Sārasvatavyākaraṇa* has an important role to play.

*

V-183

The Legend of Dīrghatamas

U.C. Sharma, Aligarh

The name of Dīrghatamas occurs at several places in the RV. He has been variously mentioned as ''Dīrghatamas'' (VIII.9.10.), ''Dirghatamas Māmateya'' (I.158.6), ''Māmateya'' (I.147.3; 152.6; IV.4.13) and ''Aucathya'' (I.158.1,4). All these references clearly denote that his parents were Ucathya (father) and Mamatā (mother). All these verses supply us valuable biographical details regarding Dīrghatamas. It will be worthwhile to peruse all these details in the present context. There should be no doubt in Dirghatamas being an historical personality. He is as historical as the *Ṛgveda-Saṁhitā* itself and the persons mentioned therein, such as Sudās, Vasiṣtha, Viśvāmitra, Bharadvāja, Yayāti, Śantanu and others. The major question is about this contemporaneity. He has been mentioned as a contemporary to Bharata Dauṣyanti on one hand and Bali, son of Virocana, on the other. F.E. Pargiter, who has dealt with major genealogical synchronisms in his book, places Dirghatamas in the time of Bali of Ānava dynasty and Duṣyanta of the Pauravas.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-184

Symbolic and Mimetic Fire Altars : A New Approach

Ramkrishna Bhattacharya, Kolkata

The citi (fire alter)-s in the *Śulbasūtras* (*Śus*) can be divided into two groups: symbolic and mimetic. The symbolic *citis* do not resemble the animals or objects they represent (the *caturasra Śyena citi* is a case in point); the mimetic *citis* are just the opposite (the *vakrapakṣa vyastapuccha Śyena* is a case in point). All citis are not rectilinear: some, like the *Rathacakra citis*, are curvilinear, and some other, such as the *Droṇa* and *Kūrma citis*, have both the varieties.

The paper proposes to point out that there are certain discrepancies in the Śulba tradition itself, which suggest information gap between the *Yajurveda* and the *Śus* texts; hence the redactors of and commentators on the latter had to invent some varieties not mentioned in the *Yajurveda* and/ or desist from providing the relevant details of constructing all the *citis*.

*

V-185

Ethics in Upanishads

Dr. Aditya Angiras, Hoshiarpur

Ethics means those moral principles which control or influence a person's behaviour socially or personally. These normative principles had always worked as the guiding force for the betterment of human life because they always tried to elivate the human spirit which is on the way of becoming from being.

Upanishads are the most ancient textual works after ''The Samhitas' which have directly or indirectly influenced the human psyche through its thought content. On the basis of content, the ethics of upanishads can be divided into two parts viz.

1. Ethics governing the society and,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

2. Ethics governing the person's life

In the first case of ethics for human society, Chhandogyopanishad and Ishavasyopanishad are the special ones to be quoted which make the clear and clarion call for all of the people to denounce neggardliness by all means and thereby promote the idea of brotherhood by rejecting the fight over material gains. The Chandogyopanishad categorically rejects the idea of stealing, bribry, prostitution etc when it proclaims ''Steno hiranya ca suram pibamsch....'' (Chhandogyopanishad 5.10-9) Inveriablly these above-mentioned vices are much damaging for the human society when not taken care of. What more, if we take a look at the initial prayer made in the beginning of Kathopanishad, we find the idea of co-existance in all walks of life.

On the contrary, the entire Upanishadic literature emphatically points out the need of ethics for improving personal behaviour e.g. Kathopanishad makes the distinctive call when it says ''Uthisth, Jagrit, Prapya varaanibodht...' meaning thereby emphasizing on the point of self awakening. Even the instance of Yagyavalkya and Maitrayee can be qouted here where Maiterayi asks Rishi Yagyavalkya ''If the whole of the earth filled with wealth is offered to me, Would I be immortal''. Invariably the instance quoted thus denounces the greed. Similarly the instance of Yama and Nachiketa elucidates the querry for the supernatural world. Similarly Ishavasyopanishad denounces the theory of desireless actions when it proclaims ''Evam tvyi nanyathetosti... na karma lipyate nare''. Similarly Brihadarnyakopanishad makes the entire human race aware of the fact that ''The person beocmes good by doing good deeds and similarly a per son becomes bad when he performs the bad deed. Hence it is obivious for a person to perform better action or deed with understanding so that he can become a better person.

In nutshell, the entire upanishadic literature works as a guiding light with the holistic view to the human race in order to make this earth a better place for living by denouncing the vices that are prevelant in the present day society.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-186

Education in The Days of the Vedas : Its application and Relevence

Dr. Joy Krishna Mahanta, Assam

The Vedic education system has extended the scope of socio-economic consciousness to the members of the society and has reminded them to be a responsible member who should always be devoted to works and thoughts that can bring remarkable development to the country. The modern education is continually trying to materialize this vision. But the Vedic Education accomplished it in reality.

The Vedic Education system stressed upon attainment of true education, which according to the records available in the Brahmanas and the Upanisadas, aimed at accomplishment of Jnana and Karma. Without knowledge, the Vedic people considered each and every activity to be utterly futile. Therefore the Vedas prescribe hard work for a student during his stay in the abode of the preceptor (Gurukula), this evidently proved to be the best way for a pupil to prepare himself to encounter the struggle of life as soon as he completed his education. This might have close semblance with the present day career counseling or career orientation courses prescribed by the pioneering agencies of Higher Education of India.

The concept of extension activities in Higher Education originated in those remote days of the Vedas. The famous ''Vidyavivada'' or ''Vidyavicara'' were no other than the seminars or workshops of the present day.

*

V-187

Marriage Hymns in the Saṃhitās : A Brief Study

Prof. Didhiti Biswas, Calcutta

Marriage hymns occupy an important position in the Saṃhitā texts. There is one such hymns in the Rgveda (X.85) and two hymns in the

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Atharvaveda (XIV 1,2). The mantras of these hymns are mainly benedictory in character. At the same time one can have a glimpse of the *gṛhya* ritual of the nuptial ceremony of the society from their different *mantras*. At the same time the magical elements of these three hymns cannot be denied too. The Atharvaveda records more *mantras* than the Ṛgvedic hymns and these *mantras* deal with some expiatory rites. This paper aims at a study of these hymns making a comparison wherever necessary.

*

V-188

The Veda : A Moral Code for Humanity

Dr. Narasingha Ch. Panda, Varanasi

The Veda is the fountain head or repository of all knowledge and wisdom, an outline of the whole universe covering all the matters relating to animate and in- animate. It is so called, because of every matter contained therein, informs of a man of human life called the law of righteousness to understand which there is no other valid means or the proof. The Veda inspires the low giver, as it is called the code of laws. It teaches all kinds of laws to the entire humanity for their prosperity in various fields. Hence, it is called a cod book of all laws.

But, it is specially called a moral code for humanity; because, the moral law, which reminds man of his position in nature, is given in the unparalleled code of universal ethics of the hoary Veda, whose melodious music indelibly impresses it on mind. Its study for a sufficiently long time habituates the mind to it in dealing with the concerns of daily life. Man then does not act like dumb and driven cattle, but goes about as a responsible member of society. The Veda is a big ocean of treasure of moral and spiritual teachings. It teaches ethical values and moral obligation towards gods, seers Brahmins/teachers mother and motherland. The human being should always follow the moral spiritual advises of the Veda for his well being as well as for the true prosperity of the mankind.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-189

Aditi in Vedic Rituals

Dr. Madhu Bala Ghay , Hosiarpur (Pb.)

Aditi is one of the principle female deities that has not only philosophical significance in vedic thought but also she has been invoked and offered oblation in various sacrificial context. When we analize the role of Aditi in vedic rituals, we find that she is governed by her attributes, functions as well as her various names and meanings attched to the concept. In this paper, in various sacrificial contexts, Aditis personality and its functions have been presented.

Aditi plays an important role in different vedic rituals. In the Agnisayama , the placing of the fire in the fire-pan and mixing of the clay is described. When the fire-pan is ready, a griddle is put on it with the verse- - ''You are the griddle of Aditi,'' So it is clear that Aditi is this earth and the griddle is put on the earth (the pan). In the some-sacrifice, the gods could not distinguish The quarters. So they fined upon Aditi to distinguish them. That is why, the opening and the concluding oblations belong to Aditi, for she chose a boon The sacrificer offers to Aditi as she is this earth.

*

V-190

A brief study of Skanda Sawmini,' 'Rkveda Bhasya'

H.Sadanandan Potti, Kerala

This paper aims at the study of 'Rkveda Samhita Bhasya' written by Skanda Swamini found in the palm- leaf Manuscripts at the ORI and Miss Library. There are vast possibilities for both Comparative study and Research work.

The 'Rkveda Bhasya' of Sayanacarya- was written much afterwards the Skanda Sawamini's Bhasy was written. That is Skanda claims antiquity

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

and was written during the 7th century A.D. The author Skanda Sawmini hails from the place called 'Valapattinam in the middle of Kerala state. Skanda Swami Bhasya was published upto the 3rd chapter of Ist Ashtaka . This has been published as 3 books by Travancore Sanskrit Series Publication of the Manuscripts Library of the University of Kerala. These works include the Rkveda interpretation by Venkata Madhava. But the publication is not complete ie the complete works have not been published till date. The palm- leaves also do not contain complete subject matter.

The antiquity of these palm-leaves and the peculiarity of the scripts used are also worthy to be explained. A special schedule containing the list of palm-leaves which include the works on Rkveda has also been include.

In the end, there will be a comparative study on Rudrasukta Bhasya by Skanda Swamini and Sayanacarya.

*

V-191

A Glimpse on Vedic Music

Dr. Sabita Devee, Guwahatti, Assam

The Vedic Aryans were very soft towards poetry. They did not like to recite hymns. Rather they preferred to chant to the gods. The ancient scholars used the word sāman to mean the music. The hymns of the Sāma are sung in a way of melody. The hymns of the Kauthama,the one of the three recensions of Sāma Veda are arranged into Prapāthakas, Ardhaprapāthakas, and Daśatis. But the hymns of the Rāṇāyanias, are arranged into Adhyāyas and Khāṇdas. Again in case of Jaiminiya recension the differnce occurs in the mode of singing. The verses of the purvārcika, one of the two division of Sāma Veda are arranged considering the meters . These verses are arranged in various tunes. Again one single verse is sung as many as five tunes. The sāman is named according to the name of Ṛshi who had seen that particular sāman. Again a name was

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

derived from a phrase of a verse on which the tune was originally developed. Generally a sāman is sung on a triplet or on a Pragātha.

In some of the editions of Sāma Veda there are fifty five verses called Araṇyasmhitā. But this is not recognized as a part of the original Sāma Veda by some scholars. They are Grāmageyagāna, Araṇyageyagāna, Uhagāna and Uhyagāna. The songs sung in the village that is in the village that is in the community are called Grāmageyagānas. The songs of the Araṇyageyagāna are sung in the forest. The aim of the Ūhagāna and Ūhyagāna is same.Because the melodies are adapted to verses for practical use in the sacrifices.

The remarkable characteristics of Sāmagāna are Akṣaravikāra, Visleṣa Vikaraṇa, Abhyāsa, Akṣaralopa, Virāma, and Stobha. Again a Sāman consists of five parts. They are-Prastāva, Udgitha, Pratihāra, Upadrava and Nidāna. A saman is ended with the holy syllable ôOm''. Regarding the scale of a sāman we may say that there are seven notes in a most developed sāman.

In short we may say that sāman music is the source of Indian classical music.

*

V-192

Recreation system in the Aṣṭdhyāyī of Pāṇini

Mrs Bharti Goswami, Guwahati

Sanskrit works from the Vedic age downwards, contains some recreations like music, dancing, swinging, hunting, wresting, jousts, gardening etc. Of these, some appear to have been enjoyed by kings princes while others were popular.

Pāṇini mainly refers to music, dicing, hunting, wrestling, jousts, gardening, etc. as a source of recreation. According to Pāṇini, music comprised nṛtya (dance), gīta (song) vāditra,(instrument music) and sometimes also nāṭya (stage acting). In the days of Pāṇini it is was regarded

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

as an art. Dicing is referred as akṣadyūta in Aṣṭādhyāyī. It was played by akṣas or ṣālākās (5.4.126.). In the days of Pāṇini hunting was known as lubdha-yoga (4.4. 35.). and hunter as mārgika and pākṣika. It was regarded also as a source of livelihood for some people.

❋

V-193

Prthvi in Atharvaveda

Sajana,Thiruvananthpuram

Introduction

The word Pṛthvīoccurs 275 times and Bhumi 135 times in the Atharvaveda. Sometimes the word Pṛthvī occurs as an Bhumi in the sense of wide or broad. Sometimes both the words are used in the same verse in the sense of the Earth. The Pṛthvī often occurs in association with the word yau Bhumi is the best and highest, ''Nirrti is also called as Pṛthvī. Nirrti or destruction is seen on the Earth along with creation.

2''The essential feature of Bhumi is her odour' i.e. 'Gandha' so she is called 'Gandhavti'. The odour is in the human beings. The Atharvan seers present before our mind a detailed picture of the Earth as a deity. Good and bad beings enjoy on the surface of the Earth. Thus we gather some idea about the animals and birds; known to the Athrvan poet.

❋

V-194

The secret of Vaidiki Yajna Vidya

Dr. Kumudini Reader, Delhi University

The Vedic-culture is pre dominantly ritualistic in which the Yajna is given the primary importance. The sacrifice seems as the manifestation in miniature of the whole cosmic process.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत
वसन्तोऽस्यादीज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः। (Ṛgveda x. 1.10.6.)

The Vedic thinkers had realized this process in which the various elements of Nature personified as deities and also the space bodies offer their co-operation In perfect coherence to the centrifugal force of the cosmic sacrifice initiated by the centrally controlling supreme entity designated as Prajapati .

यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकर्मेभिरा-यतः। (Ṛg.V. x.11.2.1)

The Yajna of the Sarvahutaḥ Prajāpati was so powerful that the whole creation of multiple objects is said to have emerged out of it, says Ṛgveda x.90.6,7,8.9.

तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः----अजायत।

*

V-195

The concept of Brahman in Ṛgveda and Early Upaniṣads

Dr. Dharmaraj Adai

Unquestionable is the place of Śrī Śankara among Indian interpreters of Upaniṣadic tradition. By his *Prasthānatrayabhasya* he was capable of bringing the *Brahmasūtras* of Bādarāyaṇa. *Bhagavadgitā* and the Upaniṣads as an mtegrated part of one single school of Indian idealistic thought. Great is its influence that even now we are ill in its hang-over.

Almost all idealistic philosophers respective of ancient of modern have always tried to justify their stand point on the authority of certain before or less stay passage of the vedic texts. Which generally include the *Sannhitas, Brahmaṇas Araṇyakas* and *Upaniṣads*, ignoring the considerable complexities in which those texts are really involved. Due to these efforts common readers are often led to think that the Vedic texts, as a whole, are a body of homogeneous treatise expounding an idealistic out look. Ofcourse, it is a fact that the idealistic outlook in Indian first emerged

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

in certain portions of these texts. Thus some of the upaniṣadic passage did contain much of the potentialities for future speculation on idealistic outlook. But when we analyse the basic texts of vedic tradition, ie. The *Samhitās*, we can understand that the above notion is plaintly a fallacy.

The content of the vedic Samhitās especially of the Ṛgveda, clearly reveals a social condition consisting of pastoral-patriarchal tradition.

*

V-196

Vedic Education Meant for common

Dr. Pranthi Ghosal, Varanasi

Discussion on the Vedic education meant for common people (*ṣūdras* and other lower castes) needs a short survey of their social status so-to-say relationship with other castes. As already known, entire social structure was divided into four classes, viz. *Brāhmaṇa Kṣatriya Vaiśya* and *śūdra*. According to the Creation Hymn of R.V.[4], *śūdras* placement in the social hierarchy is in the lowest rung of leader.

The A.B.[5]has described him as the servant of others to be evicted at will and even, to be slain at will; which indicates Śūdra as a servile class having no right property or even security of life against the sweet will of king or noble class. The Smṛti digests have stepped a further by showing the logic of depriving him from the right to the Vedic studies or to get initiated. They state that creator has created other castes with specific Vedic metres, but he did not employ any metre to create the *śūdras*. Hence, they are not fit for any *saṃskāra* nor study[6]. The *Smṛtikāras* could not remain satisfied with snatching his right to the studies but they restricted Vedic studies to be carried out in the vicinity of *ṣūdras*.[7]

We are to mention here that inspite of all these prohibitions, it cannot be said that India represented a one-sided development and total darkness in the side of *śūdras*. At first we must confess here that there is hardly any explicit mention about the arrangement of *śūdras*' education;

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

but account of education of Vedic period will remain incomplete without refiecting on the position of common people (*śūdra-s*) in this regard. R.K. Mookerji[8] in his work has remarked: ''the literature from which we have to drive our evidence is almost exclusively religious in its character and as such is only concerned with that caste to which society is committed to care and ministrations of its religion.

In that case, we can hardly expected to find much evidence on the subject.'' Still from the stray references (scattered in the Vedic passages) to *śūdra* scholars and teachers, their wonderful literary contribution , participation in the sacrifices, their involvement in different vocation, we can decipher that *śūdras*' prohibition for Vedic studies and teaching was not maintained very hard and fast.

❋

V-197

Educational Psychology, methods of inshuetions and the system of curriculum In the upaniṣads of the yajurveda

Psychology is the science of human behavior. It is related dish mind, body and soul of human beings Educational psychology is a branch of psychology realted with the educational system. The development of educational psychology was started from the time of the Ṛgneda . Ancient Indian teachers applied some psychological principles in the teaching learning process.

The educational system of the upaniṣads succeeded in establishing the relationship between man and man. The Psychology change leads to spiritual change. The control of mind is essential for the civilization of the knowledge (Kashapanisad, 2-1-1) They believed that the innate ideas are the out come of experience of the past lives (Bṛhadāranyaka, 4-4-5) They realized the importance of heridily and envirmonent in education.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-198

Accountability of Teachers in Vedic Period

Dr. Suchitra Mitra, Allahabad University Allahabad

The word 'teacher' itself reveals the Accountability of its own, as a responsible guide, who is able to impart knowledge that is explicable of different branches of studies.

In order to explain Accountability of teachers in vedic period, it is noteworthy to say that the word 'Guru' or teacher was uttered in a very dignified sense. Guru means one who is revered for his greatness (गीर्यते स्तूयते महत्त्वात्) or one who instructs people the sacred vedas (गृणाति उपदिशति वेद शास्त्राणि इति हलयुध कोशः)।

Teacher was designated with utmost reverence आचार्य देवोभव (Taitt Ar. 7/11/2); he was regarded as a guardian of sacred knowledge (ब्रह्माणम् X/125/5; an exhibitor of divine illumination ज्योतिरन्तमृतं प्रजासु (yaj 34/3) as well as medium of highest attainment (ये इत् तद् विदुः ते अमृतत्त्वमान शुः Rg I/165/23) Teacher was accountable for education the pupil to reach the highest goal of life. Teacher himself set up the school and governed it, there was no third person between teacher and taught in the field of education. Under the guidance and control of teacher students built up their mind and body. Some times teacher accepted his student only on some verbal agreements for the whole life. His efficiency in teaching was so remarkable that he admitted a young boy as a mere student and made his proficient in the subject (पण्डित); by giving complete education and training. Discipline and strictness were maintained during the time of instruction.

In vedic period teacher is said to have deep knowledge (सुमेधा Rg 10/64/6) in vedic studies, and had to devote long period to have its mastery. Their fundamental aim was to develop the mental potentialites of his pupil, (देवानां भद्राः सुमतिः अभिनिवर्तताम् Rg 1/89/2). Student was inspired to be attentive and concentrate on his studies (स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदिव्यम् Taitt UP 1/11)

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-199

Vedic tradition of Kerala

Dr. N.K. Sundareswaran

Kerala, the tiny strip of land situated at the southern most tip of the Indian peninsula has been unique in several respects. Geographically, politically and ideologically this land has kept it identity. It is this land which preserved the manuscripts of most of the valuable literary products of ancient and medieval India. Works like ***Arthśāstra, Nātyaśāstra*** and ***Āryabhaṭīya*** have been unearthed from Kerala. ***Ācāryaśaṅkara,*** the great philosophy who established the supremacy of ***Advaita Vedānta*** over all the schools of Indian philosophy was the son of Kerala. And the first-ever elected communist government came to power in this same small state. And this land has been very well-known for communal harmony and religious tolerance.

Vedic tradition is deep-rooted in Indian subcontinent. The Vedic literature and scriptural authority of the vedas has has ubiquitously influenced all the schools of Philosophy and all the branches of classical Indian literature. And vedas were considered as th source of all the knowledge. Thus came the sayings. ***"Vedaḥ prācetasādā- kṣādrāmāyaṇātmanā" "Bhāratam pañcamo Vedaḥ", "Nāṭyavedam tataścakre"*** etc.

Now, when we come to the Vedic tradition, again, we can see that Kerala has got unique particulars. The chanting style of Keralites stands entirely different from all the systems prevailing in other parts of the country. The style prevalent here is more musical than the other styles. While all the other four states of South India, viz Tamil Nadu, Karnataka, Andhra Pradesh and Maharashtra have got a unified style, Kerala style is notably different. And again in the tradition of Vedic sacrifices, Kerala preserves some unique features. Of all the ***Prakṛti*** and ***Vikṛtiyāgas prescribed*** in ***Brāhmaṇas*** and ***Srautasūtras,*** only three are performed here. They are ***Agnyādhāna, Agniṣṭoma*** and ***Atirātra.***

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Usually these peculiarities are attributed to the fact that Kerala's chanting and sacrificed tradition is older and that it has not undergone any change in course of time, which is the case with other parts.

*

V-200

Education System In The Vedic Age : Its Application And Relevence

Dr. Joy Krishna Mahanta, Assam

The education system of the Vedic age, which flourished even more three thousand years back to the present time, was so much developed and practical in its socio economic perspective that a modern mind cannot but ponder with sheer amazement seeing the system based on such a scientific foundation. The pioneering agencies of the Higher Education like the UGC or the NAAC, which in their continual and untiring effort of uplifting higher education from the hackneyed grip of traditionality, advocate radical changes by amalgamatin values with means of earning. But all these modern concepts and innovations can be apprehended to exist proudly in those days of the Vedic period. More amazing is the fact that the ideas like the ''Best Practices'' and the like, with which the pioneering agencies of modern education, like NAAC, wants to bring about a renaissance in Indian Education system, had been present in the Vedic Age in different forms.

Education was open to all the members of the society. But before a pupil obtains his education staying in the house of the preceptor, he must have to observe the initiation ceremony or the investiture with the holy thread. In fact the true education reveals the vast field of knowledge which can be compared to the spiritual rebirth of student. In other words a student was given the opportunity of identifying himself with the knowledge imparted by the preceptor and to establish himself as a new man well acquainted with the ways of the world. This concept of obtaining practical rebirth of a student has been stated in the S.B. as :

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

''Daivyah prajastani mukhato janayate tata etam janayate'' (11-5-4)

So in those days a student had to begin his study performing necessary rites of initiation and had to engage in observing the tough vows of a celibate (Brahmacarin).

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 2

IRANIAN

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IR-1

The Augment

Prof. Dr.) Sharda Chaturvedi, Varanasi

The Augment is attested only in Indo-Iranian, Armenian and Greek; it is found no where else. The absence of the augment from most of the area of Indo-European can hardly be surprising, for even in the languages in which it occurs. It is normal in the Achaemenian inscriptions; it is exceptional in the Avesta. In the ancient Vedic texts it is often missing. In Pali and Prakṛts the augment retains its optional character. In ancient Greek the augment is necessary in all dialects. Only in Homeric Greek language we do not get augment. In Vedic and in the Prakṛts, it is mainly the length of the world that tends to determine the presence and absence of the augment. What is only a tendency in these old texts, is an absolute rule in ancient Armenian: the augment is affixed to all consonant-initial verb forms whcih, would be monosyllables, for example, eber 'he bore'=Greek ∈"ϕ∈ρ∈ [efere] Sanskrit abharat, in contrast to beri 'I bore'; etu 'I gave', in contrast to taukh 'we gave'. Since the monosylabism of such a form as Armenian ber or ac 'he led' is due to the peculiarly Armenian fall of the final vowel. The rule attests the optional character the augment in pre-historic Armenian, i.e., a state of the language comparable with that actually presented by Vedic and Homeric Greek.

The augment is not an essential element of the verb form. The proof is based on the Hellenic principle that, just as the accent cannot regress beyond the pre-verb immediately preceding the verb, so it cannot regress beyond the augment, whence Παρ–∈′–σχον no less than συμ–προ′–∈ς. The augment then, is treated as a pre-verb, i.e. as a word that in Indo-European was wholly autonomous. Indeed, if the augment were really apart of the verb form, it would be a prefix; since there is no other prefix in Indo-European, the augment would thus constitute the only example of prefixing in the entire grammatical system of Indo-European.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IR-2

Indo-Persian Literary Culture & Central Asia Through Iranian Perspective

Prof. S.A. Hasan, JNU New Delhi

When talking of Persian literature the mind invariably turns to the glory and richness of its past. The pomp and grandeur of Persian culture has often been portrayed in the writings of Central Asian intelligentsia; and so, it remains a subject of interesting discussion among the social scientists and men of letters, within and outside this regio. Today, even the biggest enemy of Central Asia too admits to the fact that the jewels of Persian culture has enriched not only its next door neighbours but has also thrown its rays on the people living even in the remotest parts of the world. The sweetness of Persian language and its vast literature has contributed a lot to this campaign over the course of history. Ferdowsi's great epic ''Shahnameh'' (The book of Kings and Heroes), is an important landmark, not only in the renaissance of the Persian language and literature that has remained practically unchanged for thousand years, but also in its expression of national identity. Having undergone for more than three centuries and having assimilated the Muslim faith to make a new culture out of it, the Central Asians saw themselves described in Shahnameh as a people possessed on ancient traditions and yet imbued with fresh vitality and aspirations. Ferdowsi is one of the rare poets who managed to depict vividly the inner soul of the people. His heroes and their struggles for justice stem from the most ancient popular traditions and from all the legends of Central Asian mythology in which any Central Asian can recognise himself.

The demands of rationality and objectivity constitute the very foundation of western outlook. If such an outlook has resulted in great achievements where machinery and the physical world are concerned, we must admit that it has been much less successful in dealing with the human conditions. Human sciences founded on rational objectivity are today suffering setbacks and defeats.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IR-3

Cultural relasionship between Iran and India in ancient era.

Hossein Mohammadi, Pune

India and Iran are such two countries of Asia which are very close to each other. They are not only neighboring countries; their psyche has ever been and is akin to each other even today. These two people belong to the same race. Since the dawn of history to the present age, caravans of people have traversed, by land and sea, mountains, forest and desert and have been incessantly coming and going to and fro bout the countries.

The religion of ancient Iranian (2000 BC) was that of their kinsmen, the Vedic Indians what follows is an attempt to deal in detail with the similarities between the teachings of Avesta and the Vedas; the similarity between the god and goddesses worshiped in ancient Iran and Vedic India. Work of ancient time that find in research of Mohenjodaro and in Indus vally in Harappa in north west of Punjab around 2500. BC a new advanced civilization also existed in this region and around districts through their cultural and economic relations. finding materials in India is similar to works which archeologist group find in Iran Plateau and in Euphrates and Tigris river and prove that residence people of Iran and India have relation with each other before Aryan tribes. Relation between two ancient lands of Iran and India come back to mid forth millennium. from third millennium and with establishment of government in east and west, economical and artistic translation reach to its high and optima level and know as international trading period.

*

IR-4

Soma in the Iranian Epics

Sayyad Hassan Alamdar Moghaddam, Pune

Soma in the *Vedic* literature has a great significance. It is one of the main characters in *Vedic* rituals which it is both ''Plant'' and ''God''.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Obtained extract out of it's Samashed Plant is filtered through wool and poured into Jars containing milk and water and consumed during the religious ceremonies. Yellowness of this liquied is likened to the ray of Sun and it's flowing to down flow of the rain, thereby *Soma* is called the lord and the king of rivers and one who grants fruitfulness.

Soma is considered God with global domain, and among Gods it has the role of spiritual man and grants them strength. It is also the Great Warlike and the spiritual men who drink the *'Soma'* are able to kill the enemies immediately.

Soma in the *Avesta* book is *''Haoma''*. They are quite similar together This name is said *''Homa''* in the Persian and Pahalavi languages. *Homa* in the *Avesta* book is also the name of plant, which it's obtained extract is consumed, in the religious ceremonies. The God of *Homa* is also called by the same name. Heavenly Homa is son of *Ahuramazda* and is a Godlike priest as well, and offers the oblation to the other Gods.

There is the name of *Homa* in *Ferdowsi's shahname* which is one of most important Iranian Epics. *Soma* in this book it hasn't been mentioned as plant or God, but it is mentioned as worshipper from the Family of *Fereydan* who worships in mountain most of time. *Afrasiyab* who was the king of *Turan* land (biggest enemy of Iranian in *Shahname*) is captured with help of *Homa* and then the King of Iran namely ''Keykhosrow'' kills *Afrasiyab*.

This point is very interesting which *Homa* is appeared in *Shahname* as worshipper who worships in mountain; where as it is appeared in the *Vedas* and *Avesta* as plant which grows up in the mountain. He is also shown as strong person as much as he can capture the biggest enemy of Iran. And he is shown in the *Vedas* and *Avesta* as warlike and powerful character and as a strong liquid which is consumed in the religious ceremonies. Therefore, it can be concluded that there is a close similarity between *Soma* in the *Vedic* literature and *Homa* in *Avesta* and *Shahname*. Such study may help understand to two ancient cultures in relation with each other.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 3

CLASSICAL SANSKRIT

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-1

कालिदासकृतिषु दार्शनिकचिन्तायाः प्रतिबिम्बिनम्

डॉ. देबकुमार दास, कोलकाता

भारतीयसाहित्यसाधनायां दार्शनिकज्ञानधाराया विशिष्टमेकं स्थानं वर्तते इति सुविदितमेव सर्वेषां विपश्चितम्। भारतीयदार्शनिकचिन्तायाः प्रभावो व्याकरणशास्त्रेषु स्मृतिग्रन्थेषु इतिहासपुराणादिषु अलंकारशास्त्रेषु साहित्यविद्यासु नितरामालोक्यते। विविधगगामिन्याः संस्कृतसाहित्यधारायाः महाकाव्यविभागे भारतीयदार्शनिकचिन्तायाः प्रतिविम्बनं प्राप्तरूपं परिलक्ष्यते। अश्वघोष-कालिदास-भारवि-माघ-श्रीहर्षप्रमुखानां कविमुखानां काव्यसृष्टौ न्यायादिदर्शनप्रस्थानानां विविधानि तत्वानि विमिश्रितानि प्रतिभान्ति। महाकवयस्तेषां कृतीनां वृत्तान्तवर्णनावसरे क्वचिद् दृष्टान्तरूपेण, क्वचिदुपमारूपेण, क्वचिदुपमानरूपेण क्वचिद् वा वर्णणीयविषयस्यानुषङ्गरूपेण भीरतीयदर्शनानां विविधानि तत्त्वानि उपस्थापयन्तीति आलोक्यते। वाग्देवतारस्यकालिदासस्य कृतिष्वपि सांख्य-योग-मीमांसा वेदान्तादिदर्शनानां तत्त्वानांसमुल्लेखः सर्वेषां विस्मयः विगाहते। दार्शनिकप्रज्ञा-कविप्रतिभयोः संमिश्रणं कालिदासकृतिषु किदृग्वैदुष्यमन्डितं जातमित्यस्माभिः प्रतिपादयितुं प्रयासः क्रियते अस्मिन् निबन्धे॥

❋

CS-2

कालिदाससाहित्येऽधरवर्णनम्

पण्डित सञ्जय कुमार पण्डा, बालेश्वरम्, ओडिशा

सौन्दर्य्यं नाम द्रष्टुः पदार्थविलोकनविचारः। तथापि नारी-सौन्दर्य-वर्णनाप्रसंगे विशेषतः आङ्गिकसौन्दर्य्यस्य विचारः क्रियते। अवलायाः अङ्गेषु ओष्ठस्याप्राध्यान्येऽपि सौन्दर्य्यविचारे तस्यैवाङ्गस्य प्रामुख्येन वर्णनं दृश्यते। संस्कृतसाहित्ये नायिकायाः शारीरिकसौन्दर्य्यवर्णनविधौ अधरस्य वर्णनं अतीव हृदयम्। तथापि महाकवेः कालिदासस्य नाटकनिचये काव्यनिचये च नायिकायाः वर्णनं सर्वानतिशेते। ओष्ठस्य द्विधा विभागे सति अधर एव सर्वदा वर्णनस्य विषयो भवति। कुमारसम्भवस्य प्रथमे सर्ग तपोनिरतायाः पार्वत्याः अधरौष्ठः कमलपत्रमिव मृदुत्वं शीतलत्वं च भजते। प्रावृट्पतनकाले तस्याधरः प्रवेपमानः स्वकीयं मार्दवं व्यनक्ति यथा—

स्थिताःक्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः।
वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेढिरे चिरेण नाभिं प्रथमोदविन्दवः॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तथैव शकुन्तलायाः अधरः किशलय इव रक्तिमः आसीत्। यक्षपत्न्याः अधरोष्ठः पक्वविम्बफलमिव आरक्तः मृदुश्च। इत्थं बहुषु स्थलेषु कालिदासग्रन्थनिचये अधरवर्णनस्य वैशिष्टयं दरीदृश्यते। प्रस्तुते प्रवन्धे तेषांतेषां विषयाणां सविस्तरं चर्चा करिष्यते।

*

CS-3

मेघदूते पर्य्यावरणम्

श्रीमती अमिता दाशः, बालेश्बरम्

संस्कृतकाव्यसाहित्ये पद्यकाव्यस्य विशेषतः महाकाव्यस्य रचनाप्रसङ्गे प्रकृतेः नैकानां विभावानां वर्ण्णनं नितरां चेदिति साहित्यशास्त्रिणां मतम्। तदेव सरणीमनुसृत्य खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारी च इति हेतो : खण्डकाव्ये प्रबन्धकाव्ये गीतिकाव्ये शतककाव्ये च बर्हिप्रकृतेः वर्ण्णनं सर्वान् अतिशेते। प्रकृतेः अभिनव-विन्यासकारस्य कालिदासस्य रचनायामेतादृशी वर्ण्णना प्रतिपदमवलोक्यते। गीतिकाव्यमुर्ध्दन्यस्य मेघदूतस्य सजीवस्य निर्जीवस्य च प्रकृतेः वर्ण्णनप्रसङ्गें पर्य्यावरणं प्रति कालिदासस्य समवेदनं सुतरां प्रतिभाति। यद्यपि कुमारसम्भवे ऋतुसंहारे शाकुन्तले प्रकृतेः वर्ण्णनमेव बहुलतया भवति तथापि मेघदूते पर्य्यावरणस्य आलोचनं यथा कृतं कविवरेण तथा नान्यत्र। मानवजीवने येषां पञ्चमहाभूतानामावश्यकता वर्त्तते तेषु महाभूतत्रयस्य अपः वायुः अन्तरीक्षस्य च विशेषतः उल्लेखःकृतः। पर्य्यावरणं नाम मनुष्यस्य प्रकृतेश्च मध्ये सहावस्थानम् अनुकूलसम्बन्धश्च। एष मेघदूते बाहुल्येन दरीदृश्यते। उदाहरणतया मेघदूतस्य आद्यश्लोक उपस्थापनीयः।

यत्र दण्डनीयोऽपि यक्षः अनुकूले परिवेशे निक्षिप्तः न प्रतिकूले यथाधुना क्रियते, एतेन दण्डितस्य मनोवृत्तेः परिवर्त्तनं भवति। प्रबन्धेऽस्मिन् एतादृशानां विचारधाराणां विमर्शः विधीयते।

*

CS-4

भवानीदत्तप्रणीतं भर्तृहरिनिर्वेदम् : एकमध्ययनम्

डॉ. नरेन्द्रप्रसादः शुक्लः, छत्तिसगढ

जगन्नाथात्मजः भवानीदत्तशर्म्मा अष्टादशशतके भर्तृहरिनिर्वेदनाटकं स्वकीयस्यैव प्रपितामहस्य हरिहरस्य भर्तृहरिनिर्वेदनाटकमनुकृत्य व्यलिखत्। यद्यपि अयञ्च कविः अनुकृत्यैव नाटकरचनां चकार, तथापि स्वकीयां स्वाभाविकीं शैलीं नात्यजत्। लेखेऽस्मिन् अयं विषयः मया प्रस्तूयते यत्

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भर्तृहरिनिवेदनाटकयोः केषु-केषु विषयेषु साम्यमसाम्यमस्तीति। पात्राणां नामसाम्यम्, पात्रचित्रणम्, इतिवृत्तं, घटनाः वर्णनानि इत्यादि विषयेषु साम्यं वर्त्तत एव।

प्रस्तुतनाटकस्य एकमात्रपाण्डुलिपिः अनूपसंग्रहालयस्य स्टॉकरजिष्टरस्य 05 पञ्चग्रन्थक्रमाङ्के सुरक्षितास्ति। प्रकाशनाभावे नाटकमिदमद्यावधि विद्वज्जननयनपथे नागतम्। अस्य प्रतिलिपिकालः विक्रमसंवत् 1908 तदनुसारं 1851 ई. अंकितोस्ति। समाप्तिरपि अस्य भरतवाक्येन सह विहिता। नाटकेस्मिन् अर्थोपक्षेपक-पञ्चसन्धि-कार्यावस्थादीनामपि समुचितं निर्वहणं दरीदृश्यते। नाटकमिदं वसन्तमहोत्सवे नानादेशतः समागतानां काव्यालङ्कारन्यायव्याकरणादि निखिलशास्त्राब्धि-पारङ्गतानां रसिकचूड़ामणिसभासज्जनानां प्रीत्यर्थं परिषदादेशेन अभिनीतमासीत्। शोंधपत्रेस्मिन् नाटकीयकथावस्तुनः नाट्यशास्त्रीयसमीक्षणञ्चापि विधास्यत इति।

*

CS-5

शुकनासोपदेशः - एकविंशशतके अस्य प्रासङ्गिकता

डॉ. पूर्बी घोष, वैस्ट बंगाल

महाकविबाणभट्टविरचितमलोकसामान्यं कथाकाव्यं कादम्बरी नाम। तत्र शुकनासोपदेशाख्यः कथांश अत्रालोच्यते, विचार्य्यते च तस्य प्रासङ्गिकता एकविंशशतकस्य समाजदर्पणे। सिंहासनारेहणात् प्राक् ताड़ापीड़राजस्य पुत्रं चन्द्रापीड़ममात्यः शुकनासः भणति, यद्यपि कुमारः अधीतसर्वशास्त्रः, तथापि यौवनगतचाञ्चल्याद् विषयविषमोहेन च यथा स न गच्छेदुन्मार्गं, तदर्थमयमुपदेशः दीयते।

यौवनमेव यूनां मित्रं यौवनमेवारिः युवाकानामेकविंशशतकेऽपि। अधुना न केवलमर्थवन्तः, अपि तु मध्यमवर्गीयाः निम्नवर्गीयाश्च युवानः शिक्षिता अपि कदातिदचिद्रुततयार्थलाभार्थं विमार्गेनापि धावन्ति। तेषु बहवः चेष्टयन्नपि साफल्यमप्राप्य ड्राग्प्रभृतिभिः व्यसनैरासक्ताः सन्तः अर्थाभावात् स्वगृहादर्थमलंकारादिकञ्च न लज्जन्ते चोरयितुम्। न फलत्येतेषां पानोन्मत्तस्त्रीसम्भोगरतानामन्तरे सदुपदेशः। शुकनासस्योक्तिः, ''कुसुमप्रहारजर्जरिते हि हृदये जलमिव गलत्युपदिष्टम्।'' शिक्षितो वा उच्चवंशजातो वा सकृन्नष्टचरित्रर्न पुनर्भव्यतामायाति। पक्षान्तरे गुरुपदेशः चित्तगतसंशयं निराकृत्य निर्मल हृदयं निर्मलतरं करोति। एकविंशशतके खलु यथास्ति पाददर्शिशिक्षकानां बाहुल्यं, न तथा जीवनमार्गप्रदर्शकानां गुरुणामुपस्थितिः।

धनवतामर्थानुरागवक्रताहंकारनैष्ठुर्यादिदोषाः स्वतःसिद्धाः एव। यथा दुराचारिणः प्राचीनराजानः तथैवाधुनिकाः नीतिहीनाः बहवः राजनीतिकाः स्वस्वपदारोहणमात्रमेव विसर्जयन्ति भव्यतां, विस्मरन्ति

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्राक्निर्वाचनप्रतिज्ञालहरीं, धावन्त्यर्थसिद्धये हि केवलम्। अतः यत्र यत्रैवार्थस्यातिप्लावनं तत्र तत्तास्ति दरिद्रदेशवासीनामर्थस्य दुरुपयोगः। वर्षाणां शतमतिक्रान्तमहो यदा शुकनासेन यथार्थं घोषितं—''यथा यथा चेयं चपला दीप्यते, तथा तथा दीपशिखेव कज्जलमिव कर्म केवलमुद्वमति।'' वित्तवान् भवति शक्तिमान्, शक्तिशाली च वित्तवानिति कुचक्रः दारिद्र्यपीडितं बृहत्तरसमाजमद्यापि पीडयति। प्राचीननृपानामनुचरवत् स्वार्थसिद्धिपराः बान्धवा अद्यापि वित्तवन्तुमुन्मार्गं नेतुं चेष्टन्ते। शुकनासेन यथा कथितम् एभिः कपटबान्धवैः ''द्यूतं विनोद इति, परदाराभिगमनं वैदग्ध्यमिति, मृगया श्रम इति, पानं विलास इति, प्रमत्तता शौर्यमिति, स्वदारपरित्यागोऽव्यसनितेति.....स्वच्छन्दता प्रभुत्वमिति, देवावमाननं महासत्त्वेति, तरलता उत्साह इति, अविशेषज्ञता अपक्षपातित्वम् इति दोषानपि गुणपक्षम् अध्यारोपयद्भिरन्तः स्वयमपि विहसद्भिः प्रतारणाकुशलैः धूर्तैः ..... प्रतार्यमाना वित्तमदमत्तचित्ताः सदैवतमिवातिमानुषमात्मानमुत्प्रेक्षमाणाः ..... सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति अद्यापि उन्मार्गतधनीनां चरित्रगतं किमपि परिवर्तनं न दृश्यते। एते नष्टचरिताः न मानयन्ति मान्यान् ..... कुप्यन्ति हितवादिने सर्वदा प्रतिशब्दकानिवानुचरानभिनन्दन्ति, तत्रैव वर्षन्ति। गणतन्त्रस्य छायायामद्यपि स्वैरतन्त्रः विलासतन्त्रश्च विराजते।

परन्तु शोभनतया राष्ट्रपरिचालनं नानायाससाध्यम्। पारदर्शिना सचिवेन सकलविषयमालोच्य नीतिनिर्धारणं कार्यम्। चन्द्रापीड़ं प्रति शुकनासेन यदुपदिष्टं तदद्यापि स्मरणीयम्—''तथा प्रयतेथाः यथा नोपहस्यसे जनैः। न निन्द्यसे साधुभिः।'' एकविंशशतकस्य युवभिरपि स्मर्त्तव्यं यत् सदा सुपथा, किं वात्मनः जीवने किं वा देशमातृकायाः सेवायां बृहत्तरजीवने। अर्थस्य सदुपयोग एव देशस्य समृद्धिं विदधाति। एवं कृत्वा सर्वे सुखिनः भवन्तु।

अमृतसहोदरा अस्तु लक्ष्मीः

*

CS-6

प्रभावतीपरिणयनाटकम् - एकं समीक्षणं रसविधानं च।

डॉ. रामचन्द्र वी. गड्डे, तीर्थहल्ली (शिमोगा)

काव्येषु नाटकंरम्यमितिवचनात् चारुतया सहृदयान् आवर्जयन् हरिहरकृते प्रभावतीपरिणयाख्यं नाटकं हिमवान्निव रसनिर्झरी। वेद्यान्तरस्पर्शशून्यस्य ब्रह्मानन्दसहोदरस्य परमानन्दस्य रसस्य निष्पत्तिप्रकारः परमकविना भरतमुनिना निर्दिष्टः—विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिरिति। यथा दुग्धम् अम्लसंयोगेन रूपान्तरितं भूत्वा दधीत्युच्यते, तथैव रत्यादिस्थायिभावः परमप्रवीणकविना कयापि विलक्षणया वैदग्ध्यप्रणाल्या काव्यनाट्यसमर्पित विभावानुभावसंचारिसंयोगेन चिदानन्दचमत्कार स्वरूपेण परिणतः सन् रस पदेन व्यवह्रियते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्राचीना विद्वान्सः स्वग्रन्थे निजपरिचयप्रदाने आत्मश्लाघां मन्यन्ते स्म। अतएव तेषां परिचये महान् विवादोद्यत्वेपि समुपलभ्यते। परन्तु सौभाग्यवशात् नेयं स्थितिरेतेषां प्रसङ्गे विद्यते, यतो हि स्वयं ग्रन्थकारः स्वकीये प्रभावतीपरिणयाख्ये नाटके श्लोकत्रयमाध्यमेन स्वकीयं परिचयं प्रददाति। यस्मादयं हृषीकेशशर्मणः पौत्रः, राघवोपाध्यायस्य पुत्रः, रामेश्वरमिश्रस्य दौहित्रः, नीलकण्ठस्याग्रजश्चासीत्। अस्य कवेर्मातुर्नाम लक्ष्मीदेवीति आसीत्।

वस्तुतस्तु संस्कृतसाहित्यजगति प्रभावतीपरिणयाख्यं नाटकमिति प्रथितयशसा महाकविना म.म. हरिहरोपाध्यायेन विरचितं विद्वत्सु सुप्रतिष्ठितम्। न केवलं वस्तुनिर्देशेन चरित्रचित्रेण वा नाटकस्यास्य महत्त्वं विद्यते, अपितु नाटकस्य संलापनिर्माणवैशिष्ट्येनापि महद्गौरवमुपन्यस्तम्। नाटकेस्मिन् चरित्रप्रकाशनाय नाट्यगतिवर्द्धनाय च असाधारणसंलापप्रयोगेन महाकविः हरिहरः प्रसिद्धिं लेभे। तस्य वाक्प्रतिभानिर्माणे खल्वदैर्घ्यवाक्यबन्धस्य गुरुत्वमस्ति। शृङ्गाररसस्तथा करुणरसश्च प्रकाशेन कवेर्नैपुण्यं बहुत्र दृश्यते।

शोधप्रबन्धेस्मिन् हरिहरस्य देशकालादिकं निरूप्य तत्कृतिषु विद्यमानं वैशिष्ट्यं कीदृशमिति निरूपयितुं प्रयत्नः क्रियते। इति दिक्।

*

CS-7

त्रिविक्रमस्य मदालसा

डॉ. निरञ्जन मिश्रः, हरिद्वारः

संस्कृतसाहित्यजगति त्रिविक्रमस्य नाम सुपरिचितमेवास्ति। चम्पूभागीरथीं धरातले प्रवाहयितुमेष एव भगीरथः। अस्य नलचम्पू विश्रुतैवास्ति। श्लेषस्य वैशिष्ट्यमत्र प्रस्तुतमस्ति कविना। अस्यापरा कृतिरस्ति मदालसाचम्पू। (लेखनदृष्ट्या प्रथमा प्रतीयते।)

मार्कण्डेयपुराणस्य कथमादाय विरचितोऽयं चम्पू स्ववैशिष्ट्यमावहति। यद्यपि कतिचन विद्वांसः 'कृतिरियं नास्ति त्रिविक्रमस्य' इत्यपि स्वीकुर्वन्ति। परञ्च 'नैकमताः विद्वांसो भवन्तीति' धिया नास्ति मे केनापि विरोधः। कृतिरियं त्रिविक्रमभट्टस्यानुपमाकृतिरिति न विस्मरणीयं सुधीभिः। अस्य काव्यस्य वर्णनवैशिष्ट्यं विलोक्य समेषां हृदयं स्वयमेवाह्लादितं भवति। यथा गद्ये प्रवाहो विलोक्यते तथैव पद्येऽपि। यद्यपि काव्येऽस्मिन् गद्यापेक्षया पद्यस्य प्राचुर्यमस्ति तथापि चम्पूकाव्यस्य वैशिष्ट्यं वर्तते।

नायिकेयं मदालसा मुग्धा नायिका वर्तते। मुग्धानायिकायाः वर्णनं प्रायः कवीनां कृतिषु प्राप्यते परञ्च मदालसायां यथा मुग्धायाः चित्रणमस्ति तथा नान्यत्रोपलभ्यते इति नातिशयोक्तिः। वर्णनस्य वैशिष्ट्यमसित यदर्थग्रहणे कुत्रापि बाधा न भवति। भाषा सरला प्रवाहमयी चास्ति। श्रवणमात्रेणैव

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चलचित्रवत् प्रस्तुतं भवति तद् दृश्यम् यस्य वर्णनमस्ति। मुग्धायाः एकं चित्रमत्र प्रस्तूयते। यथा—

हस्तस्वस्तिकबन्धनेन कुचयोः सञ्छादयन्ती युगं
संस्पृष्टा डुलिवत्प्रियेण वपुषः सङ्कोचमातन्वती।
मुक्तस्पन्दविलोचनं सकुटिलभ्रूभङ्गमातन्वती
वक्रं कस्य तनोति मुग्धवनिता नानन्दसान्द्रं मनः॥

मानिन्याः कोपशान्त्यर्थं उपायस्य कल्पनाऽपि रमणीया वर्तते। मानिन्याः सखी मानिन्याः नायकं वदति यत्—

कृत्वेमां भुजपञ्जरे कररुहैर्भित्वाऽथ वक्षस्थलं
छित्वा बिम्बफलाधरं च रदनैस्ताम्बूलशेषं मुखे।
दत्वा बालमृणालकोमलवपुः सम्मर्दनैर्म्लानतां
नीत्वास्यास्त्रसदेणशावकदृशः कोपोऽपनेयस्त्वया॥

यद्यप्यत्र बहुविधविषयाः सन्त्यवलोकनीयाः। यथा वसन्तवर्णनम्, जलक्रीडा वर्णनम्, कामदेवपूजनविधिरित्यादयः। समेषां दर्शनार्थं काव्यस्यावलोकनमेवावश्यकमस्ति। अस्मिन् निबन्धे केवलं मुग्धायाः मुग्धात्वनिरूपणे कवेर्वैशिष्ट्यं प्रस्तूयते। विविधकवीनां मुग्धानायिकया सह तुलनापूर्वकं त्रिविक्रमस्य मुग्धानायिकायाः हाव-भाव-विलासादीनां सम्यक्तया निरूपणं प्रस्तूयते येन कवेर्वैशिष्ट्यबोधो भवेत्।

❋

CS-8

चाणक्यगद्यकाव्यनिर्माता कविशेखरः दिव्यसिंहमिश्रः

रूपवन्त पधानः, सुवर्णपुर

आधुनिकसंस्कृतगद्यकाव्यनिर्मातृषु पवित्रप्रख्यात पण्डितवंशजन्मनः दिव्यसिंहमित्रस्य चाणक्यगद्यकाव्यं स्वतन्त्र स्थानं विभर्न्ति। अत्र विषयोपस्थापनं यथा सुस्पष्टं, भाषासंयोजनं तथा सरलं, भावाभव्यञ्जनं तदधिकं मधुरं च प्रतीयते। आधुनिकजनानां समयाभावं विलोक्य कविः सावधानतया स्वकीयं रुचिरं काव्यवस्तु मनोहारिण्या शैल्या समुपस्थापयाति। सर्वथा स्वागतार्हं प्रशंसार्हं च। शिवाजी कुन्तीप्रभृत्यानेकेषां गद्यकाव्यानां रचयिती अयं उत्कलीयः कविपुङ्गवः दिव्यसिहमिश्रः चाणक्यकाव्यमाध्यमेन सर्वेषां दृष्टिपथं यथा समागच्छेत् तदर्थं अयं अभिनवप्रयासं विधीयते। हति दिक्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

❋

CS-9

प्रभावतीपरिणयनाटकम्—एकमध्ययनम्

डॉ. रवीन्द्र अम्बादास मूले, नासिक (महाराष्ट्र)

अस्य प्रभावतीपरिणयस्य समाजशास्त्रधर्मशास्त्रनृतत्त्वशास्त्राणां दृष्ट्या महती विशिष्टता विद्यते। सप्ताङ्केषु विभक्तमिदं नाटकमैतिहासिकं सदपि कवेः मौलिकीं कल्पनां प्रकटयति। विश्वसंस्कृतसाहित्ये नाटकस्यास्य स्थानं सर्वथा स्वतन्त्रं विराजते। कवेः हरिहरोपाध्यायस्य वैचक्षण्यं यथा काव्यानां विरचने विद्यते, ततोधिकं वर्तते तेषां नामकरणे।

म.म. हरिहरोपाध्यायः एकः महान् कविः पण्डितश्च। 17 सप्तदशशताब्दीयोयं कविः वात्सगोत्रोद्भवः वाजसनेयशाखीयः म.म. राघवोपाध्यायस्य पुत्रश्चासीत्। जन्मप्रदेशः मिथिलादेशे वर्तमान मधुबनीजनपदे विट्ठो इति अग्रहारः कर्महा करमहारो वेतिवंशश्च। अनेन विरचिताः ग्रन्थाः भर्तृहरिनिर्वेदनाटकम्, प्रभावतीपरिणयनाटकम् हरिहरसुभाषितम्, मुक्तावलीव्याख्या च विद्यन्ते। तत्र सप्ताङ्कोपेतं शृङ्गाररसप्रधानं प्रभावतीपरिणयमिदं संस्कृतनाटकेषूत्तमग्रन्थेन परिगण्यते। अस्यैव सर्वाङ्गपूर्णमध्ययनमत्र प्रबन्धे मया कृतमिति।

*

CS-10

आचार्योद्भटप्रतिपादितं काव्यदोषविवेचनम्

डॉ. प्रीति सिन्हा, लखनऊ

खण्डत्रये विभक्तेऽस्मिन् शोधपत्रे आदौ तावत् उद्भटीयः काव्यदोषसिद्धान्तः प्रस्तोष्यते। भामहविवरणे परिभाषादृष्ट्या तु काव्यदोषलक्षणं कुत्रापि नैवोल्लिखितम् किन्तु काव्यसमीक्षादृष्ट्या अत्र दोषाणां हेयता, नित्यता, अनित्यता भेदप्रभेदाश्च विस्तृतं विवेचिताः। भामहविवरणानुसारं काव्ये दोषः परित्याज्यः। एकोऽपि दोषः काव्यं तथैव विनाशयति यथा कुपुत्रः वंशं। तस्येदपि कथनमस्ति यत् काव्यदोषस्तु कवये साक्षात् मृत्युरूपः।

शोधपत्रस्य द्वितीयखण्डे उद्भटानुसारं शब्दार्थव्याकरणछन्दोविरोधन्यायादयः विविधाः काव्यदोषाः भेदप्रभेदपूर्वकं विवेचयिष्यन्ते भामहविवरणटीकायामुपलब्धैरुदाहरणैरेतेषां पुष्टिः करिष्यन्ते च।

चरमे च खण्डे शोधपत्रस्यास्य उद्भटीयायाः काव्यदोषमान्यतायाः मूल्याङ्कनं करिष्यते। भामहप्रभावितस्योद्भटस्य विचारोऽयं यत् दोषाकलनन्तु काव्याभिव्यक्तिसन्दर्भे एव कार्यम्। तेनैतदपि स्वीकृतं यन्न कोऽपि दोषः वास्तविकः। कथावस्तुपात्रव्यक्तित्वभावाभिव्यक्त्यपेक्षाभिः स कदाचित्

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गुणोऽपि भवति। सन्दर्भमेनं प्रतिपादयितुं तेन उपमाद्वयमाध्यमेन वैशिष्ट्यद्वयं प्रस्तुतम्। तयोरेकं सन्निवेशंवैशिष्ट्यमपरमाश्रयवैशिष्ट्यञ्च। प्रस्तुवतोपमाद्वयं निगदितं तेन यत् यथा श्वेतपुष्पमालायामेकमपि निबद्धं नीलपलाशपुष्पं सन्निवेशवैशिष्ट्यादेव शोभते उत वा कान्तानेत्रयोः न्यस्तं मलिनमञ्जनमप्याश्रयवैशिष्ट्यादेव सुशोभते तथा परिस्थितिविशेषुषु दोषोऽपि सन्निवेशवैशिष्ट्यादाश्रयवैशिष्ट्याच्च गुणरूपेण सुशोभते। काव्यदोषविवेचनस्य शृङ्खलायामस्यां परवर्तिष्वाचार्येषूद्भटस्य दोषविषयकी अधर्मणतापि प्रतिपादयिष्यते।

*

CS-11

भद्रिकाव्यस्य काव्यसौन्दर्य्यम्

शिप्रा राय, त्रिपुरा

दीपतुल्य प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षुषाम्।
हस्तामर्ष इवान्धानां भवेद् व्याकरणाहते॥ 22/33

भद्रिकाव्यस्य श्लोकमिदं संलक्ष्य कैश्चित् सभालोचकैः भद्रिकाव्यं काव्याकारेण व्याकरणम् इति कथ्यते, विरोधोतया वा कैश्चित् पण्डितैः कथ्यते यत् इदं काव्यं व्याकरणाकारेण काव्यम्। आलंकारिकसम्मतं सर्वविधं काव्यलक्षणं भद्रिकाव्ये स्थितम्, भद्रिकाव्यं व्याकरणशास्त्राकारेण काव्यम् इदं वदितुं न युक्तियुक्तम्। काव्यसौन्दर्य्यः अत्र गृहीतः। प्राचीनटीकाकारैः मद्रि महाकवि इति स्वीक्रियते। तस्य काव्यं च महाकाव्यं इति कथ्यते। मत्कृतप्रबन्धे भद्रिकाव्यस्य काव्यसौन्दर्य्यम् दर्शयितुं मया चेष्टा क्रीयते।

*

CS-12

विश्वशान्तेरुपायाः

डॉ. कृष्ण कुमार झा, दरभंगा

विश्वशान्तेः सद्भावार्थं लोकेषु समाजेषु राष्ट्रेषु च सद्भावोदयस्य समवेदनायाः सहानुभूते परमावश्यकता। सद्भावाद् ऋते न परार्थचिन्तनम् परदुःखानुभूतिः परशोषण विरतिश्च। तथैव पारस्परिकविश्वासस्य चानिवार्यत्वम्। पारस्परिक-विश्वास एव सद्भभावनां प्रेरयति, परार्थसाधनायोदबोधयति, परदुःखा पहारायोत्तेजयति, स्वार्थपरित्यागपूर्वकं परातिवारणाय च मानसम् उद्वेलयति। संकीर्णा राष्ट्रियताऽपि विश्वशान्ते प्रत्यवायरूपेणोपतिष्ठते। तुच्छ-राष्ट्रिय-भावनयैव प्रेरिता देशा हीनबलानि परराष्ट्राण्यात्मसात्

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कर्तुं प्रयतन्ते। साम्प्रतिक्यां स्थितौ न कश्चन हीनतमोऽपि, दुर्भिक्षादि ग्रस्तोऽपि, देशः परतन्त्रतापाशं गले पादयोर्वा बन्द्धुं कामयते। स्वल्पबलाः स्वल्पाश्चापि देशाः पराधीनतापाशं समूलम् उन्मूल्य स्वातन्त्र्य-सुधां लेभिरे।

आवश्यकता वर्तते तर्क-निरोधस्य, विश्वास-संस्थापनस्य च। सर्वविधाऽपि हिंसा अशान्तेर्जननी। हिंसायाः परित्यागेनैव विश्वशान्तिः सम्भवति। निरस्त्रीकरणमपि विश्वशान्तिसंस्थापनार्थम् उपयोगि। सर्वोदय-भावना, ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' इति भावना, परहित निरतत्व-कामना च छद्म-प्रपञ्च-कूटनीत्यादीनां निःसारणपूर्वकं विश्वशान्तिं बद्धमूलां सुदृढां च विधातु प्रभवन्ति।

❋

CS-13

'कालिदास-रचनासु-ब्रह्माण्डविज्ञानम्'

डॉ. अमरेन्द्र ठाकुर, मुजफ्फरपुर (बिहार)

महाकविकालिदासस्य सूक्ष्मातिसूक्ष्म विज्ञानमयी दृष्टिः न केवलं भूतलोपरि अपितु ब्रह्माण्डीय व्यवस्था- नक्षत्र-तारा-ध्रुवतारा-ग्रह-सूर्य-चन्द्र-आकाशगङ्गा-जलद-वायु प्रभृतीनां स्थितिः एवं प्राणिमात्रोपरि तेषां प्रभावोपरि स्पष्टमस्ति। अस्य वर्णनं महाकविद्वारा स्वरचनासु सम्यक् रूपेण कृतमस्ति। महाकवेः सर्वासु रचनासु ब्रह्माण्डीय व्यवस्थायाः वर्णनं दरीदृश्यते इति दर्शयितुम् अस्मिन् निबन्धे मया प्रयासः कृतः यथा—अभिज्ञान शाकुन्तलस्य प्रथमङ्कस्य प्रथमश्लोके एव वर्णितमस्ति—**ये द्वेकालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा मास्थिता व्याप्यविश्वम्।** अभि० 1-1 इमे सूर्यरूपा चन्द्ररूपा च कालं समयम् विधत्तः रचयतः अस्मिन् शोधपत्रे निबन्धे वा ब्रह्माण्डीय व्यवस्थायाः प्रभावः प्राणिजीवनोपरि पारम्परिकी अन्तर्निर्भरता अतीव वैज्ञानिकरूपेण निरूपिता वर्तते। इति।

❋

CS-14

जगदेवकृतं रामगीतगोविन्दम् : एकमध्ययनम्

सुश्री भवानी टी. गाँवकर, कारवाड़, (कर्नाटक)

महाकविजयदेवस्य रामगीतगोविन्दं मह्यमत्यन्तं रोचते। अस्य रसानुभूतिः कमप्यलौकिकम् अद्भुतमनिर्वचनीयम् आनन्दमुत्पादयति। रामगीतगोविन्दस्य गीतिकाव्यत्वं सरसत्वञ्च बलाद्धरति सहृदयानां चेतांसि। हृदयग्राहिण्यः सूक्तयोपि पदे पदे समाकर्षयन्ति पुनः पुनः पठितुं तत्तत्पद्यम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यथा बङ्गदेशे राधाकृष्णप्रेमलीलामोहितः जयदेवः निजाराध्यदेवस्य श्रीकृष्णस्य रासक्रीडादि-विषयवस्तूपजीव्य गीतगोविन्दनामकं गीतिकाव्यं रचयामास, तथैव मिथिलायां करमहावात्स्यवंशे महाकविजयदेवोपि श्रीरामचन्द्रमाश्रित्य रामगीतगोविन्दमिति काव्यं प्रणीतवान्। षट्सर्गात्मकेस्मिन्काव्ये गीतगोविन्दवदेव विभिन्नाः रागाः विद्यन्ते। प्रथमतोऽत्र कविः रामगीतगोविन्दस्य प्रयोजनविषये स्पष्टयति—

यदि रामपदाम्बुजे रतिर्यदि वा काव्यकलासु कौतुकम्।
पठनीयमिदं तदोजसा रुचिरं श्रीजयदेवनिर्मितम्॥ इति।

शोधपत्रेऽस्मिन् संक्षेपेण रामगीतगोविन्दान्तर्गत सूक्तीनां चारुचमत्कारः कवेः परिचयश्च प्रस्तुतोस्ति।

❋

CS-15

संस्कृतमहाकाव्येषु कृष्णोदयम्

विनोद कुमार पाण्डेयः, राँची (झारखण्डम्)

संस्कृतमहाकाव्यस्य सुदीर्घ-परम्परा विद्यते। तस्यां परम्परायाम् आधुनिकयुगेऽपि अनेकानि महाकाव्यानि निर्मितानि प्रकाशितानि च सन्ति। आधुनिक प्रकाशितमहाकाव्येषु कृष्णोदयं महाकाव्यं वैशिष्ट्यं विद्धाति। महाकाव्यमिदं राँची विश्वविद्यालयस्य मारवाड़ी महाविद्यालये प्राक्तनस्याचार्यस्य संस्कृत-विभागध्यक्षस्य डा. रामाशीष पाण्डेयस्य रचना विद्यते, यस्मिन् भगवतः श्रीकृष्णस्य चरितं गुम्फितमस्ति। आधुनिक महाकाव्येऽपि महाकाव्यत्वेन युक्तं महाकाव्यमिदं प्रधानभूतं वीररसोपेतं शृङ्गारादिरसेन समन्वितं सर्वथा आह्लादजनकं विद्यते। पंचदशसर्गेषु विभक्तं महाकाव्यमिदं प्रख्यातस्य राज्ञः कंसस्य प्रतिनायकस्य चित्रणमपि प्रस्तौति। कंसस्योपरि कृष्णस्य विजयः विशेषेणात्र वर्णितः। शोधपत्रेऽस्मिन् सरलसरसभाषायां भावप्रकाशनस्य विलक्षणताऽत्र दृश्यते। रस भावसमन्वितस्य कृष्णोदयस्य वैशिष्ट्यं संक्षेपेण प्रदर्शितं तथा प्रयोजनमस्य विश्लेषितम्।

❋

CS-16

रसकल्पद्रुमे शान्तरसः

डॉ. (श्रीमती) कादम्बिनी दाशः, भुवनेश्वरः

शान्तरसस्य स्वीकारविषये स्थायिभावविषये च मतभेदो दृश्यते। भरतमनुसृत्य उद्भटादयः 'शमं' स्थायित्वेन कल्पयन्ति। रुद्रटः 'सम्यग्ज्ञानम्', आनन्दवर्धनस्यानुगामिनः 'तृष्णाक्षयसुखम्', हेमचन्द्रः

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

'तृष्णाक्षयरूपं शमं', केचित् 'सर्वचित्तवृत्तिप्रशमं', मम्मटश्च 'निर्वेदं' स्थायिरूपेण निर्दिशन्ति। अभिनवभारत्यां 'तत्त्वज्ञानजो निर्वेदः' स्थायीति गृह्यते। अभिनवः अन्ततो गत्वा 'शमः' स्थायिभाव इति मानयति। 'आत्मरतिरेव स्थायीति केचन प्रतिपादयन्ति। विश्वनाथकविराजः 'शमं' स्थायीति स्वीकरोति। पण्डितराजः जगन्नाथः 'विषयविरागाख्यं निर्वेदं' स्थायीति निरूपयति।

अष्टादशशताब्दयाः उत्कलीयालंकारिकः जगन्नाथमिश्रः 'रसकल्पद्रुमे' शान्तस्य लक्षणमित्थं दर्शयति।

शान्तः शमस्थायिभाव उत्तमप्रकृतिर्मतः।
कुन्देन्दुसुन्दरच्छायः श्रीनारायणदेवतः॥ रसकल्पद्रुमे, 10.1.1

शान्तरसस्य विवेकप्रस्तावे जगन्नाथमिश्रः नूतनमालोकं दर्शयति यत्र उत्कलीयवैष्णवदर्शनस्य प्रकाशो जायते। भक्तेः समन्वयः अन्यत्र कुत्रापि न दृश्यते। एतादृशो मत्तरावादः यद्यपि न सर्वमान्यः तथापि उत्कलीय-वैष्णवदर्शनस्य भित्तिभूमौ मतवादस्यास्य किमपि वैलक्षण्यं स्वातन्त्र्यं चास्ति। तत्रापि समीक्षणं विधेयमिति मतं विदुषां पुरस्तादुपस्थाप्यते।

*

CS-17

प्राचीनयुगे गुरुकुल-शिक्षा-पद्धति

भक्तवत्सलः, पटना

प्राचीन भारतीयशिक्षाविज्ञैः ज्ञानविज्ञाननिष्णातैः आचार्यैः शिक्षाया या परिभाषा कृता सा परिपूर्णा, सार्वभौमोन्नतिकरी अखिलसुखप्रदा च। यतो हि मनुष्य जीवनस्य मुख्योद्देश्यम् पुरुषार्थचतुष्टयस्यावाप्तिः। पुरुषार्थचतुष्टये च सर्वं सुखं सर्वमभीष्टम् निहितमस्ति। तेषां प्राचीनानामाचार्याणां मतानुसारं गुरुकुल-शिक्षापद्धतिरेव अखिलसुखप्रदा। प्राचीनकाले अध्ययनार्थं छात्राः गुरुणां समीपे एकान्ते अखिल-भौतिक-सुखं परित्यज्य शिक्षाव्रतं गृहीत्वा गुरुणामाश्रमे निवसन्ति स्म, तत्र च तेषां मुख्योद्देश्यं चरित्रनिर्माणं ब्रह्मचर्यस्यपालनं तथा सांस्कृतिक शिक्षायाः उपार्जनमेवासीत्। वस्तुतः प्राचीनगुरुकुलशिक्षाप्रणाल्याः प्रादुर्भावः अधोलिखित-भावनामेवाङ्गीकृत्याभवत्—"ब्रह्मचर्यं गुरुकुलशिक्षाप्रणाल्याः प्राणभूतं धार्मिकता तस्या शरीरं राष्ट्रीयता च तस्या सौन्दर्यम्।" अतः सा शिक्षाप्रणाली पुरा सफला आसीत्।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-18

माघे नारदस्य महत्त्वम्

गिरिजा देवी, राँची (झारखण्ड)

भागवते वर्णित चतुर्विंशतेरवताराणां मध्ये नारदोऽपि भगवतरेकोऽतारः। कूटनीत्या दुष्टनां दलनं सः कारयति। अवाधगतिर्नारदोऽम्बरा च वसुदेवगृहमागत्यपूर्वजन्मकृत शिशुपालस्यात्याचारं वर्णयन् वर्त्तमाजन्मेन्यपिसस्तदेव दौर्जन्यं तनोति इति श्रीकृष्णाय निवेदयति। प्रस्तुते शोधेनारदकृष्णचोस्तुलनात्मक विवेचनम्।

*

CS-19

माघे राजनीतेः समीक्षा

सुधा देवी, राँची (झारखण्ड)

अवसाने विश्वयुद्धे महाभारते राजसूयाभिधाने राज्ञायुधिष्ठिरेण निमन्त्रितः श्रीकृष्णस्तत्र गन्तं उद्धव बलरामाभ्यां सह राजनीतेर्मन्त्रणामकरोत्।

कविवरेणे माघेन एषां माध्यमेन राजनीतेरपूर्वो विचारः प्रकटीकृतः। शोधेऽस्मिन् बलरामोद्धवयो-र्विचारस्य तुलनात्मक विवेचनं कृतमस्ति।

*

CS-20

माघे मेघे गतं वयम्

सोनमन्ती देवी, राँची (झारखण्ड)

माघकाव्यं शिशुपालवधम्—इति अपरनाधेयं महाकाव्यं पाण्डित्य पूर्णं साहित्यशास्त्रनिर्दिष्ट-नियमानुकूलं शावद सौष्ठव परिपूर्णं विख्यातं विद्यते विदुषां समाजे। "माघे सन्ति त्रयोगुणाः" इति समालोचनानुसारं माघकाव्ये पदलालित्य विषये विशिष्टं चिन्तनं कृतं प्रस्तूयमाने शोधप्रबन्धे। मेघदूतं महाकविकालिदास विरचितममरं गीतिकाव्य शोध पत्रस्य विवेच्योऽपरोविषयः। अत्र पति विरहतप्ताया यक्षपत्न्या मानसिकी विकलता समालोचितास्ति सम्पूर्णो विषयः पूर्णे निबन्धे।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-21

कालिदासस्य मगधप्रेमविवेचनम्

अभय शर्मा, राँची (झारखण्ड)

राज महिषी दिलीपपत्नी सुदक्षिणा मगधदेश प्रसूतासीत्। प्रदेशोऽयं राजनीतेर्गुरु चाणक्यस्य कार्यभूमिः। सुदक्षिणा वर्णम् क्रमे मगध भूभागो बहुशः प्रशसितः कवि कालिदासेन। चन्द्रगुप्ताशोकादि पालितस्यास्य भूभागस्य राजनीतेर्वैशिष्ट्यं भौगोलिकं सौन्दर्यञ्च चर्चितमस्ति—प्रस्तुते शोधे।

❋

CS-22

शाकुन्तले गान्धर्व विवाहस्य समीक्षा

रामावल्लभ शर्मा, राँची (झारखण्ड)

गान्धर्वो विवाहः स्मृति सम्मतः। ब्राह्मो दैवोस्ताथार्षो—इत्यादिना स्मृति वाक्यानुसारं पुरातन कालेऽपि संस्कारोऽयं प्रचलित आसीत्। पाश्चात्येषु देशेषु बहुलब्ध प्रसारः। दोषपूर्णोऽयं संस्कारः सर्वत्र वैमनस्यं हिंसायास्ताण्डवं तनोति। वैवाहिक बन्धनस्य विच्छेदरूपो रोगोऽसाध्यो भवति। अस्यैव विषयस्य विवेचनं कृतं शोधपत्रेऽस्मिन्।

❋

CS-23

कण्वस्यौदार्य समीक्षा

उषादेवी, राँची (झारखण्ड)

शाकुन्तले महर्षिः कण्वः समुदार चेताः करुणा वरुणालयो मुनिनिरूपतः कविना कालिदासेन। मनुस्मृतौ वर्णिताष्टविधवैवाहिक संस्कारेषु गान्धर्वनामा वैवाहिकः संस्कारोऽनुमोदितो मुनिना।

नाटकस्य चतुर्थेऽके पुत्री शकुन्तलाया वियोगे या विकलता वर्णिता सा गृहस्थानां कृते समुचिता नतु निःस्पृहाणां यतीनां कृते। गान्धर्व विवाहायानुमोदिता शकुन्तला स्वच्छन्दतायाः फलञ्चलभते। साम्प्रतिके काले प्रवृतिरियं सुरसायते। अस्याः प्रवृत्तेः सम्यक् विवेचना कृतायशोर्धे।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-24

माघकाव्ये उद्धवनीतेः समीक्षा

उमाकान्त मिश्रः, डालटनगंज (झारखण्ड)

शिशुपाल वधे वर्णितः उद्धवः कृष्णस्य सखा सत्परामर्श दाता मन्त्री च वर्त्तते। भागवतपुराणे दशमस्कन्धे उद्धवस्य कार्यं महत्त्वाधायकम्। राजसूयानुष्ठाने गमनाय प्रेरकः परमर्शदातोद्धवो कविना माघेनापि स्वकाव्ये राजनीतेर्विचारे स्मृतोऽस्ति।

प्रस्तुते शोधप्रबन्धे भागवतीय राजनीतेः शिशुपाल वधे वर्णितोद्धवस्य विचारे च समालोचना कृतास्ति।

*

CS-25

मेघे भूगोलवर्णन समीक्षा

कुंजविहारी शर्मा, राँची (झारखण्ड)

प्रतिभाधनी कविकुलगुरुः कालिदासः पर्यटनशीलः प्रकृति वर्णन प्रसंगेऽलका गमनाय भारत भू भागस्य रामगिरि चित्रकूटतः हिमालय यावत् विभिन्नानां स्थानानां परिचयो दत्तवान्। शोधेऽस्मिन् तेषां स्थानानां वर्त्तमान कालिक नामभिः सह भौगोलिक विवेचनम्।

*

CS-26

माघ काव्ये वर्णित प्रकृति वर्णन समीक्षा

गणेशदत्त मिश्रः, राँची (झारखण्ड)

उपमार्थगाम्भीर्यपद लालित्य प्रयोगे माघोऽद्वितीयः। प्रकृति वर्णनेऽपि पण्डितकविरयं प्रतिभाशाली। रैवतकगिरेर्वर्णन प्रसंगे। कवेः पटुता दृश्यते। कविभिः। प्रस्तूयमाने शोधप्रबन्धे कवि कालिदासमाघयोः प्रकृति वर्णनस्य तुलनात्मकसमीक्षणम् कृतमस्ति।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-27

रघुवंशे गोसेवाया महत्त्वम्

विद्यानन्द मिश्रः, राँची (झारखण्ड)

गोवा सेवायाः महत्त्वं फलञ्च भारतीय संस्कृते वैशिष्ट्यं सदैव ग्राहयम्। कविकुल गुरुणाऽपि काव्योपदेशेनास्य आवश्यकता प्रतिपादिता। सुरभि पुत्री नन्दिनी सेवया दिग्विजयिणं राघु नामानं तनयं लब्धवान् नृपो दिलीपः। साम्प्रतं जना गो सेवातो विमुख्य भवन्ति पाश्चात्य भौतिकसुख प्रमत्ताः। गोमये श्रीनिवोऽस्ति—गवि सर्वे देवा निवसन्ति। अतः कामना क्रियते—गावोमेऽग्रतः सन्तु गवां मध्येवसाम्यहम् इति। प्राचीनकालिक गवां समादस्य वर्तमानकालिक गोदुर्दशायाश्च चिन्तनं कृत शोधे।

❋

CS-28

रघुवंशेगुरोर्महत्त्वम्

सवितादेवी, राँची (झारखण्ड)

इक्ष्वांकुवंशं प्रसूतस्य सन्तानसूख रहितस्य दिलीपस्य मुनिर्वसिष्ठः कुलगुरुः नृप दिलीपः सपत्नीको गुरोराश्रमं गत्वा स्वदुःखं निवेदयति। पुत्रलाभार्थं गुरुणा गोसेवां कर्त्तुं निर्दिष्टो राजा। कार्येऽस्मिन् गोसेवायाः सर्वकालीनं मनोरथप्रदं फलं सर्वजनहिताय कथितमस्ति। गौः संसारादपि भक्तानुद्धारयति सर्वदेवरूपधारिणी इति रहस्यं वर्णितम्।

❋

CS-29

रघुवंशे सन्ततेर्महत्त्वम्

रेणुदेवी, राँची (झारखण्ड)

गृहस्थः सन्ततिमुखं दृष्ट्वा पितृऋणात् विमुक्तो भवति। स्मृतिषु पुराणेषु चामैकमत्यम्। सन्तानार्थं दिलीपो गुरुवाक्येन शास्त्रोक्तायां पदिचायां फालप्रदायां नन्दिनीसेवायां प्रवृत्तः। पितृऋणू भुक्तये जन्मभूमेः प्रतिष्ठायै च ससन्तते नितान्ती आवश्यकता भवति। अत्र शोधे सन्ततेः कुसन्ततेश्च तुलनात्मको विचारो कृतः शमिति।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-30

रघुवंशे नारी प्रतिष्ठायाः समीक्षा

सरस्वतीदेवी, झारखण्ड

सुदक्षिणा सन्तानकामा पत्यादिलीपेन सह गुरु वसिष्ठाश्रमं गच्छति। गोपूजां कृत्वा च सा वनमपि गन्तुम् प्रवृत्ता। वनस्यमयं परतो विलोक्यस्मिन् कार्ये सानुरोधं सानिवारिता पत्यादिलीपेण कार्येऽस्मिन् नारी प्रतिष्ठाया तस्याः सुरक्षायाश्च संकेतो दत्तः कविना महाकाव्ये। पूर्णेशोधेऽयं विषयो पल्लवित स्यादिति।

❋

CS-31

कुमार सम्भवे नारी वर्णन समीक्षा

वंशीधर मिश्रः, राँची (झारखण्ड)

कुमार कार्त्तिकेयं विना तारकासुरस्य वधोऽसम्भव आसीत्। तपो लीनस्य त्रिनेत्रस्य शिवस्य क्रोधानलेन कामोदग्धः। तस्य प्रिया रति विहवला। हृदयद्रावक विलापेनास्या शिव पतितामप्रदं वर ददाति। शोधेऽस्मिन् पार्वती रत्योस्तुलनात्मकवर्णनस्य समीक्षा प्रस्तुतास्ति।

❋

CS-32

रघुवंशे प्रकृतिवर्णन समीक्षा

सन्तोषमिश्रः, राँची (झारखण्ड)

महाकाव्ये रघुवंशे प्रकृतिवर्णनं रुचिरं शिक्षाप्रदम् आकर्षकञ्च विद्यते।

यथावद् वस्तु वर्णनम्—स्वभावोक्तरलंकारस्य प्राणाः। सायंकालीन वन वर्णने यथा—''सपल्वलोत्तीर्ण वराह यूथान्या वासवृक्षोन्मुख वर्हिणानि—'' इत्यादि पद्येषु - वराहा मयूरा शष्पोपविष्टा मृगा दृष्टि गोचरा इव भवन्ति। शाकुन्तल रघुवंशयोः प्रकृतिवर्णनस्य तुलनात्मिका समीक्षा कृतास्ति प्रस्तूयमाने शोधे।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-33

कुमारसम्भवेवर्णितस्य पर्यावरण समीक्षा

जयकुमार पाठकः, राँची (झारखण्ड)

प्रकृति चित्रणपटुतमस्य कविवरस्य कालिदासस्या द्वितीयं प्रकृति वर्णन विश्व विदितमस्ति। परितः आवरणम् पर्यावरणम्। भूमिं परितो जलस्य वायाराकाशस्यावरणं जीवनरक्षकं भवति। एषां दूषणेन मही पीडिता भवति। कुमारसम्भाभिधेये काव्ये शुद्ध प्रकृतेर्वर्णनेन पर्यावरणस्य सुरक्षोपदेशः काव्योपदेशे कृतोऽस्ति। अस्यैवोपदेशस्यावश्यका।

❋

CS-34

मेघेयक्षपत्न्याश्चरित्र समीक्षा

सिद्धिदेवी, राँची (झारखण्ड)

यक्षपत्न्याश्चरित्र चित्रणेन कविकालिदासस्य भारतीय संस्कृतौ विशिष्टादरभावो लक्ष्यते। कालिदासीय काव्येषु सर्वत्र संस्कृतेः समादरो दृश्यते रघुवंशे सुदक्षिणा पत्या सह गोसेवायां सहभागित्वं वहति। पतिवियुक्ता यक्ष भार्यालकायां चिन्ता मग्नाकृशकाया वियोगानलेन ज्वलति।

''मामनुव्रताभव''

इति वैवाहिकी प्रतिज्ञाया ज्वलन्त मुदाहरणस्य विवेचनं भविता शोधप्रबन्धे।

❋

CS-35

भवभूतेर्नाट्य कलायाः समीक्षा

चन्द्रावतीदेवी, राँची (झारखण्ड)

''उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते'' इति समालोचनानुसारं करुण रसस्य प्रवाहो यादृशो भवभूतिणा कपिणा कृता तादृशोऽयं प्रवाहः शाकुन्तले चतुर्थेऽके शकुन्तलाया वियोगे न दृष्टिगोचरो जायते। सीतायाः प्रपन्नप्रसवाया वने निर्वासने ग्रावापिरुदति। भवभूति कालिदासयोः करुणरस विवेचनस्य तुलनात्मको विषयोऽय शोधविषये।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-36

मेघे करुण रसस्य विवेचनम्

वीरेन्द्र पाठकः, गया (बिहारराज्य)

एकोरसः करुण एव निमित्त भेदात्—इत्यादि वाक्येन निमित्त भेदेनान्येषु रसेषु परिणमते।

मेघे वर्णितयक्षविषयक करुणरसोऽयं वाल्मीकिनाकृतरामायणं प्रस्तुतस्य करुणरसाख्याधिक-मनुकरोति। एतयास्तुलनात्मकं समीक्षणं कृतं प्रस्तूय माने शोधप्रबन्धे।

❋

CS-37

रासगोष्ठीरूपकम्-एकम् अध्ययनम्

श्रीमती नलिनी प्रभा दाश, भुवनेश्वर (ओडिशा)

संस्कृतनाट्यजगति उत्कलस्य अवदानं अवर्णनीयम्। उत्कलीय-नाट्यकारैः बहूनि रूपकाणि उपरूपकाणि च विरचितानि। अष्टादशभेदेषु उपरूपकेषु गोष्ठी तृतीयं उपरूपकम्। तद् यथा—'नाटिका त्रोटकं गोष्ठी-----' इत्यादि। गोष्ठी-नाम उपरूपकम् समग्रभारतवर्षे प्रायतः विरलः। परन्तु अस्माकं उत्कलप्रदेशस्य खण्डपल्ली अथवा खण्डपडा नृपतेः नारायण मंगराजस्य राजसभायां अनादि मिश्रः सभाकविः आसीत्। अनादिकविना इदं रासगोष्ठीरूपकम् विरचितम् अष्टादश-शताब्दीमध्यभागे।

जयदेवकवेः गीतगोविन्दं अनुसृत्य प्रायतः इदं रूपकम् रचितम्। अस्मिन् उपरूपके श्रीकृष्ण-राधिकायाः रासवर्णना क्रियते। रासस्य गोष्ठी रासगोष्ठी, तामधिकृत्य कृतं रूपकं रासगोष्ठीरूपकम्। अथवा रासमधिकृत्य गोष्ठीरूपकम् रासगोष्ठीरूपकम्।

❋

CS-38

सामाजिकसमरसतायै संस्कृतम्

अभिनीतकुमारः, मुजफ्फरपुरम्

सामाजिकसमरसतानिमित्तं संस्कृतं बहूपयुक्तमिति ज्ञायते। समाजे एषु दिनेषु जातिंमतपन्थ-लिङ्गादीनामाधारेण नैकविधाः भेदभावाः दृश्यन्ते। भेदभावकारणतः कुत्रचित् वैरस्यमपि दृग्गोचरीभवति

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यत् समाजस्य हिताय नैव तिष्ठति। सर्वविधभेदभावान् निराकर्तुं संस्कृतं क्षमम् इति मे मतिः। संस्कृतेअस्मत्पूर्वजैः उल्लिखितवचनम् जीवने आचर्यते चेत् भेदभावानां कुतोऽवकाशः भवेत्? रामादिवत् वर्तितव्यं न रावणादिवत्, मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्ठवत्, पण्डिताः समदर्शिनः अतिसर्वत्र वर्जयेत्, तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः, अयोग्यः पुरुषो नास्ति इत्यादिव्यवहारवाक्यानि समाजे सामरस्यं स्थापयितुं पर्याप्तानि। अहिंसा परमो धर्मः, सङ्गच्छध्वं संवदध्वम् इत्यादिवैदिकोपदेशाः आमूलं परिवर्तयितुं समर्थाः। समाजं द्रढयितुम् ऐक्यं स्थापयितुं सामरस्यं च निर्मातुं संस्कृतं बहूपयोगि अस्तीति आलेखे विस्तरेण वर्णितम्।

*

CS-39

श्रीगौरकृष्णोदयकाव्यसमीक्षा

श्रीनृसिंहनाथगुरुः, पुरी (ओडिशा)

देवभूमिरूपत्वेन प्रसिद्धमस्माकं भारतवर्षम्। अत्रैव काले काले अनेके महापुरुषाः दिव्यात्मानः आविर्भूय प्रकाशयन्ति ज्ञानलोकेन संपूर्णं जगदिदं प्रेमप्रवाहेण प्लावयन्ति च। कदाचित् स्वयं भगवानपि दुष्टाचारविनाशाय शिष्टचाररक्षणाय विविधं स्वरूपमङ्गीकुर्वन् स्वावतारेण जगदुद्धरति। एतेष्वेव दिव्यप्रकाशेषु अन्यतमः ''श्रीगौराङ्गदेवः श्रीगौरकृष्णः श्रीचैतन्यदेवः श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभुर्वा'' पञ्चदशशताब्द्यां बङ्गप्रदेशे नवद्वीपे अवतीर्य संपूर्णं जगदेव नामसंकीर्त्तनरसेन निमज्जयामास। यथोक्तम्—

स्त्रीपुत्रादिकथां जहुर्विषयिणः शास्त्रप्रवादं बुधा।
योगीन्द्रा विजहुर्मरून्नियमजक्लेशं तपस्तापसाः॥

ज्ञानभ्यासविधिं जहुश्च यतयश्चैतन्यचन्द्रे परा।
माविष्कुर्वति भक्तियोगपदवीं नैवान्य आसीद्रसः॥ इति॥

(चैतन्यचन्द्रामृते)

एतस्य गोराङ्गदेवस्य जीवनचरित्रमाश्रित्य यथा बङ्गभाषायां सन्ति अनेके ग्रन्थास्तथैव संस्कृतेऽपि तदविषयकं साहित्यं प्रचुरतरमुपलभ्यते। तत्र कविकर्णपूरस्य ''श्रीचैतन्यचन्द्रोदय'' नाटकं, ''श्रीकृष्णचैतन्य-चरितामामृतमहाकाव्यं'' च सुप्रसिद्धमेव। अयम् गोविन्दकविः उत्कलप्रदेशे श्रीवक्रेश्वरपण्डितस्य परिवारे जन्म लब्धवान्। असौ अष्टादशसर्गविशिष्टं सालङ्कारं विविधच्छन्दोभिरलङ्कृतं ''श्रीगौरकृष्णोदयः'' इति नामधेयं महाकाव्यं बङ्गलिप्यां 1680 तमे शकाब्दे अश्विनकृष्णद्वितीयातिथौ विरचितवान्। यत्र भगवतः गौराङ्गमहाप्रभोः लीलाविलासः वर्णितः दृश्यते। यथा—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्रीगौराङ्गयतीन्द्रपुङ्गवपदद्वन्दारविन्दोदर।
प्रोन्मीलन्मकरन्दविन्दुनिकरास्वादप्रमत्तलिना॥

गौविन्देन कृते कृतिप्रियकृते श्रीगौरकृष्णोदये।
सर्गोऽयं निरगात् कलावतरणो नामादिमः शन्तमः॥ इति॥

(श्रीगौरकृष्णोदयः प्रथमसर्गः)

*

CS-40

श्रीहर्षप्रभावितः कविसम्राट्

डॉ. सत्यनारायण आचार्यः, पुरी (ओडिशा)

पुण्यभूमौ भारतवर्षे ये केचन कविपण्डिताः स्वजनुषा संस्कृतसाहित्यभाण्डागारस्य श्रीसमृद्धिं साधितवन्तः, तेषु महान् प्रतिभावान् महाकविः श्रीहर्षः विद्वन्मूर्द्धन्यश्चेत्यभिनन्द्यते। अयं महाकविः संस्कृतभाषा-शास्त्रस्य महान् साधकः इति प्रतीयते। संपूर्णेऽपि नैषधीयचरिते तदीयं वैदुष्यं सुव्यक्तम्। महाभारतस्य कथामाश्रित्य रचितेऽस्मिन् महाकाव्ये नलदमयन्त्याः पूतं चरित्रं वर्णितमस्ति। श्रीहर्षस्य एवंभूतकाव्यकौशलेन भारतीयाः कवयोऽपि प्रभाविताः सन्ति।

संस्कृते नलोपख्यानमवलम्ब्य वामनभट्टबाणस्य नलाभ्युदयम्, केरलकवेः वासुदेवस्य नलोदयम्, त्रिविक्रमभट्टस्य नलचम्पूः, कृष्णानन्दस्य सहृदयानन्दादीनि प्रधानकाव्यानि सन्ति। एवं च गुजुराटी-मराठी-हिन्दी-ओडिआसाहित्येषु नलदमयन्तीकथा कविभिः वर्णिता। ओडिआभाषायां नैषधीयचरितस्य पद्यानुवादोऽपि दृश्यते। किन्तु श्रीहर्षपरवर्त्तिनः ओडिआकवयः नैषधीयचरितद्वारा बहुधा प्रभाविताः दृश्यन्ते। तेषु **कविसम्राट् उपेन्द्रभञ्जः** अन्यतमः। भारतीयसाहित्येऽयमेक एव सुप्रसिद्धः कविः, यः कविसम्राट् इति विरुदमवाप। प्रसिद्धरामतारकमन्त्रेण सिद्धिं प्राप्य उत्कलभाषया विपुलं साहित्यं च विरच्य रीतियुगप्रवर्त्तकरूपेण सहृदयसमाजे प्रख्यातोऽस्ति। उत्कलराज्ये घुमुसरराजवंशे कविवरोऽयं जन्मग्रहणमकरोत्। अस्य पितामहः धनञ्जयभञ्जः संस्कृतसाहित्यकलाप्रियः विद्वदभिमानी राजा कविश्चासीत्। उपेन्द्रभञ्जस्य पिता नीलकण्ठोऽपि कविरिति ज्ञायते। अतः बाल्यकालत एव उपेन्द्रभञ्जस्य कविप्रतिभा परामुत्कर्षतां प्राप। एतस्य बहुविधासु रचनासु लावण्यवतीति महाकाव्यं नैषधीयचरितस्य वर्णनाकौशलेन प्रभावितं प्रतिभाति। उपेन्द्रभञ्जः तदीयकाव्यकदम्बे नैषधीयचरितमादर्शरूपेणाङ्गीकरोतीति स्पष्टं वर्णयति कोटीब्रह्माण्डसुन्दरीकाव्ये। यथा—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ए त पराकृत काव्य छान्दप्रान्त सत दृष्ट दृष्टान्तर एथि विशेष त
घेन नैषध पराये उपइन्द्र कहे बुध प्रमोद कराये। इति। (11/31)

लावण्यवत्याः काव्यशैली श्रीहर्षस्य नैषधीयधाराश्रति दृश्यते। तत्र कथावस्तु वर्णनानुसारं सिंहलराजपुत्र्याः लावण्यवत्याः कर्णाटराजपुत्रेण चन्द्रभानुना सह विवाहवार्त्तां नारदमुखतः श्रुत्वा देवाः ईर्ष्यादग्धाः भूत्वा तयोः दम्पत्योः विच्छेदाय अभिशापं ददुः। तदा सुररमणीगणः अनेनाभिशापेन अनौचित्यमनुभूय आह—

नलदमयन्ती प्राये किच्छि दिन भिन्न।
होई पुण भुंजन्तु विपुल भोगमान॥ इति।

दमयन्त्याः विवाहात् प्राक् या विरहावस्था वर्णिता, सा तु लावण्यवत्यां दृश्यते। दमयन्त्याः विरहभावः लावण्यवत्यां कविः तथा वर्णयति, यथा—श्रीहर्षस्य संस्कृतपद्यस्य अनुवाद इव प्रतीयते। यथा—

श्रवणपूरतमालदलाङ्कुर शशिकुरङ्गमुखे सखि! निक्षिप।
किमपि तुन्दिलितः स्थगयत्यमुं सपदि तेन तदुच्छ्वसिमि क्षणम्॥ इति।

(नै० 4/56)

❋

CS-41

पण्डितराजाप्पय्यदीक्षियोर् उपमाविषयकं मतभेदसमीक्षणम्

डॉ. लल्लनप्रसादोपाध्यायः, जालन्धरस्थ

अप्पय्यदीक्षितेन चित्रमीमांसायाम् उपमालंकारस्य प्रौढं परिस्कृतञ्च लक्षणं निगदितम्। तद्यथा—

उपमितिक्रियानिष्पत्तिमत्सादृश्यवर्णनमुपमा।
स्वनिषेधापर्यवसायि सादृश्यवर्णनमुपमा॥

चित्रमी० पृ० 78

एवं दीक्षितमते तादृशवर्णनमुपमालङ्कारो भवितुमर्हति यद् उपमितिक्रियायाः निष्पत्तियुक्तमस्ति। अथवा यस्य उपमाया : वर्णनं पर्यवसाने निषेधात्मकं न स्यात्, तादृशवर्णनमेवोपमालङ्कारो भवति। पण्डितराजेन दीक्षितकृतस्य लक्षणस्यास्य खण्डनं रसगङ्गाधरे कृतम्। एतल्लक्षणघटकस्य 'वर्णनम्'

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इतिपदस्यार्थं विचारयता पण्डितराजेन समीक्ष्यते यद् वर्णनं विलक्षणशब्दात्मकं भवति। उपमालङ्कारस्तु अर्थालङ्कारः। अतः अर्थात्मकतत्वस्य शब्दात्मकं लक्षणम् उचितं नास्ति। अपि च दीक्षितमते तत्सादृश्यवर्णनमदुष्टम् अव्यङ्ग्यविशेषणयुक्तञ्च स्यात्—'अलङ्कारभूतोपमालक्षणं त्वेतदेवादुष्टाव्यङ्ग्यत्वविशेषितम्' (चित्रमी०, पृ० 78)। पण्डितराजमते यद्यत्र वर्णनपदस्य शब्दात्मकं वर्णनमिष्टं, तर्हि तस्याव्यङ्ग्यत्वाद् 'अव्यङ्ग्यत्वविशेषितम्' इति विशेषणस्य वैयर्थत्वं स्वतः सिद्धं भवति। यदि 'वर्णनं' इति पदस्य तात्पर्यमत्र वर्णनविषयीभूतं गृहीत्वा तादृशसादृश्यमुपमेत्युच्यते तदा 'गोसदृशो गवयः' इत्यादावपि उपमालङ्कारापत्तिर्भविष्यति, यतो हि वर्णनविषयीभूतं सादृश्यम् अस्त्येवोदाहरणेऽस्मिन्। दीक्षितकृतलक्षणे 'उपमितिक्रियानिष्पत्तिमत्' इति विशेषणमपि पण्डितराजमते नास्ति युक्तं, यतः उपमितिक्रियानिष्पत्तावपि न तत् तादृश्यवर्णनमुपमा यत् चमत्कारि न स्यात्।

❋

CS-42

शक्तिविमर्शः

अभिषेक पाण्डेय, वाराणसी

शक्ति निरुपण प्रकरणे नागेशेन शक्तिः कः पदार्थः इत्यस्य उत्तरे तार्किकानां मतं दत्तम्। यत् अस्मात् शब्दात् अयमर्थो बोधव्यः इत्याकारा शक्तिरथता इयं पदं इयं अथं बोधयतु इत्याकारा इश्वरेच्छा शक्तिः इति उक्तम्। सैव संकेतः सम्बन्धः अस्मात् शब्दात् अपमर्थो बोधब्यः इति इश्वरेच्छा रुपायाः शक्त्या एततं पदनिष्ठ जनकता निरुपित जनकतावद् बोधीय विषयताश्रयोभिन्नोऽर्थः इति आपाति। अमुमित्यत्र द्वितीयार्थः विषयत्वम्। अदस शब्देन अर्थस्य परामर्शो भवति। इदं पदं इमं अर्थ बोधयतु इत्यस्य इदमर्थ विषयक बोध जन्य जन्यता निरुपित जनकतावत् एतत् पदं भवतु। लाघव वादिनः नैयायिका इश्वरेच्छा रुपायामेव शक्तिः तामेव च सम्बन्धं संकेतं स्वीकुर्वन्ति। यद्यपि शक्तेर्विषयत्व लक्षणः सम्बन्धः पदेऽर्थे बोधे च। तथापि बोध निष्ठ जन्यता निरुपित जनकतावत्वेन शक्तिर्विषयो वाच्यः। यद्यपि प्रथमं संकेतितं वाक्यमेव तथापि अन्वय व्यतिरेकाभ्यां तत् तत् पदे शक्तिग्रहः। परं इच्छाया सम्बन्धिनोः आश्रयता नियामकत्वेन सम्बन्धत्वा सम्भवात् संकेतः सम्बन्धः सम्बन्धोहि सम्बन्धि द्वय भिन्नत्वे सति द्विष्ठत्वेसति आश्रय तथा विशिष्ट बुद्धि नियामकः। इच्छारूपायाः शक्तया स्वीकारे घटवद् भूतलमित्यादौ संयोग रूपः सम्बन्धः सम्बन्धिभ्यां भिन्नौ द्विष्ठो घट निरुपित संयोगाश्रयो भूतलमिति विशिष्ट बुद्धि नियामकश्च।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-43

कालिदासस्य कलादर्शनम्

डॉ. कृपाराम त्रिपाठी, बलरामपुर (उ०प्र०)

शाकुन्तले नाटके शकुन्तलायाश्चित्रस्य निर्माणानन्तरं स दुष्यन्तस्य भूयोनिर्माणमनीषां प्रकाश्य कदाचिदिदमेव प्रतिष्ठापयितुमिच्छति यत् कलाकृतिः काव्यकृतिरिव पूर्णापि भूयोविवर्द्धनं संस्कारञ्च सहते चापेक्षते च। ''कार्या सैकतलीहंसमिथुना स्रोतो वहा मालिनी''त्यादि श्रुत्वा विदूषक एव चकितो भविष्यति न विद्वांसः। परस्वादानेच्छाविरत मनसां सुकवीनां कृते भगवती सरस्वती स्वयमेव नवं वस्तु घटयतीति सहृदयचक्रवतीध्वन्यालाके साधु सिद्धान्तं स्थापयति। एतत्सर्वमालोच्य शोध पत्रेऽस्मिन् कालिदासस्य महाकवेः काव्यकलाविषयिकीं दृष्टि सृष्टिं विदुषां पुरस्तात् प्रस्तोतुमिच्छामहे॥

*

CS-44

संस्कृत साहित्यातील बालपात्रांचे कथविकासात योगदान
(अभिज्ञान शाकुन्तलम्, मृच्छकटिकम् आणि उत्तररामचरितम्)

कु. मृणाली खानोरकर, नागपुर

प्रस्तुत शोध निबंधात संस्कृत नाटकातील महत्वाच्या पण दुर्लक्षित अचया बाल पात्रांवर मी प्रकाश टाकणार आहे कोणनाही नाटककार किंवा कवी कथावस्तूचा विकास करतांना अनेक पात्रांचा, त्यांच्या कार्याचा उपयोग करुन घेतो, याचाच विचार करुन मी प्रस्तुत निबंधामध्ये कथेत्या विकासात या बालपात्रांचा नाटककाराने किती कौशल्याने उपयोग करुन घेतला आहे हे दर्शविणार आहे या बालपात्रांमुडे कथेला कसाप्रकारे कलाटनी मिडाली, ती कलाटनी कथाविकासासाठी आवश्यक होती का? व जर असेल तर त्यामुडे नाटकाच कथेचे कलप्राप्तीत ते सहाय्यभूत ठरेल का?

ते 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' या नाटकामधील दुष्यन्त पुत्र 'सर्वदमन', 'मृच्छकटिकम्' या नाटकामधीत्म 'रोहसेन' आणि 'उत्तररामचरितम्' या नाटकामधील 'लव व कुश' आत्रि 'चन्द्रकेत्' या सर्व बालपात्रांच्या साहाय्याने रंगवलेल्या प्रसंगातून उपरोक्त बाबी साध्य साल्या आहे का? ते मी सांगणार आहे 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' या कालिदासाच्या सात अंकी नाटकातील 'सर्वदमन' हे बाल पात्र!

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-45

कालिदास्य काव्येषु भारत देशस्य वर्णनम्

श्रीमती विजया मानसिंहराव पाटिल, महाराष्ट्र

अस्य हि महाकवेः सप्तप्रबन्धाः प्रसिद्धाः। तत्र ऋतुसंहारे भारतवर्षीय प्रदेशोल्लेखो नास्ति। रघुवंशेमेघदूते च प्राचुर्येण समुपलभ्यते। कुमारसंभवे नाटकेषु च पुनर्विरलतया।

भारतवर्षपरिच्छेदे

अत्र को नाम भारतवर्ष परिच्छेदः? इत्येतत् तावत् विचारयितव्यं भवति। कालिदासेन रघुवंशीयाः केवल भारताधिपतित्वेन नाभिमता। तेन हि दिलीपवर्णने (रघु० 1-30)

स वेलाव प्रवलायां परिरवीस्कृतसागरम्।
अनन्यशासनामुर्वीं शसार्सैकपुरीमिव॥ इति प्रतिपादितम्।

यद्यपि समस्त पृथिवी जम्बूद्वीपोवा सूर्यवंशीय नृपाणां अधिपत्यस्थानीयः प्रदेशः तथापि भारतवर्षरक्षणमेव प्राधान्येन कृतमेतैः।

काव्येषु समुल्लिखित स्थलानि

रघुवंशे चतुर्थसर्गे भारतवर्षसीमापर्यन्तएव रघुदिग्विजयो वर्णितः।

*

CS-46

उपनिषदग्रन्थदृष्ट्या शिक्षायाः स्वरूपम्

ज्ञान रञ्जन गङ्गेश, राँची

उपनिषद्ग्रन्थानुसारेण शिक्षायाः अर्थः—ज्ञानं विद्या वा भवति। सा विद्या द्विधा भवति—परा अपरा च। उभयोः ग्रहणमेव शिक्षा। एतया विद्यया आत्मज्ञानप्राप्तिरेव एतस्य उद्देश्यं—"विद्ययाऽमृतमश्नुते"। अतः एतस्य पाठ्य-चर्यायां परा-अपरा उभयोः सामञ्जस्यं भवति स्म। एतेषां विषयाणां पाठनार्थं स्वाध्यायः, उपदेशः प्रहेलिका, सूत्रं, व्युत्पत्तिः, कथा, दृष्टान्तः इत्यादीनां विधीनां समयानुकूलम्, अवसरानुकूलञ्च प्रयोगो भवति स्म। पठनं-पाठनं विद्यालये न भूत्वा यत्र गुरुः वसति स्म तत्रैव भवति स्म। उपनिषद्काले अनुशासनस्य तात्पर्यमात्मानुशासने भवति स्म। एतस्मिन् कालेऽपि छात्र-अध्यापकाश्च ब्रह्मचर्यस्य पालनं कुर्वन्ति स्म। छात्रः एकः साधकः भूत्वा मनसा, वाचा, कर्मणा विद्याध्ययने संलग्नः

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भवति स्म। आचार्यः ब्रह्मनिष्ठः असाधारणगुणसम्पन्नः वेदस्य ज्ञाता भवति स्म तथा अध्ययनान्तरं समावर्तनसमये दीक्षी ददाति स्म—सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यान्माप्रमदः---इत्यादि।

*

CS-47

व्याकरणं साहित्यं चेति शास्त्रद्वयं स्वतन्त्रमपि अन्योन्य-दृढसम्बन्धसहितम्

गुलाम दस्तगीर अ. बिराजदारः, मुंबई

सरितामिव प्रवाहाः तुच्छाः प्रथमं, यथोत्तरं विपुलाः।
ये शास्त्रसमारंभाः भवन्ति लोकस्य ते वन्द्याः॥

भाषायाः आधारेण एव साहित्यं विकसितं परिणामफलदायकं च अभवत् भवति च इति कथयितुं शक्यते। साहित्यशास्त्र-इतिहासस्य अभ्यासान्ते क्रियाकल्पः, काव्यलक्षणं, काव्यालङ्कारः, साहित्यं चेति चत्वारि नामानि तत्शास्त्रविषये समुपलभ्यन्ते।

शब्दार्थान् समाश्रित्य साहित्यविषये विचारः भवेत्तदा शब्दशक्ति-वृत्त्यादीनां विचारः जातः अस्ति इति दृश्यते। साहित्यं काव्यं वेति अधिकृत्य विविधशब्दैः व्याख्या अपि गुम्फिता वर्तते। तद् यथा—'शब्दार्थयोः यथावत् सहभावः', 'गुणवदलङ्कृतं च वाक्यमेव काव्यम्', 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्', 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि', 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं', 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्', 'चमत्कार विशेषकारित्वं, सुखविशेषकारित्वं वा काव्यम्--' इत्यादयः व्याख्याः सविवरणं प्रतिपादिताः वर्तन्ते इति समालोचने अवतरति। गुण-रस-ध्वनिविषये योग्यायोग्यतां समाश्रित्यं सुसंपन्ना चर्चा अपि लिखितरूपेण अद्यापि प्राप्यते। अत्र कतिपय-काव्यप्रकाराः अपि निर्दिष्टाः वर्तन्ते।

साहित्यशास्त्रं भाषाधारेण एव सुबद्धं जातं विद्यते। भाषायाः प्रारम्भः कदा अभवदिति कालनिर्णयः निश्चतरूपेण कुत्रापि नोपलभ्यते। केचिद् वदन्ति-भाषा ईश्वरदत्ता विद्यते, केचिच्च भाषन्तेभाषा निसर्गदत्ता वर्तते इति भाषारम्भस्य शोधकर्तृणां मत-मतान्तराणि विपुलानि सन्ति।

भाषाः विविधाः वर्तन्ते। एतासु अक्षरयुक्ताः अथवा लिपिबद्धाः भाषाः एव यथायोग्यतया उपयुक्ताः भूत्वा स्थिताः सुसपन्नतां च गताः सन्ति। विशिष्ट-अर्थदायकः शब्दः एकोनकाक्षराणां समूहः एव अस्ति। वाक्यमपि तत्शब्दयुक्तमेव। अत्र विशिष्टार्थबोधकं शब्दसंयोजनं भवति। अनेन विचारप्रकटनं चलति। विचारप्रकटनस्य बोधादिदानस्य च सम्यक् साधनं भाषा एव भवति। एषा भाषा सुयोग्यरीत्या

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गठिता भवतु इत्येव उद्देशेन भाषाशास्त्रस्य अर्थात् व्याकरणशास्त्रस्य निर्मितिः अभवत् इत्यपि कथितं वर्तते।

साहित्यशास्त्रस्थाः सर्वे एव शब्दादयः व्याकरणशास्त्रेण संस्कारिताः भवन्ति। एतेषां च शुद्धाशुद्धता अपि व्याकरणशास्त्रेण निर्धारिता भवति। भाषाशास्त्रेण एव यथार्थतया सुगठित-शब्दादि-प्रयोगाः साहित्यशास्त्रेण स्वीकृताः वर्तन्ते। व्याकरणेन निबद्धाः शब्दादयः एव काव्यबद्धाः भूत्वा साहित्ये तिष्ठन्ति। व्याकरणस्य पुच्छम् इत्यपि कैश्चिद् उक्तम् अस्ति। व्याकरणमेव शब्दादिरूपाणां साधुत्व असाधुत्वं सुनिश्चतं करोति। केवलं विशिष्टसन्दर्भे एव शब्ददीनां सम्यक्-प्रयोग-योग्यता साहित्यशास्त्रस्य आधारेण भवितुम् अर्हति। तथापि व्याकरणदृष्ट्या शुद्धता वा अशुद्धता वा अवलोकिता भवति एव।

अतः एव साहित्यं व्याकरणं चेति शास्त्रद्वयं स्वतन्त्रं भूत्वा अपि अन्योन्य-सम्बन्धः सुदृढः एव इति कथयितुं शक्यते।

*

CS-48

महाकवि कालिदासाच्या साहित्यवाङ्मयातील धर्मशास्त्रीय विवाह विचार

पं. मधुकरशास्त्री आर्वीकर, नागपुर

गृह्यसूत्रे, धर्मसूत्रे आण स्मृति हयांच्या कालापासून विवाहाचे आठ प्रकार असल्याचे सांगितले आहे. हया प्रकारांची नांवे ब्राह्म प्राजापत्य, आर्ष, दैव, गांधर्व, आसुर, राक्षस आणि पैशाच अशी आहेत. काहि ग्रंथांत सहा प्रकारची नांवे दिली आहेत. (आपस्तंब धर्म सूत्र 2.5.11.17/27), वसिष्ठ ध०सू० 1.28/29 आणि कांहि ग्रंथांत (मानव गृह्यसूत्र) फक्त दोनच प्रकार सांगितले आहेत. हया सर्व प्रकारात 'ब्राह्म' हा सर्वात चांगला मानला असून 'पैशाच' हा सर्वात कमी दर्जाचा आणि अत्यंत पापयुक्त असतो. हया निरनिराळया प्रकारच्या विवाहांच्या निरनिराळया ग्रंथकारांनी दिलेल्या व्याख्या सर्वसाधारणरीत्या सारख्या आहेत. बहुतेक धर्मशास्त्रकारांनी मनुस्मृती आधारभूत मानली आहे. मनुस्मृतीत (3.27.34) दिलेल्या व्याख्या थोडक्यांत पुडीलप्रमाणे आहेत. ज्या विवाहांत मुलीला वस्त्रालंकारांनी विभूषित करून तिचे दान तिव्या पित्याने स्वतः होऊन आमंत्रण केलेल्या एखाद्या विद्यासंपन्न व सदाचरणी पुरुषाला दिले जाते त्याला 'ब्राह्म विवाह' म्हणतात. ह्या ठिकाणी 'दान' ह्या शब्दाचा अर्थ 'एखाद्या कुमारिकेचे पालन करण्याचा आणि तिचे नियंत्रण करण्याचा तिव्या पित्याचा अधिकार तिच्या पतीकडे सोपविणे' हा असतो. ज्या विवाहांत एखादा यज्ञ चालत असतांना त्या यज्ञांत ऋत्विजाचे काम करणा-या

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पुरोहिताला एखाद्या मुलीचा पिता वस्त्रालंकारांनी सुशोभित करून तिचे दान देतो त्या विवाहाला 'दैव विवाह' म्हणतात. ज्या विवाहांत शास्त्राज्ञेचे पालन करण्याकरिता गुरांची एक जोडी किंवा दोन जोडया मुलाकडून घेवून मुलीचे दान दिले जाते तो 'आर्षविवाह' होय. ज्या विवाहांत कन्येचा पिता वराचा सत्कार करून आणि तुम्ही दोघे मिळून धार्मिककृत्ये करीत जा असे वर-वधूंना सांगून कन्येचे दान दिले जाते त्याला 'प्राजापत्य विवाह' अथवा 'काय विवाह' (प्रजापतिला 'क' अशी संज्ञा आहे म्हणून) असे म्हणतात. ज्या विवाहांत वराने त्याला शक्य असेल तितके धन वधूच्या नातलगांना आणि त्या वधूला दिल्यानंतर तिचा पिता आपल्या इच्छेप्रमाणे तिचा विवाह करून देतो 'आसुर विवाह' असे म्हणतात. वधू आणि वर हयांचे त्यांच्याय संमतीने विषयसुखाकरिता जेव्हा मीलन होते, त्यावेळी 'त्याला गांधर्व विवाह' म्हणतात. एखादी मुगली रडत किंवा आक्रोश करीत असतांना तिच्या नातलगांचा पराभव करून त्या मुलीला बलात्काराने पळवून नेली जाते, त्या प्रकाराला 'राक्षस विवाह' म्हणतात. जेंव्हा एखादा पुरुष निजलेल्या अथवा गुंगीत असलेल्या अथवा बेशुद्ध असलेल्या मुलीशो चोरून संभोग करतो, त्या प्रकाराला 'पैशाच विवाह' म्हणतात. राक्षण आणि पैशाच असे विवाहात प्रकार प्राचीन ऋषींनी सांगितले असले तरी ते प्रकार ऋषींना संमत होते असे मानू नये. हे दोन प्रकार विवाहाच्या प्रकारांत समाविष्ट करण्यातील त्याजा हेतु स्त्रिया प्राप्त करून घेण्याचे ते मार्ग आहेत, एवढेच सांगण्याचा होता.

महाकवि कालिदासाने विवाहाविषयी धर्मशास्त्राचा सखोल अभ्यास करून त्यांनी स्वतःच्या साहित्यात मुख्यत्वे करून गांधर्व, प्राजापत्य, स्वयंवर पद्धतीच्या विवाहांचे उल्लेख केलेले आहेत.

*

CS-49

कालिदास की आस्थाएं एवं आदर्श

डॉ. गौरी नाथ राय, बिहार

कालिदास आनन्द एवं प्रेम के कवि हैं तथा उनकी आस्थाएं एवं आदर्श तत्कालीन मान्यताओं के अनुरूप हैं। उनकी रचनाओं में जीवन, समाज, धर्म, शिक्षा, राज्यतंत्र, नारीत्व, पुरुषत्व प्रभृति सभी विषयों से सम्बन्धित आदर्शों की अभिव्यक्ति हुई है। कालिदास की प्रथमतः धार्मिक आस्था शैव मतावलम्बी है, किन्तु ब्रह्मा, विष्णु और महेश का भी वर्णन है षड्दर्शन एवं वैदिक और पौराणिक अनेक देवी-देवताओं के प्रति कवि की आस्था है। कालिदास पुरुषार्थ-चतुष्टय को मानते हुए धर्म को अधिक महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार मनुष्य को कार्य का फल भोगना पड़ता है। इस जन्म के दुःख का कारण पूर्व जन्म के पाप हैं। वे भाग्य पर बहुत विश्वास करते हैं। उनके अनुसार सुख और दुःख दोनों चक्रानुक्रम से आते रहते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कवि की आस्था यज्ञ, दान एवं तप में है। वे वृद्धावस्था में त्याग एवं योग से शरीरमुक्ति में विश्वास करते हैं–

'वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनन्ते तनुत्यजाम्'।

सामाजिक जीवन के लिए कालिदास ने वर्णाश्रम व्यवस्था का समर्थन किया है तथा आश्रम धर्म को अधिक महत्त्व दिया है। शिक्षा के प्रति कालिदास की दृष्टि अत्यन्त उदार एवं भेद-भाव रहित है। शिक्षा के लिए वे पूर्व-जन्म की प्रवृत्तियों को भी उत्तरदायी मानते हैं। कालिदास प्रेम सम्बन्ध को बहुत गम्भीरता से लेते हुए जन्म-जन्मान्तर के सम्बन्ध को प्रेम कहते हैं। इनका दाम्पत्य प्रेम भी ऐसा ही है। नारी सौन्दर्य एवं उनके कोमल मनोभावों के निरूपण में कालिदास अद्वितीय हैं। कवि की अमूल्य आस्था राजनीति एवं शासन-तंत्र विषय में भी प्रकट हुई है। वे सप्तांगों तथा राजा की तीन शक्तियों प्रभु शक्ति, मन्त्र शक्ति तथा उत्साह शक्ति में विश्वास दिखलाया है। वे राजा के सन्धि, विग्रह आदि छः गुणों को स्पष्ट करते हैं। उन्होंने उत्कर्ष की कल्पना करते हुए राजनीति को साध्य नहीं, साधना माना है।

❋

CS-50

शान्तोऽपि नवमो रसः

डॉ. उदयनाथ झा 'अशोक', पुरी, उड़ीसा

संस्कृत साहित्य में रस को लेकर बहुत विचार किया गया है, कुछ लोग मुख्यतः चार ही रस मानते हैं– शृंगार, वीर, वीभत्स और रौद्र; तो कुछ आठ रस स्वीकार करते हैं, करुण हास्यादि को लेकर। और कुछ इससे अधिक भी बताते हैं। इनमें एक शान्तरस भी है, जिसको लेकर विद्वान् एकमत नहीं हैं। कुछ आचार्य इसे केवल काव्य में ही स्वीकार करते हैं, तो कुछ नाटक में भी। कुछके मत में यह कोई रस ही नहीं है, तो कुछ के मत में शान्त का काव्य में भी कोई स्थान नहीं है। क्योंकि भूमानन्द प्राप्तिरूप काव्य के प्रयोजन की सिद्धि इससे नहीं होती। अर्थात् सुख, आनन्द, प्रतिक्रिया आदि के अभाव के कारण शान्त का समावेश काव्य में भी सम्भव नहीं है। आचार्य अभिनवगुप्त ने तो शान्त को मूल रस मान लिया है–

स्वं स्वं निमित्तमासाद्य शान्ताद्भावः प्रवर्त्तते।
पुनर्निमित्तापाये च शान्त एवोपलीयते॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

काव्यकौतुककार ने भी शान्त को ही मोक्ष प्रद होने के कारण सभी रसों में सर्वश्रेष्ठ कहा है। आचार्य मम्मट ने भी लिखा है–''निर्वेद स्थायिभावोस्ति शान्तोपि नवमो रसः। विद्वानों के मत में काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मत्सर आदि नाम के जो विकार रूप दोष हैं; उन्हीं का शमन शान्त है। परन्तु कुछ लोग शान्तरस को रस ही नहीं मानते। मानने वाले भी स्थायिभाव को लेकर एकमत नहीं रखते। कुछ निर्वेद को तो कुछ शम को तो कोई उत्साह को इसका स्थायिभाव कहते हैं। नाट्यशास्त्रकार ने तो इसी निर्वेद को प्रथम व्यभिचारी भाव भी परिगणित किया है तथा निर्वेद लक्षण में पण्डितराज जगन्नाथ लिखते भी हैं–''नित्यानित्यवस्तुविचारजन्मा विषयविरागाख्यो निर्वेदः''।

शान्तरस का आलम्बन संसार की असारता क्षणभंगुरता है, जबकि ऋषि आदि के पवित्र आश्रम, पवित्र तीर्थ, सत्संग, श्मशान आदि इसके उद्दीपन विभाव होते हैं। त्याग की तत्परता, अश्रु, पश्चात्ताप, ग्लानि आदि जहाँ इसके अनुभाव हैं; वहीं धृति, स्मृति, मति दैन्य, असूया, हर्ष आदि इसके संचारी भाव किंवा व्यभिचारीभाव कहलाते हैं।

नाटक में शान्तरस की सत्ता होनी चाहिए अथवा नहीं इस सम्बन्ध में अधिकांश आचार्य जहाँ मौन हैं; वहीं धनञ्जय, शारदातनय, भानुदत्त सरीखे काव्यशास्त्री इसका विरोध करते हैं। आचार्य मम्मट ने जहाँ ''निर्वेदस्थायिभावोस्ति शान्तोपि नवमोरसः 'कहकर इसकी सत्ता की और इशारा किया है, वहीं रत्नकोशकारने तो स्पष्ट ही इसका अस्तित्व नाटक में भी मान लिया है–

शृंगारवीरवीभत्स रौद्रहास्यभयानकाः।
करुणाद्भुतशान्ताश्च नवनाट्ये रसाःस्मृताः''॥

❋

CS-51

काव्य सत्य-व्यापक सिद्धान्त पर नवीन दृष्टि

डॉ. लक्ष्मी शर्मा, जयपुर

संस्कृत वाङ्मयरूपा पवित्र भागीरथी की धारा वेद से आविर्भूत होकर अद्यावधि अजस्र प्रवाहमयी है, जिसने कदाचित मन्दगति से और कभी तीव्र वेग से प्रवाहित होकर मानव मात्र के लिए कल्याणकारी के रूप में विश्व वाङ्मय पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया है। आचार्य भरत से प्रारम्भ होकर पण्डित राज जगन्नाथ पर्यन्त यह काव्यशास्त्रीय

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

परम्परा पल्लवित और पुष्पित होती हुई सहृदय-हृदय के लिए आनन्दरसानुभूतिकारिणी रही है। यद्यपि परवर्ती काल में काव्यशास्त्र की गति कुछ मन्द अवश्य पड़ गई, परन्तु पूर्णतः अवरुद्ध तो न कभी हुई और न ही होगी।

काव्यशास्त्र चिन्तन परम्परा के अवान्तरकालीन विद्वानों में भी अनेक गणमान्य विद्वान हुए हैं, जिनमें जयपुर वास्तव्य पं. ब्रह्मानन्द शर्मा का नाम अत्यन्त समान एवं नूतन दृष्टि के चिन्तक के रूप में लिया जाता है, डॉ. शर्मा ने काव्यशास्त्र के सिद्धान्त पक्ष पर गहन चिन्तन किया है। विभिन्न बिन्दुओं पर गहन-गम्भीर चिन्तन करते हुए काव्य लक्षण प्रसंग में 'काव्य-सत्य' को व्यापक रूप से प्रस्तुत किया है, जिसमें चेतना की 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' रूप से विषयत्रयी को ग्रहण करके काव्य सत्य को प्रमुख तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। डॉ. शर्मा ने अपनी अभिनव-रस-मीमांसा में इसी काव्य-सत्य को जीवनाश्रित एवं लोकाश्रित के रूप में विभाजन करते हुए कविदृष्टया तथा सहृयदृष्टया सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूपेण काव्य के प्रमुख तत्त्व के रूप में प्रस्तुत किया है। विषय अत्यन्त ग्रहन एवं शास्त्रज्ञ विद्वानों द्वारा विस्तृत चर्चा की अपेक्षा रखता है। परन्तु सम्मेलन-सत्र में अत्यन्त संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया जाना प्रस्तावित है।

*

CS-52

काव्यशास्त्रीय परम्परा में जैनाचार्य हेमचन्द्र के देयांश

डॉ. आरती मिश्रा, बाराबंकी

बारहवीं शताब्दी के जैन आचार्य हेमचन्द्र ने काव्यशास्त्रीय लक्षणग्रन्थ काव्यानुशासन की रचना की है। इस काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ में आचार्य हेमचन्द्र ने काव्यशास्त्रीय विषयों के साथ-साथ नाट्य विषयों का भी समावेश किया है। आचार्य के रूप में प्रधान अध्येतव्य होने के कारण इस लेख में सर्वप्रथम हेमचन्द्र के जीवन का सङ्क्षिप्त परिचय दिया गया है। उनके गुरु का नाम था–आचार्य देवचन्द्र। आचार्य हेमचन्द्र के कृतियों की प्रमाणिक सङ्ख्या 9 है। बहुमुखी प्रतिभावान् आचार्य हेमचन्द्र ने अनेक विषयों (व्याकरण, छन्द, दर्शन, कोश, काव्य, काव्यशास्त्र आदि) पर रचना की हैं। आचार्य हेमचन्द्र कृत 'काव्यानुशासन' संस्कृत साहित्य का प्रौढ़ ग्रन्थ है। 'काव्यानुशासन' 8 अध्यायों में विभक्त है। इसके तीन अंश हैं–सूत्र, वृत्ति, विवृत्ति। आचार्य हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन की वृत्ति और विवृत्ति को भी स्वयं लिखा है। इन्होंने वृत्ति को 'अलङ्कार चूड़ामणि तथा 'विवृत्ति' को 'विवेक' संज्ञा दी है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

काव्यशास्त्रीय परम्परा में हेमचन्द्र के देयांश के सन्दर्भ में सर्वप्रथम काव्य प्रयोजन में आचार्य मम्मट ने छः काव्य प्रयोजनों के स्थान पर हेमचन्द्र ने तीन काव्य प्रयोजन आनन्द, यश तथा कान्तासम्मित उपदेश को स्वीकार किया है' तथा अन्य तीन प्रयोजनों का खडन किया है। काव्य हेतु के सन्दर्भ में हेमचन्द्र ने प्रतिभा को अत्यन्त असन्दिग्ध रूप से प्रस्तुत किया है उनके अनुसार काव्य का प्रमुख कारण प्रतिभा है 'प्रतिभा हेतु'। व्युत्पत्ति और अभ्यास प्रतिभा के संस्कारक हैं। इस दृष्टि से उनके अनुसार प्रतिभा के अभाव में व्युत्पत्ति और अभ्यास भी विफल हो जाते हैं।

काव्य भेदों के सन्दर्भ में हेमचन्द्र ने काव्य भेदों का वर्गीकरण दो आधारों पर किया है। प्रथम आधार-व्यङ्यार्थ। द्वितीय आधार है–प्रबन्धात्मकता। इस सन्दर्भ में उनके विचार लेख में देयांश के रूप में गृहीत किए गए हैं। इसके अतिरिक्त दोष विवेचन, अलङ्कार विवेचन, ध्वनि विवेचन आदि सन्दर्भों में उनके देयांशों को प्रस्तुत किया गया है।

*

CS-53

समाज निर्माण में संस्कृत की उपयोगिता

डॉ. अरुण दयाल, लखनऊ

भारतीय संस्कृति का मूल आधार संस्कृत है। हमारे समाज के निर्माण में संस्कृत का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संस्कृत वरदानस्वरूप है। समाज में प्रायः सभी मङ्गलकार्य यथा-विवाह, यज्ञ, अनुष्ठान इत्यादि संस्कृत के मन्त्रों द्वारा ही सञ्चालित होते हैं।

आज हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में भारत के सभी प्रान्त स्वीकार नहीं करते हैं जबकि संस्कृत के नाम पर कहीं विरोध नहीं है। क्योंकि उनकी क्षेत्रीय भाषा के लगभग 60 प्रतिशत शब्द संस्कृत से लिए गए हैं, किन्तु पाश्चात्य संस्कृति के अनुकरण और व्यावसायिक शिक्षा की दौड़ में संस्कृत को मात्र एक भाषा के रूप में सीमित कर इसके साथ राजनीतिज्ञों ने अन्याय किया है जबकि संस्कृत भाषा एक विषय के रूप में सभी विषयों की सहयोगी बन सकती है क्योंकि संस्कृत भाषा के अन्तर्गत विज्ञान, आयुर्वेद, व्यवसाय, चिकित्सा, नैतिकविचार, व्यावहारिकज्ञान, धार्मिकज्ञान इत्यादि सभी विषयों का ज्ञान उपलब्ध है। यह कम्प्यूटर के लिए सर्वाधिक उपयुक्त भाषा मानी गई है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संस्कृत साहित्य की यह अनोखी विशेषता है कि वह मानवमात्र के लिए कल्याण की भावना को अग्रसर करता है। संकीर्ण स्वार्थ को ही मानवजीवन का चरम पुरुषार्थ मानने वाले पाश्चात्य देशों के साहित्य में जो एकांगिता विद्यमान है, वह संस्कृत साहित्य को स्पर्ष नहीं करती।

संस्कृत साहित्य सर्वाङ्गीण है। मानव-जीवन के चार पुरुषार्थ हैं–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। संस्कृत साहित्य में इन चारों पुरुषार्थों का विवेचन बड़े विस्तार के साथ किया गया है। संस्कृत को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता देने पर यह देश पुनः जगद्गुरु के पद पर प्रतिष्ठित हो सकता है।

*

CS-54

'पंचलिङ्गीप्रकरणम्' का वैशिष्ट्य

डॉ. हेमलता बोलिया, उदयपुर

वैज्ञानिकों ने नित-नूतन आविष्कार कर मानव-जीवन को अत्यन्त सुख-समृद्धि से समृद्ध ही नहीं किया है अपितु उसे भोगी और विलासी बना दिया है और उसकी इच्छाओं को अनन्त आकाश प्रदान किया है। फलतः आज सब सुख-साधन के होते हुए भी व्यक्ति के जीवन में अशान्ति का साम्राज्य आ गया है और शान्ति के चाह में हर कोई भटक रहा है, ऐसे में खतरगच्छ के आदि आचार्य श्रीमज्जिनेश्वरसूरि (विक्रमी ग्यारहवीं शती) प्रणीत 'पंचलिङ्गीप्रकरणम्' हमारे सम्मुख शान्ति प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में 101 (एक सौ एक) गाथाएँ हैं, जिनमें आचार्य श्री ने सम्यक्त्व की आवश्यकता, महत्त्व, स्वरूप के साथ-साथ उसकी प्राप्ति के साधनभूत पंचलिङ्गों (साधनों)–1. उपशम 2. संवेग, 3. निर्वेद, 4. अनुकम्पा और 5. आस्तिक्य का संक्षिप्त एवं सारगर्भित विवेचन किया है। इसमें उपर्युक्त 5 लिंगों के पृथक्-पृथक् 5 प्रकरण हैं। इनकी प्रतिपादन की शैली जहां सूक्ष्म है वहीं ये तत्त्व की व्याख्या लोक प्रचलित दृष्टान्त के माध्यम से करते हैं जिसके कारण गूढ़ से गूढ़ विषय जन-सामान्य को सहज बोधगम्य हो जाता है। यह जैन मतावलम्बियों का धार्मिक ग्रन्थ होने के साथ-साथ एक दार्शनिक ग्रन्थ भी है। ग्रन्थकार ने आस्तिक्यलिंग विवेचन प्रसंग में चार्वाक, बौद्ध, सांख्य, न्याय आदि मतों को पूर्वपक्ष में रखकर स्वमत का संयुक्ति प्रतिपादन किया है। जिस पर श्रीजिनपतिसूरि ने संस्कृत में विस्तृत बृहद्वृत्ति लिखी है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्षेमेन्द्र रचित चारुचर्या-एक नीतिकाव्य

डॉ. मधु बालासिन्हा, मुजफ्फरपुर

कश्मीर के महाकवि क्षेमेन्द्र (1000 ई. 1070 ई.) ने प्रायः चालीस ग्रन्थों की रचना की थी जिनमें अभी अठारह उपलब्ध हैं। इनमें महाकाव्य, 'व्यंग्यकाव्य शृंग्रारकाव्य तथा नीतिकाव्य भी हैं। नीतिकाव्य के रूप में इनकी चारुचर्या अनुष्टुप् छन्द के एक सौ पद्यों में रचित एक शतक काव्य है जो मानव को जीवन-दर्शन या सदाचार की शिक्षा देती है। इसकी विशिष्टता यह है कि पूर्वार्द्ध जहाँ नैतिक शिक्षा का उपक्रम करता है वहीं उतरार्द्ध में उसका समर्थन दृष्टान्त भी प्रस्तुत है जो रामायण, महाभारत, पुराण या इतिहास की कथाओं से जुड़ा है। यह काव्य क्षेमेन्द्र की बहुमुखी प्रतिभा तथा व्यापक अनुभव का अभूतपूर्व निदर्शन है। मानव के धार्मिक जीवनमूल्य सम्बन्धी तथा दोषों के निराकण से युक्त मार्ग का प्रदर्शन इस लघुकाव्य में किया गया है। प्रस्तुत निबन्ध चारुचर्या के महत्वपूर्ण योगदान पर प्रकाश डालते हुए इस काव्य में क्षेमेन्द्र को नीतिप्रवणता तथा साहित्यिक उत्कर्ष का मूल्यांकन करता है।

*

CS-55

भारतीय परम्पराओं के पोषक कालिदास

पं. राम नरेश राय, बेगुसराय

महाकवि कालिदास ने अपने काव्यों में प्राचीन भारतीय परम्पराओं का दृढ़ता से पोषण एवं समर्थन किया है। वे स्वस्थ सामाजिक परम्परा के रूप में वर्णव्यवस्था एवं आश्रम व्यवस्था का विशद निरूपण अपनी कृतियों में किए हैं। उन्होंने सामाजिक जीवन को सुचारू रूप से संचालित करने हेतु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णों के कार्यों से एवं परस्पर मेल भाव से राष्ट्र सेवा की कामना प्रकट की है। आश्रम व्यवस्था का अधिक समर्थन करते हुए महाकवि ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम के द्वारा लौकिक जीवन के साथ-साथ पारलौकिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति का समर्थन किए हैं। कालिदास शिक्षा की गुरुकुल प्रणाली युक्त प्राचीन परम्परा का आदर पूर्वक चित्रण किए हैं।

विविध संस्कारों के द्वारा सुसंस्कृत होने की परम्परा का कवि ने सादर पोषण किया है। इनमें लोकप्रिय विवाह संस्कार का वर्णन महाकवि ने सदाशयता से किया है जिसमें

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भारतीय परम्परा का अनुपालन मनोहारी है और ऐसी परम्परा आज भी दृष्टिगोचर होती है। शिव-पार्वती का विवाह, उसमें सौभाग्यवती पतिव्रताओं की भूमिका, वर, चयन का कन्या का अधिकार एवं उसमें पिता की सहमति आदि में कवि भारतीय परम्पराओं को ही चित्रित किए हैं। ऋण-त्रय से मुक्ति की परम्परा का महाकवि ने अपने काव्य में समर्थन किया है तथा ऋषि ऋण, देव ऋण तथा पितृ ऋण से उऋण होना आवश्यक माना है। भारतीय परम्पराओं में दान, यज्ञ तथा तप आदि का विशेष महत्त्व है। इनमें विद्यादान, अन्नदान, भूमिदान, गौदान, अभयदान, कन्यादान आदि अनेक रूपों में महाकवि द्वारा दान का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। यज्ञ के द्वारा सुख स्मृद्धि होने की मान्यता कवि ने अपने काव्य में प्रकट की है।

*

CS-56

प्राचीन भारतीय आर्थिक विचारों का इतिहास (कौटिल्य के विशेष संदर्भ में)

डॉ. कुन्ती देवी, जम्मू

प्राचीन भारतीय समाज में आर्थिक विचारों में मनु का प्रथम स्थान माना जाता है। मनु ने अराजक स्थिति से बचाने के लिए आर्थिक व्यवस्था में राजा की महत्त्वपूर्ण भूमिका मानी है। भारतीय दृष्टि में मनु को सृष्टि के प्रारम्भ में माना जाता है, किन्तु दासता के कारण और भारत के वैभव को देखकर पाश्चात्य इतिहास लेखकों ने मनु का काल निर्णय ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी माना है, जो सर्वथा असत्य है। मनन शील होने से मनु को मानव का पिता माना जाता है। मनु के मानव जीवन में अर्थ के महत्त्व उस युग में जिसके पास पशु, कृषि और कृषि से उत्पादित वस्तु होती थी वही अर्थवान माना जाता था, जीवन-यापन करने और जगत् के व्यवहार चलानेके लिए अर्थ का अधिक महत्त्व था। अर्थ प्राप्ति का उद्योग ही मुख्य साधन था। मनु ने अपनी मनुस्मृति में अजीविका पर इस प्रकार अपने विचार व्यक्त किए हैं–वाणिज्य को झूठ-सच बोलने के कारण सत्यानृत कहा गया है। सेवावृत्ति को श्वानवृत्ति कहा गया है।

मनु के पश्चात् शुक्राचार्य ने शुक्रनीति में अपने आर्थिक विचारों को बड़ी ही कुशलता से व्यक्त किया है। शुक्र ने मानव जीवन में सभी दृष्टियों से अर्थ को आवश्यक ध न माना है। सही मार्ग में उपार्जित अर्थ मानव के सुख और अभ्युदय का मार्ग दिखाता

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

है। न्याय के पक्ष से विचलित होने से सब कुछ शीघ्रनष्ट हो जाता है, अतः जीवन में अर्थ की परमावश्यकताहोती है, किन्तु अर्थोपार्जन विवेक से कार्य लेना चाहिए।

संसार की सभी वस्तुओं की प्राप्ति का मूल अर्थ को ही माना जाता है, क्योंकि अर्थहीन व्यक्ति को सभी व्यर्थ समझकर अवहेलना करते हैं। निर्धन व्यक्ति गुणवान होने पर भी स्त्री, पुत्र द्वारा त्याग दिया जाता है कि मनुष्य अर्थ का दास है और अर्थ किसी का दास नहीं। अतः अर्थ को प्राप्त करने का सदा यत्न करना चाहिए। प्राचीन आर्थिक विचारों में कौटिल्य का विचार अधिक महत्त्वपूर्ण है।

*

CS-57

''भीष्म चरितम्'' महाकाव्य में 'देवव्रत भीष्म'

डॉ. पूर्णिमा आचार्य, वाराणसी

महाभारत की कथा को उपजीव्य बनाकर 'प्रो. हरिनारायण दीक्षित' ने 'भीष्म चरितम्' महाकाव्य का सृजन किया है। यह महाकाव्य बीस सर्गों में निबद्ध है। इसके नायक देवव्रत 'भीष्म' हैं। इसके बीस सर्गों में नायक भीष्म की धीरोदात्तता, विनयशीलता, गुरुभक्ति, त्यागशीलता, दृढ़-प्रतिज्ञ आदि गुणों का अत्युत्तम चित्रण प्रस्तुत किया गया है। पितृभक्त देवव्रत अपने उत्कर्ष का कारण पिता का पुण्यबल मानते हैं–

'यतः पितुः पुण्यबलं बिना सुतः श्रम विधायपि न वर्धते क्वचित।'

तथा पुत्र का कर्त्तव्य जन्मदाता माता-पिता के सुख की रक्षा करना है–

संसारेऽस्मिन् निजतनुसुखापेक्षया जन्मदात्रोः।
मातापित्रोः सुखमतितरा रक्षणीयं सुतेन॥

फलतः निषादकन्या पर आसक्त पिता हेतु देवव्रत अपना युवराज पद त्याग कर आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करने जैसा कठोर व्रत-पालन करने की प्रतिज्ञा करते हैं–

'सर्दोध्वरेता इह जीवने वसन व्रतं चरिष्यामि विखानासो भवन्।'

बाद में माता सत्यवती द्वारा यह कहने पर कि मैं तुम्हें प्रतिज्ञा से मुक्त करती हूँ, तुम ही राजा बनो, भीष्म ने माता के इस कथन को स्वीकार नहीं किया और कहा–

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

'निशाकरो नाम दिवाकरायतां दिवाकरो नाम निशाकरायताम्।
जगद्विपर्यासमवाप्नुवाद् वरं न मे प्रतिज्ञा ह्यनृता भविष्यति॥

इतना ही नहीं, न चाहते हुए भी पिता को दिए वचन का पालन करने हेतु ही महाभारत युद्ध में वे दुर्योधन का साथ देते हैं।

*

CS-58

शृङ्गार नायक-नायिकाएँ: मोहक परम्परा के आधार

डॉ. उर्मिला श्रीवास्तव, इलाहाबाद

कामकला के आदि उद्गम शृङ्गाररस के प्रथम प्रतिष्ठापक हैं– परमपुरुष शिव एवं आदिमाया पार्वती। नायक-नायिका तत्त्व के प्रतीक शिव-पार्वती के परिणीत जीवन में लास्य एवं लालित्य की मधुरिमा व्याप्त रहती है, क्रमशः वही माधुर्य धरा पर अवतीर्ण होकर सामान्य स्त्री-पुरुष को अभिराम एवं जीवनाभिमुख नायक-नायिकाओं में रूपायित कर देता है। यौवन की चरमावस्था में प्रेम की बाह्य प्रकृति एवं अनुराग का अन्तर्द्वन्द्व, सौन्दर्य की पराकाष्ठा एवं स्वभावमधुर मनोवृत्तियों की प्रस्तुति, लावण्य की अतिशयता एवं पौरुष का प्रदर्शन-सभी तथ्यों को सूक्ष्मता से आलोकित करने वाले स्त्री-पुरुष नायक-नायिका की गरिमा से मण्डित होते है। रतिसम्भोगकारक शृङ्गार के प्रतीक नायक-नायिका के व्यवहार आक्षिप्त चरित्र के आधार पर काव्यशास्त्रज्ञों, मनोवैज्ञानिकों, सौन्दर्यविशारदों तथा कामकलाविशेषज्ञों ने अपने अनुभव जन्य ज्ञान से इनका वर्गीकरण एवं विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। नित्यप्रति जीवन में देखे-परखे व काव्यग्रन्थों में वर्णित नायक-नायिका के स्वभाव-रुचि-गुणों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने वाले आचरण ही भेद की अनेकविध कोटियों का निर्धारण करते हैं। इन विविध कोटियों की समीक्षापूर्वक गणना करते समय आचार्य शरीरसंरचनाविज्ञान, मनोविज्ञान, सामुद्रिकशास्त्र, सौन्दर्य शास्त्र आदि के प्रति विशेष अध्ययनशील रहे हैं। इन सभी शास्त्रों की कसौटी पर कसी नायक-नायिकाएँ सम्पूर्ण काव्य जगत् का प्राण बनकर सहृदय हृदय अध्येता के हृदय पर राज्य करती हैं। अतएव नायक-नायिका भेद का विषय अपनी रम्यता, मौलिकता तथा वैज्ञानिकता से काव्यविशेषज्ञों एवं सौन्दर्यशास्त्रियों के लिए विवेच्य रोचक सामग्री सिद्ध होता है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-59

कालिदास के काव्यों में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा

डॉ. जयवीर सिंह यादव, इटावा

प्राचीन काल में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा आज की भाँति नहीं थी। प्राचीन संस्कृत कवियों, मनीषियों का प्राकृतिक अनुराग व प्रकृति के साहचर्य की भावना ही पर्यावरण संरक्षण का आधार था। संस्कृत वाङ्मय के लगभग सभी प्रख्यात कवियों ने अपने काव्यों में कहीं न कहीं प्रकृति का चित्रण अवश्य ही किया है। महाकवि कालिदास तो इन सभी कवियों में अग्रणी रहे हैं। महाकवि कालिदास के ग्रन्थ चाहे ऋतुसंहार हो या कुमारसम्भवम् अथवा मेघदूत हो या रघुवंश, नाटकों में चाहे मालविकाग्निमित्रम् व विक्रमोवषीय या फिर अभिज्ञान शाकुन्तलम् सभी में वन, उपवन, सरोवर, तालाब, पर्वत, नदी, ऋतुएँ विभिन्न ग्राम्य एवं वन्य पशुपक्षी इन सबसे लोगों का साहचर्य सहज ही अभिव्यक्त हुआ है। शाकुन्तलम् में तो महाकवि ने प्रकृति के साहचर्य की पराकाष्ठा कर दी है। जब प्रकृति स्वयं मूर्तिमती होकर विभिन्न उपहारों के द्वारा शकुन्तला का सम्मान अभिनन्दन, वन्दन करती है।

यद्यपि उस काल में आखेट का प्रचलन था किन्तु वनों में रहने वाले ऋषियों तपोवनों, आश्रमों में ग्राम्य एवं वन्य पशु पक्षी सभी सुरक्षित थे। वहां उनका आखेट नहीं किया जा सकता था साथ ही यज्ञों के द्वारा वायु का शोधन और पूज्य भावना के द्वारा जल तथा पृथ्वी के संरक्षण की कल्पना भी देखने को मिलती है।

❋

CS-60

सोमदेव सूरि विरचित 'नीतिवाक्यामृतम्' कालीन सामाजिक व्यवस्था

डॉ. ऋचा शुक्ला, लखनऊ

'नीतिवाक्यामृतम्' संस्कृत भाषा में लिखित एक नीतिशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ है इसके रचयिता आचार्य सोमदेव सूरि हैं। यह ग्रन्थ 32 समुद्देश्यों में विभक्त है जिसमें सोमदेव सूरि ने दशवीं शताब्दी की नीतियों का विशद वर्णन किया है। अतः 'नीतिवाक्यामृतम्' इतिहास परक साक्ष्यों को भी प्रस्तुत करता है। 'सोमदेवसूरि' रचित 'नीतिवाक्यामृतम्' में अनेक ऐसे सन्दर्भ प्राप्त होते हैं, जिनसे तत्कालीन समाज पर प्रकाश पड़ता हैं सामाजिक व्यवसथा जो

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तत्कालीन समाज में प्रचलित थी, उसमें वर्ण-व्यवस्था, राजव्यवस्था अर्थव्यवस्था, धर्म व्यवस्था तथा भोजन-वस्त्र इत्यादि का वर्णन प्रथमतया प्राप्त होता है। शोधकर्त्री ने इस शोध पत्र में उन सभी सन्दर्भो का सङ्कलन करके प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। इस शोधपत्र से सोमदेवसूरि कालीन सामाजिक व्यवस्था का दर्शन प्राप्त किया जा सकेगा।

❋

CS-61

राजस्थानीय रूपक परम्परा

डॉ. महेशचन्द, राजस्थान

श्रम शौर्य एवं संस्कृति की उद्गमरूपा भक्ति की क्रीड़ास्थली राजस्थनीय वीरप्रसू मरुभूमि चिरकाल से ही विद्याव्यसनी विपश्चितों के लिए परम वन्दनीया रही है। देववाणी की आराधना के क्रम में यहाँ महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, गद्यकाव्य, चम्पूकाव्य रूपक प्रभृतिसाहित्य की सभी विधाओं में सर्जन होता रहा है।

राजस्थान प्रान्त में नाट्य लेखन की प्रवृति प्राचीन काल से चली आ रही है। 12वीं शताब्दी के कतिपय प्रमाणों से इस बात की पुष्टि हुई है कि यह प्रान्त नाट्य साधना की दृष्टि से समृद्ध था। इस परम्परा में श्रीसोमदेव रचित 'ललितविग्रहराज' नाटक शिलालेख के रूप में उपलब्ध राजस्थान प्रान्त का प्रथम ऐतिहासिक नाटक है। पुरातत्त्वविदों के अनुसार इसकी रचना 1153 ई. के लगभग हुई थी। यह नाटकाभिलेख राजपुताना म्यूज़ियम अजमेर के म्युज़ियम भवन पूर्वभाग प्रकोष्ठ नं. 243 में स्थापित है। इस नाटक के तृतीय व चतुर्थ अंकों के उपखण्ड ही उत्कीर्ण रूप में प्राप्त हैं। अनुमानतः यह नाटक पाँच अंकों से कम का नहीं होगा। इसमें शाकम्भरी चौहान राजा विग्रहराज चतुर्थ जो वीसलदेव के नाम से प्रसिद्ध था और देसलदेवी की प्रेम कथा वर्णित है। नाटक के संवाद छोटे- छोटे प्रवाहशील एवं प्रभावोत्पादक हैं। इसमें संस्कृत एवं प्रकृत दोनों का साधिकार प्रयोग है। द्वितीय नाटक 'हरिकेलि' है जिसके प्रणेता विग्रहराज चतुर्थ हैं। इसमें भारवि के किरातार्जुनीयम् की कथा को नाट्यरूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके बाद सोमवलिलयोगानन्दं (प्रहसन) 1422-48 ई.) दमनमञ्जरी (1575-1614) का प्रणयन विरेह प्रान्त निवासी मोहन कवि ने किया। प्रस्तुत नाटिका का अभिनय राजामानसिंह की सभा में किया गया था।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-62

कालिदासीय काव्यों में नारी एवं विवाहवर्णन

निहालसिंह इमलिया, भरतपुर, राजस्थान

पावन संस्कृति एवं संस्कारों के आदर्श देश भारत के सांस्कृतिक सौष्ठव में महिलाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता: के सम्पोषक भारतीय समाज ने भी नारियों को समय समय पर समादृत किया। समाज में महिलाएँ कन्या माता एवं गृहिणी के रूप में अपनी भूमिकाएं निभाती रही हैं।

साहित्य सर्जना के क्षेत्र में संस्कृत के मूर्धन्य कवि कालिदास स्त्री-पुरुष के प्रेम, नारी तथा विवाह के निरूपण में इतना आगे बढ़े कि उन्होंने अपने काव्यों के नामकरण में भी महिलाओं के नाम को जाना जैसे–अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोवंशीयम् और मालविकाग्निमित्रम्। स्त्रीवर्णन में कालिदास ने सम्प्रदाय व रूढ़ि के बन्धन का अनुसरण न करके मुक्त हाथों से अपने कल्पना-बैभव को खर्च किया। कहीं-कहीं तो वे अतीव श्रृंगारिक होकर लम्बे-चौड़े नखशिख वर्णन पर उतर आते हैं। मेघदूत खण्डकाव्य के उत्तरमेघ में यक्ष के द्वारा मेघ को बताए गए यक्षपत्नी के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा–

तन्वी श्यामाशिखखिराना . . . सृष्टिसद्येव धातुः। मे.दू./उ.मे.22

मालविकाग्निमित्रम् के द्वितीय अंक में नारी के वर्णन में अग्निमित्र द्वारा कालिदास ने नर्तकी के रूप में मालविका का ऐसा शब्दचित्र खींचा है कि चतुर-चितेरे भी क्षणभर को तो उनसे ईर्ष्या करने लगते हैं। उदाहरणार्थ–

दीर्घाक्षं शर्तवेन्दु, . . . श्लिष्ट। यथास्याः वपुः।
मालविकाग्निमित्रम्-2/3

विवाह या पाणिग्रहण परम्परा का कालिदास ने अपने काव्यों में उत्तम निर्वहण किया है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में शकुन्तला तथा दुष्यन्त के गान्धर्व-विवाहोपरान्त महर्षि कण्व द्वारा शकुन्तला को पतिगृह भेजने का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है–

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति . . . तनयाविश्लेषः दुःखेर्नवेः। अभि. शा. /चतुर्थ अंक

करुणरस के पुरोधा महाकवि भवभूति ने भी कन्या को पराया धन माना है– कन्यायाश्च परार्थतेष मता।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कुमारसम्भव में तपोनिरत भगवान शिवजी को प्राप्त करने के लिए पार्वती की तपस्या से प्रसन्न होकर स्वयं शिवजी के द्वारा कालिदास ने तथास्मि दासः क्रीतस्तपोभिः कहकर शिव पार्वती के पाणिग्रहण का विवेचन करते हैं।

रघुवंश महावाक्य में इन्दुमती की शोभा का वर्णन करते हुए उसे दीपशिखा की उपाधि देते हैं।

संचारिणी दीपाशिखेव...विवर्णभावं स स भूमिपालः। रघुवंश 6/67

इस प्रकार देखा जाता है कि महाकवि कालिदास ने अपने काव्यों में नारी एवं विवाह वर्णन को केन्द्र में रखकर अपने कला कौशल से साहित्य सर्जना की है।

*

CS-63

कुमाऊँनी कवि गुमानी विरचित 'रामभक्तिमहिमा' (शतक काव्य) एक अध्ययन

डॉ. लज्जाभट्ट, लखनऊ

कुमाऊँ क्षेत्र के पिथोड़ागढ़ जिले के उप्राडा ग्राम के मूल निवासी कविवर गुमानी उन्नीसवीं शताब्दी के कवि हैं। संस्कृत साहित्य को रामभक्ति महिमा, गंगार्या, भक्तज्ञिप्तिसार, हितोपदेशशतकम् आदि शतक काव्य, देवता सतोत्राणि, विज्ञप्तिसार, रामष्टपदी, जगन्नाथाष्टकस्तोत्रम्, रामनामपंचाशिका आदि स्तोत्र काव्य, श्रीराम सहस्त्रगणदण्डकः, गद्यराजः आदि गद्यकाव्य, अंगरेजराज्यवर्णनम्, लाटद्वयप्रकरणम्, दुर्जनदूषणम्, दर्शनेफलाफलम्, ज्ञानभैषज्यमंजरी, सद्रंजाष्टकम् आदि अनेक स्फुट पद्यों की रचना करने वाले उत्तरांचल की पवित्र धरती को अपने जन्म से धन्य करने वाले कुमाऊँनी कवि लोकरत्न पन्त' उपनाम गुमानी से कुमाऊँ के ही नहीं अपितु भारतवर्ष के सहृदय संस्कृतनुरागी विद्वज्जन सुपरिचित हैं।

गुमानी मात्र संस्कृत के ही विद्वान् कवि नहीं थे अपितु हिन्दी, कुमाऊँनी, नेपाली में भी उनके द्वारा विरचित काव्य उनकी विद्वता का परिचय देते हैं। कविवर गुमानी प्रणीत 'रामभक्तिमहिमा' नामक शतक काव्य काव्यशास्त्रीय मानदण्डों की कसौटी पर खरा उतरने वाला अनुपम शतक काव्य है। 127 श्लोकों में निबद्ध इस शतक काव्य में कवि ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम को अपने आराध्य देव के रूप में प्रस्तुत करते हुए सभी सांसारिक बाधाओं के उन्मूलन का मार्ग रामभक्ति को ही बताया है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इस काव्य में कवि ने राम को भगवान विष्णु के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए उनके दशावतारों (यथा-मत्स्यावतार, कूर्मावतार, रामावतार, नृसिंहावतार, वामनावतार, कृष्णावतार, बलरामावतार, बुद्धावतार, परशुरामावतार तथा कल्कि अवतार) का वर्णन किया है। कवि गुमानी सम्पूर्ण जगत् को राममय मानते हैं। राम सांसारिक भय को दूर कर भय का विराम हैं। सभी प्रकार का सुख, कल्याण आदि को प्रदान करने में भगवान राम ही समर्थ हैं।

कवि का मानना है कि प्रसन्नता, कल्याण, परमपद, इत्यादि की प्राप्ति भगवान राम के प्रति उत्पन्न भक्ति द्वारा ही सम्भव है–

भक्तप्रमोदहेतोः परमपद श्रेवसां दृढारिष्टम्।
एकेव दातुमीशा, भक्तिर्जागर्त्ति रामस्य॥

❋

CS-64

सेवन्तिकापरिणय नाटक-रसविवेचन

डॉ. श्वेता रस्तोगी, लखनऊ

अनेक विषयों के रचियताओं का विवरण देते हुए राजेश्वर ने 'काव्य मीमांसा' के प्रथम अध्याय में लिखा है–रूपकं निरूपणीया भरतः रसाधिकारिकनन्दिकेश्वरा-भरत ने यमक अर्थात् नाट्य विषय पर तथा नन्दिकेश्वर ने रस विषय पर अपनी-अपनी ग्रन्थ रचना की। भरत ने नाट्य एवं तदात्मस्वरूप रस की सृष्टि का कारण स्वयं ब्रह्मा को माना है। भरत के मतानुसार रस के बिना किसी भी अर्थ व विषय का प्रवर्तन आरम्भ या अविष्कार सम्भव नहीं है।

अभिनवगुप्त ने भरत के नाट्यशास्त्र के मूलाधार पर अपने रस सम्बन्धी मत अभिव्यक्तिवाद का प्रवर्तन किया है। जिसका सुस्पष्ट अंकन मम्मट ने अपने काव्य-प्रकाश' में किया है।

रसों की संख्या तथा परस्पर उत्पाद्योत्पादकता रसों की संख्या भरत के मतानुसार आठ है चोक्कनाथकृत "सेवन्तिकापरिणय' नाटक का अङ्गी रस शृंगार है। अतएव भरतमुनि के नाट्यशास्त्रानुसार इसका सूक्ष्म रूप दृष्टव्य है।

उनके मतानुसार शृंगार-रतिस्थयिभावप्रभव उज्ज्वल, वेषात्मक है। उच्चैर्ज्वलति प्रकाशते इति उज्ज्वलम्-'उज्ज्वल' शब्द की यह उत्पति शृंगार रस की विशदता की द्योन्तिका है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इस शृंगार रस की दो अवस्थाएं होती हैं– 1. सम्भोग तथा 2. विप्रलम्भ

चोक्कनाथकृत 'सेवन्तिकापरिणय' नाटक जिसका अङ्गीरस शृंगार रस है, अतएव इसके अंङ्गों उपांङ्गो का सूक्ष्म वर्णन आवश्यक है।

''दृष्ट्वैका सनसंगते प्रियतमे पश्चादुपेत्यादरा-
देकस्या नयने निमील्य विहितक्रीडानुबन्धच्छलः।

ईषद्वक्रितकंधरः सपुलकः प्रेमोल्लसन्मानसा-
मन्तहसिलसत्कपोलफलकां धूतोऽपरां चुम्बति॥''

यहाँ पर एक ही स्थान पर बैठी हुई दो प्रेमिकाओं में से एक के नेत्रों को मूंदकर दूसरी नायिका चुम्बन का वर्णन होने से सम्भोग शृंगार की अभिव्यक्ति हो रही है।

❋

CS-65

'मृच्छकटिकम्' में व्यवहार

डॉ. रुचि कुलश्रेष्ठ, मथुरा

'व्यवहार' शब्द सूत्रों एवं स्मृतियों में विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है यथा लेन-देन, झगड़ा या मुकदमा तथा लेन-देन में प्रविष्ट होने से सम्बन्धित न्याय (कानून) सामर्थ्य।

'वि' उपसर्ग का प्रयोग कर उसका अर्थ 'बहुत' के अर्थ में, 'अव' का सन्देह के अर्थ में तथा हार का हारने के अर्थ में प्रयोग हुआ है अर्थात्! व्यवहार नाम इसलिए भी पड़ा क्योंकि यह बहुत से सन्देहों का निवारण करता है।

मृच्छकटिक एक प्राचीन नाटक है जिसमें वर्णित विधि ही व्यवहार है। मृच्छकटिक में बलात्कार, चोरी एवं सेंध कर्म, द्यूत क्रीड़ा, विवाद या झगड़ा, रिशवत, कण्ठमोरन, षड्यन्त्र, न्यायालय में मिथ्यादावा जैसे कार्य व्यवहार के अन्तर्गत आए हैं। मृच्छकटिक में व्यवहार के कारणों के साथ-साथ उसके निदानों का भी वर्णन प्राप्त होता है। ये व्यवहार वर्तमान में भी अपराध के अन्तर्गत आते हैं जिसके लिए आज भी न्यायालय द्वारा दण्ड दिया जाता है।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-66

वत्सराज और उनकी नाट्यशैली

डॉ. नूतन स्मृति, उत्तरांचल

नाटककार वत्सराज रचित रूपकषटक संस्कृत नाट्यशास्त्र एवं नाट्यकृतियों के अनुसंधित्सुओं के लिए अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। कालिंजर नरेश परमर्दिदेव के मंत्री साहित्यनुरागी वत्सराज ने किरातार्जुनीय, रूक्मिणीहरण, कर्पूरचरित, त्रिपुरदाह, समुद्रमंथन एवं हास्यचूड़ामणि नामक लक्ष्यग्रंथों की रचना की, जिसमें छः नाट्यभेद व्यायोग, डिम, ईहामृग, समवकार, प्रहसन एवं भाण समाहृत हैं। महाकवि भास के उपरान्त लगभग बारह सौ वर्षों के अनन्तर नाट्य-विधा में लक्षण-ग्रन्थों का निर्माण, नाटककार की अद्‌भुत प्रतिभा का परिचायक है।

वत्सराज द्वादश शताब्दी के नाटककार हैं। यह काल नाटयरचना की दृष्टि से ह्रासयुग माना जाता है। मुसलमानों के आक्रमण से हिन्दुधर्म की मान्यताएँ प्रभावित हुईं। भारत में बौद्ध धर्म की स्थिति भी मरणासन्न थी। ऐसी सामाजिक-राजनीतिक पृष्ठ-भूमि में लिखित रूपकषट्क की नाट्यकला परम्परा का निर्वाह ही करती रही अथवा तत्कालिक सामाजिक-राजनीतिक परिवेश की प्रतिच्छाया प्रस्तुत कर सकी, इसके निर्धारण के लिए नाट्य-शैली का समीक्षण आवश्यक है, क्योंकि 'शैली' नाट्ककार की अभिव्यक्ति की विशेषताओं की समृष्टि मानी जाती है।

अतएव प्रस्तु शोध-पत्र में रूपकषट्क में प्रयुक्त शैली के अन्तर्गत रीति, अलंकार, छन्द सम्बन्धी विवेचन के अतिरिक्त वत्सराज की नाट्यकला सम्बन्धी विषयनिष्ठ विशेषताओं का उल्लेख किया जाएगा।

*

CS-67

बाणकालीन भारतवर्ष में शैक्षणिक स्थिति : एक अनुशीलन

डॉ. कादम्बरी शर्मा, छत्तीसगढ़

बाणकालीन भारत में विशेषकर ब्राह्मणों तथा श्रमणों में, शिक्षा का प्रायः पर्याप्त प्रचार था। यद्यपि यह बतलाना संभव नहीं है कि साधारण लोग शिक्षा से कितना लाभ उठाते थे और देश में कितने प्रतिशत लोग साक्षर अथवा शिक्षित थे। किन्तु एतत्संबंधी जो ऐतिहासिक

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सामग्रियां उपलब्ध हैं, उनके आधार पर हम उस काल की शिक्षा-प्रणाली तथा पाठ्यविषयों का खासा अच्छा विवरण दे सकते हैं।

कृतोपनयनादिकक्रियाकलापस्य समावृत्तस्य चतुर्दशवर्षदेशीयस्य पितापि... अस्तमगतमत्-हर्षचरित, पृ. 66। एक हस्तलिखित प्रति में अधीतवेदस्य (वेदों को पढ़कर) पाठ है। सति च अविच्छिन्नविद्याप्रसंगे-हर्षचरित पृ. 39

बाण ने स्वंय षड़ंग सहित वेदों का पूर्ण अध्ययन किया था। प्रीतिकूट गांव में, जहां बाण रहता था वात्स्यायन गोत्र के बहुसंख्यक ब्राह्मण निवास करते थे। उनके घर गुरुकुल-स्वरूप थे। वहाँ वेदों तथा अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी। ये घर छोटे-छोटे ब्रह्मचारियों से भरे रहते थे जो यज्ञों से आकर्षित होकर वहां आते थे। उन्हें ब्राह्मण गृहपति नियमित रूप से वेद, व्याकरण, तर्कशास्त्र, मीमांसा आदि की शिक्षा देते थे। वहां निरंतर वेदों का पाठ होता था, यज्ञ की अग्नि जलती रहती थी, अग्निहोत्र की क्रियाएँ होती रहती थीं और विश्वदेव को बलि दी जाती थी, विधिपूर्वक यज्ञ संपादित होते थे और ब्राह्मण उपाध्याय ब्रह्मचारियों को पढ़ाने में संलग्न रहते थे।

*

CS-68

कुमारसम्भव में पार्वती का आध्यात्मिक सौन्दर्य

डॉ. सुधा बाजपेयी, लखनऊ

सौन्दर्य क्या है? यह ऐसा प्रश्न है जो साधारण नहीं माना जा सकता। सौन्दर्य को समझने के लिए हृदय में करुणा की अनुभूति का होना आवश्यक है। करुणा का आगमन तब होता है जब हमारा हृदय एवं मन किसी सुन्दर वस्तु के प्रति बिना किसी बाधि ता के पूरी तरह संवादित होता है। संसार के तमाम विचारक आंतरिक सौन्दर्य को वास्तविक सौन्दर्य मानते हैं। महर्षि श्री अरविन्द के अनुसार प्राणिक, मानसिक और शारीरिक सौन्दर्य भटकने वाले होते हैं, आंतरिक सौन्दर्य के लिए ईश्वरीय प्रकाश आवश्यक होता है सारे बाहरी सौन्दर्य बेमानी लगते हैं। हमारा अंतर हृदय जब तक सौन्दर्य से ओत-प्रोत नहीं हो जाता बाहरी चमक-दमक केवल भटकाने का काम करती है।

कालिदास का कुमारसंभव इस नाते अद्‌भुत है, क्योंकि इसमें लौकिकता के मार्ग से आलौकिक विषय का सहज बोध प्राप्त होता है इस बोध का आश्रय देवी पार्वती हैं। कुमारसम्भव के पञ्चम सर्ग के प्रथम श्लोक में वर्णन है-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

'तथा समक्षं दहता मनोभवं पिनाकिना भग्नमनोस्थासती।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारूता।

इयेष सा कर्तुबंन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिष्च तादृशः॥

महाराज हिमांचल एवं भावना की पुत्री पार्वती शिव को पति रूप में पाना चाहती हैं। वे नित्य उनके समाधि-मग्न रूप का दर्शन-पूजन करती हैं। देवराज द्वारा प्रयुक्त काम पार्वती की निकटता का लाभ लेकर भगवान शिव की समाधि तोड़कर उन्हें श्रृंगारी बनाना चाहता है, पर समाधि टूटने से रूष्ट शिव काम को भस्म कर देते हैं।

काम का भस्म होना पार्वती के आध्यात्म के प्रेरक बिन्दु हैं। वह विचार करती हैं कि शारीरिक सौन्दर्य शिव-योग का कारक नहीं बन सकता। अतः घर छोड़कर तप करने का निश्चय करती हैं और अन्त में शिव-योग प्राप्त भी कर लेती हैं।

*

CS-69

कालिदास के ऋषि एक मूल्यांकन

सुश्री संगीता कुमारी, झारखंड

कालिदास के रूपकों में से विश्व विख्यात अभिज्ञान शाकुन्तलम् के विस्तृत कलेवर में कुल चार ऋषियों का उपस्थापन हुआ है–विश्वामित्र, दुर्वासा, ऋषिकण्व एवं मारीच। ऋषि मन्त्रद्रष्टा होते हैं, परमपिता से साक्षात्कार हुआ रहता है अतएव उनमें सांसारिक माया के बन्धन अथवा स्वार्थादि के चिह्न तक नहीं मिलते। उन्हें दैहिक, दैविक और भौतिकरूपी त्रिविधताप भी व्याप्त नहीं कर सकते। वे अहर्निश सांसारिक गूढ रहस्यों के उद्‌बोधन, साथ ही लोककल्याण को सर्वाधार बनाए जीवन्तता की कामना करते हैं। सांसारिक मान-प्रतिष्ठा एवं भूख प्यास की उन्हें चिन्ता तक नहीं होती। इसके विपरीत इनके ऋषि उपर्युक्त नियमों पर नियमित नहीं उतरते। ऋषि विश्वामित्र कहने भर के लिए तपस्वी हैं, तपोबल पर उन्हें गर्व भी है। तपबल के आधार पर वे इन्द्रासन तक में सत्तासीन हो सकते हैं, नानाविध भोज्य वस्तुओं को अपने इर्द-गिर्द फैला सकते हैं। मेनका को पत्नी बना सकते हैं परञ्च आत्मजा शकुन्तला को रामभरोसे छोड़ पिताधर्म का पालन नहीं कर सकते हैं। ऋषिकण्व ऐसे ऋषि हैं। जिनके अन्तःकरण में दया हैं, किसी के वे आश्रय हो सकते हैं। उसका

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लालन-पालन भारतीय सामाजिक मर्यादा के अनुरूप सारे कार्यों का सम्पादन अपना धर्म समझते हैं। चाहे वह शकुन्तला ही क्यों न हो। शकुन्तला की किलकारियों, उस पर उनकी पैनी नजर भी उनकी जीवन्तता का राज होता है, जब तक उसका विवाह नहीं हो जाता, वह दुल्हन बनकर अपने पतिगृह नहीं चली जाती, वास्तविक पिता कण्व अत्याधिक चिन्तित् दिखते हैं। नवविवाहिता शकुन्तला के हस्तिनापुर गमन पर तो उनका पिता हृदय सीमा को तोड़ जाता हैं। एक ऐसे भी ऋषि हैं जिन्हें मात्र स्वकीय मान-प्रतिष्ठा की चिन्ता है, तनिक मान-सम्मान में विलम्ब हुई नहीं कि वे अपने तपबल का प्रभाव आजमाने लगते हैं। ऋषि दुर्वासा ऐसे ही व्यक्ति हैं क्योंकि अबोध, नवविवाहिता राजवैभव की स्वर्णिम परिकल्पना में खोई शकुन्तला भी उनके शप का भाजक बन जाती है, अन्त में, महाकवि के एक ऐसे तेजस्वी ऋषि भी हैं जिनके अन्तः तेज तक से दिशाएँ भास्वरित रहती हैं, जो सबों को ऐश्वर्य से भर देने की क्षमता से युक्त होते हुए भी स्वतः वायुसेवन द्वारा ही अपनी जीवन्तता बनाए हुए हैं। सर्वत्र लोक निष्णात नियमों का बखान करते हैं, ऋषि पत्नियों सहित अपनी पत्नी अदिति को पातिव्रत्य धर्म का पाठ पढ़ाते हैं।

निष्कर्षतः महाकवि के ऋषि कल्याणकारी होने चाहिए। तपश्चर्या के पुनीत कार्यों को सम्पन्न करते रहने के साथ-साथ उनको लोक कल्याण भावना सर्वोपरि होनी चाहिए।

*

CS-70

"कुलाभिमान मिथ्याभिमान" पर क्षेमेन्द्र के विचार

डॉ. श्रीमति प्रेमलता कुमारी, बिहार

महाकवि क्षेमेन्द्र के विचार से मनुष्य के जीवन के प्रथम भाग में होने वाला अहंकार कुलदर्प ही होता है। कुलाभिमान मनुष्यों को ग्रह के समान पकड़े हुए रहता है। लोक मोहवश व्यर्थ ही अपने को बड़ा कुल में उत्पन्न होने का अथवा अपने कुल का बड़प्पन करते हैं। मंहाकवि ने इसे एक सुन्दर उपमा से समझाया है–

"कुलस्य कमलस्येव मूलमन्विष्यते यदि।
दोषपङ्कप्रसक्तान्तस्तदावश्यं प्रकाश्यते॥"(दर्पदलन, कुलविचार, 7)

अर्थात् कमल के मूल का अन्वेषण यदि किया जाए तो वह कीचड़ में ही लिप्त पाया जाता है। कुल वस्तुत अविच्छिन्न संतति-परम्परा का नाम है। संसार में कोई भी कुल

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

में यदि सुन्दर गुणों की अविच्छिन्न परम्परा है तो वह बड़ा कुल माना जाता है। गुणप्रभाव के विच्छिन्न हो जाने पर कुल महत्त्वहीन हो जाता है। प्रस्तुत निबन्ध मे महाकवि क्षेमेन्द्र ने कुल सम्बन्धी अनेक दोषों को गिनाए हैं। उनका मानना है कि गुणवान् कुल में भी उत्पन्न पुत्र निर्गुण हो सकता है और वैसा पुत्र सम्मान का पात्र नहीं हो सकता। महाकवि ने इसका स्पष्टीकरण निम्न श्लोक से किया है–

''गुणवत्कुलजातोऽपि निर्गुणः केन पूज्यते।
दोग्ध्रीकुलोद्भवा धेनुर्वन्धया कस्योपयुज्यते।।'' (दर्पदलन, कुलविचार,13)

कवि कहते हैं कि पुरुषों का कुल होता ही नहीं है–''नास्त्येव पुंसां कुलम्''। (दर्पदलन, कुलविचार,15) सन्तान-तन्तु-क्रम का विस्तार करना स्त्रियों की ही परम्परा है।

कुलाभिमान को ही आभूषण मानने वाले व्यक्ति की माता, पितामही अथवा प्रतितपमही यदि स्त्री स्वभाववश दोषयुक्त हो जाती है, तो इस दोष से कुल समाप्त हो जाता है।

क्षेमेन्द्र ने पुराण-साहित्य से दुष्टकुल तथा उसमें उत्पन्न कुलाभिमानियों के उदाहरण दिए हैं। यथा-सूर्यवंश में दिलीप, रघु, राम आदि राजा हुए परन्तु उन्हीं के पूर्वज राजा त्रिशंकु महर्शि-पुत्रों से अभिशप्त हो चाण्डालत्व को प्राप्त हुए थे।

सूर्यवंश के अतिरिक्त सोमवंश का पूर्वपुरुष 'बुध' का जन्म देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा से चन्द्रमा द्वारा हुआ था।

दानवीर कर्ण कन्या कुन्ती की संतान थे और पाण्डव भी नियोग से उत्पन्न संतान थे। इन उदाहरणों से क्षेमेन्द्र ने स्पष्ट कर दिया है कि कुलाभिमान मिथ्याभिमान है।

❋

CS-71

संस्कृत वाङ्मय में दास प्रथा एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य

डॉ. अपराजिता मिश्रा, जम्मू

वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक के सामाजिक दर्शन से यह विदित होता है कि दास प्रथा ने देश एवं काल के अनुरूप अपने कई आयाम भी बदले, एवं उसकी विविध प्रकारों की अन्विति समाज में देखी गई। ऋग्वैदिक काल में दास एक आर्येतर समुदाय था, जिनकी प्रवृत्तियाँ आर्य विरोधी थीं। इस काल में दास, लेन-देन तथा उपहार

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

की वस्तुओं के रूप में प्रयुक्त किए जाते थे, जिनमें पुरुष एवं स्त्री दोनों सम्मिलित थे। तदनन्तर उत्तरवैदिककाल में दास प्रथा का विस्तार भी हुआ एवं समाज में उसकी अनिवार्यता भी स्वीकार की गई, तथा इनकी स्थिति बदतर होती चली गई। मौर्य एवं गुप्तकाल के समय दासों की विविध कोटियाँ बनीं, जैसा कि पाली साहित्य के विनयपिटक में अन्तोजात, धनक्किकतो तथा करमरानीती नामक दासों की तीन कोटियों का विवरण मिलता है लेकिन जातकों में दासों के क्रय-विक्रय का वर्णन मिलने के साथ-साथ, उस समय समाज में छः प्रकार के दासों के मिलने की संसूचना भी प्राप्त मिलती है, जबकि कौटिल्य ने पाँच प्रकार के दासों-ध्वजाहृत, आत्मविक्रयी, उदरदास, आहितक और दण्डप्रणीत का ही उल्लेख किया है, जो नारदस्मृति के तुल्य ही हैं। कालिदास एवं शूद्रक जैसे महाकवियों ने भी दास प्रथा का विवेचन किया है, जो राजसमाज में रहा करते थे। परन्तु दास प्रथा ने आज अपने स्वरूप में परिवर्तन कर लिया है। दक्षिण भारत में मंदिरों में आज भी दास एवं दासियों का प्रचलन देखने को मिलता है, जब कि उत्तर मध्य एवं पूर्वी भारत में घरेलू सेवकों के रूप में दास प्रथा की स्वीकारोक्ति देश काल एवं परिस्थिति के बदले रूप में मानव जीवनचर्चा के सम्पादन में द्रष्टव्य है। परन्तु अर्थक्रीत दास पहले भी हुआ करते थे, आज भी हैं। पहले भी वह अपने स्वामी से अर्थमई प्रवृत्तियों के चलते या बदले की भावनावश विश्वासघात कर बैठते थे और आज तो यह प्रवृत्ति समाज में व्यापक रूप में देखने को मिलती है, जिसके प्रमुख कारण अर्थसुचिता का अभाव, धनार्जनी प्रवृत्ति, असंतोष एवं महत्त्वाकांक्षा की जिजीविषा ही माने जा सकते हैं। सम्पूर्ण तथ्यों का निदर्शन शोध-पत्र में द्रष्टव्य है।

*

CS-72

बहुपतित्व प्रथा के बदलते आयाम

आरती शर्मा, जम्मू

वैसे तो मानव जीवन देश काल एवं परिस्थिति भी प्रभावी भूमिका निभाती है, क्योंकि यहाँ के निवासी, जहाँ यह चाहते हैं कि उनकी धरती का बंटवारा न हो, वहीं पुरुषों के सेना में जाने से कभी कभार होने वाली आकस्मिक मौतों से परिवार विखण्डित न हो जाए, इसलिए भी वहुपति रखने की विधा समाज में स्थित है, जबकि आसाम प्रदेश में भुखमरी से निबटने एवं जीवनचर्या के सुरक्षित सम्पादन हेतु बहुपति प्रथा को प्राथमिकता मिली हुई है। यह प्रथा पुराणों से निगमित होती प्रतीत होती है। लेकिन महाभारत में द्रौपदी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वृत्तान्त में भी वहुपति प्रथा के दर्शन होते हैं। विष्णुपुराण में मारिसा के दशपतियों के होने का विवरण जहाँ उपलब्ध होता है, वहीं विष्णुपुराण एवं मत्स्यपुराण में द्रौपदी के पाँच पतियों का उल्लेख प्राप्त मिलता है, परन्तु इनमें वर्णित विषयवस्तु से यह भी ध्वनित होता है कि समाज में इस प्रथा को मान्यता नहीं मिली, शायद इसीलिए समाज में इस प्रथा के दर्शन आदर्श समाज में न होकर केवल निम्न या आदिवासी समूहों में द्रष्टव्य हैं, और आज यह प्रथा केवल वहाँ श्वासें गिन रही है। किन परिस्थितियों में इस प्रथा की उत्पत्ति हुई? क्यों इसे अपनाया गया? आज इस प्रथा की प्रासंगिकता क्या है? सम्पूर्ण तथ्यों का समाधान शोधपत्र में किया गया है।

*

CS-73

कालिदास की नाटययात्रा (प्रयोगप्रधानता से प्रयोगविज्ञान तक)

कालिन्दी परीख

नाटक प्रमुखतः परफोर्मिंग आर्ट है। कालिदास ने मालविकानिमित्र के आरम्भ में ही उसे प्रयोग प्रधान कहा है। इसलिए नाटक में निधूर्म की पवित्रता एवं आध्यात्मिकता का उत्यादिक महत्व करने की त्वरा न करते हुए प्रथम प्रेक्षकों के हृदय में स्थान ग्रहण किया। प्रस्तुत नाटक ऐतिहासिक है। उसकी क्रीडाभूमि राजमहल है। फिर भी कालिदास ने तीसरे अंक में प्रमदवन में चित्रित दृश्यों की योजना की है, जो उनकी संविधानकला की परिचायक है।

दूसरे नाटक 'विक्रमोवंशीयम्' में कविका उद्देश्य सिर्फ लोकरूचिकों को संतुष्ट करना ही नहीं है, अपितु परिष्कृत करना भी है।

इस नाटक में कवि की कल्पना गगनगामिनी हुई है। अप्सराओं का हेमकूट पर्वत पर उतरना, विद्युत् सी गति से चित्ररथका आना, संकलामात्र से भूर्जपत्रका उत्पन्न होना, उर्वशीका लता के रूप में परिवर्तित होना और अंत में राजा दिव्य संगमणीय मणि को प्राप्त करके उर्वशी को पुनः पाता है यह सब रोमांचक है।

यहाँ पर प्रेम शुद्ध ज़रूर होता है। लेकिन फिर भी रागयुक्त है इससे भी शुद्धि होकर सत्वशीलता की और जाने हेतु कवि तृतीय नाटक अभिज्ञानशाकुन्तल की रचना करते हैं। नाटक का प्रारम्भ ही पवित्र-शांत तपोपन में होता है। अन्त भी मारीच ऋषि के आश्रम

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लालन-पालन भारतीय सामाजिक मर्यादा के अनुरूप सारे कार्यों का सम्पादन अपना धर्म समझते हैं। चाहे वह शकुन्तला ही क्यों न हो। शकुन्तला की किलकारियों, उस पर उनकी पैनी नजर भी उनकी जीवन्तता का राज होता है, जब तक उसका विवाह नहीं हो जाता, वह दुल्हन बनकर अपने पतिगृह नहीं चली जाती, वास्तविक पिता कण्व अत्याधिक चिन्तित् दिखते हैं। नवविवाहिता शकुन्तला के हस्तिनापुर गमन पर तो उनका पिता हृदय सीमा को तोड़ जाता हैं। एक ऐसे भी ऋषि हैं जिन्हें मात्र स्वकीय मान-प्रतिष्ठा की चिन्ता है, तनिक मान-सम्मान में विलम्ब हुई नहीं कि वे अपने तपबल का प्रभाव आजमाने लगते हैं। ऋषि दुर्वासा ऐसे ही व्यक्ति हैं क्योंकि अबोध, नवविवाहिता राजवैभव की स्वर्णिम परिकल्पना में खोई शकुन्तला भी उनके शप का भाजक बन जाती है, अन्त में, महाकवि के एक ऐसे तेजस्वी ऋषि भी हैं जिनके अन्तः तेज तक से दिशाएँ भास्वरित रहती हैं, जो सबों को ऐश्वर्य से भर देने की क्षमता से युक्त होते हुए भी स्वतः वायुसेवन द्वारा ही अपनी जीवन्तता बनाए हुए हैं। सर्वत्र लोक निष्णात नियमों का बखान करते हैं, ऋषि पत्नियों सहित अपनी पत्नी अदिति को पातिव्रत्य धर्म का पाठ पढ़ाते हैं।

निष्कर्षतः महाकवि के ऋषि कल्याणकारी होने चाहिए। तपश्चर्या के पुनीत कार्यों को सम्पन्न करते रहने के साथ-साथ उनको लोक कल्याण भावना सर्वोपरि होनी चाहिए।

*

CS-70

"कुलाभिमान मिथ्याभिमान" पर क्षेमेन्द्र के विचार

डॉ. श्रीमति प्रेमलता कुमारी, बिहार

महाकवि क्षेमेन्द्र के विचार से मनुष्य के जीवन के प्रथम भाग में होने वाला अहंकार कुलदर्प ही होता है। कुलाभिमान मनुष्यों को ग्रह के समान पकड़े हुए रहता है। लोक मोहवश व्यर्थ ही अपने को बड़ा कुल में उत्पन्न होने का अथवा अपने कुल का बड़प्पन करते हैं। मंहाकवि ने इसे एक सुन्दर उपमा से समझाया है–

"कुलस्य कमलस्येव मूलमन्विष्यते यदि।
दोषपङ्कप्रसक्तान्तस्तदावश्यं प्रकाश्यते॥"(दर्पदलन, कुलविचार, 7)

अर्थात् कमल के मूल का अन्वेषण यदि किया जाए तो वह कीचड़ में ही लिप्त पाया जाता है। कुल वस्तुत अविच्छिन्न संतति-परम्परा का नाम है। संसार में कोई भी कुल

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

में यदि सुन्दर गुणों की अविच्छिन्न परम्परा है तो वह बड़ा कुल माना जाता है। गुणप्रभाव के विच्छिन्न हो जाने पर कुल महत्त्वहीन हो जाता है। प्रस्तुत निबन्ध मे महाकवि क्षेमेन्द्र ने कुल सम्बन्धी अनेक दोषों को गिनाए हैं। उनका मानना है कि गुणवान् कुल में भी उत्पन्न पुत्र निर्गुण हो सकता है और वैसा पुत्र सम्मान का पात्र नहीं हो सकता। महाकवि ने इसका स्पष्टीकरण निम्न श्लोक से किया है–

''गुणवत्कुलजातोऽपि निर्गुणः केन पूज्यते।
दोग्ध्रीकुलोद्भवा धेनुर्वन्धया कस्योपयुज्यते॥'' (दर्पदलन, कुलविचार,13)

कवि कहते हैं कि पुरुषों का कुल होता ही नहीं है–''नास्त्येव पुंसां कुलम्''। (दर्पदलन, कुलविचार,15) सन्तान-तन्तु-क्रम का विस्तार करना स्त्रियों की ही परम्परा है।

कुलाभिमान को ही आभूषण मानने वाले व्यक्ति की माता, पितामही अथवा प्रतितपमही यदि स्त्री स्वभाववश दोषयुक्त हो जाती है, तो इस दोष से कुल समाप्त हो जाता है।

क्षेमेन्द्र ने पुराण-साहित्य से दुष्टकुल तथा उसमें उत्पन्न कुलाभिमानियों के उदाहरण दिए हैं। यथा-सूर्यवंश में दिलीप, रघु, राम आदि राजा हुए परन्तु उन्हीं के पूर्वज राजा त्रिशंकु महर्शि-पुत्रों से अभिशप्त हो चाण्डालत्व को प्राप्त हुए थे।

सूर्यवंश के अतिरिक्त सोमवंश का पूर्वपुरुष 'बुध' का जन्म देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा से चन्द्रमा द्वारा हुआ था।

दानवीर कर्ण कन्या कुन्ती की संतान थे और पाण्डव भी नियोग से उत्पन्न संतान थे। इन उदाहरणों से क्षेमेन्द्र ने स्पष्ट कर दिया है कि कुलाभिमान मिथ्याभिमान है।

*

CS-71

संस्कृत वाङ्मय में दास प्रथा एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य

डॉ. अपराजिता मिश्रा, जम्मू

वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक के सामाजिक दर्शन से यह विदित होता है कि दास प्रथा ने देश एवं काल के अनुरूप अपने कई आयाम भी बदले, एवं उसकी विविध प्रकारों की अन्विति समाज में देखी गई। ऋग्वैदिक काल में दास एक आर्येतर समुदाय था, जिनकी प्रवृत्तियाँ आर्य विरोधी थीं। इस काल में दास, लेन-देन तथा उपहार

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

की वस्तुओं के रूप में प्रयुक्त किए जाते थे, जिनमें पुरुष एवं स्त्री दोनों सम्मिलित थे। तदनन्तर उत्तरवैदिककाल में दास प्रथा का विस्तार भी हुआ एवं समाज में उसकी अनिवार्यता भी स्वीकार की गई, तथा इनकी स्थिति बदतर होती चली गई। मौर्य एवं गुप्तकाल के समय दासों की विविध कोटियाँ बनीं, जैसा कि पाली साहित्य के विनयपिटक में अन्तोजात, धनक्कितो तथा करमरानीती नामक दासों की तीन कोटियों का विवरण मिलता है लेकिन जातकों में दासों के क्रय-विक्रय का वर्णन मिलने के साथ-साथ, उस समय समाज में छः प्रकार के दासों के मिलने की संसूचना भी प्राप्त मिलती है, जबकि कौटिल्य ने पाँच प्रकार के दासों-ध्वजाहृत, आत्मविक्रयी, उदरदास, आहितक और दण्डप्रणीत का ही उल्लेख किया है, जो नारदस्मृति के तुल्य ही हैं। कालिदास एवं शूद्रक जैसे महाकवियों ने भी दास प्रथा का विवेचन किया है, जो राजसमाज में रहा करते थे। परन्तु दास प्रथा ने आज अपने स्वरूप में परिवर्तन कर लिया है। दक्षिण भारत में मंदिरों में आज भी दास एवं दासियों का प्रचलन देखने को मिलता है, जब कि उत्तर मध्य एवं पूर्वी भारत में घरेलू सेवकों के रूप में दास प्रथा की स्वीकारोक्ति देश काल एवं परिस्थिति के बदले रूप में मानव जीवनचर्चा के सम्पादन में द्रष्टव्य है। परन्तु अर्थक्रीत दास पहले भी हुआ करते थे, आज भी हैं। पहले भी वह अपने स्वामी से अर्थमई प्रवृत्तियों के चलते या बदले की भावनावश विश्वासघात कर बैठते थे और आज तो यह प्रवृत्ति समाज में व्यापक रूप में देखने को मिलती है, जिसके प्रमुख कारण अर्थसुचिता का अभाव, धनार्जनी प्रवृत्ति, असंतोष एवं महत्त्वाकांक्षा की जिजीविषा ही माने जा सकते हैं। सम्पूर्ण तथ्यों का निदर्शन शोध-पत्र में द्रष्टव्य है।

*

CS-72

बहुपतित्व प्रथा के बदलते आयाम

आरती शर्मा, जम्मू

वैसे तो मानव जीवन देश काल एवं परिस्थिति भी प्रभावी भूमिका निभाती है, क्योंकि यहाँ के निवासी, जहाँ यह चाहते हैं कि उनकी धरती का बंटवारा न हो, वहीं पुरुषों के सेना में जाने से कभी कभार होने वाली आकस्मिक मौतों से परिवार विखण्डित न हो जाए, इसलिए भी वहुपति रखने की विधा समाज में स्थित है, जबकि आसाम प्रदेश में भुखमरी से निबटने एवं जीवनचर्या के सुरक्षित सम्पादन हेतु बहुपति प्रथा को प्राथमिकता मिली हुई है। यह प्रथा पुराणों से निगमित होती प्रतीत हाती है। लेकिन महाभारत में द्रौपदी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वृत्तान्त में भी वहुपति प्रथा के दर्शन होते हैं। विष्णुपुराण में मारिसा के दशपतियों के होने का विवरण जहाँ उपलब्ध होता है, वहीं विष्णुपुराण एवं मत्स्यपुराण में द्रौपदी के पाँच पतियों का उल्लेख प्राप्त मिलता है, परन्तु इनमें वर्णित विषयवस्तु से यह भी ध्वनित होता है कि समाज में इस प्रथा को मान्यता नहीं मिली, शायद इसीलिए समाज में इस प्रथा के दर्शन आदर्श समाज में न होकर केवल निम्न या आदिवासी समूहों में द्रष्टव्य हैं, और आज यह प्रथा केवल वहाँ श्वासें गिन रही है। किन परिस्थितियों में इस प्रथा की उत्पत्ति हुई? क्यों इसे अपनाया गया? आज इस प्रथा की प्रासंगिकता क्या है? सम्पूर्ण तथ्यों का समाधान शोधपत्र में किया गया है।

*

CS-73

कालिदास की नाटययात्रा (प्रयोगप्रधानता से प्रयोगविज्ञान तक)

कालिन्दी परीख

नाटक प्रमुखतः परफोर्मिंग आर्ट है। कालिदास ने मालविकानिमित्र के आरम्भ में ही उसे प्रयोग प्रधान कहा है। इसलिए नाटक में निधूर्म की पवित्रता एवं आध्यात्मिकता का उत्यादिक महत्व करने की त्वरा न करते हुए प्रथम प्रेक्षकों के हृदय में स्थान ग्रहण किया। प्रस्तुत नाटक ऐतिहासिक है। उसकी क्रीडाभूमि राजमहल है। फिर भी कालिदास ने तीसरे अंक में प्रमदवन में चित्रित दृश्यों की योजना की है, जो उनकी संविधानकला की परिचायक है।

दूसरे नाटक 'विक्रमोवंशीयम्' में कविका उद्देश्य सिर्फ लोकरूचिकों को संतुष्ट करना ही नहीं है, अपितु परिष्कृत करना भी है।

इस नाटक में कवि की कल्पना गगनगामिनी हुई है। अप्सराओं का हेमकूट पर्वत पर उतरना, विद्युत् सी गति से चित्ररथका आना, संकलामात्र से भूर्जपत्रका उत्पन्न होना, उर्वशीका लता के रूप में परिवर्तित होना और अंत में राजा दिव्य संगमणीय मणि को प्राप्त करके उर्वशी को पुनः पाता है यह सब रोमांचक है।

यहाँ पर प्रेम शुद्ध ज़रूर होता है। लेकिन फिर भी रागयुक्त है इससे भी शुद्धि होकर सत्वशीलता की और जाने हेतु कवि तृतीय नाटक अभिज्ञानशाकुन्तल की रचना करते हैं। नाटक का प्रारम्भ ही पवित्र-शांत तपोपन में होता है। अन्त भी मारीच ऋषि के आश्रम

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

में होता है। दुर्वासा के शाप के कारण विरहकी आग में दोनों जलते हैं, और शुद्ध होकर जब बाहर निकलते हैं तो उनका प्रेम पूरे विश्वको आष्लेष में ले लेता है।

इस तरह यह तीनों नाटक क्रमशः आदिभौतिक, आदिदैविक तथा अंत में आध्यात्मिक लक्ष्य के प्रति गति करते हैं। जो प्रेक्षकों को भी क्रमशः ऊर्ध्व, उर्ध्वतर और उध्वतम भूमिकाओं पर ले जाता हैं।

*

CS-74

संस्कृत साहित्य में परिधान

कु. प्रतिभा श्रीवास्तव, बरेली

समग्र भारतीय चिन्तन सौन्दर्यमूलक है जो सत्य और शिव से सर्वथा अनुप्राणित है। वास्तव में सौन्दर्यहीन जीवन शुष्क एवं निराशाजनक होता है। हमारे ऋषियों की सोच सदैव आशावादी रही है। आशावादिता का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। सांसारिक आशाओं से व्यथित होकर भी व्यक्ति आशावादी बना रहता है। हाँ इतना अवश्य है कि उसकी यह आशावादिता संसार से नहीं ईश्वर से जुड़ जाती है। अतः व्यक्ति ईश्वर से जुड़कर तदनुकूल अपने को सौन्दर्यवान बनाना चाहता है। वस्तुतः साधना के मार्ग में प्रयोग की जाने वाली वस्तुएँ भी राग अथवा विराग को बढ़ाने वाली होती हैं। सांसारिक धर्म में प्रवृत्त व्यक्ति के लिए जो वस्तुएं राग में वृद्धि करती हैं, वही उसका सौन्दर्य है। वैराग्य पथ-प्रवृत्त व्यक्ति के लिए जो वस्तुएं इस क्षेत्र में वैराग्य वर्धक हैं उन्हीं में उनका सौन्दर्य है। प्रकृत-प्रसंग में परिधानोचित सौन्दर्य का साहित्यिक अनुशीलन अभिप्रेत है। इस दृष्टि से संस्कृत साहित्य में रेशमी तथा सूती परिधान जहाँ गृहस्थों, राजाओं, किंवा लौकिक कर्म प्रवृत्त जनों के लिए सौन्दर्य वर्धक हैं वहीं वल्कल, मृगचर्म तथा चीवर आदि वस्त्र देवाराध न रूप पारमार्थिक पथ-प्रवृत्त जनों का सौन्दर्य है। ऊनी वस्त्रों को भी परिधान की सीमा में प्रमुख स्थान प्राप्त है किन्तु उनका सम्बन्ध शिशिष्ट से है। यद्यपि शीत एवं उष्ण न केवल गृहस्थों को अपितु मुनियों, संन्यासियों को भी प्रभावित करती है। तथापि वे तितिक्षा वृत्ति होने के कारण ऐसे वस्त्रों को धारण नहीं करते। ये परिधान (ऊनी) तो केवल यथा ऋतु सांसारिक लोगों के ही आभूषण या अलंकरण हैं। वल्कल, मृगचर्म एवं चीवर के प्रयोग में यद्यपि कोई निश्चित सीमा रेखा नहीं बाँधी गई है तथापि मुख्यतया वल्कल एवं मृगचर्म साधकों, यज्ञानुष्ठान में दीक्षित जनों एवं ऋषियों मुनियों के लिए ही प्रयुक्त हुए

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हैं जबकि चीवर उपयोग का उल्लेख विशेषकर बौद्ध भिक्षुओं के सन्दर्भ में ही हुआ है। निश्चय ही परिधान न केवल बाह्य सौन्दर्य के आधार होते हैं अपितु इनका प्रभाव आत्मिक ऊर्जा प्रदानकर अन्तः सौन्दर्य प्रवर्धित करना है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि परिधान सौन्दर्य प्रसाधन के प्रमुख साधन हैं। इनका समुचित विन्यास ही एक अहल्लादकारी सौन्दर्य की सर्जना करने में सक्षम होता है।

*

CS-75

सौन्दर्य और प्रेम का उत्कृष्ठ समन्वय है–कर्पूरमंजरी

सत्यनारायण भारद्वाज, राजस्थान

कर्पूरमंजरी प्राकृत भाषा में रचित चार जवनिकाओं का सट्टक है। इसका कथानक रत्नावली के समान ही है। इसमें राजा चण्डपाल और कुन्तल राजकुमारी कर्पूरमंजरी की प्रणय-कथा वर्णित है यद्यपि इसका कथानक लघु है और चरित्र-चित्रण भी विशुद्ध नहीं तथापि यह प्राकृत सट्टक साहित्य का उत्कृष्ट ग्रंथ है।

रचयिता : इसके रचयिता यायावर वंशीय राजशेखर हैं। कवि के पिता का नाम दुर्दक और माता का नाम शीलवती था। राजशेखर ने कर्पूरमंजरी में अपने सम्बन्ध 'बालकवि', 'कविराज' एवं 'सर्वभाषा-चतुर आदि विशेषणों का प्रयोग किया है। इनके समय के संदर्भ अनेक मत-मतांतर प्रचलित हैं लेकिन निष्कर्षतः इनका समय 10वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना गया है।

सौन्दर्य : द्वितीय जवनिका में विदूषक अे जब राजा से कर्पूरमंजरी के सौन्दर्य को अंलकारों के माध्यम से अंलकृत बताया तब राजा ने उसके प्राकृति सौन्दर्य को उत्कृष्ट बताते हुए कहा कि:–

मुद्धाण णाम हिअआइं हरंति हंत
णेवच्छकप्पणगुणेण णिअंविणीओ।

छेआ पुणो पअइचंगिमभावणिज्जा
दक्खा रसो ण महुरिज्जइ सक्कखए॥

प्रेम : मुख्यरूप से तृतीय जवनिका में कवि राजा चण्डपाल के माध्यम से प्रेम का उत्कृष्ट रूप प्रकट करता हैं। इसमें प्रेम की परिभाषा, प्रेम होने के कारण, प्रेम का

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्वरूप आदि विषयों पर कवि ने बड़ी विद्वत्ता पूर्वक चर्चा की है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कर्पूरमंजरी सौन्दर्य और प्रेम का उत्कृष्ट समन्वय है। विस्तृत चर्चा शोधालेख में की जाएगी।

*

CS-76

पारिजातहरण चम्पू का पौराणिक अध्ययन

धर्मपाल, जम्मू

पारिजातहरण चम्पू के विषयवस्तु के अध्ययन से यह विदित होता है कि इस चम्पू की कथावस्तु को आचार्य शेषकृष्ण ने पद्मपुराण, विष्णुपुराण, भागवतमहापुराण्ण एवं विशेषकर हरिवंशपुराण में आए श्रीकृष्ण के कथानक से लिया है। महाकवि ने पारिजात नामक वृक्ष के संदर्भ विशेष में इस चम्पू की रचना की है। इस चम्पू को पांच उच्छ्वासों में विभक्त किया गया है। प्रथम उच्छ्वास में वाराणसी को स्वर्ग के समान भूमण्डल की शोभा मानते हुए पुण्यक व्रत के समापन अवसर पर देवर्षि नारद द्वारा रुक्मणी को पारिजात पुष्प देकर पारिजात पुष्प की महिमा का वर्णन सुनाकर सपत्नियों को उत्तेजित करने का प्रसंग है। द्वितीय उच्छ्वास में परिचारिकाएं अपनी स्वामिनियों को पारिजात पुष्प की वार्ता सुनाती हैं, और इससे कुपित होकर सत्यभामा रुष्ट होकर कोपभवन में चली जाती है, एवं श्रीकृष्ण का सत्यंभामा को मनाने का वर्णन प्रतिपादित है। तृतीय उच्छ्वास में सत्यभामा का परम कारुणिक वर्णन एवं भगवान श्रीकृष्ण द्वारा पारिजात वृक्ष को सत्यभामा के प्रांगण में स्थापित करने का आश्वासन सुनकर सत्यभामा विगतशोक हो गई। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण नारद जी से कहते हैं कि आप इन्द्र से कहना कि आपकी भ्रतृवधू व्रत के लिए पारिजात वृक्ष माँग रही है। चतुर्थ उच्छ्वास में देवर्षि ने भगवान शंकर के उत्सव में बैठे हुए इन्द्र से भगवान श्रीकृष्ण का संदेश सुनाया, परन्तु देवेन्द्र देवर्षि से कहते हैं कि युद्ध के बिना मैं पारिजात का एक पत्ता भी नहीं दूंगा। इन्द्र की यह इच्छा जानकर श्रीकृष्ण गरुड पर आरुढ़ होकर नन्दनवन में पहुँचे और पारिजात को उखाड़ लिया। पञ्चम उच्छ्वास में पारिजात का वृतान्त सुनकर देवेन्द्र जयन्त को सहायतार्थ लेकर निकले एवं चन्दनवन पहुँचकर, श्रीकृष्ण और इन्द्र का घोर संग्रम देखकर जयन्त और प्रद्युम्न, सात्यकि और वृहस्पति के घोर युद्ध को देखकर देवगण विस्तिम मत हो गए। वृहस्पति का सन्देश सुनकर अदिति और कश्यप अपने पुत्रों को युद्ध से रोकने हेतु पारियात्र पर्वत पर आते हैं। अदिति और कश्यप को देखकर युद्ध समाप्त कर कृष्ण पारिजात वृक्ष लेकर द्वारिका आ जाते हैं। द्वारिका में कश्यप आदि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ऋषिगण श्रीकृष्ण का अभिषेक करते हैं। उपयुक्त कथावस्तु का चार पुराणों में, अभिहित विवेचन शोधपत्र में सविस्तार किया गया है।

*

CS-77

महाकवि कालिदास काव्येषु नारी

रामपाल गंगवार, इलाहाबाद

कविकुल गुरू कालिदास ने अपनी सभी कृतियों में नारी जीवन से सम्बद्ध प्रायः समस्त पहलुओं पर प्रकाश डाला है। जहां उन्होंने नारी को कष्टप्रद बतलाते हुए–अर्थो हि कन्या परकीय एव (अभि.4/22) एवं कन्या खलु नाम कष्टम् (कुमार सं.) अशोच्या हि पितु कन्या सद्भार्तृप्रतिपादिता (कुमार सं. 6/79) न खलु मातापितरौ भर्तृवियोग दृःखितां दुहितरं द्रष्टुं पारयतः (अभि. 6) कहा है। दूसरी तरफ निपुण आनन्ददायी एवं सहयोगी भी बताते हैं–प्रायेण गृहणी नेत्राः कन्यार्थेषु कुटुम्बिनः (कुमार सं. 6/85) आपन्नार्ति प्रसमनफलाः सम्पदो ह्युतमानाम् (पूर्व मेघ. 53) निसर्ग निपुणाः स्त्रियः (मालवि.) एवं प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणं कहकर उसे निपुण एवं सहयोगी बताया है। कवि की दृष्टि कठिनाः खलुस्त्रियः (कुमार सं. 4/5) के माध्यम से केवल स्त्री कठोरता पर ही नहीं है अपितु उसे सौन्दर्ययुक्तसुकोमल एवं लज्जाशक्ति भी बतलाते हैं। स्त्री सौन्दर्य का नखशिख वर्णन तो क्रान्तद्रष्टा के काव्यों में प्रेक्षणीय है–अधरः किसलपरागः (अभि. 1/21) इदं किलव्याज मनोहरं वपु (अभि. 1/18) स्त्रीणां प्रियलोकफलो हि वेषः (कुमार सं. 7/22) इसके साथ ही साथ स्त्री-पुरुष को एक दूसरे का प्राण बतलाते हुए स्त्री को पुरुषों का सर्वप्रिय आनन्दप्रदा कहा है–

रमणीय खलु नवाङ्गनानां मदनविषयावतार (मालवि. चतुर्थांक)
मदः किल स्त्रीजनस्य विशेषमण्डलम् (मालवि. तृतीयांक)
स्त्रीणां आद्यां प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु (पूर्वमेघ/28)

फिर भी कविश्रेष्ठ ने स्त्री को पुरुषोपभोग मात्र की वस्तु न मानकर उन्हें गृहिणी, सचिव एवं सखा के रूप में निर्दिष्ट किया है–गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियाशिष्या ललितेकला विधौ (रघु. 8/67) एवं नास्ति भर्तुःसमो बन्धुः (विक्रमो.) इस प्रकार कविक्रांत दर्शी द्वारा स्त्री सम्बद्धा समस्त पहलुओं का अध्ययन किया गया है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-78

''संस्कृत वाङ्मय में पतिपरायणता एक-विवेचन''

रोशी गुप्ता, जम्मू

''पाति इति पतिः'' की व्युत्पत्ति से स्पष्ट है कि पति वही कहलाता है जो पत्नी की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक सभी विधाओं से रक्षा करे एवं उसे सम्मानित करे। संस्कृत वाङ्मय में ऐसे ही पति से अनन्य प्रेम रखने की अभीप्सा व्यक्त की गई है। जो पत्नी अपने पति से अनन्य प्रेम करती है उसे ही पति परायण माना जाता है। विष्णु पुराण में वर्णन मिलता है कि स्त्री का परम कर्त्तव्य पति सेवा है। यथा–''भर्तुशुश्रूषणं यथा स्त्रीणां परो मतः'' से स्पष्ट भी है। इसी तरह से मत्स्य पुराण में भी वर्णन मिलता है कि पत्नी का भाग्य पति है एवं उसका जीवन और धन दोनों पति पर ही आश्रित है। सावित्री की कथा पति परायणता का ही दृष्टान्त है वायु पुराण में प्रजापति अत्रि के वंश प्रसंग में पत्नियों के पतिव्रत धर्म का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। ब्रह्माण्ड पुराण में भी वर्णन मिलता है कि द्विजवर्मा की पत्नी अपने पति की कुशलता के लिए जप किया करती थी। शतपथ ब्राह्मण में भी सुकन्या नामक कन्या अपने वृद्ध पति च्यवन ऋषि की आजीवन अनुवर्तनी रूप में अभिहित की गई है। रामायण में सीता पतिपरायण रूप में जहाँ प्रसिद्ध है वहीं मंदोदरी एवं सुलोचना भी प्रतिपरायण स्त्रियाँ मानी जाती हैं। अभिज्ञान शाकुन्तल में दुष्यन्त के प्रति शकुन्तला तथा रत्नावली में वत्सराज की पत्नी पतिपरायण रूप में द्रष्टव्य होती हैं। इस प्रकार संस्कृत वाङ्मय में पति परायणता का विशद विवेचन देखने को मिलता है। सम्पूर्ण विवरण शोधपत्र में द्रष्टव्य है।

*

CS-79

कालिदास की कृतियों में पर्वत

डॉ. प्रभात्र सिंह ठाकुर, होशियारपुर

महाकवि कालिदास प्रकृति के पुजारी थे। उन्होंने प्रकृति के विभिन्न रूपों का बहुत ही सुन्दर, मनमोहक तथा रम्य वर्णन किया है। प्रकृति के इन सुरम्य रूपों में पर्वतों, नदियों, पठारों, दर्रों, घाटियों, वनों और वनस्पतियों का प्रचुर मात्रा में अपनी सभी कृतियों में उल्लेख किया है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पर्वतों का वर्णन इन्होंने अपनी कृतियों में बड़े ही अनूठे तथा सुन्दर ढंग से किया है। महाकवि कालिदास ने लगभग 25 पर्वतों का सुन्दर वर्णन अपनी कृतियों में किया है। सबसे अधिक वर्णन पर्वतराज हिमालय का हुआ है। हिमालय उत्तर दिशा में स्थित भारत भूमि का गौरव रूप तथा मुकुट है। कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग का प्रथम श्लोक ही इसका उदाहरण है।

अस्त्युत्तरस्यां दिशी देवतात्मा हिमालयो नाम नागाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

कुमार सम्भवम् में हिमालय की मनोरम छटा का विस्तृत वर्णन हुआ है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् तथा कुमारसम्भवम् में इसका वर्णन है। हिमालयराज के अतिरिक्त कालिदास ने लगभग 25 पर्वतों का उल्लेख अपनी कृतियों में किया है। ये सारे भारत भूमि में उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम दिशा में स्थित हैं। ये पर्वत हैं–मन्दराचल, केलास, सुमेरु, गन्धमादन, हेमकूट, रामगिरि, मलय, दुर्दुर, सह्य, मैनाक, महेन्द्र, यज्ञ, माल्यवान, विन्ध्यापाद, पारियात्र, विन्ध्य, आम्रकूट, नीचिगिरि, देवगिरि, गोवर्धन तथा त्रिकूट।

रघुवंश में मन्दराचल, केलास, सुमेरु, मलय, दुर्दुर, सह्य, त्रिकूट, महेन्द्र, मैनाक, मालयवान,, ऋक्ष, विन्ध्या, पारियात्र, गोवर्धन तथा चित्रकूट आदि पर्वतों का उल्लेख हुआ है, जबकि मेघदूतम् में केलास, रामगिरि, विन्ध्यपाद, आम्रकूट, नीचिगिरि, देवगिरि, गोवध 'न तथा विन्धयाचल, पर्वतों का वर्णन है। कुमारसम्भवम् में मन्द्रयाचल, केलास, सुमेरु, गन्ध मादन तथा मैनाक का चित्रण हुआ है। विक्रमोर्वशीयम् में गन्धमादन तथा हेमकूट और आभिज्ञानशाकुन्तलम् में हेमकूट पर्वत का उल्लेख है।

*

CS-80

कुव्जायत्रम् काव्य का समीक्षात्मक परिचय

चन्द्रिका देसाई, गुजरात

'कुव्जायत्रम्' काव्य सांप्रतकवि श्री गिरिधर मिश्रजी एवं रामभद्रा आचार्य जी की रचना है।

प्रज्ञाचक्षु गिरिधर मिश्रजी प्रत्युयन्न काय एवं बटुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। आज वे रामभद्राचार्य जी के नाम से प्रसिद्ध हैं चित्रकूट तुलसीपीठ के पीठाध्यक्ष और उत्तर प्रदेश

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri Foundation USA

चित्रकूट में स्थित विकलांग विश्वविद्यालय के स्थापक तथा कुलपति श्री हैं। उपनिषद्, रामायण, भागवत् आदि अनेक ग्रंथ उन्हें कंठस्थ हैं। भागवत्, रामायण के अच्छे कथाकार कवि श्री ने तीस से ज़्यादा ग्रन्थों की रचना की है।

कविश्री गिरिधर मिश्र जी की कृति ''कुब्जापत्रम्'' पत्र शैली में लिखा गया खण्ड काव्य प्रकार का ऊमिकाव्य है।

काव्य का प्रेरणा स्त्रोत

श्रीमद भागवत् में दशम स्कंध पूर्वार्ध के अध्याय बयालीस, सैंतालीस, अड़तालीस में वर्णित कुब्जाकथा कवि के काव्य का प्रेरणास्त्रोत है।

कविश्री ने ''कुब्जायत्रम्'' में कुब्जा को, कुब्जा के व्यथित हृदय को वाचा देकर भागवत के उपेक्षित पृष्टकों काव्यन्याय दिलवाने का प्रशस्त कार्य किया है।

कथावस्तु का निर्वहन, कुब्जा की मनोव्यथा, विकलांग समस्या और समाधान, कुब्जा की भक्ति प्रणति, रसनिरूपण, शैली, छन्द, अलंकार वैविध्य

उपसंहार ''कुब्जापत्रम्'' काव्य सच में पत्रशैली में लिखा गया अनूठा पत्रकाव्य है। भक्तिभाव से सभर इस काव्य के कई पद्य प्राचीन कृष्ण भक्ति स्त्रोत काव्य के श्लोकों का स्मरण कराते हैं। काव्य की लयबद्धता से उत्पन्न अनुराग सचमुच सराहनीय है। महाकवि कालिदास माघ, जगन्नाथ आदि पुरोगामी कवियों की अमिट छाया कवि के काव्य में प्रकट रूप से उभर कर भावक को ध्यानचित करने में मजबूर करती है।

*

CS-81

संस्कृत साहित्यतील बालपात्रांचे कथविकासान योगदान (अभिज्ञानशाकुन्तलम, मृच्छकटिकम् आणि उत्तरामचरितम्)

. खानोरकर मूरनाली, नागपुर

संस्कृत साहित्यामध्ये दृश्य आविश्रव्य असे दोन प्रकार मामले जातात-त्यापैकी दृश्य काव्यामध्ये रूपक व रूपकाचे प्रकार येवात्। दृश्य काव्यात श्रव्य कात्म्यात्या तुलनेत प्रत्यक्ष क्रिया किंवा प्रसंग दिसन असल्यामुळे ते लाक्त प्रभावी ठरते। संस्कृत नाटकांमध्ये अनेक पात्रे आश्कून येतात. तर त्यात काटी गौण तर काही मुख्य असतात नायक नायिका यांत्या

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri and eGangotri

सभावती कथानक फेर धरतच असते। परंतु गौण पात्र सुद्ददा कथाविकासात मोलाची भूमिका बलावतात।

प्रस्तुत शोध निबंधात संस्कृत नाटकातील महत्वाय्य पण दुर्लक्षित अश्या बाल पात्रांवर भी प्रकाश टाकवार आहे. कोणताही नाटककार किंवा कवी कथावस्तूचा विकास करतांना अनेक पात्रांचा, त्यांच्या कार्याचा उपयोण करुन होतो याचाच विचार करुन मी प्रस्तुत निबंधामध्ये कथेच्या विकासात था बालपात्रांचा नाटककाराने किती कोशल्याने उपयोग करुन घेतला आहे. हे दर्शविगार आहे या बालपात्रांमुडे कथेला कशाप्रकारे कलाटनी मिहाली, ती कलाटनी कथा विकासासाठी आवश्यक होती का? व जर असेल नर त्यामुडे नाटकाच्या कथेचे फलप्राप्तीत ते सहाय्ययभूत ठरले का?

❋

CS-82

धनपालाच्या तिलकमञ्जरीतील दृष्टिगोचर सूक्ष्म-निरीक्षण दृष्टी

जगरूत दीपक, नागपुर

संस्कृत साहित्यामध्ये गद्य आणि पद्य साहित्यरचनाकारानी आपल्या प्रतिभेच्या जोरावर. अप्रतिम असे लेखन केले आऐ. त्यानी संस्कृति आणि सभ्यता तया कश्या प्रकाख्या होत्या, यांचे मार्मिक वर्णन केले आटे. आणि अशा गद्य रचनाकारांमध्ये धनपाल यांचे नाव ण येणे कसे शक्य आहे? संस्कृत गद्य काव्यामध्ये वेगली छाप पाणारे धनपाल यानी त्यांनी निर्माण केलेल्या रत्नापैकी एक रत्न मृणजे 'तिलकमञ्जरी'. या प्रस्तूत गद्यकाव्यात धनपालाचे सूक्ष्म निरीक्षण व सर्वज्ञता कशा प्रकारे आयणास दिसून येते ते या शोध निबंधा मधून मी प्रस्तूत करणार आटे.

प्रत्येक कवी सभोवतीच्या गोरि न्याताळतो आणि त्याना आपल्या काव्यात स्थान देतो. धनपालाने आवसीभोवतीचा परिसर व्यापक असला तरी त्याचेयोग्य प्रकारे सूक्ष्म निरीक्षण केले असे आठळून येते. यावरून त्याना प्रत्येक विधेचे, कलेचे ज्ञान कित्ती प्रगलभपणे होते हे आपणास दिसून येते. जसे प्रस्तूत गद्याकाव्यान चित्रकले बछल. नायिका तिलकमञ्जरी अत्यंत कौशल्याणे हरिवाहणाचे चित्र कसे रेहवाहते याचे वर्णन अतिशय सून्दर पणे आळे आहे. पूर्वी चित्र काठणे आणि अवलोकन करणे असे दोन्ही मनोरंजनाचे साधने होती असे आठळते.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

❋

बुद्धचरित' व 'पद्यचूडामणि' काही प्रसंमांची तुल्ना

अंबोर आशा उदयराज, नागपुर

आचार्य अश्वयोषांनी रचलेले 'बुद्धचरित' व आचार्य बुद्धघोषांनी रचलेले 'पद्यमूडामणि' ही दोनी महाकाव्ये तथागत गौतम बुद्धाच्या जीवनावर आधधारलेली आहेन. पद्यचूडामणिचे मूल स्त्रोत ललितविस्तर, बुद्धचरित असून त्यावर जातक कथांचाही प्रभाव योग कार फार जाबवने। बुद्धचरितातकि घटनांवर लालितविस्तर व पालि साहित्यातीचष्ट काही ग्रथांचा प्रभाव दिसतो.

आ अश्वघोष वा आ बुद्धघोष यांनी 'ललितविस्तर' मछून अनेक प्रसंग जसेच्गा तसे घेनले असले, को त्याती, प्रसंगामध्ये बरेच अंतर। भेद आहे. कवी आपत्या कल्वनेने गाही परिवर्तन करीत अरुतो. ते कथाविकम्पाच्वा दृष्टीने आवश्यकुटी अरुते. प्रस्तत शेघ निबंध ान उपरोक्त महाबाणा जीस प्रसंमाचा कथानिकासाच्या बरणीत कथा उपयोग करवून धेवल, माणि त्या घटना कथाविमासान बदत घडवून आणजास माहच्यभूत ठरल्यात किंवा नाही याचा विचार करणर आहोन.

*

CS-83

कालिदासीय साहित्य में उभयमुखी प्रेम निरूपण

नबीता जम्वाल, जम्मू

गार्हस्थ्य धर्म का मूल अटूट दाम्पत्य बंधन माना जाता है। पत्नी का पति के प्रति एवं पति का पत्नी के प्रति उभयमुखी प्रेम की अन्विति ही दोनों में असीम आस्था एवं स्नेह तथा विश्वासमयी प्रवृत्तियों की जन्मदात्री मानी जाती है। महाकवि कालिदास ने अपने महनीय ग्रन्थों में उभयमुखी प्रेम का निरूपणकर लोकजीवन को यह समझाना चाहा है कि जीवन रूपी गाड़ी उभयमुखी प्रेम के पल्लवन के द्वारा ही बिना किसी अवरोध के चलती रहती है किन्तु यदि एकपक्षीय प्रेम हो जाए तो जहां गृहस्थ धर्म बाधित हो जाता है वहीं परिवार भी टूट जाते हैं। रघुवंश के 14वें सर्ग में-''ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाक विस्फूर्जथुरप्रसह्यः।।' नामक प्रसंग में सीता लक्ष्मण से राम द्वारा लोकापवाद श्रवण के कारण अपने परित्याग के विषय में कहती है कि मेरे दूसरे जन्मों में किए गए पापों का असहीय परिणाम रूपी यह वज्रपात है। यहाँ सीता राम को दोष न देकर भाग्य को

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दोष देती है जो राम का सीता के प्रति एवं सीता का राम के प्रति उभयमुखी प्रेम की अभिव्यक्ति माना जा सकता है। इसी प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तल में ''यदार्यमस्यामाभिलाषि मे मन.'' तथा ''अकृर्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते'' तथा 'द्वर्योननु युवयोरन्योन्यानुस्प्रत्यक्ष:'' नामक प्रियंवदा के कथन से शकुन्तला में उभयमुखी प्रेम का निरूपण महाकवि कालिदास ने करवाया है। इसी तरह मालविकाग्निमित्रम् में मालविका और अग्निमित्र, विक्रमोवंशीयम् नामक नाटक में उर्वशी एवं पुरूरवा में भी उभयमुखी प्रेम की अन्विति महाकवि कालिदास ने की है। मेघदूत में तो उभयमुखी प्रेम एवं आदर्श दाम्पत्य सम्बन्धों का महनीय दृष्टान्त कालिदास ने लोकजीवन के समक्ष रखा ही है इसी तरह कुमारसम्भव में शिव और पार्वती के जीवनचर्या निरूपण प्रसंग में उभयमुखी प्रेम का निरूपण देखते ही बनता है। उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरणों का विस्तार से विवेचन शोधपत्र में सन्निहित है।

*

CS-84

महाकवि कालिदासाच्या साहित्यवाङ्मययांतील धर्मशास्त्रीय विवाह विचार

पं. मधुकरशास्त्री, नागपुर

ईश्वराने मानवास जे शरीर दिले आहे, ते शुद्ध व पुनीत योग्य आश्या संस्कार ने संस्कारित करुन, त्याचा सदुपयोग आणि उपभोग धेतला तर, जीवनांत अधिक आनंद प्राप्त हातो, या भारतीय हिन्दु वैदिक संस्कृतीतत्वाची मूळ प्रेरणा असत्यामुळे या संस्काराचे सोळा पभागकेले आहे त्यांत विवाहसंस्कार स्त्री व पुरुषांच्या दृष्टीने अतीशय अवळचा तिकाच महात्वाचा आहे

गृहस्थाश्रमी होऊन मनुष्याला देवासाठी, त्याच्या प्रीतीकरिता यज्ञ करता यावेत, शिवाय प्रयोत्पादन (संतति) उत्पन्न करता यावी, हाथ विवाह करण्याचा प्रधानहेंतु वेदकालीन होता, ऋग्वेदादि वेदवाङ्मयांत याचा उल्लेख आहे. स्मृतिकार व धर्मग्रंथनिबंधकाराच्या मताप्रमाणे ध र्माचरण, प्रजा व त्याच्या अनुषंगाने नरकोत्तरण, सोबतच रतिसुख ह्यागोष्टी प्राप्त होणे, हे विवाहाचे तीन प्रधान हेतु असतात. असे स्पष्ट केले आहे.

गृह्यसूत्रे, धर्मसूत्रे व स्मृति ह्यांच्या कालापासून विवाहंचे आठ प्रकार असत्याचे दिसून येते. त्यांत ब्राह्म, प्रजापत्य. आर्ष दैव, गांधर्व, आसुर, राक्षस व पिशाच असे प्रकारआहेत, ह्या सर्वांचे वर्णने विविध स्मृतिकारांनी आपापल्या स्मृतिग्रंथांत विस्तारपूर्वक दिलेली आहेत.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri Foundation USA

CS-85

शूद्रकाच्या मृच्छकटिकानून प्रतिबिंबित होणारे सामाजिक जीवन

शिखा शाहिना मोहम्मद, नागपुर

संस्कृत नाट्यसाहित्यातील प्रगल्भ प्रकरण मृणून ज्याचा गौरव केल्या जातो असे 'मृच्छकटिकम्' टे प्रकरण महाकवी शूद्रकाले रचले आहे. हे सांगायला नकोच: मटाकरी शूद्रक हे संस्कृत साहित्यात आजती त्यांच्या अन्य नाटकांमुळे आणि वैशिष्टयांमुळे चडन्चत आटे. प्रत्येकच नाटककार किंवा कवी आपत्या साहित्या सून तत्कालीन समाजाये चित्र थोड़या-पज्ञार फरकाने चित्रित करीन अयतो परंतु शूद्रकाचे बैशिष्टय आसे की त्याने तत्कालीन समाजान्ये वासतव दर्शन आपल्या प्रकरणातून केले शिववाय त्याचे आणखी वैशिष्टय आणे की त्याने रंगविलेले सामाजिक जीवन हे मध्यम वर्गीय समाजांचे आहेत दूत, चेट यासारख्या नीच पात्रानून त्याने समाजाचे यथातथ्य चित्रण केले. जुगार, चोरी यासारखी गुन्टेगारीची कृत्ये तेव्हाही ध डत असत हे दाखवून दिले.

'मृच्छकटिकम' हे प्रकरण रचन्याभागच। शुद्रकाचा मूळ उद्देश चारूदत्त वसन्तसेना यांच्या प्रणयाची फलमुती आहे असे वाटत असले तरी त्याला आपल्या या कतीतून तत्कालीन समाजाचे त्रिणच कराक्याचे तोते हे सूक्ष्म निरीक्षणाली कक्षात येते. शिवाय नाटयशास्त्री नियमाना थोडे बाजूला सारून त्याने काही घटना या प्रकरणात छातल्या आहेत जसे-या नाटकाल शूद्रकाने पाउस यासाररवी नैसर्गिक घटना नाटयमयरित्या रेखाटली आहे. उदाहरण आभाल गडगडत आहे, वीजाचमकन आहे आणि पावसात ओली चिंन झालेकीव वसन्तसेना चायदत्ताजवल पोटेचते।

*

CS-86

संस्कृत रूपकों में विदूषक

डॉ. मोहन मिश्र उपाचार्य, भागलपुर

विदूषक भारतीय हास्य का प्राचीन प्रतीक और उसकी वेश-भूषा, बातचीत आदि हास्योत्पादक होती है। विदूषक पद वि+दूष+णिच्+णबुल्। अर्थात् जो भाँति-भाँति के स्वाँग बनाकर स्वयं को भद्दा रूप देकर दर्शाकें को हँसाता है, वह विदूषक नाम से अभिहित किया गया है। उसकी असंगत, असम्बद्ध तथा विपरीत शब्दावली, वाचिक और रहन-सहन

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

की विधि तथा हँसाने वाली आकृति, क्रमशः आंगिक एवम् आहार्य की और इंगित करती है। उसकी रूपप्रतिष्ठा में वाचिक, आंगिक तथा आहार्य अभिनय की और संकेत है। वह जाति का ब्राह्मण होता है–

वामनो दन्तुरः कुब्जो द्विजन्मा विकृताननः।
खलतिः पिंगलाक्षञ्च संविधे यो विदूषकः॥ (नाटयशास्त्र, 35/35-37)

भरत मुनि से लेकर आचार्य विश्वनाथ तक तथा अत्याधुनिक पूर्वी एवं पश्चिमी विद्वानों ने उसके लक्षण पर पर्याप्त विचार किया है जो एक दूसरे से प्रायः साम्य रखता है।

प्रस्तुत शोध पत्र में विदूषक पर सम्यक प्रकाश डाला गया है।

❋

CS-87

बुद्धचरित का समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. मधु कुमारी, भागलपुर

संस्कृत महाकाव्यों की अजस्र परम्परा में अश्वघोष का अन्यतम स्थान है। वस्तुतः जितने भी बौद्ध कवियों ने संस्कृत भाषा का आश्रय लेकर काव्य-रचनाएँ कीं, उन सभी बौद्ध कवियों में अश्वघोष अग्रगण्य हैं। साहित्य के क्षेत्र में अश्वघोष की तीन कृतियाँ निःसन्दिग्ध रूप से स्वीकार की गई हैं–बुद्धचरित, सौन्दरानन्द तथा शारिपुत्रप्रकरण।

अश्वघोष के प्रस्तुत महाकाव्य बुद्धचरित से चीनी यात्री इटिसंगसुपरिचित था। इटिसंग के समय तक यह सम्पूर्ण-28 सर्गात्मक-उपलब्ध था। पाँचवीं शती में किए गए चीनी अनुवाद तथा सातवीं शती में किए गए तिब्बती अनुवाद में भी 28 सर्ग उपलब्ध हैं। किन्तु सम्प्रति इस महाकाव्य का जो संस्कृत रूप प्राप्त होता है उसमें मात्र 17 ही सर्ग हैं, जिनमें भी अन्तिम चार सर्गों की प्रामाणिकता सन्दिग्ध है। कहा जाता है कि 19वीं शती के अन्त में अमृतानन्द नामक एक नेपाली पण्डित ने इस अन्तिम चार सर्गों को लिखकर जोड़ा। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने हस्तलिखित पाण्डुलिपि के आधार पर जो संस्करण प्रकाशित किया उसमें भी 14 सर्ग ही हैं। डॉ. जॉन्स्टन ने बुद्धचरित महाकाव्य के चीनी और तिब्बती अनुवादों को आधार बनाकर उसका आंग्ल अनुवाद किया है। बुद्धचरित महाकाव्य का आधार ललितविस्तर नामक बौद्धग्रन्थ है। किन्तु ललितविस्तर के अव्यवस्थित वर्ण्यविषय तथा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

असम्बद्ध वर्णनों के स्थान पर बुद्धचरित की कथावस्तु पूर्णतया व्यवस्थित एवं वर्णन नितान्त प्रसंगानुकूल हैं। इस महाकाव्य के प्रथम पाँच सर्गों में भगवान बुद्ध के अलौकिक जन्म वर्णन से लेकर महाभिनिष्क्रमण तक की प्रसिद्ध कथा है। पष्ठ तथा सप्तम सर्ग में सिद्धार्थ का तपोवन प्रवेश, अष्टम सर्ग में अन्तःपुर की स्त्रियों का विलाप, नत्रम् सर्ग में सिद्धार्थ के अन्वेषण का प्रयास, दशम सर्ग में सिद्धार्थ का मगघ गमन, एकादश सर्ग में काम की निन्दा, द्वादश सर्ग में बुद्ध का शान्ति प्राप्ति के लिए महर्षि अराड के समीप गमन तथा महर्षि द्वारा धर्मोपदेश, त्रयोदश सर्ग में कामदेव के द्वारा बुद्ध की तपस्या में विघ्न और मार पराजय तथा चतुर्दश सर्ग में बुद्धत्व प्राप्ति का वर्णन है। संस्कृत अंश यहीं तक प्रमाणिक माना गया है।

यह संस्कृत महाकाव्य ही वस्तुतः अश्वघोष की विजय-पताका है। इसमें अश्वघोष ने भगवान बुद्ध के संघर्षमय जीवन की विविध घटनाओं का सजीव एवं कवित्वपूर्ण वर्णन किया है।

प्रस्तुत शोधपत्र में बुद्धचरित का सांगोपांग विवेचन किया गया है।

❋

CS-88

मुद्राराक्षस में नायक की समस्या एक समाधान

डॉ. संगीता, मुजफ्फरपुर

मुद्राराक्षस नाटक के तीन पात्र चन्द्रगुप्त, राक्षस एवं चाणक्य अलंकारशास्त्रोक्त नायक के अधिकांश गुणों से सम्पन्न होने के कारण नायकत्व की योग्यता रखते हैं। यही इस समस्या का मूल हैं।

चन्द्रगुप्त सचिवायत्त-सिद्धि राजा हैं। नाट्यशास्त्रीय नियमों के अनुसार नायक द्वारा उच्चरित भरत वाक्य का पाठ वे नहीं करते। अंतः ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं नाटककार को भी उनका नायकत्व अभीष्ट नहीं है।

मुद्राराक्षस के अधिकांश टीकाकार चाणक्य को नाटक का नायक मानते हैं। चाणक्य मुद्राराक्षस के समस्त घटनाचक्र का नियामक अवश्य है किन्तु यह स्थिति तो महाभारत में श्रीकृष्ण की भी है। वस्तुतः चाणक्य नाटक का नायक नहीं अपितु राक्षस एवं चन्द्रगुप्त को फल प्राप्ति कराने में मुख्य हेतु मात्र है। कठोरता, क्रूरता, कुटिलता एवं क्रोध जैसी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चारित्रिक विशेषताओं ने भले ही चाणक्य को विश्व का सर्वाधिक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ बनने में सहायता प्रदान की हो, किन्तु नाटक में इन चारित्रापकर्षक स्वाभावगत विशेषताओं के कारण उसका चरित्र सहृदय सामाजिकों के लिए अनुकार्य नहीं हो सकता, जैसा कि नायक का होता है।

वस्तुतः राक्षस ही मुद्राराक्षस का नायक है, क्योंकि नाटककार विशाखदत्त का सम्पूर्ण प्रयत्न नंदों के विनाश से विचलित राक्षस को प्रकृतिस्थ करना है। राक्षस का चंद्रगुप्त के साथ स्वेच्छा से संधि करना उसके चरित्र में महान दोष उत्पन्न करता है। अतः नाटककार ने अपनी नाटकीय प्रतिभा एवं घटनाओं के अपूर्व गुंफन द्वारा राक्षस को उसकी इच्छा के विपरीत चन्द्रगुप्त का अमात्य पद स्वीकार करवाकर उसके चरित्र में लोकोतरत्व का आधान कर दिया है। नाटक का अन्य कोई भी पात्र राक्षस के समकक्ष लोकोतर चरित्र का स्वामी नहीं है। अतः राक्षस ही नायक है। वह एक कूटनीतिज्ञ, सेनापति, शासक एवं मंत्री भी है। उसके विरोधी भी उसकी प्रशंसा करते हैं। अपने मित्र चंदनदास के लिए प्राणोत्सर्ग का निर्णय उसके चरित्र को वंदनीय बना देता है।

इस प्रकार राक्षस ही मुद्राराक्षस का नायक है। वही नाटक में भरत-वाक्य प्रस्तुत करता है। मुख्य अधिकारी कथा में चन्द्रगुप्त के साथ राक्षस को भी फल-प्राप्ति होती है। उसका मित्र चंदनदास मृत्यु से बच जाता है। मलयकेतु एवं चन्द्रगुप्त की कृपा राक्षस को प्राप्त होती है। उसे बड़े साम्राज्य का अमात्य-पद प्राप्त होता है तथा मलयकेतु से विश्वासघात का अपयश एवं स्वामी नंद के प्रति कृतघ्नता का दोष दूर हो जाता है तथा उसके चरित्र को लोकोतर निर्मल उत्कर्ष की प्राप्ति होती है। नाटकों का उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ सज्जनों का अभ्युदय एवं दुर्जनों का अपकर्ष प्रदर्शन करना भी है। इस दृष्टि से विशाखदत्त का प्रतिनिधि-पात्र राक्षस ही है, जिसे अभ्युदय की प्राप्ति होती है।

*

CS-89

महाकवि कालिदास की स्त्री-विषयक धर्मशास्त्रीय दृष्टि

शिवशंकरकुमारो मिश्रा, वाराणसी

जिस प्रकार साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है वैसे ही वह कवि के व्यक्तित्व का भी प्रतिबिम्ब होता है, इसलिए साहित्यकृति से जैसे हम उस समाज के बारे में अनुमान कर सकते हैं वैसे ही उस कवि के विचारों, विकारों का भी अंदाजा लगा सकते हैं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कविकुलगुरु कालिदास की साहित्य कृतियों में भी यद्यपि उनके जीवन के बारे में हमें कुछ भी जानकारी नहीं मिलती तथापि उनकी स्त्री-विषयक धर्मशास्त्रीय दृष्टि पूर्णतः दृष्टिगोचर होती है।

मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय, अभिज्ञानशाकुन्तल ये तीन नाटक, कुमार संभव और रघुवंश ये दो महाकाव्य, मेघदूत जैसा अतीव सुन्दर गीतिकाव्य और षड् ऋतुओं का सजीव चित्रण करने वाला ऋतु-संहार नामक वर्णनपरक लघुकाव्य महाकवि के स्त्री विषयक ध र्मशास्त्रीय दृष्टिकोण के प्रकाशक हैं। कालिदास के सर्वसम्मत स्वीकृत सप्तरंगीन इन्द्रधनुष में प्रतिबिम्बित स्त्रीविषयक धर्मशास्त्रीय विचार क्या थे, क्या स्त्रियों के विषय में वे प्रतिगामी विचार के थे या उदारमतवादी थे? इस तथ्य का अनुमान करना ही इस लघुशोध निबन्ध का उद्देश्य है।

शिक्षा के पश्चात् स्वाभाविक रूप से उपस्थित होने वाला प्रश्न, विवाह महाकवि को भी अभिप्रेत है। धर्मशास्त्रों में सद्योद्वाहा अर्थात् शिक्षा समाप्ति के बाद तुरन्त विवाह करने वाली स्त्री और ब्रह्मवादिनी अर्थात् आमरण ब्रह्मचर्य पालन करने वाली स्त्री ये स्त्रियों के दो प्रकार देखने को मिलते हैं लेकिन कालिदास साहित्य में एक 'गौतमी' को छोड़कर ब्रह्मवादिनी स्त्री के दर्शन अन्यत्र कहीं नहीं होते गृहस्थ आश्रम अप्रत्यक्षतया समाज का आधार होने के कारण विवाह आवश्यक है ऐसा कालिदास का मत प्रतीत होता है उक्त विषय के समर्थन में निम्न प्रमाण दिए जा सकते हैं–

शकुन्तला विदाई के समय व्याकुल होकर कण्व से पूछती है कि, 'तात! किं सख्यौ अपि निवर्तिष्येथे?'' तब काश्यप उसे समझाते हैं 'वत्से इमे अपि प्रदेये तन्न युक्तमनयोस्तत्रगन्तुम त्वया सह गौतमीय यास्यति'' अर्थात् पुत्री इनका भी विवाह होने वाला है अतः इनका वहाँ जाना उचित नहीं, तुम्हारे साथ गौतमी आएगी उक्त संवाद यह द्योतित करता है कि विवाह अवश्यंभावी है।

2. धार्मिक जीवन में स्त्री का स्थान–कालिदास के काल में धर्म मानवीय जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता था और मानो यज्ञ उसका केन्द्र था 'सहधर्मचारिणी' यह शब्द ही धार्मिक जीवन में स्त्री का समान स्थान व्यक्त करता है कालिदास ने पत्नी को धार्मिक क्रियाओं में समान स्थान दिया है ऐसा अधोलिखित प्रमाणों से पुष्ट होता है।

शिव हिमालय से पार्वती की मांग करने के लिए सप्तर्षियों को निमन्त्रित करते हैं। उनके साथ आई हुई अरुंधती को देखकर उनके मन में विवाह करने की अभिलाषा और भी दृढ़ हो जाती है इस पर कालिदास का अभिप्राय है कि यह उचित ही है क्योंकि–

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूलकारणम।

पार्वती के विवाह के समय कुल पुरोहित उससे कहते हैं–

शिवेन भर्त्रा सहधर्मचर्या कार्या त्वया मुक्तविचारयेति

3. स्त्रियों के साथ दाक्षिण्य–कालिदास के बहुपत्नीक नायक दक्षिण नायक हैं नूतन युवती के प्रेम से व्याकुल होने पर भी अग्निमित्र, पुरुरवा, दुष्यन्त ये सभी नायक प्रथम पत्नियों का आदर करते हैं, उनकी भावनाओं का कद्र करते हैं, उन्हें दु:खित नहीं करना चाहते, उनकी अनुज्ञा के बिना नूतन प्रिया से विवाह करने का विचार भी मन में नहीं लाते एवं प्रसंग आने पर वे अपनी प्रथम पत्नियों से क्षमा चाहते हैं, उनके पांव तक चूमते हैं।

निष्कर्ष–

अन्त में पूरे कालिदास साहित्य के अनुशीलन से कालिदास के स्त्री विषयक ध र्मशास्त्रीय विचारों के संदर्भ में हम कुछ निष्कर्ष निकाल सकते हैं जो इस प्रकार हैं–

1. कालिदास को कन्या जन्म पुत्र जन्म जितना ही आनन्दकर है।

2. स्त्री शिक्षा विषयक कालिदास का दृष्टिकोण अत्यन्त उदार है।

3. कालिदास को प्रौढ़ विवाह ही सम्मत हैं प्रेमविवाह अगर विचार पूर्वक हो तो उन्हें असम्मत नहीं है।

4. नारी के सम्बन्ध में कालिदास की विचारधारा अत्यन्त प्रगतिशील दिखाई देती है।

*

CS-90

महाभारत में वर्णित कथावस्तु के आलोक में वेणी संहार की कथावस्तु का नाटकीय दृष्टि से मूल्यांकन

डॉ. (श्रीमती) मीना शुक्ला, रांची

संस्कृत साहित्य की नाट्यकृतियों में भट्टनारायण कृत वेणीसंहार नाटक एक उल्लेख्य कृति है। इसका उपजीव्य यद्यपि महाभारत है, किन्तु नाटककार ने अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करते हुए उसमें पर्याप्त परिवर्तन-परिवर्धन किया है। ऐसे परिवर्तन नाटक में नाटकीयता-वध 'न करते हैं और कथानक की प्रख्यातता पर भी आँच नहीं आने देते हैं। चूंकि वेणीसंहार रूपक का प्रथम भेद 'नाटक' है, अतः इसकी मूल कथा की आत्मा में कवि परिवर्तन नहीं कर सकते हैं, किन्तु उन्होंने जो परिवर्तन किए हैं उनके कारण कथा में मौलिकता भी बनी रहती है और साथ ही साथ कृति में नाटकीयता भी बढ़ जाती है। कवि ने वस्तु, नेता और रस तीनों की दृष्टियों से अपेक्षित परिवर्तन किया है, किन्तु कथा-वस्तु के रूप में जो उन्होंने अपने वैशिष्ट्य का प्रदर्शन किया है वह कथानक को अत्यधि क रोचक और ग्राह्य बना डालता है।

*

CS-91

कालिदास का शाप विद्यानिवास मिश्र की दृष्टि में

सञ्जय कुमार, वाराणसी

कविकुलकलाधरकविशिरोमणि महाकवि कालीदास संस्कृतसाहित्य के हीरक मणि हैं। उनका साहित्य मधुर स्पन्दन छोड़ने वाला एवं भाव हृदय में लौटने वाला है। उनके भाव का ही एक विशाल पुञ्ज शाप है जो कवि को भौतिक जगत से परमार्थिक जगत की और ले जाता है। इसलिए शाप चिन्तन को पं. विद्यानिवास मिश्र वरदान मानते हैं, पतन नहीं उत्थान, मानते हैं, असत्य नही सत्य मानते हैं।

कालिदास की कृतियों में शाप एक विचारपरक बिन्दु है। शाप में ही व्यक्ति का सुधार निहित है। उसी के द्वारा ही मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास पाता है। यक्ष और शकुन्तला इसके प्रमाण हैं, जिन्हें शाप मिलना ही वरदान बन गया है। जैसा कि विद्यानिवास मिश्र जी का मानना है ''काव्य में 'मेघदूत'–वह शाप के माध्यम से ही प्यार की परीक्षा है और प्यार की ही सत्ता उसके इंद्रियगोचर सौन्दर्य की सत्ता के साथ तादात्म्य स्थापित करने के प्रयत्न की परीक्षा है। वह छोटा प्यार नहीं है और बड़े प्यार की परीक्षा है और शाप अवसर देता है।'' कालिदास ने कुबेर से यक्ष के शाप दिलाकर उसके प्रेम को और प्रगाढ़ बना देते हैं। उसका प्रेम दाम्पत्य का सच्चा साथी बन जाता है। वह प्रेम में सुध-बुध खो देता है और बादल से अपने प्रेयसी को सन्देश भेजने लगता है। यदि उसे कुबेर जी शाप नहीं देते तो वह प्रेम को समझ नहीं पाता और न ही प्रेम यज्ञ में तप पाता। शकुन्तला के जीवन में आया चर्मोत्कर्ष शाप से ही प्राप्त हुआ है। कवि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ने दुर्वासा से शाप दिलाकर ही उसके जीवन को अनुग्रहणी बना दिया है। उसकाचरित्र पतित से पावन बन जाता है, असंस्कृति से संस्कृति बन जाता है।

❋

CS-92

रघुवंश महाकाव्य में पुष्प विवेचन : आधुनिक दृष्टि

ज्ञान प्रकाश, रांची

यथा पल्लवपुष्पाढ्या यथा पुष्पफलर्द्धयः।
यथा फलर्द्धिस्वारोहा हा मातः क्वागमन् द्रुमा॥

पत्तों के समान ही जिनमें प्रचुर पुष्प होते थे और पुष्पों के समान ही जिनमें प्रचुर फल लगते थे और प्रचुर फल लगे होने पर जो सरलता से चढ़ने योग्य होते थे माता पृथिवी! बता वे वृक्ष कहां गए?

'पुष्प' जिसे संस्कृत भाषा में सुमन, कुसुमादि विभिन्न पर्यायों के द्वारा सम्बोधित किया जाताहै, जिसकी मृदुस्निग्ध आकृति को देख एवं सुरभि से सुवासित कौन ऐसा जन होगा जो सहसा आकृष्ट नहीं होगा। इसकी सुन्दरता, कोमलता एवं सुंगधि से मानव क्या, कठोर काष्ठ को भेदन करने वाला भ्रमर भी इतना भावविभोर हो जाता है कि कमल की कोमल पंखुड़ियों में बन्द हो जाने पर भेदन की अपेक्षा सूर्योदय की प्रतीक्षा करता है कवि जितना उपभोग इसका काव्य में करते हैं उतना ही वैद्य औषधि निर्माण में इसका प्रयोग आदिकाल से ही करते आ रहे हैं।

महाकवि कालिदास प्रकृति के कवि माने जाते हैं। उनमें प्रकृति का जो बहुविध चित्र दृष्टिगत होता है, वह अन्तत्र दुर्लभ ही है। स्थान-स्थान पर उन्होंने अपने सभी काव्यों में विभन्न पुष्पों का भी वर्णन किया है। प्रस्तुत शोध पत्र में रघुवंश महाकाव्य में उल्लिखित पुष्पों का साहित्यिक तथा आधुनिक दृष्टि से वानस्पतिक विवेचन किया जाएगा।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-93

कालिदास के नाटकों की नारी एवं वर्तमान नारी की सम्वेदनात्मक एकता

कु. पूजा मिश्रा, वाराणसी

अपने तीनों नाटकों में कालिदास ने स्त्री के जीवन में एक अत्यन्त दु:खद किन्तु अवश्यम्भावी सम्बन्ध का भी चित्रण किया है। वह है–सपत्नी का सम्बन्ध। जिसकी पीड़ा का अनुभव, हम हंसपदिका, औशीनरी, इरावती व धारिणी के माध्यम से करते हैं। आज भी ऐसे सम्बन्धों की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता; और ऐसे सम्बन्धों की आँच स्त्री को ही दग्ध करती है अन्तत: उसे पश्चाताप कर अथवा विवश होकर 'प्रियानुप्रसादन' हेतु प्रयत्न करना पड़ता है। आज की अधिकांश नारियों को ऐसी मन:स्थिति से दो-चार होना पड़ता है। आज एक सीमा तक परिस्थितियाँ अवश्य बदल गई हैं। स्त्री पहले की भाँति पुरुष पर आश्रित नहीं हैं वह स्वयं एकाकी सामाजिक जीवन बिता सकती है पर समाज ऐसी स्त्रियों के प्रति अच्छा दृष्टिकोण नहीं रखता।

अन्त में कालिदास के नाटकों की नारी की सम्वेदनाओं एवं वर्तमानकालीन नारी की सम्वेदंनाओं में एक और समानता आवश्य द्रष्टव्य है कि तब की नारियों में भी आत्मविश्वास कूट-कूट कर भरा होता था। जिसको स्पष्टत: उदाहृत करने के लिए शकुन्तला एकाकी रूप से पालित सुयोग्य सर्वदमन को लेकर सप्तम अंक में पुन: हमारे सम्मुख उपस्थित होती है, और आज की नारी में भी इस तरह के साहस की कमी नहीं है। वह सदा सभी परिस्थितियों का सामना करने के लिए सन्नद्ध रहती है।

*

CS-94

महाकवि भास के नाटकों में निहित वैदिक तत्त्वज्ञान

डॉ. रीना अस्थाना, हरदोई

भास के नाटाकों पर प्रमुख रूप से रामायण व महाभारत का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उनका सूक्ष्मअवलोकन करने पर वे वैदिक साहित्य एवं संस्कृति से प्रतीत होता है कि उनके नाटकों में स्थान-स्थान पर वैदिक तत्वज्ञान की राशि विखरी पड़ी है। भौगोलिक सांस्कृतिक पात्रों के चरित्र भाषा इत्यादि सभी पर वेदों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भास की नाट्यकला पूर्णरूपेण वेदों से प्रभावित है। संक्षिप्त संवादात्मक शैली पात्र चित्रण नेपथ्य विधान नृत्यगीत के लिए शैलूष (नट) हास्य के लिए कारि (विदूषक) का प्रयोग ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के अनुसार ही किया गया। संगीत का गीत नृत्य तथा तत् तन्त्री एवं सुषर वाद्यों का प्रयोग भी सामवेद तथा अथर्वेद से प्रभावित है।

वस्तुतः वैदिक भावों की पृष्ठभूमि पर भास के नाटक सफल एवं सिद्ध कहे जा सकते हैं। लौकिक संस्कृत के किसी नाटककार ने वेदों की ऐसी अभिव्यक्ति सम्मत नहीं है। जिस स्वाभाविकता एवं सहजता से वैदिक तत्त्वों को भास ने अपने नाटक में प्रस्तुत किया है वह निश्चय ही प्रंशसनीय है इस सन्दर्भ में हर्ष की प्रशास्ति दृष्टव्य है–

''सूत्रधाारकृतारम्भैनाटकेबहुभूमिकैः
सपातकेर्यशोलेभे भासो देवकुलैरिव॥''

*

CS-95

कालिदास के नाटकों में नारी-सौन्दर्य

डॉ. वन्दना वागीश्वरी, जम्मू

कालिदास ने प्रकृति की रमणीयता का जिनता सरस एवं ललित वर्णन किया है, उससे भी अधिक हृदयावर्जन चित्रण उन्होंने मानव सौन्दर्य का किया। वस्तुतः कालिदास रूप की माया से सर्वात्मना अविभावित हैं और नारी-सौन्दर्य का संस्पर्श मानो उनकी हृदय-विपंची के सम्पूर्ण तारों को एक साथ झंकृत कर देता हैं उनकी दृष्टि में सौन्दर्य दैवी विभूति है जो क्या मानवरूप और क्या प्रकृति रूप दोनों में समान भाव से भास्वर हो रही है। नारी देह में जो सौन्दर्य प्रकाश करता है, वही प्रकृति के विभिन्न पदार्थों में भी प्रतिविबिंत है और जिस प्रकार से प्रकृति की नाना रूपिणी छवियां विश्व में अपना सम्मोहन बिखेरे हुए हैं, वही प्रकाश नारी रूपमें फूटकर चराचर सृष्टि को बन्दी बना देता है। कालिदास सौन्दर्य के इस रहस्य से भली-भाँति परिचित हैं। यही कारण है कि नरी-रूप के वर्णन में उनकी दृष्टि प्रकृति जगत् का अनुसन्धान करने लगती है और प्रकृति रूपों के चित्रण में वह नारी-रूप से अनुप्राणित हो जाती है।

नारी सौन्दर्य के उपकारक आभूषण, वस्त्र एवं प्रसाधन का भी कालिदास ने खुल कर वर्णन किया है–

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आभूषण : आभूषण नारी-सौन्दर्य के विधाायक तत्व हैं। आभूषणों के बिना नारी शृंगार अधूरा है। प्राचीन काल से ही नारियाँ आभूषण को धारण करती थीं। कालिदास ने अपने नाटकों में नारी आभूषण का वर्णन किया है।

वस्त्र कालिदास ने विभिन्न वर्गों के लिए विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का वर्णन किया है। उन्होंने सामान्य वस्त्र, सुन्दर वस्त्र एवं स्थान के अनुरूप वस्त्रों का प्रयोग किया गया है।

प्रसाधन : कालिदास की नारियाँ आभूषण ग्रहण करने के अतिरिक्त रूप प्रसाध न भी करती थीं। रूप मण्डन अथवा तन प्रसाधन सदा से सभी देश और जातियों की नायिकाओं को प्रिय रहा है।

❋

CS-96

भोजराज की कृतियों में कालिदासीय सन्दर्भ

डॉ. सदाशिव कुमार द्विवेदी, वाराणसी

संस्कृत साहित्यशास्त्र के सुप्रसिद्ध आचर्य धारानरेश भोजदेव की कृतियों सरस्वतीकण्ठाभरणालङ्कार (1 से 5 परिच्छेद) तथा शृंगारप्रकाश (1 से 36 प्रकाश) में 660 स्थानों पर महाकवि कालिदास की सात में से छः कृतियों के पद्य विभिन्न शास्त्रीय तत्त्वों के स्पष्टीकरण हेतु उद्धृत मिलते हैं। इनमें सर्वाधिक 241 पद्य महाकवि के अष्टसर्गात्मक महाकाव्य कुमारसम्भव से उद्धृत हैं। इसके अतिरिक्त भोजदेव की उपर्युक्त दोनों कृतियों में 227 पद्य रघुवंश महाकाव्य से, 86 पद्य अभिज्ञानशाकुन्तल से, 51 पद्य मेघदूत से तथा 41 पद्य विक्रमोर्वशीय से उद्धृत मिलते हैं। मालविकाग्निमित्र का एकमात्र पद्य शृंङ्गारप्रकाश के 36वें प्रकाश में उद्धृत मिलता है।

इस विवरण से स्पष्ट है कि आचार्य भोजदेव को सर्वाधिक अभ्यास कुमारसम्भव का है और उसके अनन्तर रघुवंश का। नाटकों में भोजदेव को सर्वाधिक प्रिय अभिज्ञानशाकुन्तलम् है तदनन्तर विक्रमोर्वशीय। भोजदेव की कृतियों में कालिदास विरचित खण्डकाव्यों में हमें केवल मेघदूत के पद्य उद्धृत मिलते हैं। मेघदूत के लगभग आधे पद्यों को आचार्य ने अपनी कृतिद्वय में स्थान दिया है। ऋतुसंहार से आचार्य परिचित नहीं। इससे विदित होता है कि या तो वे ऋतुसंहार को कालिदास की रचना मानने के पक्षधर नहीं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

या फिर इसको कालिदास की कृति के रूप में उनके समय तक प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त हो सकी थी।

कुमारसम्भव के अष्टम सर्ग के लगभग एक तिहाई अर्थात् 31 पद्य आचार्य भोजदेव ने उद्धृत किए हैं।। इससे स्पष्ट होता है कि शृङ्गारपूर्ण होते हुए भी अष्टम सर्ग को भोजदेव पूर्ववर्ती साहित्यशास्त्रीय आचार्यों सदृश उपेक्षणीय नहीं मानते और न हि अभिनवगुप्त, मम्मटादि आचार्यों सदृश उसकी आलोचना करते हैं।

❋

CS-97

महाकवि दण्डी का संस्कार चिन्तन

अरुण कुमार मिश्र, लखनऊ

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च।।

गर्भैर्होमैर्जातकर्मचौलमौञ्जीनिबन्धनैः।
बैजिकं मार्मिक चैनो द्विजानामपमृज्यते।। मनुस्मृति (2/26-27)

मानव जीवन के कालक्रम में क्रमानुसार संस्कारों की व्यवस्था की गई थी। ये संस्कार गर्भ से लेकर मृत्यु पर्यन्त होते रहते हैं यद्यपि संस्कारों की संख्या निश्चित नहीं है। तदपि सोलह संस्कारों का विधान किया गया है।

कवि दण्डी ने दशकुमार चरित् (पूर्व पीठिका) में अधिकाधिक संस्कारों का समावेश किया है।

इसमें गर्भाधान, पुंसवन्, सीमान्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, चौलकर्म, उपनयन आदि संस्कारों की तरफ संकेत किया गया है।

अपने शोध-पत्र में मैं आचार्य दण्डी द्वारा संकेतित एंव उल्लिखित संस्कारों का वर्णन करने का उचित प्रयास करूँगा तथा वर्तमान समय में उनकी उपयोगिता को बतलाने का भी प्रयास करूँगा।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-98

कालिदास की रचनाधर्मिता का उद्देश्य

कुलदीप कुमार, जम्मू

महाकवि कालिदास रचित ग्रन्थों में रघुवंश, कुमारसम्भव एवं मेघदूत तथा अभिज्ञानशकुन्तलम् आदि प्रमुख नाटकों का अध्ययन करते समय यह प्रश्न सहज ही मन में प्रस्फुटित हो उठता है कि कालिदास की रचनाधार्मिता का क्या उद्देश्य रहा होगा और अध्ययनोपरान्त उनकी रचना धर्मिता का प्रमुख उद्देश्य किसी न किसी रूप में सन्तान प्राप्ति या उससे सम्बन्धित सन्दर्भों में ही केन्द्रित दिखता है। जिसमें आचार्य मम्मट एवं विश्वनाथ प्रोक्त काव्य प्रयोजन परिघटित नहीं दिखते। रघुवंश महाकाव्य का प्रारम्भ राजा दलीप की पुत्र प्रप्ति की कामना से ही प्रारम्भ होता है और अन्त नन्दिनी की सेवा के उपरान्त उन्हें पुत्र लाभ होता है, ठीक इसी सरह कुमारसम्भव में शिव एवं पार्वती से उत्पन्न भगवान कार्तिकेय का वर्णन सम्पूर्ण महाकाव्य का केन्द्रभूत तत्त्व है। साथ ही यदि कालिदास के नाटकों की बात की जाए तो उसमें भी कुमारससर्वदमन के प्रसंग तथा कुमारआयु के प्रसंग कालिदास की रचनाधर्मिता की कहानी स्वयं ही कर बैठते हैं। निसन्देह कवि को जिस वस्तु की अभिप्सा होती है उसी को केन्द्रीभूत मानकर के अपनी रचनाधर्मिता का संसार बनाता है। आचार्य मुम्मट एवं विश्वनाथ प्रोक्त काव्य प्रयोजनों का मणिकाचँन सहयोग प्रस्तुत शोध पत्र में विस्तार सै किया गया है।

*

CS-99

मिथिलाञ्चल की आध्यात्मिक परम्परा एवं उसका सामाजिक प्रभाव

प्रो. देवेन्द्र झा 'दीन', बिहार

सम्पूर्ण मिथिलाञ्चल की जो भी आध्यात्मिक परम्पराएँ हैं वह पूर्णतः सामूहिक हैं। यहाँ के कट्टर धर्मावलम्बी भी समानता एवं भ्रातृत्व के सामूहिक सिद्धान्त रहे प्रभाविक होकर परस्पर सहयोग एवं भाईचारे की भावना से ओत-प्रोत हैं। किसी भी धार्मिक या आध्यात्मिक मान्यता पर किसी जाति-विशेष या वर्ग विशेष का आधिपत्य नहीं है अपितु अपने पारिवारिक संस्कृति पर आधारित होकरभी पूर्णतः सामूहिक है। किसी भी व्यक्ति या

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सम्प्रदाय विशेष के लोग किसी के धर्म, परिवारिक संस्कृति के अनुरूप रीति रिवाज या किसी खास आध्यात्मिक मान्यता पर किसी प्रकार की बाधा नहीं कर सकता।

*

CS-100

मृच्छकटिक कालीन गणिका जीवन एवं वैश्यावृत्ति

डॉ. मिथिलेश कुमार, बिहार

ऐसा प्रतीत होता है कि सामान्य वेश्याओं में श्रेष्ठ, रूप, शील और गुणों से युक्त वेश्या गणिका कही जाती थी। वसन्त सेना जन्मना गणिका है पर उसका आचरण कुलजा जैसा है। वह इस कर्म से घृणा करती है और अपना जीवन एक कुलीन स्त्री की तरह आर्य चारूदत्त से विवाह करके बिताना चाहती है।

शूद्रक ने इस प्रकरण में वेश्याओं की समृद्धि अवश्य दिखाई है पर साथ ही तत्कालीन वेश्या वर्ग समाज की दृष्टि में हीन जीवन विताने की अपेक्षा विवाहित जीवन बिताकर कुलवधु के रूप को मान्यता देता था।

वेश्यावृति तो दूर गणिका जीवन से मृच्छकटिक की नायिका वसन्त सेना को कितनी घृणा थी वह इससे स्पष्ट हो जाता है। उसकी कुलवधू होने की दबी हुई लालसा उस समय स्पष्ट हो जाती है जब वह मदनिका को वधूरूप में शर्विलक के साथ सानन्द विदा करती है। वसन्त सेना ने मदनिका को गाड़ी पर चढ़ाते हुए कहा है।

''सांप्रतं त्वमेव वन्दनीया संवृत्ता'' मृच्छकटिक (च. अंक)

*

CS-101

कालिदास का दुष्यन्त

रंजना कुमारी, सिवान

कालिदास का दुष्यन्त बड़ी निपुणता से अपने नृत्य और नृपत्व को तिलतंडुलवत् पृथक् करते मिलते हैं। प्रजा को स्वप्रजा (सन्तान) की भाँति पालन करने वाला राजा वृक्ष की ओट से कन्या-त्रय को देख ''मधुरमासांदर्शनम्'' 'लब्धं नेत्रनिर्वाणं'' को अपना दोष

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नहीं समझते। किन्तु अंगूठी प्रदान कर अपने राजपद को छिपा लेते हैं। शकुन्तलासक्त शासक विदूषक की सलाह पर निवार का षष्टांश मांगने नहीं जाते। सिंहासनस्थ राजा अपने पार्षदों को अनिवर्ण्य खलु परकलत्रं' का उपदेश देते हैं अनुद्वैगकरं वाक्यं का पालन करते कठोर शब्दों का प्रयोग न कर 'श्रोतव्यामिदानीं' संवृत्तम्' कह शकुन्तला के सभी तर्क को झुठला देते हैं। शकुन्तला के कोप में 'अकेतवइव'' सत्य का अन्वेषण करते हैं। शास्व-चक्षु दुष्यन्त ऋषिकुमार को अपना विश्वास प्रकट करते 'पौखैर्विनिपातः लभ्यते अश्रद्धेयमेतत्' कह निरुत्तर कर देते हैं।

इस प्रकार कालिदास का दुष्यन्त भारतीय चरित्र के निकर्ष पर खड़ा उतरने वाला, मानववत् प्रेम-प्रसंग में प्रवीण, हास परिहास में निपुण, तर्क करने में चतुर, धर्मशास्त्र की मर्यादा में रहने वाला, सफलता पूर्वक शास्त्र दृष्टि से शासन करने वाला एक अनुकरणीय चरित है।

*

CS-102

महाकवि भास का परवर्ती कवियों पर प्रभाव

आचार्य डॉ० नागेश चन्द्र पाण्डेयः, प्रतापगढ़

महाकवि भास संस्कृत-नाट्य जगत् में दृश्यकाव्य लिखने वाले सबसे प्राचीन लेखक हैं, इनकी कृतियों का प्रभाव परवर्ती नाटककारों पर किसी न किसी रूप में कुछ न कुछ अवश्य पड़ा है। भास के नाटकों का प्रभाव महाकवि कालिदास, शूद्रक के मृच्छकटिक, भवभूति के मालती माधव एवं विशाखदत्त के मुद्राराक्षस में देखा जा सकता है।

भास एवं कालिदास की रचनाओं में सादृश्य स्थलों की अवतारणा में देखा जा सकता है, परन्तु ध्यात्व्य यह है कि कालिदास प्रतिभासम्पन्न कवि थे अतः दूसरे भावों को परिवर्तित करने या परिष्कार करने की उनके अन्दर क्षमता थी, अतः स्पष्ट साम्य देखना असम्भव है, परन्तु परिस्थितियों, घटनाओं, विचारों के मूलतत्त्व में साम्य देखा जा सकता है।

महाकवि भास ने अपने नाटकों में इस प्रकार की शैली का प्रयोग किया है जो सरस, सरल, समास दुरुहता से दूर पाठकों एवं दर्शकों को अह्लादित करती है, भास की भाषा एवं शैली दोनों आपस में इस प्रकार अनुस्यूत है कि एक दूसरे को अलग करने पर उसका अर्थ सौन्दर्य समाप्त हो जाता है। भास की शैली का प्रभाव परवर्ती कवियों

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पर भी पड़ा है। परन्तु वे अपने शैली गत वैशिष्ट्य के कारण अन्य कवियों से अलग पहचान बनाये हुये हैं।

*

CS-103

शब्दचित्रों का प्रमुख महाकाव्यों में प्रयोग

सोमप्रकाश, प्रतापगढ़

संस्कृत भाषा के समुपासक, रसास्वादन में प्रवीण, सहृदय विद्वान् काव्य के भेदों से परिचित हैं। ''दृश्य श्रव्यत्त्वभेदेन काव्यं विविध भेदता''। इस नियम के अनुसार दृश्य काव्यों की पूर्ण आनन्दानुभूति अभिनय द्वारा ही संभव है। अभिज्ञानशाकुन्तलम्, उत्तररामचरितम्, मृच्छकटिकम् आदि ग्रन्थों का पढ़कर उतना आनन्द नहीं प्राप्त किया जा सकता जितना कि अभिनय द्वारा प्राप्तव्य है। साथ ही अभिनेय काव्यों से आनन्दानुभूति के लिए प्रत्येक व्यक्ति को रंगमंच तक अवश्य जाना पड़ता है। जबकि श्रव्य काव्य में पाठक सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय से स्वतः आनन्दानुभूति प्राप्त कर सकता है। इन्हीं दृष्टियों से दृश्य काव्य की अपेक्षा श्रव्य काव्य अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। समग्र विषयों को सम्यक् ध्यान में रखकर पुरातन विद्वान् कवियों ने धर्म र्थकाममोक्षप्रदायक महाकाव्यों की संरचना की।

रामायण, महाभारत, रघुवंश, किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम् नैषधमहाकाव्य आदि काव्यों का एकान्त में श्रवण एवं पठन-पाठन द्वारा आनन्द प्राप्त किया जा सकता है। प्रमुख महाकवियों द्वारा निरुपित काव्यों में चित्रविधान पर विचार किया गया है। क्योंकि चित्र दृष्टि में व्यंग्यता न होने पर भी चमत्कार भी प्रतीति होती है।[1]

1. (क) चित्रमीमांसा भूमिका

(ख) किरातार्जुनीयम् 15/5

(ग) मल्लिनाथसूरि टीका

(घ) शिशुपालवधा 19/3

(ङ) नैषाधीयचरितम् 1/7

(च) भाट्टिकाव्यम् 16/20

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(छ) घटकर्परमहाकाव्यम् 1/22

(ज) श्री हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला 291

*

CS-104

हरविजयमहाकाव्य में चित्रालङ्कार

हरिचरण मीणा, कोटा

संस्कृत-साहित्य में चित्रालङ्कारयुक्त 'विचित्रमार्ग' का प्रारम्भ महाकवि 'भारवि' ने किया था। प्रारम्भ में कवियों ने अपने महाकाव्य के किसी एक सर्गविशेष में ही चित्रालङ्कार का प्रयोग किया था। यथा-भारवि ने 'किरातार्जुनीय' के पञ्चदश सर्ग में, कुमारदास ने 'जानकीहरण' के अष्टादश सर्ग में तथा माघ ने 'शिशुपालवध' के नवदश सर्ग में चित्रालङ्कारों का प्रयोग किया किन्तु ''राजानक-रत्नाकर'' ने अपने पचाससर्गात्मक विशाल महाकाव्य 'हरविजय' के अनेक सर्गों में अनेकविध चित्रालङ्कारों का प्रयोग किया है।

चित्रालङ्कार में स्थित 'चित्र' शब्द का तात्पर्य अद्‌भुत, आचार्य अथवा विचित्र के साथ ही आलेख्यगतवर्णविन्यास द्वारा चित्र की समानता स्वीकृत की है तथा 'चित्र' शब्द की व्युत्पति-'चित्तं राति इति चित्रं-इस प्रकार करते हुए 'चित्त को आकृष्ट करने वाले वस्तु को चित्र कहा है। अतः चित्रालङ्कार में चित्ताकर्षण, वर्णनिन्यासवैचित्र्य, वर्णविच्छित्ति, विस्मयोत्पादकता इत्यादि तत्त्व प्रमुखता से रहते हैं।

रत्नाकर ने चित्रालङ्कार के अनेक भेदोपभेदों का प्रयोग करने के साथ-साथ बहुत से ऐसे प्रभेदों का उन्मीलन किया है।

*

CS-105

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में ध्वनि तत्त्व

डॉ. गोविन्द झा, बिहार

महाकवि कालिदास की शैली की सबसे बड़ी विशेषता है 'ध्वन्यात्मकता' जिसके द्वारा कवि ने विभिन्न स्थलों पर भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं की ओर सूक्ष्म

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संकेत दिया है। व्यंग्यार्थ प्रतिपादन की विलक्षण शैली, वर्ण्य-विषय को सुन्दर क्रम से रखकर रोचक बनाना आदि कालिदास की कविता का विशेष गुण है।

भारतीय काव्य शास्त्र में शब्द और अर्थ को जोड़ने के लिए शक्तियों या वृत्तियों को स्वीकार किया गया है। अर्थानुसार ये वृत्तिया भी तीन है–अभिधा, लक्षणा, और व्यञ्जना। जिस काव्य में व्यंग्यार्थ की प्रधानता होती है उसे ध्वनि काव्य या उत्तम काव्य कहते हैं।

यद्यपि महाकवि ने तीनों ही वृत्तियों का आश्रय लिया है, किन्तु व्यंजना वृत्ति ही महाकवि की वाणी का सार है। कालिदास का नाट्य नैपुण्य, किसी बात को स्पष्ट शब्दों में कहने की अपेक्षा उसे सूचित या प्रतीतिगम्य, ध्वनित करने में ही अधिक देखा जाता है। उदाहरणस्वरूप अभिज्ञान शाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक के एक श्लोक को देख सकते हैं–

यात्येकतोऽस्त शिखरं पतिरोषधीना
भविस्कृतोऽरुण पुरः सर एकतोऽर्कः॥

*

CS-106

"उत्तररामचरितम्" में विषादः एक मनौवैज्ञानिक अभिगम।

श्री गमीर सिंह नारसिंह बारीया, गुजरात

हमारे मधुरतम् काव्य वही होते है जो वेदना या विरह से उत्पन होते हैं।

भवभूति ने दाम्पत्य–जीवन में पारस्परिक घटित अपराध भावना के दर्द को बड़ी खूबी के साथ प्रस्तुत किया है। राम के मन में सीता को त्यजने का दर्द है। सीता के मन में पति द्वारा पत्नी को बिना बताये निर्दोष होने के उपरान्त त्यजने का दर्द है।

प्रस्तुत विषाद का मनोवैज्ञानिक अभिगम से पृथ्थकरण करे तो मनोवैज्ञानिक की दृष्टि से "विषाद" के संभवित कारण और उससे राहत मिलने के उपाय प्रकट होते है।

"छाया सीता" का प्रसंग भवभूति ने एक अस्पष्ट भ्रमण की जाल में बुना है। राम के साथ संवाद करती वासंती राम की भ्रमित अवस्था को तीव्र विषाद से सर्जित उन्माद के समान बताती है। एक पात्र को प्रत्यक्ष और दूसरे पात्र को अदृश्य रख भवभूति ने विषाद को ओर भी गाढा बनाया है। पर मनोविज्ञान की परिभाषा में जिसे Hallucination

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

के समान पहचाना जाता है, उसकी भी एक झलक दी है। राम सीता का अमंगल सोच मुक्त कण्ठ से रोते है, जबकि अदृश्य सीता के हिस्से राम के विरह से व्यक्त दु:ख के सिवा कुछ रहता ही नही। सीता को आश्वस्त करती तमसा के मुख से नाटककार ने "विषाद" से थोड़ा शकुन मिलने का उपाय दिखाकर अपने आपको कुशल मनोज्ञाता सिद्ध किया है। जैसे की मुक्तकंठ से रोना–विलपकर सांत्वना प्राप्त करना इस प्रकार दु:ख को दूर करने का मार्ग दिखाया है। मनोविज्ञान में यह उपाय "भाववाचन" (Catharsis) से पहचाना जाता है। इसके उपरांत तीव्र विषाद में अनुभूत शरीरिक और मानसिक प्रक्रिया को भवभूति से सूक्ष्मता से निरूपित किया है। विदाय ले रहे राम अब नही दिखेंगे यह सोच आघात से सीता मूर्छित हो जाती है। जब वह अश्वमेघयज्ञ का उल्लेख सुनती है, तब घड़ी दो घड़ी ग्लानि अनुभव करती है। परंतु जब अपने स्थान पर अपनी स्वर्ण प्रतिमा रखने का उल्लेख सुनती है तो अपार शांति का अनुभव करती है। राम के प्रति छुपा द्वेष जो काँटे की तरह चुभता था वह दूर होता है। अंक के अंत में भवभूति ने करूण रस से विविध सोपानों को वेदांत की परिभाषा में व्यक्त कर उसे साहित्य में अनन्य स्थान दिया है।

*

CS-107

महाकवि कालिदास के भरतवाक्यों में पुरुषार्थ चिन्तन

डॉ. राजेन्द्र कुमार, दिल्ली

नाट्य-शास्त्र के नाटकों की परिसमाप्ति पर अभिनेताओं के द्वारा सामूहिक मंगल की परिकल्पना की जाती है। इस मंगल-कार्य को मुनि भरत के सम्मान के लिए 'भरतवाक्य' के रूप में जाना जाता है। भारतीय नाट्य परम्परा में नाटकों के अन्त में नाटककार भरतवाक्य के द्वारा समाज एवं राष्ट्र के लिए संदेश प्रेषित करता है। महाकवि कालिदास ने भी अपने तीन नाटकों में भरतवाक्य के द्वारा संदेश दिया है। उन्होंने अपने तीनों नाटकों में चार महावाक्यों का प्रयोग किया है। जिन चारों ही भरतवाक्यों के माध्यम से पुरुषार्थ चतुष्टय की सम्यक् अभिव्यक्ति होती है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-108

भास की नाटकों में राम-चरित्रः एक समीक्षण

ऋचा रानी, बोकारो, इस्पात नगर

भारतीय साहित्य में रामकाव्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वाल्मीकि के बाद भी राम कथा ने अनेक महाकाव्यों, नाटकों, खण्डकाव्यों आदि में विषय के रूप में स्थान ग्रहण किया है। नाटककारों में सर्वप्राचीन भास ने अपने दो नाटकों में राम को ही नायक बनाया। राम का चरित्र न केवल भारतीयों द्वारा अनुकरणीय है वल्कि समग्र मानव द्वारा अनुकरणीय है। तभी काव्यप्रकाश में मम्मट ने कहा–रामादिवत् प्रवर्तितव्यम् न रावणादित्' अर्थात् राम के समान आचरण करना चाहिए न कि रावण के समान। भास के नाटकों मे भी राम चरित्र को उदात्त रूप में चित्रित किया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र में भास नाटकों में चित्रित राम के चरित्र का मूल्यांकन किया गया है जिसमें तुलनात्मक पद्धति से इनके चरित्र की समीक्षा की गयी है। इस समीक्षा क्रम में रामायण के राम को भी ध्यान में रखा गया है तथा यह समीक्षण की चेष्टा की गयी है कि भास के राम, रामायण के राम से कहाँ अधिक महत्त्व रखते हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में तथ्यात्मक विवेचन अभिव्यक्त हुआ है।

❋

CS-109

लौकिक संस्कृत-सहित्य में स्वयंवर विवाह प्रथा

रजनी काटल, जम्मू

स्वयंवर प्रथा का इतिहास अति प्राचीन है। ऋग्वेद में कहा गया है कि विवाह योग्य किसी भी युवती को अपने मनोनुकूल वर चुनने की स्वतन्त्रता थी। अथर्ववेद (14. 1.19) में भी कहा गया है कि वर-वधू और वधू-वर को पसन्द करे। 'वाचस्पत्यम्' कोष के अनुसार–'स्वयमात्मना वरो वरणम्' कन्ययात्मनैव स्व पत्युर्वरणे सदसि स्वयंवरः'। अर्थात् कन्या द्वारा अपने आप ही राज सभा में अपने पति का वरण करना स्वयंवर है।

भारतीय समाज में आज भी इस स्वयंवर विवाह की अनेक रूपों में चर्चा होती है। लोक गायक उनके गीत गाते है, कवि तथा नाटक आदि लिखते हैं। ऐसे स्वयंवरों में सीता-स्वयंवर, इन्दुमती-स्वयंवर, द्रोपदी-स्वयंवर, संयोगिता-स्वयंवर आदि स्वयंवरों का उल्लेख लौकिक संस्कृत-सहित्य में हुआ है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रस्तुत शोध-पत्र में लौकिक संस्कृत-साहित्य के ग्रन्थों के आधार पर स्वयंवर विवाह प्रथा पर विशद् विवेचन किया जायेगा।

*

CS-110

अभिज्ञानशांकुतलम्-उपमाओं की विशेषताएँ

प्रा. जाधव मरलीधर सोपानराव, महाराष्ट्र

महाकवि कालिदास की लेखनशैली की अनेकविध विशेषताएँ है। उसमें उपमा एक प्रमुख विशेषता मानी जाती हैं। कालिदासीय उपमा में कवि की तरलकल्पनाओं का रम्यविलास दृष्टिगोचर होता है। उसमें पृथ्वी से गगनमण्डल तक सर्वत्र स्वैर घूमनेवाली और सामान्यजनों को नीरस तथा रुक्ष लगनेवाले पदार्थों में भी सौंदर्य देखने वाली उसकी भेददृष्टि, विविध शास्त्रों के अध्ययन से प्राप्त हुई बहुश्रुतता, अनेक कलाओं के प्रयोग से प्राप्त नैपुण्य, व्यवहार से प्राप्त अनुभवों का प्रतिबिंब उनके उपमाओं में दृष्टिगोचर होता हैं। उनकी उपमा की विशेषता देखकर कहा गया है–''उपमा कालिदास्य'' ऐसा कहकर उनकी उपमाओं का अलौकिकत्त्व स्पष्ट किया गया हैं। कालिदासीय उपमाओं की विविधता, मार्मिकता और रम्यता देखी तो उपरोक्त विधान सत्य प्रतित होता हैं। उनकी उपमाओं की विशेषता निन्न प्रकार की हैं। (1) रम्यता (2) समर्पकता (3) विविधता (4) सृष्टपदार्थीय उपमा (5) दैवतशास्त्रीय उपमा (6) व्यवहारिक उपमा (7)औचित्यता (8) पूर्णता (9) पूर्णोपमा (10) श्लेष्युक्त उपमा (11) लुप्तोपमा (12) मालोपमा आदि विशेषताएँ दिखाई देती हैं।

*

CS-111

भास की दृष्टि जीवन के प्रति

सुधा अन्ताल, जम्मू

भास के सभी नाटकों के सभी पात्रों का विनियोजन सार्थकतापूर्ण है। नाटककार व्यक्ति वैचित्रय पर पूर्णरूपेण वृत्तचित दिखाई देता है; और संभवत: यही कारण है कि एक वर्ग के प्रतीक की अपेक्षा भास के पात्र व्यक्तिगत विशेषताओं से युक्त होकर हमारे सामने आते हैं। महाभारत को उपजीव्य बनाकर रचे गए नाटकों के चरित्र चित्रण मे यद्यपि नाटककार पूर्णरुपेण स्वतंन्त्र नहीं था। लोक कथाओं को आधार बनाकर रचे गए नाटकों

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

में नाटककार को कल्पना की मनचाही उड़ान भरने की स्वतंत्रता थी फिर भी उनमें अस्वाभाविकता के दर्शन नही होते। यथार्थ के ठोस धरातल पर वे पात्र स्थित एवं स्थिर दिखाई देते हैं। भास ने जिन आदर्शों का सौरभ अपनी नाट्य कृतियों में विखेरा है वह भारतीय संस्कृति में शाश्वत रूप में प्रतिषिठत है। अपने सभी नाटकों में भास एक विशेष सन्देश देते प्रतीत होते हैं, भास कृत 13 नाटकों मे से 6 महाभारत से लिए गए है, 2 रामायण से शेश 5 प्राचीन अर्ध ऐतिहासिक घटनाओं या दन्त कथाओं से प्रेरित है। भास की रचनायें उदात चरित्रिक आदर्श की सम्प्रतिष्ठा के लिए है। उनके उत्तम और मध्यम वर्ग के पात्रों का आचार-विचार का स्तर अनुकरणीय है। समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए उन्होंने समुदाचार सम्बन्धी पद्धति का दिग्दर्शन कराया है। कवि का कौटुम्बिक आदर्श तो अनुत्तम ही है। सभी अवसरों पर किसी को कैसे व्यवहार करना चाहिए। यह भास से सीखने योग्य है। कोई भी रचनाकार जीवन मूल्य को अभिव्यक्ति किए बिना सफलता नहीं पाता। संस्कृत साहित्य ने प्रवृत्ति और निवृत्ति के समन्वय को जीवन मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित किया है। साहित्यकार मानव जीवन के किसी न किसी मूल्य से सदैव जुडा रहता है। जीवन को आलौकिक करने की अद्‌भुत क्षमता रखता है। जीवन मूल्यों की स्थापना में समन्वयात्मक अनुभूति, सांस्कृतिक चेतना विश्व अनुभूति की प्रमुखता रहती है। संस्कृत साहित्य में उन जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा की गई हैं जो व्यक्ति के आत्मिक विकास मे सहायक है तथा जिनसे समाज का नैतिक आधार दृढ़ होता है।

❋

CS-112

राधावल्लभ त्रिपाठी प्रणीत तण्डुलप्रस्थीयम् का प्रकरण वैशिष्ट्य

डॉ. बलवन्त कुमार शर्मा, शिमला

अर्वाचीन प्रकरणों की कोटि में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी प्रणीत "तण्डुलप्रस्थीयम्" बीसवीं शताब्दी का नवीनतम प्रकरण है। डॉ. त्रिपाठी ने इस प्रकरण में एक ऐसे गाँव की कथा को कल्पित किया है जिसमें लोगों को पानी लाने के लिए कोसों दूर पैदल जाना पड़ता था, फिर भी पानी नहीं मिलता था। समाज के मध्यम वर्ग से सम्बन्धित लोककथा को डॉ. त्रिपाठी ने कल्पना की नई आभा से मण्डित कर इसमें अनूठा भाव संसार और नाट्य लोक रच दिया है। सामाजिक चेतना और प्रतीकात्मकता के साथ-साथ हास्य व्यंग्य के पुट ने भी इस प्रकरण को रोचक बना दिया है। तण्डुलप्रस्थीयम् की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें लक्षणगत सभी विकल्प एकत्र उपलब्धा हैं। जैसे कथानक का लोक प्रसिद्ध

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

या कवि कल्पित होना। प्रकरण में सामान्य व्यक्ति नायक होता है और वह धीरप्रशान्त होता है। तण्डुलप्रस्थीयम् में नायक निरंजन मध्यवर्ग से सम्बन्ध रखने वाला साधारण व्यक्ति है और वह धीरप्रशान्त कोटि का नायक है।

तण्डुलप्रस्थीयम् का अर्थ है–मुट्ठी भर चावल। इसका नामकरण भी द्वितीय अंक तथा सप्तम अंक में वर्णित विशेष घटना के आधार पर किया गया है। इस प्रकरण में लेखक ने यथार्थवादी चित्रण कर आधुनिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है। अभी भी हमारे देश में दो वक्त की रोटी जुटाने में लोग असमर्थ हैं। सम्भवतः इसी भावना से प्रेरित होकर डॉ. त्रिपाठी ने प्रकरण का नाम समुचित समझा। यह प्रकरण न केवल विषय चयन में अपितु विषय निरूपण में भी निराला है। प्रकरण के चरित्र भी विचित्र हैं। तण्डुलप्रस्थीयम् में नान्दी, प्रस्तावना, अर्थोपक्षेपक कार्यवस्थाएँ, अर्थप्रकृतियाँ इत्यादि का यथावत् वर्णन किया गया है। प्रकरण का नाम सारगर्भित होने के साथ-साथ इसकी भाषा, संवाद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें वेद, दर्शन, व्याकरण इत्यादि साहित्यक शिक्षा का प्रचार देखने को मिलता है। भावों की सुन्दरता ने तण्डुलप्रस्थीयम् के काव्य सौन्दर्य में अभूतपूर्व वृद्धि की है। प्रस्तुत शोध-पत्र में तण्डुलप्रस्थीयम् प्रकरण की विशेषताओं का विस्तृत विवेचन किया गया है।

❋

CS-113

भारतजनताहम्

डॉ. कृष्ण मोहन पाण्डेय, जौनपुर

महाकविरमाकान्त शुक्ल महोदयेन प्रणीतमुत्तरप्रदेशसंस्कृताकादम्याः कालिदासपुरस्कारेण पुरस्कृतमिदं "भारतजनताहम्"। भारतीय संस्कृतेः भारतीयजनतायाश्च वैशिष्ट्यमत्रोद्घाटितम्। भारतभूमौउत्पन्नेषु प्राणिषु प्राय; एतादृशाः संस्काराः भवन्त्येवयत्ते वीरान्नमन्ति श्रेष्ठान्पूजयन्ति बालानुपदिशन्ति विश्वबन्धुमपेक्षन्तिच। एवमेव भारतजनतायाः कीदृशञ्चिन्तनं कीदृग्वयवहारः इत्यादिविषयाणां साक्षात्दर्शनमस्मिन् कर्तुं शक्यते। चत्वारिंशत्सु विभिन्नशीर्षककवितासु भारतस्य सम्पूर्णं चित्र महाकविनात्रचित्रितम्। यथा 'सुरभारती विजयते' "रौतितेभारतम 'भारतजनताहम्' शीर्षकमधिकृत्य यल्लिखितं तत्सत्यम्'। कीदृशी जनता? अभिमानधना-विनयोपेता-शालीना-कुलिशादपिकठिना-कुसुमादपि सुकुमारा-विज्ञानधना-ज्ञानधना-साहित्यकलासंगीतपरा-अध्यात्मसुधातटिनीस्नानैः परिपूता-उत्सवप्रिया-श्रमप्रिया-पदयात्रादेशाटनप्रिया- साहसजिजीविषाकर्मठतापुत्तलिका-विषपानपरापिस्मितवदना-भारत जनता।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-114

महाभारत की उपजीव्यता और संस्कृत नाटक

डॉ. लता पाण्डेय, नई दिल्ली

महाभारत के स्वरूप में इतिहास तथा काव्य का अद्भुत अपूर्व संगम दृष्टिगोचर होने के फलस्वरूप प्रख्यात इतिवृत्त पर अटूट निष्ठा रखने वाले संस्कृत-कवियों के लिए यह चिर-आकर्षक उपजीव्य बना रहा। समस्त परवर्ती साहित्य की सृष्टि महाभारत के नैतिक तथा धार्मिक चेतना से युक्त कथानक का अवलंबन ग्रहण कर की गई है।

संस्कृत नाटककारों को प्रभावित करने वाला महाभारत का कथानक

(1) महाभारत की मुख्य कथा में-महाभारत की आधिकारिक कथावस्तु कौरव-पाण्डवों की सुप्रसिद्ध कथा है तथा यही कथा अधिकांश कवियों की कृतियों का वर्ण्य विषय बनी है। इसका कारण है -महाभारत की आधिकारिक कथा के पात्रों का आकर्षक चरित्र। भीष्म ब्रह्मचर्य-पालन तथा अपने अटल प्रण, द्रोण तथा कृपाचार्य अस्त्र-शस्त्र के आचार्यत्व हेतु, गांधारी अगाध पति-निष्ठा, कर्ण दान-शीलता, दुर्योधन अधिकार प्रिय हठी शासन के लिए, धृतराष्ट्र पुत्र-प्रेमान्ध पिता के लिए, शकुनि द्यूत-विद्या में पारंगत तथा षड्यंत्र के लिए, युधिष्ठिर सत्यनिष्ठा तथा धर्मरक्षा हेतु, भीम अद्भुत पौरूष हेतु, अर्जुन अपूर्व शौर्य तथा द्रौपदी स्त्री-सुलभ हठवादिता के लिए विख्यात हैं।

महाभारत के आदिपर्व के 'सुभद्राहरण' तथा 'हरणाहरण पर्व' के कथानक में नाटककारों को वीर तथा श्रृंगार दोनों ही रसों के परिपाक का पूर्ण तथा उचित अवसर प्राप्त होता है। इस कारण महाभारत के इस प्रसंग का आधार ग्रहण कर अनेक नाटककारों ने अपनी नाट्यकृतियों की रचना की है।

सभापर्व के अंतर्गत 'द्यूतपर्व' तथा 'अनुद्यूतपर्व' की घटनाओं का चयन नाटककारों ने अनेकशः किया है। द्यूत के छले गए युधिष्ठिर के राज्य के प्रत्यानयन के लिए ही महाभारत युद्ध हुआ था। द्रौपदी-चीर हरण, कौरव-पक्ष द्वारा पाण्डवों का अपमान इसी पर्व में वर्णित है। वनपर्व के तीर्थयात्रा पर्व के भीम द्वारा सौगधिकवन से पुष्प लाने के प्रसंग को भीम के पराक्रम को प्रर्शित करने के लिए नाटककारों ने आधार रूप में ग्रहण किया है। वनपर्व के अन्तर्गत -वचकुण्डलाहरण' पर्व ने भी नाटककारों को प्रभवित किया है। जब भी नाटककारों ने कर्ण चरित्र पर अपनी लेखनी का प्रयोग किया है, तब कर्ण की वीरता से भी अधिक दान प्रसंग को उन्होंने महत्त्व दिया है। महाभारत के 'विराटपर्व' ने

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अपनी नाटकीयता के कारण संस्कृत नाटककारों को पर्याप्तरूपेण आकर्षित किया है। शल्यपर्व के अन्तर्ग 'गदापर्व' में दुर्योधन के ऊरूभंग की कथा वर्णित है। उरूभंग की घटना भीम की प्रतिज्ञापूर्ति, भीम तथा दुर्योधन की गदायुद्ध में निपुणता तथा दुर्योधन की पराजय तत्तपश्चात् मृत्यु के कारण महाभारत में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। 'सौप्तिकपर्व' में पाण्डवों के सोये हुए पुत्रों का रात्रि में अश्वत्थामा द्वारा वध तथा 'स्त्रीपर्व' में स्त्रियों का विलाप वर्णित है। इन दोनें पर्वो का कथानक दुर्योधन के ऊरूभंग के पश्चात् की कथा का अंश होने के कारण नाटककारों ने वर्णित किया है।

(2) महाभारत के उपाख्यानों में

यद्यपि महाभारत की आधिकारिक कथावस्तु ही विशेश रूप से कवियों की कृतियों का वर्ण्य विषय ही है तथापि महाभारत के नाना उपाख्यान भी भारतीय कवियों को अपनी ओर आकृष्ट करते रहे है। महाभारत के आदिपर्व में वर्णित 'शकुन्लोपाख्यान' की दुष्यंत -शकुन्तला कथा में संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम महाकवि कालिदास ने नाटकीयता देखी तथा इसका आश्रय ग्रहण कर 'अभिंज्ञानशाकुन्तलम्' की रचना कर विश्व में अमरख्याति प्राप्त की। आदिपर्व में ही प्राप्त 'ययाति उपख्यान' ने भी परवर्ती कवियों को अत्यधिक प्रभावित किया है। महाभारत में पुरूरवा-उर्वशी का यद्यपि पृथक् कोई उपाख्यान किसी पर्व विशेष में उलिखित नहीं है, किंतु पुरूरवा तथा उर्वशी की कथा अनेक स्थानों पर आई है। कालिदास के सर्वप्रथम नाटक 'विक्रमोर्वशीय' की कथावस्तु का आधार महाभारत की स्थान-स्थान पर प्रसंगतः उल्लिखित पुरूरवा-उर्वशी कथा है।

महाभारत वनपर्व में प्राप्त 'नलोपाख्यान' में वर्णित नल-दमयंती की कथा नाटककारों को सर्वाधिक प्रिय रही है। इस कथा में प्राप्त घटनाओं की विविधता, पात्रों के रूप परिवर्तन ने नाटककारों का ध्यान आकृष्ट किया। इस प्रकार महाभारत की मुख्य कथा के साथ ही उपाख्यान भी संस्कृत नाटककारों के प्रेरणास्रोत रहे हैं।

*

CS-115

संस्कृत रूपकों में प्रतिनायक

रेखा सिंह, इलाहाबाद

किसी भी रूपक में उसकी कथावस्तु पात्र तथा रस आदि मुख्य होते है। यही इन रूपकों के भेदक स्वीकार किये हैं-"वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रूपकों में मुख्य रूप से नायक-नायिका, प्रतिनायक, विदूषक आदि सर्वाधिक महत्वपूर्ण पात्र है। नाट्यकला के आदि ग्रन्थ "भरत-नाट्य शास्त्र" में समस्त पात्रों का विवेचन प्राप्त होता है। परन्तु प्रतिनायक के विषय में कुछ स्पष्टतः उल्लेख नहीं है। सर्वप्रथम आचार्य धनञ्जय प्रतिनायक के विषय में मुखर हुये हैं–

"लुब्धः धीरोद्धत्तस्तब्धः पापकृत व्यसनी रिपुः" द.रु.द्वि.-9 का.

प्रतिनायक के लक्षण में तो नहीं परन्तु ईहामृग रूपक के प्रसंग में सर्वप्रथम प्रतिनायक का नामोल्लेख किया है

"मिश्रमीहामृगे वृत्तं चतुङ्कत्रिसन्धिमत्।
नददिव्यावनियमान्नायकप्रतिनायकौ।" द.रु.तृ.-72 का.

प्रतिद्वन्दिता, विरोध, विघ्न व़िपत्ति आदि का मूर्त रूप ही प्रतिनायक है। कभी काव्यों में ये मूर्त रूप में प्रतिनायक रूप से उपस्थित होते है तो कभी अमूर्त भाव रूप से "विषम परिस्थिति" रूप से। वस्तुतः प्रतिनायक काव्य में नायक का प्रतिद्वन्दी होता है। वस्तुतः प्रतिनायक बिना दृश्य काव्यों में रोचकता का अभाव होता है। यदि किसी रचना में प्रतिनायक का विधान न किया जाये तो कथा में गत्याभाव और विस्ताराभाव हो जाता है। यदि यह कहा जाये कि बहुत सी रचनायें ऐसी होती है जिनमें प्रतिनायक का आभाव होता है परन्तु वे सफल काव्य है तो ऐसा नहीं है क्योंकि बिना विघ्नों के तथा विपत्तियों के विरोधों के नायक का कार्य पूर्ण नहीं होता–

"धीरप्रशान्तं सापायं धार्मकामार्थतत्परम्"

प्रतिनायक द्वारा नायक के कार्यो में विभिन्न प्रकार के विघ्न उपस्थित किये जाते है। अन्ततः उन विघ्नों पर विजय प्राप्त कर नायक प्रतिनायक पर विजय प्राप्त करता है। अस्तु देखा जाए तो प्रतिनायक ही नायक की उत्कर्षता का हेतु है। प्रतिनायक (मूर्त, अमूर्त) न हो तो नायक का नायकत्व सिद्ध न किया जा सकेगा।

*

CS-116

संस्कृत साहित्य के विकास में श्रीद्वारकाशारदापीठ का योगदान

डॉ. जय प्रकाश नारायण द्विवेदी, द्वारका

भगवानाद्यशङ्कराचार्य द्वारा प्रतिष्ठापित प्रथम पीठ पश्चिमाम्नायस्थ श्रीद्वारकाशारदापीठ है,

CC-0.JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जो विगत अनेक शताब्दियों से सनातन वैदिक धर्म, संस्कृति एवं संस्कृत वाङ्मय का प्रचार-प्रसार करता आ रहा है। सामवेद मूलक प्रकृत पीठ की आचार्य एवं तच्छिष्य परम्परा ने वेद, वेदान्त, काव्य एवं स्तोत्रों पर ऐसे असंख्य कार्य किये हैं, जिनका धर्म, दर्शन, आचार, राष्ट्र, समाज एवं नैतिकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके अतिरिक्त इस आचार्यपीठ से सम्बद्ध शिक्षण-संस्थान द्वारा भी वास्तु, ज्योतिष् कर्मकाण्ड, आयुर्वेद, पुराण, धर्मशास्त्र, व्याकरण एवं अन्यान्य दर्शनों के प्रतिनिधि ग्रन्थों पर ऐसे अनुसन्धानपरक व्यवस्थित कार्य किये गये है और वे प्रकाशित किये कराये जा रहे हैं, जो अत्यन्त दुर्लभ हैं। उदाहरणार्थ-महाकवि कालिदास प्रणीत "ग्रहमङ्गलाष्टकम्" एवं राबल गणेश देवराम रचित "दशाकरणविधिः"।

मौलिक काव्य प्रणयन सम्पादन व पाण्डुलिपियों के अनुवाद प्रभृति सारस्वत साधना के कार्य से समृद्ध इस पीठ का योगदान संस्कृत साहित्य व भारतीय संस्कृत के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वर्तमान शङ्कराचार्य द्विपीठाधीश्वर स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज द्वारा कृत श्रीशङ्करदिग्विजयः एवं पञ्चोपनिषद् का सम्पादन दण्डी स्वामी श्री सदानन्द सरस्वती जी द्वारा सम्पादित श्री राजरोश्वरी त्रिपुर सुन्दरी नित्याराधनस्तोत्राणि अनूदित ग्रन्थों में सौन्दर्य लहरी, चर्पटपञ्जरिका स्त्रोत्र एवं ईशावास्योपनिषद् तथा श्री पं. लक्ष्मीरामशास्त्री व पं. लालाजी भाई शास्त्री द्वारा प्रणीत "श्री द्वारकानाथ स्तुतियुगलम्" तथा "स्तवनपद्यसंग्रह" प्रभृति कृतियाँ अद्भुत कही जा सकती हैं।

उपर्युक्त संस्कृत-ग्रन्थों के अतिरिक्त यहाँ के पूर्व शङ्कराचार्य जी लोगों द्वारा मठाम्नाय महानुशासनम, विमर्शः एवं महाराजसुधन्वनस्ताम्रपत्रम् आदि का प्रकाशन कराया गया है। जिसका अद्वैत शाङ्करपरम्परा और सम्प्रदाय की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि संस्कृत के लिए श्री द्वारकाशारदापीठ का योगदान शोध का विषय है।

*

CS-117

नायक भेदों की आचार से सीमक्षा

अनिल कुमार, जम्मू

आचार शब्द से तात्पर्य है, वह नैतिक व्यवहार या कर्तव्य, जो मानव के अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक किंवा साधन सोपान हो, आचार कहलाता है। भारतीय लोक

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जीवन में आचार को परम धर्म माना गया है। आचार ही धर्मों का प्रहरी है। आचार से ही यश, आयु, लक्ष्मी, इहलौकिक एवं परलौकि ज्ञान इन सब की प्राप्ति होती है। आचारवान् व्यक्ति ही पवित्र, सुखी तथा धन्य है। संस्कृत नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नायक, को नम्र, मधुर, त्यागी, कुशल, प्रियवचन बोलने वाला, लोकप्रिय, पवित्र बोलने में प्रवीण, सुविख्यात कुलवाला, स्थिर युवक, बुद्धिमान उत्साही, स्मरणशक्ति वाला, उचित अनुचित का विचारक, कलाओं से सम्पन्न, मानो, शूर, दृढ़ तेजस्वी, शास्त्रों के अनुसार कार्य करने वाला एवं धार्मिक कहा गया है। नायक के लक्षण में प्राय: सभी आचार के गुण देखने को मिलते हैं परन्तु जब नायक के हम मुख्य भेदों जैसे धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीर ललित, धीरप्रशान्त इन सब पर आचार से दृष्टि डालते हैं तो धीरोदात्त नायक ही नायक के सभी भेदों में आचार की दृष्टि से उत्तम प्रतीत होता है, क्योंकि धीरोदात्त नायक में ही आचार के गुण है। वही भानुदत्त के नायकों में पति, उपपति, और वैशिक इन तीनों नायकों की आचार से समीक्षा करने के पश्चात् पति नायक ही आचार की दृष्टि से उत्तम माना जा सकता है, क्योंकि आचार के गुण इसमें पाए जाते हैं।

*

CS-118

पारिजातहरण-महाकाव्य में प्रतिपादित तीर्थस्थलों का एक धर्मशास्त्रीय अध्ययन

मनीषा मिश्रा

"तरति पापादिकं यस्मात्" अर्थात् जिसके द्वारा मनुष्य पापादि से मुक्त हो जाये, उसे तीर्थ कहते है। जिस प्रकार शरीर में मस्तक आदि कुछ अङ्ग पवित्र माने गये हैं, उसी प्रकार पृथ्वी में भी कुछ विशेष स्थल पवित्र माने गये हैं। तीर्थों से धर्म, काम और मोक्ष इन तीनों पदार्थों की सिद्धि होती है, और वे मनुष्य को पापो से मुक्त करने वाले हैं, अत: इन्हें तीर्थ कहा जाता है। इस प्रकार कैलास से कन्याकुमारी और कामाख्या से कच्छ तक सम्पूर्ण भारतभूमि तीर्थ है। इन सब तीर्थों में से सातों पुरियाँ मुक्ति को देने वाली कही गयी है–

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारवती चैव सप्तैता मोक्षदायिका:॥

सत्युग में ध्यान, त्रेता में यज्ञों द्वारा भजन और द्वापर में भगवान् का पूजन करके

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मनुष्य जिस फल को पाता था उसे ही मनुष्य कलियुग में केवल तीर्थों के दर्शन तथा भगवन्नाम कीर्तन से प्राप्त कर सकता है।

काव्य के प्रयोजन के रूप में लगभग सभी काव्यशास्त्रियों ने धर्म को मुख्यतः स्वीकार किया है। काव्य के प्रयोजन के रूप में धर्म प्रधान होता है, जिससे अमंगल का नाश होकर मंगल की प्राप्ति होती है। इसीलिए संस्कृत साहित्य में सभी नाटककारों, काव्यकारों इत्यादि ने धर्मशास्त्र का आश्रय लिया है। भक्तकवि कर्णपूरकृत पारिजातहरण काव्य, में भी प्रयोजन रूप में धर्म की प्रधानता है। महाकाव्यकार ने परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से कुछ तीर्थ स्थलों का माहात्म्य-वर्णन किया है, यथा–कामरूप, मिथिला, काशी, प्रयाग, मथुरा, कुरुक्षेत्र तथा द्वारका आदि।

धर्मशास्त्रों में वर्णित तीर्थों के महात्म्य को कविकर्णपूर ने अपने ग्रन्थ "पारिजातहरण" में यथास्थान निर्दिष्ट किया है। इन्हीं तीर्थों के महात्म्य का वर्णन मेरे प्रस्तुत लेख में किया गया है।

*

CS-119

वासवदत्ता कथा में पुष्प वर्णन

डॉ. शिल्पी

संस्कृत साहित्य की उपमा यदि ऐसे सागर से दी जाये जिसमें अनमोल रत्न छिपे हुए हैं तो अतिश्योक्ति न होगी। ऐसा ही एक अनमोल रत्न वासवदत्ता कथा है। इस की रचना सुबन्धु ने की है। वासवदत्ता कथा सुबन्धु की एक मात्र कृति है व यही कृति उनके यश का आधार है। इस रचना में कवि द्वारा प्रत्यक्षर श्लेष अलंकार का प्रयोग प्रशंसनीय है। यद्यपि इससे कहीं-कहीं बोझिलता का अनुभव भी होने लगता है। पाण्डित्य का प्रदर्शन करने के लिये अथवा अपनी रचना को क्लिष्ट बनाने के उद्देश्य से सुबन्धु ने भले ही श्लेष अलंकार का प्रयोग किया हो, किन्तु उनका कवि हृदय प्रकृति के सौन्दर्य से अछूता नहीं रह पाया है। कवि ने प्रकृति के भयानक तथा कोमल दोनों रूपों का वर्णन अपनी कथा में किया है। वासवदत्ता कथा में स्थल-स्थल पर पुष्पों का भी उल्लेख मिलता है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-120

महाकवि भास का एकांकी दृष्टिकोण

डॉ. हरेन्द्र रजक, मुजफ्फरपुर

संस्कृत साहित्य में महाकवि भास का एक विशिष्ट स्थान है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि सम्पूर्ण उपलब्ध रूपकों में भास की कृतियाँ सबसे पुरानी मानी जाती हैं, जिसके अन्तर्गत पाँच रूपक दूतघटोत्कच, दूतवाक्य, कर्णभार, उरूभङ्ग तथा मध्ययव्यायोग ही एकांकी रूपक है नाम से जाने जाते हैं। जो नाटक के समान ही दृश्य काव्य है, अथवा इसे भी काव्य के अन्तर्गत नाटक के समान एक स्वतन्त्र विकसित विधा कहा जा सकता है। जहाँ तक इसके प्रारूप एवं स्वरूप का प्रश्न है, तो हम कह सकते हैं कि यह एक ऐसी नाट्य या अभिनय विधा है जिसमें सम्पूर्ण कथानक की समाप्ति एक ही अंक में हो जाती है, परन्तु इसकी विशेषताओं के कारण समालोचकों ने इनकी स्वतन्त्र विधा और प्रक्रिया मानी है तथा इसके स्वरूप विधान में एक अंक, एक ही घटना और भाव, जीवन के एक भाग, कार्य और उद्देश्य आदि के एकत्व की संकल्पना प्रमुख रहती है, फिर भी कथा-वस्तु अल्प होते हुए गागर में सागर से कम नहीं; क्योंकि ये पाँचों कृतियाँ केवल उपजीव्य महाकाव्य महाभारत का ही स्रोत है; फिर भी महाभारत के किसी एक सूत्र को लेकर सरस और हृदयङ्गम काव्य उपस्थित करना कवि की अपनी मौलिक प्रतिभा पर निर्भर करता है। इस क्षेत्र में सफलता के कारण उदाहरण स्वरूप स्वयं भास ही है।

❋

CS-121

महाकवि कालिदास एवं भवभूति

(प्राचीन एवं अर्वाचीन समीक्षा के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ. सविता रस्तोगी, ग्वालियर

कव्यः कालिदासाद्या भवभूतिर्महाकविः।
तरवः पारिजाताद्याः स्नुहीवृक्षो महातरुः॥

कविता कामिनी के विलास महाकवि कालिदास को ईसवी पूर्व द्वितीय शताब्दी से चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के काल तक प्रायः पाँच सौ वर्षों के बीच स्थित माना गया है,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एवं संस्कृत साहित्यविभूति महाकवि भवभूति का काल प्रायः आठवीं शताब्दी में निर्धारित किया गया है। निश्चित ही भवभूति के साहित्य में कुछ ऐसे प्रसंग दिखाई देते है जो कालिदास की याद दिलाते है। संस्कृत साहित्य के नाट्यालोक में दोनों ही कवि अपनी अभूतपूर्व प्रतिभा को लेकर अवत्तीर्ण हुए है। विद्वद्जनों ने कालिदास के समतुल्य यदि किसी को माना है तो वह महाकवि भवभूति ही है। कुछ क्षेत्रों में भवभूति को कालिदास से भी श्रेष्ठ माना गया है। इसीलिये कुछ विद्वानों के अनुसार कालिदास ने स्वयं यह स्वीकारा है कि

नाटके भवभूतिर्वा वयं वा वयमेव वा।
उत्तरेरामचरिते तु भवभूतिर्विशिष्यते।

दोनों ही कवियों के काव्यों पर प्राचीन एवं अर्वाचीन टीकाकारों ने टीकायें लिखी हैं उनकी टीकायें मूल ग्रंथ के समान ही महत्व रखती है।

श्रीकृष्णमाचार्य ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में कालिदास के शाकुन्तल की 26 टीकाओं का उल्लेख किया है। प्राचीन टीकाकारों में राघव भट्ट, श्रीनिवास, अभिराम तथा नरहरि इत्यादि आलोचक हैं जिन्होंने भावयित्री प्रतिभा एवं मौलिक चिन्तन द्वारा कवि कालिदास की रचना में आये हुए स्थल की अन्विती और भावबोध के उद्घाटन के साथ-साथ अनेक संस्कृति से युक्त-अछूते आयामों से संवारा है।

शंकर ने व्यंजनावादी न होते हुये भी नान्दी में एक नया आयाम दिया है-'प्रपन्नस्तनुभिः ईशः' दुष्यन्त या बहुवल्लभात्वपरक अर्थकर अनेक कारुणिक प्रसंगों को जन्म देकर शकुन्तला के मर्म को छुआ है। काटवयेम टीकाकार ने विस्तार में न जाकर केवल इतना ही कहा है कि 'ईशः' से यहाँ दुष्यन्त सूचित है। सभी टीकाकारों ने शाकुन्तल की नान्दी के पर्यालोयन में ही अपने शास्त्रीय अभिनिवेश को लेकर आलोच्य कृति के साथ न्याय करने का प्रयास किया है।

भवभूति के नाटकों पर भी प्राचीन एवं अर्वाचीन अनेक टीकाकारों ने टीकायें लिखी है किन्तु भवभूति के नाटकों की टीकाओं में वीर-राघवकृत टीका अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-122

महाकवि भवभूति के रूपकत्रय में वर्णित राजनीतिक-जीवन मूल्य

डॉ. यादराम मीना, जोधपुर

रामकथाधारित दृश्यकाव्यकारों में महाकवि भवभूति एक आदर्शोन्मुखी नाटककार थे। भारतीय समाज में 'रामादिवत् वर्तितव्यं न रावणादित् तथा यथा हि कुरुते राजा प्रजास्तमनुवर्तते,' की अवधारणा रही है। भवभूतिकालीन समाज एक वीरयुगीन राजसत्तात्मक समाज था। इसलिये लोकाराधना एवं प्रजारक्षण रूपी जीवन-मूल्य तत्कालीन समाज में आदर्श रूप समझा जाता है। राजा की लोकाराधना रूपी प्रतिज्ञायें धर्मशास्त्र, स्मृतियों एवं नीतिशास्त्र सम्मत् होती थी। मनु ने लोकाराधनारत राजा की स्थिति, प्रस्थिति व भूमिका पर प्रकाश डालते हुये कहा है कि 'राजा दण्ड-प्रयोक्ता होता है और व्यक्ति होता है दण्ड-प्रयोग के योग्य। लोकाराधना के लिये संकल्पवान् राजा को महान् उत्साही, बहुत अर्थ देने वाला, कृतज्ञ, विनीत, सत्त्वयुक्त (सम्पत्ति और विपत्ति में विषाद रहित), बुद्धिमान्, वीर, रहस्य के गोपन में निपुण, आन्वीक्षिकी (आत्मा-विद्या), दण्डनीति (नय-अन्य) तथा वार्ता (कृषि आदि) त्रयी विद्या में निपुण होना चाहिये। भवभूति के उत्तररामरचित में राम द्वारा राजा के प्रति प्रजा के व्यवहार की सूचना दुर्मुख द्वारा मिली है, जबकि रामायण अपने सखाओं से प्राप्त होती है। इन गुप्तचरों को राजा का 'चारचक्षुष' कहा है, जिसका सामान्य अर्थ है 'गुप्तचर ही हैं नेत्र जिसके, ऐसा शासक।

राजतन्त्रात्मक राजव्यवस्था में आदर्श राजा वस्तुतः लोकानुरंजक अर्थ में ही सन्निहित था, किन्तु युद्ध के लिये केवल तभी बाध्य किया जाता था, जबकि वह अश्व-बन्धन करके, वार्तालाप के उपरान्त भी मेध्याश्व को मुक्त न करे, युद्ध थोपा नही जाता था।

*

CS-123

पुष्पदन्त की कृतियों का मूल्यांकन

डॉ. अरविन्द कुमार, बिहार

पुष्पदन्त की रचनाएँ न केवल साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध हैं, बल्कि इनमें भारतीय प्राचीन साहित्य भण्डार की प्रचुर सामग्री भी उपलब्ध है। महापुराण कवि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

की एक अपूर्व कृति है, जिसका सीधा सम्बन्ध मुख्यत: जैन दिगम्बर साहित्य के प्रथमानुयोग से है; फिर भी इसके विस्तृत कलेवर में अन्य अनुभोगों के भी यथा स्थान दर्शन किये जा सकते हैं। इसका कथानक अति विशाल है, जिसमें पत्ते के भीतर पत्ते वाली कदली स्तम्भ के सदृश जाल का संघटन होने पर भी उसमें रूकाबट नहीं आने पायी है। यह केवल पुराण ही नहीं, बल्कि एक उत्कृष्ट ग्रन्थ भी है। इसमें काव्य के सारे उपकरण सौन्दर्य, लौकहित, रस, भाषा, छंद, अलंकारादि आ गये हैं। जायकुमार चरि में कवित्व की अपेक्षा घटना का प्राचुर्य है। कथा प्रकरण में शिथिलता के बावजूद काव्यमय सौन्दर्य भी देखने को मिलता है। जसहर चरिऊ महाकवि की तीसरी तथा अन्तिम रचना है। इसका चरित इनके पूर्व भी अनेक जैन कवियों ने संस्कृत भाषा में वर्णित किया है। इस ग्रन्थ में न तो काव्यत्व की प्रचुरता है और न घटना की विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है।

*

CS-124

महाकवि कालिदास के महाकाव्यों में दीपक

डॉ. गीता शुक्ला, लखीमपुर

दीपशिखा की उपाधि से विभूषित महाकवि कालिदास, दीपक के महात्म्य को सम्यक् परखकर, उसके आलोक में अपनी कल्पना को प्रकाशित करके विश्व के सर्वोच्च पद पर आसीन हो गए। कालिदास के सातों ग्रन्थ दीपमाला से जगमगा उठे हैं जिससे प्रेरणा लेकर कोई भी अपना मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

एक नन्हें से दीपक में समाया उत्सर्ग अनुकरणीय है। जैसे दीपक तिल-तिल जलकर समष्टिगत कल्याण करता है वैस ही यदि हम सब कर्तव्य-पालन की प्रेरणा दीपक से लें तो नि:सन्देह भारत-भूमि स्वर्ग रूप में साकार हो सकती है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में महाकवि के काव्यों में, विभिन्न रूपों में जगमगाते हुए दीपक से सम्बद्ध सभी श्लोकों को ससन्दर्भ उद्धृत किया गया है साथ ही जहाँ जिस रूप में दीपक का प्रयोग है दर्शाने का प्रयास किया गया है। आज सभ्यता के सामने आई चुनौतियों से सामना करने के लिए मानवता को उसी आलोक की आवश्यकता है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-125

शंकराचार्य के स्तोत्र तथा उनके प्रिय शब्द

डॉ. श्यामकुमार झा, पं. बंगाल

जगत् गुरू शंकराचार्य ने अल्पायु में ही संस्कृत स्तोत्र साहित्य को जितना संबर्धित किया है उतना शताब्दियोपरान्त भी किसी एक व्यक्ति ने नहीं किया है। इनकी रचनाओं का निर्धारण करना भी बड़ा दुष्कर है। चूँकि परवर्ती अनेक कवियों ने शंकराचार्य के नाम से रचनाएँ की हैं इसलिए इसका निर्णय कठिन हो गया है कि कौन सी रचना जगत् गुरू की है। विशेषकर जब बात स्त्रोत साहित्य की आती है तो प्रामाणिक रचनाओं का चयन भी श्रमसाध्य कार्य है। उनके नाम से अभिहित प्रायः एक सौ स्तोत्र प्रचलन में हैं, जिनमें कुछ उल्लेखयोग्य है–शिवाष्टकम्, भ्रमराष्टकम्, अच्युताष्टकम्, जगन्नाथाष्टकम्, रामाष्टकम्, गङ्गष्टकम्, जमुनाष्टकम्, अन्नपूर्णास्तोत्रम्, दुर्गापराध भञ्जनस्तोत्रम् अर्धनारीश्वरस्तोत्रम्, द्वादशज्योतिर्लिङ्ग स्त्रोतम् इत्यादि।

इन स्तोत्रों पर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि शिखरिणी छन्द आचार्य शंकर का प्रिय छन्द रहा है। जहाँ तक स्तोत्रों की शब्दावली का प्रश्न है, विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक कवि की तरह इनके भी कुछ प्रिय शब्द है जिनकी बारम्बर आवृति देखने को मिलती है। यह आवृति अलङ्कार करणतः भी हुआ है। सिर्फ शब्दचयन में ही नहीं छन्दोबद्धता में सुगमता हेतु इन्होंने कुछ विशेष क्रिया पदों का भी क्रमवार आवृत्ति किया है, अपने शोध पत्र में इसी विषय पर मैंने विस्तार से चर्चा की है।

*

CS-126

वाल्मीकि-रामायण में रस-विवेचन

दिलोत्तम कुमार, सिमडेगा

रस काव्य का परमार्थ होता हे। इसकी महत्ता का सर्वप्रथम अनेक शताब्दियों पूर्व आचार्य भरत ने अनुभव किया था। "न कि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।" रस लोकोत्तर आनन्दस्वरूप होता है। इसी कारण तैत्तिरीयोपनिषद् में ब्रह्म को भी रस कहा गया है–"रसो वै सः।" रस आदि की प्रमुखता का विचार कर ही आनन्दवर्धन जैसे आलङ्कारिकों ने रामायण को आदि महाकाव्य की संज्ञा दी। किसी एक रस को प्रधान रूप से अभिव्यक्त

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करना काव्य का मुख्य रस माना जाता है। इस दृष्टि से "मा निषाद...." से निकला रामायण का प्रधान रस करूण है जो महाकाव्य के अन्त तक पाया है। राम का वनगमन दशरथ की मृत्यु, भरत का लौटना, दशरथ का दाह–संस्कार, सीता–हरण, मेघनाथ के बाण से लक्ष्मण का मूर्च्छित होना, सीता का पृथ्वी में समा जाना आदि अनेक ऐसे मार्मिक स्थल हैं जहाँ हम करुण से अभिभूत हो जाते है। यहाँ रसराज श्रृङ्गार के स्थल अधिक नहीं है। फिर भी, चित्रकूट वर्णन तथा गङ्गा नदी के प्रसङग में यह दृष्टिगोचर होता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि सङ्गीत का आनन्द लेना, उद्यानादि में विहार करना आदि भी सम्भोग श्रृङ्गार की परिधि में आते हैं।

हास्य को भी रामायण में कम ही स्थान मिला है। अतिकाय की गर्वित उक्ति सुनकर लक्ष्मण का निम्नलिखित कथन हास्य का उदाहरण है–

तत्तस्य वाक्यं बुवतो निशक्य चुकोप सौमित्रिरमित्रहन्ता।
अमृष्यमाणः समुत्पपात जग्राह चापं च ततः स्मयित्वा।। (6.71.46)

रौद्र रस किसी प्रसङग में या स्वतंत्र पद्यों में अभिव्यक्त हुए हैं। अयोध्यकाण्ड का सम्पूर्ण सातवाँ सर्ग प्रासङ्गिक रौद्र के रूप में अभिव्यक्त हुए है। भरत का यह क्रोध रौद्र रस रूप में अभिव्यक्त हैं–

इत्येवमुक्त्वा भरतो महात्मा प्रियेतरैर्वाक्यगणैस्तुदस्ताम्।
शोकार्दितश्चापि ननाद भूयः सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः।। 2.73.28

वीररस की सुन्दर अभिव्यञ्जना यहाँ हुई है। इसके सभी भेद (दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर व दयावीर) अभिव्यक्त हैं। सम्पूर्ण लङ्काकाण्ड भयानक रस से भरे–पड़े हैं।

स प्रविश्य पुरीं लङकां रामबाणभयर्दितः।
भग्नदर्पस्तदा राजा बभूव व्यथितेन्द्रियः।

*

CS-127

"शाकुन्तल" नाटक में चतुर्थ अंक का वैशिष्ट्य

दिलीपकुमार, मुजफ्फरपुर

शाकुन्तल नाटक का चतुर्थ अंक सर्वाधिक मनोहारी एवं चित्राकर्षक माना गया है जहाँ कवि दुष्यन्त एवं शकुन्तला के कलुषित चरित्र को पूत करने के लिए दुर्वासा के

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शाप का अवतरण कर वस्तुतः नाटक की कथावस्तु में गतिशीलता लाने का पूर्ण प्रयत्न किया है। अतः निकृष्ट चरित्र को लेकर उत्कृष्ट नाट्यकृति महाकवि की एकांत विशेषता है। किन्तु यहाँ यह विचारणीय है कि नाटक के चतुर्थ अंक में न तो कथा का नायक उपस्थित होता है और न यहाँ अन्य अंकों की तरह कथांश की परिपुष्टि ही होती है। फिर विद्वानों का यह वचन किस प्रकार सत्यता को प्राप्त करता है।

"काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थो अंकः यत्र याति शकुन्तला॥"

किन्तु यह वचन चतुर्थ अंक की विशेषताओं को देखने के बाद सत्य ही प्रतीत होता है। निश्चित रूप से इस अंक की अपनी कुछ विशेषताएँ अवश्य है जिस कारण विद्वानों की यह प्रशस्ति प्रचलित है।

इस आलेख में "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" नाटक के चतुर्थ अंक की विशेषता का वर्णन किया गया है।

❋

CS-128

स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत-कवि-चेतना

डॉ. किरण सिंह सेंगर, मैनपुरी

स्वातन्त्र्योत्तर काल में विभिन्न भारतीय भाषाओं ने सृजन कर्म में निरत साहित्यकारों के द्वारा एक नवोदित राष्ट्र के भीतर चल रहे परिवर्तनों, आन्दोलनों, सामाजिक मान्यताओं एवं भाषाओं के पारस्परिक संयोगों के विषय में बहुआयामी साहित्य का सृजन किया है। किसी भी भाषा की जीवन्तता तभी प्रमाणित होती है, जब वह अपने माध्यम से युगबोध को अभिव्यक्त करती है जिसमें न केवल वर्णनात्मकता ही अनुस्यूत हो अपितु दिशाबोध भी उपलब्ध हो। देव भाषा संस्कृत भी उपक्रम में अपना भास्वर स्वरूप स्थापित करती है। शास्त्रीय भाषा होने के कारण इसका साहित्य अपनी पूरी पारम्परिक दीप्ति के साथ सम-समायिक युगबोध को पूरी तीव्रता से न केवल रेखांकित करता है अपितु हमें दिग्बोध के अनेक आयामों से परिचित कराता है। संस्कृत भाषा की स्वातन्त्र्योत्तर कवि चेतना अपने बहुआयामी काव्यसृष्टि से जिस भारतीय समाज से हमें परिचित कराती है। उसके प्रमुख बिन्दुओं का साक्षात्कार इस शोध पत्र का प्रतिपाद्य विषय है। शोध के प्रमुख बिन्दु निम्नांकित हैं–

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

1. राष्ट्रीयता की भावना।
2. देश–प्रेम।
3. वर्तमान नेतृत्व के प्रति क्षोभ।
4. प्रगतिशीलता।
5. नारी जीवनः बदलते परिवेश में।
6. गीत विधा के प्रति झुकाव।
7. गजल विधा का स्वागत।

*

CS-129

भोजराज की कृतियों में कालिदासीय सन्दर्भ

डॉ. सदाशिव कुमार द्विवेदी, वाराणसी

संस्कृत साहित्यशास्त्र के सुप्रसिद्ध आचार्य धारानरेश भोजदेव की कृतियों सरस्वतीकण्ठाभरणालङ्कार (1 से 5 परिच्छेद) तथा शृङ्गार प्रकाश (1 से 36 प्रकाश) में 660 स्थानों पर महाकवि कालिदास की सात में से छः कृतियों के पद्य विभिन्न शास्त्रीय तत्त्वों के स्पष्टीकरण हेतु उद्धृत मिलते हैं। इनमें सर्वाधिक 241 पद्य महाकवि के अष्टसर्गात्मक महाकाव्य कुमारसम्भव से उद्धृत हैं। इसके अतिरिक्त भोजदेव की उपर्युक्त दोनों कृतियों में 227 पद्य रघुवशं महाकाव्य से, 86 पद्य अभिज्ञानशाकुन्तल से, 51 पद्य मेघदूत से तथा 41 पद्य विक्रमोर्वशीय से उद्धृत मिलते हैं। मालविकाग्निमित्र का एकमात्र पद्य शृङ्गारप्रकाश के 36 वें प्रकाश में उद्धृत मिलता है।

इस विवरण से स्पष्ट है कि आचार्य भोजदेव को सर्वाधिक अभ्यास कुमारसम्भव का है और उसके अनन्तर रघुवंश का। नाटकों में भोजदेव को सर्वाधिक प्रिय अभिज्ञानशाकुन्तल है तदनन्तर विक्रमोर्वशीय। भोजदेव की कृतियों में कालिदास विरचित खण्डकाव्यों में हमें केवल मेघदूत के पद्य उद्धृत मिलते हैं। मेघदूत के लगभग आधे पद्यों को आचार्य ने अपनी कृतिद्वय मे स्थान दिया है। ऋतुसंहार से आचार्य परिचित नहीं। इससे विदित होता है कि या तो वे ऋतुसंहार को कालिदास की रचना मानने के पक्षधर नहीं या फिर इसको कालिदास की कृति के रूप में उनके समय तक प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त हो सकी थी।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कुमारसम्भव के अष्टम सर्ग के लगभग एक तिहाई अर्थात् 31 पद्य आचार्य भोजदेव ने उद्धृत किए है। इससे स्पष्ट होता है कि शृङ्गारपूर्ण होते हुए भी अष्टम सर्ग को भोजदेव पूर्ववर्ती साहित्यशास्त्रीय आचार्यों सृदश उपेक्षणीय नहीं मानते और न हि अभिनवगुप्त, मम्मटादि आचार्यों सृदश उसकी आलोचना करते हैं।

शृङ्गारप्रकाश में आचार्य भोजदेव ने महाकवि कालिदास के कई पद्यों को अनेक बार उद्धृत किया है, उन पद्यों में निहित अनेकानेक साहित्यशास्त्रीय तत्त्वों का प्रकाशन करने हेतु। इनमें प्रसिद्ध हैं रसनिष्पत्ति, शृङ्गार के विभिन्न भेद व अवस्थाएँ, अलंकारतत्त्व, भावादि निरूपण, नायिकाभेद इत्यादि। यहाँ उल्लेखनीय है कि भोजदेव ने एक ही साहित्यशास्त्रीय तत्त्व के विवेचन हेतु कालिदास के साथ माघ, भारवि आदि महाकवियों के पद्यों को भी उद्धृत किया है। प्रस्तुत शोधपत्र में भोजदेव की कृतियों में उपलब्ध कालिदासीय सन्दर्भों की उनमें निहित साहित्यशास्त्रीय तत्त्वों के प्रकाशन हेतु समीक्षापूर्वक विवेचना की जायगी।

❋

CS-130

मृच्छकटिक काल का सामाजिक जीवन

सुरेश द्विवेदी, बख्तियारपुर

तत्कालीन सामाजिक दशा पर भी इसका पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों जैसे चोर, धूर्त, वेश्या, राज्य के अधिकारी आदि की इसमें पर्याप्त चर्चा है। इसके पढ़ने से तत्कालीन राज्य के स्वरूप के सम्बन्ध में यही ज्ञात होता है कि उस समय यद्यति राजतन्त्र था पर राजा प्रजा के विचारों के अनुरूप राज्यमंत्रियों की सम्मति से, अनेक प्रकार के गुप्तचर विभाग के अधिकारीगणों से, दूत एवं अनेक सेवकों की सहायता से राज्यकार्य सपन्न करते थे। इस दशा का निरूपण करता हुआ न्यायालय में चारूदत कहता है:–

चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रिसलिलं दूतोर्मिशंखाकुलं
पर्यन्तस्थितचारनक्रमकरं नागश्रर्हिस्राश्रयम्।

नानावाशक कङ्कपक्षिरचितं कायस्थसर्पास्पदं
नीतिक्षुण्णतटं च राजकरणं हिंस्रैः समुद्रायते।।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-131

गौस्वामी हरिकृष्ण शास्त्री विरचित अत्याधुनिक भारतीय पञ्चमगद्यकाव्यस्वरूप "श्री-आचार्य-विजयः" साहित्यिक समीक्षा

डॉ. वाचस्पति शुक्ल, प्रतापगढ़

समीक्ष्य ग्रन्थ "श्री आचार्य विजयः" के लेखक गोस्वामी हरिकृष्ण शास्त्री के पास पूर्वजों के अपार ज्ञान से सम्बलित पूर्वजन्मर्जित संस्कार हैं, जिसका अनुप्रयोग गोस्वामी जी ने भरपूर किया है–

राजस्थानवसुन्धरावरलरुत् पाण्डित्यपाथोनिधिः
सद्यः काव्यकलाकलापकलने सिद्धि प्रसिद्धः कविः।
तैलङ् गद्धिजवंशलब्धजननः सद्गद्य-पद्याधिराट्
गोस्वामीहरिकृष्णआशुकविताकल्लोनीकेलिकृत्।।

21वीं शताब्दी में ऐसे प्राञ्जल गद्य-ग्रन्थ का लेखन एवं प्रकाशन इस बात का परिचायक है कि आज भी संस्कृत भाषा एवं साहित्य समृद्धि की पराकाष्ठा पर है क्योंकि आधुनिक गद्य काव्य की कोटि में आगत "श्री-आचार्य-विजयः" जीवनवृत्ताधारित आख्यायिका ग्रन्थ की कोटि में आने वाला ग्रन्थ मात्र नहीं अपितु भारतीय संस्कृति का स्मारक भी है। इसमें कथावस्तु का वैशद्य है और स्त्री एव पुरुष पात्रों के चरित्र का व्यापक चित्रण है। यह ग्रन्थ पूर्ववर्ती गद्य-ग्रन्थ-रचयिताओं का स्मरण दिलाने वाला है क्योंकि इसमें दण्डी का पद-लालित्य, बाण की ज्ञान गहनता एवं शैली निरूपण सोमदेव की कथात्मकता प्रधान शैली और पं. अम्बिकादत्त व्यास के विशदवर्णन एवं बैदग्धा का पुञ्जीभूत प्रतिफल पदे-पदे परिलक्षित होता है। यह ग्रन्थ भारतीय जन-मानस में ईश्वरासक्ति का प्रेरक है एवं सर्वजन सुलभ भगवदीय भक्ति की मन्दाकिनी की अविरल धारा के सातस्य को सतत् अग्रसर करने वाला प्रकाशपुञ्ज की तरह है। यह संस्कारों का संवाहक है, प्रख्यात दर्शनों की दार्शनिक भावना का प्रतिबिम्बन है और श्रुति-स्मृति-पुराण-आर्षकाव्य-साहित्य-व्याकरणादिशास्त्रों के निरन्तर अभ्यास से सिक्त है। इसमें साहित्यिक समालोचना के सभी मानकों जैसे भाषा, शैली, संवाद, नाद, ध्वनि अलङ्कार, रसादि गम्भीरतम वस्तुओं का व्यापक प्रयोग किया गया है। ऐसे गद्यकाव्यों की आज संस्कृत समाज को आवश्यकता है जो भारतीय संस्कृति के प्राचीन श्रेष्ठ विचारों को जनता के सामने रखकर नवीन सरणि निर्माण की भावना को संबल दें। इसके लिए कवि एवं कृति दोनों प्रशंसनीय है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-132

मृच्छकटिक में प्रयुक्त अलंकार

सोनिया शर्मा, शिमला

अलंकार नाट्य सौन्दर्य को जगमगा देते हैं। अलंकारों से वस्तु सजीव हो उठती है। आचार्य मम्मट के विचारानुसार "कटक, कुण्डल प्रभृति विधि आभूषणों की भान्ति अनुप्रासोपमादि अलंकार शब्द तथा अर्थ के शोभा बर्धक अस्थिर धर्म हैं।" मृच्छकटिक में प्रकृति के सुकमार पक्ष के अतिमनोहर चित्र प्राप्त होते हैं।

मृच्छकटिक एक प्रकरण है जिसका इतिवृत्त लौकिक है। यही कारण है कि इसमें तत्कालीन समाज की आर्थिक धार्मिक और राजनीतिक दशाओं का निरुपण पाया जाता है। जैसे केयूरादि अलंकार शरीरधारी की सौन्दर्य वृद्धि करते हैं अथवा उसके सौन्दर्य के प्रसाध न बनते हैं, उसी प्रकार अनुप्रास, उपमा आदि अलंकार काव्य शोभा में वृद्धि करते हुए आत्मभूत रस के भी उपकारक बन जाते हैं। अलंकार काव्य में सौन्दर्य का आधान करते हैं। वस्तुतः उक्ति वैचित्रय ही अलंकार है जो कि कवि प्रतिभाजन्य होता है।

अलंकार सिद्धान्तानुसार काव्य की संघटना हेतु जिन दो तत्त्वों का अत्यन्त महत्त्व है वे हैं शब्द और अर्थ। इन दोनों पदार्थों का अग्राम्यता युक्त, वक्रोक्तिपूर्ण, अतिश्योक्ति परिपूर्ण, निर्दुष्ट और औचित्यपूर्ण साहित्य ही काव्य की संज्ञा पाता है। शूद्रक विरचित मृच्छकटिक में अनुप्रास, यमक, वक्रोक्ति और श्लेष, अतिश्योक्ति, अर्थान्तरन्यास, अप्रस्तुतप्रशंसा, उत्पेक्षा, उपमा काव्यलिंग, तुल्ययोगिता, दृष्टान्त, परिसंख्या, रूपक, विरोध, व्यतिरेक ससन्देह, सहोक्ति, संम्रष्टि के प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि ये अलंकार मृच्छकटिक में स्वतः ही सक्रान्त हो गए हैं। कविता कामिनी के सौन्दर्य वर्धक विभिन्न उपकरणां में अलंकारों का स्थान महत्त्वपूर्ण अंगीकृत किया जा रहा है। शूद्रक ने प्रायः समस्त अलंकारों का प्रयोग किया है। उनका अलंकार प्रयोग भाषानुसारी तथा भावानुरूप है। अलंकार नाट्य श्री को जगमगाने वाले अमूल्य रत्न हैं। इनसे मृच्छकटिक की शोभा श्री में वृद्धि हुई है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-133

अश्वघोष विरचित सौन्दरनन्द के षष्ठ सर्ग में प्रयुक्त छन्द : एक विवेचन

डॉ. ध्रुव प्रसाद यादव, बिहार

छन्द शब्द संस्कृत के छन्दस् शब्द का अर्द्धतत्सम रूप है। इसकी निष्पत्ति "छेदिसंवरणे" से असुन् प्रत्यय करने पर होती है। इसका व्यवहार सामान्यतः कामना, अभिलाषा, स्वेच्छाचार आदि की संज्ञा के रूप में होता है। यद्यपि छन्दमन्दाकिनी को वैदिक स्वर्ग से लौकिक धरातल पर उतारने में महर्षि बाल्मीकि का भगीरथ-प्रयत्न भुलाने योग्य नहीं है; फिर भी यह छन्द अनादि काल से नाना वर्ण्य विषयों को अपने में समेटे अबाध गति से बहती हुई कल-कल निनादिनी ह्लादिनी के समान मानवों के अन्तस्तल को उर्वर बनाता आ रहा है। जब वैदिक छन्दों का सूर्य अस्त हो गया तब संस्कृत की रचना जिन छन्दों में हुई, उन्हें लौकिक छन्द के नाम से पुकारा जाता है।

इस काल में महर्षि वाल्मीकि से लेकर पं. पिङ्गलनाग से पूर्व तक छन्द स्वच्छन्दता से विकसित होता रहा। सर्वप्रथम पं. पिङ्गलनाग ने ही छन्दों को शास्त्रीय परिधान पहनाया। क्रौञ्च द्वन्द्व के वियोग से मर्माहत महर्षि वाल्मीकि के स्वर में जो नया विकार पैदा हुआ, उससे लौकिक छन्दों का श्रीगणेश हुआ, जो आजतक अविच्छिन्न गति से चलता आ रहा है।

महाकवि अश्वघोष द्वारा विरचित कृतियों में बुद्धचरित एवं सौन्दरनन्द-ये दो महाकाव्य सर्वश्रेष्ठ हैं। बुद्धचरित एवं सौन्दरनन्द से अश्वघोष का व्यक्तित्व उनकी कलात्मक अभिरुचि, सौन्दर्य-शास्त्रीय मान्यता, पाण्डित्य, मानव धर्म के प्रति आदर-भाव, समन्वय तथा दार्शनिक मान्यता आदि पर प्रकाश पड़ता है। सौन्दरनन्द 18 सर्गो का महाकाव्य है। इसमें भगवान बुद्ध के विमातृज भाई नन्द तथा उनकी पत्नी सुन्दरी की कथा है। इसके षष्ठ सर्ग में सुन्दरी का विलाप वर्णन है। इस प्रसंग में उन्होंने केवल उपजाति छन्द का प्रयोग किया है। सर्गान्त में उन्होंने पुष्पिताग्रा छन्द का प्रयोग कर महाकाव्य के नियमों का पालन किया है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-134

साहित्य वारिधि प्रो. कैलाशनाथ द्विवेदी का संस्कृत गद्य साहित्य- एक समीक्षा

गीताराम शर्मा, झालावाड़

प्रस्तुत शोध पत्र में साहित्य वारिधि प्रो. कैलाशनाथ द्विवेदी के गद्य साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। शोध पत्र के प्रथम खण्ड में डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी का पारिवारिक परिचय शैक्षिक योग्यताओं की चर्चा की गई है। 11जनवरी 1942 को उत्तर प्रदेश के कानपुर देहात जिले के वैना गांव में पण्डित सुदर्शन लाल द्विवेदी तथा श्रीमती सुखरानी देवी के द्वितीय पुत्र के रूप में जन्में डॉ. द्विवेदी ने पीएच.डी. डी. लिट् के साथ-साथ साहित्याचार्य, साहित्यरत्न जैसी उपाधियां प्राप्त की है। द्वितीय खण्ड के अन्तर्गत डॉ. द्विवेदी के समस्त कृतित्व का परिचय दिया गया है। जिससे ज्ञात होता है कि इनकी लगभग तीस कृतियां अध्यावद्य प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी संस्कृत काव्य कृतियों में शाकुन्तलीयम, गुरूमहात्मशतकम्, देवकलीदर्शनम्, काव्यमाला प्रमुख हैं। नाटकों का संग्रह नाटयामतृम तथा संस्कृत कथा साहित्य में जिन कथाओं की चर्चा हुई है उनमें महुर्तम, जीवनम् अपराजितम्, वादिनाहितम्, निर्लोभी, भौतिकतायासीमा प्रमुख हैं। लघु कथाओं में तत्वदर्शी, "नेता वा अभिनेता वा" उल्लेखनीय है। समीक्षात्मक ग्रन्थों में अब्दुलरहीमखानखाना पुरस्कार प्राप्त कृति लेखान्जलि. कालिदासीयम, अभिनवचिन्तम्, तथा मृच्छकटिक परिशीलनम् प्रमुख हैं। आपके गद्य साहित्य में भारत वर्ष की ऋतम्भरा प्रज्ञा के योग से भारतीयों की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक तथा पर्यावरणीय चेतना को आन्दोलनात्मक विमर्श के साथ सार्थक तथा आस्थामयी अभिव्यक्ति मिली है।

*

CS-135

महाकवे बाणभट्टस्य कादम्बर्यां प्रकृति वर्णनम्

सरस्वती कुमारी, बिहार

बाणभट्ट प्रकृति के प्रवीण कवि है उनके काव्यों में प्रकृति का अत्यंत सुंदर और रमणीय चित्रण प्राप्त होता है उनकी अंतरात्मा सदैव प्रकृति में रमती है उन्होंन प्रेम और

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सौंदर्य का जो उन्मुक्त चित्रण किया है उनकी रंगभूमि प्रकृति की गोद ही है उनकी प्रतिभा जागृत के क्षेत्र में अपनी नववनोन्मेशवशालिनी मूर्ति को जागृत रखती हे और उनकी पियूषवर्षिणी उक्तियाँ प्रकृति फेरस से ही रसवती है इसके साथ ही उनके प्रकृति वर्णन में एक विशेषता भी है उन्होंने प्रकृति के जो चित्र उपस्थित किए है उनमें अपनी लेखनी से प्राण कवि प्रकृति का मधुर और भयावह दोनों का वर्णन करने में सक्ष्म हैं इन रूपों की सजीवता प्रदान करने में बाणभट्ट का अनेक अंलकारों ने सहयोग किया है। जब प्रकृति का वर्णन करने बैठते है तो अलंकार और पौराणिक कथा संकेत मिलकर उनके सक्षम खड़े दिखाई पड़ते हैं। मानो आपस में प्रति द्वन्द्विता हो। विशेष रूप से उपमा, उत्प्रेक्षा, परिसंख्या, विरोधाभास अलंकार वर्णन को मंजूला बना देता है।

*

CS-136

संस्कृत अलङ्कार जगत् में 'शृङ्गारतिलक कर्ता रूद्रभट्ट'

डॉ. दिनेश कुमार शुक्ल, राजस्थान

रूद्रभट्ट की कृति श्रृंगारतिलक संस्कृत काव्य-शास्त्र की परम्परा में न केवल रस-विवेचन के लिए अपितु अपनी रसपेशलता के लिए भी एक समृद्ध कृति है, किन्तु इस कृति का दुर्भाग्य यह है कि एक अनाथ पिण्ड की भाँति इसके रचयिता का अद्यावधि निश्चित रूप से निर्धारण ही नहीं हो पाया।

इस ग्रन्थ में कुल तीन परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेद में रस, भाव तथा नायक-नायिका का निरूपण है। द्वितीय परिच्छेद में विप्रलम्भ श्रृंगार, नायक-नायिका की अप्राप्ति में दश अवस्थाएं, मान का ढंग, प्रकार, मानेनी नायिका को प्रसन्न करने के छः उपाय तथा नायिकाओं के सखिजनों का वर्णन है। तृतीय परिच्छेद में सङ्क्षेप में अन्य रसों तथा 4 वृत्तियों-क्रमशः-कैशिकी आरभटी, सात्वती तथा भारती का निरूपण है। रुद्रभट्ट द्वारा अभिहित नायिका विवरण, का विशिष्ट न्यारकान बीते हुए प्रस्तुत शोधपत्र में रुद्रभट्ट से सम्बन्धित विविध स्त्रोतों का विवरण प्रस्तुत शोध पत्र में निदर्शित किया गया है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitjzed by S3 Foundation USA

CS-137

कालिदास के 'निकुम्भ' का प्रत्यभिज्ञान

डॉ. प्रतिभा त्रिपाठी, इलाहाबाद

कालिदास गणेश के पूर्वरूप 'निकुम्भ' से परिचित थे। 'रघुवंशम्' द्वितीय सर्ग का वह सन्दर्भ (2/35-36) अवलोकनीय है जिसमें नन्दिनी का आक्रान्ता सिंह अपना परिचय देता हुआ कहता है कि कैलास पवर्त, नन्दी, भगवान शिव, कुमार कार्तिकेय तथा उनकी माता (पार्वती) के उल्लेख के मध्य सिंह स्वयं को निकुम्भ का मित्र बताता है, जो विचारणीय है। मल्लिनाथ की 'सञ्जीवनी' इस विषय में मौन है। किन्तु सिद्धेश्वर शास्त्री चित्रव द्वारा भरतीय चरित्र कोश मण्डल पूना द्वारा सं. 2021 में प्रकाशित 'भरतवर्षीय प्राचीन चरित्रकोश' के पृ. 367 पर 'निकुम्भ' का एक कोशार्थ इस प्रकार दिया गया है–"गणेश का प्राचीन नाम। वाराणसी में इसका मन्दिर था। इसकी पूजा आराधना करने पर भी, दिवोदास की स्त्री सुयशा को पुत्र न हुआ। इसलिए उसने इसके देवालय तथा देवमूर्ति को उध्वस्त किया। फिर क्रुद्ध होकर निकुम्भ ने वाराणसी उध्वस्य होने पर शात दिया (ब्राह्माण्ड 67.30-55; वायु 90.27.52, ब्रह्म. 11.43)।" इसी ग्रन्थ के पृष्ठ 181 पर 'गणपति' के सन्दर्भ में कहा गया है–"तालजंघदि हैहयों ने वाराणसी जगरी उध्वस्त की, तथा दिवोदास को भगा दिया। अन्त में निकुम्भ की फिर से स्थापना हुई। वाराणसी समृद्ध हो गई। इस कथा में वर्णित निकुम्भ ही गणपति नाम से प्रसिद्ध हुआ। गणेश, गणपति, गणेश्वर, बहुभोजन और कामपूरक नाम से भी निकुम्भ का वर्णन प्राप्त है (वायु> 82.36-51)। .....गजमुख गणेश सामान्यतः खिस्त के पञ्चम सदी के पूर्व उपलब्ध नहीं है। कालिदास ने निकुम्भ का गौण रूप से निर्देश किया है" अतः 'गणेश' की अवधारणा कालिदास परवर्ती है, किन्तु वे गणेश के पूर्वरूप निकुम्भ से परिचित थे।

*

CS-138

नैषधीयचरितम् में लोकविश्वास

सुश्री माधुरी यादव, इन्दौर

नैषधीयचरितम् श्रीहर्ष की उत्कृष्ट कोटि की रचना है। यह 22 सर्गो का एक विशालकाय महाकाव्य है। इसमें नल और दमयन्ती के पारस्परिक प्रेम से विवाहोपरांत क्रीड़ाओं तक की पवित्र कथा वर्णित है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भारत की अनेक भाषाओं के ग्रंथों में स्थान-स्थान पर इन लोकविश्वासों का वर्णन मिलता है। प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृत साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा है क्योंकि जो समाज में व्याप्त है वो साहित्य में अंतर्निहित है। पद्मपुराण, अग्निपुराण, मुहूर्तचिंतामणि, रामायण, महाभारत आदि अनेक ग्रंथों में इनका वर्णन प्राप्त होता है। नैषधीयचरितम् की कथा के विकासक्रम में अनेक प्रसंगो के माध्यम से लोकविश्वासों का अत्यंत सजीव और चित्ताकर्षक चित्रण देखने में आता है। नैषधीयचरितम् में वर्णित इन लोकविश्वासों को मुख्य रूप से तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकिता है–1. शुभशकुन, 2. अशुभ शकुन, 3. सामुदिक शास्त्रनुसार।

हमारे समाज का लोकविश्वासां (शकुन-अपशकुनों) पर गहरा विश्वास बना हुआ है, विशेषकर यहाँ के लोकजीवन में। ये लोकविश्वास आचरण, नीति-अनीति, कर्तव्य-अकर्तव्य, कृषि जलवायु, खान-पान, स्वास्थ्य, यात्रा आदि से संबंधित होतो हैं। ये लोकविश्वास समाज जीवन की सुदीर्घ परंपरा में गहरे विश्वास के साथ गुड़ है। इन पर वैज्ञानिक–मनोवैज्ञानिक शोध संभव है।

*

CS-139

भारतीय काव्यशास्त्र को कश्मीर का योगदान

पीर इरफत अहमद, श्रीनगर

कश्मीर की धरती में उत्पन्न काव्यशास्त्रियों ने इस क्षेत्र में इतने महत्वपूर्ण साहित्य का सृजन किया है कि उसके बिना भारतीय काव्यशास्त्र की कल्पना करना भी कठिन है। भारतीय काव्यशास्त्रीय चिन्तनधारा में प्रमुख सिद्धान्त माने जाते हैं–अलङ्कारसिद्धान्त, रीतिसिद्धान्त, रससिद्धान्त, ध्वनिसिद्धान्त, वक्रोक्तिसिद्धान्त तथा औचित्यसिद्धान्त।

कश्मीर में उत्पन्न काव्यशास्त्रयों में कुछ आचार्य मूल सिद्धान्त के स्थापक था प्रवर्तक है। मामह अलङ्करसिद्धान्त के, वामन रीतिसिद्धान्त के, आनन्दवर्धन ध्वनिसिद्धान्त के, कुन्तक वक्रीकितसिद्धान्त के तथा क्षेमेन्द्र औचित्यसिद्धान्त के प्रवर्तक है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-140

यमक–काव्यों में भट्टिकाव्य

डॉ. आशुतोष गुप्त, लखनऊ

भट्टिकाव्यगत यमक अलङ्कार–जहाँ पर अर्थवान् तथा भिन्नार्थक स्वर व्यञ्जन समुदाय की उसी क्रम से आवृत्ति होती है वहाऋ यमक अलङ्कर होता है। पद और उसके एकदेश आदि में रहने से यह यमक अनेक प्रकार का हो जाता है। भट्टिकाव्य टीकाकार जयमङ्गल ने भी यम का ऐसा ही लक्षण बताया है। शब्दलङ्कारो में महाकवि भट्टि ने इसे सर्वोपरि स्थान दिया है। दशम सर्ग में द्वितीय पद्य से बाइसवें पद्य तक कुल बीस यमक भेंदों को दर्शाया गया है। ये भेद निम्नवत् है–

1.	युक्पादयमक	2.	पादाऽन्तयमक
3.	पादाऽऽदियमक	4.	पादमध्ययमक
5.	चक्रवाल यमक	6.	समुद्गयमक
7.	काञ्चीयमक	8.	यमकाऽऽवली,
9.	अयुग्मपादयमक	10.	पादाद्यन्त यमक
11.	मिथुनयमक	12.	वृन्तयमक
13.	पुष्पयमक	14.	पादाऽऽदिमध्ययमक
15.	विपथयमक	16.	मध्यान्तयमक
17.	गर्भयमक	18.	सर्वयमक
19.	महामयंक	20.	आद्यन्तयमक।।

*

CS-141

रामायण में ध्वन्यात्मकता

डॉ. अर्चना कुमारी दुबे

रामायण भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। यह सम्पूर्ण भरत को एक सूत्र में ग्रथित करने, समग्र सृष्टि के प्रति सौहार्द की प्रेरणा देने तथा जनमानस में समाहित परलौकिक एवं उदात्त लोक व्यवहार को समुचित बनाने में सहायक है। यह उदात्त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

काव्यशिल्प में ग्रन्थित आदि महाकाव्य है। रामायण के प्रसङ्ग एवं वर्णन हमारी चेतना में बस गई है इसका मुख्य कारण वाल्मीकि के शब्दों की ध्वन्यात्मकता है। रामायण में पग-पग पर ध्वनि-तत्त्व की प्रधानता देखने को मिलती है। आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि की व्याख्या करते हुए कहा है कि जहाँ अर्थ अपने आपको तथा शब्द अपने अर्थ को गौण बनाकर प्रतीयमान अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं, उस काव्यविशेष को विद्वानों ने ध्वनि काव्य कहा है।

*

CS-142

पञ्चरात्र में गुरु द्रोण का प्रतिनायकत्व

डॉ. रामा शंकर रजक, मुजफ्फरपुर

"भ्रातृणां पैतृकं राज्यं दीयतामिति वञ्चना।
किं परं याचितैर्दत्तं बलात्कारेण तैहृतम्।।" पञ्चरात्रम्' 1/35

यद्यपि भारतीय सभ्यता संस्कृति, संस्कारो एवं परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य में किसी भी आदर्श पुरुष को प्रतिनायक मानने में मेरा अभिमान डोल जाता है। ऐसे ही आदर्श पुरुषों में एक गुरु द्रोण हैं, जिनके व्यक्तित्व में वीरता, त्याग, निःस्पृहता, शिष्यवत्सलता, उदारता और आचर्यत्व की प्रकृति निहित हैं। यही कारण है कि सूक्ष्मता से अध्ययन किए बिना गुरु द्रोण को प्रतिनायक मान लेना कठिन है 'पञ्चरात्रम्' का मूल-उत्स' महाभारत' का विराट् पर्व है, लेकिन नाट्यकार ने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से इस समवकार में नवीन चिन्तन धारा ला दी हैं।

*

CS-143

रघुवीर चरितम् महाकाव्य का अध्ययन

डॉ. मजू उपाध्याय, जम्मू

कोलाचल मल्लिनाथ टीकाकार के रूप में तो सुविख्यात् है पर वे स्वय प्रौढ़ कवि भी हैं। इसका प्रमाण उनकी महाकाव्य रचना रघुवीरचरितम् से मिलता है। राम कथा की विविधता एवं व्यापकता से भी अधिक महत्वपूर्ण तथ्य है कि उनकी प्रभाविष्णुता लोकानुग्रही

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मर्यादापुषोत्तम राम एक ऐसे महामानव हैं जिनकी प्रासंगिकता रावणाकान्त त्रैता में ही नहीं प्रत्युत्त प्रत्येक युग में रही है।

रघुवीरचरितम् महाकाव्य 17 सर्गो में निबद्ध हैं। इसमें रामचन्द्रजी के वनवास से प्रारम्भ कर राज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है। बाल्यमीकि रामायण उसका उपजीव्य तो है साथ ही कालिदास के रघुवंश का इस पर गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रस्तुत महाकाव्य के प्रणेता को राम की जीवन विभिन्न विशेषताओं में उनकी वीरता ही सर्वाधिक आकृष्ट कर सकीं।

राम रघुवंश में उत्पन्न हुए थे। इसमें अनेक महापराक्रमी राजा हो चुके थे। उनमें राम स्थान स्वोंपरि है। इसको प्रकट करने की भावना से रघुवीर शब्द का चयन किया है। वीरतायुक्त व्यक्ति ही धर्म की रक्षा और अधर्म का संहार कर सकता है।

रामकथा भारत की वह अनादि ज्योति रेखा है, जिसमें उदात्त प्राणवत्ता का प्रत्याभास जनजीवन की अविरल गति-धार में अहरह सत्यं शिवम् सुन्दरम् का प्रत्याकार विनिर्मित कर देता है और उसमें प्रतिबिम्बित राम का चरित्र शिव सकल्प की सतत् उत्प्रेरणा दिया करता है।

*

CS-144

कालिदासीय नाटकों में शाप

ज्योति श्रीवास्तवा, वाराणसी

कालिदास के सभी नाटकों में प्रायः नायक या नायिका किसी शाप से प्रभातिव होते हैं। यह शाप कथवस्तु के विकास के सहायक होता है किन्तु शाप का मात्र यही उद्देश्य नहीं होता है। इसके पीछे कवि का रचनादर्शन भी है। मूल्यों और आदर्शों की अवमानना करते हुए हम स्वयं दुर्भाग्य की सृष्टि करते हैं। शाप किसी दोष का प्रक्षालक होता है। इसलिए प्रत्येक शाप का अन्त सुखद होता है। साथ ही इस प्रक्षालन के द्वारा भौतिक वासना का आत्मिकप्रेम के रूप में प्रक्षालन और परिष्करा भी होता है। इस शोध आलेख में इसी तथ्य की व्याख्या की गई है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-145

किरातर्जुनीयम् में गुप्तचर का चरित्र

शिशिर कुमार झा, दरभंगा

किरातार्जुनीयम् में गुप्तवचर दुर्योधन की राज्य व्यवस्था को जानकर वापस आता है और कहता है कि :–हे राजन् किसी भी कार्य में नियुक्त सेवकों द्वारा स्वामी को नहीं ठगा जाना चाहिए। क्योंकि दूत ही राजा के नेत्र होते हैं। जैसे नेत्र से देखा हुआ प्रमाण होता है वैसे ही राजा के लिए दूत का कथन भी प्रमाण होता है। अतः अच्छा या बुरा जो भी कुछ कहूं उसे क्षमा करें। क्योंकि एक ही बात जो सुनने में अच्छे भी लगे हितकारी भी हो ऐसे वचन इस संसार में दुर्लभ है। अकेला राजा अपने-अपने राज्य या राज्यों की स्थिति को नहीं देख सकता वह गुप्तचरों द्वारा ही अपने अथवा दूसरे राज्यों की स्थिति और कार्य कारिणी पूर्ण वास्तविकता जानकारी रखता है। इसलिए जिस राजा का गुप्तचर विभाग जितना सुदृढ़ और शक्रिय होता है उसका राज्य उतना ही निष्कण्टक समझा जाता है। और जिस राज्य का यह विभाग असंगठित, निष्क्रिय और मिथ्याचारी होता है वह शीघ्र ही पतन को प्राप्त करता है। किरातार्जुनीयम् में इस प्रकार के वचनों को वर्णित करता है जिससे वनेचर का चरित्र समुज्वलित होता है।

आज के युग में भी गुप्तचर विभागों के लिए किरातार्जुनीयम् के गुप्तचर का चिरत्र शिक्षा प्रद है।

*

CS-146

'विट?' 'नहीं'

डॉ. संगीता गुन्देचा

'विट' संस्कृत नाट्यशास्त्र का पारिभाषिक चरित्र है। अनेक संस्कृत नाटकों में वह उपस्थित है। वह भले ही सम्पत्ति गंवा चुका हो पर वह कलाओं का ज्ञाता, स्वभाव से मधुर और वाग्पुट है। विद्वानों की गोष्ठियों में उसकी पूछ-परख है। आज की भाषा में कहा जाए तो वह बौद्धिक, इण्टेलेक्चुअल हैं। 'मृच्छकटिकम्' में विट की भूमिका पारिभाषित ही है पर वह इस बौद्धिक की स्थिति को समझने में बहुत हद तक सहायक है। शूद्रक अपने समय में, एक महान नाटककार होने के नाते, वह सब देख सके थे, जो आज़

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हमारे सामने, जहाँ तक बौद्धिक की भूमिका का प्रश्न है, घट रहा है। 'मृच्छकटिकम' में विट राजा के साले (जो फिर से एक परिभाषिक चरित्र है।) शकार का साथी है। बोद्धिक होने के नाते उसे शकार की दुराशाओं की समझ है पर अपनी स्थिति के परवश वह उसके साथ रहने को अभिशप्त है। वह वसन्तसेना का शकार क साथ पीछा करते हुए वसन्तसेना को लगातार शकार से बचाने और अन्नत: चारूदत्त की चौखट तक पहुँचाने में सहायक बनता है। पर साथ ही उसकी उपस्थिति शकार जैसे खलकामी के लिए सहारा भी बनती है। यह विट ही है जिसकी उपस्थिति के कारण शकार में चारूदत्त जैसे संस्कारवान श्रेष्ठी का सामना करने की हिम्मत आ जाती है। इसी जगह एक नाटकीय मोड़ के सहारे शूद्रक बताते हैं कि विट के वहाँ से गायब होते ही किस तरह शकार शक्तिहीन महसूस करने लगता है। सत्ता के मद में चूर खलकामी केवल तब तक शक्तिशाली महसूस करता रह सकता है जब तक कोई बौद्धिक उसके साथ खड़ा उसकी दुराशाओं को उचित ठहराता रहे।

*

CS-147

याज्ञिक की नाटयकृतियों में सङ्गीत शास्त्रीय तत्त्व

डॉ. प्रज्ञा शङ्कर, बरेली

गुणग्राहिणी निर्मल प्रज्ञा एवं विलक्षण काव्य प्रतिभा सम्पन्न आधुनिक संस्कृत साहित्य की श्री वृद्धि में सहायक, अपनी कृतियों से सहृदयों के हृदय का आह्लादन करने में पूर्ण रूपेण समर्थ श्री मूलशङ्कर माणिक लाल यज्ञिक जी वस्तुत: विद्यादायिनी मां शारदे की रत्नमाला के अनुपम मणि हैं। उनकी संस्कृत नाट्यत्रयी क्रमश: छत्रपति सम्राज्यम्, प्रताप–विजयम् एवं संयोगिता स्वयंवरम् ने उनकी कीर्ति पताका को सर्वत्र फहराया है। आधुनिक संस्कृत साहित्य के वह सर्वाधिक प्रभावशाली एवं सफल नाटककार है।

नाट्य शास्त्र के रचयिता महर्षि भरत ने नाट्य वेद की रचना करने के लिए सामवेद से गीत तत्व लिया। भगवान ब्रह्मा ने स्वाति मुनि तथा उनके शिष्यों को वाद्य यन्त्रों को बजाने के लिए तथा नारद मुनि और गन्धर्वो को गान योग हेतु नियुक्त किया। जब सर्वप्रथम नाटक 'अमृत मन्थन' का प्रयोग किया गया तक गीत इस प्रयोग की शय्या थी। गीत पर सर्वप्रथम प्रयत्न किया गया था, क्योंकि गीत और वाद्य के भली–भाँति प्रयुक्त होने पर नाट्य–प्रयोग में विपत्ति नहीं आती।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नाट्य को निर्विघ्न समाप्त करने हेतु श्री मूलशङ्कीर मणिक लाल यज्ञिक जी ने गीत को सर्वोच्च स्थान दिया है लेकिन वाद्य व नृत्य का भी समुचित प्रयोग किया है।

*

CS-148

कविता का वस्त्वर्थ और उसके आधुनिक अनुषांग

डॉ. महराजदीन पाण्डेय, गोण्डा

वस्तुतः जीवन जगत् के सम्पूर्ण विषय काव्य वस्तु को सकते हैं और वे काव्य में आकर एक उक्ति-भंगि विशेष का आश्रय पाकर अधिक हृद्य, अधिक विश्वसनीय अतएव अतिशय उपदेयता युक्त हो जाते हैं। इस प्रकार यह सुनिचित हो जाते पर कि कविता का वस्त्वर्थ वह कोई भी विषय हो सकता है जो काव्य में आकर रस्यता और हृद्यता से संवलित हो जाए, एक बात रह जाती है कि प्रत्येक युग की कविता अपने युग की काव्य प्रवृत्ति के अनुकूल होकर जीवित होती है और वह प्रवृत्ति उस युग की प्राथमिकताओं से अनुशासित होती है। स्वतन्त्रतापूर्व और विशेषतः स्वातन्त्र्योत्तर काल में ऐसी अनेक नयी वस्तु विषयक प्राथमिकताएँ लोक ओर काव्य में स्वीकृत हुई। जैसे सामनती विचार को पीछे करके समाजवाद और पूँजीवाद का विकास, व्यक्ति स्वातन्त्र्य जातीय समानता, धर्मनिरपेक्षता, परलोकवाद के स्थान पर ऐहिकता, धार्मिक आस्थावाद के स्थान पर तार्किकता और वैज्ञानिक विचार आदि। इनके अतिरिक्त उत्तर आधुनिक विकृतियों में सारे मानवीय मूल्यों का पण्यीकरण, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद जातीयविद्वेष आदि का उपोत्पाद के रूप में विकास।

इन ज्वलन्त वस्तुओं को. लेकर संस्कृत में भी रचनाएँ हो रही हैं। ऐसे रचनाकारों में डॉ. वीरभद्र मिश्र, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, डॉ, राजेन्द्र मिश्र अभिराज, डॉ. केशवचन्द्र दाश, हर्षदेव माधव, ज्ञान, सनातन, डॉ. कमलेश दत्त त्रिपाठी, श्री निवास रथ, विभष आदि है।

आधुनिक वस्तुओं के कवयनके लिए इन रचनाकारों ने परम्परीण छन्दः शरास्त्र, कोश ओर वर्णन शैली को बहुत कुछ नया दिया है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-149

नाट्यविधा में उपरूपकों की स्थिति

कु॰ दीपारानी, जे.पी. नगर (उ॰प्र॰)

आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में उपरूपकों की स्थिति पर प्रायः कोई विचार नहीं किया है। इस नाट्यशास्त्रीय परम्परा के प्रसिद्ध आचार्य शारदातनय के द्वारा अपने ग्रन्थ भावप्रकाशन में दृश्यकाव्यों के स्वरूपवर्णन के प्रसङ्ग के रूपकों में "नाटक" रूपक की प्राथमिकता की बात कही गयी है। तत्पश्चात् उन्होंने नाटक के तीस भेदों को निर्दिष्ट किया है - नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, रामवकार, वीथी, अङ्क, ईहामृग, तोटक, नाटिका, गोष्ठी, सल्लाप, शिल्पक, डोम्बी, श्रीगदित, भाणी, प्रस्थान, काव्य, प्रेक्षक, सट्टक, नाट्यरासक, लासक, उल्लोप्यक, हल्लीसक, दुर्मल्लिका, मल्लिका, कल्पवल्ली, परिजातक। आगे कहा गया है कि इनमें से दश रसरूप (रसात्मक) हैं और बीस भावरूप (भावात्मक) हैं। इन सभी की रूपक संज्ञा भी होती है (शारदातनय, भावप्रकाशन, अष्टम अधिकार का प्रारम्भ, पृ. 321 सम्पा. एवं हिन्दी व्याख्याकार डॉ. मदन मोहन अग्रवाल, वाराणसी)। इसके पश्चात् उन्होंने यथाक्रम उक्त सभी रूपकों के स्वरूपों का निरूपण किया है।

दशरूपक में आचार्य धनञ्जय ने अपने ग्रन्थ के नाम के अनुरूप केवल नाटक, प्रकरण, भाण आदि दश रूपकों के ही लक्षणों को विस्तार पूर्वक निरूपण किया है। उन्होंने उपरूपकों की कहीं चर्चा नहीं की है तथापि टीकाकार आचार्य धनिक ने उपरूपकों के भेदों का निरूपण एक कारिका के माध्यम से नामोल्लेखपूर्वक किया है। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण के षष्ठ परिच्छेद में रूपकों और उपरूपकों के स्वरूपों के विवेचन में अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतां का साररूप में यथासम्भव सङ्ग्रह किया है।

*

CS-150

भारतीय संस्कृति की सुरक्षा एवं नारी

अनुराधा, जम्मू

भारतीय संस्कृति के निर्माण एवं संवर्धन में, आदि काल से ही नारी का गरिमामय महत्वपूर्ण एवं अपरिहार्य योगदान रहा है। पारिवारिक आदर्शों, सामाजिक जीवन, राजनैतिक संगठनों एवं पुरुष की आत्मिकशक्ति को दृढ़ एवं उत्कृष्ट बनाने में स्त्री ने अपने विविध

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रूपों में त्याग एवं तपस्या के जो उदाहरण समय-समय पर प्रस्तुत किए हैं; वे भारतीय संस्कृति के वैभव में स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। नारी भारतीय संस्कृति के गौरव का मन्त्र है तथा उसके उत्कर्ष की आधार शिला है। इसी कारण भारतीय संस्कृति में नारी को भरपूर प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। हिन्दु संस्कृति की सुरक्षा में भारतीय नारी का महान योगदान रहा है। नारी ने अपनी उत्कृष्ट शक्ति, त्याग एवं सहिष्णुता का परिचय दे कर इस राष्ट्र को महान बनाया है। यही कारण है कि आज भी संस्कृति की सुरक्षा की अपेक्षा नारियों से ही की जाती है। भारतीय इतिहास का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि भारत की महान नारियों ने समय-समय पर अपने कार्य क्षेत्र के साथ-साथ पुरुष के कार्य क्षेत्र में उतरकर बड़े साहस, पराक्रम एवं चतुराई का परिचय दिया तथा भारतीय नारी के आदर्शों एवं सर्वांगीण योग्यता की सारे संसार में पताका फहराई। भारतीय नारी ने विद्या के क्षेत्र में भी पुरुष के सहयोग के अभाव में स्वतन्त्र रूप से अध्यात्म साधना में सफलता पायी तथा अमूल्य रचनाओं से साहित्य को विलक्षण भेंट प्रदान की। स्मृतिकाल में वैदिक ध र्म से उपेक्षित हो जाने पर पौराणिक एवं भक्ति-धर्मों ने नारियों को विशेष रूप से आकृष्ट किया। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण हिन्दू साहित्य में माता के रूप में नारी की विभिन्न प्रकारों से स्थान-स्थान पर प्रशंसा हुई है। भारत की नारी ने विभिन्न रूपों में पुरुष का पथ-प्रदर्शन तो सदैव किया ही है किन्तु समय-समय पर अपने अमूल्य त्याग का जैसा परिचय उसने दिया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। लोक लाज, मर्यादा, देश रक्षा तथा स्वामी-भक्ति का निर्वाह करने के लिये प्राणों की बाजी लगा देने में भी उसने संकोच नहीं किया है।

❋

CS-151

Application of Dhvani in the Uttararāmacarita

Dr. Daya Shankar Tiwary, Delhi

Bhavabhūti is a poet of Sanskrit literature around the last quarter of the 7th centrury AD and the first half of 8th century AD. Among his three plays the Uttararāmacarita is universally accepted as his best creative genius. He is unrivalled in the treatment of tender human feelings i.e. pathos (Karuṇa) Scholars have made effort to find out the culmination of Rasas, poetic style, language and dramaturgical remarks etc. on the compositions of Bhavabhūti. To make a critical assessment of Bhavabhūti's composition i.e. Uttararāmacarita in the realm of Dhvani theory is a challenging assignment for young scholars as to the undisclosed facts. My view of

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

writing research paper is going to be determined mainly on the basis of Dhvani theory based on Bhavabhūti's drama so to find out that how far Ānandavardhana's theory is applicable to his composition.

The dhvani-theory propounded by Ācārya Ānandavardhana (First half of ninth century AD) is the climax of the Sahṛdayas in Indian Literary Criticism that covers all the aspects of the creative writings; such as the drama Uttararāmacarita of Bhavabhūti which is Sahṛdayaślāghya and like a luminary star in the field of Sanskrit drama. Dhvani is responsible for bringing beauty and aesthetic appeal in the creative writings. For this point of view, the revelation of Dhvani-elements is essential. The presence of Vastu-dhvani, Alaṅkāra-dhvani and Rasa-dhvani can be easily felt by the Sahṛdayas after pondering in the Uttararāmacarita.

So, the unfolded hidden plumages in the form of Dhvani in Uttararāmacarita throws light in the mind of Sahṛdayas as well as in the mind of common readers, erudite scholars etc.

*

CS-152

The Hero in Pancaratra of Bhasa

Dr. P.Syamala Devi, Kerala

Pañcarātrā is a short play in three acts in Samavakara-a type of Sanskrit rupaka. It is considered as a play of Bhāsa which was discovered by T.Ganapatisastri along with other twelve plays. The theme of the play is from the virātaparva of Mahābhārata. The hero of the play duryodhana is depicted in a different way from that of the original text. The plot of Pañcarātra is placed in the context of a yaga which is performed by Duryodhana. Unlike in the Mahābhārata here the hero Duryodhana is the abode of good qualities such as benevolence, generosity; nobility etc. For this purpose the playwright has made some deviations from the source, according to his imagination. He avoided the war between the Pāndavās and Kauravās in Kurukshetra and in the play Duryodhana gave the country back to the Pandavās and thus the dramatist presented the plot and characters in a new perspective which can not be found in the original text Mahābhārata. He changed the roles of some characters in this play. Some of the characters in the original texts are

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

omitted inorder to attribute good qualities to the hero. An attempt is made in the paper to compare the character of Duryodhana in these works of Vyāsa and Bhāsa.

*

CS-153

Contribution of Indrapati to Poetics

Dr. Roop Narayan Tripathi, Allahabad

Indrapati Upadhyaya was born in the family of Maithil brahmin. The name of his father was Mm. Ruchipati and his mother was Rukmini Devi. He belonged to the later half of the 16th century and the first half of the 17th century. Out of his five books, two books are on poetics Alamkarasamudga and Rasamartanda.

Indrapati is very much influenced by Mammata. He wrote the verses and vrittis on the plan of Kavyaprakasha. The verses of Kavyaprakasha and Alamkarasamudga are often similar. At times the terminology of Mammata has been bodily lifted and the very examples given by Mammata are taken for analysis. But there are ample illustrations which are self invented.

Though it is a fact that there is almost no novelty or originality in Alamkarasamudga yet its treatment of the subject, new illustrations and Karikas dealing with definitions and examples have made the difficult subject of poetics easily understandable. His Rasamartanda is divided in five chapters, which contain various topics of Rasashastra.

*

CS-154

The Views of Kalidasa on Education

Dr. Ch. Durga Prasada Rao, Gudivada, A.P.

Man is considered to be superior to all other animals by virtue of having knowledge. Knowledge is acquired through education. Therefore man without education is considered to be a beast.

विद्याविहीनः पशुः ॥ भर्तृहरिः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Regarding the system of education the Upanishads say that the teacher is the prime unit. The student comes next. Knowledge unites the teacher and the taught while instruction is the means for the union.

आचार्यः पूर्वरुपम् अन्तेवास्युत्तररुपम्।
विद्या सन्धिः प्रवचनं सन्धानम्॥ तैत्तिरीय-2॥

From time immemorial education has been playing an important role not only in our country but also throughout the world. Many Poets, Philosophers, Educationalists and Psychologists have interpreted and defined education in their respective ways. Among them Kalidasa's interpretation is unique which throws light on many aspects of education. While writing poetry he contextually gives many points regarding the system of education. Of these ideas some are direct and the others are suggestive and allegorical. Though Kalidasa belongs to a particular region and period the ideas contributed by him are universal and eternal. They are not only interesting but also worth practising. In this article an attempt is made to give some of the ideas of Kalidasa on education.

❋

CS-155

Madanaketucarita -A Rare Prahasana from Kerala

Dr. C.S. Shashikumar, Thiruvananthpuram, Keral-9

The Madanaketucarita of ramapanivada is a Prahasana type of Rupaka and it has a significant position in the dramatic literature of Kerala. The author Ramapanivada was a great Sanskrit poet and profound scholar. He had adorned the court of several kings and chieftains of Kerala in the 18th century A.D. Madanaketucarita is unique in several aspects. It is the only known Prahasana from Kerala. Though written during the 18th century, the society and culture it represents get transposed back at least ten centuries.

The sweet Vaidarbhi style adopted in the play and its remarkable similarity with the Bhaġavadajjukiya make it appear like a play belonging to the 7th or 8th century A.D. Madanaketucarita satisfies most of the theoretical rules of the Prahasana, also it excels many of the earlier Prahasanas in the choice of the theme and struc-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ture. It is a one-act play with a well knit plot and delectable blend of rasas. It deals with the story of a Buddhist monk who falls in love with a courtesan.

In Sanskrit literature there are only very few works based on the life of the middle class people. Among the ten types of Rupakas, the Prahasana and Bhana types deal with the lives of the middle class people and in the Prahasana we get a realistic picture of the life of the contemporary society. The Prahasana criticises the evil practices of the society, through satire and humour and tries to reform the society which is morally ruined. The play Madanaketucarita of Ramapanivada also does not deviate from this. The plot construction as well as the characterisation of the play is remarkable. The final aim of all the actions in the play is to reform a degenerate Bhiksu who has lost faith in his religion, and thus save the country from moral degradation. The play has high poetic value. The descriptions are elegant in diction and rich in imagination. Almost all scenes are full of dramatic conflicts and irony which arouses the interest of the audience. These features give the play an outstanding position among the Sanskrit Prahasanas.

*

CS-156

Khaṇḍacūlikā —An Appraisal

Dr. Śubhendu Kumār Siddhānta, West Bengal

Sri Simha - II better known as *Simhabhūpāla*, a renowned rhetorician of Indian Dramaturgy & a South Indian Prince of *Recarla* dynasty in the early part of the 14th Century A.D., was famous for his glorious work *Rasārṇavasudhākara (RAS)*. Some new approaches can be found in both his *Nāṭakaparibhāṣā* (NP) and RAS. The intervening events or actions like killing, fighting, the Siege of a City, the fall of a Kingdom, imprecate etc., that are regarded as unsuitable for representation have been dealt with by the term *Sūcaka*-s (*arthopakṣepaka*-s according to others) with five varieties to comprehend the play easily enjoyable to the audience. These are -- *Viskambha* or *Viskambhaka*, *Praveśa* or *Praveśaka*, *cūlā* or *cūlikā*, *aṇkamukha* or *aṇkāsya* and *aṇkāvatāra*. Among these *Sūcaka*-s a sub-variety of *Cūlikā*, by name *Khaṇḍacūlikā* is noted only by our author *Sri Simha-II* both of his works NP & RAS.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

We know that Cūlikā is the scene in which a voice form behind the curtain narrates some important events, hence the speaker never comes on the stage. It can occur either at the beginning or in the middle of an act, according to our author, though no other writers on drmaturgy like *Bharata*, *Dhanañjaya* etc. have mentioned the actual position of *Cūlikā*. It is interesting to note that the Khaṇdacūlikā is said to represent a dialogue between two persons-- one of whom appears on the stage and the other is only behind the curtain. Hence our author lays emphasis on the criteria of the entrance and the exit of the charaters for the treatment of *Cūlikā & Khaṇdacūlikā*.

In this humble paper I would like to discuss the reasons, if any, for accepting the *Khaṇdacūlikā* separately.

❋

CS-157

Mm. Pdt. Krishnamadhava Jha and his works--

Shri Manamohan Dixit, Vileparley, Mumbai

Mahamahopadhyaya Darshanika-Shiromani Pandit Krishnamadhava Jha, belonged to a group of Maithila Brahmins as Karmaha Behat family. The expressing Karmaha Behat is a connotative term. It means that the original ancestor of KM Jha was a resident of a village known as Karmaha or Karamaha or Karmmaha or Karmahara in the Nepal, but at the time when Harisimhadeva, the last Maithila king of the Karnata dynasty, founded the Panji or Panjipravandha system among Maithila brahmins in or about 1324 A.D., his ancestor resided in a village known as Behat in the district of Madhubani in Tirahut.

He had quilified himself for writing books by having made a special study of Nyaya-Vaisheshika, Vedanta and Vyakarana from Tattvaprakashika it appears that KM Jha held the office of a Parishad (Member of Council) in the reignons of Gokulanatha ji Maharaj and his son Dikshitaji.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-158

Conception of Love in Kālidāsa's Works

Dr. Indira Saikia Bora, Assam

Kālidāsa was the greatest poet of India after Vālmīki and Vyāsa. Tenderness in the expression of feelings and richness of creative fancy have assigned to him his lofty place among the poets of all nations. Infact a study of Kālidāsa's works at once convinces the readers that the poet had an all-embracing knowledge of nature and human unity. He has drawn on life for his inspiration and delineated sentiments like love, piety, duty, generosity, heroism, jealousy etc. By studying his compositions collectively it is posiible to discover how he thought or felt on one or the other of the various matters that figure in them. Much more so when we find a poet like him handling one and the same theme in practically all his works. It must be full of significance that instead of playing the whole gamut of the human heart, Kālidāsa has chosen to play practically and same note that the love in his compositions. If we scan his works, our enquiry will be repaid with some well-defined outline of the progressive development of his conception of love.

In this paper I shall try to discuss about Kālidāsa's conception of love in his works elaborately.

*

CS-159

Kālidāsa's Vision of Life -A Study Based on Meghadūta

Dr. Reeja. B.Kavanal, Kerala

Meghadūta excells in the narration of nature. Silent and violent beauty of nature are combined together here. The poet molded the theme with the talent of a Juggler. In this kāvya the loveliness of movable and immovable are intermingled. In it the representative of nature is the messenger, and its journey is through the bright and pure sky.

What is the main philosophy to be mentioned analysing these descriptions of nature. As an answer we can assure that it is the poet's vision of life that is

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

reflected in the nature descriptions in *Meghadūta*. This vision which spreads from the indivisual to the entire humanity and from there to the entire world of sential and insential is the main factor that reflects in these descriptions.

It is quite natural that love-loned people send message as a consolation to the beloved. It is also quite natural that these messages becoming the theme of poetic works. Long before Kālidāsa poets like Vālmīki and Vyāsa also supplied us the specimen of this kind. Vyāsa introduced Hamsa and Vālmīki introduced Hanumān as their messengers. Even after Kālidāsa there are several poets who employed this kind of messengers in their writings. But in *Meghadūta* Kālidāsa introduced a new messenger a rare and unprecedented one the megha, which is combination of mist, smoke, light, water and wind. All most all others except Kālidāsa and a few employed messengers possessing consciousness but Kālidāsa's messenger is an insentious object the cloud. Why Kālidāsa selected an insential object the megha as a messenger in his kāvya. Ofcourse there is the readymade answer. ''Those who are overcome by love are naturally incapable of determine between animate and inanimate.'' But it is not enough. Here the determinant factor that tempted Kālidāsa to select megha as his messenger is obviously his vision of life.

❋

CS-160

Vasu Praharāja and His works

Dr. Kshitiswar Dash, Balasore, Orissa

The Orissan tradition holds that Vasu, Viśi and Chakrapāṇi were three contemporary leading poets of Orissa. Among this famous trio, Vasu whose full name was Vasu Praharāja otherwise known as Vasudeva Praharāja was born in the Athagarh kingdom of the Ganjam District of south Orissa. VP (Vasu Praharāja) belongs to the middle of the 18th Century. His versatile knowledge in the Epics, Yoga, Tantra, astrology and grammar gives him an important place among the great Sanskrit poets of Orissa. His famous work is known as Rāghava-Yādavīya-Mahākāvyam which is popular for its Dvisaṁdhāna variety and stands next to Rāghava Pāṇḍavīyam of Kavirāja. He has completed this work during the period from 1750-1760 A.D. This is also known as Rāmakṛṣṇodaya kāvya.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

The poet VP was also the author of a Sanskrit grammar called Vasu Prakriyā. It is also called sāmānya prakriyā. His other works are phaṇibhāṣya Ṭikā, Muktā Nāṭikā, Vasucautiśā etc. In this paper I have tried to bring the notice of all about the works of the poet VP.

*

CS-161

Kālidāsa and Rahasya

Smt. Basanta Manjari Dash, Balasore (Orissa)

Kālidāsa is admittedly the greatest poet of Sanskrit. He is truely represented as ''Shakespeare of India.'' By the Indian scholars and rhetoricians he has been refered to as Mahākavi, Kavi-Śiromaṇi and Kavikulaguruḥ, etc.

It is deplorable that we know nothing definite about the poet's personal history. But few Legends go in favour of Kālidāsa regarding his versatile knowledge. The poet was familiar in composing verses being directed by the kings and even by the demoness. The popular legend goes in favour of the poet which we call it rahasya.

Once a demoness asked to fill up the verse. kālidāsa immediately composed this samasyā pluti i.e. 'tataḥ kiṁ tataḥ kiṁ tataḥ kiṁ'. Like wise so many rahasyas are found which has been solved by the poet himself and popular among the wise and non-wise men of our country. In this paper some examples are to be hinted upon.

*

CS-162

Principles Governing the employment of Alaṃkāras -- Ānandavardhana's View

Prof. Dr. Bidyut Baran Ghosh, Kolkata

After Bharata's hitting the bull's eye i.e. there is nothing predominant other than *Rasa* in a poetic creation (na hi rasādṛte kaścidarthaḥ pravartate- N.Ś, vi/31)

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

rhetoricians of the interim period between Bharata and Ānandavardhana were to some extent out of the proper way and misdirected with their theories of *Alaṃkāra* and *Rīti*. It is none other than Ānandavardhana who again directed the flow of literary criticism towards its desired goal with his emphatic declarations - '*Kāvyasyātmā dhvaniḥ* .... (Dhv. I/1) and '*Kāvyasyātmā sa evārthaḥ* ..... (Dhv I/5).

Ānandavardhana did not reject the older theories, but he reconstructed a massive skyscraper upon the foundation laid by the ancients.

Thus the theory of *Alaṃkāra* was reconstructed to fit in with his novel *Dhvani* theory.

Ānandavardhana admitted the importance of *Alaṃkāras* only in respect of two conditions - (i) these should be tuned up with the manifestation of *Rasa* and (ii) their employment should be effortless on the part of a poet (Dhv. II/16).

❋

CS-163

The Kavyanusasana of Vagbhatta-II : A Critical Study

Prof. Dr. A.M. Prajapati, Gujarat

Vagbhata second was a son of Nemikumar belonged to Medapata (Mewada) and grand son of Madakalapa and Mahadevi. *His elder brother's name was Shri Rahada on whom he has great faith. *His father Nemikumar constructed the temple of Neminatha surrounded with 22 Devakulikas in Nalotakpura with his own expense.* Acarya Vagbhata second composed a number of plays and epics with some works on Chanda and Alamkara.* But unfortunately other works are not available except Kavyanusasana. Here in this book, I have intended to give a critical study of it.

The Kavyanusasana, as the title suggests, is a work on the science of poetry or poetics. It is a treatise on all the different aspects of poetry. Within the space of five chapters and two hundred and ninety two sutras or aphorisms, it deals not only with all the important topics connected with the creation and appreciation of poetry, but also with the different types of heroes and heroines, the themes and forms and

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

other aspects of dramatic and poetic compositions. Thus it is an authoritative and extensive work on Indian poetics in its many aspects.

The second edition of Kavyanusasana of Vagbhata edited by Sivadatta Sarma and K.P. Paraba is published in Kavya-Mala series-43 by Tukaram Javaji propritor the Nirnya Sagara Press, Bombay in 1915 A.D. I have received it from Jain Jnana Mandir, Patna for my research work. The text written in Sanskrit with some Prakrt verses has no any translation or notes in other language but some notes are found in Sanskrit given by the author himself at the end of some pages of the text. The main topics on poetics are presented in sutras but they are not given any number, therefore, in order to facilitate my research work I have given number to them. Thus Kavyanusasana contains five chapters and two hundred and ninety two sutras and the commentary named Alamkartilaka explaining sutras more elaborately with appropriate examples.

*

CS-164

Status of Woman in Ancient India : An Observation

Mrs. Dipika Devi, Assam

The Woman occupied an inportant place in the ancient Indian society. Woman enjoyed a noble devotion in ancient India. Specially the Hindus consider that the creation is the result of the union of male and female i.e. puruṣa and Prakṛti. Female children were not neglected in the society, but brought up with special care and affection. The Vedas have given high honour to women for their right and status throughout the huge network of the description of sacrificial, social and moral duties.

According to Manusoṁhitā, gods are pleased where women are honoured-

यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र दैवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्वत्राफलाः क्रियाः॥ (Manu III/56)

Bṛhaspati and Manu are emphatic that where wives are honoured their alone prosperity dwells.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-165

Language of the Saṭṭaka of Rājaśekhara

Soma Roy, Kolkata

Karpūramañjarī is a saṭṭaka written by Rājaśekhara. According to Rhetorics Saṭṭaka should be written in Śaurasenī Prākrit. When we go throug the language of this saṭṭaka we find different features and different words. So question arises whether the language is pure Śaurasenī or not. The different features and different words of this saṭṭaka fond by us are: ubbimbira, olaggāviā, olla, kaṅkelli, kaṇḍāriuṇa, kandoṭṭa, koḍḍa, khaḍakkiā, khalakhaṇḍa, galivailla, caṅga, caṅgattaṇa, caṅgimā, campia, chailla, chollai, ṭapparakaṇṇa, ṭikkida, ṭhakkura, ḍhilla, ṇiei, tasara, timisa, pakkhāujja, pādisiddhi, pālittiā, bāulliā, buḍḍana, bhasala, bhulia, maraṭṭa, maraḍhī, mahalla, riñcolī, rosāṇia, laṭṭhaa, lumbī, vacchomi, varilla. Most of these words are Deśī. Apart from these words we find same words which are absolutely Māhārāṣṭrī in features.

*

CS-166

Puṁskokilakūjita in Kālidāsa

Dr. Abha Kulshreshtha, Delhi

साकूतमधुरकोकिलविलासिनीकण्ठकूजितप्राये।
शिक्षासमयेऽपि मुदे रतलीलाकालिदासोक्तौ॥

Dīpaśikhā Kālidāsa, a peerless poet par excellence, was acquainted with the affluent in various systems of Philosophy, several schools of religious beliefs, Politics, Economics, Dramaturgy, Erotology, Music and Fine Arts and Plant-Science too. Just as the works of Kālidāsa abound in numerous references to Philosophy, Musicology, Erotics etc., in the same way multiple references to more than 50 birds and animals adorn his works.

Among the birds, the male cuckoo is themost famous for his sweet voice and singing. In the spring season, quarters are filled with the melodious singing of male and female cuckoos. Sanskrit literature is laden with the sweetness of their music. Each and every intricacy with regard to the music of the cuckoo is found

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

in the works of Kālidāsa. In the present paper, an attempt is made to bring forth the expertise of Kālidāsa in music of birds, particularly of the cuckoo.

चूताङ्कुरास्वादकषायकण्ठः पुंस्कोकिलो यन्मधुरं चुकूज।
मनस्विनीमानविघातदक्षं तदेव जातं वचनं स्मरस्य॥

❋

CS-167

Stridhana

(As in Ancient Sanskrit Literature)

Dr. Shalini, Patna

The recognition of 'stridhana' from the very ancient times is really a glorious chapter in the History of Hindu Culture. There was a constant and continuous tendency in society to increase the scope of 'stridhana'. Some adverse views expressed in a few ancient texts could not affect thedevelopment of 'stridhana'. In those days patriarchal traditions were reigning supreme, still the right of women to own the movable property was recognized at a very early date. Hindu female could acquire property from various sources: by gifts, by inheritance, on partition or by her own labour and skitt. Out of these the movables were included in her saudayika stridhana. She could enjoy these at her own sweet will. The rest of the property acquired by her was included in her asaudayika stridhana.

❋

CS-168

A note on the structure and design of the Abhijñānaśākuntalam of Kālidāsa

Upendra Nath Sarma, Assam

The drama Abhijñānaśākuntalam of Kālidāsa is undoubtedly a precious piece of pearl in the galaxy of Indian dramas which by its outstanding merit has earned immense appreciations of not only this land, but also of the world scholars of high profile. A careful and evidential analysis of the play reveals that it is not

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

the story of the drama, but the creative skills of its author Kālidāsa, that has made the play a worldwide honourable one. Kālidāsa has designed the structure of a very simple, or a dull story of the Mahābhārata in such an artistical skill that the total framework of the story is seemed changed.

Kālidāsa has designed very successfully the theme in a systemic manner causing manner causing to yield a fruitful result. The story has been distributed in seven acts. The acts of the play form a systematical design. Union, separation and re-union are the three parts of the play. The fourth act which follows the union, marks the beginning of the second part of the theme -the separation of the lovers. The discovery of the ring in the sixth act makes smooth the way for there-union and it is also the beginning of the third part. Construction of the first two acts bears close similarity with the last two acts. Also there is a similarity of construction between the third act and the fifth act.

❋

CS-169

Mahatam Nisseemanashcharitravibhutyah

(महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः)

Dr. Kanta Bhatia, Delhi

In modern times people can not be covinced by the simple notion of ''Old is Gold''. One has to give proofs to justify one's statement and to make others also to believe it. So is the situation of sanskrit language today. There was a golden period of Vedas, the Ramayanan the Mahabharata and the Smriti Granthas. Sanskrit used to be the most popular language at the time these great epics were written. The works of great Sanskrit poets like Kalidasa, Bhavabhuti, Banabhatta and Bharavi were red by almost all the scholars whether they were Sanskrit scholars or the Scholars of other fields. Gradually with the invasion of foreigners the condition of Sanskrit started deteriorating. Writings of Kalidasa, Bharavi, Banabhatta and other great Sanskrit scholars became the subject of interest of a very few people.

In this modern age there is adire need of the scholars who can motivate the young scholars towards the study of Sanskrit literature. Many scholars have taken up this task of creating interest towards sanskrit language. Among the Modern

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Scholars, the name of Prof. Sushma Kulsreshtha Co-ordinator of The Kalidasa Academy of Sanskrit music and Fine Arts in Delhi, takes the highest seat. Under the auspices of **Kalidasa Academy of Sanskrit and Fine Arts**, she organises National and International Seminars in which Scholars from different parts of the country and from various countries take part and enlighten the scholars with their views. Young scholars and researchers are also encouraged to present their research papers. In this way she has helped in generating new avenues for research scholars.

She has published a record number of 64 books and many are under publication.

*

CS-170

New Interpretatin of Rasa against the Naturalistic Realistic Theatre

Prof. K.K. Jha, Muzaffarpur

Rasa is the soul of drama in the Indian tradition. It is considered to be so vital that Rasa and Natya have been identified with one another. The doctrine has been elucidated in a number of ways by scholars. But, a comparative consideration of it with fresh outlooks in the cross cultural perspectives finds some delightful revelations.

In occidental drama, specially in the English, a revolution took place during the last decades of 19th C till the sixties of the 20th C. This period shows the development of a trend of disintegration of the relation between literature and drama. The literary text of drama and its form for theatrical perfomance were taken separately. The essential elements involved in it which received distinct deals are character and action, speech or language, above all, the very relation between drama as literary text and its form to be presented on the stage, along with some other ones. This development is known as the Naturalistic Realistic phase with much emphasis on theatre.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-171

New Manuscripts of Ratnavali - A Study

Johanson A.J, Kerala

Ratnāvali the famous Nāṭikā type of drama by Śrīharṣa derives its name from its heroine. The heroine is perhaps so called because of the precious neclace she wears. The author Śrīharṣa is a skillful shrewd and eminent poet of high imagination, particularly a dramatis. The play is a court comedy. The theme is the love affair between the King Udayana and Sāgarikā. The events of the drama are conceived so nicely and the poetry sustains the interest of the spectator thought the play. Śrīharṣas style is easy following and simple. Among the dramatists of Sanskrit literature Harṣa has a considerable place. His mastery over languge and literature and high imagination are really appreciable. In short Ratnāvalī occupies a prominent place among the Sanskrit dramas and its author ower a highest position. The Ratnāvalī is a Nāṭikā type of uparupaka with the love-in-union as its main sentiment. The principle rasa should be Śringara. The work has got six manuscripts, two in Malayalam script, one in Devanagari and three in Grantha character. They are preserved in the Oriental Research Institute and Manuscripts Library, University of Kerala, Trivandrum.

*

CS-172

Soundaranandam - A Study

Shibu Gopinath, Kerala

Asvaghoṣa's 'Saundarananda' was a historical Mahākāvya in Sanskrit. It describes the story of the conversion of King Nanda of the Ikṣvāku race and his redemption from the ocean of worldly pleasures in which he was immersed in the company of his consort Sundari. It has eighteen cantos. There are three characters in the work, Tathagata or Buddha Nanda and Sundari. Nanda is the co-brother of Buddha. Sundari is the love of Nanda. The plot is taken from the life and teachings of Buddha. A biography of Buddha is already composed by the same author namely Buddhacarita. But in style and description Budhacarita differs from other works. It describes the Philosophical teaching of Buddha.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Saudarananda follows the narrative peculiarites of a Mahākāvya like the city of Kapilavastu, love sports, description of garden, sunrise and moonrise the birth of prince and the achievements of hero.

The main intention of the poet in writing this poem is to optimise and propagate Buddhist principles in the medium of poetry. He composed this poem mixed with a love story for easy digestion of the philosophy to the ordinary people like honey mixed with bitter tonic.

*

CS-173

The World of Birds in Ancient Sanskrit Literature

Dr. Sumitra V. Bhat, Karnataka

The present research paper attempts to look into the description of birds and their context within the Sanskrit literature centering in its ancient period. The *Vedas, Puranas, Epics* and *Samhitas* are full of descriptions of birds, but the exact identification of names had got lost or confounded over the centuries. According to Vedantasara of Sadananda, chaturvidha shariraha or four varieties of bodies are jarayuja (जरायुज), andaja(अण्डज), udbhija (उद्भिज), and svedaja (स्वेदज). Of these andaja are born of eggs like birds and reptiles.

Even in the Sutrasthana of Caraka Samhita (चरक संहिता) Caraka explains the same four types of bodies according to the way of their birth. He even divides Andaja's as Viskira Paksi (विष्किर पक्षी) and Pratuda Paksi (प्रतुद पक्षी). Birds search and eat their food scattering with their feet are called Viskira (gallinaceous birds like cakora, mayura, etc.) and birds pricking foods are called Pratuda (like cataka, Jatayu, etc.) With the classifications of birds, Caraka gives in detail the usage of eggs and meat of those birds as medicine. Even Sustruta Samhita of Sustruta, Astadhyayi of Panini, Mahabhashya of Patanjali, Amarakosha of Amarasimha give us the detail picture of birds-classification.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CS-174

Wordsworth and Kālidāऽ: Astylistic Analysis of Ornamentation

Ms. Amrita Sharma, Karnal

Ornamentation (*employing alaṃkāras*) is considered to be the characteristic of literary texts. It has been used in different ways by different writers in different langaugees with amazing results. It is a kind of langauge used to achieve particular effects and stylistics ''studies the variation of language use, often, but not exclusively with special attention to the most conscious and complex use of language in literature''. This paper attempts to analysis the use of figurative language (*alaṃkāras*) employed by Wordsworth and Kālidāsa, the two giants of English and Sanskrit respectively.

The purpose of the comparative analysis is the exposition of literary texts since the language of literature is ''artistic'', ''creative'', ''communicative'', ''pragmatic'', and ''emotive''. As Bhartrhari has rightly said ''there is no cognition in the world in which language does not figure --- all this (world/universe) is a ''*pariṇiti*'', transformation (product) of language.''

❋

CS-175

Kālidāsa's Vision of Life-A Study Based on Meghadūta

Dr. Reeja. B. Kavanal, Kèrala

Kālidāsa's poetry is deeply attached to theearth and reflects its colour and beauty in full. In his poetry we see rice fields, the lotus ponds gleaming in the sun; we hear the dripping of raindrops and the songs of birds. The strange phenomena of the tress responding to the emotions of human beings is unique. Greater than the harmoney between form and content, it is the harmoney between nature and human feelings, that Kālidāsa kept in his mind. His similies came out of the observation of natural phnomena. *Meghasandeśa* of Kālidāsa is a wonderful gallery of Indian scenary and life coloured by their feelings and imaginations.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

A Yakṣa who is separated from his beloved sends his message through a cloud from Rāmagiri to Alaka. After the daily increasing heat of summer, the first shadow of clouds and the first shower of rain brings joyous relief to man and nature. The Yakṣa offered the cloud fresh kuṭaja flowers and glad at heart, he accorded welcome to the cloud with affectionate words. From the very beginning to the end of this kāvya, we can enjoy the description of nature, dancing before our eyes. The wide opened eyes of the poet goes through the minute points to the great. The messenger has to go to Alaka which is far from Rāmagiri. While describing the route the talented poet portrayed the pictures of flowered trees, mountains, rivers, forests, birds, animals, mansions, cities etc. in glowing terms.

"कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलिन्ध्रामवन्ध्यां
यच्छुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः"

Looking upto kadamba flowers, green and brown through half grown filaments, eating near marshy lands plantain buds, and smelling the highly fragrant scent of earth, the bumble bees, deers and elephants enjoy the presence of the megha.

Kālidāsa who is inspered for the well being of the world, consciously selected the megha the porter's rest of all living beings as a messenger in his poetry. As pointed before itis the vision and nothing else, which spreads from the individual to the entire humanity and from there to the entire world of sential and insential is themain factor that influenced Kālidāsa in his selection.

*

CS-176

Philosopher-Kings of Mithila

'Sruti r bibhinnāh Smrityor bibhinnāh', then, what should be the philosophy of our lives? 'Mahajano jengatah ṣa panthah'. Greek Philosopher Plato had given the concept of Philosopher -king but that was an utopean conception. Mithila region of Indian has got a long tradition of 54 real philosopher kings called Janaks (Mahajan) or Videhas. Moreover, out of 6 fundamental Indian philosophers, 4 are the products of this region. In addition to that Buddhism and Jainism were also born here.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Ānobhadrāh Kratbo Yantu Viswatah.

Let noble thoughts come to us from every side, so, with large heartedness and broad mindedness Rigvedas tech us that human development must be the fundamental point of all the philosophies of the world. We see that wevern philosophies were born in the Greek city-walls, where as Indian philosophy flourished under the wide sky and sacred environment of forests. The mango-groves of Mithila have got very significant contributions.

In the Indian sub-continent between the Hymalyas, the Ganges, Narayani and the Kosi rivers, Mithila region was an ideal country renouned in the world for its philosophical ruling. Jánakpur was its capital for a very long time.

Let us see the following long list of 54 Philosopher kings of Janaka - tradition of Mithila.....

1. Nimi 2. Mithil 3. Udabasu 4. Nandiwardhan 5. Suketu 6. Deorāt 7. Brihadrath 8. Mahābirya 9. Sudhrite 10. Dhristketu 11. Haryaswa 12. Maru 13. Pratipak 14. Kirtirath 15. Deomirh 16. Vidhrit 17. Mahadhriti 18. Kirtirat.

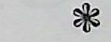

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 4

ISLAMIC STUDIES

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 4

ISLAMIC STUDIES

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IS-1

Bismillah is the cause of the grace of Allah Bismillah repels oppression. Bismillah is the Isme A zam

डॉ0 शैख सुबिजौद्दीन निजामुद्दीन, बलसाड़

The scholars have great differences with regard to the Isme A'ẓam'' - the greatest name of Allāh. Rahul Bayan has mentioned one opinion and has regarded it as the choicest opinion. The word 'Allah' is the Isme A'ẓam. When any supplication is made with this name, it is accepted.

The objection arises that sometimes we supplicate with this word but our supplications are not accepted. How can it then be called the Isme A'ẓam?

The answer to this objection is that the supplication is not rejected because the word is not the Isme A'ẓam. For a duā to be accepted, there are many conditions and etiquettes.

Just as salah has prerequisites and conditions, similarly does dua have conditions. It is said that the supplication is the key to the sky while the halal morsel is its teeth. The first condition of du'a is to reform the inner self by means of halal sustenance. The final condition is sincerity and presence of heart. If these conditions are not met, the du'a will not be accepted.

❋

IS-2

Sanskrit and Muslims : A Quest for Harmony

Dr. Rita Chattopadhyay, Kolkata

India can rightly boast of nurturing a culture of synthesis throughout the ages. To be more specific interactions among the people - the Aryan and the non-Aryan; among the divergent schools of thought, both orthodox and heterodox;

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

among the systems of religion e.g. Hindu, Muslim, Buddhist etc. have always left some liberalizing effect on the conscientious Indian mind.

This culture of synthesis of ideas can be traced far back in Bhartrhari's Vākyapadīya (prajñā vivekaṃ lavhatae bhinnair āgama-darśanaiḥ, II/489); is reflected in Bāṇa's (7th century A.D.) Harṣacarita in the depiction of Divākaramitra's hermitage where propounders of different schools live together and participate in philosophical argumentation; or in Vidyāraṇya's Pañcadaśī which strikes a note of concord between a Vedāntin and a Śunyavādin' or in epigraphical evidence of the city or port of Somnath on the coas of Kathiawar wherein Nakhuda Nur-uddin Feroz (13th Century A.D.) is written both in Arabic and Sanskrit; or in Zahiruddin Babar (1526-30) who developed love for Indian Astronomy; or in a new religion called Din-Ilahi (1581) whose principles were taken form the Quran, Bible and Hindu scriptures as well promulgated by emperor Akbar who believed in the principle of the universal tolerance; or in the works of Dara Sikoh to whom Upanishad occurred as but an elaboration of the Quran; or in a number of Sanskrit texts authored by Muslim scholars e.g. Abdur Rahim Khan Khanan, Allah Box and the like; or in the 20th century drama Dārā-Śikohīyam or in the poem of Bhāratatīrtha of R.N. Tagore.

In this background a sincere attempt has been made to highlight how the quest for harmony has always been inseparably linked to Indian soul and soil for centuries together.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IS-3

پنجاب کی عشقیہ داستانیں: ہیر ورانجھا کے خصوصی حوالے سے

ڈاکٹر عزیز عباس*

پنجاب کو ہندوستان کے دیگر صوبوں پر کچھ خصوصیات کی بنا پر فوقیت حاصل ہے۔ اناج کا یہ گنج اپنے گھوڑوں اور پہلوانوں کے لئے ساری دنیا میں شہرت رکھتا ہے۔ یہی وہ صوبہ ہے جو ملک کے لئے ہمیشہ ڈھال کا کام کرتا رہا۔ زمانہ قدیم سے پنجاب سیاسی طور پر تو ہندوستان کا ہی ایک حصہ رہا ہے لیکن تہذیبی اور ثقافتی اعتبار سے اسکا رشتہ مشرق کے مقابلہ مغرب سے زیادہ استوار رہا ہے۔ اسکی یہ حالت اشوک مہان اور اکبر اعظم کے دور حکومت میں بھی رہی۔ مغرب کی جانب سے جب بھی کوئی حملہ آور ہندوستان کی طرف بڑھا تو سب سے پہلے اُسے پنجاب ہی سے لوہا لینا پڑا۔ صوفیاء کرام اور [redacted] اسی راستے سے ہندوستان آئے اور انسانی ہمدردی، اخوت اور مساوات کا پیغام سناتے ہوئے اس کی سرحدوں میں داخل ہوئے تب زندہ دلان پنجاب نے گرم جوشی اور خنداں پیشانی سے اُنکا خیر مقدم کیا اور اپنے دلوں میں جگہ دی۔ ان سے قبل جب آرین قومیں پانی اور چارہ کی تلاش میں اس کی طرف بڑھیں تو پنجاب نے اپنی سرسبز و شاداب چراگاہوں کے میدان اور ندیوں کے دہانے اُن کے لئے کھول دیئے۔ نتیجہ یہ ہوا کہ پنجاب کی تہذیب نووارد لوگوں سے بار بار متاثر ہوتی رہی اور اسطرح اُنکا رچ [redacted] جسکے آثار آج بھی پنجاب کی زبان، ادب، لباس، بود و باش اور رسم و رواج میں موجود ہیں۔

افغانستان، ایران، ترکی، تاجکستان، ازبکستان اور آذربائیجان وغیرہ ایسے ممالک ہیں جن سے پنجاب براہ راست متاثر رہا ہے۔ یہ تمام ممالک وہ ہیں جن کی سرکاری زبان فارسی ہے یا پھر کسی نہ کسی طرح فارسی زبان اور ادب سے ان کا گہرا رشتہ ہے۔ یہاں کے عوام فارسی بولتے ہیں، لکھتے۔ پڑھتے ہیں اور سمجھتے ہیں۔ اسی لئے پنجاب پر فارسی زبان اور ادب کا ہمیشہ غلبہ رہا جو کسی حد تک آج بھی موجود ہے۔

یہ نووارد جب پنجاب میں سکونت پذیر ہوئے تو مقامی اور نووارد دونوں گروہوں میں روابط کا قائم ہونا بھی فطری تھا اور ایک دوسرے کو سمجھنے کے لئے زبان دانی بھی ضروری تھی۔ آپسی روابط اور زبان دانی کی بدولت زبان اور ادب کی ترویج کا سلسلہ بھی شروع ہو گیا اور ایک دوسرے کی زبان اور ادب میں دلچسپی لینے لگے۔

نتیجہ یہ ہوا کہ ایک طرف 'احسن القصص' اور 'لیلیٰ و مجنوں' جیسی فارسی مثنویوں کے پنجابی میں منظوم اور غیر منظوم تراجم ہونے لگے تو دوسری طرف پنجاب کی عشقیہ داستانوں مثلاً 'سسی پنوں'، 'ہیر رانجھا' اور 'سوہنی۔ ماہیوال' کو صوفیانہ رنگ دیکر فارسی کے قالب میں ڈھالا جانے لگا۔

جس داستان نے لوگوں کو سب سے زیادہ متاثر کیا وہ 'ہیر اور رانجھے' کی داستان ہے۔ یہاں یہ بتانا بے موقع نہ ہوگا کہ جہاں پنجابی زبان میں پینتالیس شعراء نے اس داستان کو نظم کیا ہے وہیں فارسی زبان میں بھی 'ہیر' کی داستان سب سے زیادہ شعراء نے نظم کی ہے۔ جنکی تعداد چودھا (۱۴) ہے۔

یہ داستان مغلوں کی آمد سے قبل لودی۔ دور میں وقوع پذیر ہوئی۔ جسے لوک شاعری کا درجہ حاصل تھا اور اکثر شعراء اسے استعارہ کے طور پر بھی اپنے اشعار میں استعمال کرتے رہے۔ پنجابی ادب کی تاریخ کے مطابق اس داستان کو سب سے پہلے نظم کرنے کا سہرا دمودر نام کے ایک شاعر کے سر ہے، جس نے اسے پنجابی زبان میں نظم کیا۔ لیکن ڈاکٹر محمد باقر مرحوم کی تحقیق کے مطابق دمودر سے بھی پہلے 'ہیر اور رانجھے' کی داستان کو فارسی کے شاعر ہاتفی نے فارسی زبان میں نظم کیا جو کہ گنگ بھٹ کا ہمعصر ہے اور کولاب کا باشندہ تھا۔۱

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 5

ARABIC AND PERSIAN

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

AP-1

Evolution of Arabic Language and Literature in Kashmir

Pz. Basheer Ahmad, Kashmir

It is a historical fact that Kashmir is one of those regions of the Muslim world which was never conquered by the Arabs or occupied by Arabic speaking people. Moreover, Kashmir history does not provide evidence of any direct trade or cultural links between Kashmir and the Arab world. Arabic language, however, make its way in this region only after the advent of Islam. Though, with the advent of Islam in Kashmir during the 14th centuary AD and its subsequent expansion over here, the real beneficiary ought to have been Arabic language and its literature because of ths fact that the basic sources of Islamic thought and scholarship-Quran and Hadith-are primarily in Arabic, it was however, Persian which attracted the attention of newly converted Kashmiri Muslims. The basic reason for this is that the task of spreading Islam here was undertaken by those Muslim preachers and missionaries who largely came from regions where Persian was spoken as a basic means of communication. After the establishment of Muslim rule in Kashmir, Persian was declared as the official language. Along with it, Kashmir has had direct Trade and cultural contacts with the Persian-speaking world. All these factors put together contributed to the speedy development of Persian in Kashmir. But this does never mean that Arabic language did not exist here at all and that it had no takers in Kashmir or Kashmiri Muslims remained indifferent to it.

After the establishment of Muslim government, the process of constructing mosques, shrines, religious schoold and institutions started everywhere in Kashmir, providing opportunities for the people to get familirazed with Islamic teachings. Since the basic sources of Islamic religion and thought are originally in Arabic script, every Muslim is supposed to know Arabic language at least to the extent of becoming able to perform religious obligations and duties. As such with the spread of Islam in Kashmir, Arabic language become known to its people and it was accepted as a language of new religion.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Although most of the Muslim scholars and men of art and craft who came here had Persian as their medium of instruction and expression, they contributed to the evolution of Arabic language as well because Persian, itself, under the influence of Islam was to a great extent embodied with words and terms of Arabic origin. The books then written on religion, science and mysticism had originated mainly from works in Arabic; Sources and content apart, there was a tradition of giving Arabic titles to authentic Persian books and treatises, including their chapters, prologues and epilogues, This shows that Persian writers were well versed in Arabic also. Most of the works of Mir Syed Ali Hamadani have basically been titled in Arabic or at least bear the imprint of Arabic. In this way people while learning Persian became familiar with a number of Arabic words and terms.

The popularity of Persian in Kashmir did not, however, prevent many Kashmiri scholars from showing interest in Arabic, instead they constantly wrote books in Arabic as well. During the period of Shahmiri Sultans of Kashmir, a number of original work were produced in Arabic on Quranic sciences, Hadith, Jurisprudence and Property rights. Mir Syed Ali Hamadani has about twenty books and treatises in Arabic to his credit. During Chek an Mughal rule there were many scholars present in Kashmir who, along with Persian, had good command over Arabic language and the artistic techniques it dealt with. People like Yaqoob Sarfi and Shamas-ud-Din Pal were great scholars of Persian as well as of Arabic. The Quranic exegesis ''Zubda-tul-Tafseer'' of Moin-ud-Din Naqashband Kashmiri is considered one of the best Arabic interpretations of Quran ever produced in India.

In India as we observe, most of the literary works during the medieval period are attributed to those people who were primarily Persian scholars. What is true of Arabic literature in India is also true of it in Kashmir. Here Arabic poetry too developed under the patronage of Persian poets, However, during the last one and a half century wer come across across a number of scholars in the literary history of Kashmir who preferred to produce their works in Arabic language on different subjects. In the proposed paper an attempt is made to present a general picture of the development of Arabic language and literature in Kashmir, with brief introduction to the important writers and poets along with their works produced in Arabic language.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

AP-2

Persian Poetry in India and Germany

Zulfikar Ali, Delhi

The poets of the subcontinent developed Indian style of Persian poetry commonly called the *Sabk-i-Hindi* and brought the best of India in it. Urfi Shirazi and Naziri Nishapuri became an integral part of the history of Indo Persian literature. The greatest exponent of *Sab-i-Hindi* was Bedil in whose poetry one could see the wonder that was India. The philosophy of the Upanishad, the Indian monsoon, dance, music, culture and sufic traditions and thoughts all blended in the subtle poetry of bedil which the Iranians found difficult to unravel. The last phase of the Mughal rule saw the birth of Mirza Asadullah Khan Ghalib (1797-1869) who was from the lineage of the legendry Afrasiyab. He happended to be the greatest master of Urdu literature but he himself preferred his Persian verses to his ''colorless'' Urdu poetry. His Urdu poetry is fairly known to the commoners in the subcontinent but his excellent Persian poems are still confined to an exclusive class of literati.

''Persian poetry has not lost its glory and significance in the modern world. Iqbal (187701938) however, is the last genius in the long line of poets of Persian in the subcontinent. He outshone others by introducing the WEst to the East and upheld the eastern spiritual values. He enriched Persian and Urdu poetry and brought Germany, Iran and Idnia together by means of his philosophical and poetic thoughts. In 1923, Muhammad Iqbal published a collection of Persian poems called the *Payam-i-Mashriq* (The Massage of the East) as a rejoinder to Goethe's West Ostlicher Divan. Goethe in the *West Ostlicher Divan* answered Hafiz's and sometimes Saadi's verses in German poetry and captured different moods of the poets. His readers are led through various spheres of poeticl thoughts whcih reflect many images and themes of classical Persian literature. The German poet in his work tried to taste the flavour of Persian poetry. Iqbal developed the dimensions of Persian poetry and supplemented the *West Ostlicher Divan.*

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

AP-3

Women as Reflected in the Classicsl Persian Poetry

Abdul Halim, New Delhi

The purpose of this paper is to make a cursory survey of the status of women as reflected in a random sampling of classical Persian poetry. Anybody familiar with the immense amount of literary work in Persian language alon knows that a more systematic and comprehensive study requires resources and talents beyond the reach of one person.

In Persian literature, particularly in classical poetry there are three different points of view regarding women and in fact these are not contradictory to each of them. Every Persian poet, in his work, has discussed and analyzed the place and status of women from these three points of view 1) Negative point of view 2) Aesthetic point of view and 3) Idealistic point of view. In the light of these three perceptions there are at least three characterizations of women to be found. First, there are women in general; second, saintly women; and third, the beloved.

The paper concludes that in the classical Persian poetry the first category is treated with the most obvious and negative chauvinism, incorporating all the usual prejudices which are common in the East as well as the West. The treatment of the women of the last two categories is very different. They enjoy a privileged position which brings them to the level somewhat on a par with men.

*

AP-4

Arab Political Societies in 19th and early 20th Centuries

Dr. Faiyazul Haqq, Allahabad

Turkistan, which we at present prefer as Western or Russian Turkistan, was conquered by the Muslims in the 8th Century of the Christian era. The Turks were soon converted to Islam and were found by the Muslim rulers and governors as very useful solidiers and bodyguards. The wer recruited as such in large numbers and in course of time they became so numerous and powerful that they began to

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

dominate their own masters and becoming so powerful that they would raise caliphs to the throne or pull them down as they chose. When Baghdad, the capital of Abbasid caliphate, fell before the Mongol's onslaught in 1258, the Turkish power seemed to have received a fatal blow, but however, the Turks continued to dominate the Muslim World.

Soon after the destruction of Baghdad by the Mangols under Hulagu, a new Turkish power, that of the Ottomans appeared in Anatolia, which not only gradually occupied the whole of that country but soon crossing over into Europe conquered the Balkan Peninsula and captured Constantinople in 1453. As for Asia and Africa they conquered all the Arab lands in these continents with the exception of Central Arabia and eastern coasts of that peninsula, while in Africa they conquered Egypt, modern Libya, Tunisia and Algeria, only Morocco and Sudan escaped falling under their power.

The Ottomans thus became a world power, respected and feared for and wide, but gradually as the result of the French Revolution and the spread of modern education, nationalism began to strike roots among the conquered nations. At first the movement for freedom remained confined to Christian population e.g. among the Arabs it was the Christian who mooted the idea of independence, but soon the western educated Muslims also joined their ranks and began the struggle for shaking off the Turkish yoke. No imperial nation easily lets its subject races to become independent and thus lose its empire. The Turks too were in no mood to liquidate their empire by granting the Arabs independence. The Arabs were not able to carry on their struggle for freedom openly hence they took to establishing at first secret societies for popularising the idea of independence, and then as they gained some experience and courage they demanded home rule, agreeing to live as member nations of the multi-national Turkish empier. But as the Turks relentlessly pursued the Arab protagonists of independence, while some societies which only had moderate demands worked in open, the others either due to lack of courage or motive of expediency preferred to carry on their movement in secrecy.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 6

PALI AND BUDDHISM

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 6

PALI AND BUDDHISM

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PB-1

बौद्धधर्मदर्शने ब्रह्मविहारस्य महत्त्वम्

प्रो. रमेश कुमार द्विवेदी, वाराणसी

जगत उत्तमोत्तमो शास्तुर्भगवतो बुद्धस्य देशना बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, लोकानुकम्पा भावनया अनुप्राणितास्ति। देशना क्रमे आर्यसत्यस्य, प्रतीत्य समुत्पादस्य, तथा च ब्रह्मविहारस्य विषये यादृशं साङ्गोपाङ्गं वर्णनं बौद्धधर्मदर्शने प्राप्यते तादृशम् अन्त्र सुदुर्लभम् इव दृश्यते।

जागतिक विविध दु:खानि वीक्ष्य तथागते शाक्यमुनौ भगवति बुद्धे सर्वप्रथमं महाकरुणा प्रादुर्वभूव। तदनन्तरं तन्महाकरुणाया प्रेरणावशादहं "दु:खसंतप्तानां प्राणिनां शोकविमोचनाय सहैव विविधसुखै: ते प्राणिन: समन्विता स्यु इति महदुत्तरदायित्वं निर्वक्ष्यामि सहैव बुद्धत्वं प्राप्स्यामि" इत्थं गौतमबुद्ध: बोधिचित्तै: सम्पन्नो बभूव। बोधिचर्यावतार ग्रन्थेऽपि लिखितं वर्तते। यथा—

आकाशस्य स्थितिर्यावद्याच्च जगत: स्थिति:।
तावन्ममस्थितिर्भूयाज्जगदु:खानि निघ्नत:॥ बो. 10-55

❋

PB-2

चर्य्यापदस्य व्याख्याने मुनिदत्तरचिताया टीकाया: गुरुत्वविचार:

डॉ. अनीता वन्द्यापाध्याय, कोलकाता

महायानसम्प्रदायगतानां बौद्धानां साधनासंगीतकम् चर्य्यापद:। महामहोपाध्याय हरप्रसादशास्त्री महाभागा: नेपालप्रदेशात् ग्रन्थस्यास्य प्रतिलिपिं नीत्वा कलिकानगय्यां तस्य मुद्रणं कृतम् बङ्गभाषाया: प्राचीनतमोऽयं ग्रन्थ:। ग्रन्थस्यास्य सुनिदत्तविरचिता संस्कृतभाषायाम् रचिता टीका समुपलभ्यते। कथं बङ्गभाषां रचितस्य ग्रन्थस्य टीका संस्कृतभाषायाम् उपनिबद्धा इति अस्माकम् प्रश्न:। चय्याया: दार्शनिक तात्पर्यविये मुनिदत्तस्य टीका प्रमाणम्। मूलस्य पाठ विषये तथा तात्पर्यनिर्णय विषये टीकाया: प्रयोजनम् पर्य्यालोचयाम:। अत्र टीकाग्रन्थे उपलब्धानाम् ग्रन्थानामपि पर्य्योलोचनम् अस्माकम् प्रबन्धे उपस्थापयिष्याम:।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PB-3

बोधिचित्त - विमर्शः

डॉ. धर्मदत्त चतुर्वेदी, सारनाथ, वाराणसी

प्राणिमात्रस्य कल्याणाय बोधिप्राप्तेः सुदृढाभिलाषिचित्तविशेषो बोधिचित्तमभिधीयते। बुद्धत्वप्राप्त्यै चित्तमाश्रीयते। बुद्धत्व एव परकल्याणशक्तिर्निहिता। बुद्धत्वावाप्तिर्हि बोधिचित्तमन्तरेण न सम्भाव्यते। चित्तोत्पादस्तु परार्थायैव कल्पते। यथोक्तम्-अभिसमयालङ्कारे—'चित्तोत्पादः परार्थाय सम्यक् सम्बोधिकामता'।

स्वाभाविक बोधिचित्तोत्पादाभ्यासस्य परम्पराद्वयं बौद्धेषु मन्यते। प्रथमतः आर्यमैत्रेयनाथा-सङ्गोपदिष्टानि सप्त कारणानि फलानि च, आर्य मञ्जुघोष-नागार्जुन-शान्तिदेवादीनां द्वितीया परम्परा परात्मसत्तां परात्मपरिवर्तनं च शिक्षयति। आर्यमैत्रेयनाथानुसारेण बोधचित्तमूलं हि करुणैवास्ते।

*

PB-4

बौद्धार्थविचारः

डॉ. दयानाथ झा, बेगूसरायः (बिहार)

इह नामरूपात्मके जगति "नामरूपे व्याकरवणी"ति श्रुत्यनुरोधात् प्रपञ्चात्मकस्याऽस्य निर्माता पश्यन्तीवाग्रूपं शब्दतत्त्वमेव ब्रह्म। यतः शब्दार्थोभयरूपाद् ब्रह्मणो घटादिरूपेण जगतः प्रथमत उपत्तिव्यवहारो जातः। नागेशेन तु मध्यमानाद एव शब्द-ब्रह्मरूपस्फोटस्य व्यञ्जकः सुस्थिरीकृतः। एवं मध्यमानादव्यङ्ग्यः शब्दः स्फोटात्मको ब्रह्मरूपो नित्यश्च साधितः। तथाच मध्यमावस्थ-पदादिरूप आन्तरः स्फोटो निर्विभागो वाचकः, एवमेव घटपटादिरूप-शक्यार्थोऽपि निर्विभाग आन्तर एव, स एव वाक्यार्थः प्रतिभारूपश्च। पदपदार्थयो-रितरेतराध्यासमूलकं तादात्म्यमेव सम्बन्धः, तादात्म्यं च—"तद्भिन्नत्वे सति तदभेदेन-प्रतीयमानत्वम्" एवञ्च उभयनिरूपित-तादात्म्यवानुभय-इत्यर्थपदयो र्व्यवहारः सङ्गच्छते।

ईश्वरेच्छारूपां शक्तिं मन्यमानाः तार्किकाः शब्दार्थयो-र्मध्ये तादात्म्यसम्बन्धे विप्रतिपत्तिं प्रदर्शयन्तो ब्रुवन्ति यत् तादात्म्ये स्वीकारे मधुशब्दोच्चारणे मुखे माधुर्यापत्तिः स्यात् स्याच्च वह्निशब्दोच्चारणे दाहापत्तिः, तत्कथं नोत्पद्यते?

"भेदाऽभेदस्योपपादितत्वात्" इति पङ्क्त्य-एतन्मतं खण्डयता नागेशेनोक्तम् - यत् - सत्यपि भेदे शब्दार्थयो र्मध्ये किन्तु प्रतीयतेऽभेदेन, यतो हि पदं स्फोटात्मकम्, अर्थोऽपि बौद्ध एव।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तयोस्तादात्म्यस्वीकारे बौद्धे माधुर्याद्यर्थे माधुर्यादेः शक्ति-मत्त्वाभावः सुसङ्गतो भवति। अतो योगदर्शनस्थ-विकल्पसूत्र-मिदं सङ्गतं जायते—''शब्दज्ञानानुपाती वस्तु-शून्यो विकल्पः।'' अतो बुद्धिसत्तासमाविष्ट एव शक्यार्थो न तु बाह्यसत्ता-समाविष्टः।

यदि च बौद्धपदार्थं न स्वीकुर्यात्तदा ''घट'' इति कथनेनैव सत्ताज्ञानं स्यात् ''घटोऽस्ती''ति प्रयोगो न स्यात्। ''घटो नास्ती''ति वाक्ये सत्ताया विरोधोऽपि न स्यात्। एवञ्च ''अस्ति'' ''नास्ती''ति पदद्वयं सर्वथासङ्गतं सत् प्रयोगार्हन्न जायते। पदद्वयस्य सङ्गतये बौद्ध-पदार्थस्वीकरण-मावश्यकम्।

❋

PB-5

बौद्ध साहित्य और मानवाधिकार : स्त्रियों और भ्रूण हत्या के सन्दर्भ में

सत्यदेव कौशिक, अलीगढ़

स्त्री विषयक मानवाधिकारों का विभिन्न विधियों एवं न्यायिक निर्णयों द्वारा पर्याप्त संरक्षण दिया गया है। 1945 में हस्ताक्षरित संयुक्त राष्ट्र चार्टर में पहली बार लैंगिक समानता को मूलभूत अधिकारी घोषित किया गया। 1948 के विभिन्न अनुच्छेद विशेषतः स्त्रियों के अधिकारों की बात करते हैं। भारतीय संविधान के 73वें और 74वें संविधान संशोधनों और विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं द्वारा उनके सशक्तिकरण के प्रयास किये गये हैं। फिर भी स्त्रियों की स्थिति अति दयनीय है। इसके अतिरिक्त भ्रूण हत्या भी मानवाधिकार हनन का गम्भीर मुद्दा है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में चर्चित बुद्ध के उपदेशों में इन दोनों मुद्दों के समाधान के लिए पर्याप्त सामग्री मिलती है। इस पत्र में बौद्ध संस्कृत एवं पालि ग्रन्थों के संदर्भों से यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि बुद्ध मानवाधिकारों के सबसे बड़े संरक्षक थे। मेत्ता-भावना और करुणा से ओत-प्रोत बौद्धधर्म में मानवाधिकारों के हनन के लिए कोई गुञ्जाइश नहीं है।

बुद्ध के अनुसार भ्रूण हत्या जघन्य अपराध एवं अनैतिक है। गर्भस्थ शिशु के प्रति उनका दृष्टिकोण अति उदारवाती है। वे अपने अनुयायियों को उपदेश देते हुए कहते हैं कि केवल जन्म ग्रहण करने वाले प्राणियों के प्रति ही प्रेम और मैत्री न रखें, अपितु उन सब जीवों के प्रति भी ऐसा भाव रखें, जो जन्म लेने की प्रतीक्षा में हैं।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PB-6

पटिच्चसमुप्पाद [प्रतीत्यसमुत्पाद]

प्रो. हरीश ए. जोशी, भावनगर (गुजरात)

पालि भाषा में जिसे 'पटिच्चसमुप्पाद' के रूप में और संस्कृत में जिसे 'प्रतीत्यसमुत्पाद' के रूप में पहचाना जाने वाला सिद्धांत बौद्ध-दर्शन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

पदार्थ प्रतिक्षण नये-नये स्वरूप में यात्रा करता है, गति करता है, प्रवृत्ति करता है—''प्रतिक्षणं च नव लक्षणानि प्रवर्तन्ते।'' इस प्रकार कहकर यह भी कहा है कि ''क्षणभंगुरश्च प्रतीत्यसमुत्पादः।'' अमुक शर्त पर अथवा अमुक कारणों से होने वाले उत्पादन के नियम का अर्थ ही 'प्रतीत्य समुत्पादः' है। 'असंग' बताता है कि प्रतिगमन करके प्रत्यय यानी विनाश के साथ उत्पत्ति प्रतीत्य-समुत्पाद है। 'विशुद्धमग्ग' के सत्रहवें परिच्छेद में बताया गया है कि प्रतीत्य अर्थात् किसी वस्तु (पदार्थ) के उत्पन्न होने से, समुत्पाद अर्थात् किसी अन्य वस्तु (पदार्थ) की उत्पत्ति होती है। इसका अर्थ यही है कि हेतु और प्रत्यय सापेक्ष भावों की उत्पत्ति ही प्रतीत्य-समुत्पाद है। एक के विनाश के पश्चात् अन्य (पदार्थ) की उत्पत्ति इस नियम को ही बुद्ध ने प्रतीत्यसमुत्पाद नाम दिया है। बुद्ध ने इस प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धांत की गणना DISCONTINUOUS CONTINUTTY के रूप में की है।

*

PB-7

भगवान् बुद्ध और उनकी चिकित्सा

डॉ. कृष्णदेव प्रसाद वर्मा, बोधगया

भगवान् बुद्ध स्वयं वैभवशाली ऐश्वर्य में रहते हुए भी दूसरे के दुःखों को देखकर बहुत दुःखी हुए और केवल एक या दो व्यक्ति विशेष की नहीं; बल्कि सम्पूर्ण मानव समाज को दुःखों से त्राण दिलाने हेतु गृह त्याग किया था। इस गृह में उनका कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं था। उनका गृह त्याग एक कुशल चिकित्सक की भाँति था। एक चिकित्सक अपनी पढ़ाई सिर्फ इसलिए नहीं पढ़ता है कि जिससे वह स्वयं नीरोग रहें, बल्कि चिकित्सक दूसरे को नीरोग रखने में ज्यादा मददगार साबित होते हैं।

भगवान् बुद्ध महाभिनिष्क्रमण के बाद बोधगया समाधिस्थ होने से पहले अनेक स्थानों का भ्रमण किया जिनमें राजगृह, जेठियन, पावापूरी, नालंदा आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। लेकिन

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri

तपस्या योग्य भूमि उन्हें बोधगया ही लगी। अनेक स्थानों पर भ्रमण करने के कारण उन्हें कुछ सीखने को मिला जिसके प्रतिफल के रूप में बोधगया आये। बोधगया तपस्वियों की भूमि थी। यह भौगोलिक दृष्टिकोण से भी तपस्या योग्य था। पहाड़ों एवं नदियों से घिरा यह स्थान बिल्कुल शांत था। भगवान् बुद्ध अपनी तपस्या का स्थल पीपल वृक्ष के नीचे चुने। इससे यह पता चलता है कि उन्हें विचरण करते-करते यह आभास हो गया था कि जंगल में रहने वाले सारे वृक्षों से ज्यादा पीपल ही ऑक्सीजन छोड़ता है।

भगवान् बुद्ध ने प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए भिक्षुओं को चार निश्रय का प्रावधान किया था, जिनमें चौथा एवं अंतिम निश्रय था "औषधि के रूप में भिक्षुओं को गोमूत्र का सेवन करना होगा। इससे यह पता चलता है कि भगवान् बुद्ध को औषधियों का पूरा ज्ञान हो गया था। समय-समय पर अपने उपदेश के क्रम में भी विभिन्न प्रकार के रोगों को देखकर भिन्न-भिन्न औषधीय युक्त भोजन करने की आज्ञा दिया करते थे।

*

PB-8

मिलिन्द प्रश्न का लोकदर्शन

डॉ. वीरेन्द्र कुमार अलंकार, चण्डीगढ़

भारतीय दर्शन में लोक और अध्यात्म का समन्वय है। अपने प्रतिपाद्य की पुष्टि में दार्शनिक आचार्यों ने लोक दृष्टि पर बड़ा ध्यान दिया है। बौद्ध साहित्य तो इस दृष्टि से कदाचित् सबसे ही आगे है। उसमें भी 'मिलिन्द प्रश्न' तो विलक्षण कृति है। निर्वाण जैसे गम्भीर विषय को जिस सहजता से, जिस लोकदृष्टि से स्पष्ट किया गया है, वह अद्भुत है। जिस प्रकार के प्रश्न-प्रतिप्रश्न 'मिलिन्द प्रश्न' में हैं, वे दार्शनिक दृष्टि से स्वतः ही महत्त्वपूर्ण बन गए हैं। अब अनात्मवाद को लीजिए। मिलिन्द का प्रश्न है कि महाराज, कैसे जाना जाए कि आप नागसेन हैं। आपके केश, नख, दन्त, त्वचा, माँस, स्नायु, अस्थि, मेद, वसा आदि तो नागसेन है नहीं। तो क्या संज्ञा, संस्कार, विज्ञान आदि को नागसेन कहा जाता है? यहाँ लोकदृष्टि से समाधान देखिए—नागेश कहते हैं कि महाराज, आप इस प्रासाद में कैसे आए हैं? मिलिन्द कहते हैं—रथ से। नागसेन बोले—राजन्, मुझे रथ दिखाओ। रथ देखने पर नागसेन बोले—राजन्, क्या यह तो अक्ष, चक्र या रथपंजर है। तब मिलिन्द अवाक् हो गए। तब लोकप्रमाण द्वारा नागेश समाधान प्रस्तुत करते हैं।

इस प्रकार के अनेक प्रश्नों का समाधान लोकधरा पर हुआ है। मिलिन्द प्रश्न में लोकदृष्टि की दूसरी दिशा है—वस्तुमात्र में गुणदर्शन। गधा, वानर, सूअर आदि में गुणों को खोजना नागसेन

CC-0.JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

की विलक्षण दृष्टि का उदाहरण है। नागसेन द्वारा प्रस्तुत समाधान में क्वचित् अर्थवाद भले ही हो, पर वे पूर्वाग्रहग्रस्त कहीं नहीं दिखाई देते। नागसेन और मिलिन्द का संवाद मनोरम शैली में है। मिलिन्द प्रश्न में दी गए उपमाएँ लोकधरातल पर जिस दृष्टि को उत्पन्न करती हैं, वह लोकदृष्टि मनोरंजन मात्र या शैली न होकर एक दर्शन बन गया है और यही लोकदर्शन परमार्थदर्शन की पूर्वपृष्ठिका है॥

PB-9

बौद्ध धर्म दर्शन में प्रतीत्य समुत्पाद का महत्त्व

श्रीमती शकुन्तला द्विवेदी, वाराणसी

कर्मवाद के साथ प्रतीत्यसमुत्पाद का घनिष्ठ सम्बन्ध है। कर्म कर्मफल को भी कहते हैं। जैसे कहते हैं कि उसका शुभ या अशुभ कर्म उसकी प्रतीक्षा करता है। पुण्य अपुण्य के विपाक के सम्बन्ध में कर्म से हेतुफल व्यवस्था अभिप्रेत है। प्राचीन काल में स्थविरवादियों में कर्म और प्रतीत्यसमुत्पाद में भेद किया जाता था। फल की अभिनिवृति में कर्म केवल एक प्रकार का हेतु था। कर्म के अतिरिक्त दु:ख के उत्पाद में अन्य भी हेतु हैं। 'अभिधर्मकोश' में लोकधातु के विवृत होने में सत्वों के कर्म समुदाय को हेतु माना है। महायान के अनुसार लोक की उत्पत्ति कर्म से है। यह हेतु प्रत्यय देश, काल और विषय के प्रति सामान्य है। असंख्य लोकधातुओं का, देवलोकों का और नरकों के सम्बन्ध में यह हेतु फल सम्बन्ध व्यवस्था लागू है। यह व्यवस्था त्रिकाल को भी लागू है। असंस्कृत धर्मों को छोड़कर यह सब संस्कृत धर्मों पर भी लागू है। अत: भवचक्र अनादि है। प्रतीयत्य समुत्पाद के द्वादश अंग है। उसका संक्षेप में वर्णन इस शोध पत्र में है।

❋

PB-10

विसुद्धीमग्ग में सील की कल्पना

संतोष भोसले, (औरंगाबाद)

विसुद्धीमग्ग ग्रंथ में सील का विस्तृत विवेचन किया गया है। मानव जीवन में सील को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। मानव को समाज में जो मान सम्मान मिलता है वह सील का परिणाम है। इसीलिए कहा जाता है कि "सीलम् परम् भूषणम्"

आचार्य बुद्धघोष इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ के रचयिता माने जाते हैं। इस ग्रंथ में सील सम्बन्धी सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन किया है। इसीलिए यह ग्रंथ को पांडित्य का परिचायक भी कहा जाता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वे अपनी इस महत्त्वपूर्ण रचना के द्वारा अमर हो गए। साधना द्वारा इसमें निर्वाण प्राप्ति बनाई गई है। निर्वाण प्राप्ति के लिए जिस साधना का प्रज्ञापन किया है। वह तीन पदों से संयुक्त है। वे तीन पद इस प्रकार हैं।

(i) सील (ii) समाधि (iii) प्रज्ञा

❋

PB-11

बौद्ध दर्शन में अनात्मवाद का स्वरूप

मञ्जु बाला, कुरुक्षेत्र

भारतीय दर्शन में दो धाराओं का उल्लेख किया गया है। आत्मवाद एवं अनात्मवाद। आत्मवाद को मानने वाले दर्शनों में मुख्य रूप से न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसक, वेदान्ती और जैन दर्शन आते हैं इसके विपरीत एक दार्शनिक धारा बौद्धों की है, जिसका मुख्य सिद्धान्त 'अनात्मवाद' है। यह सिद्धान्त (अनात्मवाद) जितना विरोधी उपनिषदों के 'आत्मवाद' का है उतना ही विरोधी वैशेषिक के द्रव्यवाद का भी है। बौद्धों का प्रमुख सिद्धान्त है—''सर्वमानात्मम्'' अर्थात् इस जगत् में जो कुछ भी है वह आत्मा से शून्य है। अनात्म (नैरात्म्य) का अर्थ है—आत्मा को न मानने वाला सिद्धान्त या आत्मा के न होने का भाव। 'मिलिन्दपञ्ह' जो पालि साहित्य का प्रकरण ग्रन्थ है, इसमें अनात्मवाद के विषय में बताया गया है कि—

(1) रूपादि स्कन्ध समुदाय की 'सत्त्व' संज्ञा।

(2) ज्ञाता के रूप में कोई आत्मा नहीं है।

❋

PB-12

भारत में पुर्न उत्थान में श्रीलंका का योगदान

डॉ. आभारानी, बोधगया

श्रीलंकावासियों का विश्वास है कि स्वयं भगवान् बुद्ध तीन बार श्रीलंका पधारे थे—पहली बार बुद्धत्व प्राप्ति के नौवें महीने में, दूसरी बार बुद्धत्व प्राप्ति के पाँचवें वर्ष में, तीसरी बार नौवें वर्ष में। सम्राट अशोक के पुत्र भिक्षु महेन्द्र और पुत्री भिक्षुणी संघमित्रा बोधगया के बोधिवृक्ष का

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पौधा और कुछ बौद्ध, साहित्य लेकर श्रीलंका पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने लंका नरेश, राजदरवारियों, सेठ साहूकारों, बुद्धिजीवियों और जनसाधारण को भगवान् बुद्ध का धम्म संदेश विनयपूर्वक करुणा भाव से दिया। भारत से प्रचारित एवं प्रसारित बौद्ध धर्म का पुर्न उत्थान के लिये पाँचवी शताब्दी में सिंहल नरेश मेघवर्ण ने बहुमूल्य भेंट के साथ समुन्द्रगुप्त के पास अपने राजदूत भेजे कि बुद्ध गया में एक बिहार बनवाने की अनुमति दें, जो सहर्ष दी गई। बौद्धधर्म के पुनरुत्थान युग में अनागरिक धम्मपाल का जन्म 1864 ई० में कोलम्बों के एक संपन्न परिवार में हुआ। अनागरिक धम्मपाल 1891 ई० में भारत यात्रा पर निकले तथा सारनाथ एवं बोधगया की पवित्र स्थलों का जब उन्होंने दर्शन किया तो ब्रजासन् की दुरवस्था को देखकर वे इतने चिन्तित हुए कि उन्होंने वहीं पर यह संकल्प किया कि इस स्थान के पूजा आदि का प्रबन्ध वे बौद्धों को दिलाकर ही दम लेंगें। इसके लिये उन्होंने इसी वर्ष बुद्धगया महाबोधि सोसाइटी की स्थापना की।

आधुनिक युग में भारत में बौद्ध धर्म के पुनरुत्थान में अनागरिक धम्मपाल ने अपना विशेष योगदान किया और इसे पुनः यहाँ प्रतिष्ठापित करने में समर्थ हुए। 1930 ई० में मृत्युसंध्या पर उनके अन्तिम वाक्य थे— "मैं चाहता हूँ कि मेरा पुर्नजन्म हो और यह पुर्नजन्म शास्ता के धर्म प्रचार कार्य के लिये मेरी इच्छा है कि पच्चीस बार हो" कोई महामानव ही यह कह सकता है। धन्य है श्रीलंका की धरती जो धर्म प्रचार के लिये ऐसे महामानव को जन्म दी।

*

PB-13

जातक वाङ्मय में वर्णित नारी की स्थिति

गौतम जीतेन्द्र, मुजफ्फरपुर

अनाभिरत जातक में एक आचार्य के रूप में बुद्धदेव द्वारा अपने शिष्य को उपदेश दिया गया कि नारी सर्वभोग्या है जैसे नदी, पथ, शराबखाने धर्मशालायें आदि सबके लिए होते हैं वैसे लोक में स्त्रियाँ भी। बुद्धिमान लोग इसके बारे में चिन्तित नहीं होते व क्रोध नहीं करते। स्त्री को सार्वजनिक उपभोग की वस्तु बना देना पूर्णता प्राप्त समाज में कैसे संभव था? यह बात कुछ अजीव सी लगती है। महाभारत में युधिष्ठिर के समान दॉव पर लगाने से भी अधिक जातक युग में स्त्री को गिरवी भी रख देते थे। सुमग्गा जातक में जेतवन में एक भिक्षु को उद्विग्न चित्त देखकर बुद्धदेव कहते हैं—स्त्री असभ्य होती है, अकृतज्ञ होती है।

उपरोक्त उदाहरणों से जान पड़ता है कि जातक कालीन परिवार में पति और पत्नी का नाता केवल यौनमात्र रह गया था जो अत्यंत हेय संबंध है। गृह, परिवार, समाज और राष्ट्र के विकास

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

में स्त्री शक्ति का कोई महत्वपूर्ण हिस्सा नहीं रह गया था, माता, बहन, कन्या सबके चरित्र के प्रति व्यापक अविश्वास, परिणामत: संपूर्ण जाति के प्रति व्यापक अविश्वास—इन सबका परिणाम तत्कालीन समाज में क्या रहा होगा कल्पनातीत है।

❋

PB-14

बौद्ध दर्शन में निर्वाण का स्वरूप

डॉ. श्वेता जैन, जोधपुर

निर्वाण बौद्ध विचारधारा का सर्वोच्च तत्त्व है। भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट सिद्धान्त चार आर्य सत्य, अष्टांगिक मार्ग, प्रतीत्यसमुत्पाद आदि सिद्धान्त निर्वाण के लक्ष्य को लेकर प्रतिपादित किये गये हैं। 'निरोधो निब्बानं' दु:ख का निरोध करना ही निर्वाण है। 'निब्बानं न अतीतं न अनागतं न पच्चुप्पन्नं न उप्पनं न अनुप्पनं न उप्पादनीयं' निर्वाण भूत, भविष्य और वर्तमान-इन तीनों कालों से आगे की स्थिति है। निर्वाण न तो उत्पन्न हुआ, न उत्पन्न होता है और न उत्पन्न किया जा सकता है। भगवान् बुद्ध ने निर्वाण को परमार्थ, परम सत्य के रूप में प्रतिष्ठित किया है, जिसका प्रमाण धम्मपद का यह वाक्य है-'निब्बानं परमं वदन्ति बुद्धा'। बौद्ध दर्शन में निर्वाण का स्वरूप विभिन्न रूपों में निरूपित है। यथा-चित्त की विशुद्धि, परमसुख की अवस्था, चित्त की विमुक्ति, राग-द्वेष और मोह का क्षय, तृष्णा का क्षय, अद्वितीय योगक्षेम, अच्युतपद, जन्म-जरा-मरण से विमुक्त, परमातीत सत्य, अनिरूक्त अवस्था आदि।

निर्वाण के विस्तृत स्वरूप की चर्चा के साथ भगवान् बुद्ध ने निर्वाण-साधना में अप्रमत्तता की आवश्यकता पर भी बल दिया है। बौद्ध धर्म का प्रत्येक संप्रदाय निर्वाण के विषय में अपना मत रखता है। निर्वाण भावरूप है या अभावरूप, इस विषय पर पर्याप्त चर्चा प्राप्त होती है।

❋

PB-15

बौद्ध प्रमाणलक्षण में 'अविसंवादि' पद की सार्थकता

डॉ० धर्मचन्द जैन, जोधपुर

'प्रमाणमविसंवादि ज्ञानम्' (प्रमाणवार्तिक 1.3) सूत्र के अनुसार अविसंवादक ज्ञान प्रमाण है। धर्मकीर्ति द्वारा प्रदत्त इस प्रमाणलक्षण में दो पद महत्त्वपूर्ण हैं-'ज्ञानम्' और 'अविसंवादि'। बौद्ध

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दर्शन में प्रमाण ज्ञानात्मक ही होता है, इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ-सन्निकर्ष आदि को प्रमाणकोटि में नहीं रखा गया है। ज्ञान को भी प्रमाण तभी माना गया है जब वह अज्ञात अर्थ का ज्ञापक हो। दिङ्नाग रचित प्रमाणसमुच्चय पर टीकाकार जिनेन्द्रबुद्धि ने इस तथ्य को स्पष्ट किया है-**अज्ञातार्थज्ञापकमिति प्रमाणसामान्यलक्षणम्**। (विशालामलवती टीका, प्रमाणसमुच्चय, प्रत्यक्षपरिच्छेद)। धर्मकीर्ति ने भी प्रमाण के इस प्राचीन पारमार्थिक लक्षण को स्वीकार किया है, यथा-**अज्ञातार्थप्रकाशो वा** (प्रमाण वार्तिक, 1.7) दिङ्नाग प्रणीत प्रमाण का यह लक्षण में अविसंवादी ज्ञान को प्रमाण कहना सांव्यवहारिक दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। 'अविसंवादि' पद अर्थक्रियास्थिती का द्योतक है। वस्तु को जैसा जाना है वह वैसी अर्थक्रिया करने में समर्थ हो तो वह ज्ञान प्रमाण है, यदि वह ऐसा करने में समर्थ न हो तो वह अप्रमाण है। दिङ्नाग प्रणीतलक्षण जहाँ बौद्धों की क्षणिकवादी तत्त्वमीमांसा के लिए उपयुक्त है वहाँ धर्मकीर्ति प्रणीत लक्षण सांव्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी है जो सौत्रान्तिक, वैभाषिक एवं विज्ञानवाद इन तीनों सम्प्रदायों में लागू हो सकता है। बाह्य पदार्थ का अस्तित्व स्वीकार करने वाले सौत्रान्तिकों एवं वैभाषिकों को भी प्रमाण का यह लक्षण अस्वीकार्य नहीं हो सकता। यद्यपि क्षणिकवाद में अविसंवादकता को घटित करना सम्भव नहीं है, किन्तु धर्मोत्तर ने न्यायविन्दुटीका में ग्राह्य एवं प्राप्य क्षणों का भेद कर अविसंवादकता सिद्ध की है। अविसंवादकता कोई भ्रान्ति नहीं है। भ्रान्त अनुमान भी बौद्ध-दर्शन में अविसंवादक होने से प्रमाण माना गया है। अविसंवादकता को प्रमाण-लक्षण में स्थान देकर बौद्धदार्शनिकों ने विसंवादकता का परिहार कर दिया है।

*

PB-16

औपनिषद दर्शन और प्राचीन सांख्य-योग दर्शन के साथ बौद्ध थेरवाद की तुलना

डॉ० दिलीप चारण, गुजरात

औपनिषद और गौतम बुद्ध के जन्म से पूर्व के प्राचीन सांख्य-योग दर्शन के सिद्धांतों के साथ थेरवाद के बौद्ध सिद्धांतो की तुलना करने से भारतीय चिंतन परंपरा के इतिहास का संकोच-विकास समझने में नई दृष्टि प्राप्त होती है। संहिता, ब्राह्मण और उपनिषदों की चिंतनधारा अंत में अद्यात्मवाद के विशिष्टरूप में परिसमाप्त होती। जगतकारण हमारे शरीरात्मा से अभिन्न है-'अयं आत्मा ब्रह्म' यह सिद्धांत पर उपनषिदों का तात्पर्य है। ब्रह्म सत्यस्य सत्यम्-सत्य का भी सत्य है, प्राणो से भरपूर यह जगत सत्य है, इस सिद्धांत पर औपनिषदिक दर्शन की श्रद्धा दृढ हुई है। मूलतत्त्व

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

की शाश्वतता के बारे में उपनिषदों में कोई संदेह नहीं है। महात्मा बुद्ध ने वैसे तो किसी भी स्थान पर शाश्वत ब्रह्म अथवा आत्मा का स्पष्ट निषेध नहीं किया है, फिर भी उन्होंने शास्वत ब्रह्मात्मा की शोध के बजाय दु:खमुक्ति को प्राधान्य दिया था। उन्होंने द्वादशांग भावचक्र अथवा निदानमाला और प्रतित्यसमुत्पाद के माध्यम से विश्व की और मनुष्य जीवन की क्षणभंगूरता का निर्णय किया। दृश्यमात्र की क्षणिकता और प्रवाहिता का सिद्धांत तत्त्वज्ञान के इतिहास में महात्मा बुद्ध का मौलिक प्रदान है। बुद्ध के इस सिद्धांत की गहरी असर बाद में वेदांत दर्शन के मायावाद पर दिखाई पड़ती है। औपनिषद दर्शन ब्रह्मात्म वस्तु की शाश्वतता सिद्ध करके 'शर्वं खलु इदं ब्रह्म'-की बात करते हैं तो प्राचीन बौद्ध दर्शन के थेरवादी सिद्धांत विश्व की क्षणभंगूरता सिद्ध करके सर्वनित्यत्म्। की प्रस्थापना करते हैं।

बुद्ध के जन्म के पूर्द के प्राचीन सांख्य दर्शन के सिद्धांतो के साथ थेरवादी बौद्धदर्शन की तुलना करने से प्रतीत होता है की बुद्ध का निर्वेदवाद और सर्व दु:खरूप है यह सिद्धांत मूलत: सांख्य दर्शन का है। त्रिगुणात्मिका प्रकृति स्वभाव से विकारी है एसा सांख्य दर्शन का निर्णय बौद्ध के क्षणभंगूरतावाद में पुनर्जिवित हुआ है। फिर भी सांख्ययोग के अनुयायिओं का प्रयास एकांत उपयोग में ही रहा जबह की बौद्ध का क्षणभंगूरता का सिद्धांत बौद्धधर्म को राज्याश्रय मिलने के कारण सार्वत्रिक रूप में लोकभोग्य बन सका। परिणाम स्वरूप बौद्धदर्शन मात्र तत्त्वज्ञान में ही न ठहरा गया बल्की नीतिशास्त्र, कलाशास्त्र, न्यायशास्त्र इत्यादि सर्व को प्रकाशित करने लगा।

❋

PB-17

"Buddha as Interpreted by the Tagore"

Sulagna Mukherjee

In modern age one can hardly ignore the message of the Buddha that is being disseminated to each corner of the globe. In early nineteenth and twentieth centuries, a group of elites like Haraprasad Shastri, Rajendralal Mitra and Rabindranath Tagore were deeply moved by the thoughts of the Buddha.

Leaving all others we may show how the different members of the most celebrated family of the Tagores reproduced the thoughts of the Buddha through their literary works.

First of all we may mention Rabindranath Tagore who had profoundly imbibed the thoughts of the Upanisads on theone hand and that of the Buddha on

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

the other. Perhaps the Buddha with his exalted ideals of Self-sacrifice and Compassion had more deeply penetrated his heart than the Upanisads. He wrote some very important essays interpreting the message of Buddhadeva, which had been compiled and published by the Visva-Bharati. Besides, he wrote a number of poems, dramas and dance dramas drawing upon the Buddhist themes.

Rathindranath, the son of Rabindranath partially translated the ''Buddhacarita'' of Asvaghosha in melodios prose. Dvijendranath, the eldest brother of Rabindranath was much attracted by the ''Dhammapada'' and translated some of its most beautiful verses in Bengali metrical form. Satyendranath, the elder brother of Rabindranath wrote ''Bauddha Dharma'', analysing the thoughts of the Buddha. It is a valuable that it has been often quoted by many eminent Bengali writers.

Rabindranath's nephew Abanindranath the Pioneer of Bengal School of Art, wrote ''Nalaka'' drawing upon the theme of the ''Buddha-carita'' with his own illustrations. It is not only a valuable children's literature but an invaluable treasure of the Bengali lietrature too. Besides, there are many writings by the different members of the Tagores illuminating the thoughts of the Buddha.

The paper proposes to elaborate all these works.

*

PB-18

Portrayal of Characters in Sarala Dasa's Mahabharata: Bhima and Yudhisthira

Dr. Niladri Bhusan Harichandan, Santiniketan (W.B.)

The geat epic, Mahabharata of Vyasadeva had its tremendous impact on Indian minds and numerous versions of it emerged in the regional languages in subsequent periods. Mahabharata in Oriya was composed was composed by Sarala Dasa te father of Oriya literature in the 15th Century A.D. during the reign of the great conqueror, the Gajapati king of Orissa, Kapilendre Dev (1435-1467). This work is a revolutionary one in greatly indebted to the Sanskrit Mahabharata, Sarala's Mahabharata, a work of eternal literary value has followed only the main outlines of the story of the original. This stupendous epic of about one lakh couplets written

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

by a single hand on palm leaf is in fact, a recreation by transposing the original in time and space of the fifteenth century Orissa as well as of the social, cultural, religious, economic and political milieu of the then India.

Besides creating new characters to preach his philosophy of life and progressive sensibility, Sarala Dasa humanized the original Characters stripping them of their divine qualities. Ganga and Draupadi had been created with psychological insight. Some characters were depicted with such dynamism that their inner conflicts could at once surface. Even he had showed mental conflict in the static characters like Duryodhan, Shakuni and Draupadi.

Two main characters portrayed in Sarala's Mahabharata, Bhima and Yudhisthira have received greater attention of the poet. With drawing a sharp constrast, he made these two characters very touching and spectacular. His Bhima is not only heroic and daredevil, but also simple, candid, frank, natural, straightforward, sincere, truthful and kind hearted, where as his Yudhisthir was crafty, crooked, heartless, self-centred, exploitive, hypocritical, deceitful, devoid of masculinity as well as personality. He had been depicted as leading a life of parasite on other's credit in spite of his being Dharmaraj.

Sarala Dasa portrayed Bhima with his finer sensibility, where as he did not have any sympathy for Yudhisthira while portraying his character. This is the novelty and speciality of Sarala Dasa's unique mode of characterization.

❋

PB-19

Views about women in Jātaka Stories

Maitreyee Deshpande, Pune

The Jātaka stories present diametrically opposite views about women, at different places. In most places women are considered to be the objects of passion. It is because of women that monks are disturbed in their ascetic pursuits. Women are generally cunning, trecherous and selfish. In stray instances however we read about women being kind and noble and worthy of respect.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PB-20

Folk Tales and Fables in Pali Literature : A Comparative Study

Bandana Mukherjee, Kolkata

The word 'Folk tales' is coined by John Thomas, an English antiquarian in 1846 has come to forefront in India for some years. Prior to that these tales were used as ''Popular antiquities'' all over the world. Folklore is the knowledge and learning of the common people of a country which has formed a tradition. The antiquity of a country is proved by the maintance of tradition and culture of the people of a country. Folklore is not confined only in folk dances, folk songs and folk tales but the entire tradition of a country is reflected in folklore.

From the beginning of civilization tales legends and fables especially folk tales has developed on the soils of India. These tales of India has a special value and importance of its own. The tendency and belief of the masses in supernaturalism and mysticism find a good deal of expression in Indian literature, art, sculpture and Indian culture. The early paintings and sculpture contribute vastly to the rich tradition which turned into folklore gradually. The cave paintings of Ajanta and Elora and the Barhut Stupa relics proved it.

In this paper an attmpt is to be made to find out some common folk tales and fables in Buddhist literature in comparison to world literature.

❋

PB-21

Upekkhā : The Sublime Ethical Ideal

Dr. Baidyanath Labh, Jammu

The Pali term 'Upekkhā' is not merely a word, but indeed a 'concept' --a sense of equanimity, a feeling of sameness in favourable and unfavourable situations, an attitude to be cool and equal in success and failure. It is one of the four sublime attitudes (Brhmavihāra), rather the last one, the first three being---friendliness or the unconditioned, unbounded love and good-will (mettā); compassion

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(karuṇā); and selfless joy in others' prosperity (muditā). Out of these four, mettā karuṇā, are outward, whereas muditā and upekkhā are inward. However, each of these is inter-related with the other. Unbounded and unconditioned love cannot be possible without feeling of compassion, cannot function without equanimity and cannot get completed without the sense of joy or pleasure to see others happy. similarly, whenever, a practitioner of brahmavihāra (specially that of compassion), acts upon compassion, a desire to make others happy arises in his mind without any sense of return or reward and so on. Further, muditā teaches how to become selfless and wishful to others' well-being and happiness. Selfless wish to take out painful ones from the state of pain, make them happy, leads ultimate to equanimity.

Equanimity may be considered as a state of selflessness, desirelessness, mental stability, detached state of mind (anāsakti) etc.

The proposed paper will discuss in details the meaning of upekkhā and the process as well as fruits of its attainment, which ultimately leads to the achievement of Supreme bliss nibbāna.

*

PB-22

Jammu in Ancient Buddhist Literature

By Lalit Gupta, Jammu

The region of Jammu located between Kashmir (ancient Kashmir Mandala) and plains of Punjab (Madra desh) due to its strategic position been a meeting point of many ancient trade routes and was a kind of a cultural highway which witnessed great movement as well as assimilation of ideas, techniques, social values and strands since hoary past.

The archaeological evidences such as Paleolithic stone tools, Indus Valley artifacts, the architectural remains and sculptures such as Buddhist viharas, stuptas, Shaiva and Vaishnava temples point towards a cultural continuum in Jammu region since the earliest times.

Due to the lack of systematic and comprehensive studies of the material culture of Jammu region there are still unexplained areas in the cultural history of

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

the area, especially with reference to the chronological development of the religio-social and cultural ideas, beliefs and practices from the time of first urbanization.

The scholars have so far relied upon references to the Jammu region found mainly in the large corpus of Sanskrit literature and stray mentions in Greek, Roman histories, memoirs, or Persian sources. But the vast body of Buddhist literature has by and large remained untapped to reconstruct the historiography of Jammu region.

The present papers seek to bring together possible information in ancient Buddhist literature about Jammu region's nomenclature, changing geo-political boundaries, socio-cultural conditions and spread of Dhamma from pre-Ashokan times till early medieval period.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 7

PRAKRIT AND JAINISM

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 7

PRAKRIT AND JAINISM

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PJ-1

आयरिय-महापण्णस्स थोत्तेसु भत्ती

समानी संगीत प्रश्न, लाडनूँ

जइण-गंथेषु भत्ती

णाणं, भत्ती, कम्म य अहवा कम्म, णाणं, उवासणाए पुण्णत्तं जइ जइण-दरिसणस्स दिट्ठीए पासिज्जइ ता इमे सम्मं—दंसणस्स, सम्मंणाणस्स तह सम्मं चारित्तस्स रूवेणं विज्जमाणा संति, अहव एरिसं कहिउं सक्केज्ज—रयणतीसु पढमं सम्मं दंसणं भत्तीए चेअ अवरं णामं अत्थि। सव्वत्थसिद्धिकारेण भाव-विसुद्धाए जुत्तं अणुरागं भत्ती कहीअ—'भावविशुद्धियुक्त अनुरागो भक्ति:'—भावाणं विसुद्धीए सह अणुरायभावं भत्ती अत्थि।

जइण-धम्मे भत्तीए वियासक्कमस्स रूवं पिह-विहाए उवलद्धं होइ, तम्मि भत्तीए सरूवं विविहरूवेषु वण्णणं अत्थि—तं अत्थि-थोत्त-गंथा। जत्थ भत्त-भत्ती-भयवं-इमाणि तिण्णि-पयाणि वित्थरेण संवुज्भावेइज्जइ।

आयरिय-महापण्णाणं थोत्तेषु भत्तीए तत्ताणि

थोत्ते भत्तीए य साहण-सुद्धभावस्स सम्बन्धं अत्थि। थोत्तेण भत्ती पुण्णा हवेज्ज। भत्ती-रसेण पडिपुण्णं भवणे अणायासं एव तस्स वाणी फुडं भविऊण लग्गइ तह सा वाणी थोत्त-सण्णाए अहिट्ठिआ होइ। जया अहं आयरिय-महापण्णाणं थोत्ताणं अज्झयणं करीअ तया तत्थ पासीअ, आयरिय-महापण्णाणं थोत्तेषु णाणा तत्ता पयडा भवंति-जह 1. अप्पसमप्पणं 2. सद्धा 3. अहं-विलयं 4. अप्पणिवेदणं 5. एगप्पयतं 6. एगलीणया 7. उवालम्भ-भावं 8. जायणा-भावं 9. गुणाणुरायं 10. लहु-भावं 11. तसारिसोवलद्धि 12. भवरोगोवरया 13. उजुभावं 14. सहज-अन्त-पेरणा 15. इट्ठं पइ पुण्ण-वीसासो 16. सरलया तह सहजया 17. मांगलिय-चेयणादि।

*

PJ-2

आयारङ्गम्मि महावीरो

रामभरोस पाण्डेय, वाराणसी

जइणधम्मस्स सव्वपाइणाणमद्धभागहीभासाणिबद्धाणं अंगपविट्ठागमगंथाणं आयारंगो पढमट्ठाण-गणविणज्जो अत्थि। सहजभावभासाचंगत्तणेहिं चंगो पढमो आगमो जइणधम्मस्स सिद्धंतववहाररूप

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उहअविहतत्तस्स संगोपंगेण वण्णणं करेइ। आयारंगस्स पदमसुयकखन्धस्स नवमज्झययणम्मि भगवस्स महावीरस्स जीवणचरिअं जइणधम्मस्स ववहाररूवेण अइसुट्ठसोहग्गसालीए सहजाणुरणणज्झुणीजुत्तमासाए वण्णिअमत्थि। वेसालीजणवअस्स राअकुमारो संसारस्स घोरत्तणं दुक्खत्तणं विणसित्तणं अ णिमालेऊण पव्वज्जाए अहिणिक्कमणं करिअ अचेलओ जाओ।

समण्णे भगवो महावीरो अहिंसा-सच्च-बंभचेर-अपरिग्गहरूवाणं महव्वयाण जीवणपेरन्तं पालनं करिऊण परमसुहट्ठाणं सुहंसुहेण पाविअ। अस्सि सोह पत्तम्मि भगवस्स महावीरस्स जीवणव्वयं समिक्ख रूवेण वण्णिअमत्थि।

*

PJ-3

रूवपुत्तलिआ कप्पूरमंजरी

डॉ. हरिशंकर पाण्डेय, वाराणसी

चाउहाणकुलमउलिमालिआए जुवइजणजोग्गसव्वकलाजुत्ताए अवन्तीसुन्दरीए अहरोट्ठपाणरसिओ निब्भअराअस्स उवज्झाओ कइकुलसेहरो महाकइरा असेहरो सक्कअपाइअकव्वकला विज्जाआसक्स दीवणोज्जलो दीवो नक्खतो अ अत्थि। बालरामाअण-बालभारह-कव्वमीमांसा-विद्धसालमंजिआ-कप्पूरमंजरी-आइविविहगुणगणालं किआणं कव्व-णाडअ-गंथाणं रअणाआरो सारस्सअ-पडिहागुण्ण विहूसिओ बालक-इसिरिराअसेहरो णिएहिं हरिणङ्कपाडिसिद्धिसमत्थेहिं निक्कलंकेहिं गुणेहिं तिहुअणं पि धवलेंति। ताण रअणाण गंथाण मज्झे सव्वसोण्डीरसोहगुणसंवण्णो कप्पूरमंजरी ति सट्टओ सव्वरसिअछइल्लेहिं रसपाणणिउणेहिं सहिअअहि अएहिं समत्थिओ समब्भच्चिओ अ। चण्डवालणिवइ-कप्पूरमंजरीणं पेमकहा वण्णिआ अत्थि। कहइ पारिपस्सिओ—

चंडवालधरणीहरिणं को चक्कवट्टिपअताहणिमित्तं।
एत्थसट्टअवरे रससोत्ते कुंतलाहिवसुअं परिणेइ॥ कप्पूर० 1.12॥

धीरललिअणाअगगुणहिं संवण्णो णिवइ चण्डवालो अइसोहासंवण्णो जुवइजणमण माहेओ पुरुसोऽत्थि। तइअ जवणिअन्तरम्मि णिवं णायगं वा अवलोइऊण नाइगा तस्स सोहारमणिज्जत्तणस्स वण्णनं करइ। सा मम्पइ—अम्मो किं एसो सहसा गअणंणादो अवश्ण्णो पुण्णिमाहरिणंको? किं वा तुट्ठेण नीलकंठेण णिअदेहं लंभिदो मणोहओ? कप्पूरमंजरी मुद्धा जुवइजणसअलजोव्वणसंवण्णा अइसोहासमुदएण सव्वंगसुंदरंगी।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PJ-4

जैन धर्म और हिन्दू धर्म

डॉ. पी.सी. जैन, जयपुर

भारतीय धर्मों में जैन और हिन्दू ऐसे धर्म हैं जिनका पारस्परिक सम्बन्ध बहुत गहरा रहा है और इन्होंने एक दूसरे से बहुत कुछ लिया-दिया है। इनके अनुयायी पड़ोसी की भाँति रहे हैं। इस नाते यद्यपि अतीत में इन्होंने एक दूसरे पर प्रहार भी किये और सहे, फिर भी एक की दूसरे पर छाप पड़े बिना नहीं रही। सेमिनार में विस्तार से इस विषय पर ही विचार प्रस्तुत करूँगा।

यद्यपि इन धर्मों में अनेक विषमतायें हैं। जैन धर्म एक पृथक, स्वतंत्र धर्म है। भारतीय इतिहास के क्षेत्र में हुए अधुनातन अन्वेषणों ने इन धर्मों की प्राचीनता को संपुष्ट किया है जिसका विवेचन भी विद्वानों के समक्ष इस सेमिनार में किया जायेगा। जैन धर्म समय-समय पर होने वाले चौबीस तीर्थंकरों द्वारा प्रवर्तित, अनादि-अनन्त, नित्य, शाश्वत, स्वतंत्र पृथक् धर्म है। इसका धर्म शास्त्र, तत्त्वशास्त्र, नीतिशास्त्र, धार्मिक क्रिया पद्धति आदि हिन्दू धर्म व अन्य सभी धर्मों से भिन्न व मौलिक है। हिन्दू धर्म और जैन धर्म के सिद्धान्त में बहुत कुछ समानताओं के साथ अनेक विषमतायें भी हैं। जैन वेदों को नहीं मानते, स्मृति और ब्राह्मणों को भी नहीं मानते जो हिन्दू धर्म के प्राणभूत ग्रंथ हैं। जैन धर्म के सिद्धान्त और सारणी निश्चित और स्पष्ट हैं। जो आगमों पर आधारित हैं। हिन्दू ईश्वर को जगत् का कर्ता, धर्ता और हर्ता मानते हैं जबकि जैन इसे अनादि और अनन्त। हिन्दू सनातन धर्म को ईश्वर की प्रेरणा से ब्रह्मा द्वारा प्रकट किया हुआ मानते हैं जबकि जैनों के अनुसार युग-युग में तीर्थंकर होते हैं जो अपने अनुभवों के आधार पर शाश्वत सत्य धर्म का जनता को उपदेश देते हैं। हिन्दुओं के अनुसार देवता भी मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं जबकि जैनों के अनुसार मुक्ति केवल मनुष्य भव द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। हिन्दू कर्म को अदृष्ट सत्ता के रूप में स्वीकारते हैं।

*

PJ-5

पुद्गल परमाणु का वैज्ञानिक विश्लेषण

डॉ. श्रीमती कृष्णा जैन, ग्वालियर (मध्यप्रदेश)

जो आदि, मध्य और अंत से रहित है, निर्विभाग है, अतीन्द्रिय है और मूर्त होने पर भी अप्रदेश-अद्वितीयादिक प्रदेशों से रहित है उसे परमाणु कहते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

परमाणु पुद्गल द्रव्य की परम सूक्ष्म, अन्तिम, अखण्ड इकाई है। इस इकाई रूप में परमाणु अन्य द्रव्यों के माप का साधन माना जाता है। एक परमाणु जितने स्थान को रोकता है उसे प्रदेश कहते हैं। परमाणु मिल कर स्कंध रूप धारण करते हैं। यदि एक पुद्गल का माप निकालना हो तो परमाणु से मापने पर वह असंख्यात प्रदेशी होगा। इसी तरह अन्य अस्तिकाय भी परमाणु से मापे जा सकते हैं। इस माप से धर्म, अधर्म, आकाश और जीव क्रमशः असंख्यात, गसंख्यात और अनन्त प्रदेशी हैं। ''पुद्गल'' शब्द जैन-धर्म का पारिभाषिक शब्द है। यह शब्द बौद्ध-साहित्य में भी व्यवहृत हुआ है लेकिन सर्वथा भिन्नार्थ में। जैन धर्म का ''पुद्गल'' आधुनिक विज्ञान के ''जड़ पदार्थ'' शब्द का समवाची है। परमाणु चार तरह का कहा गया है।

*

PJ-6

विश्व शान्ति में अहिंसा का योगदान

डॉ. रजनीश शुक्ल, नई दिल्ली

आर्याव्रत के महामानव भगवान् महावीर ने अहिंसा की परिभाषा इस प्रकार की है **''प्राणी मात्र के प्रति संयम रखना ही अहिंसा है।''** गीता में कृष्ण की वाणी इस प्रकार प्रवाहित हुई है कि ज्ञानी पुरुष ईश्वर को सर्वत्र समान रूप से व्यापक हुआ देखकर हिंसा की प्रवृति नहीं करता, क्योंकि वह जानता है कि हिंसा करना खुद अपनी ही घात करने के बराबर है और इस प्रकार हृदय के शुद्ध और पूर्ण रूप से विकसित होने पर वह उत्तम गति को प्राप्त करता है। पातंजल योग के भाष्यकार ने कहा है कि 'सर्व प्रकार से सर्वकाल में सर्वप्राणियों के साथ अभिद्रोह न करना अहिंसा है।' अहिंसा शब्द से ही हिंसा का अपने आप निरोध हो जाता है।

आचार्य हरिभद्र के विचारों में तो आत्मा ही अहिंसा है और आत्मा ही हिंसा है अप्रमत्त आत्मा अहिंसक है और प्रमादयुक्त जो आत्मा है वह हिंसक है। प्रमाद में हिंसा का अंधकार है किन्तु अप्रमाद में अहिंसा का जगमगाता प्रकाश है। यही बात आचार्य उमास्वामि के तत्त्वार्थ सूत्र में गूँज रही है—'प्रमत्त योग से होने वाला प्राणबद्ध हिंसा है।' स्वामी संमतभद्र ने अहिंसा का महात्म्य बतलाते हुए कहा है कि **''अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमम्''** गाँधी जी ने अहिंसा की व्याख्या करते हुए लिखा है—''अहिंसा के माने सूक्ष्म जन्तुओं से लेकर मनुष्य तक सभी जीवो के प्रति समभाव।''

आज के युग में मनीषी पंचव्रतों का जहाँ प्रश्न उपस्थित करते हैं वहाँ महावीर और बुद्ध का नाम सर्वप्रथम उल्लेख करते हैं किन्तु तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ व सांस्कृतिक इतिहास

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

को गंभीरता से देखा जाये तो यह स्पष्ट हुए बिना न रहेगा कि महात्मा बुद्ध के पंचशील तथा भगवान् महावीर की अहिंसामूलक विचार कहीं अधिक सफल व व्यवहारिक रहा।

❋

PJ-7

सुसढ कहा—एक समीक्षात्मक अध्ययन

हेमवती नन्दन शर्मा, लाडनूँ, जिला—नागौर (राज.)

प्राकृत भाषा में रचित सुसढ कहा पाण्डुलिपि कथा साहित्य की एक उत्कृष्ट कोटी की रचना है। इस कृति की पाँच ग्रंथ-भण्डारों (लाडनूँ, जोधपुर, उज्जैन, अहमदाबाद और कोबा) में कुल छः प्रतियाँ सुरक्षित है। लाडनूँ से प्राप्त प्रति में इसके रचयिता देवेन्द्रसूरी के नाम का उल्लेख किया गया है। समय लगभग 13वीं शताब्दी है।

देवेन्द्रसूरिकृत सुसढकहा प्राकृत कथाओं का एक प्रमुख कथा ग्रंथ है। इस कथा का आधार महानिशीथ नामक आगम ग्रंथ है। आगमों पर लिखे व्याख्या एवं टीका साहित्य के अन्तर्गत महानिशीथ की अन्तिम चूला में सुसढ की कथा वर्णित है। आचारशास्त्र की दृष्टि से यतनाविषयक विषयवस्तु को व्याख्यायित करने के लिए दृष्टांत रूप मे देवेन्द्रसूरि ने इस कृति में राजा की आज्ञा भंग करने से इस भव में और आगामी भवों में प्राप्त दु:खों को दूर करने के लिए सुसढ द्वारा पाले गये व्रतों का एवं उसके फलों का विवेचन किया गया है। प्राकृत भाषा में रचित इस ग्रंथ में 518 अथवा 519 गाथाएँ प्राप्त होती है। विस्तृत समीक्षा शोधालेख में की जायेगी।

❋

PJ-8

जैन धर्म में तप

नन्द कुमार तिवारी

विश्व के प्राय: सभी धर्मों में तप का महत्त्वपूर्ण स्थान है। लेकिन जैन धर्म में "तप" को विशिष्टता हासिल है। इस धर्म के अनुसार "तप" आत्मशोधन तथा कर्मक्षय की एक अखण्ड प्रक्रिया है। इस धर्म में कहा गया है कि "बाह्य और आभ्यान्तर तप के दो विभाग हैं।" अनशन अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, कायक्लेश, विविक्तश्यासन वाह्य तप तथा प्रायश्चित, विनयवैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान, व्युत्सर्ग ये आभ्यान्तर तप हैं। इस धर्म में कहा गया है कि "तप" से युक्त व्यक्ति

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विधिपूर्वक अपने कर्मों का क्षयकर निर्वाण प्राप्त करता है। क्योंकि ''तप का लक्ष्य रागद्वेषादि विकारों को हमेशा के लिए हटाकर आत्मशोधन है न कि देहदमना।''

*

PJ-9

हेमचंद्राचार्यरचित त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित में निरुपित जैन रामायण-एक अवलोकन

डॉ० रूपा चावड़ा, गुजरात

प्रस्तुत लेख में जैन रामकथा-आधारस्त्रोत, स्वरूप, विशेषताएँ, विशेषत: आचार्य हेमचंद्र रचित महान् ग्रन्थ त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित अन्तर्गत विस्तृत रामकथा, जो जैन रामायण के रूप में प्रसिद्ध है, उसको केन्द्र में रखकर समीक्षा की गई है। आचार्यश्री से पूर्व विमलसूरिरचित पदमचरिय व अन्य ग्रन्थों में रामकथा मिलती है। इन कथाओं त्रि.श.पु.च. अन्तर्गत रामकथा पर प्रभाव, हेमचंद्राचार्य का मौलिक प्रदान, कथा में परिवर्तन, विशेषतायें व परवर्ती ग्रन्थों पर हेमचंद्र रचित रामकथा का प्रभाव दिखाने का प्रयत्न किया गया है।

*

PJ-10

समराइच्च कहा एवं कुवलयमाला कहा में वर्णित सामाजिक एवं आर्थिक जीवन

प्रो० दुधनाथ चौधरी, बिहार

''समराइच्च कहा तथा कुवलयमाला'' में वर्णित विभिन्न धार्मिक आचार्यों, तपस्वियों, प्रवर्तकों मठाधीशों, दार्शनिक मतों, देवी देवताओं एवं तीर्थ यात्रियों के संबंध में 'उद्योत्तनसूरि' विरचित ''कुवलयमाला'' कहा में भी जो विवरण प्राप्त होता है उससे यह स्पष्ट होता है कि जैनधर्म में भी समस्त धर्मों के सारभूत तत्वों का समावेश किया गया है। ''समराइच्च कहा'' और ''कुवलयमाला'' का साहित्यिक स्वरूप भौगोलिक विवरण, सामाजिक जीवन, आर्थिक जीवन शिक्षा-कला धार्मिक जीवन इत्यादि का विस्तृत विवेचन करना ही समालोचनात्मक अध्ययन हो सकता है। उपरोक्त दोनों कथाओं में मानव की सामाजिक जीवन एवं आर्थिक जीवन की चर्चा बड़े ही मार्मिक ढ़ंग से किया गया है। उसमें ग्रामीण व्यवस्था से लेकर नगरीय व्यवस्था तक की जीवन शैली के बारे में चर्चा की गयी है। उद्योत्तनसूरी के पूर्व प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था का रूप वैदिक मान्यताओं को अनुरूप

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

था। गुप्त युग में सामाजिक वातावरण इस प्रकार था कि सिद्धांततः कर्मणा व्यवस्था को मानने वाले जैन आचार्य भी श्रौत-स्मार्त मान्यताओं से प्रभावित होने लगे थे। जहाँ सिंहनंदी (पूर्वार्द्ध 7वीं अनुमानित) ने वर्णचतुष्टय को सिद्धांत रूप मे स्वीकार नहीं किया, परन्तु व्यवहार के लिए शिष्ट लोगों के द्वारा वर्ण चतुष्टया बनाया गया है। इस बात का वे विरोध नहीं कर सके। रविषेणाचार्य (676 ई०) ने समाज में प्रचलित वर्ण व्यवस्था को कर्म के आधार पर ऋषभदेव द्वारा किया गया विभाजन स्वीकार किया, जबकि जिनसेनसूरी (783 ई०) ने जन्मगत वर्ण व्यवस्था को भी जैनीकरण कर के स्वीकार कर लिया। इसलिए वैदिक प्रभाव के कारण स्वाभाविक है कि उद्योत्तनीसूरी को भी समाज में प्रचलित वर्ण व्यवस्था से प्रभावित होना पड़ा हो, परन्तु उनके हृदय में यह बात अवश्य चुभ रही थी कि जन्मगत वर्ण व्यवस्था को किसी भी तरह समाज से मिटाया जाय, अतः उन्होंने ऐसे कथानक को चुना जिसमें सभी प्रमुख जातियों के पात्र सम्मिलित हों तथा सभी को अपने कर्मों का फल समान रूप से भोगना पड़े तथा अपने सामाजिक एवं आर्थिक जीवन शैली में उसके अनुरूप ही बदलाव लाया जा सके।

❋

PJ-11

श्रमण परम्परा में कषायहुड का स्थान

गोपाल प्रसाद, बिहार

'कषायहुड' प्राकृत में निबद्ध जैन सिद्धांत का प्राचीन ग्रंथ है। कषाय व्यक्ति के मनोभावों का एक संपूर्ण विज्ञान है। इसके अंतर्गत व्यक्ति का विश्लेषण उसके मनोगत भावों की जटिलताओं का सूक्ष्मतम परिदृश्य में किया जाता है। कषाय के मूलतः चार भेद हैं-क्रोध, मान, माया, एवं लोभ इनकी प्रवृति राग-द्वेष के रूप में होती है। सामान्यतः लोग ब्राह्य क्रियाकाण्डों में धर्म मानते हैं किन्तु वास्तविक धर्म उससे भिन्न है। धर्म न पढ़ने से होता है और न शास्त्र रखने से, अपितु राग द्वेष इन दो का त्यागकर निजात्मा में निवाश करना धर्म है। जन श्रावक की आत्मशक्ति बढ़ जाती है और राग द्वेषादि विकारों पर क्रोधादि कषायों पर उसका नियंत्रण बढ़ने लगता है तब वह धीरे-धीरे-एक-एक श्रेणी बढ़कर श्रमण-पथ पर विचरने लगता है। बारह व्रतों का धीरे-धीरे निरतिचार पालन करते हुए और एकादश श्रेणियों को उत्तीर्ण कर श्रावक दशा में पहुँचता है, वस्तुतः देखा जाय तो श्रावकधर्म, श्रमणधर्म का आधार या पूरक है। यह उल्लेखनीय बात है कि जैनधर्म का संपूर्ण आचार आत्मलक्षी है और श्रावक तथा श्रमण के लिए व्यवस्थित क्रमिक विकासोन्मुख ऊर्ध्वगामी संहिता उपलब्ध है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि श्रमण परंपरा में कषायपाहुड का विषय-वस्तु विशेष का स्पष्ट विवेचक आगमांश है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

❋

PJ-12

जैन दर्शन में जीव और कर्म का संबंध

डॉ० कमल कुमार जैन, पुणे

जैनदर्शन सृष्टि का कर्ता-धर्ता कोई ईश्वर को नहीं मानता। यह सृष्टि अनादि और अनन्त है। इसे न तो किसी ने बनाया है और न ही कोई इसका विनाश करता है। परिणमन वस्तु (द्रव्य) का स्वभाव है। छह द्रव्यों में से जीव और पुद्गल (कर्म) को संयोग-वियोग सदा चलता रहता है। इसी संयोग-वियोग का नाम संसार है। यथा-खदान से स्वर्ण मलिन मिट्टी लिए हुए ही निकलता है, उसी तरह संसार में अनादि काल से जीव अशुद्ध अवस्था के कारण चतुर्गतियों में भ्रमण करते रहते हैं। यदि जीव को प्रारंभ से ही शुद्ध मान लिया जाये तो उसकी अशुद्धता संभव नहीं है। यदि शुद्ध जीव भी बंधन करने लगे तो कर्मबंध को काटने का उपदेश और उसका आचरण व्यर्थ हो जावेगा। अतः जीव का प्रारम्भिक अनादि और अशुद्ध ही है।

उमास्वामी ने कहा है-**सकषायत्वात् जीवः कर्मणोयोग्यान् पुद्गलानादते स बन्धः**। सर्वार्थसिद्धिकार ने इसका आशय निम्नप्रकार दिया है-

कषाय के साथ रहने से सकषाय कहलाता है। सकषाय के भाव को सकषायात्व कहते हैं। चह हेतुनिर्देश है। यह बतलाया है कि जैसे उदर की पाचक शक्ति के अनुरूप आहार का ग्रहण होता है, उसी प्रकार तीव्र और मन्द अथवा मध्यम जैसा कषायभाव होता है उसी के अनुसार कर्मों में स्थितिबंध और अनुभागबंध होता है।

जीव और पुद्गल दोनों अनादि हैं। दोनों का संबंध भी अनादि है। जीव अशुद्ध रागादि भावों का कर्म कारण है और जीव के अशुद्ध रागादि भाव उस कर्म के कारण हैं।

❋

PJ-13

महाकवि पुष्पदन्त रचित णायकुमार चरिउ

डॉ० रामेश्वर शर्मा, गया

महाकवि पुष्पदन्त अपभ्रंश साहित्य के उद्भट्ट विद्वान थे। इनकी रचनाओं में भारतीय प्राचीन साहित्य भंडार की प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। महाकवि पुष्पदन्त की 'णायकुमार चरउि' अपभ्रंश भाषा रचित काव्य है। अपभ्रंश भाषा का साधारण अर्थ स्पष्ट है। अपभ्रंश अर्थात् भ्रष्ट, च्युत, स्खलित, विकृत

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथवा अशुद्ध। भाषा के सामान्य मानदण्ड बोलियों के अनेक विकृत शब्दरूपों से ही स्थिर होता है, किन्तु उसके साथ ही यह भी निश्चित है कि लोकव्यवहार में उस सामान्य मान के भी विकार होते रहते हैं। संभव है, प्रतिमान पर दृष्टि रखने वाले विद्वानों ने ऐसे विकारों को अपभ्रंश कहने की परिपाटी बना दी हो। महाकवि पुष्पदन्त अपने लिए अभिमान मेरू, काव्यरत्नरत्नाकर, कविकुल तिलक, सरस्वती निलय, उत्तमवाण विलास आदि जिन विशेषणों का प्रयोग किया है वे उनके स्वभाव, व्यक्तित्व एवं असाधारण प्रतिभा को देखते हुए अत्यन्त उपयुक्त प्रतीत होते हैं। महाकवि पुष्पदन्त संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं में रचना करने में सक्षम थे, फिर भी तात्कालिक लोकभाषा को महागौरव प्रदान करने के लिए अपभ्रंश भाषा को ही उन्होंने अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया जिसके फलस्वरूप अपभ्रंश भाषा को अभिव्यक्ति का समर्थ माध्यम बनाने में काफी सहयोग मिला।

महाकवि पुष्पदन्त रचित 'णायकुमार चरउि' एक चरित काव्य हैं। चरित काव्य, भवितव्यता की कोटि में परिगणित हैं। वे मानाभूत काव्य नहीं। भूत से अभिप्राय विचित्त और कुतूहलवर्धक घटनाओं के श्रृंखला क्रम से है। केवल ज्ञान होना एक घटना है, किसी से कुछ हो जाना क्रिया है। चरित काव्य क्रिया नहीं बल्कि कर्म का प्रबन्ध है। कर्म इच्छा शक्ति के चलते होता है। यहि कारण है कि चरित काव्य का नायक मुख्य पुरुषार्थ को प्राप्त करता है।

❋

PJ-14

भारतीय संस्कृति के विकास में जैन-धर्म का योगदान

डॉ० सन्तकुमार मिश्र, हापुड़ गाजियाबाद

भारतीय संस्कृति के विकास में जिन अनेक तत्त्वों ने योगदान दिया है, उनमें जैन-धर्म महत्त्वपूर्ण माना जाता है। प्रस्तुत शोध-पत्र में इसी तथ्य की विवेचना का प्रयास किया गया है। यह सामान्य धारणा है कि ब्राह्मण धर्म के विरुद्ध असन्तोष की भावनाएँ फैल जाने के कारण 'जैन व बोद्ध' धर्म का उदय हुआ। वस्तुतः जैन धर्म का उदय महावीर के जन्म से बहुत पहले हो चुका था। उनसे पूर्व तेईस तीर्थांकर उत्पन्न हो चुके थे। प्रथम तीर्थांकर ऋषभदेव को शिव का पर्यायवाची तथा मोहनजोदड़ो का योगीश्वर माना जाता है। इतना ही नहीं जैन-धर्म में ईश्वर की सत्ता नहीं मानी जाती, इसके बावजूद व्यावहारिक रूप में ईश्वर के स्थान पर तीर्थांकरो की संकल्पना अभिहित की गई है। तीर्थांकर उन्हें माना गया है जो स्वयं भव-सागर से पार उतरें तथा अन्यों को उतरने का मार्ग बतायें। भारतीय संस्कृति के विकास में जैन धर्म का अत्यन्त योगदान रहा है यह तथ्य संस्कृति के आधारभूत तत्त्वों के सन्दर्भ में विवेचित किया जा सकता है-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

समाज के बिना 'संस्कृति' की कल्पना नहीं की जा सकती। भारतीय समाज में जैन धर्म के सिद्धान्त कितने प्रासंगिक हैं, इसका अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि जैन धर्म भारतीय समाज के अन्य धर्मों से प्राचीनतम होते हुए भा आज तक अक्षुण्व एवं उपादेय बना हुआ है।

सामाजिक जीवन से सहयोग का भाव द्योतित होता है। यह सहयोग की भावना हमें साथ-साथ कार्य करने तथा आत्मनियंत्रण के लिए प्रेरित करती है। इस रूप में जैन धर्म का 'स्याद्वाद' सिद्धान्त कितना प्रासंगिक प्रतीत होता है जिसमें समन्वय का भाव निहित है तथा 'पञ्चमहाव्रत' को आत्मनियंत्रण का मूलाधार माना जा सकता है।

*

PJ-15

जैन दर्शन का कर्मवाद

डॉ० विश्वनाथ चौधरी, भोजपूर बिहार

दार्शनिक वादों की दुनिया में कर्मवाद का भी अपना एक विशिष्ट महत्त्व है। परन्तु जैनधर्म की सैद्धांतिक विचारधारा में तो कर्मवाद एक विशेष स्थान रहा है, बल्कि यह कहना, अधिक उपयुक्त होगा कि कर्मवाद के मर्म को जाने बिना जैनधर्म एवं संस्कृति का यथार्थ ज्ञान असंभव है क्योंकि जैन धर्म एवं संस्कृति का भव्य महल पूर्णतः कर्मवाद की गहरी एवं सुदृढ़ नींव पर टिका हुआ है।

यद्यपि न्याय, वेदान्त आदि वैदिक दर्शनों तथा उत्तरकालीन पौराणिक ग्रन्थों में ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता और कर्मफल दाता के रूप में ईश्वर की कल्पना ही नहीं करता। जैनदर्शन मानता है कि जीव जैसे कर्म करने में स्वतंत्र है, वैसे ही उसके फल भोगने में भी स्वतंत्र है। वैसे ही जीव मकड़ी की तरह स्वयं कर्म जाल बनाता है और खुद ही वह उसमें फंस जाता है।

जैनधर्म में कर्मबंध के मूल दो कारण बतलाये गये हैं-(1) राग और (2) द्वेष। भगवान् महावीर ने अपने अंतिम उपदेश में कर्मबंध के कारण पर प्रकाश डाला है और बतलाया है कि-

"रागो च दोसो विय करम-वीयं।"

अर्थात् राग और द्वेष ही कर्म के बीज हैं, मूल कारण हैं।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PJ-16

अहिंसा-सिद्धांत और व्यवहार

डॉ० (श्रीमती) मंजुबाला, मुजफ्फरपुर, बिहार

जैनधर्म में अहिंसा को महाव्रत माना गया है। इसके दो पहलू हैं-'नहीं मारना' यह पहला पहलू है। इसका दूसरा पहलू-'मैत्री, करुणा, दया और सेवा' है। यदि हम अहिंसा के नकरात्मक पहलू पर ही सोचें तो यह अहिंसा की अधूरी समझ होगी। अहिंसा की सम्पूर्ण साधना के लिए प्राणीमात्र के साथ मैत्री एवं करूणा का संबंध रखना, सेवाभाव करना, उसे कष्टों से मुक्ति दिलाना इत्यादि सकरात्मक पक्ष पर भी समुचित विचार करना होगा। अनुकम्पा, दान, सेवा आदि भी अहिंसा के ही रूप हैं जो प्रवृत्तिमूलक हैं। इस प्रकार इन दोनों पहलुओं को समझे बिना अहिंसा की व्याख्या अपूर्ण है।

आज के परिप्रेक्ष्य में अन्याय को सहते रहना अहिंसा नहीं, अन्याय और अत्याचार को बढ़ावा देना है। यह अहिंसा कायरता एवं दबूपन का मार्ग नहीं है। अहिंसा मानव से अन्याय-अत्याचार के प्रतिकार का न्यायोचित अधिकार नहीं छीनती है बल्कि वह यह कहती है कि प्रतिकार करो, परन्तु आवेश पर नियंत्रण रखो। प्रतिकार करते हुए भी विरोधी के मन में सद्भावना रखनी चाहिए, वैर भावना नहीं। कहा गया है कि--''अहिंसा प्रतिष्ठायां तस्सन्निधौवैर त्याग:।''

*

PJ-17

जैन शास्त्रों में वर्णित ध्यान की मनोवैज्ञानिक प्रासंगिकता

डॉ० रुसी जैन, होशियारपुर

जैन दर्शन में मोक्ष को ही जीव का लक्ष्य माना गया है परन्तु कर्मबन्ध इस मोक्ष की प्राप्ति में बाधक तत्त्व है। इसी मोक्ष एवं कर्मबन्ध के परिप्रेक्ष्य में जैन-साहित्य में ध्यान का भी विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है।

जैन-दर्शन में मोक्ष की प्राप्ति के बाधक एवं साधक रूपों के आधार पर ध्यान के चार भेदों का वर्णन किया गया है। यह चार भेद क्रमश: आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान अथवा शुक्लध्यान हैं तथा कर्मबन्ध का कारण हैं, अत: सर्वथा हेय हैं। अन्तिम दो ध्यान अर्थात् धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान सुध्यान हैं। यह दोनों ध्यान मोक्ष पक्ष में स्थित होने से हर प्रकार से ग्राह्य हैं। इन चारों के क्रमश: चार-चार पाद हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यदि इन चार प्रकार के ध्यानों पर आत्मतत्त्व तथा मोक्ष के परिप्रेक्ष्य में विचार न करके केवल आधुनिक मनोविज्ञान एवं स्वास्थ्य विज्ञान की दृष्टि से भी विचार किया जाये तो स्पष्ट हो जाता है कि इन में से अपध्यान अथवा दुर्ध्यान कहे जाने वाले दो ध्यान नकारात्मक विचारों (Negative thoughts) के द्योतक हैं तथा अन्य दो ध्यान सकारात्मक विचारों (Positive thoughts) के द्योतक हैं। नकारात्म विचार व्यक्ति के मानस में उत्पन्न होकर उसके पाचन तन्त्र को भी दुष्प्रभावित करते हैं तथा इस प्रकार स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। अत: मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि से भी हेय हैं। जबकि सकारात्मक ध्यान व्यक्ति के लिये सफलता के सोपानों की रचना करते हैं, अत: ग्राह्य हैं।

*

PJ-18

अपभ्रंश साहित्य में पउम चरिउ का स्थान

डॉ० रमाकान्त प्रसाद श्रीवास्तव, पटना

अपभ्रंश साहित्य में सामान्य कथाओं पर काव्य रचना मिलती है। ये कथाएँ जन साधारण को जैन धर्म में दीक्षित करने के लिए या शिक्षित करने के लिए लिखी गई हैं। इन कथा ग्रन्थों में पौराणिक पात्रों तथा तीर्थंकरों के चरित्र मिलते हैं, परन्तु उनका मूल स्वरूप छोटी बड़ी अनेक अवांतर कथा कहना ही रहा है। इन कथा काव्यों का मूल विषय धार्मिक ही है, फिर भी इनमें कहानी जैसी रोचकता मिल जाती है। उदाहरण के लिए कवि स्वयंभू रचित पउमचरिउ या अमर कीर्त्ति द्वारा रचित षटकर्मोपदेश एवम् भविसयत्त कहा भी इसी प्रकार का ग्रंथ है।

*

PJ-19

प्राकृत कथा साहित्य में वाणिज्य एवं व्यापार

संगीता सिन्हा, पटना

प्राकृत कथा साहित्य बड़ा ही विशाल एवं बहुआयामी है इसके विराट शरीर के अन्तर्गत अनेक राजनीतिक, भगौलिक, आर्थिक, तथा वाणिज्य व्यवसाय से सम्बन्धित तथ्य सन्निहित हैं। इस बृहद् साहित्य पर अनेक शोधकार्य हुए हैं तथा वर्तमान में हो रहे हैं, किन्तु वाणिज्य से सम्बन्धित तथ्यों की ओर किसी भी व्यक्ति का ध्यान आज तक नहीं गया, जो वर्तमान परिवेश में अत्यन्त

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अपेक्षित है। प्राकृत साहित्य में वर्णित वाणिज्य एवं उसके प्रकार साधन आदि से की जा सकती है। वस्तुतः उसमें वर्णित वाणिज्य सम्बन्धी रीति-नीति पर विचार करने से वर्तमान की अनेक समस्याओं के समादान स्वतः प्राप्त हो सकते हैं। वणिकों के स्थल और जलमार्ग से की जाने वाली व्यवसायिक यात्राओं से व्यवसाय सम्बन्धी कुछ अपरिहार्य गुत्थियां तो सुलझेंगी हीं साथ ही साथ व्यवसायिक ढिकानों और गन्तव्य क्षेत्रों के आधुनिक नाम प्रकाश में आने से बृहद्त्तर भारत की सीमाओं का भी पता लग सकेगा।

*

PJ-20

जैन व्रत कथा साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन

माला सिन्हा, पटना

भारतीय विचार धारा के विकास में जैन व्रत कथा एवं साहित्य का बहुत बड़ा योगदान है। जैन श्रावको तथा साधुओं ने साहित्य के क्षेत्र में उन सभी साहित्यिक विधाओं तथा शैलियों को अपनाया है जो उनके समय में प्रचलित रही हों। अतः गद्य, पद्य एवं चम्पूकाव्य इन तीनों क्षेत्रों में जैन साहित्यकारों ने अपनी प्रतिभा और भावुकता का अच्छा परिचय दिया है। यह कहना अत्यन्त कठिन है कि इन लेखकों की गति किस क्षेत्र में अधिक रही है क्योंकि उनकी साहित्यिक गति का निर्णय किसी विधा के परिणाम से नहीं किया जा सकता। मानव जीवन को सुचारु रूप एवं अनुशासित ढंग से चलाने के लिए समाज में उनके व्यवस्थाओं का निर्माण कार्य अनादिकाल से चला आ रहा है। किन्तु जब यही व्यवस्था विस्तृत होकर जीवन के विकास के गति को अवरुद्ध कर अपने लोहे के शिकंजों में जकड़ने लगती है तो मानव मन विक्षुप्त हो उठता है। सम्भवतः उन्हीं विक्षुब्ध मन को जोड़ने के लिए धर्मावलम्बियों ने, विद्वानों ने व्रतों के महत्ता को अपनाना। व्रत पालन का मार्ग सरल है, इसी कारण इसमें कुछ सामान्य लोकव्यवहार सम्मिलित हो गये।

*

PJ-21

''पं. आशाधर रचित धर्मामृत सागार में जैन धर्म के आस्तिक आयाम''

डॉ. अलका बागला, झालावाड़

मानवता के परचम को लहराने वाले नरपुंगव पं. आशाधर का जीवन काल विक्रम संवत् 1300 वीं शताब्दी है, ये बघेरवाल वंशी एवं मण्डलकुर्ग (मेवाड़) निवासी थे। ये संस्कृत के मूर्धन्य

CC-0. JK Jain Siddhanta Bhawan Academy. Digitized by eGangotri Foundation USA

साहित्यकारों में प्रथम हस्ताक्षर रहे हैं। जैन सिद्धान्तों का अक्षरशः पालन न करते हुए उन्हें समयानुकूल सरल बनाकर गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी उनका पालन कर धर्माचरण किया जा सकता है। इस विचार को इन्होंने प्रतिपादित किया है, इनकी धर्मामृत सागार एक सनातन कृति है जो सदा सर्वदा न केवल भारत वर्ष का अपितु सम्पूर्ण विश्व धर्म का मार्गदर्शाती है।

आस्तिकता विश्वास है, चिन्तन नहीं। मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही आस्तिकता है, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उत्कृष्ट कोटि की बौद्धिकता, निर्वैयक्तिकता एवं सार्वभौमिकता के दर्शन धर्मामृत सागार में स्पष्टतया दृष्टिगोचर होते हैं। इस ग्रन्थ में सद्गृहस्थ तथा आस्तिक धर्म का सम्बन्ध जोड़कर न केवल समाज और राष्ट्र की भौतिक उन्नति के संकेत मिलते हैं अपितु आत्मसाक्षात्कार का मार्ग भी प्रशस्त होता है। ऐसे नैतिक साहित्य का अनुशीलन निःसंदेह आधुनिक मानव समाज को एक नई दिशा प्रदान करेगा। इस कारण पं० आधाधर जी का यह ग्रन्थ भौतिक उन्नति के साथ-साथ आत्मिक उन्नति के लिए सैदव अनुकरणीय है। आधुनिकता की चकाचौंध में भी भारतीय संस्कृति के अमूल्य आधारों, सिद्धान्तों का पोषण करने वाले तत्व धर्मामृत सागार में है। फलस्वरूप उनके द्वारा प्रतिपादित धार्मिक नियम उपनियम सामान्यजन में सुखद समृद्ध जीवन के लिए अतीव अनुशीलनीय है और मानव जाति के अस्तित्व के लिए परमावश्यक हैं।

*

PJ-22

जैन धर्म के क्षमापन पर्व की व्यवहारिकता

डॉ. अनिता जैन, वनस्थली, टोंक

जैन धर्म में भाद्रपद शुक्ला पंचमी से धर्म के दस लक्षणों की साधना एवं उपासना के बाद मनाया जाने वाला पर्व ''क्षमापना-पर्व'' कहलाता है, जो वस्तुतः एक आत्मानुशासन है, तथा अपने से अपने को क्षमा करने का मांगलिक पर्व है। क्षमा व्यक्ति का नैसर्गिक गुण है, जो किसी भी प्रकार की व्यवस्था से नहीं अपितु स्वयं से व्यक्त होता है। उत्तम क्षमा के व्यावहारिक लक्षण को बताते हुए विभिन्न शास्त्रों (जैनागमों) 1 में कहा है कि—

क्रोध से उत्पन्न होने के साक्षात् बाहरी कारण मिलने पर भी जो थोड़ा भी क्रोध नही करता है, उसके उत्तम क्षमा धर्म होता है। निन्दा-स्तुति, हानि-लाभ आदि दुखों में भी सहनशील रहना ही क्षभा है। इसके अतिरिक्त अपकार कर्ता से बदला लेने में समर्थ होने पर भी जो क्षमा करता है वही वास्तव में क्षमाशील है। क्षिति (पृथ्वी) क्षमा है जो अपने ऊपर सब कुछ सहकर भी सबका उपकार करती है। वस्तुतः क्षमा मनुष्य द्वारा किया गया एक आन्तरिक अवलोकन है जो मनुष्य को जागृत

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

और विवेकी बनाता है तथा मानव चेतना को खण्डित होने से रोकता है। क्षमापर्व का सामुदायिक दृष्टि से महत्व है जो सबके अभ्युदय के लिए है। सामुदायिक दृष्टि से आन्तरिक अवलोकन कर सच्चे मन से सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीव के प्रति कोमल बनना, क्षमायाचना करना व क्षमा करना व्यावहारिक व सामाजिक स्वास्थ्य के लिए अत्यावश्यक है।

*

PJ-23

कंदर्पकंदलीकहा-अभ्यास

डॉ. सलोनी जोषी, अहमदाबाद

प्राकृत कथासाहित्य में स्त्रियों के शील के विषय में ग्रथित कथाओं की एक सुदीर्घ परंपरा उपलब्ध है। ''स्त्रीणां स्वभाव से ही दु:शीला होती है। इनकी कितनी भी सुरक्षा करो फिर भी वह अनाचार करती है।'' इस विचार को प्रगट करती हुई कथाओं में कई प्रकार के विभिन्न कथाघटक (कथाप्रकृति -Motif) प्राप्त होते हैं। इस संदर्भ में आचार्य हरिभद्रसूरि कृत अजीयनाहचरियं की अवांतर कथा कंदर्पकंदलीकहा (र.सं. 1206-1150 AD, अप्रकाशित पांडुलिपि, जामनगर) महत्त्वपूर्ण है। इस कथा के कथाघटक हमें जातक कथा एवं पुराणों में भी प्राप्त होते हैं। प्राकृत साहित्य में भी इसके रूपांतर उपलब्ध है। इस कथा का प्रवहण मध्यकालीन गुजराती साहित्य में मिलता है। प्रस्तुत आलेख में इस कथा का संपादन एवं उनकी आनुपूर्वी एवं कथाप्रकृति के विषय में चर्चा की गई है।

*

PJ-24

भगवती आराधना में वर्णित सल्लेखना-चिन्तन एवं उसके प्रति समाज की मिथ्याधारणाएँ

डॉ. जिनेन्द्र जैन, लाडनूं

जैन परम्परा में जहाँ एक ओर जीने की कला और जीवन यापन के संयमित सूत्रों की शिक्षा दी जाती है, वहीं दूसरी ओर जैनाचार्यों ने मरने की कला भी सिखाई है। जैनदर्शन के विभिन्न सिद्धान्तों में मरने की कला भी अंकित है, जिसे सल्लेखना नाम से जाना जाता है। सल्लेखना शब्द में सत् ¤ लेखना ये दो शब्द हैं, जिसका अर्थ अच्छी तरह से लेखना अर्थात् सार-सम्भाल किया

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गया है। इस संदर्भ में व्यक्ति अपने जीवन के क्रिया-कलापों को त्यागते हुए शरीर को क्रमशः कृश किया जाता है। अर्थात् निरन्तर आहार का त्याग करते हुए सम्पूर्ण क्रियाओं से ऊपर उठकर समता की साधना करना ही सल्लेखना है।

सल्लेखना जैन दृष्टिकोण से समाधि का प्रतिरूप है। समाज में सल्लेखना के प्रति प्रश्न-चिह्न लगाया जाता है। आहार का त्याग करके शरीर को कृश करना आत्महत्या के रूप में आक्षेपित है। जबकि वास्तविकता यह है कि आहार त्याग कर शरीर को क्रमशः कृश करना सल्लेखना की परिधि में तो है किन्तु संयम और समता को चारित्र में उतारकर राग-द्वेश का शयन करके शरीर को कृश करना ही सल्लेखना का रूप है।

*

PJ-25

जैन धर्म में आचार्य वीरविजय सूरि जी का प्रदान

प्रो. रीशीकेश. य. रावल, पालनपुर

कठिन समय में धर्म, साहित्य और समाज को पुनः सजीवन करने के लिए समय-समय पर इस धरती पर कई महान विभूतियों ने जन्म लिया है। इस तरह ऐसी ही एक महान विभूति ने संवत् 1583 में गुजरात के पालनपुर नगर में जन्म लिया। जो आज हिन्दुस्तान के भोगलसम्राट् अकबर को धर्म का उपदेश देने वाले जगद्गुरु आचार्य वीरविजयसूरि के नाम से जाने जाते हैं। जिनके उपदेश से प्रेरित होकर अकबर ने अहिंसा, और जीवदया के अनेक कार्य किये थे, और उन्हीं के उपदेश के कारण ही सम्राट् ने दीने ईलाही धर्म की स्थापना की थी। मेवाड़ के महाराणा प्रताप भी उन्हें गुरु मानते थे। वे लगभग दो हजार साधु और तीन हजार साध्वीजीओं के गुरु थे।

*

PJ-26

भिक्षा-विचार : जैन तथा वैदिक दृष्टि से
(उञ्छ शब्द के सन्दर्भ में)

डॉ. अनीता बोथरा, पुणे

भाण्डारकर प्राच्यविद्या संस्था में प्राकृत महाशब्दकोश के लिए विविध शब्दों की खोज करते हुए भिक्षावाचक बहुत सारे शब्द सामने आये। आचारांग, सूत्रकृतांग जैसे अर्धमागधी ग्रंथों में,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ओपदेशिक जेन माहाराष्ट्री साहित्य में, मूलाचार, भगवती आराधना जैसे जैन शौरसेनी ग्रंथों में तथा अपभ्रंश, पुराण और चरित ग्रंथों में भिक्षाचर्या के लिए उंछवित्ति, पिंडेसणा, एसणा, भिक्खायरिया, भिक्खावित्ति, गोयरी, गोयरचरिआ तथा महुकारसमावित्ति आदि शब्दों का प्रयोग किया हुआ दिखाई दिया। वैदिक परंपरा के श्रुति, स्मृति तथा पुराण ग्रंथों में उञ्छवृत्ति, भिक्षाचर्या, भिक्षावृत्ति तथा माधुकरी ये चार शब्द भिक्षाचर्या के लिए उपयोजित किये हुए दिखाई दिये। उञ्छ तथा उञ्छवृत्ति इन शब्दों पर ध्यान केंद्रित करके दोनों परंपराओं के प्रमुख तथा प्रातिनिधिक ग्रंथों में इस विषय की विशेष खोज की।

जैन प्राकृत ग्रंथों में प्राप्त उञ्छ शब्द निश्चित ही वैदिक परंपरा से लिया गया है। उञ्छवृत्तिधारी व्यक्ति समाज के लिए बहुत ही पूजनीय और आदरास्पद रहा होगा। इसी वजह से जैनों ने साधु के बारे में भी उञ्छ शब्द का प्रयोग किया होगा। वैदिकों से उञ्छ शब्द का तो ग्रहण किया लेकिन जैन परंपरा में प्राप्त साधु आचार विषयक नियमों से वे प्रमाणिक रहे।

❋

PJ-27

कर्पूरमञ्जरी की भाषा

विपिन बिहारी मिश्र, आरा, बिहार

प्राचीन काल से नाट्य लेखन परम्परा हमारे संस्कृत साहित्य में चली आ रही है। संस्कृत के अधिकांश नाटकों में प्राकृतों का प्रयोग पाया जाता है। मुख्यपात्रों को छोड़कर अन्य शेष पात्र अपने संवादों में प्राकृत का प्रयोग करते हैं। कर्पूरमंजरी को छोड़कर अन्य सभी नाटकों में प्राकृत तथा संस्कृत को समन्वित रूप देखने को मिलता है। सामान्य तौर पर प्राकृतों का विभाजन क्षेत्रों को आधार मानकर किया गया है। जैसे मगध प्रमंडल की प्राकृत मागधी तथा महाराष्ट्र प्रमण्डल की महाराष्ट्री आदि।

कर्पूरमञ्जरी की भाषा शौरसेनी है। यह प्राचीन प्राकृत है। इसका प्राचीन रूप हमें ईसा पू० तीसरी सदी से ही प्रामाणिक रूप से अशोक के शिलालेखों से मिलता है। यह उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। ई०पू० 1508 के लगभग शौरसेनी का प्रयोग खारवेल के अभिलेखों में भी पाया गया है। साहित्य में शोरसेनी का प्रयोग प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PJ-28

महावीर के उपदेश : आधुनिक परिप्रेक्ष्य में

नरेन्द्र कुमार पाण्डेय, आरा

छठी शताब्दी ई०पू० में महामानव महावीर का प्रादुर्भाव हुआ था। अपने जीवन की सभी क्रिया-कलापों में महावीर मानव थे। उनका जीवन आदि से लेकर अन्त तक एक मानव की ही जीवन है। करुणा से आलिप्त उनके उपदेश आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने उनके काल में थे।

महावीर के उपदेशों का संकलन जैन आगमों से प्राप्त होता है। उनके अनुयायियों ने कठिन श्रमकर उन्हें लिपिबद्ध किया। उन्होंने, कथा-साहित्य, सिद्धान्त-साहित्य, पुराण-साहित्य व आचरणात्मक-साहित्य लिखकर उनके उपदेशों को प्रचारित किया। महावीर के उपदेशों को जानने के लिए आज विपुल साहित्य उपलब्ध है। जिनका आधुनिक परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन अपेक्षित है।

*

PJ-29

जैन दर्शन में कार्य-कारण का स्वरूप

श्वेता जैन, लाडनूं

भारतीय तत्व ज्ञान अनेक सम्प्रदायों और उनकी शाखाओं-प्रशाखाओं में विभक्त है। इसका इतिहास एवं विकासक्रम अत्यन्तं दीर्घ है। दर्शन जगत् के कुछ ऐसे सिद्धान्त है जो सभी सम्प्रदायों को मान्य है और इन सिद्धान्तों के आधार पर ही उन दर्शनों एवं उपदर्शनों में औरों से अलग मानी जाने वाली अपनी मान्यताओं का समर्थन किया है। कारण-कार्य का सिद्धान्त भी दर्शन क्षेत्र का एक ऐसा सिद्धान्त है जो सभी दर्शनों में अलग-अलग रूप से ही सही किन्तु स्वीकार्य है।

इस प्रकार भारतीय दर्शन की इन सूक्ष्म तत्त्वदर्शी परम्पराओं में मुख्यतया पांजमत ऐसे देखे जाते हैं जिन पर सम्बन्धित दर्शन ने आचार्यों ने स्थूल एवं सूक्ष्म विश्व का सम्बन्ध बतलाकर कारण-कार्य व्यवस्था का सूत्र मिलाया है। वे वाद हैं—1. न्याय दर्शन का आरम्भवाद या असत्कार्यवाद, 2. सांख्य दर्शन का परिणामवाद या सत्कार्यवाद, 3. बौद्ध दर्शन का प्रतीत्यसमुत्पादवाद, 4. वेदान्त दर्शन का विवर्त्तवाद, 5. जैनदर्शकासदसद्कार्यवाद।

प्रत्येक पदार्थ में क्षण-क्षण परिणमन है परिणमन से पौर्वापर्य आता है। परिणमन कारण है

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पौर्वापर्य कार्य है। कारण-कार्य का यह पौर्वापर्य क्रम सभी दर्शनों में मान्य है। जैन दर्शनानुसार एक ही द्रव्य अपने पूर्ववर्ती पर्याय से कारण एवं उत्तरवर्ती पर्याय से कार्य कहलाता है। कारण-कार्यवाद के सिद्धान्त में जैन दर्शन ने अपने समन्वय की दृष्टि से समांजस्य स्थापित कर सत्कार्यवाद और असत्कार्यवाद के विवाद को सुलझाने का प्रयत्न किया है। जैन दर्शन ने अभेद दृष्टि से सत्कार्यवाद और भेद दृष्टि से असत्कार्यवाद में ऐक्य कर सदासत्कार्यवाद की अवनधारणा को दर्शन जगत् में स्थापित किया है।

*

PJ-30

करकण्ड चरिउ रस रजक

डॉ. मुकेश कुमार शर्मा, बचरी-पीरो (बिहार)

करकण्ड चरिउ में अन्य काव्यों की तरह अनेक रसों का सम्यक परिपाक हुआ है। जैन कवियों की उद्देश्य मानव मात्र को सादाचार के पथ पर लाना रहा है। इस दृष्टि से उनके काव्य शृंगार के स्थान पर शान्त का रस राजत्व स्वीकार करते हैं। वैयक्ति कलांति तथा अपने धर्म को आग्रह के कारण जिन भक्ति मग्न कवि के काव्यों में शान्त रस के अनेक चित्र प्राप्त होना स्वाभाविक ही है। अत:निरवेद भाव को अद्विप्त कने वाले अनेक प्रसंग मिलते हैं। अन्य रसों में वीर रस, रौद्र रस, अद्भुत रस, करूणारस, विभत्स रस, हास्य रस, शृंगार आदि रसों का चित्रण हुआ है। कवि के रस संबंधी विवेचन से स्पष्ट होता है, कि कवि की यह रचना मानव समुदाय के भावों एवं मनोभावों के भव्य चित्रों से पूर्ण है तथा विभिन्न रसों का विवेचन बड़े ही रोचक एवं प्रासंगिक रूप में हुआ है।

*

PJ-31

जैन पुराणों में वर्णित वस्त्राभूषण (5वीं से 10वीं शती)

शीला जैन, जयपुर

5वीं से 10वीं शती के मध्य विभिन्न वर्गों में भिन्न-भिन्न वस्त्राभूषणों का प्रचलन था। लोग इच्छानुसार अनेक रंगों के वस्त्र पहनते थे। परन्तु कुछ स्थानों पर ऐसे भी उल्लेख हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि कुछ लोगों के लिए वेशभूषा निर्धारित थी, जिसे देखते ही उस व्यक्ति विशेष अथवा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जाति विशेष का बोध हो जाता था। ये वस्त्र उसके लक्षण कहे जा सकते हैं। समाज में रेशमी वस्त्रों का प्रयोग साधारणतः धनिक वर्ग ही करता था एवं सूती वस्त्रों का प्रयोग निर्धन वर्ग ही करता था। पुराणों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि समाज में रहने वाले लोग रेशमी, सूती व ऊनी आदि वस्त्रों को धारण करते थे, जबकि एक वर्ग ऐसा भी था जो वल्कलादि वस्त्र धारण करता था और वह वर्ग था 'आश्रमस्थ ब्राह्मण वर्ग'।

वल्कल धारण करने की प्रथा वैदिक काल से भी पहले की है। तापसी और जटाधारी साधु वल्कल वस्त्रं, मृगचर्म पहनते थे। भूर्जपत्र जैसे वृक्षों की छाल के कपड़े के लिए काम में लायी जाती थी। शाकुन्तल नाटक में वल्कल वस्त्रों का व्यवहार कण्व मुनि के आश्रम वासियों में पाया गया है। आश्रमवासी तपस्वी वल्कल वस्त्रों के द्वारा गुह्य अंगों का आच्छादन करते थे। इसी ही भांति बौद्ध भिक्षुओं का परिधान था 'चीवर'। यह पीले रंग के रेशमी वस्त्र से बनता था।

*

PJ-32

जैनशिक्षा

ओमप्रकाश पाण्डेय, वाराणसी

जैन परम्परा में स्वाध्याय पर अत्यधिक वल दिया जाता है। प्राचीन काल से ही जैव-शिक्षा का स्वरूप विस्तृत है। पांच वर्षीय बालक को शिक्षा ग्रहण करने के लिए शिक्षाचार्य एवं कलाचार्य के पास भेजा जाता था। जैन शिक्षा पद्धति सम्यक् चारित्र के साथ सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान पर अधिक बल देती है। प्राचीन काल में जान मठों उपाश्रयों तथा आचार्यों की सन्निधि में जैन शिक्षा दी जाती थी। इस शोधलेख में जैन शिक्षा का स्वरूप, संसाधन शिक्षणीय विषय, शिक्षक, शिक्षार्थी तथा आधुनिक शिक्षा पद्धति से तुलना करणीय है।

*

PJ-33

मुक्तक काव्यों में गाथा सप्तशती का स्थान

डॉ. सच्चिदानन्द सिंह, भोजपुर (बिहार)

मुक्त शब्द के विभिन्न अर्थ कोश और साहित्य ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। अग्निपुराण में मुक्तक उस रसना को कहते हैं, जो अपना अर्थ व्यक्त करने में स्वतः समर्थ हो। ध्वन्यालोक के

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अनुसार जिस काव्य में पूर्वा पर प्रसंग निरपेक्ष रस-चर्वणा का सामर्थ्य होता है, वह मुक्त कहलाता है। आचार्य दण्डी 'मुक्तक' को प्रबन्ध के अन्तर्गत एक पद्य मानते हैं। अतः इन सबसे यही सिद्ध होता है कि मुक्तक वह काव्यरूप है जिसमें कथानक प्रबन्धक की योजना नहीं होती और वह पूर्वा निरपेक्ष होता है। जो काव्य अर्थ-पर्यवसान के लिए परापेक्षी न हो, वह मुक्तक कहलाता है। प्रबन्ध काव्य में अर्थ का पर्यावसान प्रबन्धगत होता है, पर मुक्तक में निर्व्यूह अथात् स्वतः पर्यवसायी रहता है। तात्पर्य यह है कि मुक्तक काव्य में रस की समस्त विशेषताएँ और चमत्कृति के सारे उपकरण एक ही पद्य में अपेक्षित होते हैं। प्राकृत भाषा में मुक्तकों का विकास छान्दस् की मुक्तक शैली के आधार पर हुआ है। सभ्यता के अरूणोदयकाल में हमें दो महान् मृतक-संग्रह उपलब्ध होते हैं- एक ऋग्वेद दसरा अथर्ववेद। विषय की दृष्टि से इनमें दो प्रकार की प्रमुख विचारधाराएँ उपलब्ध होती हैं-लौकिक एवं ऐहिकतापरक और दूसरी परलौकिक या आमुष्किता परक। ये दोनों प्रकार की विचारधाराएँ अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रवाहित होती चली आ रही है।

❋

PJ-34

पञ्चास्तिकाय का विवेचन

केशव नारायण मिश्रा

उत्पाद, व्यय, ध्रौत्व्यात्मक पदार्थों में काल एक प्रदेशी है। तथा शेष बहुप्रदेशीय होने के कारण अस्थिकाय कहलाते है। अस्थिकाय का सहभावी गुणों तथा क्रम भावी नाना पर्यायो के साथ अस्तित्व स्वभाव एक आयत्व है। इन्हीं पाँच अस्थिकियों से त्रैलोक्य निष्पन्न होता है।

जेंसि अस्थि सहायो गुणेंहि सह विविहिं पज्जेंहि।
ते होंति अस्थिकाया निष्पन्न जेंहि तइलुक्कं।।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये षडद्रव्य है। जिसमें काल एक प्रदेशी होने के कारण अस्थिकाय नहीं हो सकता केवल पांच हि अस्थिकाय है। एक पर्याय से उत्पन्न होने वाली अन्य पर्याय से विनाश होने वाली अन्वयी गुणो ध्रौत्य को धारण करने वाली वस्तु का एक साथ उत्पाद, व्यय, ध्रौत्व्यात्मक लक्षण अस्तित्व है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश ये समान्यता विशेष रूप से अपने अस्तित्व में नियत है तथा अपने सत्ता मे अभिन्न है।

''प्रदेशप्रच्यात्मिका सिद्धतेषां कायत्वम्''।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PJ-35

गाथापति आनन्द

रमेन्द्रकुमार पाण्डेय, वाराणसी

जैन अर्हभागधी आगम साहित्य के अंगप्रविष्ट के रूप में परिगणित उपासकदशासूत्र में दस गृहस्थों के चरित्र के माध्यम से गृहस्थ धर्म किंवा श्रावकधर्म का सविस्तर वर्णन विन्यस्त है। प्रथमाध्ययन में गाथापति आनन्द का चरित्र-चित्रण वर्णित है। वह एक सद्गृहस्थ, एकपत्नीव्रतो, धर्मनिष्ठश्रावक, विवेकी, श्रद्धावान् एवं जिनेश्वर चरणानुरक्त है। भगवान् महावीर के सामने श्रावक धर्म का स्वीकरण का कठोर तपश्चर्या में निरत होकर श्रेष्ठत्व को प्राप्त होता है। वह किस तरह से भगवान् महावीर में अनुरक्त होकर श्रद्धावान् होता है, महावीर के उपदेशानुसार उपासक व्रत का सर्वात्मना स्वीकरण करता है। इसका सांगोपाङ्ग वर्णन इस ग्रंथ में मिलता है। उसकी पत्नी शिवानन्द सर्वांसुन्दरी एवं चरित्रशीलनिष्ठा श्राविका है। वह पति के साथ ही पूर्ण मनोयोग से श्रावक धर्म का पालन करती है।

❋

PJ-36

संबोधि में ध्यान

श्रीमती गीता पाण्डेय, वाराणसी

संस्कृत की परिमार्जित परिस्कृत तथा सरल सुबोध शैली में निर्मित संबोधि आचार्य महाप्रज्ञ की अनुपम कृति है। सम्पूर्ण जैनदर्शन का जैसा सहज सुगम्य भाषा में वर्णन यहां मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। संबोधि में ध्यान का विस्तार से वर्णन मिलता है। आचार्य महाप्रज्ञ ने ध्यान की परिभाषा दी है-

एकाग्रचिन्तनं ध्यानं योग-निरोधो ध्यानमुच्यते। सं. 12/33

अर्थात् एकाग्रचिन्तन एवं मनवचन एवं काय के विरोध को ध्यान कहते हैं। ध्यान के चार अंग हैं-ध्याता, ध्यान ध्येय और फल। इन चारों का एक ही श्लोक में बड़ा ही सुन्दर निरूपण किया गया है-

स्थितात्मा भवति ध्याता ध्यानमैकाग्र्यमुच्यते।
ध्येय आत्मा विशुद्धात्मा समाधिः फलमुच्यते॥ सं. 12.45

अर्थात् जिसकी आत्मा स्थित होती है, वह ध्याता-ध्यान करनेवाला होता है। मन की एकाग्रता

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

को ध्यान कहते हैं। विशुद्धात्मा उसका ध्येय है तथा समाधि ध्यान का फल है। ध्यान के चार प्रकार हैं-आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्लक इन सब स्वरूप विमर्शन तथा आधुनिक संदर्भ में ध्यान की उपभोगिता प्रस्तुत शोधालेख में विमर्श्य है।

*

PJ-37

वर्तमान राजनीति में जैन पुराणों की प्रासंगिकता

कु. अंजना बैराठी, जयपुर

जैन पुराण साहित्य में तिरेसठ श्लाका पुरुषों के चरित्र एवं अन्य महापुरुषों के जीवन-चरित्र है। आचार्य जिनसेन के अनुसार जो पुराण का अर्थ है वहीं धर्म है। पुराणों के विषय हैं-क्षेत्र (तीनों लोक) काल (तीनों काल) तीर्थ (रत्नत्रय) सत्पुरुष और उनकी चेष्टाएँ उनकी पाप से पुण्य तथा पुण्य से धर्म की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति।

जैन पुराण पूर्वजों द्वारा संचित ज्ञान के भण्डार हैं जिसमें इतिहास, दर्शन, भूगोल, आयुर्वेद, गणित, खंगोल, कला, चिकित्सा, न्याय शास्त्र, धर्म, नीति, राजनीति एवं समाज शास्त्र आदि का प्रचुर ज्ञान संचित है। पुराण केवल सत्पुरुषों द्वारा कथित आगमिक वाणि का संचय ही नहीं हैं अपितु नैसर्गि एवं शाश्वत प्राकृतिक सिद्धान्तों का वर्णन है तथा पुराणकार द्वारा प्रस्तुत समसामयिक समाज की सभ्यता एवं संस्कृति की झलक भी है। संक्षेप में पुराणों में वह सब कुछ है जिनका ज्ञान तत्कालीन समाज के लिये आवश्यक समझा जाता था। इसलिए ये हमारे लिये प्राचीन ज्ञान के स्त्रोत हैं। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि अतीत को वर्तमान से जोड़ने की कड़ी पुराण है।

*

PJ-38

A Panaromic view of Pravachanasara: A Prakrit Work

Sh. Sudhakar k. Indi, Dharwad

Pravachanasara of Acharya Kundakunda is one of the best works in prakrit literature. pravachanasara means the central point of scripture and the central point of scripture is to attain eternal bliss along with liberation from transmigration in the 'mundane world'. Pravachanasara is an excellent work a master piece and deals

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

with every aspects of Jain philosophy, from inferior state of living being to the superior state of living beings, has been discussed in the text by the able and worthy preceptor. My aforesaid notion will be revealed by the perusal of the text. The author of Pravachasara Acharya Kundakunda considered among the greatest saints by gain authors was the saint of unique characters and also had the highly advanced knowledge of Jain Philosophy.

❋

PJ-39

Comparative Study of Jain Philosophy with Sartrean Philosophy

Samani Shashi Prajna, Ladnun

Though Jain philosophy is an ancient philosophy still how it is very very scientific, analytic and modern which co-incides with the views of post modern philosophers. Sartrean concepts of onlology, Ethics, Freedom, Bad faith etc. were compared with the Jain ontology, Jain Ethics, Jain concept of *atmakartritvavada* and utilization of energy in proper direction i.e. in the spiritual upliftment of the self. The major points of difference between the jain philosophy and sartrean philosophy is that Jains believe in pure complete achievement of self as a state of siddha and Sartre denies for-itself in never Complete, it always remains incomplete. In his work 'Being and Nothingness' Sartre says, once any human being stops his transcendence or development he is reduced to the nothingness. Thus this approach of comparative study will bring new Paradigm shift in the world of philosophy.

❋

PJ-40

Jaina Concept of Pudgala

Shilpa Chheda

Pudgala is one of the six dravyas (substances), according to Jaina metaphysical theory. It is characterised by Touch, Taste, Smell, and Colour. *Pudgala* is in the form of an *Anu* (atom) and *Skandha* (aggregate). Is the cause of Universe either a single indivisible atom or complex aggregates of atoms, is the question

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

discussed by many Philosophical schools. According to the Nyāya-Vaiśeśika, universe was created from indivisible atom, which combined in a geometrical progression and created the objects of the universe. According to the Saṅkhya Philosophy, *triguṇātmaka* Prakriti is the first cause of universe. When the equilibrium of the three *guṇas* is disturbed, process of evolution begins and Prakriti disintegrates, universe is created. According to Jaina metaphysical theory, universe is neither created form simple *Aṇu* nor from distintegration of *Skaṅdha*, but, is eternal.

❋

PJ-41

'The Myth of Space Time'- A comparative approach within the Scenario of Jain Universe and string quantum theory

Varsha Shah, Mumbai

* Like a swing of a Penclulum deep cosmological querries have rocked back and forth among philosophers, theologians in every culture.
* In recent decades physicists and mathematicians have asked; *about space* - If space is made of discrete pieces, # is it continuous or # is it more like a piece of cloth, woven out of individual fibre?

  about time - # Does nature change continously like a flow or a river or # does the world evolve in Series like a 'ticking' of a clock?
* An attempt has been made to describe 'our Universe' and bring out equivalence though the two theories (Jainism and string quantum) are superficially utterely different in content.

Jain Universe : ().... the universe is made of six substances.

❋

PJ-42

Pre-requisites of Monkhood in Jainism (with special reference to svetāmber Jain monks)

Ms. Neeta Malik, Mumbai

According to Geetā, ''one perchance, in thousands of men, strives after perfection and one perchance, among the faithful one who strives after perfection,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

knows me in reality." Thus to join the order of monkhood, one should have a strong desire to live a perfect life. An attempt is made in this article to explain the pre-requisites of monkhood given in all the three religious sects viz. in Brahmanism, in Buddhism, and in jainism with special reference to Svetamber Sect.

The notion of pre-requisites in Brāhmanism as a whole cannot be fitted in a single definition.

In Buddhism, the pabajjā and Upasampadā were necessary for every person who wished to become a member of a Buddhist church. Of these, the Pabajjā is of the lower form and it denoted only the houselessness of a person while Upasampadā is performed religiously.

In jainism, the conduct of lay-votaries is a distinct feature of Sangha. Apart from common twelve rules, a new convert should properly follow the special eleven rules (i.e. Padimās) and should prove him to be in perfect moral pratices, wisdom and concentration etc.

Certainly, religion ought to make difference to a man (yet, it is not-at all easy to discover what that difference is). Its effects is not only to comfort men and women and to reassure them in the face of the manifold perplexities of life , but to change them. In essence Jainism is not a way of thought, but a way of life otr rather a way of thought that makes inevitable a new way of life. So Mahavira taught.

❋

PJ-43

The Concept of Transitory Nature of Things in Jain Philosophy

Dr. Kokila H. Shah, Mumbai

Jainism represents sramana current of thought. It is spiritual from the beginning to the end. It discusses methods and doctrine of salvation and emancipation. Reflection on the facts of existence is one of the kinds of auspicious meditation which is a step for liberation. Analysis and comprehension of phenomena of existence implies that everything in the world is transitory one has to consider it and concentrate his mind on it. It is termed as anityanupreksha th fact of universal impermanence. Umasavati in Tattvarthsutra discusses the twelve reflections and the very first of

CC-0. JK·Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

them is reflection on the transient nature of things. Contemplation of it involves cultivation of philosophical attitude to phenomenal existence and prepares the person for theultimate goal.

An attempt is made in this paper to highlight the significance of this concept of transitoriness. It is suggestive of two things: one, that the idea of permanence is implicit in the concept of transitory nature of things. Metaphysically, it points to a comprehensive understanding of reality and existence.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 8

HISTORY

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

H-1

आसफविलाससमीक्षा

डॉ. जयश्री चट्टोपाध्याय, कलकत्ता

विद्वल्लाटन्तपः पेरुभट्टलक्ष्मीतनयो निखिलालङ्कारिककुलललामभूतस्तर्केषु कर्केशधीः पण्डितराजो जगन्नाथः स्वेन महिम्नाद्यत्वेऽपि अपराभूतस्तिष्ठति। अस्य तर्कशरशतविप्रतिपन्ना विश्वनाथादयः आलङ्कारिका वैयाकरणाश्च प्रायः खण्डं खण्डं ययुः। परमयमपि दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवच्छायामधिशयानः सत्येतिहास-पराङ्मुखः 'आसफविलासे' आसफखानस्य, दिल्लीश्वरस्य शादिजदानामिधस्य भारतेश्वरस्यानव-गीतमदिमानमाविष्कृत्य मुमोद—'सेवां लाघवकारिणीं कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिं विदुः'। भ्रातृद्वेषी पितृद्वेषी शादिजदानो बहुमन्दिरनिर्णाशी अत्र जगदण्डमण्डलपुण्डरीकः समस्तप्रशस्तभूपालशिरोमणिमयूखमालोद् भासितचरणनखरः शरदिन्दुचन्द्रिकाचयचमत्कार-चुलुकितचराचरान्तरतिमिरघोरणिः पुलकितसुरासुर-मणीसमुद्गीतयशः सहृदयहृदयानन्दं विदधाति। तस्यैव महामहिमशालिनो गजवर्णना, वाजिवर्णना, दानवर्णना च आसफविलासे विवृद्धिं यान्ति। बहुमन्दिरविध्वंसी साहिजहानो गौरीं गजाननं जानाति न जानाति वा अस्माभिरवगन्तुं न शक्यते। इतिहासोऽत्र जोषमतिष्ठति। परमस्य साहिजहानाभिधस्य चक्रवर्तिनः हस्तिनो दानकीर्तिं वर्णयन्ती गौरी गजाननस्योन्निद्रस्य रात्रौ भीतिं जनयितुमियेषेति आसफविलासाद् वयमवगच्छामः—

"रुदतो निशि शैशवेन दूरीकृतनिद्रस्य गजाननस्य गौरी।
उपगायति भीतये यदुद्यन्मदयूथाधिपयूथदानकीर्तिम्॥"

❋

H-2

जम्मू - इतिहासस्य संस्कृतस्त्रोतांसि

डॉ. धनिराम शास्त्री, जम्मू

अथ मनुसन्धानलेखः ऋग्वेद - श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमहाभारत-नीलमत पुराणादिषु ग्रन्थरत्नेष्वस्य जम्मू प्रदेशविषये प्रतिपादितपाठांशधृतो वर्तते।

अस्य लेखस्यावलोकेनेन सम्यक्तया पर्यालोचनेन चेदं स्फुटरूपेणावगम्यते यदस्य पवित्रता वनप्रदेशविषये मनीषिभिरस्थ क्षेत्रस्य विषये केन प्रकारेण वर्णनं कृतं विधते।

अस्मिन् लेखे प्रागोतिहासिकतथ्यानि समीचीन प्रकारेण समुपस्थापितानि वर्तन्ते।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

H-3

संस्कृत ग्रन्थों में कौशाम्बी वर्णन

डॉ. राजेन्द्र त्रिपाठी 'रसराज', इलाहाबाद

भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि पर भारत के प्रमुख ऐतिहासिक नगरों में कौशाम्बी का प्राचीनकाल से ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता रहा है।

वैदिक ग्रन्थों में कौशाम्बी का उल्लेख सर्वप्रथम ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। शतपथ ब्राह्मण में महाराज जनक के समकालीन उद्दालक आरुणि के शिष्य प्रोतिकौसुरुविन्दि को 'कौशाम्बेय' कहा गया है जिसका अभिप्राय है कौशाम्बी का निवासी। इसी प्रकार गोपथ ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में भी 'वंशस' जैसे शब्दों का प्रयोग 'वत्स' देश के रूप में किया गया है। श्रीमद्भागवत, मत्स्यपुराण, हरिवंशपुराणादि ग्रन्थों में भी कौशाम्बी विषयक उल्लेख प्राप्त होते हैं। वाल्मीकि रामायण और महाभारत में कौशाम्बी का स्पष्ट वर्णन मिलता है।

पाणिनि की अष्टाध्यायी में 'तेन निर्वृत्तम्' जैसे सूत्र का उल्लेख कौशाम्बी के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। महर्षि पतञ्जलि ने भी अपने महाभाष्य में इस सूत्र की व्याख्या प्रस्तुत की है। महान वैय्याकरण वररुचि और कात्यायन की तो कौशाम्बी जन्मस्थली ही मानी गयी है। गुणाढ्य की वृहत्कथा, क्षेमेन्द्र की वृहत्कथामञ्जरी और सोमदेव कृत कथासरित्सागर में कौशाम्बी का विस्तृत वर्णन द्रष्टव्य है।

महाकवि भास की नाट्यकृतियों में वत्सदेश एवं कौशाम्बी को विशेष महत्त्व दिया गया है। महाकवि कालिदास के मेघदूत, हर्ष की रत्नावली नाटिका तथा अन्यान्य ग्रन्थों में कौशाम्बी का वर्णन उपलब्ध होता है। बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों में भी कौशाम्बी का उल्लेख मिलता है।

जैनियों के छठे तीर्थकर महाप्रभु पद्मप्रभु का जन्म एवं कैवल्य स्थान कौशाम्बी के ही पास में स्थित 'पभोसा' या प्रभासगिरि नाम का पर्वत आज भी प्रमाण है।

भारत के महान सम्राट अशोक, समुद्रगुप्त, हर्ष, कनिष्क आदि के शासन काल में भी कौशाम्बी का विशेष महत्त्व रहा। चीनी यात्री ह्वेनसांग एवं फाह्यान ने भी अपने यात्राविवरण में कौशाम्बी का वर्णन किया है। यहाँ के पुरातात्त्विक अन्वेषणों में उपलब्ध सिक्कों मूर्तियों, स्तम्भों एवं शिलालेखों में उत्कीर्ण अभिलेखों से कौशाम्बी की ऐतिहासिकता उत्तरवैदिककाल से मुगल सम्राट अकबर के समय तक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी जा सकती है। इनकी प्रामाणिकता सिद्ध करने में संस्कृत ग्रन्थों का अप्रतिम योगदान है।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

H-4

निमिवंश और मिथिला

श्रीमती नन्दा झा, पुरी

निमि अयोध्यानरेश राजा इक्ष्वाकुके मध्यम पुत्र थे, जो अपने बड़े भाई ककुत्स्थ के राज्याभिषेक से दु:खी होकर अयोध्या छोड़ सदानीरा के पार आ गये। यहीं इन्होंने महर्षि गौतम के सहयोग से तीरभुक्ति की स्थापना की, जो बाद में मिथिला कहलायी। निमिका तपोबल गौतम, यमदग्नि आदि की शिक्षा-दीक्षा से इतना खिल उठा कि वे राजर्षि कहलाने लगे। बाद में चलकर निमि ही विदेह हुए, जिन्हें मथकर मिथि अथवा मिथिल को उत्पन्न किया गया। यही मिथि मिथिला के संस्थापक एवं आदि साशक हुए। मन्थन से उत्पन्न होने के कारण अथवा बिना पिता के जन्म ग्रहण करने के कारण मिथि को जनक की संज्ञा दी गयी। इसलिए इस वंश का नाम निमिवंश, मिथिवंश, विदेहवंश अथवा जनकवंश रक्खा गया। मिथिला की स्थापना करने का गौरव जहाँ इस वंश को जाता है, वहीं मिथिला का प्रथम शासन सूत्र सम्हालने का गौरव भी इसी को प्राप्त है।

यद्यपि ककुत्स्थ एवं निमि दोनों सगे भाई थे, एक ही गोत्र के थे, पर मिथि, जो मथकर उत्पन्न हुए थे, निमि के विदेह हो जाने के बाद सदेह उत्पन्न हुए थे—अत: इनका गोत्र बदल दिया गया। सूर्यवंशीय वशिष्ठ गोत्र से इनका गोत्र बदलकर गौतम हो गया अर्थात् ये गौतमगोत्रीय कहलाने लगे। इसी कारण श्रीराम और सीता के विवाह में समगोत्र-दोष नहीं हुआ। सीताजी को भूमिजा होने के कारण यदि छोड़ भी दें, तो भी उर्मिला, माण्डवी आदि के विवाह में यह दोष पाया नहीं गया। प्रस्तुत निबन्ध में मिथिला की स्थापना का इतिहास, निमि से लेकर अन्तिम 57वें राजा कृति तक का शासन-वृत्तान्त, मिथिला की सीमा का समय-समय पर बढ़ना-घटना, उसकी संस्कृति-सभ्यता का परिचय सब कुछ सुव्यवस्थित ढंग से दिया गया है। वस्तुत: यह निबन्ध इतिहास के छात्रों , अध्यापकों, विशेषकर मिथिला के बारे में जिज्ञासुओं के लिए परम उपयोगी सिद्ध होगा।

*

H-5

प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रमुख स्त्रोत - अष्टाध्यायी और महाभाष्य

प्रो./डॉ. गणेशदत्त भारद्वाज, होशियारपुर

प्राचीन भारतीय भूगोल और तत्कालीन समाज तथा उसके जनजीवन को जानने के प्रमुख प्रामाणिक स्त्रोत पाणिनि-अष्टाध्यायी और पतञ्जलि के व्याकरण महाभाष्य हैं। पाणिनि अटक के निकट

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लाहुर ग्रामवासी और दाक्षीपुत्र थे। जिन्हें 6वीं ई. पू. माना जाता है, व्याकरण महाभाष्य के प्रणेता पतञ्जलि गोर्नदवासी गोणिकापुत्र थे जिन्हें 150 ई. पू. बताया जाता है।

जनपद- युग विभाजन की दृष्टि से जिसे भारतीय इतिहास का सूत्रकाल कहा जाता है, वास्तव में उसे महा जनपद/गणतन्त्र युग कहना अधिक सार्थक होगा। काशिकाकार (अष्टाध्यायी के टीकाकर्ता-वामन/जयादित्य) ने ग्रामों (नगरों) के समुदाय को जनपद कहा है, (ग्रामसमुदायो जनपद: अष्टा. 4.2.1) जनपदों की राजनीतिक सीमाएं बदलती रहती थीं किन्तु उनका सांस्कृतिक प्रवाह अटूट था। तत्कालीन इतिहास में दो पड़ोसी जनपदों के नामों के जोड़े एक साथ प्रसिद्ध हो जाते थे जैसे सिन्धु-सौवीर, मद्र-केकय, गन्धार-केकय, कपिश-कम्बोज, शिवि-उशीनर, मद्र-गन्धार, शाल्व-मत्स्य, दार्व-अभिसार तथा कुरु-पाञ्चाल आदि। पाणिनि अष्टाध्यायी में वर्णित कम्बोज, गन्धार आदि के अतिरिक्त पतञ्जलि ने महाभाष्य में पारद, दरद, पुरु, क्षुद्रक और मालवक आदि जनपदों का भी चित्रण किया है।

*

H-6

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में जनपद सुलतानपुर की भूमिका (सन् 1857 से 1947 तक)

सन्तोष कुमार सिंह, सुलतानपुर

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में जनपद सुलतानपुर का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जनपद में स्वतंत्रता संघर्ष प्रारम्भ होने के बाद सम्पूर्ण जनपदवासियों ने तन-मन-धन से भाग लिया। जनपद सुलतानपुर में 9 जून 1857 ई0 को प्रथम स्वतंत्रता संग्राम प्रारम्भ हुआ। भारतीय सैनिक टुकड़ी अंग्रेजों के विरूद्ध हो गयी। भारतीय देशभक्त सैनिकों ने अंग्रेज अधिकारियों, कर्नल फिशर, कैप्टन गिविंग्स, सी0ड़ब्ल0 टूकर, ए0 स्ट्रोयन की हत्या कर दी और इन लोगों ने अंग्रेज अधिकारियों के घरों को जला दिया।

8 सितम्बर 1857 ई0 को चाँदा में कर्नल राऊटन के नेतृत्व वाली गोरखा रेजीमेन्ट और स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के बीच भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में अंग्रेजों को सफलता मिली। 23 फरवरी सन् 1858 ई0 को अमहट में युद्ध हुआ इस युद्ध में मुगल सेना का तोपची गफूर बेग अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ता हुआ शहीद हुआ।

25 फरवरी सन 1858 ई0 को गभड़िया नाले के पास युद्ध हुआ। इस युद्ध में हसनपुर के

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

राजकुमार शहीद हुए। अंग्रेज अधिकारी आइकमैन बुरी तरह से घायल हुआ। 5 मार्च सन् 1858 ई0 को कादूनाले के पास अंग्रेजों और स्वतंत्रता प्रेमियों के बीच भयंकर युद्ध लड़ा गया। इस युद्ध में 600 स्वतंत्रता प्रेमी शहीद हुए। इस युद्ध में अंग्रेजों को भी बहुत क्षति हुई।

सन् 1858 ई0 के अन्त में सुलतानपुर जनपद पुनः अंग्रेजों के अधिकार में आ गया।

सन् 1857 ई0 के क्रान्ति के बाद छः दशकों तक जनपद में शांति रही। महात्मा गाँधी के भारत में राजनीतिक पदार्पण के बाद जनपद में पुनः राजनीतिक हलचल पैदा हुई। सन् 1921 ई0 में जनपद में जिला कांग्रेस कमेटी की स्थापना हुई।

गाँधी जी के आह्वान पर स्वाधीनता आन्दोलन में तेजी आयी। फलस्वरुप सभी क्षेत्र के प्रमुख कांग्रेसी नेताओं को बंदी बना लिया गया। जमींदारों द्वारा किसानों पर अत्याचार करने पर सन्1921-22 में जनपद में किसान आन्दोलन फूट पड़ा।

*

H-7

उत्तरी भारत में राजपूत युगीन कला का विकास

डॉ. सविता कुमारी, आरा

कला मर्मज्ञों ने राजपूत युग की कला को दो भागों में विभक्त किया है:-

पूर्व राजपूत युग (सन् 600 से 900 तक) और उत्तर राजपूत युग (सन् 900 से 1200 ई0 तक)। पूर्व राजपूत काल में मामल्लपुरम के रथ और प्रतिमाएँ, एलोरा के कैलाश मन्दिर और मूर्तियाँ तथा बम्बई के समीप ऐलीफेन्टा द्वीप में भव्य मूर्तियाँ निर्मित हुईं। उत्तर राजपूत युग में वास्तुकला और मूर्तिकला की क्षत्रिय शैली का विकास हुआ। इस युग की अनेक मूर्तियों को मुस्लिम आक्रमणकारियों ने नष्ट कर दिया, फिर भी बड़ी संख्या में मूर्तियाँ उपलब्ध हैं, जो मूर्तिकला की दृष्टि से सर्वोत्तम हैं। राजपूत कालीन चित्रकला के उदाहरण आज अनुपलब्ध हैं किन्तु तत्कालीन ग्रन्थों से पता चलता है कि राजाओं और श्रीमन्तों के यहाँ चित्रशालाएँ होती थीं जहाँ पर वे मनो विनोद किया करते थे। संगीत एवं नृत्य कला का मान था। प्रत्येक राजा को संगीत से प्रेम था। तबला, मृदंग, परवावज, वीणा, सितार, करताल आदि नाना प्रकार के वाद्ययन्त्रों का प्रचलन था। नृत्य कला पर इस युग में अनेक ग्रन्थ लिखे गये। राजाओं के दरबार में नृत्यांगनाएँ नृत्यकर उनका मनोरंजन किया करती थीं। इस प्रकार राजपूत युग में प्रत्येक प्रकार की कला का समुचित विकास हुआ।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

H-8

प्राचीन भारत में मृद्भांड उद्योग

शत्रुघ्नसिंह, लालगंज (बिहार)

प्राचीन काल से ही भारत में मृद्भांड उद्योग चला आ रहा था। आलोच्यकाल में यह उद्योग अपना एक स्वतंत्र और स्थायी रूप प्राप्त कर लिया था। मिट्टी के बर्त्तन आलोच्यकाल में बनाये जाते थे। इस काल में काले पालिशदार बर्त्तन बनाये जाते थे। मार्शल ने पल्लवकाल के मृद्भांड की प्रशंसा की है। इससे इस उद्योग के विकास की जानकारी उस क्षेत्र में मिलती है। मौर्यकालीन एवं कुषाणकालीन स्थलों की खुदाईयों से प्राप्त मृदभाडों के आधार पर इस उद्योग के इतिहास को रेखांकित किया गया है।

कुषाणकाल में मृद्भांड उद्योग के विकसित होने के प्रमाण उपलब्ध है। कुषाणकालीन अनेक स्थानों की खुदाई से मृद्भांड उद्योग की बहुत अच्छी अवस्था का पता चलता है। मृद्भांड तथा राजाओं के उपयोग के सुंदर मृद्भांड की चर्चा जातक ग्रंथों से मिलती है। कुषाणकाल के मृद्भांडो को मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा गया है।

प्रथम भाग में पश्चिमोत्तर भारत में प्राप्त मृद्भांड हैं जो लाल एवं भूरे रंग के होते हैं तथा तकनीक में बेहतर है। दूसरे भाग में गंगा की घाटी के मृद्भांड हैं जो आम जनता को ध्यान में रखकर बनाये गये मालूम पड़ते हैं। यहाँ बाहरी प्रभाव कम से कम है और तकनीक में स्थानीय रूचियों की प्रधानता है। यह प्रायः रंगीन तथा नक्काशी से परे है।

आलोच्यकाल में धातु उद्योग और वस्त्र उद्योग का विकास हो चुका था फिर भी गरीबों के लिये मृद्भांड उद्योग का फैलाव सम्पूर्ण भारतवर्ष में था।

*

H-9

डोगरी लोकगाथा में ऐतिहासिक तथ्य

श्याम लाल रैना

डुग्गर की लोकगाथाएं डुग्गर की लोक-संस्कृति को प्रतिबिम्बित करती हैं। इन लोक-गाथाओं से सुस्पष्ट होता है कि डुग्गर की आदि संस्कृति अनार्य की और नाग, यज्ञ तथा किरात, राक्षस आदि जातियों का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सम्बन्ध इस प्रदेश से अवश्य था। डुग्गर के आदि इतिहास लेखन में डुग्गर की लोक गाथाओं का महत्व और भी बढ़ जाएगा क्योंकि डुग्गर का आदि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इतिहास इन्ही लोक-गाथाओं में ही मुखरित है अत: डुग्गर की लोक गाथाएं अमूल्य ऐतिहासिक दस्तावेज हैं।

उदाहरणत: डुग्गर में प्रचलित बावा भैड़ की लोक गाथा से स्पष्ट होता है कि इस प्रदेश का इतिहास वैदिक साहित्य में भी ध्वनित हुआ है। भैड़ ने पिता की आज्ञा से तौषीधारा को इस शुष्क प्रदेश में प्रवाहित कर के भागीरथी प्रयास किया। भैड़ डुग्गर में अब एक लोक देवता के समान पूज्यनीय है। ऋग्वेद (7.19. 1-6) में भेड़ देवता का उल्लेख इस बात का साक्षी है कि इस देवता का सम्बन्ध वैदिक युग से है।

डुग्गर की लोकगाथाओं में वैदिक काल, वीरकाल आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल के इतिहास की प्रचुर जानकारी उपलब्ध है। इस लिए ऐतिहासिक दृष्टि से इन लोक गाथाओं का अध्ययन बड़ा उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

❋

H-10

तक्षशिला की स्थापत्य एवं मूर्ति कला

सरस्वती कुमारी, बिहार

तक्षशिला का विश्वविद्यालय महाभारत काल से ही विख्यात था। यहाँ पर आचार्य धौम्य के शिष्य उपमन्यु, आरूणि और वेद ने शिक्षा पाई थी। जातक कथाओं के अनुसार तक्षशिला नगर और राजधानी भी थी। इस विद्यालय में शिक्षा पाने के लिए काशी, राजगृह पंचाली (पंचाल), मिथिला और उज्जैयनी प्रदेश से विद्यार्थी जाते थे। गौतम बुद्ध के समकालीन सर्वोच्च वैद्यराज जीवक ने सात वर्षों तक आयुर्वेद का ध्ययन किया था। वह पटना से पढ़ने के लिए गया था। इसमें वेदों के अतिरिक्त हस्तिसूत्र धनुर्वेद और 18 शिल्पों की शिक्षा दी जाती थी। पाणिनी और कौटिल्यने तक्षशिला में ही शिक्षा पाई जाती थी।

तक्षशिला विश्वविद्यालय के अवशीष अब भी मिलते हैं। इस विद्यालय का प्राकृतिक दृश्य रमणीय था, इनका भवन पहाड़ियों पर बने थे। तक्षशिला के शैक्षणिक कार्य कलाप के साथ-साथ यहाँ के स्थापत्य एवं मूर्ति शिल्प भी नहीं अपितु भारत के सांस्कृतिक विरासत में नये आयामों का सूत्रधार माना जा सकता है।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

H-11

पाटलिपुत्र का इतिहास लेखन

रामनिवास सिंह, पटना

मगध सम्राट अजातशत्रु के समय उनके मंत्रियों द्वारा कर सम्बन्धी विवाद और सामरिक महत्व के चलते पाटलिपुत्र में किले का निर्माण करवाया गया। उदयन के शासन के चौथे वर्ष पाटलिपुत्र मगध सम्राज्य की राजधानी बनी। मौर्यकाल में यह नगर अपने उत्कर्ष पर पहुँच गया। मौर्यकालीन पाटलिपुत्र का संरक्षित क्षेत्र पश्चिम में लोहानीपुर से लेकर पूरब में दीदारगंज तक फैला हुआ था।

कृषि में लौह उपकरण के प्रयोग से अधिशेष उत्पादन का माहौल बना। अगल-बगल के क्षेत्रों के कृषि अधिशेष के चलते शहर के लोगों के आवश्यकता की पूर्ति हो जाती थी। केन्द्रीकृत व्यवस्था, अधिकारियों के जमघट, शिल्प, उद्योग, व्यापार तथा अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के चलते यह शहर बहुत जल्दी हीं महानगर का रूप धारण कर लिया।

वाणिज्य-व्यापार के ह्रास,

राजधानी परिवर्तन

नालन्दा नामक शैक्षणिक केन्द्र का उत्थान, सामन्तवाद, वनों का दोहन, नदियों के धाराओं में परिवर्तन, बाढ़ आदि प्रमुख कारण है जो पाटलिपुत्र के अवसान के लिए उत्तरदायी हैं।

*

H-12

जम्मू नगर की स्थापना और इतिहास

सुरेश शर्मा, जम्मू

जम्मू नगर की स्थापना के सम्बन्ध में मिली जानकारी के अनुसार इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता। इस सम्बन्ध में कोई भी लिखित जानकारी नहीं मिलती है और जन साधारण में प्रचलित धारणा जो किवदंती बी एक दूसरे का खंडन करती हैं।

गहन अध्ययन के उपरांत हमारे सामने जो तथ्य निकलते हैं उनके अनुसार जम्मू में जामून के पेड़ों के घने जंगल होने के कारण जम्मू नगर का नामकरण हुआ। क्योंकि यह अक्सर देखने में आता है कि बहुतया गाँवों तथा शहरों आदि के नाम वहाँ के कुदरती गुणों के कारण ही पड़े

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हैं। अत: पुराणों तथा महाभारत में लिखे गए जम्मू गाँव और जम्मू नद को जम्मू नगर तथा जम्मू तवी या चिनाव का उल्लेख मान लिया जाए तो इसकी स्थापना विक्रमी सम्वत् से दो तीन साल पहले की लगती है। इतिहास फोगल तथा हिचेसन का भी यही मत है।

*

H-13

Māgadha and Mekalādhipa of Harṣcarita of Bāṇa

Dr. Sudarshan Kumar Sharma, Parwanoo

Bāṇa in harṣacarita referring to several mishaps consequent upon the impolite behaviour of political potentates resulting in their discomfiture owing to mutual discords and lust for power grabbing alludes to the kidnapping and death of a Magadha king at the hands of Mekala King's ministers who taking advantage of the carnal weakness of the Magadha King lured him to get into a into a subterranean path or tunnel only to get him decapitated. This Magadha King on the evidence of Magadha-Malava struggle depicted by Daṇḍī in Daś akumāra carita aided by Inscriptional records throwing a welcome light on the Later Gupta period's Chaos and confusion have helped me identify Magadha King as Sūryavarman son of Īśānavarman (Haraha Inscription of Īśānavarman) and Deo Barnark Inscription of Jīvitagupta affording cue to the identity of Mekala Mālavarāja as Kumāra gupta-Dāmodaragupta contemporaries of Sūrya varman and Śaravavarman (the latter as the immediate success-or of Īśanavarman being his second son).

*

H-14

The History of Journalism in Asom

Anupoma Das, AIR, Guwahati

The History of Journalism in Asom is an one hundred and sixty years tale which reflects literature, art, culture, tradition, folk tales of the state. It could be said, all the elements of Assamesa people's history are scattered in news papers and magazines of long one hundred and sixty years.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

In Asom, historical and literary periods have been named after news paper and magazines. For example - ''Orunudoy Era'', ''Jonaki Era'', ''Awahan Era'', ''Jayanti Era'' and the ''Ramdhenu Era'' etc. The history of Journalism began in January, 1846 in Asom with the publicaiton of the monthly magazine ''Orunudoy'' from Sibsagar Beptist Mission Press. The first issue contained eight pages consists of 416 lines. Editor was Dr. Nathan Brown. The first issue defined the character and aim of ''Orunudoy, as a monthly paper, devoted to religion, science and general intelligence, printed and published at the Sibsagar Mission Press by O.T. Cutter, for the American Beptist Mission in Assam''. The character was maintained till the end.

*

H-15

Royal Patronage and Translation of Mahabharata into Assamese Language

Dr. Minati Hazarika

Koc King Naranarayana's (1533-84) court was a gathering place of emnent scholars and writers of his time. Rama Saraswati's literary telents drew the attention of Koc King Naranarayana and his brother Sukladhaja or chitaraya. It was King's full pationage that Ram Saraswati translated Mahabharata into Assamese language from Sanskrit. Without the royal pationage, it was not possible for Rama Saraswati to complete such a monumental tasix.

Koc King himself was a great scholar and he encouraged all scholars to do scholarly works by giving all shorts of help. The King gave all facilities to Rama Saraswati for the translation work by supplying him with the entire collection of books and comentaries in his possession. In Mahabharata's Banaparlea, v.840-41, Rama Saraswati mentioned that with great courtesy he told me; I give you all comenentaries : take them to your place. So saying, the King sent me all the books on a lenllock curt. He also gave me for encouragement sufficient money, cloths, ornaments and servants'' Koc King Naranarayana took great dilliqute in listening to rare versiaons of the Mahabharata.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

H-16

Sanskrit Historiography under the Sultanate of Kashmir: Rajataranginis of Jonaraja and Srivara

Prof. Jigar Mohammed, Jammu

The earliest trace of the Sanskrit historiography is found in Kashmir during the early medieval period. Both Jonaraja and Srivara, like Kalhan, present historical events in form of verses. They narrate the socio-political and economic trends of the fifteenth century Kashmir. Their writings show that they were well versed with the trends of historiography of the medieval world.

Though both Jonaraja and Srivara mainly concentrate on the achievements of the Sultan Zain-ul-Abidin, a sketchy account of the activities of the peasants, artisans, musician and the intellectuals of Kashmir is given by them. They works also narrate how Kashmir was associated with the different parts of Indian and other countries of the Asia Continent. For them, the policies of Zain-ul-Abidin brought great dividends to Kashmir in terms of the establishment its cultural relations with the different parts of Asia.

They describe the Sultan as the promoter of the concept of equality (*Ramarajya*) and protector of the interest of the people of Kashmir. They call Zai-ul-Abidin as the incarnation of Lord Vishnu (*Vishnuavatara*).

Although both Jonaraja and Srivara were experts in the Sanskrit language, they did not hesitate to incorporate the non-Sanskrit term in their narratives. Since persian was introduced as the official language, they used Persian terms frequently.

Their writings show that they propagated the concept of pluralism in Kashmir. Their writings show that they propagated the concept of pluralism in Kashmir. Their writings also establish that the Sanskrit historiography was treated as a symbol of intellectualism in Kashmir under the Sultan Zain-ul-Abidin.

The Rajataranginis of Jonaraja and Srivara reflect the popularity of Sanskrit language in Kashmir in terms of expression of One's ideas under the Sultanate of Kashmir.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

H-17

Ang Cultural Research Centre & Influence of the Ancient world Civilization

P.T. Brahmvadi

According to modern geologists and geographers, Tethis sea was situated at the place where the Himalaya is situated, Ancient Purans also go to prove that the original Himalaya was situated to the South of Mandar hill. Mandar hill was at the centre of the earth.

According to Padampuran to creat the Universe Brahmaji created the big mountain for the first time. The mountain was situated at the centre of the earth which came to be known as Mandar, Udyachal, Trikut, Meru Sumeru'.

Agni puran also supports the hypothesis that Meru mountain was the heaven of the earth (vide The original History of the Creation of the Universe by P.T. Brahamwadi) All the Purans and Veda also support the thesis that Mandar hill is the birth place of the whole universe. Swarglok (paradise) was situated at mandar Trikut Bhagalpur. The majority of the geologists. (George B. Cressey, Asia's Lands and Poeple p.18) say that the Ganga, Sindhu, Brahamputra etc. did not originate from the present Himalayan ranges. The Ancient Puran also support that the all ancient rivers like Ganga, Jamuna, Brahamputra, Kaveri, Saraswati etc. originated from Mandar hill.

The scientist have remained busy in research and trying in discover the origin of the cosmos. Albert Einstein's theory of Relativity has itself raised doubts and the great scientist himself stated that ''I believe in God. He is clearly present in the creation of beauty and natural system I believe there is a consciousness working in nature. ''Scientists believe that in the creation of the cosmos there is a mysterious super natural force at work. But where science finds its way blocked, our Rishis sought out the path quite easily. The theories as propounded by the Rishis are not only quite scientific but complete in itself.

The Rigveda (Mandala Chapter 5, verse 23.19) states that inside the center of water lies Amrit, and all medicines lie there. Further that it is here the original Fire exists. In the Rigveda 16,31 it is expounded clearly that it is this Fire which is original cause of creation of the Cosmos. Rigveda 1,11,58, stated that the Fire

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri Foundation USA

is in the Fire center of the earth and that the sun has its origin from it (Rigveda Mandala Ch. 5: Verse 22). In the Artharvaveda the Rishi lifts his hand up and states that the parbrahm (the eternal force) first revealed itself in form of the sun (Atharva Veda Vol. V. IInd, Ch. 6th verse).

*

H-18

Jammu's Glorious Past

D.C. Prashant, Jammu

Jammu known as city of temples whereas it was described as Dharam-ki-nagri rather a place of pilgrimage or a Teerath even. It has a glorious past commencing from Vedic period.

Dr. Vasudev Sharan Aggarwal has said that certain hymns of Atharvaveda were composed at Kishtwar a Northern region of Jammu. He visited Jammu to deliver a research Discourse at a meet arranged by Sanskrit Post Graduate Department. On same day/three persons met him in connection with some literary subjects.

During discussion he told us that he had discovered that AtharvVedic hymns pertaining to Herbs-Vanaspatis, Aushadis were composed in Kishtwar. Those were meant for treatment of particular disease. In prehistorical period this region was Madra Desha, betwen Iravati (Ravi) and Chandrabhaga. According to Mahabharata (vanparva) Savitri who brought back soul of her dead husband Satyavan belonged to Madradesha. Madri wife of Pandu was from this region.

Madradesha is now called Duggar Desh. Its capital is Jammu city winter period while summer capital is Srinagar. The state government's seats are two. This system has continued from 1846 AD, when under Amritsar Treaty (1846) the British Government transferred Kashmir to Maharaja GulabSingh.

Earlier, Raja RanjeetDev (1750-1782 AD) had built up Jammu as very large state setting title of ''Sardar'' amongst twenty two states of Jammu and Himachal. Ranjeet brought Muslims and Jains from Punjab giving them shelter to live permanently. Begum Mughlani also lived here for 15 years.

Hence Jammu became city of Gold and Jewellery brought by Jains. At that

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

time Punjab was being looted by Ahmedshah Abdali. Raja made Jammu a walled city. All enjoyed tranquality. Muslim historians described it Darul Aman (Abode of peace). Unfortunately Jammu fell in distress because of Punjabs' Sikh Missal's looted and Devastation twenty times which was due to weakness of Ranjeet's son and grandson. Jammu became subdewed colony of Sikh Government. Maharaja Ranjeet Singh granted rule of Jammu to Maharaja Gulab Singh in 1822 AD.

Since then four Maharajas governed Jammu--Gulab Singh, Ranbir Singh, pratap Singh. Last was Hari Singh. As result of advert of democracy he lost his rule, suffered externment and died in Bombay in 1961.

*

H-19

King Ashoka's Marine Edict Referred to by Kshemendra of Kashmir

Dr. Ravindranath Vaman Ramdas, Thane

The maritime traditions of the Mauryan times are revealed in Kautiliya Arthashastra. The Board of Admiralty was one of the five boards, which made the war office of Emperor Chandragupta Maurya. The Naval department was placed under an officer who was called the navadhyakksha or the Superintendent of ships. The navadhyaksha was entrusted with the duty of all violations of harbour regulations and miscreants that were Dangerous to public peace. Thus to destruction was doomed the ships of pirates, the ships which were bound for the enemy's country and the ships that violated the customs and rules in force in port towns.

King Ashoka sent his son Mahendra with a personal message to the King of Ceylon. Mahendra's sister Sanghamitra undertook another voyage during the reign of Devanam Tissa (247 to 207 B.C.) for the specific purpose of ordaining King Anula and her companions.

The monumental work ''Bodhisatvadanakalpalata 'by the Kashmirian poet Kshemendra narrates a story, which vividly describes the maritime activities of India during the rule of King Ashoka. Some merchants who traded with distant islands approached King Ashoka. They informed him of their losses and the complete ruin brought about by the sea-faring pirates called Naggers, probably the Chinese,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

- who were worshippers of the dragon-who destroyed all their ships and plundered their treasures. The story further relates how King Ashoka was persuaded by a Buddhist priest to issue a sort of Edict -Ashoka's Marine Edict, inscribed on a copperplate was however contemptuously set at naught by the Nagas. It was only when Ashoka became a devout Buddhist that he was able to make Nagas respect his Edict and give up all their booty, which was distributed among the merchants robbed.

*

H-20

Historical Elements Revealed in Visakhavijaya of Kerala Varmma

Dr. R. Kamla Kumari, Kerala

Kerala has a rich contribution to the history of ancient India. Kerala has produced several historical poems pertaining to different times and places. The Mahodayapuresa Charita of Tolan, Musikavamsa of Atula, Sivavilasa of Damodara Chakyar are some notable works among them. Coming to the modern period we have the Visakhavijya of KerlaVarmma Valiya Koil Thampuran, the AngalaSamrajya of A.R. Rajaraja Varmma, Keralodaya of K.N.Ezhuthachan etc. However the Visakhavijya is the most outstanding historical poem that the modern Kerala has produced. The Visakhavijya is a historical Mahakavya in 20 cantos consisting of 1307 words. It describes the regal qualities and administrative achievements of the hero, Vishakam Tirunal Maharaja of Travancore (1880-1885). It tells a great deal about many people and events of the time. It is a veritable mine of information about several historical facts. In this paper an attempt is made to point out and highlight such important facts of the history of Travancore.

*

H-21

Samyavada & Kautilya

Damador Choudhary, Assam

The alied problems-religious, social and Economic- have also been dealt with in that work. The main object of this Mangumopus of Kautilya was the

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

building up of a welfare. He desired to knit together, in an adequate manner, the different geographical and cultural areas of Bharatavarsa.

Kautilya's concept of an ideal state was fourfold:

1. To make the country politically strong in order to maintain its political identity and integration.
2. To make it economically self-sufficient, by taking necessary steps to develop agriculture and other industries, internal and external trade and commence.
3. To ensure justice to various sections of the people inhabiting different areas, and
4. To devise appropriate means for advancement of hearing.

These four cardinal points have duly been dealt with in the Arthasastra.

The religious ideas enshrined in the Arthasastra eloquently prove the existence of different cults. Kautilya advocated co-existence of various religious thoughts. His idea and followed by Maurya emperor Asoka, whose, terms Samavdya is the proper expression of the coexistence of various religions.

*

H-22

Contribution of Kerala to Stotra Literature in Sanskrit - ABrief Survey

Dr. S.Remadevi Amma, Kerala

In the vast realm of Sanskrit literature, Stotras have an important place. The word Stotra is derived from the root stun by adding the suffix stran. It means a piece of prose of verse meant for eulogizing favourite deity. Rgveda consists mostly of songs sung in praise of the forces of nature. These efforts in hyymnology in course of time paved the way for devotional poetry in Sanskrit. The gods and their characteristics described in the Rgveda underwent transformation in keeping with the development of thought and mind of the devotee. Prayer is the path of purification of mind and it helps in developing in the individual worshiper the consciousness of being one with god. The devotional poetry gradually grew in the magnificent

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

branch of literature. Compared to other branches of Sanskrit literature, it is the Stotra literature that Kerala has contributed profusely. More than 500 Stotras have been produced in Kerala. Many of them have been composed in praising deities of the different temples of Kerala. Most of the Sanskrit poets of kerala such as Sankara, ChattambiSwamikal, NarayanaBhatta, Sri Narayana Guru and others have contributed their share to the Stotra literature.

Many of the Kerala writers seem to have felt it necessary to compose Stotras. Most of them almost imitations of the early ones, but there are many other deserve to be studied seriously. Many of the Stotras of Sankara, Kulasekhra Alwar, Sri Narayana Guru, Narayana Bhatta are some of them. Hence a brief study of them is attempted in this paper.

❋

H-23

Woman and Ritual in Ancient Kashmir

Rupali Maini, Jammu

The most relieving picture, as seen in the *Nilamatapurana*, is the position that women enjoyed in the society. When one goes through the history of Kashmir, one can clearly see the role of women in the performances of various religious ceremonies. The life of the people was regulated by elaborate rites and rituals known as *Samskaras*. No ritual could be performed without the participation of the woman. In the *Nilamatapurana*, we find that some of the ceremonies were performed exclusively by women. Even on certain ocassions, they received worship from their menfolk. The position of the women is well understood by the fact that even the rivers are taken as manifestation of goddesses like Uma, Aditi, Lakshmi etc. Moreover, the very land of Kashmir was considered, as per the *Rajatarangini*, the manifestation of the mother goddess Ka'smirā - a form of Umā. The above source also makes mention of the lakes and rivers which are worshipped as the goddesses by the people of the region. The *Kuttanimattam* of Damodargupta too refers to the Gods along with their female consorts. In the *samaymatrika* of ksemendra, we find reference to a lady who pays the religious offerings in the name of her dead father.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

H-24

Public Women of Ancient Kashmir as reflected in the Literary Sources

Dr. Suman Jamwal, Jammu

The *Kuttaninmatan* of Damodaragupta and the *Samayamatrka* of Ksemendra have succeeded in attracting the attention of scholars in so for as the construction of the society of Kashmir is concerned. The description of Damodaragupta concerns the prostitute culture of Varanasi. But since it was written by a Kashmiri, its details would reflect the society of Kashmir also. The *Samayamatrka* narrates the story of Kalavati, who after being unsuccessful in luring customers, seeks the help of a *Kuttani* to gain Knowledge of the trade.

The study of the data from both the texts lead us to conclude that whereas the account of *Kuttanimata* is a traditional one based on the information from the texts of similar nature on pan Indian level, the work of Ksemendra was composed after a proper survey of behaviour of public women of Kashmir.

The prostitution during Ksemendra's period was devoid of the sophisticated manners of the traditional hereditary prostitutes known to places like Varanasi. Ksemendra has taken into consideration the common prostitutes, who used to earn only by their physical charms. Thus the, description of Ksemendra regarding the public women can be applied to Kashmir of his times with certainty. It is not a general description like that of Damodaragupta.

*

H-25

Svāmi Āgamānanda -A Social Reformer in Kerala

Padmadas K.L., Kalady

Svāmi Āgamānanda deserves a distinctive reference in Kerala culture in the case of eradication of caste system, Harijen upliftment and educational development. The chief distinguishing feature of Kerala society was the caste system in 19th century. The system in a worst form was practiced in the state. It was a part of socio-religios structure in Kerala.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Āgamānanda fought against the caste system all along his life. Even though he was born in a Brahmin family his mind was always sorrowed about the pathetic and miserable conditions of the low caste people and tried to uproot the caste ridden believes and practices like untouchability and inapproachability. He gave much importance to educational activities for the development of low caste. He considered education as the most integral part of the development of a community. So he gave special interest to the Harijan and tribal eduation. He started Sri Ramakrishna Gurukula and tribal hostel in 1936 at Kalady. The base of the educational philosophy of Āgamānanda was that of Vivekananda. He also gave more importance to women education in his school.

*

H-26

Urbanization in Mithila : Problems & Prospects A Historical Analysis

Dr. Avanindra Kumar Jha, Laxmisagar Darbhanga

There are very few regions in India, which has a distinct cultural identity in the entire length of history. Mithila remained a distinct cultural unit in the history of India. It was the mighty capital of the Videhas but its exact location is impossible to identify. The market of Mithila was the center of local inland trade. We get references about the markets in Mithila, where thetraders were localized in different streets or mohallas, a practice still in vogue there.

Even in modern times the mohallas are named after the trading groups like, i.e.- Kumhar Toli, Laheria Toli, Teli Para etc. The Buddhist traditions say that there were many market towns scattered all over Videha. Mithila had trade routes link with the other parts of India.

The trade and commerce and industrial background of this zone were the base of the urbanization. The huge volume of trade and commerce and industrial activities, which carried on in the different parts of Mithila, reflect the presence of the urban centers.

But the process of urbanization, which emerged in the last two centuries, produced a lopsided development in this zone. The urban centers of this zone lack

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri Foundation, USA

the basic civil facilities such as good transport facilities, surface sewerage-drainage, protected water and proper power supply, big and attractive market places and ultra modern shopping centers.

*

H-27

Śaktism in Early and Early-Medieval Kashmir

Dr. Hina. S. Abrol, University of Jammu

The study of the early and early medieval history of Kashmir enlightens us that Kashmir had been the high seat of Purāṇic Brahmanism. Different purāṇic religious systems co-existed in complete harmony barring a couple of exceptions. That Vaiṣṇavism and Śaivism were the two most popular purāṇic religious systems is well known to scholars through literary and archaeological evidences which are available in abundance from different parts of the valley. But it is little known that Kashmir was also a Śakti-pīṭha during early days. Literary and archaeological evidences at our disposal tell us that Goddess Meḍhā was the presiding śakti of Kashmir. Different form of Śakti, the Mother Goddesses such a Umā or Sati also known as kashmīrā, Śrī-Lakṣmī, Śārada, Durga and others were venerated by the pious Śāktas at specific places and specific days of the year Elaborate rituals were performed to please these Śaktis'.

*

H-28

India is a sovereign socialist secular Democratic Republic - An Analysis

Dr. Chandrashekhar Rai, Bhojpur

To investigate into such a liklist problem ''An Evaluation of India as a sovereign, socialist secular Democratic Republic as Embodied in the preamble of the constitution'' tantamounts to have a X-Ray of the politicophilosophical spirit of the preamble, its creaendo as well as the inexpendient actions on the part of the Indian polity, which in views of a section of constitutionalists, have driven the country more in an irretrievable position than what the basis creed of the preamble

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

really aligures. In the recent past, perhaps for more than two decades, the growing political instability due to fractured electoral verdict, and secondly, on account of gradual but unintermittent rise of communal and separatist forces on India's political horizon, new polenical controversies have arisen a afresh above all are the political and economic dictates from American imperialism, which excerts its political and economic press was through world bank international monetary funds economics sanctions, world trade organisation etc.

*

H-28

Political History of Jammu in Taushi-Satakam

Mr. Jagrut Joshi, Gujarat

The *Taushī-Satakam*, a collectin of one hundered verses in Sanskrit, is an encomium on the *Taushī* stream (modern Tawi) which flows below the Jammu Hill in the broad ravine in has cut for its passage in the course of countles millennia.

History-Based Book

1. The *Taushī-Satakam* is written by Shri K.N. Shastri and published by ''Dharmarth Trust Research and Publication Branch, Jammu'' in February 1963.

2. According to my polite opinion ''*Taushī-Satakam*'' is a history based book -because there is no doubt about historical value about it, because the plot of Satakam, cronology were given by Mr. B. Ch. Chhabara, the Joint Director General of Archaeology of India at that time.

3. The book is tribute to the Late Maharaja Harisinh Bahadur.

4. Forwarding letter of the Governor Dr. Karan Sinh to Mr. K.N. Shastri is given in the book.

5. Kalhan wrote the ''*Rajtarangini*'' based on political history of Kashmir, although he has written about the Jammu and the *Taushī* (Tawi), but the *Taushī-Satakam* is purely based on Jammu's Social, Cultural and Political history and on *Taushī*'s history.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 9

ARCHAEOLOGY

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 9

ARCHAEOLOGY

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ARCH-1

Antiquity of Vedas
Purāṇo-Vedic and archaeological eveidences

Dr. Rai Gyan Narain Prasad, Mohaddipur, Gorakhpur

As per Hindu view, Vedas have aeons old thought whose language were cyclically reviewed and renewed by the Sptaṛiṣis who illuminate them probably in every (or alternate?) Tretāyuga (of most recent cycle 7308-3708 BC). Saptaṛiṣis illuminated Vedas according to the directions of the heavenly belings (or depending on the movement of the cosmic bodies). Hindu view tells us that all the four branches (pādas i.e. chatuṣpāda) of Vedic canon (Samhitā, Brāhmaṇa, Āraṇyaka, Upaniṣad) were developed in Tretā Yuga in a parallel fashion. At the end of Tretāyuga (c. 3700 BC), single Vedic canon had the quadruped face. At the end of Dvāparayuga (c. 1300 BC), Veda-Vyāsa systematised and divided the Vedic canon into four separate groups- Ṛks (deals with Agni i.e. rajas tattva), Yajus (jala i.e. sattva tattva), Sāman (Vāyu i.e. tamas tattva) and Atharvan (the Purusa and the Prakrti) Samhitās along with their separate Brāhmaṇas, Ārayaṇkas and Upaniṣads.

*

ARCH-2

Jewellery Depicted in Jayadeva's Gita - Govind

Ms. Neeta Malik, Mumbai

Jayadeva's Gita Govind, a 12th century poem, is a work of infinite beauty. It describes the loves of Krishna and Radha in 12 cantons containing 24 songs each with 8 padas except the first which consists of eleven padas and the 10 which has five padas. It is a unique work in Indian literature and a source of inspiration in both medieval and contemporary Vaisnavism. The songs are sung by Krishna or Radha or by Radha's maid and are connected by brief narrative or descriptive passages. Although the poem originated in eastern India (Orissa) and remains most popular there, it spread through out the subcontinent in the cl̤nturies following its composition. The concept of Shringara bhava can be maximum exploited by an artist to interpret and express it as he wishes to do. Here, Jayadeva has exploited srngara to its fullest extent. We find refreshing varieties of metrical settings, wrought with a lavish hand,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

scintillating in their splendor like a riot of iridescent hues scattered from a jewel set with rubies, emeralds, diamonds, sapphires, topaz and lapis lazuli.

*

ARCH-3

Iconography of Sarsvati in Jaina Tradition

Dr. Renuka Porwal, Bombay

All three ancient paramaparas in India Vedic, Buddhist and Jain worship Ma Saraswati-the Devi of knowledge. My paper contains scriptural and literary references of adoration, some important ancient icons of Sarsvati, gradual evolution in iconography and the meaning of the requisites she holds. In Jainism she is worshipped as a goddess of learning with various names like sarasvati, Srutadevata, Sharda, Bharti, Bhasa (भाषा), Vak Vakadevata, Vagvadini, Vani, Brahmi Megha, Mahavijja, etc. according to Vastupal's 'Shri-sarasvati-stotra' of adoration.

Shri Bappabhattsuri composed 'Siddhasarswata Stava' to show Ma Sharda's dignity and Gunas. Besides scriptures, the daily prayer of the Jainas includes the dhyana of Sarasvati.

The earliest known reference of worship of Sarasvati image in Jain tradition is available from Mathura. This inscribed image of Saraswati is excavated from Kankali Tila.

In Kushan and early medieval period the images of goddess Sarasvati were carved with two hands only.

If one thinks of her complexion and symbol, she is fair like Kunda flower, cool and calm-Indu-as moonlight and increasing her charm with a necklace of frozen dew drops.

Sarsvati's icons are available in stones, bronze, copper and brass metal. Most of her paintings are of early medieval. The worship of Sarasvati in Jainism seems to be very old at least from Kushana Period.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 10

INDIAN LINGUISTICS

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IL-1

पाणिनीयतन्त्रे उपपदविभक्तीनां विमर्शः

डॉ. रमेश चन्द्र करः, विजयपल्ली (ओडीशा)

शब्दसुकरसम्बन्धः स्वाभिव्यक्तये विलसतिइति वाक्य विज्ञानस्यखलु अनुपममैतिह्यम् तत्र सर्वे सर्वार्थवाचकाः इति न्यायानुरोधेन यद्यपि सर्वेष्वर्थेषु स्वीयतात्पर्यं तनुते तथापि वाक्ये जहत्स्वार्थ वृत्या नतनमर्थं प्रतिपादयितुं ते शब्दाः वाक्याख्यया संज्ञया क्षमन्ते। तेषां प्रयोगविज्ञाने यत् विभेदनं येन कौशलेनोपपाद्यते तस्य विभक्तित्वेन प्रख्यापनं व्याकरणनिकाये विद्याततें। विभक्ति समभिव्याहारेण शब्दस्य पदत्वेन विपरिणामो जायते। तत्र विभक्ति उत्पत्तये सुवन्तपदानांकृते प्रातिपदिकसंज्ञा ततश्च द्वितीयादीनां कृते कर्मकरणदि संज्ञा अपेक्षिता भवति इति विदुषां प्रक्रियामूलकं उपपादनम्। किन्तु द्वितीयादीना विभक्तीनां उपपादनं कर्मादिसंज्ञाऽभावेऽपि दृग्गोचरीभवति तत्र किमपि अव्ययपदं विभाति यद्योगेन तासां विभक्तीनां विधानं संगच्छते सा विभक्ति द्विधा एका कारक विभक्ति अपरा उपपदविभक्ति। क्रिया निमित्ता या विभक्ति सा कारक विभक्ति पदनिमित्ता या विभक्ति सोपपदविभक्ति उदाह्रियते चत्— ''साधुः हरिं भजति'' इत्यत्र सुत्रोक्तकर्मसंज्ञया तथा द्वितीयाविभक्ति विधानात् एषा कारक विभक्ति, अपरं च ''गुरवे नम्'' ''पठनात् ऋते फलं नास्ति'', ''अन्तरा त्वां मां च हरि'' : इत्यत्र उपपद विभक्ति इति समापतति, पाणिनेः एतस्यशब्दस्य विषये साक्षात् आनु पूर्व्यं कश्चनः प्रयोगः न वर्त्तते। सिद्धान्त कौमुद्यां ''नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधाअलं वषट् योगाच्च'' इति सूत्र सन्दर्भे ''उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्वलीयसी'' इति परिभाषा सूत्रेण पठितोवर्त्तते।

*

IL-2

व्याकरणाध्ययनपरम्परायामष्टाध्यायीपद्धतिः श्रेयस्करी।

ऋद्धि नाथ झा, (बिहार)

इदमन्धतमं कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते॥

इति काव्यादर्शे दण्डिनः सूक्त्यनुसारेण संसारेस्मिन् शब्दाः एव परमं ज्योतिर्विद्यते। शब्देनैव जनानां जनैः साह सम्पर्को भवति अन्धोऽपि पुरुषः शब्दरूप ज्योतिषा जनानन्तरं, वस्त्वन्तरं वा परिचिनोति, तदनुसारेण व्यवहरति च। शब्दस्य संसारः विशालतमः वर्तते। शब्दस्यैव माध्यमेन सकलानि शास्त्राणि प्रस्फुटितानि सन्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अतः अधिकाधिक शब्दानां ज्ञानाय व्याकरण शास्त्रमुपकारकं भवति। संसारे ये-ये शब्दाः प्रचलन्ति तेषां सर्वेषां पारायणं कर्तुं बृहस्पतिः गुरुरूपेण इन्द्रश्च शिष्यरूपेण आरभताम्, परन्तु देवानां वर्षसहस्रपर्यन्तकालेनाऽपि सर्वेषां शब्दानां पारायणं नान्तं जगाम। अतः अधिकाधिक शब्दानां ज्ञानं कथं भवेत्? इत्येतदर्थं महर्षि पाणिनिना अष्टाध्यायी नामकः ग्रन्थः विरचितः। ग्रन्थेस्मिन् अष्टौध्यायाः सन्ति इति अस्य अन्वर्थं नाम अष्टाध्यायी इति वर्तते।

अष्टाध्यायाम् एकं सूत्रम् अपरेण सम्बद्धमस्ति येन यत् पदं पूर्व सूत्रे उच्यते तदेवपदं प्रयोजनविशेषाभावे सति अपरस्मिन् सूत्रे न निर्दिश्यते। यथा—'स्थानिवदादेशोनऽल्विधौ' इति सूत्रस्थं स्थानिवदादेशः इति पदद्वयं 'अचः परस्मिन् पूर्व विधौ' इति सूत्र 'न पदान्त०' इति सूत्रे 'द्विर्वचनेचि' इति सूत्रे च न निर्दिश्यते। अतएव अधिकारविषयस्य प्रयोजनविषये भाष्यकारेण उक्तं ''प्रतियोगं तस्या निर्देशार्थः'' इति। एवमेव अष्टाध्यायाम् अपरं वैशिष्ट्यमस्ति यत् पूर्वं सामान्यवचनं, तदनु अपवादवचनम्।

*

IL-3

कतिपयपाणिनिसूत्राणांविशेषव्याख्यानम्

सत्येन्द्र शास्त्री, (ग्वालियर)

पाणिनेः अद्वितीयाः कृति अष्टाध्यायी पुस्तकमस्ति। शब्दविधायाप्राचीनतमग्रंथमस्ति। व्याकरणशास्त्रं सर्ववेदानां पारिषदमस्ति। सम्पूर्ण अष्टाध्यायां अष्टसप्तत्युत्तरनवशतं त्रिसहस्रं च सूत्राणि पठित्वा शब्दविषयिणी-सर्वाजिज्ञासा परिसमाप्यते। पाणिनीना संस्कृत भाषाया वैज्ञानिकं व्याकरणं लिखितमस्ति। पाणिनेः प्रत्येकं सूत्रं वैज्ञानिकमस्ति। पाणिनेः अनेकानि सूत्राणि व्यवहारिकीं शिक्षां प्रददाति।

प्रस्तुत निबंधेऽस्मिन् कतिपयपाणिनिसूत्राणांविशेषव्याख्यानम् यथाः **समर्थः पदविधिः,** अष्टा. (2।1।1) परिभाषा सूत्रमस्ति। समर्थानाम् सम्बद्धार्थानां पदानांविधिः भवति यथा राजपुरुषः। अस्मिन् संसारे समर्थः अथवा सर्वप्रकारेण शक्तियुक्तानां एवं स्थानं समाजे भवति।

असमर्थानां अभावः भवति न कोपि पृच्छति। अतः अस्मिन् सूत्रे सर्व सामर्थ्यवान भवितव्यम्। **तत्प्रयोजकोहेतुश्च** (1।4।55) अर्थः स्वतंत्रस्यप्रयोजकःप्रेरकोयोऽर्थस्तत कारक हेतु संज्ञं भवति, चकारात्कर्तृसंज्ञकं च यथा देवदत्तः करोति। इत्यस्मिन् सूत्रे बिना प्रयोजनेन मंदः अपिनप्रवर्तते। अस्माभि बिना प्रयोजनेन न कोपि कार्य कर्त्तव्यम् इति शिक्षामस्ति।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IL-4

निष्ठाप्रत्ययविमर्शः

श्रीमती अयोनिजाशास्त्री, झारखण्ड

क्तः क्तवतुश्च निष्ठासंज्ञककृत्प्रत्ययौ। तत्र ककारोकाराविौ। अनयोर्भूतकाल-वर्तमानकाल कर्तृ-कर्मादिकर्म- भावरूपाऽर्थाः भवन्ति। क्तप्रत्ययः प्रयोगेषु क-ट-त ध-न-म-ल-व-लोपरूपेण लभ्यते। शुष्कः, सृष्टः, स्तुतः, लब्धः भिन्नः, क्षामः, पक्वः, फुल्लः इति क्रमश-उदाहरणानि। क्तप्रत्ययस्य कर्ता, कर्म, भावः आदिकर्म, भूतकालः, वर्तमानकालश्चार्थाः। क्तःप्रत्ययः गतः इत्यत्र कर्तरि, पुष्पं चितम् इत्यत्र कर्मणि, तेन हसितम् इत्यत्र भावे चैत्रः प्रस्वेदितः इत्यत्रादि कर्मणि कर्तरि च वर्तते। अत्र सर्वत्र भूतकालोऽप्यर्थः। राज्ञां मतः इत्यत्र वर्तमानकाले क्तप्रत्ययः। क्तवतुप्रत्यये प्रयोगे क-ट-त-ध-न-म-ल-व-रूपेण लभ्यते। शुष्कवान् सृष्टवान्, लब्धवान् भिन्नवान्, क्षामवान्, फुल्लवान् पक्कवानिति क्रमशउदाहरणानि। उक्तोदाहरणे क्तवतुः कर्तारमभिदधाति भूत कालं धातुवाच्यं द्योतयति च।

उक्तनिष्ठाप्रतययोः कित्वं गुणनिषेधार्थम्। क्तवत उदित्वं नुमाद्यर्थम्॥

❋

IL-5

शब्दकौस्तुभरीत्या व्याकरणाध्ययन प्रयोजनविमर्शः

डॉ. गणपति भट्ट (कर्नाटक)

पस्पशायां ''रक्षोहागमलध्वसंदेहाः प्रयोजन''मिति भाष्यम्। अत्र रक्षादीनि पञ्च प्रयोजनानि निर्दिष्टानि। लघुशब्दः = धर्मपरः। लाघवम् इत्यर्थः। तेषां मध्ये ''रक्षा, ऊहः, लाघवम् असंदेह इति यत्वारि प्रयोजनानि = फलानि। आगमस्तु न प्रयोजनम् न फलम्। किन्तु प्रयोजकः। व्याकरणाध्ययनस्य विधायक इत्यर्थः। भाष्ये प्रयोजन शब्दः भावल्युऽन्तः, करणल्युऽन्तश्च। आद्यो नपुंसको बहुवचनान्तश्च। प्रयोजनानि फलानि। द्वितीयः पुंलिङ्गः एकवचनान्तश्च। प्रयोजनानि च प्रयोजनश्चेति विग्रहे ''नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्तरस्याम्'' 2-2-69 इति सूत्रेण नपुंसकस्यैकशेषः, वा एकवद्भावश्य। अनयारीत्या भाष्यं व्याख्येयम्। एष्वसंदेह प्रयोजनं पश्यामः कौस्तुभरीत्या 'असन्देह' इत्यत्र नञः प्रागभावोऽर्थः। न संदेहः असन्देहः संदेहस्यानुत्पत्तिरित्यर्थः। व्याकरणशास्त्रार्थ परिज्ञानवतः स्वरेण पदार्थस्य निर्णयसम्भवात् सन्देहो नोत्पद्यत एव। सन्देहप्रागभावपरिपालनमेव व्याकरणाध्ययनस्य प्रयोजनम्।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IL-6

स्वतन्त्रःकर्त्ता - इति सूत्रस्य दार्शनिकविवेचनम्

डॉ. तोयनिधि वैष्णव, रायपुर (छत्तीसगढ़)

स्वतन्त्रःकर्त्ता [1-4-54] इति सूत्रम् सिद्धान्तकौमुद्यां कारकप्रकरणे [विभक्त्यर्थप्रकरणे] तृतीयाविभक्ति- विवेचनप्रसङ्गे दृश्यते। अष्टाध्यायां तु सूत्रमिदम् प्रथमाध्यायस्य चतुर्थपादे चतुःपञ्चाशत्तमे क्रमाङ्के समायाति, तत्र वृत्तिकारेण क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्त्तास्यादित्युक्त्वा ''कर्तृकरणयोस्तृतीया'' - इति सूत्रेण अनभिहितेकर्त्तरिकरणे च तृतीयास्यादिति बुद्ध्या तृतीयाविभक्ति सम्पादनाय व्यवस्थां कुर्वन् ग्रन्थकारः निगदति यत् ''रामेण बाणेनहतोबाली'' - इत्युदाहरणे तृतीया कथमिति? सूत्रोऽस्मिन् स्वातन्त्र्यमिति प्राधान्यम्, स्वस्य तन्त्रम् (तन्तुः) इति भाष्ये स्पष्टीकृतम्। एवञ्च क्रियासिद्धौप्रकृष्टो यः स कर्त्ता स्यात्। यथाहुः—

''निष्पत्तिमात्रेकर्तृत्वं सर्वत्रैवास्तिकारके।
व्यापारभेदापेक्षायां करणत्वादिसम्भवः॥

फलार्थी यः स्वतन्त्रः सन्फलायारभते क्रियाम्।
नियोक्ता परतन्त्राणां स कर्त्ता नाम कारकम्॥''

स्वतन्त्रशब्दोरुढिवचनः समासप्रतिरूपकः प्रधानार्थः, भाष्येऽपिस्वातन्त्र्यम् तु प्राधान्येन उदीरितम्। स्वशब्दआत्मवचनस्तन्त्रशब्दः प्रधानार्थः, स्वातन्त्र्यमस्येति तु पदघटनामात्रमिति हैमप्रकाशे।

❋

IL-7

विशेष्य—विशेषणभावविमर्शः

डॉ. मधुसूदनपाण्डेय, औरंगाबाद

सुप्तिङन्तपदव्यूहोवाक्यमित्यभिधीयते।
वाक्यार्थः कथ्यते तेन बोधितोऽर्थोमनीषिभिः॥ 1॥
तत्र किंचिद् विशेष्यं स्यात् किंचित्स्याच्च विशेषणम्।
तयोर्भावश्च सम्बन्धमूलकोदृश्यते क्वचित्॥ 2॥
कुत्रचिच्च भवेद्व्यक्तेरभेदेऽसौ ततोद्विधा।
राज्ञः पुरुषइत्यादावसौ सम्बन्धमूलकः॥ 3॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्वस्वामित्वस्वरूपोऽत्र षष्ठीवाच्योविराजते।
सम्बन्धो येन राजाऽत्र पुरुषेऽस्ति विशेषणम्॥ 4॥

वाच्या एवं हि सम्बन्धा द्वितीयादिविभक्तिभिः।
विशेष्यत्वे प्रकारत्वे भवन्ति हेतवः क्वचित्॥ 5॥

क्रियाकारकभावोयः सम्बन्धोव्यापकोऽस्ति सः।
स्वस्वामित्वादयस्तेन सम्बन्धा जनिताःसमे॥ 6॥

द्विष्ठोयद्यपिसम्बन्धस्तथापि तद् विशेषणात्।
षष्ठयादिर्जायते यस्मादुद्भूतस्तत्र राजते॥ 7॥

वीरः पुरुषइत्यत्र विशेष्यता च प्रकारता।
व्यक्तेरभेदे नह्यत्र सम्बन्धस्तत्र कारणम्॥ 8॥

समुच्चयोऽत्र व्यक्तौ हि वीरत्वपुरुषत्वयोः।
प्रकारोनह्यभेदोऽत्र संसर्ग इति मन्यताम्॥ 9॥

भेद एव हि संसर्गइतिभाष्यादिसम्मतः।
अभेदान्वयइत्यत्राभेदेऽन्वय इतीर्यते॥ 10॥

एकव्यक्तौ पदार्थोऽन्यः प्रकारत्वेन भासते।
शोधपत्रेऽत्र सङ्क्षेपादेवं किंचिद् विचारितम्॥ 11॥

❋

IL-8

भारतीयार्य भाषायाः कालानुसारेण वर्गीकरणम्

कृष्णकुमार झा, दरभंगा

भारतीयार्यभाषा कालानुसारेण त्रिषु वर्गेषु विभक्तास्ति।

1. प्राचीन-भारतीयार्य भाषा।
2. मध्यकालीन-भारतीयार्य भाषा।
3. आधुनिक-भारतीयार्य भाषा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्राचीन-भारतीयार्य भाषायाः कालः पञ्चदशशहस्त्रम् (1500 ई०) ई० पूर्वतः पञ्चशतम् ई० (500 ई०) पूर्वं यावत् मन्यते। प्राचीन भारतीयार्य भाषायां संस्कृत भाषा आगच्छति। संस्कृतं हि द्विधा विभक्तम्। वैदिक संस्कृतम् लौकिक संस्कृतं च। वैदिक संस्कृतं संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् इत्यादीनि बहूनि वाङ्मयानि आगच्छन्ति। अतः लौकिकसंस्कृते रामायण-भगवद्गीता-महाभारतादयः ग्रन्थाः आगच्छन्ति। ततः मध्यकालीन-भारतीयार्य भाषायाः कालः समागतः। अस्याः कालः पञ्चशतम् ई० (500 ई०) पूर्वतः एकशहस्त्रम् ई० (1000 ई०) यावत् मन्यते। मध्यकालीन-भारतीयार्यभाषायां प्राकृत-पाकट-पालि इत्यादयः भाषा आगच्छन्ति। अस्यां भाषाणामपि विभिन्नाः कालाः भाषावैज्ञानिक ग्रन्थेषु विविध प्रकारेण वर्णिताः।

तत्पश्चात् आधुनिक-भारतीयार्यभाषायाः कालः समागतः। अस्याः कालः एकशहस्त्रम् ई० (1000 ई०) तः अधुना यावत् मन्यते। अस्यां भाषायां हिन्दी-मैथिली-भोजपुरी-मगही इत्यादयः आधुनिकलोकभाषा समागच्छन्ति।

*

IL-9

'वृद्धिरादैच्' सूत्रस्य प्राथम्यविषये कश्चिदभिनवो विचारः

डॉ. कमलेश कुमारः, गुजरात (अहमदाबाद)

आचार्यप्रवरैः पाणिनिमुनिभिः अष्टाध्याय्याम् 'वृद्धिरादैच्' इति संज्ञासूत्रम् प्रथमक्रमाङ्क एव प्रस्थापितम्। अत्र प्रथम एव सूत्रे संज्ञा संज्ञिनोः समानाक्षरत्वाल्लाधवत्वहानिः, पूर्वम् संज्ञिपदम् पश्चाच्च संज्ञापदमिति समुचितायाः निखिलग्रन्थग्रथितव्यवस्थायाः परित्यागः, पदान्तस्थितस्य चकारस्य कत्वाभावश्चेति नैके दोषाः समुद्भाविताः पूर्वाचार्यैः। एवं सत्यपि सूत्रमिदं पाणिनेराचार्यस्य सुप्रसिद्धे अष्टाध्यायीनाम्ना प्रसिद्धिङ्गते व्याकरणग्रन्थे प्राथम्यम् भजते। कोऽत्र हेतुरिति प्रश्ने 'मङ्गलार्थम्' इत्युत्तरन्ति महाभाष्यकाराः पतञ्जलिमुनयः तदनुवर्तिनश्चान्ये वैयाकरणाः। यद्यपि भाष्यकारादिप्रदत्तसमाधानसन्तुष्टाः वयम्, समादरणीयत्वात्तेषाम्, तथापि नात्र समाधाने मनः तुष्यति। इतः पूर्वमपि चतुर्दश-प्रत्याहार-सूत्राणाम् विद्यमानत्वात्। सूत्राण्येतानि शिवाराधनप्रसादरूपाणि माङ्गल्ये समर्थानि सन्तीति श्रद्धामूलकात् विचारात्।

अस्माकमत्र कश्चित् नूतनोऽभिनवश्च विचारः। स च लक्षणात्मके व्याकरणग्रन्थेऽस्मिन् उपदिष्टानाम् सूत्राणाम् लक्ष्ये क्रमशः प्रवर्तनरूपवृद्धिकार्यमत्र संसूचितमस्ति, इति संक्षिप्तो विस्तरेणावतारितोऽत्र प्रबन्धे।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IL-10

संस्कृत-व्याकरणदर्शन-क्षेत्रे भतृहरेः योगदानम्

डॉ. चितरञ्जनदयालसिंहकौशलः, कुरुक्षेत्रम्

वाक्यस्य बुद्धौ नित्यत्वमर्थयोगं च शाश्वतम्।
दृष्ट्वा चतुष्टं नास्तीति वार्ताक्षौदुम्बुरायणौ॥

वाक्यपदीयम्, 2.343

वेदशास्त्राविरोधी च तर्कश्चक्षुरपश्यताम्।
रूपमात्राद्धि वाक्यार्थः केवलान्नावतिष्ठते॥

वाक्यपदीयम्, 1.136

अर्थात् पदं साभिधेयं पदाद् वाक्यार्थनिर्णयः।
पदसंघातजं वाक्यं वर्णसंघातजं पदम्॥

सम्बन्धस्य न कर्ताऽस्ति शब्दानां लोकवेदयोः।
शब्दैरेव हि शब्दानां सम्बन्धः स्यात् कृतः कथम्॥

शब्दार्थयोरसंभेदे व्यवहारे पृथक् क्रिया।
यतश्शब्दार्थस्तत्त्वमेकं तत्समवस्थितम्॥

वाक्यपदीयम्, 1.24-26

*

IL-11

व्याकरणदर्शने आध्यात्मवादः

विमलेश झा, लखनऊ (उत्तरप्रदेशः)

शब्दशास्त्रस्य लोके उपयोगिता तु विद्यत एव परलोके अपि इदं अतिलाभप्रदमस्ति यतो ह्यस्य सम्बन्धः धर्मार्थकाममोक्षेषु चतुर्षु पुरुषार्थेषु मोक्षेन अस्ति। मोक्षस्तावदाध्यात्मपरिणामः विद्यते। शास्त्रस्याध्यात्मिकता दर्शनशास्त्रस्योपरि आधारिता विद्यते। तत्र व्याकरणस्य दर्शनत्वमिति सिषाधयिषया अस्य वेदमुखत्वेन प्रतिपादयन् महाभाष्ये यत्र तत्र अस्याध्यात्मिकपक्षं परिपुष्टयन्त्यः ब्रहव्यः पङ्क्तयः वयं प्राप्नुमः। प्रक्रियाग्रन्थेषु कौमुद्यां 'इति माहेश्वराणि' लघुशब्देन्दुशेखरे च श्रुतिमूलकत्वा दस्यैव

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वेदाङ्गत्वमित्यादीनि वाक्यानि अस्याध्यात्मिकपक्षं परिपोषयन्ति। वेदेषु अपि व्याकरणस्य दर्शनत्वं सत्यासत्यज्ञानरूपेण प्रतिपादितमस्ति।

वाक्यपदीये प्रथमकाण्डात्मके ब्रह्मकाण्डे सर्वत्र शब्दस्य ब्रह्मत्वविषये च व्याख्या कृता अस्ति। तत्र शास्त्रस्य प्रयोजननानि उक्त्वा अनेन मोक्षप्राप्तिविषये भूयो भूयः चर्चा कृता अस्ति। भर्तृहरिणा शब्दस्यब्रह्मत्वेन सिद्धिं प्रकल्प्य शब्दज्ञानमेव मुक्तिसाधनमिति स्पष्टं प्रतिपादितम्—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥ प्रथमं पद्यम्

❋

IL-12

वैदिकक्रियापदानां निर्वचने प्राच्य-पाश्चात्यानां विमर्शः

डॉ. सुबोध कुमार नन्द, वेस्ट बंगाल

वैदिक-लौकिक संस्कृतभाषासु एकमौलिकतायां सत्यामपि उभयभाषायाः शब्दगठनं, वाक्यसंयोजनमित्यादिषु क्षेत्रेषु पर्याप्ताः भेदाः परिदृश्यन्ते। यथा शब्देषु देवासः, देवाः, पूर्वेभिः पूर्वैः, अग्नौ, अग्न इत्यादि। धातूषु यथा इमसि, इमः, स्मसि, स्मः शृधि, शृणुहि, तथा च शृण्वित्यादि। एतेषु लौकिके संस्कृते देवाः, अग्नौ, पूर्वैः, इमः, स्मः एवं शृणु प्रभृति पदानां प्रयोगोपलभ्यन्ते। अन्ये शब्दाः केवलं वैदिकसाहित्येषूपलभ्यन्ते।

यद्यपि भेदोऽयं वैदिकसाहित्यस्य स्वकीया विशेषता तथापि लौकिकसंस्कृतेन सह अस्य वेदस्य यो भेदः परिदृश्यते तमाश्रित्य प्राच्य-पाश्चात्य विद्वांसः स्व स्वरीत्या विचार-विश्लेषणः कृतवन्तः। अतः वैदिकभाषायाः स्वरूपंज्ञातुमस्माकम् पुरतः माध्यम द्वयं विद्यते। तत्र शाकलात्रेयः, शाकटायनः, यास्कः, पाणिनि-पतञ्जलिप्रभृत्येकः प्राचीनभारतीय वैयाकरणानां परम्परा।

पक्षान्तरे आवेरी-ग्रैसमैन-मैकडोनल इत्यादिनां पाश्चात्य विदुषां संगोष्ठी। उभयपण्डितानां विचारविश्लेषणेनैव अस्याः वैदिकभाषायाः स्वरूपमाधिक्येन स्पष्टो भवति। प्रबन्धेऽस्मिन् गमदादि कतिपय क्रियापदानां साधनं, भ्वाद्यादि गणानां संख्या, लकाराणामवस्थानमिति विषये उभयपण्डितानां सिद्धान्तः संक्षेपेण प्रदर्शितम्। ततः वैदिकसाहित्ये कृ धातोरवस्थानं विषये विस्तृततया आलोच्य क्रियापदनिर्वचने उभयोर्मध्येस्थितः सिद्धान्तस्य भेदः प्रदर्शितः।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IL-13

धातूनां विशिष्टार्थवृत्तिता

डॉ. गोपबन्धुमिश्रः, वाराणसी

पाणिनीये धातुपाठे 'कुर्द, खुर्द, गुर्द, गुद क्रीडायामेव' इति भ्वादिगणे चतुर्णाम् आत्मनेपदिनां धातूनामेतेषामर्थविवक्षायाम् 'एव' शब्दपाठात् क्रीडाऽतिरिक्तार्थेभ्यः धातोः क्रीडार्थे एव नियमनं क्रियते, तेन च धातूनामनेकार्थता महर्षिपाणिनिना अनुमतेति विपश्चितो वदन्ति। तेन कारणेन 'श्या (श्यैङ्) वृश्चिक' इति प्रयोगत्रये प्रथमद्वये क्रमशः द्रवमूर्त्तिः स्पर्शश्चेति अर्थद्वये, तृतीये च तदितरेऽर्थे गतौ धातोः प्रवृत्तिः भवति। एवमेव 'श्रृतं क्षीरं, श्रृतं हविः' इत्यत्र 'श्रा पाके' धातोः क्षीरहविषोः पाकेऽर्थे प्रयोगः, यवाग्वादेः पाके तु 'श्राण' इति क्तप्रत्ययान्तं रूपं दृश्यते।

अत्रेदं विचार्यं यत् यथा अनेकार्थवाचकस्य हर्यादिशब्दस्य संयोगविप्रयोगाद्यन्यतमकारणेन 'सशङ्खचक्रो हरिः' इत्यादौ विष्ण्वाद्यर्थे एव प्रयोगः नियम्यते, तद्वत् अनेकार्थेषु प्रसक्तेषु धातुषु विशिष्टार्थवृत्तितायै कः नियमः अनुसर्तव्य इति।

*

IL-14

षडर्थको शिक्षा

जयप्रकाश साहु, अमरावती (महाराष्ट्रम्)

'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' (ऋग्वेदः 1-63-5) इति प्रप्रथमं विश्वसाक्षरता आन्दोलनम् आदिग्रन्थे ऋग्वेदे उद्घोषितम्। शिक्षया एव विश्वसाक्षरता सम्पत्स्यते इति ऋग्वेदमन्त्रस्य फलितार्थः। सङ्गच्छते। वस्तुतः अस्माकं जीवनस्य सर्वासामपि समस्यानां समाधानार्थम् एको राजपथः शिक्षा वर्तते। पाशविकप्रवृत्तेः परित्यागः शिक्षा इत्यपि निरूप्यते। शब्दोऽयं शिक्षा इति संस्कृतस्य शिक्ष=विद्योपादाने (सि०कौ०भ्वादि० 605) इति धातुतः गृहीतो वर्तते। गुरोः सकाशात् विद्याध्ययनं ज्ञानप्राप्तिः च शिक्षार्थं परिप्रकाशयति। ऋग्वेदे महाभारतादि-ग्रन्थेषु च शिक्षाशब्दस्य प्रयोगः दरीदृश्यते। शिक्षाशब्दस्य विद्या ज्ञानमिति पर्यायपदानि भवन्ति। कस्यचिदपि वस्तुनो विषयस्य वा सम्यग्ज्ञानं अनुसारं द्वे विद्ये—परा अपरा च। परा आत्मज्ञानात्मिका श्रेष्ठा विद्या। चतुर्दशविद्यासु एषा वेदान्तसम्बद्धा। अपरे तु त्रयोदशविद्या अपरा। प्राक्कालात् अर्वाचीनकालं यावत् शिक्षायाः षोढा अर्थाः स्वीकृताः वर्तन्ते; यथा—(1) शाब्दिकार्थः, (2) तात्कालिकार्थः, (3) संकुचितार्थः, (4) व्यापकार्थः, (5) विश्लेषणात्मकार्थः, (6) वास्तविकार्थश्चेति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IL-15

सम्प्रदानत्व विचारः

डॉ. पूर्णिमा केलकर, रायपुर (छत्तीसगढ़)

सर्ववेद पारिषद हीदं शास्त्रम्। भगवता पाणिनिना लाघवपद्धतिमनुसृत्य सूत्रात्मकं व्याकरणं प्रणीतम्। अष्टसु अध्यायेषु विभक्तभिदं व्याकरणशास्त्रमष्टाध्यायीति नाम्ना विश्वस्मिन् विश्रुतम्। तत्र कारक प्रकरणेषु सम्प्रदानमवलम्ब्य तस्य कियान्वयित्वविषये विचार्य कारकत्वं साधितमस्मिन् शोधपत्रे।

आचार्य भर्तृहरिणा वाक्यपदीयस्य पदकाण्डे साधनसमुद्देश-प्रकरणे कारकत्वं नाम साधनत्वमिति प्रतिपादितम्। द्रव्य पर्याय साधनमिति पक्षे दोषापत्तिं वीक्ष्य साधनस्य द्रव्यपर्यायता खण्डिता। यथा— अयं घटः इत्यज्ञ घटे कर्तृत्वम्। घटं पश्य 'इत्यत्र कर्मत्वम्। घटेन जलमाहर' इति वाक्ये घटे करणत्वं प्रतीयते। तदेवं कारकाणां भिन्नत्वेऽपि द्रव्यं पुनस्तदेव। परोक्षे लिट् इति सूत्रे भाष्ये साधनस्य गुणसमुदायत्वं शक्तित्व वेति विचारद्वयमपि प्रस्तुतम्। राद्धान्ते साधनस्य बुद्धिस्थ व्यवहारत्व मुपस्थापितम्। तदुक्तम्—''साधनं व्यवहारश्च बुद्ध्यवस्थानिबन्धन'' (वा०प० पदकाण्डे-9) तथाहि सत्यपि वस्तुनि यावद् बुद्धया तस्य निरूपणं नास्ति, तावत् सोऽर्थः शब्दानामविषयोऽव्यवहार्यो भवति। व्यवहारेषु निरूपणात्मिका बुद्धिरेव प्रभवति। इदानीं 'स्वौजस् मौट्' इति विभक्ति विधान क्रमेषु चतुर्थ्यर्थं सम्प्रदानं विचारयितु मुपक्रमः। 'सम्यक् प्रदीयतेऽस्मैं' इति सम्प्रदानमिति व्युत्पत्या अन्वर्थसंज्ञेयम्। त्यागस्य अङ्गं सम्प्रदानमिति भावः। यद्यपि त्यागे अङ्गभूतः दातुः पाणिरपि भवितुं शक्यते। जलमपि त्यागस्य निमितमङ्ग वा जलं विना दानस्य सङ्कल्प एव न। तदेवं सम्प्रदानेऽतिव्याप्तिं निराकर्तुं पाणिनिना कर्मणा यर्माभप्रैति स सम्प्रदानमिति' (1.4.32) लक्षण कृतम्। अत्र सूत्रे 'कर्मणा' इति पदं दानक्रियायाः साधकतमत्वात् करणार्थ मतः तृतीयान्तम्। अतएव त्यज्यमानेन कर्मणा करण भूतेन कर्तुः त्यागोऽभीष्टः। यथा ''राजा विप्राय गां ददाति'' इति वाक्ये गामिति कर्मणः ददाति क्रियया सह सम्बन्धः। तथा च करण भूतेन गवासह विप्रं सम्बद्धुमिच्छति कर्ता। सूत्रार्थे करणभूतेन कर्मणा इत्यस्यायमेवार्थः।

*

IL-16

स्थान्यादेशयोर्वाचकत्वविमर्शः

डॉ. सुबोध शर्मा, रा.सं.सं., गरली परिसरे

वैयाकरणा हि मुख्यं वास्तवञ्च वाचकत्वमखण्डवाक्यस्फोटस्याङ्गीकुर्वन्ति। अन्ये स्फोटाः प्रकृतिप्रत्यया वा तस्यैव व्यञ्जकाः सहायका वा सन्ति। सर्वेऽपि प्रकृतिप्रत्ययविभागाः कल्पिता

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अवास्तवा वा भवन्ति, तथापि ते शास्त्रप्रक्रियानिर्वाहार्थं स्वीकृतः सन्ति। तत्र कल्पिते 'रामान्' 'भवन्ति' आदिपदेषु 'न्' 'अन्ति' आद्यादेशानां प्रयोगसमवायिनामेव वाचकत्वमुत आदेशस्मारितस्थानिनामित्यस्ति प्रकृतप्रबन्धस्य विवेचनीयो विषयः।

वैयाकरणा हि शास्त्रप्रक्रियानिर्वाहार्थमादेशानामेव वाचकत्वं स्वीकुर्वन्ति। अत्र प्रसंगे प्रधानप्रतिवादरूपेण नैयायिकाः प्रत्यतिष्ठन्ते। एतेषां मते आदेशस्मारितानां स्थानिनामेव वाचकत्वम्। तिबाद्योदेशानां बहुत्वेन तेषां वाचकल्पेऽनन्तशक्तेः कल्पना करणीया स्यात्। अतो लादीनां स्थानिनामेन वाचकत्वं लाघवात्।

नाना व्याकरणभेदात् स्थानिनामपि नानात्वमिति न लाघवमिति वैयाकरणाः। 'भूल्' इत्यतो बोध वारणाय भवतीति सममिव्याहारस्यावश्यं स्वीकरणीयतया ''तद्धेतोरेव तत्तवे किं तेन'' इति न्यायेनादेशानामेव वाचकत्वं स्वीकार्यमिति।

एवञ्च प्रकृतप्रबन्धे मुकितप्रमाणाभ्यामादेशानामेव वाचकत्वं स्थिरीकृतमस्ति। अवास्तवत्वेऽपि शास्त्रप्रक्रियानिर्वाहार्थं स्वीक्रियत एवैषः स्थानिवाचकत्व सिद्धान्त इति।

*

IL-17

प्रथमार्थविचारः

श्रीमती मनीषा पाठक, रायपुर (छत्तीसगढ़)

कारकरूपे विभक्त्यर्थे विचार्यमाणे तदनुषङ्गण प्रथमा—विभक्तिरपि विचार्यते। तद् विषये ''अभिहिते प्रथमा'' इति केषाञ्चिन् मतम् (महाभाष्ये 2.3.46) तिङादिभिरभिहिते कर्मादौ कारके प्रथमा। तिङादिभिरित्यस्य तिङकृत्-तद्धित-समासैरित्यर्थः। क्वचिन्नपातेनाप्यभिधानं भवति। तद्यथा—पच्यते ओदनः देवदत्तेन-इत्यादौ तिङा कर्मणोऽभिधानम्।

मांसपचनो विधिः—इत्यत्र मांसः पच्यते येनासौ मांसपचना इत्यर्थे ल्युटा करणाभिधानम्। गोघ्नोऽतिथिः इत्यत्र गां हनित असौ इति व्युत्पत्या क प्रत्ययेन सम्प्रदानाभिधानम्। प्रस्कन्दनः स्तम्भः—इत्यत्र प्रस्कन्दत्यस्मादिति व्युत्पतौ पञ्चम्यर्थे ल्युटा अपादानाभि- धानम्। निशाननी शाणा-इत्यत्र निशान्यते तीक्ष्णीक्रियतेऽस्यां शस्त्रादिकमिति अधिकरणे ल्युटा अधिकरणस्याभिधानम्। पचति देवदत्तः इत्यादौ कर्तरि तिङा कर्तुरभिधानम्।

कृवः कटः इत्यत्र कृता कर्माभिधानम्। औपगवः इत्यत्र तस्येदमित्यणा तद्धितेन सम्बन्धाभिधानम्। चित्रगुः इत्यादौ समासेनापि सम्बन्धस्याभिधानम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वस्तुतः अभिहित लक्षणायां प्रथमाया वृक्षः पर्वतः इत्यादौ क्रियारहिते पदमात्रे प्रयुक्ते तिङादि-भिरनभिहिते सति प्रथमा न प्राप्नोति। तत्र विधेया प्रथमा। तदत्र समाधीयते अस्ति र्भवन्तीपरः प्रथमपुरुषोऽप्रयुज्य-मानोऽप्यस्ति। वृक्षः इत्यादौ अपि क्रिया अस्ति। 'वृक्षः' इत्युक्ते अस्तीति गम्यते। पक्षेऽस्मिन् अन्यत्रानुप-पत्तिस्यात्। तद्यथा—'प्रासादे आस्ते' इत्यादौ प्रसीदत्यस्मिन्निति प्रासादः इति व्युत्पत्या सद् धातोः घञ् प्रत्यये प्रासादाख्य मधिकरणमभिहितम्। यद्यपि आस्ते इति तिङन्तेन अनभिधानं तथापि घञ् प्रत्ययेन अभिहितत्वात्, 'प्रासाद-पदे प्रथमा प्रवर्तेत।'

*

IL-18

शब्द ब्रह्म समीक्षा

पं० रामानुग्रह शर्मा, राँची (झारखण्डराज्यम्)

अनादि निधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्त्ततेऽर्थ भावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥ 1॥

शब्देष्वेवाश्रिता शक्ति विंश्वस्यास्य निबन्धिनी।
यन्नेत्र प्रतिभात्मयं भेदरूपो प्रतीयते॥ 2॥

न सोऽस्ति प्रत्ययो यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्ध मिवज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥ 3॥

एकः शब्दः सम्यक ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च काम धुक् भवतीत्यादिना यदेकं प्रक्रिया भेदेन बहुधा प्रविभज्यते। ''तद् व्याकरण मागम्य परब्रह्माधि गम्यते'' इत्यादि वाक्य पदीयात्। 'सिद्धेशब्दार्थ सम्बन्धे' इति वार्त्तिके सर्वशब्दानां घटत्वादिरूपा सत्योपाध्यवच्छिन्नं ब्रह्मैव वाच्यामिति कैयटाच्च प्रयोजन-मधिगम्यते।

साधु शब्द ज्ञान पूर्वक प्रयोग जन्य पुण्यवभात् ज्ञानक्रमेण महान्तं शब्दात्मानं सर्वेषामन्तरवस्थित साक्षात्कारेण स्वात्मतया अनुभवन् मोक्षं लभते। अथवा अन्तरवस्थितस्य शब्द स्वरूपस्य स्वात्मना सहाभेदम् तत्त्वज्ञ वर्णानुपूर्व्यापि क्रम विशिष्टे ज्ञानपूर्वकं तत् क्रम परिहारेण योगं निर्विकल्पक लब्ध्वा मोक्ष माप्नोति—इति दाशयः स्वपज्ञटीकायां वृवृतः।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IL-19

अधिकारसूत्रसमीक्षणम्

डॉ. भगवत् शरण शुक्लः, इलाहाबाद

''चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्याः बहुधा भिन्नाः'' (पस्पशाह्निकम्) इति महाभाष्यानुसारेण वेदानां व्याकरणज्योतिषनिरुक्तशिक्षाकल्पछन्दांसि षडङ्गानि सन्ति। तत्र षट्सु अङ्गेषु वेदमुखत्वाद् व्याकरणं प्रधानं वर्त्तते। तत्र किम् नाम व्याकरणमिति जिज्ञासायां पतञ्जलिः सूत्रं व्याकरणमिति पस्पशाह्निके साधितवान्। सूत्रयति—वेष्टयति स्वस्मिन्नखिलं प्रतिपाद्यतात्पर्यम् स्थापयति इति सूत्रम्। सूत्रवेष्टने धातोः पचाद्यचि सति सूत्रमितिशब्दो निष्पद्यते। व्याकरणसूत्रत्वं नाम अल्पाक्षरासंदिग्धसारवद्विश्वतोमुखास्तोभानवद्यविशेषणविशिष्टत्वे सति पाणिन्यादिमुनि विरचितत्त्वम्। तच्च सूत्रम् संज्ञापरिभाषाविधिनियमातिदेशाधिकारभेदेन षड्विधम्। एतेषु षड्विधसूत्रेषु अधिकारसूत्राणां भूमिका शब्दसाधुत्त्वप्रक्रियापरिज्ञानायातीव महत्त्वपूर्णा विद्यते। स्वकीयो-पदेशस्थलादुत्तरसूत्रेषु स्वरितेनाधिकारः ॥ 1/3/22॥ इति सूत्रव्यवस्थया स्वरितत्त्वप्रतिज्ञाबलात् स्वानुवृत्तिबोधन-मधिकारसूत्रप्रयोजनमस्ति। अधिकारत्वं नाम स्वोपदेशदेशे लक्ष्यसंस्कारकवाक्यार्थशून्यत्त्वे सति निषेधनियमाद्य-विषयत्त्वे सति उत्तरोत्तरसूत्रस्वार्थसमर्पकत्त्वे सति तत्तत्सूत्रैक्यवाक्यतया लक्ष्यधर्मिकसाधुत्व-प्रकारक बोधजनकत्त्वम्। स्वरूपदृष्ट्या अधिकारोऽयमनेकविधः—प्रत्ययः ॥ 3/1/1॥, विशेषणधिकारः—शेष॥ 4/2/92॥, स्थान्यधिकारः—एकः पूर्वपरयोः॥ 6/1/84॥, प्रकृत्यधिकारङ्याप्प्रातिपदिकात्॥ 4/1/1॥, निमित्ता- धिकारः—आर्धधातुके॥ 2/4/35॥, आदेशाधिकारः—अपदान्तस्य मूर्धन्यः॥ 8/3/55॥ इत्येवं रूपमस्ति। भाष्यकारेण षष्ठी स्थाने योगा॥ 1/1/48॥ इतिसूत्रेऽधिकारस्य त्रयो भेदाः पुनरपिकथिताः—प्रदीपवत्, रज्वाबद्ध-काष्ठवत्, अधिक्रियमाणानुच्चरितशब्दप्रतियोगोपस्थितिरूपकश्च।

*

IL-20

भाषासु संस्कृतस्य वैशिष्ट्यम्

पण्डित प्रताप चन्द्र शतपथी, ब्रह्मपुरम्

संस्कृतभाषा-संस्कृतिश्च परस्परजडिता। पृथिव्यां प्रतिष्ठितासु प्राचीनभाषासु संस्कृतभाषा अन्यतमा। ईयं भाषा संपूर्णा विज्ञनसम्मता, संस्कृतसाहित्यं सर्वप्राचीनमेव भवति, बहुकालात् संस्कृतभाषया वहवः ग्रन्था विरचिताः विश्वसाहित्य वाङ्मयः एतेन रुन्धिमन्तः वर्त्तते। भारतभूमौ रचितानामेताषा गौरववलेन विस्वंधमत्कृतं भवति। एतत् सत्यं यत्-वेदभूमि भारतवर्षे रचितानामेतादृसानां संस्कृत शास्त्राणां परिचयः विश्वं लभतेस्व, वहुदिनं यावत् तदगोरवं स्यादेव।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

परन्तु तदगौरवं विश्ववासिनां दृकपथं यावत् नागतं तावत् मूल्यहीनं भवति, संस्कृतसाहित्यस्य बहवः ग्रन्थाः विविध समयेषु विरचिताः॥

*

IL-21

ध्वनिः

पृभमदेव शास्त्री, शिमला

आचार्यआन्दवर्धनः सर्वान रस अलङ्कार-रीति-वक्रोक्ति औचित्यादीन् प्रबलोक्तिभि विखण्ड्य काव्यस्यात्माया क्रोडे ध्वनिं स्भापयति। अस्त्राचार्यस्यप्रयत्नै सम्भगतया प्रतीयते यत् ध्वनिं तत्त्वमेव कालस्य प्राणभूतं काव्यस्यात्मा भवितुं शक्यते। यन्ना काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधै समाम्नातपूर्वः। स कथयति प्रधानरूपेण कालस्य द्वौ अर्थौ भवतः वाच्यञ्च प्रतीयमानं। अत्र प्रतीयमानमर्थं काव्यं विशेष विधिना चमत्करोति। अतः तत प्रतीयमानमेवार्थं ध्वनिः कालं भवति। यथा प्रतीयमानं पुनरन्त्रदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकविनाम्। यत्तत प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु। पुनः प्रतीयमानमर्थं रस-अलङ्कार-वस्तु भेदेन त्रिविधं भवति। अतः रसध्वनिः, अलङ्कारध्वनि वस्तु ध्वनिः। ऐष त्रिषु रसध्वनिः विशिष्टा सन्ति। आनन्दवर्धनात् पूर्वमपि विद्वासः ध्वनिः तत्त्वं स्वीकुवन्ति परञ्च स्पष्टोदधोषणामनन्दवर्धनरेव करोति। ध्वनेः मूलाधारं स्फोटवादोऽस्ति। ''स्फुटयति अर्थः अस्मादिति स्फोटः।'' अनेन मतेन शब्दो नित्यः। आचार्य भर्तृहरिः। स्फोटमित्थं स्पष्टीकरोति। यथा—

यः संयोगविभागभ्यां करणैरूपजायते।
स स्फोटः शब्दजाश्शब्दाः ध्वनयोऽन्यैरुदाहृताः॥

*

IL-22

मूर्धन्यादेशविषये भाषावैज्ञानिकचिन्तम्

डॉ. अखिलेशश्वरप्रसादशुक्लः, गोण्डा

आधुनिकभाषातत्वविद्भिरपि मूर्धन्यादेशविषये बहुधा चिन्तितम्। तत् सर्वं 'ऋटुरषाणां मूर्धा' इति सिद्धान्तमनुसृत्योपबृंहितम्। तेन ऋकारः, टवर्णः, रेफः, षकारश्चेति ध्वनयः मूर्धन्याः भवन्ति। षकारटकारवर्गौ मूर्धन्याविति वेदे ऊहितम्। वस्तुतः आधुनिकाः भाषाशास्त्रिणः अस्त वर्गस्य ध्वनीनां कृते रिट्रोप्लेक्य (Retroplux) शब्दं प्रयुञ्जते। अस्य वर्गस्य ध्वनीनामुच्चारणे जिह्वायाअग्रभागः परावृत्य कमप्यंशं स्पृशति। भाषावैज्ञानिकास्तु ऋ, ॠ, ऌ इत्यादीनि पृथक्त्वे नानुमन्यन्ते। तेषां मते रलवर्गयोः संघटनकर्त्तार एव इमे ध्वनयः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

समकालीनं भाषाविज्ञानं समाजे प्रयुक्ते 'भाषाप्रयोगं' एव प्रमाणत्वेन स्वीकरोति। भाषावैज्ञानिकाः मन्यन्ते यत् ये ये मातृभाषाप्रयोक्तारः तेषां प्रयोगाः एव प्रमाणम्। अतः व्याकरणं भाषां नियन्त्रयति, परमत्रैव भाषाविज्ञानं यथातथा भाषाप्रयोगः प्राप्यते, तत्रैव प्रमाणरूपेण स्वीकरोति। अतः तमपि भाषाप्रयोक्तृणां स्वाभाविकप्रयोग इयनुचिन्तनम् आधुनिकानां भाषाचिन्तकानाम्।

निष्कर्षरूपेणेदं वक्तुंशक्यते यत् मूर्धन्यादेशविषय आधुनिकभाषाशास्त्रिणां यावन्तोपि विचाराः सन्ति ते विचाराः महर्षिपाणिनिविचारतः व्यतिरिक्ताः न सन्तीतिशम्।

*

IL-23

शब्दसाधुत्वम्

डॉ. रविशंकरपाण्डेयः, वाराणसी (उ०प्र०)

शब्दः कुतो प्रवर्तते? इत्यस्मिन् विषये उक्तं महाभाष्यकारेण लोकत एव। अथ तत्रैवोक्तं वहवः अपशब्दाः अल्पीयांसः साधुशब्दाः। यः शब्दं जानाति स अपशब्दान् अपि जानाति। विज्ञानं तत्र शरणम्। यद्यपि अर्थावबोधः अपशब्दादपि समानम् एव भवति किन्तु पुण्यजनकातावच्छेदकता न तत्र तिष्ठति। नैयायिकैरत्र उच्यते ईश्वरेच्छा तत्र न भवति। अत्रेदं विचारणीयं यदि ईश्वरः सकलस्य जगतः कर्त्ता तदा अपशब्दस्य कर्त्ता कः? शोधलेखोऽयम् एताः शङ्काः पर्यालोच्य निराकरोति।

*

IL-24

द्वन्द्वसमासे वृत्तिः

प्रो. राजीवरंजनसिंहः, वाराणसी (उ०प्र०)

बहूनां सुबन्तपदानां समसनं समासः। अत्र समासघटकानि पदानि स्वार्थं त्यजन्ती एकार्थीभावगतानि घटकभिन्नं नूतनं शब्दं निर्मान्ति। अयं नामशब्दः पुनः पदत्वलाभाय सुब् विभक्तिम् गृह्णाति, किन्तु द्वन्द्वसमास-स्थले इयं व्यवस्था किञ्चिद् भिन्नायते। तत्र इतरेतरयोगद्वन्द्वे रामकृष्णादौ स्थले घटकौ आश्रित्य द्विवचनमेव प्रवर्तते, न तु नूतने शब्दे एकवचनं प्रवर्तते; यत्तु बहुवृक्षग्रामः इति स्थले अनेकघटकसत्वेऽपि एकार्थीभावाद् एकवचनमेव भवति। इयं काचिद् विचित्रा स्थितिः अस्मिञ्छोधालेखे व्याक्रियते।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IL-25

धातूनां समानार्थकत्वं सम्भवति न वा

डॉ. दिगम्बरचन्द्रठाकुरः, वाराणसी (उ०प्र०)

शब्दमूलं धातुः। वहवः धातवः समानार्थका दृश्यन्ते। अथेदं विचारणीयं वर्तते यद् वस्तुतः तत्र समानार्थकत्वम् अस्ति न वा? यथा वद्-गद्-कथ् एते धातवः समानर्थका अवभासन्ते, किन्तु गद् अव्यक्तायां वाचि, वद् व्यक्तायां वाचि इत्यादि अर्थप्रकाशनेन तेषां परस्परं भेदः स्फुटीभवति। तथापि यत्र केवलं बहूनां धातूनां गत्यर्थः संकेतितः तत्र समानार्थत्वं विचारणीयम्। यथा मेदिनीकोशे ललाटे स्थित्वात् सर्वं तिलकमिति कथितम्। किन्तु टीकायाम् ऊर्ध्वपुण्ड-त्रिपुण्ड-बिन्दु इत्यादिभेदैः विभेदः कृतः तथैव फलव्यापारदृष्ट्या विचार्यते चेत् समानार्थका अपि धातवः भिन्नार्थकाः पर्यवस्यन्ति। एतेन वस्तुतः धातुषु समानार्थकत्वं न सम्भवति इति सिद्धम्। अयं लेखः अमुं विषयं सुप्रकाशयति।

❋

IL-26

उपपदविभक्तिविमर्शः

डॉ. अमरचन्द्रठाकुरः, वाराणसी (उ०प्र०)

क्रियाजनकत्वे सति क्रियान्वयित्वं कारकस्य प्रसिद्धम्। कारकस्य प्रत्यायनं सुब्विभक्त्या भवति, किन्तु न सर्वत्र सुब्विभक्तिः कारकमात्रं प्रत्यायति। कुत्रचिद् शब्दविशेषस्य संयोगेऽपि इयं प्रयुज्यते। तदा इयं उपपदविभक्तिनाम्ना ज्ञायते। अथ किमिदम् उपपदं? किं तत्र प्रवृत्तिनिमितम्? को वा विशेषः? इति सर्वे विषयाः लेखेऽस्मिन् परिशीलिलाः।

❋

IL-27

व्याकरणस्य-वेदाङ्गत्वम्

डॉ. सुनील कुमार झा, मधुबनी (बिहार)

व्याकरणस्य वेदाङ्गत्व विषये बहुविचारः कृतो विद्यते। ऋग्वेदकालत एव अस्माकं पूर्ववर्तिभिः ऋषिभिरत्र भाषायाः स्वरूपविज्ञानाय महान् यत्नोऽनुष्ठितः। तैर्यथावसरं भाषायाः परिरक्षणार्थं विभिन्नाः शाखाः प्रशाखाश्च समुद्घाटिताः। सरसु विभिन्नासु शाखासु व्याकरणशास्त्रस्य प्राधान्यं नैव तैर्व्ययोहितम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अतएव सरसु विभिन्नेषु-अङ्गेषु व्याकरणस्यैव प्रमुखं स्थानं संजातम्। वेदस्य यानि अङ्गानि सुप्रतिष्ठितानि सन्ति तेष शिक्षा, प्रातिशाख्यं, निरुक्तम्, एतत् त्रयमपि आगच्छिति। यद्यपि संहिता कारमोत्तरं व्याकरणस्य इमाः शाखाः ततः पृथङ् निर्दिष्टाः सन्ति। तथापि आसां शाखानाम् वस्तुतः व्याकरणे एव अन्तर्भावो भवतीति तासां शाखानम् अध्यनेन स्वरूपतः एव विज्ञातम् भवति। संहिता कालादनन्तरं व्याकरणान्तर्गतानां विभिन्नानां शाखानाम् स्वतंत्रतयाऽपि स्थितिः संजाताः। अतः पाणिनीयादि शिक्षासु यानि खलु वेदानां षडङ्गानि परिगणितानि तेषु व्याकरणं शिक्षा, निरुक्तः, पृथग् एव निर्दिष्टं दृश्यते।

*

IL-28

व्याकरणशास्त्रस्य प्रयोजनानि

डॉ. त्रिलोक झा, दरभङ्गा (बिहारः)

''प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते'' इति आर्षवचनानुसारेण महर्षिः पतञ्जलिनाऽपि महाभाष्ये व्याकरणशास्त्रस्य प्रयोजनमुक्तम्। तच्च त्रिविधं भवति। प्रथमं साक्षात्प्रयोजनम्, द्वितीयं मुख्यं प्रयोजनम्, तृतीयञ्च आनुषङ्गिका प्रयोजनानि। 'अथ शब्दानुशासनम्' इति वचनेन महाभाष्ये व्याकरणस्य साक्षात्प्रयोजनं प्रदर्शितम्। अनुशासनं नाम पश्चात् शासनम् अथवा अनुगतशासनमित्यर्थः। अर्थात् अनुशिष्यन्ते अपशब्देभ्यो विविच्य कथ्यन्ते शब्दाः अनेनेत्यनुशाससननामशास्त्रम्। 'रक्षोहागमनाध्वसन्देहाः'' इति वचनेन महाभाष्ये व्याकरणस्य मुख्यं प्रयोजनं प्रदर्शितम्।

तत्र वेदानां रक्षार्थं व्याकरण पठितव्यम्। उहः—न सर्वेलिङ्गर्न च सर्वाभिः विभक्तिभिर्वेदे मन्त्राः निगदिताः। ते च अवश्यं यज्ञगतेन पुरुषेण यथा यथं विपरिणमयितव्याः। तान् नावैयाकरणः शक्नोति यथायथं विपरिणमयितुम्। आगमो नाम आगम्यते बोध्यमतेऽर्थो। धर्मार्थकाममोक्ष- चतुष्टयरूपो। येन स आगमः। लध्वर्थम् इति ब्राह्मणेनावश्यं शब्दाज्ञेया इति। न च अन्तरेण व्याकरणं लघुनोपायेन शब्दाः शक्त्रा ज्ञातुम्। असंदेहार्थम्—याज्ञिकाः पठन्ति स्थूलपृषतीमाग्निवारुणीमनइवाहीमालभेतेति। तस्यां संदेहः स्थूलाचासौ पृषती च स्थूल पृषती, स्थूलानि पृषन्ति यस्याः सा स्थूलपृषतीति। तां नावैयाकरणः स्वरतोऽध्यवल्मति। यदि पूर्वपदप्रकृति स्वरत्वं ततो बहुव्रीहिः (पा०सू० 6.2.1) समासान्तोदातत्त्वं तत्स्तत्पुरुषः (पा०सू० 6.1.223)

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IL-29

सूत्राणां लक्षणानि

रामसेवक झा, दरभङ्गा (बिहार)

अपारं क्षेत्रं ज्ञानस्य। ज्ञानस्य विशालनिधेः संरक्षणाय सूत्रसाहित्यस्य प्रवृत्तिः सञ्जाता। एतत् क्रमे एव प्रायः सर्वेषु शास्त्रेषु सूत्रग्रन्थः उपलभ्यते। सूत्रे प्रतिपाद्यविषयस्य अल्पाक्षरेण सूचनं भवति। अतः **''सूचनात् सूत्रमित्युच्यते।''** अर्थात् अल्पाक्षरत्वे सति वह्वाभि बोधकत्वं सूत्रत्वम्। तत्र नामकरणं संज्ञा। संज्ञा सूत्रं यथा—''वृद्धिरादैच।'' अव्यवस्थायां सुव्यवस्था सम्पादकं सूत्रं परिभाषा। यथा—''आदेः परस्य।''

*

IL-30

व्याकरण शास्त्र के प्रमुख प्रयोजन

संजीव कुमार पाठक, जम्मू

''यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्'' जैसे आर्ष वाक्य से स्पष्ट है कि बिना व्याकरण के अध्ययन के व्यक्ति किसी भी शास्त्र में पारंगत नहीं हो सकता महर्षि पतञ्जलि के ''रक्षोहागमलध्वसंदेहाः प्रयोजनम्'' जैसे कथन के द्वारा रक्षा ऊह, आगम लघु और असन्देह को व्याकरण शास्त्र के प्रमुख प्रयोजनों में स्थान दिया गया है। रक्षा से महर्षि पतञ्जलि का आशय वेदों की रक्षा से है तथा उनका यह भी कहना है कि लोप, आगम और वर्ण विकार का ज्ञाता ही वेदों की रक्षा करने में समर्थ हो सकता है और लोपादि का ज्ञान बिना व्याकरण शास्त्र के अध्ययन के असम्भव है। ऊह से पतञ्जलि का तात्पर्य विभक्ति विपरणिाम तथा लिंगविपरिणाम से है क्योंकि मन्त्र सभी विभक्तियों में नहीं पढ़े जाते हैं इसी तरह आगम को भी वह व्याकरण शास्त्र के अध्ययन का प्रयोजन मानते हैं। जैसा कि ''षडंगोवेदाध्येयोज्ञेयश्च'' आर्ष वाक्य से स्पष्ट भी है। लघु का तात्पर्यार्थ महर्षि के मत में यह है कि व्याकरण ही लघुकाय हो सकता है जिसके द्वारा शब्द ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। एवं असन्देह का अर्थ है सन्देह का न होना इसके साथ-साथ महर्षि पतञ्जलि ने ''तेऽसुराः'' आदि तेरह प्रकार के व्याकरण शास्त्र के अवान्तर प्रयोजन भी गिनाये हैं जिनके द्वारा उन्होंने यह माना है कि बिना व्याकरण शास्त्र में गति हुये व्यक्ति लोक व्यवहार, भाषा प्रयोग, शब्द साधुत्व, यहाँ तक कि मोक्ष से भी वञ्चित रह सकता है। उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन शोधपत्र में विवेचित हैं।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IL-31

अष्टाध्यायी: कतिपय ऐतिहासिक तथ्य

डॉ. उषा किरण, राँची

आचार्य पाणिनि कृत महाग्रंथ ''अष्टाध्यायी'' न केवल भाषागत परम्परा और सर्वांगसम्पूर्ण वैज्ञानिक व्याकरणशास्त्र की दृष्टि से अपितु पाणिनिकालीन भारतवर्ष के सांस्कृति इतिहास की दृष्टि से भी एक उत्कृष्ट कालजयी रचना है। ''अष्टाध्यायी:'' कतिपय ''ऐतिहासिक तथ्य'' - शीर्षक यह शोध निबंध ''अष्टाध्यायी'' के दो सूत्रों पर आधारित है। ये सूत्र हैं—षष्ठ अध्याय दूसरे पाद का एक सौ बारहवाँ सूत्र ''कर्णो वर्ण लक्षणात्'' तथा षष्ठ अध्याय तृतीय पाद का एक सौ चौदहवाँ सूत्र ''कर्णे लक्षणस्याष्ट विष्टा-पञ्च-मणि-भिन्न-छिन्न-छिद्र-स्रुव-स्वास्तिकस्य।'' पहले सूत्र ''कर्णो वर्ण लक्षणात्'' का अर्थ है—रंग या लक्षणवाची शब्द पहले हो और कर्ण बाद में तो कर्ण का अन्य स्वर उदात्त होता है। जैसे—शुक्लवर्ण, दात्राकर्ण में। दूसरे सूत्र ''कर्णे लक्षणस्यादि'' का अर्थ है—लक्षणवाची शब्द पहले हो, कर्ण शब्द बाद में हो, तो पहले शब्द का अन्तिम स्वर दीर्घ हो जाता है। यदि विष्ट, अष्ट, पञ्च, मणि, भिन्न, छिन्न, छिद्र, स्रुव, स्वास्तिक—ये नौ लक्षणवाची शब्द पूर्व में हों, तो दीर्घ नहीं होता। आचार्य पाणिनि ने इन दो सूत्रों में गोधन (गायों, बैलों, पशुओं) के स्वामित्त्व की सूचना के लिए उनके शरीर या कान पर अंकित किये जाने वाले लक्षणों (चिन्हों) का विधान किया है। दोनों सूत्रों में ''लक्षण'' शब्द का उल्लेख है। लक्ष्यतेऽनेन-लक्ष् करणे ल्युट् ''लक्षण'' शब्द से सामान्यत: चिन्ह, निशान, पहचान, संकेत, अभिज्ञान, विशेषता या भेदबोधक चिन्ह का बोध होता है।

*

IL-32

महाभाष्य के सन्दर्भ में 'षष्ठी शेषे' (पा० 2.3.50) सूत्र का विवेचन

डॉ. भीमसिंह, कुरुक्षेत्र

सर्वप्रथम सूत्रस्थ 'शेष' शब्द के अर्थ को परिष्कृत करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि कर्म आदि कारकों के विद्यमान होते हुए भी उनकी विवक्षा न होना ही 'शेष' है और उसमें षष्ठी विभक्ति करने के लिए यह सूत्र है। इसके बाद प्रत्ययनियम और अर्थनियम इन दोनों ही पक्षों में 'शेष' ग्रहण की आवश्यकता बताकर अर्थनियमपक्ष में 'शेष' ग्रहण का प्रत्याख्यान कर दिया गया है। तत्पश्चात् 'राज्ञ: पुरुष:' इस प्रयोग की दृष्टि से प्रकृत सूत्र के यथास्थित स्वरूप में 'पुरुष' रूप विशेष्य में भी षष्ठी प्राप्त होने का दोष दिखाकर फिर उसे 'राजन्' रूप विशेषण द्वारा अभिहित मानते

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हुए इस दोष का समाधान किया गया है। वास्तव में यहाँ जो 'सम्बन्ध' रूप अर्थ है, वह प्रातिपादिक का अर्थ न होकर वाक्य का अर्थ है। अतः वहाँ स्वतः प्रथमा ही होगी, षष्ठी नहीं।

यहाँ यह कहना कि क्या कारण है कि 'पुरुष' शब्द के प्रयोग के बिना केवल 'राजन्' शब्द में तो 'सम्बन्ध' रूप अर्थ प्रतीत होता है तो इसका उत्तर है कि 'राजन्' शब्द के आगे षष्ठी विभक्ति का उच्चारण करने से उसका अर्थ गौण या विशेषण हो जाता है। इसी तरह यदि 'पुरुष' शब्द से परे भी षष्ठी का उच्चारण कर दिया जाए तो उससे भी वह विशेषण अर्थ निकल सकता है। यहाँ पुनः यह कहना कि जैसे—'राज्ञः पुरुषः' में पुरुष रूप 'स्व' के कारण राजा में स्वामित्व और वहाँ षष्ठी होती है इसी प्रकार 'पुरुष' में भी 'राजा' के स्वामित्व के कारण अपना स्वत्व है इसलिए वहाँ भी षष्ठी होनी चाहिए तो इसका उत्तर है कि गुणप्रधानभाव से युक्त 'राजन्' और 'पुरुष' इन दोनों की साझली 'राजन्' शब्द से उत्पन्न हुई षष्ठीविभक्ति से वह स्वस्वामिभावरूप 'सम्बन्ध' अर्थ अभिहित हो चुका है और वह 'सम्बन्ध' अर्थ एक ही है इसलिए राजनिष्ठ उक्त 'सम्बन्ध' अर्थ के उक्त हो जाने पर फिर पुरुषनिष्ठ सम्बन्ध अर्थ भी अभिहित हो जाएगा। फलतः ''उक्तार्थानामप्रयोगः'' इस न्यायानुसार 'पुरुष' शब्द से अलग षष्ठी नहीं होगी।

*

IL-33

वात्स्यवरदाचार्य कृत तत्त्वसार में वर्णित आदेश शब्द का विवेचन

डॉ. सुधा शुक्ला (लखनऊ)

भारतीय दर्शन परम्परा में वैष्णव धर्म और दर्शन का अपना एक महनीय स्थान है। इस दर्शन ने भारतीय दर्शन को एक नूतन स्थान प्रदत्त किया। तत्कालीन समाज में बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म के प्रति बढ़ते आकर्षण के कारण तथा अद्वैत वेदान्त के प्रवर्तक शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथां' सिद्धान्त के कारण जहाँ लोगों की धर्म के प्रति आस्था कम हो रही थी वहाँ वैष्णव धर्म और दर्शन ने लोगों को नये मूल्य प्रदान किये। इसके भक्ति एवम् प्रपत्ति के सिद्धान्त ने जन सामान्य में धर्म के प्रति अबाध आकर्षण उत्पन्न किया।

यद्यपि यह दर्शन रामानुजाचार्य से ही प्रसिद्ध है परन्तु इंसके उत्तरोत्तर विकास क्रम की वृद्धि करने वाले प्रारम्भिक आचार्य नाथमुनि, पुण्डरीकाक्ष, श्रीराम मिश्र, यामुनाचार्य इत्यादि हैं। रामानुजाचार्य के पश्चात् वात्स्यवरदाचार्य का विशिष्टाद्वैत दर्शन और श्रीवैष्णव सम्प्रदाय की श्रीवृद्धि में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वात्स्यवरद का जन्म 1165 ई० से 1275 ई० के मध्य माना गया है। वात्स्यवरदाचार्य के पिता का नाम देवराज था। वरदाचार्य को नित्यसुरि सुभद्र का अवतार बतलाया गया है। वरदाचार्य का जन्म क्योंकि भगवान विष्णु के आशीर्वाद से हुआ था इसलिए उनका नाम भी वरद रखा गया। वरदाचार्य का अपर नाम 'नडादूरअम्माल' से भी जाना जाता है।

वात्स्यवरदाचार्य बाल्यकाल से ही कुशाग्र बुद्धि थे। इसीलिए उन्होंने अपने पिता से, जो स्वयं एक आचार्य थे, प्रारम्भिक अवस्था से ही अक्षरादि का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। गुरुपरम्पराप्रभाव में उल्लेख है कि वात्स्यवरदाचार्य ने अपने पिता देवराज से मन्त्र-मन्त्रार्थों का उपदेश पाने के बाद श्री भाष्य का कालक्षेप करना प्रारम्भ किया। परन्तु वरदाचार्य के सामर्थ्य तथा उनको अपने विषय में पितृत्वाभिमान से निर्भयता को देखकर देवराज ने उनको विष्णुचित्त के पास जाकर विशेषार्थों के साथ श्रीभाष्य का कालक्षेप करने की आज्ञा दी और विष्णुचित्त ने वरदाचार्य को श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों में आक्षेप-समाधानपूर्वक सुप्रतिष्ठित करा दिया।

❋

IL-34

महाभाष्य के सन्दर्भ में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र पर विचार

ममता शर्मा

आचार्य पाणिनी ने प्रमुख रूप से समास के चार प्रकारों का उल्लेख किया है। अव्ययीभाव, तत्पुरुष, बहुव्रीहि और द्वन्द्व समास। 'चार्थे द्वन्द्वः' यह सूत्र 'द्वन्द्वसंज्ञा' का विधान करता है। इस सूत्र का अर्थ है कि 'च' के अर्थ में वर्तमान अनेक सुबन्तों का द्वन्द्व समास होता है

'समुच्चय' 'अन्वाचय' 'इतरेतरयोग' तथा 'समाहार' ये चार 'च' के अर्थ हैं। उनमें 'समुच्चय' और 'अन्वाचय' अर्थों में तो सामर्थ्य न होने से समास नहीं होता। केवल 'इतरेतरयोग' और 'समाहार' में ही समास होता है।

भाष्यकार 'च' के अर्थ में द्वन्द्व समास मानने पर दोष देते हुए कहते हैं कि 'च' के अर्थ में द्वन्द्व समास मानने पर अव्ययसंज्ञा सम्बन्धी दोष की प्राप्ति होगी। इसी प्रकार 'गामश्वं पुरुषं पशुम्' यहाँ 'च' शब्द का साक्षात् प्रयोग न होने पर भी 'च' का अर्थ विद्यमान है फलतः इस समाहार अर्थ वाले वाक्य में भी फिर द्वन्द्व समास प्राप्त होता है जो कि अनिष्ट है।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IL-35

पदविभाजन में उपसर्गों का स्थान

सुनीता तक्षक, कुरुक्षेत्र

संस्कृत भाषा का विश्लेषण करते समय अधिकांश भाषाशास्त्रियों ने संस्कृतशब्दराशि को चार भागों में वर्गीकृत किया है—नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। आचार्य यास्क ने निरुक्त शास्त्र की आधारशिला रखते हुए अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात—इन चार प्रकार की पदजातियों का निरूपण किया है। जितना भी समुदाय है, वह उपर्युक्त पद के चार विभागों में समाहित है और यास्क के व्याख्येय ग्रन्थ निघण्टु पदकोष का सम्पूर्ण पदसमूह भी इनसे व्यतिरिक्त नहीं है। पाणिनि अपने व्याकरण में साक्षात् रूप से सुबन्त और तिङन्त दो प्रकार के पद मानते हैं। इसके अतिरिक्त उपसर्ग और निपात को एक करके तीन पद माने जा सकते हैं, या फिर गति और कर्मप्रवचनीय को उपसर्ग और निपात से भिन्न मानकर पाँच या छह प्रकार का भी पदविभाग माना जा सकता है। पद की विभिन्नता होते हुए भी यास्क ने पदचतुष्टय को ही मान्यता दी है। ऋग्वेद प्रातिशाख्य में भी इसी वर्गीकरण के दर्शन होते हैं। —''नामाख्यातमुपसर्गो निपातश्चत्वार्याहुः पदजातानि शब्दाः'' अर्थात् शब्दस्वरूपवेत्ता वैयाकरण नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात इन चार प्रकार की पदजातियों का निरूपण करते हैं। इस प्रकार यास्क ने अपने पूर्वोक्त पदविभाग का ग्रहण वैयाकरणों से किया है। इसी कारण यास्क इन दोनों को एक मानने को तैयार नहीं हैं। इस प्रकार हम निष्कर्षरूप में कह सकते हैं कि आचार्य यास्क का पद-चतुष्टय का सिद्धान्त न केवल यास्ककाल में अपना औचित्य रखता था, अपितु आज भी उसका कोई विकल्प नहीं।

पूर्वोक्त पदचतुष्टय में उपसर्गों की स्थिति को प्रकाशित करना ही प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य है।

*

IL-36

हलबी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों का अर्थ वैज्ञानिक चिन्तन

डॉ. भावना श्रीवास्तव एवं श्रीमती सुनीता पटेल, भोपाल

भाषा की इस परम्परा में संस्कृत भाषा विश्व की प्राचीनतम भाषा है तथा समस्त भाषाओं की जननी होने के कारण संस्कृत शब्द के अर्थ परिवर्तन का अध्ययन अर्थविज्ञान की दृष्टि से और महत्वपूर्ण हो गया है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यहाँ मैं उल्लेख करना चाहूँगी कि संस्कृत भाषा का प्रयोग अन्य भाषाओं में है किन्तु साथ ही उसकी सम्बद्धता आर्य वर्ग की जनजातियों की शब्द सम्पदा में भी देखने को मिलती है। मैं अपने आलेख में छत्तीसगढ़ के बस्तर के हलबा आदिवासी की सम्पर्क विभाषा हलबी की और इंगित करना चाहती हूँ, जो मराठी, गौड़ी उड़िया, छत्तीसगढ़ी के मिश्रण से बनी है जिसमें संस्कृत शब्द भी प्रचुर संख्या में प्रयुक्त हुये हैं।

इन हलबी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों का अर्थ परिवर्तन ब्रील द्वारा प्रतिपादित अर्थपरिवर्तन के तीनों दिशाओं के आधार पर करें तो नवीन अर्थ का पहले अर्थ से विस्तृत होना, नवीन अर्थ का पहले अर्थ में संकुचित होना तथा नवीन अर्थ पहले से बिल्कुल पृथक होना। ये तीनो दिशायें हम बस्तर में रहने वाले हलबा जनजाति की हलबी बोली में देखेंगे तो हलबी शब्दों में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों में हमें अर्थ का विस्तार, अर्थ का संकोच तथा अर्थादेश इस प्रकार की तीन दिशायें दृष्टिगोचर होंगी।

इस प्रकार बस्तर की हलबी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों के अर्थ वैज्ञानिक चिन्तन कई रूपों में दृष्टिगोचर होते हैं।

*

IL-37

कारक-प्रक्रिया में कृदन्त प्रत्ययों का अध्ययन

डॉ. गुञ्जन गर्ग, भरतपुर (राजस्थान)

संस्कृत भाषा के वाक्यविन्यासात्मक पहलू को प्रभावित करने वाले कारक-विभक्ति सूत्र प्रमुख हैं। आचार्य पाणिनि ने श्रेष्ठ व्याकरणग्रन्थ अष्टाध्यायी के प्रथम और द्वितीय अध्यायों में कारक और विभक्ति से सम्बन्धित सूत्रों को निबद्ध किया है। कारकों (क्रियागत-सम्बन्ध) को अभिव्यक्त करने वाली विभक्ति कारक-विभक्ति और पदगत सम्बन्ध को अभिव्यक्त करने वाली विभक्ति उपपद-विभक्ति होती है। विभक्ति के इन दोनों रूपों में अनेक कृदन्त भी अपनी भूमिका निभाते हैं। और अपनी उपस्थिति से विभक्ति को पर्याप्त प्रभावित करते हैं। हमारे शोधपत्र का उद्देश्य कारक-विभक्तियों के सम्बन्ध में इन्हीं कृदन्तों की भूमिका का अवलोकन करना है। द्वितीया से लेकर सप्तमीपर्यन्त सभी विभक्तियों में इन कृदन्तों की उपस्थिति को हम देख सकते हैं। जैसे—तथायुक्तं चानीप्सितम् (1.4.50), कर्तृकरणयोस्तृतीया (2.3.18), क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः (2.3.14) भाववचनाश्च (2.3.15), अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहि युक्ते (2.3.29), यस्य च भावेन भावलक्षणम् (2.3.37) इत्यादि सूत्रों के प्रयोग में शतृ, क्त क्तवतु, तुमुन्, घञ् आदि प्रत्ययों के रूप में। किन्तु विशेष रूप

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

से षष्ठी विभक्ति के प्रसंग में कृदन्त विस्तृत रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। कारक-षष्ठी और उपपद-षष्ठी दोनों ही प्रक्रियाओं में अनेक सूत्रों से जुड़कर यह विभक्ति को प्रभावित करते हैं, जैसे—षष्ठयतसर्थप्रत्ययेन (2.3.30), एनपा द्वितीया (2.3.31), कर्तृकर्मणोः कृतिः (2.3.65), न लोकाव्यय-निष्ठाखलर्थतृनाम् (2.3.69) आदि अन्यान्य सूत्रों के प्रयोगों में शतृ, शानच्, ल्यप्, क्तवा, खल्, युच्, तृन् आदि प्रत्यय।

विभक्ति के दोनों ही रूपों कारक और उपपद में कृदन्तों की उपस्थिति, उनके कारण विभक्तियों में परिवर्तन का अध्ययन प्राप्त साहित्यिक उदाहरणों से करना ही इस शोध पत्र का प्रतिपाद्य विषय है।

*

IL-38

प्राचीन कालीन भारतीय आर्य भाषा एक अध्ययन

श्रीमती डॉ. पुष्पकरम्, मुजफ्फरपुर (बिहार)

भारतीय आर्यभाषा का महत्व संसार की सभी भाषाओं से अधिक है। इस महत्व का श्रेय प्रमुख रूप से संस्कृत भाषा को है। इसके महत्व के सभी प्रमुख कारण इस प्रकार है—विश्व की किसी भी अन्य प्राचीन भाषा का साहित्य इतना विस्तृत नहीं है और न ही इतना प्रामाणिक है। ग्रीक तथा लैटिन, यूरोप की इन दोनों प्राचीन भाषाओं का साहित्य मिलकर भी, मात्रा में संस्कृत-साहित्य से कम ही रहता है।

भारतीय आर्यभाषा की प्राचीनतम भाषा वैदिक भाषा का साहित्यिक ग्रन्थ 'ऋग्वेद' विश्व का प्राचीनतम साहित्य है।

यूरोप में संस्कृत भाषा के अध्ययन के साथ ही भाषा-विज्ञान को, एक विज्ञान के रूप में मान्यता प्राप्त हुई है। भारतीय आर्य भाषा का काल-विभाजन तीन भागों में विभाजित किया जाता है।

(क) प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ (प्रा० भा० आ०) 1500 ई० पू० से 500 ई० पू० तक।

(ख) मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएँ (म० भा० आ०) 500 ई० पू० से 1000 ई० तक।

(ग) आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ (आ० भा० आ०) 1000 ई० सन् से अब तक।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ 1500 ई०से 500 ई० पूर्व तक माना जाता है। वस्तुत: यह विवादस्पद का विषय है। इस वर्ग में भाषा के दो रूप उपलब्ध होते हैं (i) वैदिक या वैदिक संस्कृत (ii) संस्कृत या लौकिक संस्कृत वैदिक भाषा की ध्वनियाँ मूलयारोपीय ध्वनियों से कई बातों से भिन्न है—

मूलयारोपीय तीन मूल ह्रस्व स्वरों अ, ऐं, ऑ के स्थान पर वैदिक में केवल एक 'अ' ही मूल ह्रस्व स्वर शेष है। वैदिक ध्वनि-समूह में निम्नलिखित ध्वनियाँ है।

मूलस्वर, संयुक्त स्वर, कण्ठ्य, तालव्य, मूर्द्धन्य, दन्त, ओष्ठ्य, दन्तोष्ठ्य, अन्तस्थ, शुद्ध अनुनासिक अनुस्वार (ं) संघर्षी, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय

प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं के इतिहास को देखने से यह लगता है कि 5वीं ई०पू० जब 'पाणिनि' ने तत्कालिन बोलचाल की भाषा को नियमबद्ध किया था, उसके बाद ही भाषा का वह बोलीगत अर्थात् प्राकृत (स्वाभाविक) रूप 'संस्कृत' कहलाया। इस पत्र में प्राचीन कालीन भारतीय आर्य भाषा का एक ठोस एवं विस्तृत अध्ययन अपने लेख में प्रस्तुत किया जायेगा।

❋

IL-39

मृच्छकटिकम् में भाषाओं का स्वरूप

श्रीमती मञ्जू सचान, कानपुर

भाषाओं के प्रयोग की दृष्टि से **मृच्छकटिक** एक अद्वितीय रूपक है। प्राचीन भारतीय भाषाओं के तीन वर्ग हैं—संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश। प्राकृत-भाषायें मुख्य रूप से सात-वर्गों में विभक्त हैं—मागधी, अवन्तिका, प्राच्या, शौरसेनी, अर्धमागधी, वाह्लीकी और दाक्षिणात्या। अपभ्रंश भी सात-भागों में विभक्त है—शकारी, आभीरी, चाण्डाली, शाबरी, द्रावडी, उड्जा और ढक्की। प्राकृत को भाषा और अपभ्रंश को विभाषा कहते हैं।

मृच्छकटिकम् में सात प्रकार की भाषाओं और विभाषाओं का प्रयोग हुआ है। शौरसेनी, अवन्तिका, प्राच्या और मागधी प्राकृते हैं और शकारीं, चाण्डाली और ढक्की, ये तीन अपभ्रंश है। मुख्य-रूप से शौरसेनी और मागधी का प्रयोग इस प्रकरण-ग्रंथ में हुआ है। **शौरसेनी** का प्रयोग सूत्रधार, नटी, वसन्तसेना, मदनिका, रदनिका, चेटी, कर्णपूरक, धूता, शोधनक और श्रेष्ठी के द्वारा किया गया है। वीरक और चन्दनक के द्वारा **अवन्तिका** का प्रयोग हुआ है। विदूषक ने **प्राच्या** का प्रयोग किया है। **मागधी** का प्रयोग संवाहक, स्थावरक, कुंभीलक, वर्धमानक, रोहसेन के द्वारा किया

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गया है। शकार **शकारी** का प्रयोग करता है। चाण्डाल **चाण्डाली** का प्रयोग करते हैं। **मृच्छकटिकम्** में महाराष्ट्री का प्रयोग नहीं हुआ है। प्रकरण में प्रयुक्त भाषायें, **नाट्यशास्त्र** में प्राप्त प्राकृत-भाषाओं के नियमानुसार हैं।

मृच्छकटिकम् में **शौरसेनी** की एक पंक्ति प्रस्तुत है, जिसमें **सूत्रधार** के द्वारा शौरसेनी का प्रसङ्ग आया है—

हीमाणहे। ता कधं मए एव्वं सुसमिद्धाए उज्जइणीए
अह्मारिसजणजोगे ब्रम्ह्णो अण्णेसिदव्यो। एसो चारूदत्तस्य
मित्ते मित्तेओ इदो जेव्व आअच्छदि।

यहाँ पर **हीमाणहे विस्मयनिर्वेद** सूत्र से **आश्चर्यम्** के स्थान पर **हीमाणहे** हो गया है। इस निपात का प्रयोग आश्चर्य दिखाने के लिए किया है। **थोधः** सूत्र से थ को ध **कंध** बना। **एवस्य जेव्व** सूत्र से एव के स्थान पर **जेव्व** बना।

इस प्रकार से शोध-पत्र में **मृच्छकटिकम्** में प्रयुक्त भाषाओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया जायेगा।

❋

IL-40

सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनगत अव्ययीभावसमासविधायक सूत्र (3.1.26.30) : एक विवेचन

सुश्री ज्योतिः शर्मा, कुरुक्षेत्र

संस्कृत के अन्तिम वैयाकरण हैं—आचार्य हेमचन्द्र, जिनका व्याकरणग्रन्थ है—'सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासन'। यह पाणिनीय व्याकरण के समान आठ अध्यायों तथा बत्तीस पादों में विभक्त है। इसमें प्रथम सात अध्याय संस्कृत-शब्दानुशासन है तथा अष्टम अध्याय प्राकृत-शब्दानुशासन है। संस्कृत शब्दानुशासन चार भागों में विभाजित है—(i) चतुष्कवृत्ति (ii) आख्यातवृत्ति (iii) कृद्वृत्ति, (iv) तद्धितवृत्ति। प्रथम भाग में 'समासप्रकरण' वर्णित है।

प्रस्तुत शोधपत्र में हेमचन्द्र और पाणिनीय व्याकरण के अव्ययीभाव-समास के स्वरूप तथा सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन के अव्ययीभावसमासविधायक प्रथम पाँच सूत्रों का विवेचन प्रस्तुत है।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IL-41

हिन्दी में दीर्घ 'ई'कारांत पुलिंगवाची संज्ञाएँ—एक अध्ययन

सदाशिव खवाड़े

हिन्दी के व्याकरणग्रंथों एवं पाठ्यपुस्तकों में संज्ञाओं के लिंगविधान के क्रम में हमें बताया जाता है कि 'दीर्घ 'ई'कारांत संज्ञाएँ स्त्रीलिंग होती है।' अपवादस्वरूप कुछ संज्ञाओं, जैसे—घी, पानी, दही, मोती, जी आदि का उल्लेख किया जाता है। इससे यह धारणा बनती है कि हिन्दी में 'नियमत:' दीर्घ 'ई'कारांत संज्ञाएँ, स्त्रीलिंगवाची होती हैं और अपवाद बस गिने-चुने ही हैं। पर वस्तुत: ऐसा है नहीं।

इस आलेख के लेखक ने संक्षिप्त हिन्दी शब्दसार से ऐसे सैकड़ों शब्दों का संकलन किया है जो दीर्घ 'ई'कारान्त संज्ञाएँ होते हुए भी पुलिंगवाची हैं। सामान्य धारणा के विपरीत वे 'बस गिने-चुने' नहीं हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से अधिकांश संस्कृत मूल का है पर अन्य भाषाओं के शब्द भी इनमें हैं।

परिकल्पित आलेख में इनका विश्लेषण प्रस्तुत किया जाएगा।

*

IL-42

ओंकार से उद्भूत—व्याकरण

डॉ. अमरनाथ ठाकुर, सिवान

ओंकार तीन वर्णों का संघात है—अ, उ, म्। अन्त्य मकार सभी स्पर्श वर्णों की जननी है। मकार ईश-पुरुष का शक्तिस्थान है। इसी शक्ति स्थल से सभी चेतनाओं का समाष्टि रूप उत्तम पुरुष मकार की उत्पत्ति होती है। मकार से प्रकृति तत्त्व भकार का उद्भव होता है। भकार से बुद्धि-तत्त्व मकार का जन्म होता है। बकार से अहंकार तत्त्व फकार प्रस्फुटित होता है। फकार से मन: तत्त्व पकार प्रवर्तित होता है। पकार से श्रोत्रेन्द्रिय नकार नि:सृत होता है। तवर्ग ज्ञानेन्द्रिय का वाचक है। इसी प्रकार उल्टेक्रम में कर्मेन्द्रिय टवर्ग, पंचतन्मात्रावाचक चवर्ग और पंचमहाभूत वाचक कवर्ग प्रकट होता है। मकार से अनुस्वार का जन्म होता है। अनुस्वार और विसर्ग दो अयोगवाह वर्णों का व्याकरणिक संकेत मकार करता है। यह अनुस्वार विकल्प से होता है। सम्पूर्ण व्याकरण विभाषा, अन्यतरस्याम्, वा, बहुलं पद से वाच्य विकल्प के लालित्यमय आधार पर निर्मित है।

मूल स्वर तीन हैं। आद्यन्त के ग्रहण से मध्यवर्ती इकार का भी ग्रहण हो जाता है या

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ईषत्स्पृष्टता के कारण स्वर के निकष पर सर्वथा खड़ा नहीं उतरने के कारण छोड़ दिया गया है। दो स्वरों की उपस्थिति व्याकरण में स्वरों की सत्ता और प्रधानता द्योतित करती है। उदात्त अनुदात्त और स्वरित का संकेत मिलता है।

*

IL-43

समासान्तर्गत सामर्थ्य-विचार

डॉ. सुमन कुमारी, कुरुक्षेत्र

यद्यपि व्याकरण-शास्त्र में पाणिनि ने 'समास' संज्ञा-विधायक किसी सूत्र विशेष का स्पष्ट प्रवचन नहीं किया तथापि शब्दशास्त्र परम्परा में 'समसनं समासः'—यह परिभाषा प्रचलित है। इस परिभाषा के अनुसार अनेक पदों का संक्षिप्त होना अर्थात् एक पद हो जाना ही 'समास' कहलाता है। समास के स्वरूप को लेकर ही नाट्य शास्त्र की कारिका में कहा गया है कि नाम-पदों का विभक्ति-लोप इत्यादि होकर संक्षेप में एकार्थक पद को प्रस्तुत करना ही 'समास' है, जिसके तत्पुरुषादि छह भेद हैं।

समास आदि विधियों में पदों का प्रयोग होता है। इन पदों में सामर्थ्य का होना आवश्यक माना जाता है सामर्थ्य को व्याकरणशास्त्र में दो प्रकार का माना गया है। 1. व्यपेक्षा 2. एकार्थीभाव। इन दोनों सामर्थ्यों के पृथक्-पृथक् प्रयोजन हैं। इनमें से व्यपेक्षा सामर्थ्य विभक्ति-विधान के लिये है और एकार्थीभाव सामर्थ्य समास विधान के लिये।

पाणिनि के 'समर्थः पदविधिः' सूत्र में विद्यमान 'समर्थ' पद का अभिप्राय वैयाकरणों की दृष्टि में 'एकार्थीभाव' रूप सामर्थ्य ही है। एकार्थीभाव सामर्थ्य का अभिप्राय पृथक्-पृथक् पदों की अपनी-अपनी अर्थबोधकता को छोड़कर पद समुदाय की शक्ति से एक विशिष्ट अर्थ वाला हो जाना है।

विग्रह-वाक्य के अर्थ कथन में समासादि समर्थ होते हैं। दूसरे शब्द के अर्थ का कथन करना 'वृत्ति' कहलाता है। यथा—'राज्ञः पुरुषः' इस समस्तपद में पूर्वपद 'राज' उत्तरपद 'पुरुष' के अर्थका कथन करता है तथा उत्तरपद 'पुरुष' पूर्वपद 'राज' अर्थ को कहता है, किन्तु विग्रह-वाक्य 'राज्ञः पुरुषः' में 'राजन्' तथा 'पुरुष' शब्द केवल अपने-अपने अर्थ को ही कहते हैं। अतः विग्रह-वाक्य को वृत्ति नहीं माना जाता। वृत्ति को पाँच प्रकार का माना गया है—कृदन्त, तद्धितान्त, समास, एकशेष तथा सनाद्यन्त धातु। इन पाँचों वृत्तियों में एकार्थीभाव-सामर्थ्य माना गया है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IL-44

पाणिनीय तन्त्र में लिंग और वचन की व्यवस्था : एक समीक्षा

प्रोफेसर श्रीकृष्ण शर्मा, कुरुक्षेत्र

संस्कृत भाषा की रूपरचना का विश्लेषण करते समय यास्कप्रभृति प्राचीन भाषाविदों ने सम्पूर्ण शब्दराशि को नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात के रूप में चार श्रेणियों में व्यवस्थित किया है। 'नाम' शब्द से प्रख्यात पदों के साथ लिंग और वचन का प्रयोग अनिवार्य रूप से होता है। संस्कृत भाषा की यह विशेषता है कि इसमें आख्यात पद के साथ लिंग का प्रयोग नहीं होता, केवल वचन का ही निर्देश किया जाता है। शेष दो प्रकार के पद—उपसर्ग और निपात लिंग और वचन के बन्धन से मुक्त है।

नाम पद के साथ लिंग और वचन का प्रयोग लौकिक व्यवहार के आधार पर निश्चित किया जाता है और इस विषय में शास्त्र का कोई कठोर नियम नहीं है। शास्त्र केवल इतना ही नियमन करता है कि विशेष्य के लिंग और वचन का अनुसरण करके ही विशेषण पद में भी उसी लिंग और वचन का प्रयोग किया जाता है, वहाँ सामान्यतया नपुंसकलिंग और एक वचन का प्रयोग किया जाता है। लेकिन यह व्यवस्था उस समय बड़ी विचित्र प्रतीत होने लगती है, जब स्वयं पाणिनि भी अपने सूत्रों में इस प्रकार के नियम का अक्षरक्षः पालन नहीं करते और परिभाषाकार आचार्य 'सूत्रे लिंगवचनमतन्त्रम्' कह कर इस समस्या का समाधान करते हैं। इसी प्रकार के अन्य प्रसंगों के आलोक में ही प्रस्तुत शोधपत्र की विषयवस्तु उपस्थापित की जायेगी।

*

IL-45

वाक्य एक अखण्ड सत्ता

डॉ. शोभा रानी, होशियारपुर

मानवविचारों को बाह्यरूप में भाषा ही प्रकट करने का सामर्थ्य रखती है। और विचारों का आदान-प्रदान करने में सशक्त भाषा की मूल इकाई क्या है? इस विषय में प्राचीन काल के भारतीय मनीषियों का अभिमत वैदिक ग्रन्थों में संकेतित होता है। तैत्तिरीय संहिता का 'वाग्वैपराव्यव्याकृता----ऽवदत्' यह वचन सर्वप्रथम वाणी के अव्याकृत रूप की ओर संकेत करता है। जिससे यह ध्वनित होता है कि सर्वप्रथम वाणी अखण्ड थी, उसका कोई विभाग नहीं था। अखण्ड वाक्य ही भाषा की मूल इकाई था। ऋक् प्रातिशाख्य में भी संहिता का लक्षण करते हुए 'पदप्रकृतिः संहिता'

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कह कर इस इस विषय पर प्रकाश डाला गया है। इस में 'पदप्रकृतिः' पद के वृत्ति भेद से दो अर्थ होने के कारण दो मतों का उद्गम हुआ। एक अखण्डवाक्यवादी का, और दूसरा सखण्ड वाक्यवाणी का।

इस प्रकार व्यवहार की मूलभूत इकाई वाक्यविषयक दो सिद्धान्त मुख्यतः सामने आते हैं—

(1) वाक्य को अखण्ड इकाई मानने वाला वाद

(2) पद को भाषा की मूल इकाई मानने वाला वाद

*

IL-46

क्त्वार्थ-विवेचन

('समानकतृकयोः पूर्वकाले' सूत्र के सन्दर्भ में)

डॉ. अरविन्दकुमार, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में 3.4.18-22; 24; 59-64 सूत्रों के द्वारा 'क्त्वा' प्रत्यय का विधान किया है। इस शोध-पत्र में केवल 'समानकतृकयोः पूर्वकाले' (अष्टा०, 3.2.21) सूत्र द्वारा विहित 'क्त्वा' प्रत्यय के अर्थ का विवेचन करना इष्ट है।

उपर्युक्त सूत्र के अनुसार एक ही कर्ता के द्वारा किये जाने वाले व्यापारों में से पूर्वकालिक व्यापार के वाचक धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय होता है। यथा—'देवदत्तो भुक्त्वा व्रजति' स्थल में 'भोजन' एवं 'व्रजन' व्यापारों का कर्ता एक (देवदत्त) ही है तथा पूर्वकालिक व्यापार 'भोजन' है, अतः भोजनक्रियावाचक भुज् से 'क्त्वा' प्रत्यय प्रयुक्त हुआ है। प्रकृत सूत्र में 'समानकर्तृकयोः' पद में प्रयुक्त द्विवचन अविवक्षित है अर्थात् 'स्नात्वा भुक्त्वा पीत्वा व्रजति' जैसे वाक्य में एककर्तृक 'स्नान' आदि चार व्यापारों के रहने पर भी पूर्वकालिक 'स्नान', 'भोजन' तथा 'पान' व्यापारों के वाचक 'स्ना' (ष्णा) आदि धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय प्रयुक्त हो सकता है।

प्रकृत-सूत्र-विहित 'क्त्वा' प्रत्यय का अर्थ 'भाव' अर्थात् साध्यावस्था की क्रिया है। यह 'भाव' अर्थ प्रकृतिभूत धातु से ही लभ्य है, अतः 'क्त्वा' प्रतयय धात्वर्थ 'भाव' अर्थात् साध्य व्यापार का अनुवादक ही होता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि क्त्वा-प्रत्यय-विधायक प्रकृत सूत्र 'धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः' (3.4.1) सूत्र के अधिकार में पठित है। इस अधिकार-सूत्र के अनुसार 'क्त्वा' आदि प्रत्यय धात्वर्थों (व्यापारों) के विशेषणविशष्यभाव सम्बन्ध में प्रयुक्त होते हैं। 'भुक्त्वा' आदि क्त्वान्त पद

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

के प्रकृतिभूत 'भुज्' आदि धातु का वाच्यार्थ 'व्रजन' आदि व्यापार (विशेष्य) के प्रति विशेषण होता है। विशेषणभूत तथा विशेष्यभूत इन व्यापारों में 'सामानाधिकरण्य' (एकाश्रयवृत्तित्व अथवा एककर्तृत्व) और 'पूर्वोत्तरभाव' (पूर्वकालवृत्तित्व तथा उत्तरकालवृत्तित्व का समुदाय) नाम सम्बन्ध होते हैं। 'क्त्वा' प्रत्यय उक्त सम्बन्धों का द्योतक होता है।

❋

IL-47

भारतीय भाषा विज्ञान

खेमराज शास्त्री, जम्मू

मानवीय क्रियाओं की भित्ति भाषा पर ही आधारित है और भाषा मूलतः एक संस्कार है जिसे हम पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश से सहजता क्षमता एवं क्रिया द्वारा अर्जित करते हैं, परम्परा द्वारा यह पुष्ठ होती है तथा संस्कृति की सहजता से मुखर हो उठती है। अतैव भाषा भाव सम्प्रेषण न केवल स्थूल साधन ही है अपितु किसी भी राष्ट्र की संस्कृति को युगों तक अक्षुण रहने का हेतु भी है और इसी कारण वह सांस्कृतिक व्यापार के साथ-साथ संस्कृति का चिंहक भी है। वस्तुतः राष्ट्रिय समता की पहचान की केन्द्रबिन्दु यही भाषा जा राष्ट्रभाषा के रूप में जानी जाती है।

भाषा शब्द संस्कृत ने 'भाष्' (भाष्+गुरोश्चहल+लप्=आ) से निश्पन्न है इसका अर्थ है—व्यक्त वाणि भाष् व्यक्तायां वाचि का प्रयोग धातु पाठ में आचार्य पाणिनी ने इसी आशय के साथ किया है देखा जाए तो व्यक्त वाणी का अर्थ है स्पष्ट एवं पूर्ण अभिव्यञ्जना तथा यह केवल उच्चरित तथा वाचिक भाषा के द्वारा ही सम्भव है। यह सूक्ष्मातिसूक्ष्म अर्थों के बोधक अन्ततः ध्वनि संकेत है।

इसलिए भाषा मनुष्य की वाचक भाषा के लिए ही संगत है। भाव-बोधन के अन्य माध्यमों के लिए नहीं। और यदि इसके लिए भाषा का प्रयोग होता है तो गौण अर्थ में ही। यद्यपि सामान्यार्थ में भाष का प्रयोग प्रायः सम्वाद सम्प्रेषण अथवा विचार विनिमय के माध्यम के लिए किया जाता है।

प्रस्तुत शोध पत्र में भाषा की इन्हीं सूक्ष्माति सूक्ष्म केन्द्रबिन्दुओं को उजागर करने का स्तुत्य प्रयास किया है।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IL-48

आचार्य काशकृत्स्न और उनका शब्दानुशासन : एक विश्लेषणात्मक परिचय

रविन्द्र कुमारी, कुरुक्षेत्र

व्याकरणशास्त्र के प्रवचन की परम्परा ब्रह्मा, बृहस्पति, इन्द्र, भरद्वाज आदि के समय से ही प्रवर्तित मानी जाती है। आचार्य पाणिनि ने स्वाष्टक में भारद्वाज आदि दश आचार्यों का उल्लखपूर्वक स्मरण किया है। पाणिनि से पूर्व भी व्याकरणशास्त्र के अनेक प्रखर आचार्य हुए थे, जिनका उल्लेख पाणिनि ने स्वाष्टक में नहीं किया। जैसे—शिव, महेश्वर, बृहस्पति, इन्द्र, भागुरि, चारायण, पौष्करादि, काशकृत्स्न, शन्तनु, शौनकि इत्यादि। पाणिनि से पूर्ववर्ती इन आचार्यों में आचार्य काशकृत्स्न प्रमुख आचार्य थे। अनेक स्थानों पर काशकृत्स्न एवं उनके व्याकरण का उल्लेख मिलता है। चन्नवीरकविकृत कन्नड़ भाषा में निबद्ध काशकृत्स्न धातुपाठ की व्याख्या उपलब्ध होती है। कन्नड़ में काशकृत्स्न व्याकरण के लगभग 142 सूत्र काशकृत्स्नीय व्याकरण की सत्ता को स्वीकार करवाते हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में आचार्य काशकृत्स्न और उनके शब्दानुशासन के विषय में एक विश्लेषणात्मक परिचय प्रस्तुत किया गया है।

*

IL-49

पाणिनीयव्याकरण में बहिरङ्ग और अन्तरङ्गशास्त्र की स्थिति : एक विवेचन

संजीव कुमार, कुरुक्षेत्र

पाणिनि के पूर्व या समकालीन विद्वानों के समक्ष एक समस्या थी कि शब्दाल्पत्व में बंधे हुए सूत्रों का निर्दुष्ट अर्थ किस प्रकार प्रस्तुत किया जाए? इसके समाधान हेतु विभिन्न व्याकरण-सम्प्रदायों में कुछ विशिष्ट नियमों की कल्पना की गई। इस प्रकार किसी-किसी नामरूप (शब्दरूप) की प्रक्रियात्मक विवेचना के विषय में उत्पन्न शंकाओं के निवारण के लिए भी कुछ नियमों की कल्पना की गई। इस प्रकार के विशिष्ट नियम व्याकरण जगत् में 'परिभाषा' नाम से व्याख्यात हुए।

शब्दों की प्रक्रियात्मक विवेचना के प्रसङ्ग में अनेक कार्य समकाल में एक साथ उपस्थित हो जाते हैं। किन्तु एक साथ दो कार्यों की प्रवृत्ति नहीं हा सकती। अत: किसी व्याकरण-सम्बन्धी नियम द्वारा एक की प्रवृत्ति एवं दूसरे की अप्रवृत्ति करवा दी जाती है। इस प्रकार के प्रसङ्गों के

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लिए ही व्याकरणशास्त्र में पूर्व, पर, नित्य, अन्तरङ्ग, बहिरङ्ग, उत्सर्ग, अपवाद इत्यादि पारिभाषिक शब्दों का प्रणयन हुआ। जब किसी शब्द की प्रक्रियात्मक विवेचना के प्रसङ्ग में अन्तरङ्गकार्य एवं बहिरङ्गकार्य की समकाल में प्राप्ति हो जाती है तो यह सन्देह होता है कि इन दोनों में से कौन-सा कार्य किया जाये ? इस समस्या के निराकरण के लिए परिभाषाकार आचार्य 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' इस परिभाषा को प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में परिभाषा का अर्थ, परिभाषा का आशय, अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग शब्दों का विस्तृत अर्थ, परिभाषा का ज्ञापक, परिभाषा की प्रवृत्ति एवं अप्रवृत्ति इत्यादि विषयों का विवेचन किया गया है।

❋

IL-50

सारस्वत व्याकरण में तद्धित प्रत्यय अण्, इञ्, वतु, मतु

अजय कौशिक, कुरुक्षेत्र

वेदपुरुष के छह अंग विद्वानों द्वारा अङ्गीकार किये गये हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दः तथा ज्योतिष। इन सभी अङ्गों में व्याकरण-शास्त्र वेदपुरुष का मुख होने के कारण प्रधान माना जाता है। अद्यतन पृथिवी पर उपलब्ध सम्पूर्ण व्याकरणों में संस्कृत व्याकरण को ही युक्ति-युक्त, प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक माना जाता है। बृहस्पति से प्रारम्भ हुई व्याकरणशास्त्रों की परम्परा अत्यन्त पुष्पित एवं पल्लवित हुई। आज हमें प्रायः 85 वैयाकरणों का उल्लेख प्राप्त होता है। इन सभी आचार्यों के व्याकरणशास्त्रों में शब्द की रचना, अर्थतत्त्व एवम् उसके साधु प्रयोग की मीमांसा के विषय में गहन चिन्तन किया गया है। सम्प्रति महर्षि पाणिनि की अष्टाध्यायी ही संस्कृत व्याकरणशास्त्र का आधार स्तम्भ मानी जाती है। महर्षि पाणिनि के पश्चात् प्रायः 1250 ई० के आसपास नरेन्द्राचार्य एवम् अनुभूतिस्वरूपाचार्य ने सारस्वत-व्याकरण की रचना की। इन्होंने पाणिनि की पद्धति एवम् उनकी कृति का अनुसरण करते हुए ही व्याकरणशास्त्र की रचना की।

नाम, सर्वनाम, संख्यावाचक शब्द तथा अव्ययों से नये शब्द बनाने के लिए जो प्रत्यय जोड़े जाते है, पाणिनीय व्याकरण के समान इन्होंने भी उनके लिए तद्धित संज्ञा का प्रयोग किया। इस शोध पत्र में अण्, इञ्, वतु और मतु इन चार तद्धित प्रत्ययों के विषय में सारस्वत-व्याकरण के अनुसार चिन्तन किया गया।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IL-51

'युवोरनाकौ' इत्येतत्सूत्रस्य समीक्षणम्

पुष्पा दीक्षित, बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

अष्टाध्यायी में लाघव के लिये पहिले लकार, फिर लकारों के स्थान पर तिङ् और तिङ् के स्थान पर अन्य आदेश किये गये हैं। ये सारे प्रत्ययादेश तृतीयाध्याय के चतुर्थपाद में 'लस्य 3.4.77' के अधिकार में विहित हैं। लकार के अलावा अन्य प्रत्ययों के स्थान पर होने वाले प्रत्ययादेश सप्तमाध्याय के प्रथम पाद में 'युवोरनाकौ 7.1.1' से लेकर 'इदन्तो मसि 7.1.46' तक हैं। परन्तु ध्यातव्य है कि सप्तमाध्याय में 6.4.1 से 'अङ्गस्य' का अधिकार आ रहा है। अतः इनमें वे ही प्रत्ययादेश होना चाहिये, जो अङ्ग से सम्बद्ध प्रत्ययों के स्थान पर होते हों। इस दृष्टि से हम 'युवोरनाकौ' सूत्र का विचार करें। यदि 'युवोरनाकौ' से होने वाले 'अन' और 'अक' आदेश किसी प्रत्यय के परे होने पर नहीं होते हैं, तो इस सूत्र को अङ्गाधिकार के भीतर रखने का क्या औचित्य है? इसका भाष्य की दृष्टि से विचार इस प्रकार है-----'युवोरनाकौ' यह षष्ठ्यन्त 'अङ्गस्य' के साथ इसका अन्वय होने से अर्थ होगा—यु वु शब्दान्त जो अङ्ग, उसे 'अन' और 'अक' आदेश होते हैं। ऐसा अर्थ होने पर नन्द् + यु, और कृ + वु, यहाँ अन, अक आदेश नहीं हो सकेंगे, क्योंकि ये यु, वु, अङ्ग नहीं हैं। इसलिये भाष्यकार कहते हैं कि हम यु, वु शब्दों को अङ्ग का विशेषण न बनाकर, अङ्ग का विशेषण न बनाकर, अङ्ग को यु, वु शब्दों का विशेषण बना लेंगे। अतः यु, वु शब्दान्त जो अङ्ग, उसे 'अन' और 'अक' आदेश होते हैं, ऐसा न कहकर हम 'अङ्गस्य' में सम्बन्धसामान्य में षष्ठी मानकर यह कहेंगे कि 'अङ्गस्य युवोरनाकौ भवतः।' ऐसा अर्थ करने से हम अङ्ग औ यु, वु में निमित्तनिमित्तभाव सम्बन्ध मान लेंगे और अङ्ग के निमित्त जो यु, वु उन्हें 'अन' और 'अक' आदेश कर सकेंगे।

*

IL-52

॥ पाणिनये नमः॥

असिद्धवदत्राभात् - एक समीक्षण

अभिजित् दीक्षित, बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

अष्टाध्यायी में असिद्धवदत्राभात् यह षष्ठाध्याय के चतुर्थ पाद का बाईसवाँ सूत्र है। यहाँ से असिद्धवत् का अधिकार पादान्त तक जाता है। षत्त्वतुकोरसिद्धः में असिद्ध शब्द अभेद सम्बन्ध को

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बताता है, यथा राजाऽयं, ब्राह्मणोऽयम्। किन्तु यहाँ उपमान उपमेय के भेद की विवक्षा करके प्रतिपत्ति लाघव के लिये वति प्रत्यय से निर्देश किया गया है ताकि अतिदिष्ट कार्य के साथ किया जा सके। अतिदेश का यह स्वभाव होता है कि उसमें अतिदिश्यमान धर्म के अविरुद्ध स्वाश्रय कार्य की निवृत्ति नहीं होती। जैसे ब्राह्मणवदयं क्षत्रियः कहने पर ब्राह्मण्य के अविरुद्ध मद्यपानादि की तो निवृत्ति होती है किन्तु क्षत्रिय के अविरुद्ध युद्धादि की निवृत्ति नहीं होती है।

असिद्धवत् होने से सूत्रों की प्रवृत्ति दो प्रकार से होती है—आदेशलक्षणप्रतिषेधार्थमुत्सर्गलक्षण-भावार्थञ्च। आदेशलक्षणप्रतिषेधार्थ से तात्पर्य यह है कि एक सूत्र के हो जाने के बाद दूसरे सूत्र से प्राप्त होने वाला कार्य नहीं होता है, यथा आगहि में अनुनासिक लोप हो जाने पर तथा जहि में जभाव होने पर अतो हे : सूत्र से जो हि का लोप प्राप्त होता है, वह अनुनासिक लोप और जभाव के असिद्ध होने के कारण नहीं होता है। इसी प्रकार गतं, गतवान् में अनुनासिक लोप हो जाने के बाद जो अतो लोपः से अत् का लोप प्राप्त होता है वह भी अनुनासिक लोप के असिद्ध होने के कारण नहीं होता है।

दूसरे प्रकार की प्रवृत्ति है उत्सर्गलक्षणभावार्थ अर्थात् एक आभीय कार्य के हो जाने पर जो दूसरा आभीयकार्य प्राप्त नहीं है, वह पहिले कार्य के असिद्धवत् हो जाने के कारण हो जाता है, जैसे एधि, शाधि में अस्ति, शास्ति को झल्लक्षण धित्व प्राप्त नहीं था वह आभीय कार्य असिद्ध होने के कारण हो जाता है।

*

IL-53

डोगरी महाकाव्य में प्रयुक्त तत्सम तद्भव शब्दावली

सरिता खजरिया, जम्मू

उत्तर भारत में बोली जाने वाली लगभग सभी भाषाओं का उद्गम संस्कृत से हुआ है। उद्भव और विकास की दृष्टि से हर प्रादेशिक भाषा अपनी पूर्वज या दूसरी भाषा के शब्दों को साथ लेकर चलती है। इनमें से कुछ शब्दों को उस रूप में ग्रहण कर लेती है और कुछ शब्दों को उस भाषा के स्वभावानुसार परिवर्तन करके प्रयोग किया जाता है। इस परिवर्तन में उनका मूल अर्थ तो नहीं बदलता पर कुछ सीमा तक उनके रूप में परिवर्तन हो जाता है। अन्य भाषाओं की तरह डोगरी भाषा ने भी उन्नति के मार्ग की ओर अग्रसर होते हुए इसने अपने कई शब्दों को संस्कृत से लिया है। जिन्हें हम दो भागों में बाँट सकते हैं। तत्सम और तद्भव।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तत्सम शब्द—डोगरी में आने वाले संस्कृत के वह शब्द जिनका प्रयोग बिना किसी परिवर्तन के संस्कृत के समान ही होता है जैसे—क्षमा, अगाध, घातक, त्रास, नेह, विरह, संताप, नीर, वाणी, विवेक, भूमि, विधि, संयम, दाह, तम, दंभ द्वार देह जिज्ञासा आरम्भ प्रलय आदि।

तद्भव शब्द—संस्कृत के वह मूल शब्द जिन्हें डोगरी भाषा की व्यवस्था या आवश्यकतानुसार उनके रूप को परिवर्तित करके प्रयोग किया गया। जैसे वृद्ध-विरद, प्रलय-प्रलै षडयन्त्र-खड़जैंतर, सूक्ष्म-सूखम, लक्षण-लक्खन।

*

IL-54

शतकत्रय का भाषाशास्त्रीय वैशिष्ट्य

श्री मृत्युंजय कुमार, भागलपुर

महाकवि भर्तृहरि ने श्रृंगार-नीति-वैराग्यशतक की रचना की है, जो 'शतकत्रय' के नाम से विख्यात है। व्याकरणसम्मत प्रभूत प्रयोग के कारण शतकत्रय में सर्वत्र भाषाशास्त्रीय वैशिष्ट्य दिखाई पड़ता है। लगभग 325 श्लोकों से युक्त शतकत्रय में सुबन्त प्रतययान्तर्गत कृदन्त-तद्धित-समाज-स्त्री प्रत्यय एवं सर्वनामों को संकलित किया गया है। इसमें लगभग 234 कृदन्त प्रत्यय का प्रयोग किया गया है। जिसमें अच्, क, क्त, क्तिन्, घञ् ड, ल्युट्, शतृ आदि का बहुल प्रयोग है, तो अटन् अतच्, उकन् कपन् आदि 12 प्रत्ययों को द्विधा प्रयोग है तथा अठन्, अत्रन्, अयट्, इकन्, कमश्च् आदि का एकधा ही प्रयोग है। प्रायः भाषा में कृदन्त की बहुलता सर्वत्र दिखाई पड़ती है, फलतः शतकत्रय भी इससे वंचित नहीं है। कुछ कृदन्त प्रत्ययों के उदाहरण निम्न प्रकार है—

अधर - नञ् + धृ + अच् - शृं - 25, 48, 51, 53, 60, 68, वै. 46.

कुल - कुल् + क - शृं - 24, 29, 60, नी. 9, 42, वै. 2.

अमृतम् - नञ् + मृ + क्त - शृं - 40, 49, 96, 99 नी. 22, वै. 46.

रतिम् - रम् + क्तिन् - नी. 78, वै. 40, 63, 64,

मानः - मन् + घञ् - शृं - 57, 78, नी. 31, वै. 33, 59.

धात्र्याम् - धा + ष्ट्रल् - शृं - 81.

कृदन्त के बाद सुबन्त नाम पद निर्माण कार्य में द्वितीय आवश्यक प्रत्यय तद्धित होता है, जिसमें कवि में लगभग 78 प्रत्ययों को प्रयुक्त किया है। इनमें अण् इनि, तल्, ष्यञ् आदि की बहुलता है। जो निम्न प्रकार संक्षिप्त रूप में विवृत है—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शैल - शिला + अण् - शृं - 84, नी. 39, 66.

करि - कर + इनि - वै. 16, 46, 72.

अवलिप्तता - अवलिप्त + तल् - नी. 54.

आत्मसात् - आत्म + सात् - वै. 83.

इह - इदम् + ह - शृं - 27, 39, 56, नी. 18, 39, 101, वै. 53, 57.

महाकवि ने समासों का भी बहुल प्रयोग है। जिसमें षष्ठी तत्पुरुष का सर्वाधिक प्रयोग है। इसके अतिरिक्त अव्ययीभाव, द्विगु, द्वन्द्व, बहुब्रीहि आदि का भी प्रयोग है।

*

IL-55

पाणिनिव्याकरण में इष्टिवचन

दिनेश चन्द्र शर्मा, बरेली (उ०प्र०)

संस्कृत की अनेक व्याकरणपरम्पराओं में पाणिनीय व्याकरणपरम्परा का अष्टाध्यायी प्रमुख ग्रन्थ है। अष्टाध्यायी में लौकिक और वैदिक शब्दों की साधुता और असाधुता का प्रतिपादन प्रकृति को ध्यान में रखकर प्रत्ययों का विधान करके किया है। परन्तु पाणिनि ने जिन व्याकरण शास्त्रीय नियमों अथवा सूत्रों की रचना की है वे तदुत्तरवर्ती काल में कुछ मात्रा में अपर्याप्त समझे जाने लगे। समाज में भाषा की जो स्थिति होती है वह नदी के प्रवाह की भाँति है। उसमें शनैः शनैः परिवर्तन होता है, वह क्लिष्टता से सरलता की ओर मन्द गति से अग्रसर होती है। अतः जब व्यवहारकाल में समाज में अनेक नवीन शब्दों का प्रादुर्भाव होता चला गया तथा दूसरी भाषाओं से अनेक शब्दों का ग्रहण हुआ। तब पाणिनिपरम्परा के आचार्यों ने भी एतद्विषयक प्रश्न के समाधान के लिये पाणिनिसूत्रों से भिन्न कुछ नवीन नियमों की रचना करने की आवश्यकता अनुभव की। परिणामस्वरूप, कालान्तर में विद्यमान समस्त शब्दों की साधुता का यथासम्भव प्रयास यद्यपि पाणिनिसूत्रों के द्वारा ही किया गया, परन्तु कुछ ऐसे अनेक असमाध्य लोक प्रचलित शब्द देखे गये जिनके लिये नवीन नियमों की उत्तरोत्तर रचना की गयी। इसीलिये पाणिनि के कुछ सूत्रों की चरितार्थता को ध्यान में रखते हुये सूत्रों में उक्त, अनुक्त अथवा दो बार अथवा बारम्बार उक्त शब्दों अथवा पदों के विषय में सर्वप्रथम आचार्य कात्यायन ने चिन्तन-मनन किया और इसके समाधान हेतु अपेक्षित सूत्रों पर नियम बनाये गये जो वार्त्तिक के रूप में प्रसिद्ध हैं। परन्तु जब सूत्रों और वार्त्तिकों के द्वारा भी जो शब्द असाध्य रह गये उनकी पूर्णता हेतु कात्यायन के पश्चात् पतञ्जलि ने विस्तृत व्याख्या के रूप

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri Foundation USA

में एक ग्रन्थ लिखा जिसे महाभाष्य कहा जाता है। यद्यपि महाभाष्य में सम्पूर्ण पाणिनिसूत्रों का अभाव है तथापि कात्यायन वार्त्तिको के विषय में यही एक मात्र साधन है। पाणिनि-कात्यायन के द्वारा अदृष्ट अथवा असमाधित शब्दों की साधुता सिद्ध होती है। इन नियमों को व्याकरण की दृष्टि से 'इष्टि' अथवा 'इष्टिवचन' कहा जाता है।

*

IL-56

Treatment of Compound Consonants In Aryan Languages

Prof. (Dr.) Sharda Chaturvedi, Varanasi

The treatment of compound consonants involves some curious considerations on the subject of the power of articulation possessed by the human organs of speech in ancient and modern times. Sanskrit in this respect resembles all the early languages of its family, in as much as it is rich in combinatins of consonants in group of two, three and even occasionally four, without any intervening vowel. We find the same state of things in the Semitic family also, the Hebrew, which stands second in point of antiquity, is less addicted to this practice, having several contrivances, such as Shiva, for avoiding too great an accumulation of consonants, while in the Arabic to use Renan's expression, ''the consonants swim in a sea of vowels''; comparing Aramaic forms, such as *ktalt, ktaln, mektlan, khnun*, with the Hebrew *kĕtaltâ, katalnâ inkiâlanâ, nakhnu*, the gradual increase of vowels is clearly seen. This instance is adduced merely as an illustration of what is meant by the power of articulation. To utter a series of consonants, each of which requires a separate contact, without allowing any vowel to intervene, is an effort of the organs of speech which can only be accomplished when those organs are vigorous and strong. Thus we find the Dravidians of the south of India unable to pronounce Sanskrit words containing a compound consonant without the insertion of one or more vowels. For instance, in Tamil, *istiri* = Skt. *stri*, *tânam* =Skt. *sthânam*, *kiruttinam*= krishna, appirayosana = aprayojana, tatuva = tatwa. ''The languages of the Indo-European class are fond of combining clashing consonants and welding them into one syllable by sheer force of enunciation, not only of the Indo European languages, but of the races by which languages are spoken. On the other hand, the Dravidian family of languages aims at ease and softness of enunciation rather than impressiveness: multiplying vowels, separating, assimilating differences of sound,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

and lengthening out its words by successive agglutinations; it illustrates the characteristics of the races by which it is spoken by the soft, sweet, garrulous effeminacy of its utterances.'' Within the domain of the Indo-European family, there are many degrees of power in this respect. In the highest grade are to be placed the old Aryan, Latin and old German. In the next Zend, which is a degree weaker than Sanskrit; Greek, which can bear less consonant-clashing than Latin; and Slavonic, which interpolates vowels with greater frequency than Teutonic. Weakest of all are the modern Romance language and the Indian Prakrits.

❋

IL-57

The Vṛttisūtra Controversy : A Possible solution

Mrs. Nalini Prava Dash

The word *Vārttika* (*vt*) has been derived from the nominal stem *vṛtti* with the addition of the suffix *thak*. The Nyāsa commentary on Kāśikā (*Vṛtti* on Pāṇini (P)'s *sūtra* 2.4.5) explains a *vt* as *vṛttim adhita iti vārttikam*. According to the Padamañjarī of Haradatta, a *vt* is described as *vṛttau sādhu vārttikam. Vṛtti* has been defined in manifold ways. Incidentally, in the *Mahābhāṣya* (*Mbh*) of Patañjali (*Samarthāhnika* under vt. 23 : *luptākhyāneṣu ca*) a treatise named *Vṛttisūtra* has been referred to S.D. Joshi opines that by the term *Vṛttisūtra* Patañjali refers to P's *Aṣṭādhyāyī*. This he supports by the evidence from the *Mbh* itself (*Mbh* on *vt* 18 on P.2.2.24). Nāgeśa interprets *Vṛttisūtra* as *Vṛttiyuktaṁ sūtram* ''a rule provided with a gloss''. This allows us to make two conjectures First, there was a vṛtti text on P's *Aṣṭ* even before Kātyāyana (Kāt). The opinion of Kielhorn in this regard is worth mentioning. He says: ''As for Kātyāyana, he must have known commentaries on Pāṇini, because in many cases his criticisms don't concern Pāṇini's rule but the explanation given by a *vṛtti* on the rule under discussion''. Secondly, Kāt's vt-s must have been written on the basis of a *vṛtti*, if *vt*-s are explained as *vṛtter vyākhyānam*. With such conditions only, one may accept that *Vṛttisutra* refers to P's *Aṣṭ*. This paper makes an attempt to discuss in detail the opinions of the traditional as well as modern scholars on *Vṛtti* and *Vṛttisūtra* and presents some possible solutions to that controversy.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IL-58

Scope of the Pāṇiṇian rule "anabhihite"2.3.1

Reeta Bhattacharya, Birati, Kolkata

"*Abhidhana*" in Sanskrit has a twofold meaning. Firstly, it means the act of denoting and secondly, does such a word as denoting something. Some times it happens that a verb suffix, or a *kṛt*-suffix, or a compound, or a *taddhita*-suffix denotes a particular case or *kāraka*. There is no sense in conveying something that has already being conveyed. It is approved by our common sense, which is transferred in the form of the dictum "*uktārthānāmaprayogaḥ*". Granted that a grammarian is a theoretician par excellence. But theoreticians or critical examiners should not dishonour what has been recognized by the universal common sense or common experience. Here lies the implication of the Pāṇinian rule '*anabhihite*'. When a *kāraka* is denoted by means of a *tiṅ* etc., there is no need of conveying it further with the help of a particular case-ending. Let us consider the passive voice statement '*sevyate Hariḥ*". Here Hari, the object of worshiping has been denoted by the verb-suffix of *tiṅ* (reduce to "*te*" in the *ātmanepada*); so there is no use of adding the second case ending to convey the same object. Similarly when in the active voice one says "*Hariṁ sevate devadattaḥ*", the nominative agent is denoted by the *tiṅ* suffix. So there is no meaning in inserting a third case-ending for conveying the same agent. That is why the rules like *kartṛ-karaṇayos-tṛtīyā* (2.3.18) or *karmaṇi dvitīyā* (2.3.2) fall under the *adhikāra sūtra* "*anabhihite*", by name.

"*Adhikara*" is a governing rule, which, being united with different rules following it and falling under its jurisdiction, determines their respective scopes. The same applies to the rule "*anabhihite*". It differentiates between rules under it, from the rule '*prātipadikārthe liṅgaparimāṇavacanamātre prathama*'. When an object etc. have not been already denoted, there is the scope of the rules like "*kartṛkaraṇayostṛtīyā*". But when on the other hand, it is denoted by *tiṅ* etc. only a first case ending, conveying nothing but the stem or he *prātipadika* alone is allowed to be applied. This distinction has been tersely brought out by none other than a Pāṇinian of the Bengal school, named Puruṣottamadeva.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IL-59

Some Linguistic Concepts of Saussure and Panineeyam

Dr. E.N. Narayanam, Kerala

According to the linguistic system of *Panini* (*Pannineeyam- Sutra, Vartika, Bhashyam*) sound sense and their relation are eteranal as told in Mahabhashya- ''*Sidhe Sabdarthsambandhe*''. Here the eternity has the nature of Absolute (*Kootasthanityata*) and the streamline (*Pravahnityata*). Diachronic and Synchronic system of concepts of Saussure based on time can be referred here.

According to Panineeya Sutra *Svam Roopam Sabdasyasabdasamjna* system of sound can be ascribed to sensual sound The system of Sign of Saussure can be studied comparatively

In chapter 3 of Vakyapadeeya, *Sambandha samuddesha*, detailed study of sound, sense and their relation can be seen. *Sambandha*, ie, Relation is intended for *Shashthi Vibhakti* where Saussure has done his research work.

Taking all these to account some concepts of Saussure and *Panineeyam* seems to be similar.

*

IL-60

Bhartṛhari's approach to Vākya-śakti

Dr. Gayatri Rath, Vanivihar

'Śakti' -the term has a varied interpretation given by Rhetoricians Mimāṁsakas, *Pracīna-Naiyāyikas, Navya-Naiyāyikas* & the Grammarians in the context of *śabdārthasaṁbandha*. Rhetoricians accept the *śabda* and *artha* as the *śarīra* of *kāvya*. They told about the three types of *śabda-śakti* for understanding the meaning of word (*arthāvabodha*) i.e. a) *abhidhā* b) *lakṣaṇā*, c) *vyañjanā*. These are otherwise called as *vṛtti* i.e. the expressive relation of a word with its meaning.

According to Nyāya School the *vṛtti* is divided into two categories namely *śakti* and *lakṣaṇā*. Both grammarians and *Naiyāyikas* used the term *śakti* in the sense of *abhidhā śakti. Śakti* is the primary relation and *lakṣaṇa* is the secondary

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

relation between the word and its meaning. In oter words these primary and secondary relations are commonly known by the term *vṛtti*. The grammarians also accept *vṛtti* as a relation between word and its meaning which generates verbal understanding (*śabdabodha*). For them *vṛtti* is of three types- a) *abhidhā*, b) *lakṣaṇa*, c) *vyañjanā*. Actually the *abhidhā śakti* when starts functioning is extended to other two i.e. *lakṣaṇā* and *vyañjanā vṛtti*.

*

IL-61

Linguistics Analysis of Mahanaya Prakaska

Dr. Satyabhama Rajdan, Kashmir

Mahanayapraskash is a versified composition of Rajanaka Shitikanth, a shavatantric poet of Kashmir. Mahanayapraskash comprises of 14 udays or chapters having 95 verses in all. Its languae is Apabhransha purely of Sanskritic orgin which has evolved from Paishaci Prakrit. According to Shitikanth he has composed Mahanayaprakasha in deshbhasa which, according to him, was spoken and understood by every person of this region : अषोचितरुचितां नुतिं सर्वगोचरमा देशभाषया विरचमितुमाह।

Though the Scholars of Kashmiri language and Literature have fixed its time as 13th century A.D. but in the light of its vocabulary, phonological, morphological and other linguistics pecularities, I assume that Mahanayaprakash must have been composed during 7th-8th century A.D. However, this paper will throw light on the historical developmet of the phonological and Mrphological pecularities of Mahanayyaprakash.

*

IL-62

Critical Analysis of Grammarians' Adhyāsa : A Word-Meaning Relation

Raghbir Singh, Hoshiarpur

Whenever a word is spoken three things viz. its own form, its meaning and speakers intention, invariably strike in the mind of listener. It is possible in case we

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

accept a definite and permanent relation between word and meaning. Bhartṛhari expressively recognised natural fitness (yogyatā) and causality (kāryakānaṇabhāva) between word and meaning as the two main relations which are two of the eight topics considered to form the subject-matter of Vākyapadīya (I.24-25). However, Puṇyarāja, the commentator of Vākyapadīya, irrevocably states that natural fitness or expressed-expression (Vācyavācakabhāva) relation is the view of Mīmāṁsakās, the relation causality is suitable to the philosophy of Buddhist and for Naiyāyikās the relation between word and meaning is sign or convention (Saṅketa). According to him for Grammarians, who advocate the indivisible sentence as the smallest unit of language and pratibhā as its meaning, superimposition (adhyāsa) is the relation betwen word and meaning. (VP.II. 1-2). Culling the cues from theworks of Pāṇini, Patañjali, etc. we shall endevour here to present that undoubtedly, for Grammarians superimposition is the only relation between word and meaning in ultimate reality, but at the same time they do give due recognition to the relations of natural fitness and causality at secondary level.

*

IL-63

On Yama in Sanskrit Phonetics

Girish K Jha, Patna

Yama is one of the complicated sounds which have not been transcribed in script but it is listened due to articulatory features. It is a transition-sound intervening between a non-nasal stop and a following nasal as a counterpart of the former non-nasal. There are various controversial views regarding its nature, number, place and organ of articulation, etc. This paper aims to resolve this disputed sound, discussing different view points in the light of Indian and western commentators' observations.

Rk-Pratisakhya(1.10) defines that the non-nasal stops, before following nasals, become their own twins- that is to say, each becomes a pair of twins of its own nature. Here we find the original stop being one of the pair, and its nasal counterpart the other. The latter is called the Yama and is declared to be similar to its original (Prakrti); e.g. (1) palik nirit (R.V.5.2.4); (2) parig man (R.V.4.43.6), etc. Taittiriya Pratisakhya (21.12.-13) states that after a non-nasal stop, when followed by a nasal, nose-sounds (nasikya) are inserted in each several case. Vajasaneyi-Pratisakhya

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(4.160) calls it (yama) viccheda, 'seperation', and defines it that within a word, a non-nasal before a nasal suffers separation. It is understood, a separation or division of itself into two parts, which are as twins to one-another. In addition, yamas have been stated to be nose-sounds (V.P.1.74) and formed by the root of the nose.

Right from the Rk-Pratisakhya to the siddhanta-kaumudi it is learnt that the yama (the latter augment sound) is the counterpart of the original one. Dispute arises as to various considerations such as its nature, number, place and organ, etc.

The Atharvaveda Pratisakhya (Caturadhyayika) seems more explicit, stating that after a non-nasal and before a nasal stop, in the same word, the insertion of yamas is made, suited to each case. It clearly declares nasikyas (nose-sounds) to be articulated by nose and anunasikas (nasal sounds) by both mouth and nose. Whitney has discussed yamas in both texts the TP and Ath.P. seriously and upheld only the view of Ath. P. but is seen confused in Ath.P. by rendering the nasikyas as nasals. As far as the number of yamas is concerned, R.P. nowhere indicates it, but the commentator Uvata says that these are twenty in the view of Bahvrca school; however are only four in nature.

In conclusion, we do find that yama sound is acitually an augment (agama), which, in the specific position of combination, is listened due to articulatory features. There are a few vedic sounds such as svarabhakti etc which are not written in script. The very reason may be the script of these sounds were obsolete in far olden times. As far as its place of articulation is concerned, it seems logical to consider it as produced by nose only. Finally, the dispute remains as unresolved regarding its number as ever.

❋

IL-64

Pen Names of Women Vachana Writers

Dr. Rajeshwari Maheshwaraiah, Dharwad

The religion that brought revolution in social sphere with the target of social up-liftment along with self elevation is Vi:rashaivism. The ŚaraNa:s of this religion in the twelfth century in Karnataka endeavoured to bring the doctrines of Vi:rashaivism through Vachana:s to the common man. They expressed themselves through a simple and fascinating language of vachanas.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Innumerable ŚivaŚraNes were also engaged themeselves in literary activities at that time to such an extent that the world has never witnessed such a poetic panorama before. Nearly thirty three ŚaraNes were engrossed in Poetic compostion in Kannada. perhaps this seems to be unique in the history of the world that such a large number of women writers came forward to express themselves through poetry. The proved that woman can create exquisite literature. In the present article an attempt has been made to analyze the pen names of these ŚivaŚaraNes linguistically. Such a study may reveal the believes, aims and objectives of the age to a great extent.

*

IL-65

Russell and Sabara on Meaning

Bhupesh Sarma

The realistic approach towrds philosophy of language, as well as meaning is such that words refer. But the referent needs not always be something like physical object; it may even be a concept, a law and so on. The problem of meaning which is central to the philosophy of language has been approached in the above mentioned style by English Philosopher Bertrand Russell on 20th Century. In Indian realistic tradition in Pūrva-Mīmāmsā, Sabara held that even when word refers to thing for its meaning, it infact refers to some form which is universal and this universal form constitutes meaning. These two views of Russell and Sabara are very close although Sabara is ancient but Russell is contemporary. Therefore a comparative study of the two views has been attempted.

*

IL-66

Sanskrit Matri Bhashi -s (S M D-s) in Jammu and Kshmir vis-a-Vis other states of our country

Jitedra Kumar Tripathi, Lucknow

Linguists all over the country are cautious and worried and are studing reasons and conditions about the rapid extinction of various minority language groups and their scripts. If any, in the present condition. Thanks to those, who

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

earlier deciphered different scripts and brought to light the treasures of history, language and literature, particularly in our country. To day persons knowing Sharada script, prevalent in Kashmir earlier, has become rare. Long-back,some scholars, though erronceously interpreted, declared Sanskrit as a "dead" language. Not with stanging the political and social invasions, a very infinitesimal number could still maintain Sanskrit as a living language. In spite of the odds suffered, the followers of Hebrew could successfully revive their linguistic status.

Now awareness about of Sanskrit amongst the non-traditional classes has, no doubt, gained ground, its use as mother tongue and the study of its this aspect, still awaits their efforts, survival of which can not be done by the outsiders, unless, instead of shifting to some other language as mother tongue due to social, political or economic reasons, they stick to themselves.

In this context the condition of Sanskrit as mother-tongue in Jammu and Kashmir deserves special attention, as traditionally it has been the seat of Sanskrit learning as well.

Teaching/studying Sanskrit as a foreign language, in India or abroad, one thing but teaching/studying it as a mother-tongue, through different prevalent scripts in varous parts of the country along with their regional local language is another aspect.

The statistical census data of the Jammu and Kashmir state, speaks about the almost compete annihilation of S M B-s. The protection of these two or three persons enumerated by the government ought to be found out and efforts be made to trace more if any for survival.

*

IL-67

Apasabdavicara

Malhar Kulkarni, Mumbai

The term apasabda occurs as early as in the Mahabhasya of Patanjali Bhartrhari uses this term as well. The later commentators try to define this term. Bhattoji is explicit about the meaning of this term.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

In the present paper, an attempt is made to delineate this concept with the help of a manuscript called ''Apasabdavicara''.

*

IL-68

Treatment of कित्-ङित् प्रकरण (P.1.2.1.26) in the Post-Pāṇinian Systems of Sanskrit Grammar

Narayan Prasad, Pune

Based on the present author's ''Concordance of Nine Sanskrit Grammars'', a comparative study of the Treatment of कित्-ङित् प्रकरण **(P.1.2.1.26) in the Post-Pāṇinian Systems of Sanskrit Grammar** is presented. The nine grammars considered are पाणिनि, कातन्त्र, चान्द्र, both recensions of जैनेन्द्र grammar (with महावृत्ति and लघुवृत्ति or शब्दार्णवचन्द्रिका), शाकटायन, भोज, हेमचन्द्र and मलयगिरि. Comparison of the sūtras of these grammars indicates that different systems may be classified into two groups. The first group consists of कातन्त्र, चान्द्र and भोज grammars that discard this प्रकरण completely, whereas the remaining systems constitute the second group, which retain it.

The चान्द्र and भोज grammars, following कातन्त्र, prescribe the rules of गुणवृद्धि-प्रतिषेध, सम्प्रसारण, नकारलोप, इत्त्व, ईत्त्व, उत्त्व, अल्लोप, अल्लोप etc directly in the respective contexts instead of making extension (अतिदेश) and prohibtion (निषेध) rules for कित्-ङित् and later merging all these grammatical operations under क्ङिति, किति or ङिति. Regarding the application of P.1.2.4 to actual grammatical operations, the context may have to do with only अपित् शित्, or only अपित् तिङ्; or both, or only those *pratyayas* which actually have ङ्- marker in उपदेशावस्था itself. Which one is meant is more explicit in case of the first group of grammars, esp. चान्द्र and भोज. The part असंयोगात् of P.1.2.5 has been eliminated by all the systems of the first group by directly enumerating thedhātus concerned in the proper context. The part ''क्त्वा च''of P.1.2.22 ''पूङः क्त्वा च''has been rejected by all the Post-Pāṇinian systems, the part पूङ् being incorporated in the sūtra parallel to P.1.2.19 itself.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IL-69

Role of Sanskrit in the evolution of Malayalam language

Dr. Naduvattom Goplakrishnan, Thiruvananthapuram

Two literary genres exist in Keralabhāṣa namely Pāṭṭu and Maṇipravālam which clearly prove the influence of Tamil and Sanskrit. Modern Malayalam language is a combination of this two geners. The evolution of Malayalam as an independent language is a matter of investigation, discussion and dispute among scholars even today. There are scholars who believe that the origin of Malayalam is from Sanskrit. Even though their contention has no grammatical backing, the role of Sanskrit and Prakṛt in the process of development is undesputable.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 11

PHILOSOPHY & RELIGION

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-1

भर्तृहरिमते शब्दब्रह्मणः स्वरूपम्

डॉ. कामदेव झा, नन्योला (अम्बाला), हरियाणा

शब्दब्रह्मणः चिन्तनं वैदिककाल एव प्रारब्धमिति नास्त्यत्र कोऽपि सन्देहः। ऋग्वेदे महोदवो मर्त्यां आ विवेश (ऋग्वेदः 4.58.3) इत्यनेनोद्धरणेन स्फुटं भवति यत् शब्दब्रह्मणः परिकल्पना तत्रैव समुद्भूतेति। प्रमाणमस्य वाक्यपदीयस्य ब्रह्मकाण्डे भर्तृहरिणा प्रस्तुतमस्ति।

यथोक्तं तत्र—

अपिप्रयोक्तुरात्मानं शब्दमन्तरवस्थितम्।
प्राहुर्महान्तमृषभं येन सायुज्यमिष्यते॥ (वा.प. 1.130)

चिन्तनमस्य यद्यपि वैदिककाले समुद्भूतं किन्तु शब्दब्रह्मेति शब्दस्य प्राथम्येण प्रयोगः उपनिषदि खलु कृत इति प्रतीयते। यत्र स्फुटं शब्दस्यास्य प्रयोग उपलभ्यते। तत् यथा—

द्वे ब्रह्मणीवेदिव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति॥ (मैत्रायणीउपनिषद्, 6-22)

एतदप्यत्र स्पष्टीकरणीयमस्ति यत् उपनिषदः शब्दब्रह्म, परमतत्त्वं नास्ति किन्तु भर्तृहरेः शब्दब्रह्म एव विश्वातीतं परमतत्त्वं वेति विद्यते। नास्त्यत्र काचित् विचिकित्सेति।

भर्तृहरिणा आदावेव शब्दब्रह्मणः स्वरूपं प्रतिपादितमस्ति। वस्तुतः तच्छब्दब्रह्म आदिनिधन रहितमस्ति। अतएव कथ्यते यत् आदिनिधनरहितत्त्वे सति सदा वर्तमानत्वं ब्रह्मणः लक्षणमिति। एतल्लक्षणं शब्देऽपि समन्वेति! अतः शब्दोऽपि ब्रह्मेति। तत्र भर्तृहरिणा प्रोक्तम्—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥ (वा.पा. 1.1)

भर्तृहरिणा शब्दब्रह्मणः प्राप्त्युपायोऽपि वेदत्वेन प्रोक्त इति। वस्तुतः तत् एकमेव सर्वबीजरूपं शब्दब्रह्म किन्तु तस्य एकस्यैव बहुरूपत्वेन विवर्तनं निगदितम्।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-2

मूकपञ्चशत्यामद्वैतभावना

डॉ. जी.एस.आर. कृष्णमूर्ति, तिरुपति

सप्तमशतके काञ्चीकामकोटिपीठाधीशैः मूकार्भशङ्कराचार्यैः व्यरचि मूकपञ्चशतीति स्तोत्रकाव्यरत्नम्। जन्मना मूका इमें भगवन्याः कामश्याः करुणया विदितवेदितव्याः महान्त कवयः अभूवन्तिति कथा श्रूयते। तत्करुणयाप्तवाग्भिर्मूकार्भशङ्करैः सद्यः काव्यराजोऽयमाशुकवितया न्यबन्धि। मूकपञ्चशतीति-काव्यरत्नमिदं जगतः अभिन्ननिमित्तोपादानकारणभूतायाः चिटछक्रेः उपासनापरम्। आदिशङ्कराचार्याः अद्वैतसिद्धान्तप्रचारप्रवर्तकत्वेन नितरां सुप्रसिद्धाः। तैः प्रतिष्ठापितस्य अद्वैतसिद्धान्तस्य मूकपञ्चशत्यां प्रतिपादितैर्सिद्धान्तैस्सह साम्यवैषम्यविचारः अत्र प्रस्तोतव्यः अंशोऽस्ति।

चतुर्वर्गफलप्राप्तिः काव्यस्य फलमिति बहवः आलङ्कारिकाः निगदन्। आलङ्कारिकशिरोमणयः आचार्या भामहा अपि स्वकीये काव्यालङ्कारे—''धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च। करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधु काव्यनिषेवणम्'' इति आघोषयन्। ''चतुर्वर्गफलप्राप्तिस्सुखादल्पधियामपि, काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते'' इति निगदन्तः विश्वनाथा अपि काव्यात् मोक्षप्राप्तिमुररीचक्रुः। तद्यथा भगवतः नारायणस्य चरणारविन्दस्तवादिना जायमानस्य धर्मस्य अननुसन्धाने चित्तशुद्धिर्जायते।

*

PR-3

आचारो दुराचारो न भवेत्

डॉ. ललितकुमारसाहुः, ओडिशा

आचारो नाम आचरणम्। स च सदाचारशब्देनाभिधीयतेऽर्थात् सज्जना यथैवाचरन्ति व्यवहरन्ति च। तद्वदाचरणरं सदाचारः। सदाचारे सर्वेषामेव सद्गुणानां समावेशोऽभीप्स्यते। तत्र च प्राधान्येन जितेन्द्रियत्वं संयमो दमो वागादिनिग्रहः सत्य-अहिंसा-ब्रह्मचर्य-सेवनं सत्कर्मप्रवृत्तिर्दुरितनिवृत्तिश्च प्रशस्यते।

आचार एव सदाचारशिक्षणेन, शीलविनिमयेन, विनयसम्पादनेन, धृतिदाक्ष्यादिगुणसंबर्धनेन मानसिकोन्नति- संबर्धनेन च जगदिदं विभर्ति। अस्य च सदाचारस्य पालनेन श्रेष्ठत्वं गुणोत्कृष्टत्वं चासाद्यते। यो ह्याचाराद् हीनः न स वेदफलमश्नुते। आचारेण च संयुक्तः सर्वां सिद्धिं समधिगच्छति। सदाचार एव सर्वेषां तपसां मूलम्। आचारविहीनस्य सर्वाऽपि क्रिया निष्फलैव। अतो मनुना व्यपदिश्यते—

आचाराद् विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग् भवेत्॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आचारवतः जनस्य कीर्त्तिः जले तैलविन्दुरिव विस्तारमेति। आचाराद्विपरीताचारवतोऽजितेन्द्रियस्य कीर्त्तिः जले धृतविन्दुरिव लोके सङ्कोचमेति। दुराचाराद् बहवो राजानो विनष्टाः। यस्योदाहरणं मनुस्मृतेः सप्तमाध्यायस्थ- राज्यधर्मप्रकरणात्, महाभारतात् रामायणाच्चापि ज्ञातुं शक्यते।

*

PR-4

न्यायसम्मत प्रत्यक्षस्वरूपम्

डॉ. महेश झा, पुरी

प्रत्यक्ष शब्दो हि प्रमाणे विषये ज्ञाने च प्रयुज्यते। तथाहि घटादौ प्रत्यक्षं प्रमाणं, प्रत्यक्षो घटादिः, प्रत्यक्षं घटादिज्ञानमित्यादि। तत्र प्रमाणे चक्षुरादौ प्रतिगतमक्षमिति व्युत्पत्त्या प्रवर्त्तते, प्रतिगतं-विषयं प्रतिगतं, विषयसन्निकृष्टमिति यावत्। प्रतिगतमक्षं यं स प्रत्यक्ष इति व्युत्पत्त्या प्रत्यक्षशब्दो विषये प्रवर्त्तते। प्रतिगतमक्षं यस्मै तत्प्रत्यक्षमिति व्युत्पत्त्या प्रत्यक्षशब्दो ज्ञाने प्रवर्त्तते।

तत्र प्रत्यक्षज्ञानं द्विविधं-जन्यं नित्यञ्च। जन्यं जीवगतं नित्यं चेश्वरगतम्। तदुभयसाधारणलक्षणं श्रीमन्भट्टाचार्यैरुक्तं—ज्ञानाकरणकं ज्ञानं प्रत्यक्षम्।

*

PR-5

संस्कृतवाङ्मये भारतीयसंस्कृर्तेमूलस्वरूपम्

संजू प्रसाद ध्वानी, यमकेश्वर पौडी (गढवाल)

''उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥''

भारतवर्षस्य विशद् परिधेर्विषये उपर्युक्तश्लोके विष्णुपुराणे सम्यगेव वर्णितमस्ति तथैव अत्रत्या संस्कृतिर्विषयेऽपि वर्णिते यत् वाजसनेयसंहितायां—

''सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा''

विश्ववारायाः अस्याः एव संस्कृतेः वैशिष्ट्यानि विवेच्यन्ते संस्कृतवाङ्मयेषु।

संस्कृतिरपि विशालतां भजते। तद्यथा—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(1) एकतत्वस्य चिन्तनम्

(2) सर्वेषामपि अस्तित्वम्

(3) स्वदेश्यपूर्णा जीवनम्

(4) कर्मप्रधान्यम्

(5) समन्वय-भावना

(6) विश्वकल्याणस्य भावना

(7) पूर्णजीवनम्

(8) व्यवस्थितं जीवनम्

(9) शरीरस्य क्षणभङ्गुरत्वम्

(10) भौतिकाध्यात्मिकत्वम्

(11) शुद्धता

*

PR-6

न्यायदर्शनेषु शरीरविचारः

ईश्वरचन्द्रदे, श्रीविहार, (पुरी)

न्यायदर्शने षोडशपदार्थाः परिकीर्त्तिताः। तेषु प्रमेयम् अन्यतमम्। प्रमेयम् च द्वादशविधम्। द्वादशविध प्रमेयेषु अन्यतमं द्वितीयञ्च शरीरम् शरीरञ्च भोगायतनमन्त्याक्यावि इति तर्कभाषाकारः। न च भोगायतनम् एव शरीर लक्षणम् करचरणादीनाम् अवयवानाम् शरीरोत्पत्तेः। प्रत्येकम् अवयवेन सुखदुःखाद्युपलब्धेः आत्मनः। अतः लक्षणे अवयवि शब्दः निवेशितः। हस्तपादादीनां अवयवानाम् भोगायतनत्वेऽपि अवयवित्वाभावात्।

ननु हस्तपादादीनाम् अङ्गुलयः अवयवाः। तथा च हस्तपादादीनाम् अवयवित्वसिद्धिः। तेन च भोगायतनम् अवयवि शरीरमिति लक्षणस्य हस्तपादादौ अतिव्याप्तेः।

अतः लक्षणे अवयविनि अन्त्य इति विशेषणम् दीयते। तेन च हस्तपादादीनाम् अन्त्यावयित्वाभावात् तेषु नातिव्याप्तेः। अन्त्यावयित्वञ्च अवयवजन्यत्वे सति अवयव्यजनकत्वम् यथा मानवशरीरम्। अवयवश्च द्रव्यसमवायि कारणम् यथा तन्तुः। भोगश्च सुखदुःखन्यतरसाक्षात्कारः। स च यदवच्छिन्नआत्मनि याचते तद् भोगायतनम् तदेव शरीरम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

न्यायदर्शने चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम् इति शरीर लक्षणम्। अत्र चेष्टायाः अर्थः न स्पन्दनम् अपि तु प्रयत्नवदात्मसंयोगासमवायि कारणिकाक्रिया। अर्थात् प्रयत्नवदात्मनः संयोगो यस्य असमवायि कारणम्। सा क्रिया चेष्टा इति। अतः कस्यापि वाहनस्य गतिः न चेष्टापदवाच्या। एवंभूता चेष्टा या वर्त्तते तस्या आश्रयः शरीरम् इति।

❋

PR-7

आत्मबोधिनी : एकं दार्शनिकमध्ययनम्

श्रीमती पुष्पलता बेहेरा, बालेश्वरम्

उत्कलेषु प्रतिभावनां कवीनां गणनाप्रसङ्गे बालेश्वरमण्डलान्तर्गतस्य श्रीरामचन्द्रसंस्कृतमहाविद्यालयस्य प्राक्तनाध्यक्षकाणां पण्डित रमानाथ मिश्रमहोदयानां नामानि सादरं दृष्टिपथं नीयन्ते सुधिभिः।

एतेषां पण्डितप्रवराणां नैकासु कृतिषु आत्मबोधिनी नामधेयस्य गीतिकाव्यस्य दार्शनिकदृष्ट्या महन् महत्वं वरीवर्ती। विषयदृष्ट्या एतस्य नाविन्यं, भावस्य उद्वेलनं, भाषायामाधुर्यं, शब्दानां सारल्यञ्च रसिकाणां मनांसि नितरां हरति। संस्कृतवर्णानां आनुपूर्वेण अकारादारभ्य हकारं यावत् क्रमशः श्लोकानां विरचनं कवेः पाण्डित्यं द्योतयति। आत्मचिन्तनमेव प्रमुखतया वर्णनस्य विषयो भवति। दिङ्मात्रमेव अत्र उदाहृयते।

अशेषसुखमयमलभ्यमिमं
अनवरतमिति ध्यायसि कायम्।
अलक्ष्यमयमेक निमेषमात्रं
अवनीतले लुठिष्यते विचित्रम्॥

❋

PR-8

अद्वैतवेदान्तेऽध्यासस्वरूपम्

डॉ. शुद्धानन्दपाठकः, नवदिल्ली

''कोऽयमध्यासो नामेति। उच्यते-स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः। अत्र ''परत्र अवभासः'' इत्येवाऽध्यासलक्षणं, स्मृतिरूपः पूर्वदृष्टः इति पदद्वयमध्याससाधकम्। परत्र इत्यत्र सप्तम्यधिकरणार्थिका, अतः परत्र अर्थात् अन्यस्मिन् अधिष्ठाने इत्यर्थः। अवभासः प्रतीतिः। अन्यस्मिनन्यस्य प्रतीतिः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अन्यस्मिन्कस्य प्रतीतिः ? स्मृतिरूपपूर्वदृष्टस्य प्रतीतिः। स्मृतिरूपस्यार्थः स्मर्यमाणसदृशं, पूर्वदृष्टस्यार्थः पूर्वानुभूतमिति। स्मर्यमाणसदृश-पूर्वानुभूतस्य अधिष्ठाने प्रतीतिरित्यर्थः। उदाहरणेन स्पष्टीक्रियते ''शुक्ताविदं रजतम्'' परत्र अर्थात् शुक्तौ रजतं तत्पूर्वानुभूतं तथा स्मर्यमाणसदृशमपि वर्तते अतः लक्षणसमन्वयो जातः। रजतभिन्नशुक्तिरूपाधिष्ठाने रजतस्य प्रतीतिः अध्यासः, सः मिथ्यारूपः। भ्रमोपादानाज्ञानविषयत्वमधिष्ठानत्वम्'' तस्मिनधिष्ठाने अज्ञानेन कल्पितमध्यस्तं भवति। यथा शुक्तिरूपाधिष्ठाने अज्ञानेन कल्पितं रजतमध्यस्तं वर्तते। तथैव ब्रह्मणि अज्ञानेन कल्पितं जगत्-अध्यस्तमस्ति। यदध्यस्तं तन्मिथ्या अतः जगन्मिथ्या सिद्ध्यति। तत्रानुमानं जगन्मिथ्या दृश्यत्वात्, जडत्वात्, परिच्छिन्नत्वात्, शुक्तिरूप्यवत्। उपर्युक्तविवेचनेन ज्ञायते यज्जगत् सत्यं नास्ति यतो हि ''नेह नानास्ति किञ्चन'' इति श्रुत्या बाधितमस्ति। जगदसदपि नास्ति तस्य प्रतीतिः सर्वानुभवसिद्धा वर्तते। सदसदुभयात्मकमपि नास्ति, परस्परविरोधात्। अतः जगत् सदसद्भ्यां विलक्षणमनिर्वचनीयं वर्तते। अध्यासो द्विविधः - स्वरूपाध्यासः संसर्गाध्यासश्च।

*

PR-9

श्रीमद्भगवद्गीतायां ब्रह्मस्वरूपविमर्शः

सर्वानन्दमिश्रः, श्रीविहार, पुरी (ओडिशा)

अपितु भारताद् बहिरपि जनमानसं समलङ्करोति। अद्वैतवेदान्तसिद्ध नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावब्रह्मणः ग्रहणं कुत्र ईश्वरपदेन, आत्मपदेन, सगुणत्वेन, अक्षरत्वेन कुत्रचित् निर्गुणत्वेन च गीतायां दरीदृश्यते। उक्तञ्च ईश्वरपदेन—

''ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति''

अक्षरब्रह्मत्वेन—''ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म''

ईश्वरीयरूपम्—''एवमुक्त्वा.....परमं रूपमैश्वरम्'' इत्यादि ब्रह्मणः स्वरूपं ज्ञात्वा यः खलु ब्रह्मणि सर्वाणि कर्माणि अर्पयित्वा कार्यं करोति सः निस्पापं भवतीति सुप्रतिपादितं गीतायाम्। उक्तञ्च—

''ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम्
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना''

ब्रह्मणः स्वरूपादिकमुपनिषत्सु विद्यते। अन्यत्र यत्र कुत्रापि शास्त्रेण समुपलभ्यते। समेषामेतेषां सविस्तृतं विवेचनंमुक्तशोधप्रबन्धे प्रदर्शयिस्यामीत्यलं विस्तरेण।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-10

वृत्तान्ताख्यव्याख्यादिशा अष्टाङ्गयोगविचारः

डॉ. कम्भम्पाटि साम्बशिवमूर्तिः, जयपुरम्

मौनव्याख्याप्रकटितपरब्रह्मतत्त्वं युवानं
वर्षिष्ठान्तेवसदृषिगणैरावृतं ब्रह्मनिष्ठैः।
आचार्येन्द्रं करकलितचिन्मुद्रमानन्दमूर्तिं
स्वात्मारामं मुदितवदनं दक्षिणामूर्तिमीडे॥

भगवान् भाष्यकारः श्रीमच्छङ्कारचार्यः मन्दमतीन् तत्त्वजिज्ञासून् अनुग्रहीतुं दक्षिणामूर्तिस्तोत्रव्याजेन दशभिः शार्दूलविक्रीडितच्छन्दोग्रथितैः पद्यबन्धैः समस्तवेदान्तरहस्यान् आविश्चकार। तच्छिष्येण सुरेश्वरापरनाम्ना विश्वेश्वराचार्येण तत्पद्यगतं तत्त्वं तात्पर्यतो मानसोल्लासनामके वार्तिकग्रन्थे प्रकाशितः। तन्मानसोल्लासं यथाशक्ति विवरीतुं श्रीरामतीर्थयतिना वृत्तान्ताख्या व्याख्या अकारि। व्याख्यायामस्यां मूलस्तोत्रे विद्यमानान् दश श्लोकानधिकृत्य दश उल्लासाः ग्रथिताः।

तत्रादौ—

नत्वाद्यान् शङ्कराचार्यमुख्यान् सर्वान् गरीयसः।
मानसोल्लासवृत्तान्तं वर्णयामि यथामति॥

इति स्वव्याख्यां श्रीरामतीर्थयतिपादाः समारभन्त। तत्र नवमोल्लासे—

भूरम्भांस्यनलोऽनिलोऽम्बरमहर्नाथो हिमांशुः पुमा-
नित्याभाति चराचरात्मकमिदं यस्यैव मूर्त्यष्टकम्।
नान्यत्किञ्चन विद्यते विमृशतां यस्मात्परस्माद्विभो-
स्तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥

इति श्लोकस्य व्याख्यानावसरे अष्टाङ्गयोगविचारः विहितः।

तत्कृतः यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधिरूप-योगाष्टाङ्गानां विचारः शोधप्रबन्धेऽस्मिन् विशेषरूपेण, विस्तृततया मया प्रस्तूयते—

यथा—

ये मनसः साध्याः योगसाधनभूता धर्माः ते यमा स्मृताः।

अर्थात् मनोमात्रसाध्याः निवृत्तिलक्षणयोगाङ्गविशेषा यमा इति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jaipur. Digitized by eGangotri and eGangotri

ते यथा—

मनःप्रसादस्सन्तोषो मौनमिन्द्रियनिग्रहः।
दया दाक्षिण्यमास्तिक्यमार्जवं मार्दवं क्षमा॥

भावशुद्धिरहिंसा च ब्रह्मचर्यं स्मृतिर्धृतिः।
इत्येवमादयोऽन्ये च मनस्साध्या यमास्स्मृताः॥

*

PR-11

''शब्दमणिमयूखस्य वैशिष्ट्यम् चिन्तामणिकृतशब्दलक्षणञ्च''

डॉ. हरेराम त्रिपाठी, दिल्ली

न्यायनये प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः इति चत्वारि प्रमाणानि भवन्ति। तेष्वन्यतमं प्रमाणं शब्दो विद्यत इति। आप्तवाक्यं शब्दः वा यथाभूतस्यार्थस्योपदेष्टा पुरुषः आप्तः। तस्य वाक्यं शब्दप्रमाणं भवति। तत्त्वचिन्तामणिकृत- शब्दप्रमाणस्योपरि मयूखटीका शङ्करमिश्रेण कृता। ''प्रयोगहेतुभूतार्थतत्त्वज्ञानजन्यः'' शब्दः ''प्रमाणम्'' इति तत्त्वचिन्तामणिकारः। अस्य लक्षणस्य निर्वचनमित्थं शङ्करमिश्रेण क्रियते।

1. प्रयोगहेतुभूतम्, अर्थतत्त्वज्ञानम् अस्य इति प्रयोगहेतुभूतार्थतत्त्वज्ञानम् = आप्तः तज्जन्यः शब्दः प्रमाणम्।
2. यद्वा अर्थविषयकं यत्तत्त्वज्ञानं तज्जन्य शब्दः।
3. अर्थतत्त्वज्ञानादाप्तो भवन् करण पाटवादन्यादृशो भवति इति तद् वारणाय प्रयोगहेतु भूतेति।
4. प्रयुज्यते अनेनेति प्रयोगः समीचीनः प्रयत्नः तं प्रति अर्थचिख्यापयिषा द्वारा हेतुभूतं यत्तत्त्वज्ञानं तज्जन्य शब्दः इति।
5. यद्वा प्रयोगो वाक्यप्रयोगो हेतुभूतो लिङ्गतया ज्ञापको यस्य अर्थतत्त्वज्ञानस्य तज्जन्यः शब्दः।
6. एतानि पदानि स्मारितार्थसंसर्गज्ञानपूर्वकाणि आकाङ्क्षादिमत्पदकदम्बकत्वादित्यनेन हेतुना यादृशं संसर्गज्ञानं सिद्ध्यति तज्जन्यं यद्वाक्यं तत्प्रमाणम्।
7. यद्वा अर्थ इति वाक्यात् अर्थ्यमानो योः अर्थः संसर्गः तद्विषयकं यत्तत्त्वज्ञानं तज्जन्यः शब्दः प्रमाणम्।
8. येन प्रयोगेण यः संसर्गः ज्ञापयितुं शक्यते तद् विषयकतत्त्वज्ञानजन्यो यः शब्दः प्रमाणम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उपरोक्त ग्रन्थस्याध्ययनेन शब्दमणिमयूखस्य वैशिष्ट्यं ज्ञातुं शक्यते यत् शङ्करमिश्रेण तत्त्वचिन्तामणिकास्य शब्दलक्षणस्य अष्टौ व्याख्याः कृताः। शब्दमणिमयूखस्य अन्यदपि वैशिष्ट्यं निरूपयिष्ये इति।

*

PR-12

चरकसंहितायां निगदितं कर्मविज्ञानम्

डॉ. उमारानी त्रिपाठी, वाराणसी

भारतीयदर्शनेषु कर्मसिद्धान्तस्य सुमहती प्रतिष्ठा वर्तते। प्रायेण सर्वेष्वेव दर्शनसम्प्रदायेषु कर्मसिद्धान्तः निर्विरोधतया स्वीक्रियते। निजकृतकर्मानुसारेणैव प्राणिनां गतिर्निर्धारणं भवति। कर्मविज्ञानस्य एतदेव प्रतिपाद्यमस्ति। शास्त्रेषु चोक्तम्—

''अवश्यमेव हि भोक्तव्यं कृतं कर्मशुभाशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि॥''

भारतीयमनीषिणामेष स्वभाव एव यत् सकलज्ञानविज्ञानभूतं मूलतत्त्वं परमात्मावबोध एव समाहितं पश्यन्ति। तेषां धीमताम्मते मानवजीवनस्य परमो ध्येयस्तु पुरुषार्थचतुष्टयसंसिद्धिरेव। अत्रापि धर्मार्थकाम रूपत्रिवर्गसिद्धिस्तु लौकिकी; किन्तु मोक्षाख्यः परमपुरुषार्थः मानवजीवनस्य आत्यन्तिकमेकान्तिकञ्च प्रयोजनम्। अतएव सर्वेषां शास्त्राणां प्रवृत्तिः दुःखप्रहाणके मोक्ष एव पर्यवसति। आयुर्वेदस्तु शास्त्रेषूपवेदत्वेन स्वीकृतः सर्वैरपि। अधुना 'चरकसंहिता' तु महर्षिचरकेन प्रतिसंस्कृत आयुर्वेदीयो ग्रन्थः वर्तते। तत्र यत्र कुत्रापि दार्शनिकसिद्धान्तानां स्फुटत्वेन प्रतिपादनं दरीदृश्यते।

*

PR-13

स्वत्वस्य लौकिकत्वविचारः

सुश्री कादम्बिनी साहु, पुरी (ओडिशा)

स्वत्वं शास्त्रैकसमधिगम्यं लौकिकं वेति संशये स्वत्वं तावल्लौकिकमिति मित्रमिश्रः। स्वत्वस्य लौकिकक्रिया-साधनत्वात् ब्रीह्यादिवत्। यथाहि आहवनीयादीनां शास्त्रैकसमधिगम्यानां न क्वचिल्लौकिक कार्य्यकारित्वं दृश्यते। यदि वा आहवनीयादीनां पाकादिलौकिकक्रियाकारित्वमस्ति तथापि तत्र तेषां नाहवनीयादिरूपेण, परन्तु लौकिकादिरूपेणैव। यतो हि स्वत्वस्य शास्त्रीयत्वे सति शास्त्रज्ञानरहितानां

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

जनानां कथं स्वत्वव्यवहारः लोके दृश्यते। अर्थात् तेतावत् शास्त्रं किमिति न जानन्ति। ये अत्वन्तप्रत्यन्तवासिन उत ग्रामीणः तेषां क्रयविक्रयादौ स्वत्वव्यवहारः परम्परया दृश्यते। अतः शास्त्रं विनाऽपि स्वत्वव्यवहारदर्शनात् स्वत्वं लौकिकमेव। पुनश्च लोकशास्त्रयोर्मध्ये लोकस्यैव प्राचीनत्वम्। शास्त्रस्य निर्माणं तु कालान्तरे भवतीति तस्य अर्वाचीनत्वात्। वस्तुतः लोके समुद्भूताः विद्वांसः लोकानां सौविध्यर्थं स्वत्वव्यवहारार्थं सुखलाभार्थं च तानेव विषयान् शास्त्रेषु प्रतिपादयन्ति।

❋

PR-14

रामानुजाचार्यस्य धार्मिक योगदानम्

डॉ. मनोज कुमार पाण्डेयः, राँची

श्रीरामानुजाचार्यः वैष्णवमतस्य प्रतिष्ठापकः विशिष्टाद्वैतवादस्य प्रवर्त्तकश्चासीत्। सः स्वतंत्ररूपेण वैष्णवशास्त्राणामनुशीलनमकोरत्।

रामानुजः ब्रह्मणः सत्तामेव स्वीकरोति। परन्तु तस्य मतेन ब्रह्म त्रयाणां गुणानां विशिष्टत्वादेव विशिष्टाद्वैतः। ईश्वरः जगतः निर्माणं लीलार्थमेव करोति। अस्मिन् कर्मणि सः आनन्दानुभवं करोति। रामानुजसम्प्रदाये परमोपास्यः श्रीलक्ष्मीनारायणः अस्ति। तस्य साक्षात्कारः उपासनया भवितुमर्हति। पूजा विधाने प्रतिमापूजनमर्चनञ्चास्ति। उपासनया कष्टानि पापानि च विनश्यन्ति। एतेभ्यः अतिरिक्तम् उपवासतीर्थदानयज्ञादिकं निष्कामभावेनापि करणीयमस्ति। रामानुजः एव नारायणस्य उपासनामारब्धवान्। अत्र गुरुणामाचार्याणाञ्च महत्वं स्वीकृतम्। भगवतः साक्षात्करणाय गुरुणां महती आवश्यकता विद्यते, इत्यपि तेनैव कथितम्।

❋

PR-15

अद्वैतवेदान्तेऽध्यासस्वरूपम्

डॉ. शुद्धानन्दपाठकः, नवदिल्ली

अद्वैतवेदान्तराद्धान्ते विचारात्मकशास्त्रारम्भे प्रयोजकाः चत्वारः अनुबन्धाः सन्ति। तेषां युक्तिपूर्वक-निर्णयाय भगवान् सूत्रकारः "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" इति सूत्रं सूत्रयामास। एतत्तदैव सार्थकतां भजते यदा बन्धो मिथ्या स्यात्। यदि बन्धः पारमार्थिकः स्यात् तदा ज्ञानेनात्यन्तिकनिवृत्तिः न स्यात्। अनेन प्रकारेणैव "तरति शोकमात्मवित्" ज्ञानादेव तु कैवल्यम् इत्याद्याः श्रुतयोऽपि तदैव सार्थकतां भजन्ते

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यदा बन्धो मिथ्या स्यात्, मिथ्या तदा भवति यदा अध्यस्तः स्यात् अतः जेष्ठाः श्रेष्ठाः प्रेष्ठाः ज्ञानगरिमागरिष्ठाः भाष्यकाराः सर्वप्रथमं भाष्येऽध्यासं निरूपयन्ति।

''कोऽयमध्यासो नामेति। उच्यते-स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभावः।'' अत्र ''परत्र अवभासः'' इत्वेवाऽध्यासलक्षणं, स्मृतिरूपः पूर्वदृष्टः इति पदद्वयमध्याससाधकम्। परत्र इत्यत्र सप्तम्यधिकरणार्थिका, अतः परत्र अर्थात् अन्यस्मिन् अधिष्ठाने इत्यर्थः। अवभासः प्रतीतिः। अन्यस्मिनन्यस्य प्रतीतिः। अन्यस्मिन्कस्य प्रतीतिः? स्मृतिरूपपूर्वदृष्टस्य प्रतीतिः। स्मृतिरूपस्यार्थः स्मर्यमाणसदृशं, पूर्वदृष्टस्यार्थः पूर्वानुभूतमिति। स्मर्यमाणसदृशपूर्वानुभूतस्य अधिष्ठाने प्रतीतिरित्यर्थः। उदाहरणेन स्पष्टीक्रियते ''शुक्ताविदं रजतम्'' परत्र अर्थात् शुक्तौ रजतं तत्पूर्वानुभूतं तथा स्मर्यमाणसदृशमपि वर्तते अतः लक्षणसमन्वयो जातः। रजतभिन्नशुक्ति-रूपाधिष्ठाने रजतस्य प्रतीतिः अध्यासः, सः मिथ्यारूपः। भ्रमोपादानाज्ञान-विषयत्वमधिष्ठानत्वम् तस्मिनधिष्ठाने अज्ञानेन कल्पितमध्यस्तं भवति। यथा शुक्तिरूपाधिष्ठाने अज्ञानेन कल्पितं रजतमध्यस्तं वर्तते। तथैव ब्रह्मणि अज्ञानेन कल्पितं जगत्-अध्यस्तमस्ति। यदध्यस्तं तन्मिथ्या अतः जगन्मिथ्या सिद्ध्यति। तत्रानुमानं जगन्मिथ्या दृश्यत्वात्, जडत्वात्, परिच्छिन्नत्वात्, शुक्तिरूप्यवत्।

उपर्युक्तविवेचनेन ज्ञायते यज्जगत् सत्यं नास्ति यतो हि ''नेह नानास्ति किञ्चन'' इति श्रुत्या बाधितमस्ति। जगदसदपि नास्ति तस्य प्रतीतिः सर्वानुभवसिद्धा वर्तते। सदसदुभयात्मकमपि नास्ति, परस्परविरोधात्। अतः जगतः सदसद्भ्यां विलक्षणमनिर्वचनीयं वर्तते।

अध्यासो द्विविधः—स्वरूपाध्यासः संसर्गाध्यासश्च। ''शुक्ताविदं रजतम्'' इत्यत्र रजतं स्वरूपतः एवाध्यस्तमस्ति यतो हि भ्रमकालात्पूर्वं नासीत्, भ्रमकाले नूतनमनिर्वचनीयमुत्पन्नं तस्य नेदं रजतमिति ज्ञाने बाधो भवति अतः स्वरूपतः एवाध्यस्तं वर्तते। शुक्तेः रजतेन सह संसर्गाध्यासो वर्ततेऽर्थात् कल्पिततादात्म्यसम्बन्धोऽस्ति अतः नेदं रजमिति ज्ञानेन शुक्तेः संसर्गमात्रस्य बाधो जायते न तु शुक्तेः इति शम्।

*

PR-16

न्यायमतेन अन्यथाख्यातिः

प्रो. वी.आर. दीक्षित, कनौटक

अत्र विशेषज्ञः ख्यातिविषये पंचख्यातयः प्रसिद्धाः प्रसिद्धासु पंचसु ख्यातिषु किंचिदिव परिवर्तनेन पंचापेक्षया अधिकापि ख्यातीः प्रत्यपादयत् केचन शास्त्रकाराः केचित् पंचापेक्षया न्यूनापि ख्यातीः समर्थयन्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तत्र आत्मख्यातिं असत्ख्यातिं च बौद्धाः अभ्युपगच्छन्ति। अख्यातिं प्राभाकर सांख्ययोगिनः स्वीकुर्वन्ति अन्यथाख्यातिं विपरीतख्याति अपरपर्यायां भाट्टाः नैय्यायिकादयश्च अंगीकुर्वनित। अनिर्वचनीय ख्यातिं अद्वैतवेदान्तिनः आश्रयन्ति। रामानुजीयास्तु सत्ख्यातिं षष्ठीं स्वीकुर्वन्ति। सदुपरक्तां असत्ख्यातिं पूर्णप्रज्ञमतानुसारिणः अभ्युपयन्ति। वादिना एतेषां सर्वेषां इदं रजतं पीतःशंखः द्वौ जन्द्रौ तिक्तो गुडः इत्यादीनि उदाहरणानि। एतेषां मध्ये नैय्यायिकैः अन्यथाख्यातिविषयमधिकृत्य समसनेन निरुप्यते। ख्यातिर्नाम अंगीकृत अन्यथार्थानुभवः सच यस्य यद्धर्मवत्वेन ज्ञानं उचितं तस्य तद्भिन्नधर्मेण ज्ञानं। यथा ह्रदो वन्हिमान् इति ज्ञानं तच्च विशिष्टं एकं ज्ञानं प्रवर्तकत्वात् इति नैय्यायिकाः प्रतिपादयन्ति।

❋

PR-17

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या

ज्वाला किशोर मिश्र, वाराणसी (उ०प्र०)

''ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या'' अस्य विषयस्य प्रतिपादनमेव सर्वेषां दार्शनिकानां ऋषि-मुनीनां च उद्देश्यमस्ति। सर्वे एतस्मै स्व-स्व मतं प्रतिपादितवन्तः। यद्यपि 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' इदं वाक्यं शङ्कराचार्येण विरचितं तथापि एतस्मिन् विषये सर्वेषां दार्शनिकानाम् एकमेव मतमस्ति तथा च वेदेषु उपनिषत्सु अपि विस्तरेण वर्णितमस्ति। 'ब्रह्म' शब्दः 'वृह' धातुतः निष्पन्नः इति मन्यते यस्यार्थः भवति विशालमिति, अतः यत् एतावत् विशालं भवेत् यस्मिन् सर्वं समाविष्टं भवेत् तदेव ब्रह्मेति। 'ब्रह्म' इत्यनेन तात्पर्यमस्ति-एकमात्रनित्यचेतनसत्ता यत् जगतः कारणं सत्-चित्-आनन्दस्वरूपं च वर्तते।

❋

PR-18

अद्वैतवेदान्ते ईश्वरस्वरूपविचारः

डॉ. एस.एन. रमामणि, नई दिल्ली

भारतीयदर्शनानां मुख्योद्देश्यं परमं प्रयोजनञ्च आत्यन्तिकः दुःखनाशः निरतिशयानन्दप्राप्तिश्चेति सर्वे जानन्ति। श्रौताश्रौतभेदेन दर्शनद्वयविभागः सर्वविदितः। श्रौतदर्शनेषु न्याय-वैशेषिक-सांख्य-योग-पूर्वमीमांसा-उत्तरमीमांसा चेति षड्विभागाः सन्ति। उत्तरमीमांसा एव वेदान्तः। वेदान्तेऽपि अद्वैत-विशिष्टाद्वैत-द्वैत-द्वैताद्वैत भेदेन विविधसंप्रदायसिद्धान्ताः भिन्नाः प्रस्थानत्रयेषु ब्रह्मसूत्र-उपनिषद्-श्रीमद्भगवद्गीतासु प्रतिपादिताः सन्ति। वेदान्ते अद्वैतस्यैव सर्वदर्शन चूडामणिस्थानं सर्वैरङ्गीकृतम्। धर्मार्थकाममोक्षाख्येषु चतुर्विधपुरुषार्थेषु मोक्षस्यैव परमपुरुषार्थत्वं सर्वशास्त्रविदितम्। अद्वैतवेदान्ते

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ब्रह्मसाक्षात्कारः एव मोक्षः जीवब्रह्मणोरैक्यं निरतिशयानन्दप्राप्तिश्चेति। ''तरतिशोकमात्मवित्'' (छां) ''विमुक्तश्च विमुच्यते'' (क०उ०) ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति इत्यादि श्रुतिप्रतिपादितोपदेशानुसारं मोक्षप्राप्तिहेतुः ब्रह्मविचारः कर्त्तव्यः। जीवजगद्ब्रह्मविचार सन्दर्भे सृष्टेः उपादानकारणं ईश्वरः, तस्य विचारः सर्वप्रथमं अस्माभिः क्रियते। ''सर्वं खल्विंद ब्रह्म'' सोऽकामयत ''तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेये''ति ''स्वयमनुप्रविष्य'' इत्यादि श्रुतिभ्यः ब्रह्म मायोपहित चैन्तन्यरूपेण ईश्वररूपेण जगतः सृष्टिस्थितिलयकारणं भवतीति अवगन्तुं शक्यते। अतः जगदुपादानकारणरूपेणेश्वर उच्यते। तदनु अनेकासु उपनिषत्सु ईश्वरस्य प्रतिपादनपराः मन्त्राः उपलभ्यन्ते। ''ईशावास्यमिदं सर्वं'', ''ईशानः भूतभव्यस्य'' ''अस्मान् मायी सृजते विश्वमेतत्'' इत्यादयः ईश्वरस्य जगत्स्रटुत्वं प्रमाणयन्ति, ''सर्वज्ञः सर्वशक्तिश्च'' इति जगत्कारणत्वं निरूपयति, ईश्वरस्यैव सूत्रात्मा हिरण्यगर्भः, विराट् इति उपनिषत्सु अनेकरूपाणि प्रतिपादितानि। ईश्वरस्य सर्वव्यापित्वं सर्वनियन्तृत्वं, अन्तर्यामित्वं च अनेकासु उपनिषत्सु ब्रह्मसूत्रशांकर भाष्ये प्रकरण ग्रन्थेषु ईश्वरविषये बहुधा विचारः कृतः सङ्ग्रहेण अत्र प्रदर्शितः, विस्तरेण निबन्धेऽस्मिन् द्रष्टव्यः।

*

PR-19

यौगिकग्रन्थिदर्शनम्

व्रजकिशोरस्वाईं, पुरी (ओडिशा)

पिण्डब्रह्माण्ड्योरैक्यमुपनिषत्सु आमन्यते। समस्तं ब्रह्माण्डं तेन न्यायेन यथा सप्तभिर्लोकैर्विभक्तं तथा पिण्डात्मकस्य शरीरस्य एकमेकं स्थानमेकैकस्य तत्त्वस्य विशिष्टं कर्मकेन्द्रमिति। एतेषां कर्मकेन्द्राणां नाम चक्रं ग्रन्थिस्थानं वा। एतेषु ग्रन्थिषु व्योम ग्रन्थिः, वायुग्रन्थिः, अग्निग्रन्थिः, वरुणग्रन्थिः, पृथ्वीग्रथिः, अहंग्रन्थिः, महद्ग्रन्थिश्चेति प्राधान्यं भजन्ते। यौगिकसाधनया सह एतेषां संबन्धमुपदर्शयितुमस्मिन् सन्दर्भे प्रयासः क्रियते।

*

PR-20

कार्मण शरीर-सूक्ष्मशरीरयोरवधारणा - एकं समीक्षणम्

डॉ. प्रेमलालः शर्मा, होशियारपुर

आत्मा नित्यः पञ्चमहाभूतात्मकं शरीरञ्चानित्यमिति प्रतिपादयन्तः सर्वे भारतीयदार्शनिकाः पुनर्जन्मसिद्धान्तमस्वीकुर्वन्। स्थूलं शरीरं परित्यजन्तात्माऽन्यज्जन्म च गृह्णन् तयोरन्तराले किं स शरीरं विनैव तिष्ठति आहरादिकं च गृह्णाति न वेति अथवा विना शरीरमेव कथमन्यां योनिं प्राप्नोति इत्यादिकाल्

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वान् प्रश्नान् समाधातुमात्मानं नित्यमनेकं विभुं वा मन्यमानैः सर्वैर्मनीषिभिः स्वस्वसम्प्रदायानुसारं स्थूलशरीरादतिरिक्तै कस्यान्यस्यैव शरीरस्यावधारणा स्वीकृताः। तेषु जैनदार्शनिकैः कार्मणशरीरस्य, सांख्यैः लिङ्गशरीरस्य वेदान्तिभिश्च सूक्ष्मशरीरस्य सिद्धान्तः प्रत्यपादि।

कार्मणशरीरं नाम कार्मणपुद्गलैः सहात्मनो योऽनादिः समन्धः कषाययोग बलाज्जायते तज्जन्यो य आत्मनः परिणामः स एवैतत्संज्ञया विज्ञायते। सूक्ष्मं शरीरञ्चैकादशेन्द्रिय-प्राणापानादिपञ्चप्राणोपतमन्तः करणसन्निविष्टं निगद्यते। लिङ्गं शरीरं नु एकादशेन्द्रियम्पञ्चतन्मात्रा-सहितमाहङ्कारमहत्तत्त्वात्मकमष्टादश-संख्योत्येतं भवति येन जीवो देव-मनुष्य-तिर्यञ्च-नरकयोनिषु स्वस्वकर्म-विपाकाप्तये गच्छति।

अस्य कार्मणशरीरस्याथवा सूक्ष्मशरीस्य वैतन्माहात्म्यं विद्यते यत् तद् औदारिकादिशरीरेषु अन्नमयादिकोशेषु वा परिणमते अवभासते वेति। अस्य कार्मणशरीरस्य सूक्ष्मशरीरेण लिङ्गेन वा को भेदः साम्यं वेति कश्चात्र हेतुरित्यादिकं सर्वमस्य शोधनिबन्धस्य लक्ष्यमिति कृत्वा समीक्षणप्रयासोऽत्र विहितोऽस्ति। असङ्गस्य कूटस्थविमोरात्मनोऽद्वैतवादमते सूक्ष्मशरीरेण यः सम्बन्धः स तु कार्मणद्रव्यैर्विनानार्हतीति दिक्।

❋

PR-21

पौराणिकसाहित्ये शाङ्ख्यसिद्धान्तानां विवेचनम्

डॉ. परमेश्वरसिंह राजपुरोहितः, जोधपुरम् (राज०)

पौराणिकसृष्टौ सांख्यदर्शन द्वारा निर्दिष्टायाः सृष्टेर्विशेषाश्रयणमास्ति। सांख्यस्यप्रभावः पुराणेषु विशेषरूपेण दृश्यते। अतः पुराणानां सृष्टिप्रकरणे सांख्यीयसृष्टेः विपुलः प्रभावः अस्ति। पौराणिकं सांख्यं निरीश्वरदर्शनं नास्ति, किन्तु तदस्ति सेश्वर सांख्यम्। पुराणेषु सांख्य-वेदान्तमतयोर्न किञ्चिद् वैषम्यं विरोधो वा दृश्यते, यथा दर्शनविकासक्रमेऽवलोक्यते। तत्र तु सांख्यवेदान्तयोरस्ति मञ्जुल सामञ्जस्यम्। प्रकृतिपुरुषयोर्द्वैत प्रतिपादकं सांख्यम्, अद्वयब्रह्मप्रतिपादकेन वेदान्तदर्शनेन सहपौराणिकस्य दर्शनस्य मूलभितिं निर्माति। पुराणानुसारं प्रकृतिपुरुषौ न खलु भिन्नेतत्त्वे, प्रत्युत तौ द्वावपि ब्रह्मप्रेरितावेव स्वकार्येसम्पादने समर्थोभवतः, ब्रह्म अनयोर्द्वयोरस्ति अध्यक्षः। विष्णुपुराणं स्पष्टं वक्ति यद् विष्णोः निरुपाधिकात् स्वरूपात् प्रधानपुरुषात्मकं रूपद्वयमाविर्भवति विष्णोः कालात्मक रूपद्वारा इमौ द्वावपि सृष्टिसमयेसंयुक्तौ प्रलयदशायां च वियुक्तौ भवतः। भगवान् विष्णुः कालशक्तिद्वारैव सृष्टिप्रलयं करोति। जगत्सृष्टिः भगवतो विष्णोः क्रीडाऽस्ति, अन्यथा तस्य आप्तकामता भज्येत। प्रायः सर्वेषु पुराणेषु जगत्सृष्टेर्वर्णनमुपलभ्यते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पुराणेषु सांख्यदर्शनस्य व्यापकः प्रभावः दृश्यते। पुराणानामनुशीलनेन स्पष्टं सिध्यति यद् अग्नि-सूर्य-विष्णु-श्रीमद्भागवतपुराणेषु सांख्यप्रक्रियाया बहुश आश्रयणं कृतमस्ति। मत्स्यपुराणे मैथुनसृष्टेः निरूपणं सांख्यसिद्धान्तानुसारेण एव कृतमस्ति। प्रलयस्य वर्णन प्रायः प्रत्येकपुराणेषु जातमस्ति। पुराणेषु सृष्टिप्रकरणमतिगहनं विद्यते। सृष्टिस्तावत् चतुर्विधा भवति-प्राकृतिकी सृष्टिः, मानसी सृष्टिः, ब्राह्मी सृष्टिः मैथुनी सृष्टिश्च। युक्तिदीपिकायां अपि इदमेव उक्तम्। महामुनेः कपितादारभ्य वार्षगण्यपर्यन्तं सांख्यदर्शनस्य सर्वे आचार्या ईश्वरवादिन आसन्, किन्तु निरीश्वरस्य सांख्यस्य परम्परा ईश्वरकृष्णकृत सांख्यकारिकात् एव उपलभ्यते। प्रचलितं सांख्ये प्रकृतिपुरुषौ अन्तिम तत्त्वे मन्येते परं पौराणिकसांख्ये तयोरुपरि ईश्वरस्यापि सत्ता स्वीक्रियते।

*

PR-22

तन्त्रशास्त्रे हादि विद्या

डॉ. शैलकुमारी मिश्र, इलाहाबाद (यू०पी०)

संस्कृत वाङ्मये तन्त्र साहित्यास्ति अतिविशिष्टंस्थानम्। सुविस्तृतमिदं साहित्यम्। तन्त्रशास्त्रं वेदानुगतमस्ति न वा? इति विषये विदुषां मध्ये अस्ति मतवैभिन्यम्। सामान्यतः आगमपदेन तन्त्रस्य निगमपदेने च वैदिकवाङ्मयस्य बोधो भवति। वैदिकसाधनायाः कर्मकाणडस्य च मूले वेदाः तान्त्रिकसाधनायाः प्रयोगस्य मूले आगमा इति वक्तुं शक्यते।

विशालस्य तन्त्रशास्त्र उपास्योपासकादि भेदेन अनेके भेदाः सन्ति। मूलतो उपास्याश्रृत्य त्रिधा वर्गीकरणम् भवति-शैवशाक्तवैष्णवागमरूपेण। शक्तितत्त्वस्य प्राचीनता प्रामाणिकता तु आऋग्वेदकालादेव प्राप्यते। सम्मोहनतन्त्रानुसारेण शाक्ततन्त्राणां संख्या चतुष्षष्टिः सन्ति।

मुख्यतः शाक्तमतस्य कौलमिश्रसमयाचार-रूपेण साधनासरणिः त्रिधा वर्तते। 'कुलं' शक्तिः तस्यानुयायिनः कौला इति। कौलमतस्य संबन्धः वाममार्गेण समयस्य दक्षिणमार्गेण मिश्रमतस्यचसंबद्धता उभयता वर्तते। एतेषु मार्गत्रयेष्वपि उपास्या श्रीविद्या एव। उपासनासरण्यामेव भेदोऽस्ति न तु देवतासु।

श्रीविद्याया एव भेदाः - कादि-हादि-कहादि विद्याश्च। कादिविद्योपासकानां देवि काली हादिविद्यो- पासकानां त्रिपुरसुन्दरी कहादिविद्योपासकानाञ्चदेवी तारा नीलसरस्वती वा। गौडीयानां मते कादिविद्या सर्वश्रेष्ठा किन्तु कश्मीरकेरलयोश्च मते त्रिपुरा तारा वा सर्वप्रधाना। हादि विद्याया उपासिाक प्रवर्तिका च देवी लोपामुद्रा आसीत्। हादिमतं 'हंसराज' इति कथ्यते यस्य अधिष्ठात्री देवी भगवती त्रिपुरसुन्दरी अस्ति।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-23

न्यायमते अर्थानां प्रत्यक्षयोग्यता

प्रो. शङ्कर दयाल द्विवेदी, इलाहाबाद

प्रत्यक्षमिन्द्रियकरणकं सन्निकर्षव्यापारवज्ज्ञानम्। इन्द्रियार्थयोः सन्निकर्षाय इन्द्रियैरर्थानां प्राप्यकारित्वम् अर्थेषु चार्थ्यमाणत्वं ज्ञानविषयता च आवश्यकम्। घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्त्रोमनांसि चेन्द्रियाणि षडिन्द्रियाणि स्वस्वविषयप्राप्यकारीणि। सर्वाज्ञाश्च प्रमितीनां समवायिकारणमात्मा, आत्ममनासंयोगस्त्व-समवायिकारणमिन्द्रियाणि च सर्वाणि निमित्तकारणानि सन्ति। बाह्यविषयग्रहणे त्रयः सन्निकर्षा—1. इन्द्रियार्थ- सन्निकर्षः 2. इन्द्रियमनः सन्निकर्षः 3. मनः आत्मसन्निकर्षश्चेति। सुखाद्यात्मविशेषाभ्यान्तरगुणानां ग्रहणे द्विविधः सन्निकर्षः—आत्ममनः सन्निकर्षः, मनःसुखादिसन्निकर्षश्च। आत्ममानसप्रत्यक्षे केवलमेकविधः आत्मनः सन्निकर्षो भवति। लौकिक सन्निकर्षो भवति। लौकिकेषु सन्निकर्षेषु तावत्षडविधाः तद्यथा— 1. संयोगः, 2. संयुक्तसमवायः, 3. संयुक्तसमवेतसमवायः, 4. समवायः 5. समवेतसमवायः 6. विशेष्यविशेषणभावसन्निकर्षः। अलौकिकाख्यं सन्निकर्षं प्रत्यासत्तिशब्देन व्यवहरन्ति, तेषु 1. सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्तिः ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्तिः योगजप्रत्यासत्तिश्चेति त्रयः भेदाः। इन्द्रियभेदात् प्रत्यक्षं षड्विधम् - घ्राणजं, रासनं, चाक्षुषं, स्पार्शनं, श्रौतं मानसञ्चेति। सर्वे चार्थाः ईश्वरज्ञानविषयतया तदिदमीश्वरज्ञानं जन्यप्रत्यक्षभिन्नं, नित्यमनिन्द्रियं यत्रार्थाः ज्ञानविषयतया नापेक्षिताः।

बहवः अर्थाः बहनीन्द्रियाणि, बहुविधश्च सन्निकर्षः। एतानि इन्द्रियाणि तत्तद्विषयाणि तत्तत्सन्निकर्षद्वारा कथं गृह्णन्तीति एवम् एकस्यां तालिकायां मूलशोधावत्रे विवेचितम्। चाक्षुषसन्निकर्षे प्रकाशः उद्भूतरूपः महत्त्वरिमाणञ्चैतत्त्रयामावश्यकम्। लौकिक सन्निकर्षेषु व्यवधानराहित्यमतिरिक्तं कारणम्। तथापि केचन विषयाः अतीन्द्रियाः मन्यन्तें। निर्विकल्पकं प्रत्यक्षं, पृथिव्यादीनां परमाणवः, द्वयणुकाः, अतीन्द्रियद्रव्याणि, अतीन्द्रियगुणाः अतीन्द्रियविशेषाश्च तेषु स्वीकृताः अवयविद्रव्य प्रत्यक्षे, द्रव्यसमवेतगुणकर्मणोः समवेततज्जातीनां च प्रत्यक्षे महत्परिमाणं कारणं भवति तद्धिक्कचित् समवायसम्बन्धेन, क्कचित्स्वाश्रयसमवायसम्बन्धेन क्कचिच्च स्वाश्रयसमवेतसमवायसम्बन्धेन प्रत्यक्षे कारणं भवतीति दिक्।

*

PR-24

परमाणुशब्दप्रवृत्तिनिमित्तविमर्शः

डॉ. रामकुमार शर्मा, गरली (हि०प्र०)

जातिर्गुणः क्रियायदृच्छाचेति चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिरिति महाभाष्यानुसारिणामालङ्कारिकाणां मुकुलमम्मटभट्टादीनां सिद्धान्तः। अस्याऽव्याप्तिः परमाणुशब्दस्य। प्रवृत्तिनिमित्ते परमाणुत्वे। परमाणुत्वं हि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

न जातिः, पृथिवीत्वादिभिः साङ्कर्यात्। नापि गुणः, नित्यत्वेन विशेषाधानहेतुत्वाभावात्। साध्यत्वाभावान्न क्रिया। शब्दरूपत्वाभावनापि यदृच्छा च। मुकुलभट्टमते परमाणुत्वं परिमाण्डल्यशब्दाभिधेयमणुपरिमाणरूपं शुक्लादिगुणसदृशत्वेन महत्त्वव्यावर्तकतया विशेषाधानहेतुत्वेन गुण एव। काव्यप्रकाशस्य कतिपये व्याख्यातारोऽपीदमेव मन्यन्ते। मम्मटस्य तद्व्याख्यातृणांच केषाञ्चिन्मतेऽणुपरिमाणरूपे परमाणुत्वे वैशेषिकाणां गुणत्वव्यवहारः पारिभाषिकोभाक्त इति यावत्। वस्तुतस्तु पदार्थप्राणप्रदत्वेन परमाणुत्वस्य जातित्वमेव। इत्थं मुकुलादिमते परमाणुशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तं परमाणुत्वं गुण एव, मम्टादिमते तु जातिरेव। तत्र गुणत्वपक्षं निराकृत्य जातित्वपक्षएव विविधप्रमाणैरत्र शोधनिबन्धे सिद्धान्तितः।

*

PR-25

शब्दब्रह्म

डॉ. अनीता त्यागी, रामपुर

वाग्वै सम्राट् परमं ब्रह्म। बृहदारण्यकोपनिषद् 4-1-2

शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति, इति उक्त्वानुसारेण शब्दस्य महता स्वतःसिद्धा। वस्तुतः अयं शब्दतत्त्वमेव अनादिनिधन ब्रह्मा अस्ति। अखिलं विश्वं अस्यैव विवर्तोऽस्ति—

अनादिनिधनं ब्रह्मशब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥ वा०प०पृ० 1

निखिलेऽस्मिन् संसारे न कोऽपि ज्ञानं शब्देन बिना संभाव्यते—

अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन अवभासते। वा०प०पृ० 28

शब्दोऽपि अर्थापेक्षी भवति। यथा—गौरिति कथनमात्रेण रूपगुणयुक्तो गलकम्बलधारी जीवविशेषो बोध्यते। इत्थं सर्वमेव शब्दानां कोऽपि अर्थो अवश्यमेव भवन्ति। यद्यपि केचित् निरर्थकाः शब्दाः अपि उपलभ्यन्तेः परं ते न अत्युपयोगिनः भवन्ति। वस्तुतः शब्दार्थो अन्योन्याश्रितौ भवतः।

शब्दार्थ चिन्तन प्राचीन कालादेव दृष्टि पथं आयान्ति। मुख्यरूपेण अयं व्याकरणस्य विषयोऽस्ति। परं मीमांसान्याय काव्यशास्त्रे अपि एषां विवेचनम् उपलभ्यन्ते। मीमांसकानां मतानुसारेण पद (शब्दो वा) नित्योऽस्ति, तस्य वर्णाः अपि नित्या, तेष पदेषु अर्थग्रहणस्य प्रदानस्य च शक्तिमपि नित्योऽस्ति।

नैयायिकानां मतानुसारेण शब्दः अनित्योऽस्ति—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

''अनित्य शब्दः चाक्षुषत्वात् घटवत्''—तर्क भाषा पृ० 9। परं मीमांसकानां मतानुसारेण एतत् नोचितम्। वस्तुतः नैयायिकवैशेषिकाश्च सामाजिक परम्परा एव अत्र (शब्दार्थ सम्बन्धे) मूलकारणं इति स्वीकुरुतः—

क— **सामयिकत्वाच्च शब्दार्थ संप्रत्ययस्य।** न्यायसूत्र 2.55

ख— **सामायिकः शब्दार्थप्रत्ययः** वै०सू० 8.2.20

निरुक्तकारः यास्कः—''अर्थ वाचः पुण्यफलमिति'' आह—1.20 तस्य मतानुसारेण मन्त्रः सार्थकोऽस्ति—

''यथो एतद्ब्राह्मणेन रूप सम्पन्ना विधीयन्त इति उदितानुवादः समवलिः'' (1.16) महावैयाकरण पाणिनिः अपि ''अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्'' इति कथयित्वा अप्रत्यक्षरूपेण प्रातिपदिकादिकं नित्यं अर्थवानं स्वीकरोति। आचार्य भतृहरिणा शब्दः अर्थस्य कारणं इति स्वीक्रियते-शब्दः कारणमर्थस्य स हि तेनोपजन्यते।

*

PR-26

प्रभाकरमते मोक्षस्वरूपम्

डॉ. गायत्री शुक्ला, रायबरेली (उ०प्र०)

आस्तिकनास्तिकोभयविधदर्शनेषु मोक्षपदार्थम् अधिकृत्य विशद् विवेचनं दरीदृश्यते। तत्र केचित् भावात्मकं मोक्ष इति मन्यन्ते; अपरें तु अभावात्मकं मोक्ष इत्याहुः। अभावपक्षेऽपि केचन मोक्षः दुःखप्राग्भाव-रूपमिति स्वीक्रियते; अन्ये तु दुखात्यन्ताभावरूपम्। एवमेतद्विषयमधिकृत्य विवदन्ते बहुविदः। अतोऽयं मोक्षः विचारविषयतामापद्यते। लोकदर्शनरूपेणख्याते पूर्वमीमांसादर्शनेऽपि एतः विषयः सुविचारितोऽस्ति। तत्र प्रभाकरकौमारिलयोर्मतयोरपि किञ्चिद् मतवैभिन्यं दृश्यते। भाट्टमीमांसकाः प्रपञ्चविलयो मोक्ष इति मन्यन्ते अथवा एकविंशतिर्दुखध्वंसो मोक्ष इति मन्यते। प्रभाकरस्य मते एतद्विपरीतं मोक्षस्वरूपम्।

प्रभाकरमते दुःखनिवृत्तिरेव मोक्षः। तद्दुःखनिवृत्तिस्तु द्विधा दृश्यते। स्वर्गफलप्राप्तित्वाद् सम्पादितो मोक्ष अथवा निःशेषधर्मक्षयेण सम्पादितो आत्यन्तिको मोक्ष उभयमपि दुःखनिवृत्तिरूपमेव। यतोहि निःशेषधर्माधर्म एव शरीराप्राप्तिहेतुर्भवति अतएव तेषां धर्माधर्माणां परिक्षयेण आत्यन्तिको मोक्षः सम्पादितो भवति। धर्माधर्मवशीकृतो जीवः तासु तासु योनिषु संसरति। अस्य संसरणस्याश्रयो देहेन्द्रियादीनि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भवन्ति। तयोरेकान्तेन उच्छेदे सति आगामिजन्मनि भोगाश्रयभूतो देहेन्द्रिसम्बन्धो नश्यते; फलतोऽपगतदेहेन्द्रियसम्बन्ध आत्मा 'मुक्त' इत्याचक्षते।

मोक्षोऽयं ज्ञानकर्मसमुच्चयानुष्ठानेन सम्पद्यते। यतोहि दु:खेभ्य उद्विग्न: सांसारिक: पुरुष: सुखेऽपि दु:खानुषङ्गात् सुखमपि दु:खमिव मन्यमान: विगतस्पृह: सन् मोक्षायोत्तिष्ठते। धर्माधर्मयो: क्षीणे सति शमदमब्रह्मचर्यादिसाधनेन उपबृंहितेन आत्मज्ञानेन नि:शेषकर्माशयं नाशयन् मुच्यते। 'न स पुनरावर्तते' इत्यादय: श्रुतयोऽत्र प्रमाणभूता:। निष्कर्षोऽयं यत् प्रभाकरमते दु:खनिवृत्तिरूपो मोक्ष: काम्यादिकर्मणामननुष्ठानेन धर्माधर्मयो: क्षीणे सति सम्पद्यते। स खलु मोक्ष: दु:खनिवृत्तिस्वरूपक:। सा दु:खनिवृत्तिस्तु ज्ञानकर्म-समुच्चयानुष्ठानेन सिध्यति—इति प्रभाकरमतम्।

*

PR-27

सांख्यतत्त्वकौमुदी दृष्ट्या पञ्चविंशतितत्त्वानि

संघमित्रा रथ, भुवनेश्वर

'सांख्य' शब्द: निर्विवादेन संख्यासम्बन्धिनो भवति। यस्य अर्थं भवति "सम्यक् ख्यानम्।" अर्थात् सम्यक् विचारम्। द्वितीयत: सांख्यशब्दमाधारीभूतं संख्याया: अर्थ: 'गणना' अर्थात् पञ्चविंशति तत्त्वानां संख्या भवति। सांख्यदर्शनं अस्य विश्वतत्त्वस्य विश्लेषणात्मक परिगणनं प्रददाति। कथ्यते यत्— संख्या प्रकुर्वते चैव प्रकृतिं च प्रचक्षते। तत्त्वानि च चतुर्विंशत् तेन सांख्य: प्रकीर्तिता:। वेदादारभ्य: पुराणपर्यन्तं सांख्यदर्शनस्य चर्चा परिदृश्यते।

सांख्यदर्शनाचार्याणां मध्ये सांख्यकारिककार: ईश्वरकृष्ण प्रमुखाचार्य: वर्तते। तस्य रचिता सांख्यकारिका सुप्राचीन समयात् सांख्यदार्शनिकानां कृते प्रामाणीकी ग्रन्थरूपेण स्वीकृता।

सांख्यकारिका 'सांख्यसप्तति' रूपेण अपि ख्याता। सांख्यकारिकामाधारीकृत्य बहुविधानि भाष्यानि विरचितानि। तेषु नवम शताब्दे: मिथिलानिवासी षडदर्शनाचार्य: वाचस्पति मिश्रमहोदयकृता सांख्यतत्त्वकौमुदी टीका-पाठकगणेषु सुप्रसिद्धा भवति।

पञ्चविंशति-तत्त्वनामालोचनायां सांख्यदर्शनं परिपुष्टं भवति। सांख्यदर्शनानुसारेण पुरुषप्रकृतितत्त्वं नित्यतत्त्व-रूपेण स्वीकृतम्। प्रकृतिविकृत्यादीनां समाहारेण, तत्त्वानां संख्या भवति पञ्चविंशति:। तत्त्वकौमुद्यानुसारेण पुरुषप्रकृत्यो: तत्त्वानां चतस्र भेदा: वर्तन्ते। कश्चिदर्थ: **प्रकृतिरेव**, कश्चिदर्थो **विकृतिरेव**, कश्चित्**प्रकृतिविकृति:**, कश्चिद**नुभयरूप:**। प्रकृते: संज्ञा टीकाकारेण अनेन प्रकारेण प्रददाति - यथा— प्रकरोतिति प्रकृति:-प्रधानम्, सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था। सा अविकृति अपिच विश्वस्य कार्यसंघातस्य

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मूलम्। पुनः प्रकृतिविकृतयः विषये तेन उक्तं यत्प्रकृतयश्च विकृतयश्च ता इति 'प्रकृतिविकृतयः सप्त। पुनश्च का विकृतिरेव इत्यत टीकाकारेण उक्तं यत्—षोडशसङ्ख्यापरिमितो गणः अर्थात् पञ्चमहाभूतानि एकादशेन्द्रियाणि इति षोडशका गणो विकार एव। ''अनु-भयरूपमाह'' विषये तेन उक्तं यत्—न प्रकृति र्न विकृतिः पुरुषः इति पुरुषः।

*

PR-28

धर्मशास्त्रेषु स्त्रीधनम् (याज्ञवल्क्यस्मृतिसंदर्भविशेषे)

डॉ. विनीत घिल्डियाल, गढवालस्थम्

ह्यूमनराइट्सेत्याख्यातस्य मानवाधिकारस्य जनकः जन्मदात्री च पाश्चात्यचिन्तकः संस्कृतिश्च मन्यते जनैः, परन्तु प्राचीनकालादेव भारतीयसंस्कृतेः समुद्घोषका ऋषयो मनीषिणश्च एतद्विषयिणीं चर्चां सविस्तरेण चर्चितवन्तः। वैदिकग्रन्थेषु धर्मशास्त्रेषु च मानवाधिकारस्य चित्रणं प्रभूतमात्रायां कृतमस्ति। मनीषिभिः तत्त्वदर्शिभिश्चाजीवन-अस्तित्व-संरक्षण-शिक्षा-ज्ञानविकास-अर्थलाभतत्संग्रहण-धर्मोपासना-स्वतन्त्रता- व्यक्तिगतसमृद्धि-सम्पत्तिसंरक्षण परिवारसमाजराष्ट्रविषयककर्तव्यानामधिकाराणञ्च विवेचनं विन्यस्तमस्ति तत्र। मनु-आपस्तम्ब-वसिष्ठ-पराशर-कात्यायन-नारद-याज्ञवल्क्यप्रभृतीनां धर्मशास्त्राणि श्रुतिमूलान्येव। 'समानो मन्त्रः समिति समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्', 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्, तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः--', 'केवलाघो भवति केवलादी', 'अहिंसा परमो धर्मः', 'न भोगं कल्पयेत्स्त्रीधनेषु देवराजधनेषु च', 'संरुद्धस्य वा तत्रैव घातः। तदेवाध्यक्षेण गृहीतायामार्यायां विद्यात्' इत्यादिमानवाधिकार-विषयकसूक्तिरत्नानि संसूचनसमर्थानि यत् मानवाधिकारस्य चिन्तनं संस्कृतवाङ्मये शब्दान्तरमात्रेण विद्यमानमस्ति। धर्मशास्त्रेषु, विशेषतः याज्ञवल्क्यस्मृतौ स्त्रीधनस्य स्वरूपं, तद्विभागं धनग्रहणाधिकारिणश्च विस्तरेण वर्णिताः सन्ति। शोधपत्रेऽस्मिन् एतद्विषयकचिन्तनं प्रस्तुतीकरणञ्च कृतमस्ति।

*

PR-29

नित्यसूरिसद्भावविचारः

डॉ. चक्रवर्ती राघवन, तिरुपति

बद्धमुक्तनित्यरीत्या त्रिविधाः जीवाः। विशिष्टाद्वैतमरीत्या बद्धमुक्तापेक्षया नित्याः ''तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः'' (ऋक् सं 1-22-20), (यजुस्सं 1-1-11) इत्यादि श्रुति समधिगमात्

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अनादिकालादेव संसारबन्धरहिताः नित्याः इति। अत्र नित्याः-नित्यसूरयः, मूरिपदवाच्याश्च जीवाः। अत्र एवं संशयाः—यदि नित्याः जीवाः भवन्ति तर्हि कथं तेषां संसारबन्धत्वं कदापि न स्यात् इति। अनन्तरं पाशुपताः अपि ''मुक्तात्मनोऽपि शिवाः किन्त्वेते तत्प्रसादतो मुक्ताः। सोऽनादिमुक्त एकः'' (त०प्र० 6) इत्यनेन शिव एक एव अनादिमुक्तः इत्यपि इतरे तु सादिमुक्ताः इति केवलं मुक्ताः एव भवन्ति न तु नित्याः इति वदन्ति इति।

❋

PR-30

जीवनस्य परमपुरुषार्थः

कुमारी गीता बनर्जी, वाराणसी

संसारस्य विविधतापसन्तप्ताः मानवाः इतस्ततो भ्रमन्ति शान्तिलाभाय। परं कुतोऽपि मानवाः शान्तिं न लभन्ते। यतः आनन्दस्य प्राप्तिरेव मानवजीवनस्य परमपुरुषार्थः। आनन्दस्य प्राप्तिः कथं केन वा लभ्यते? तदेव विचारितं मया अस्मिन् संक्षिप्तनिबन्धे। तत्र मया मातुरानन्दमय्याः अमृतमयीं वाणीं समाश्रित्य परमपुरुषार्थस्य स्वरूपं वर्णितम्।

श्री श्री माता कथयति

''ईश्वरः सत्यस्वरूपः सुखस्वरूप आनन्दस्वरूपश्च वर्तते। मानवजीवनस्य एकमात्रम् उद्देश्यं वर्तते भगवत्प्राप्तिः।''

❋

PR-31

रामानुजदर्शन में सृष्टिविचार

डॉ. रश्मि सिंह, बांदा

आचार्य रामानुज वैष्णव चिन्तन धारा के प्रमुख आचार्य हैं। भक्ति को मोक्ष के साधनरूप से प्रतिष्ठापित करने वाले ये प्रथम आचार्य हैं। भक्ति और प्रपत्ति की स्थापना करके इन्होंने दार्शनिक चिन्तन को नई दिशा प्रदान की है। राजानुज ने आचार्य शंकर द्वारा प्रतिपादित ब्रह्म निर्विशेषवाद का खण्डन करके सविशेषवाद का प्रतिपादन किया है। इनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त विशेष्टाद्वैत नाम से प्रसिद्ध है। इस मत के अनुसार परमसत्ता सगुण, संविशेष है। वह चित् (जीव) और अचित् (जगत्) से विशिष्ट हैं। चिदचिद् ब्रह्म के विशेषण तथा शरीरभूत हैं अतः ब्रह्म और चिदचिद् का अद्वैत विशेषणविशेष्यभाव से विशिष्ट होने के कारण विशिष्टाद्वैत कहलाता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विशिष्टाद्वैत मत के अनुसार जगत् ब्रह्म का अचिदंश होने के कारण सत्य है। रामानुज जगत् को ईश्वर का शरीर मानते हैं 'जगत्सर्व शरीरं ते' 'तत्सर्वहरेस्तनुः' आदि श्रुतिवाक्यों के द्वारा अपने इस मत की पुष्टि भी करते हैं। ईश्वर का शरीर होने के कारण यह नित्य और सत्य है किन्तु इसकी सत्यता ईश्वर से पृथक् नहीं है। ब्रह्म-शरीर होने का तात्पर्य यहां ब्रह्म द्वारा धार्य, नियंत्रित तथा ब्रह्माधीन होना है। जगत् की सत्यता का अर्थ जगत् की ब्रह्मात्मकता ही है। आचार्यजगत् की उत्पत्ति और नाश नहीं मानते। ये चिदचिद् को ईश्वर का नित्य सहवर्ती विशेषण स्वीकार करते हैं अतः प्रत्येक स्थिति में वे ब्रह्म के शरीर अथवा विशेषणरूप से जगत् की स्थिति स्वीकार करते हैं। सृष्टि से पूर्व और प्रलयकाल में भी चिदचिद् अपने कारण ब्रह्म में नामरूप के भेद से रहित अत्यन्त सूक्ष्मदशा में अवस्थित होते हैं तथा सृष्टि के समय वही नामरूप के भेद से युक्त होकर स्थूल रूप से व्यक्त होते हैं।

रामानुज के अनुसार सृष्टि का कर्ता और कारण ईश्वर ही है। आचार्य सत्यकार्यवाद के समर्थक हैं। इन्हें मान्य सृष्टिप्रक्रिया भी सांख्याभिमत सृष्टि प्रक्रिया के ही समान है।

*

PR-32

भारतीय चिन्तन और अद्वैतवेदान्त

डॉ. शारदा गुप्ता, जम्मू

न्याय, वैशेषिक, बौद्ध, जैन चार्वाक, सांख्य, योग, मीमांस-सभी दर्शनों का समन्वयात्मक रूप 'भारतीय-दर्शन' का प्रतिनिधित्व करने वाला 'अद्वैतवेदान्त' है। द्वैत अथवा भेद का साहित्य 'अद्वैत' हैं द्वैत-शून्य तत्व की अभिधा ही 'अद्वैत' है। वेद के अन्तिम भाग उपनिषद् अथवा ज्ञान काण्ड से ज्ञान की जो परम्पावना भागीरथी उपनिषदों में यत्र-तत्र-सर्वत्र निर्बाधरूपेण प्रवाहित होती रही है उसी की अभिधा 'वेदान्त' है। उपनिषदानुकूल एवं सहायक शारीरिक सूत्र तथा श्रीमद्भगवद्गीता आदि भी 'वेदान्त' के अन्तर्गत हैं। अध्यात्मतत्त्व के विवेचक, धर्म एवं जीवन में अनुस्यूत, व्यावहारिक धरा पर प्रतिष्ठित, परमतत्त्व को उपदेशक, विश्वशांति के निर्देशक, आचार के शिक्षक के रूप में अद्वैतवेदान्त सुप्रतिष्ठित हैं। अद्वैतवेदान्त का मूलमंत्र 'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या, जीवों ब्रह्मैवनाऽपर' है।

अद्वैतवेदान्त ही एकमात्र ऐसा दर्शन है जो भेदप्रथनात्मक अनुभूति को उच्च अभेदात्मक परमतत्त्व से सायुज्य को सहज प्राप्य बनाता है। अद्वैतवेदान्त की कृतार्थता इस रूप में अङ्गीकार्य है कि प्रतीयमान जगत के दृश्य समग्रपदार्थ अद्वैत तत्त्व के प्रति उन्मुख किए जाएँ, जहाँ

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पहुँचकर आत्मा का ही स्फुरण होता है, यही अद्वैत स्थिति है जिसके प्रति 'अद्वैतवेदान्त' की निष्ठा रही है।

*

PR-33

अपरिग्रह-आधुनिक संदर्भ में

डॉ. रणजीत कुमार, पटना

अपरिग्रह हिन्दु आचार शास्त्र के पांच प्रमुख लक्षणों सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह में एक प्रमुख लक्षण के रूप में प्रयुक्त हुआ है यह हिन्दु धर्म पुरातन है परन्तु हिन्दु शब्द नया नामाकरण है यह धर्म से अधिक स्थान को सूचित करता है। पारसियों द्वारा सम्भवतः प्रथम बार इस शब्द का प्रयोग किया गया जिन्होंने सिन्धु नदी के आस-पास रहने वालों को हिन्दु कहकर पुकारा। सिंन्धु न कह कर उन्हें हिन्दु कहा। वेद से लेकर पुराणों तक जितने हिन्दु धर्म ग्रंथ हैं उसमें कहीं भी हिन्दु शब्द का प्रयोग नहीं है।

लांभवश अनावश्यक वस्तु के ग्रहण का त्याग ही अपरिग्रह कहलाता है। भागवत में लिखा है कि प्रत्येक व्यक्ति को उतनी ही चीज़ पर अधिकार है जितने से उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है उससे अधिक लेने वाला चोर है और दण्ड योग्य भी है।

आधुनिक संदर्भ में भी यदि इन पुरातन मूल्यों जैसे अपरिग्रह आदि को सही परिपेक्ष्य में व्यवहृत नहीं किया गया तो व्यक्ति, समाज, राज्य एवं राष्ट्र असंख्य बीमारियों से युक्त होकर असयम काल कलवित होने को विवश होगा। प्रस्तुत लेख में इन्हीं बिन्दुओं पर विचार किया गया है।

*

PR-34

ठाकुर गुमानसिंह कृत 'योगसूत्र-पद्यात्मक टीका' का वैशिष्ट्य

डॉ. धीरज प्रकाश जोशी, उदयपुर

ठाकुर गुमानसिंह ने मेंवाडधरा पर अवतीर्ण होकर लक्ष्मणपुरा को अपनी कर्मस्थली बनाया तथा योगसाधना की उनसे ठाकुर चतुरसिंह एवं महात्मा भुरीबाई प्रभावित हुए और इस परम्परा को आगे तक बढ़ाया। संभवतः ठाकुर गुमानसिंह ने ठाकुर चतुरसिंह जी को समझाने

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

के लिए योगसूत्र पर पद्यात्मक-टीका तथा योग शास्त्र से संबंधित 'योगांकशतक' एवं 'लययोग बत्तीसी' की रचना की। इन ग्रंथों का प्रकाशन साहित्य संस्थान, उदयपुर से 1999 में हुआ।

योगसूत्र की इस टीका में मूल सूत्रों के साथ-साथ उसकी पद्यटीका भी दी गई है। इस टीका में ग्रन्थकार ने योगसूत्र के चारों पदों (समाधिपाद, साधनपाद, विभुतिपाद व केव्लयपाद) की व्यासभाष्य, भोजवृत्ति, तत्त्ववैशारदी आदि के आलोक में सरल, सरस एवं मार्मिक अभिव्यंजना प्रस्तुत की है। जो समझने की दृष्टि से सुगम होने के साथ ही पद्यात्मक होने से स्मृतव्य भी है। टीका में दोहा, सोरठा, कवित्त छप्पय, चौपाई आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है।

*

PR-35

माठरवृत्ति और चीनी अनुवाद की साधारण असमानताएं

डॉ. श्रीमती अर्चना गिरि, उत्तरप्रदेश

आचार्य माठर सांख्यशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान थे इसमें सन्देह नहीं है। माठरवृत्ति ही सांख्यसारिका पर लिखी गई प्रथम व्याख्या है। यह कृति कर्त्ता के मात्र नाम से प्रसिद्ध हैं सांख्यकारिका पर उपलब्ध अनेक टीकाओं के रहते हुए भी माठरवृत्ति विशेष प्रसिद्धि प्राप्त है, क्योंकि यह व्यावहारिक एवं जनसाधारण के समझने योग्य है। माठर की व्याख्या आने वाले व्याख्याकारों के लिए प्रदर्शक बन गई। माठर स्पष्ट वक्ता, वेद, दर्शन का ज्ञान रखने वाले तथा विज्ञान विषय को समझने वाले ऐसे व्याख्याकार थे जिसकी तुलना हो ही नहीं सकती है। यज्ञों में होने वाले पशुवध की खुलकर निन्दा की है। कहा है–रक्त से सने हाथ आपके पाप कैसे धो सकते हैं। इसलिए दुखों की निवृत्ति में ज्ञानमार्ग ही श्रेष्ठ है। माठर की अपनी शैली थी कि कहीं स्वयं को पूर्वपक्षी माना कहीं खण्डन किया। कहीं अगली कारिका के भाव को भूमिका में ही समझा दिया। इसलिए कारिका को समझने में एकसूत्रता बनी रहती है। माठर अपने इस शैली में विशेष सफलता पाए। सांख्यदर्शन के ज्ञान को उसी रूप में समझने का श्रेय भी माठर को ही है। माठर की व्याख्या में मौलिकता भरी पड़ी है। विशेष रूप से सूक्ष्म शरीर की व्याख्या में माठर सम्भवतः चिकित्सा शास्त्र के ज्ञान को भी अपने में आत्मसात किए लगते हैं। इसलिए सूक्ष्म शरीर की वैज्ञानिक व्याख्या का श्रेय भी माठर को ही जाता है माठर ने सांख्यकारिका की व्याख्या में सबसे ज्यादा उद्धरण दिए हैं। माठर वेद, पुराण, दर्शन के अच्छे ज्ञाता थे।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-36

भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यात्माल्लोकादमृता भवन्ति

डॉ. शरत प्रभा, पूर्णिया

ज्ञानी पुरुष संसार के एक-एक पदार्थ का गहन चिंतन और विचार करके ही मृत्यु के पश्चात भी अमर होते हैं। मानव का अन्तराल ही प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष है। प्रेरणाएं दिव्य अन्तःकरण से प्रस्फुटित हो देवी प्रवाह का लाभ उठाती है।

ज्ञान ही ज्ञान का सर्वोच्च पुरस्कार है हमारे समस्त ज्ञान स्वानुभूति पर टिके हैं। आनुमानिक ज्ञान की बुनियाद स्वानुभूति है, जिनको निश्चितः विज्ञान कहते हैं, ज्ञान प्राप्त करने के लिए हम साधरणी की सहायता होते हैं।

इस दुर्लभ मानव-जीवन को स्वर्ग का सोपान कहा गया है। इस जीवन में ही मनुष्य अपने सत्कर्मों के द्वारा मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। यह सच है कि विश्व की व्यापक जड़ सत्त की अपनी अटूट कार्य-कारण व्यवस्था प्रकृति में व्याप्त है, मनुष्य उसमें ज्यादा हस्तक्षेप नहीं कर सकता है किन्तु यह भी उतना ही सही है कि इस जगत् में मनुष्य के समकक्ष कोई मेधावी नहीं। अपनी मेधा के बल पर मानव ने जो विकास किया है वह अनुपम एवं श्लाघ्य है। यहां तक कि परम सत्ता को भी प्रतीत कराने वाला और उसका नाम-करण करने वाला मानव ही हैं अतः इससे बड़ी शक्ति की कल्पना करना मानवता का उपहास करने जैसा ही है। मानव भले ही सर्वज्ञ न हो, किन्तु बहुत तो अवश्य है। यह बहुज्ञता उसकी विचार शक्ति और चिन्तन- प्रक्रिया का ही परिणाम है। अध्यात्म से लेकर विज्ञान तक और दर्शन से लेकर पुराण तक अध्यावधि जो अन्वेषण एवं उपलब्धियां है, वे मानव की चिन्तन धारा का परिणाम ही तो है।

*

PR-37

वैश्विक संकट का निदान है सनातन धर्म

डॉ. इन्दु प्रकाश मिश्र 'इन्दु', इलाहाबाद

मनुस्मृति में कहा गया है कि-वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।। अर्थात् सम्पूर्ण वेद-ऋक्, साम, यजुष और अथर्व ही धर्म-धृति क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, बुद्धि, विद्या, अक्रोध सत्य का बीज है, जड़ है। वेद के ज्ञान के बिना सत्य, वृहत्, ऋत्, उग्रता, दीक्षा, तप,ब्रह्म,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यज्ञ आदि को नहीं जाना जा सकता है। श्रीमदभगतद् गीता में-भगवान् श्रीकृष्ण ने धर्म पालन के लिए कहा कि-मैं स्वयं ही चार वर्णयुक्तधर्म हूँ, जिसकी अर्थात् जिस जीवात्मा की मुझमें भक्ति होती है, निष्ठा और श्रद्धा होती है वह मेरे लिए अपने वर्ण धर्म-(ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शद्र) को निभाकर स्वयं मोक्ष प्राप्त करा लेता है। इस प्रकार धर्म सभी पापों, अन्यायों, दुराचारों से सभी स्त्रियों एवं पुरुषों की रक्षा करता है। कहा भी गया है कि धर्मो रक्षति रक्षितः।

सम्प्रति विश्व में हिन्दू, (सनातन) जैन, बौद्ध, इस्लाम, ईसाई, आदि धर्म अपने-अपने तरह से लोगों को आस्थावान् बनाये हुए हैं किन्तु विचारणीय है कि इतने धर्मों, धर्माचार्यों के होते हुए भी स्त्रियाँ बच्चे, वृद्ध, गरीब क्यों दुर्गति भोग रहे हैं? अब यहीं धर्म-पुरुषार्थ, कर्म, परिश्रम, मेहनत, कर्तव्य, सन्तुलन, औचित्य, नियम, श्रद्धा, सहयोग, त्याग, सेवा, सहिष्णुता प्रेम आदि के रूप में विस्तृत होकर सदाचार बन जाता है और आश्रम धर्म के रूप में आयु के सौ वर्षों का नियंत्रण करता हैं इसी आश्रम धर्म के भीतर गृहस्थ धर्म, देश धर्म, राज धर्म, कुल धर्म, स्वधर्म, मित्रधर्म, पितृ-मातृ-भ्रातृ-गुरू-शिष्य, स्वामी, सेवक, विद्वान-अनपढ़, अमीर-गरीव सभी के मध्य एक सामंजस्य, समत्व, समदृष्टि और सह-अस्तित्त्व बनकर धर्म विश्व की समस्याओं एवं संकटों का निदान करता है।

*

PR-38

जगत् और संसार

रामकुमार शर्मा, लखनऊ,

वाल्लभ सिद्धान्त के अनुसार जगत् का प्रपञ्च वास्तविक हैं यह पुरुषोत्तम का आधि भौतिक रूप है उसमें सचिच्चदानन्द का 'सत्' भाव आविर्भूत है और चित् तथा आनन्द तिरोहित है। जगत् या प्रपञ्च् का कभी विनाश नहीं हो सकता। प्रलय में वह अपने कारण 'ब्रह्म' में तिरोभूत रहता है। सृष्टि में वह आविर्भूत हो जाता हैं भगवान् का कार्य हो से वह भगवद्रूप हौ। अपने रमण और क्रीड़ा के लिए ही भगवन् जगत् के रूप में आविर्भूत होते हैं।

आचार्य के अनुसार जगत् और संसार पर्यायवाची शब्द नहीं हैं। जगत् और संसार एक नहीं है। जगत् का आविर्भाव प्रभु की माया शक्ति के द्वारा है। संसार प्रभु की अविद्याशक्ति का कार्य हैं भगवत में माया और अविद्या को एक दूसरे से भिन्न माना गया है। अतः अविद्या माया से भिन्न है। मायावादियों ने अविद्या और माया को जो अभिन्न माना है वह सिद्धान्त प्रमाणिक नहीं है। जगत् ब्रह्मोपादानक और मायाकरणक है, किन्तु संसार निरूपादानक और

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अविद्याकरणक है। कारणभेद होने से जगत् और संसार एक दूसरे से भिन्न हैं। शास्त्रों में अविद्यानामक शक्ति के कारण जीव के संसार की बात कही गई है। जीव का अहता-ममतात्मक संसार वस्तुतः उत्पन्न नहीं होता क्योंकि वह अभिमत्यात्मक अर्थात् काल्पनिक है। अविद्या, अज्ञान, भ्रम और असत् इत्यादि शब्दों का शास्त्रों में प्रयोग जीव के अह्ता-ममतात्मक संसार के लिए ही हुआ है, जगत् के लिए नहीं, क्योंकि जगत् तो ब्रह्मात्मक है।

अज्ञान के कारण जीव ऐसा समझता है कि मैं इस कर्म का कर्ता हूँ, इस कर्म से उत्पन्न होने वाला फल मेरा है, मैं इस फल का भोक्ता हूँ। अहता-ममतात्मक संसार अविद्या की कृति है। तत्त्वज्ञान होने पर यह निश्चय हो जाता है कि सभी कुछ ब्रह्म है। तब अविद्याजन्य संसार की निवृत्ति हो जाती है, किन्तु जगत् ब्रह्मात्मक है, अतःतत्त्वज्ञान होने पर भी उसकी निवृत्ति नहीं होती ''संसारस्य लयो मुक्तौ, न प्रपञ्चस्य कहिचित्'' (शास्त्रार्थ प्रकरण कारिका, 24)। मुक्ति होने पर केवल अविद्याजनित का लय हो जाता है प्रपञ्च (जगत) का नहीं। अहन्ता-भक्तात्मक संसार ही मिथ्या है, न कि ब्रह्मात्मक प्रपञ्च। अविद्या पञ्चपर्वा है। ये पांच पर्व है-स्वरूपाज्ञान, देहाप्यास, इन्द्रियाध्यास, प्राणध्यास और अन्तःकरणाध्यास। इस अविद्या के रहने पर ही संसार है। ज्ञान के उदय होने पर इस अविद्याजन्य संसार का विनाश हो जाता है। जगत् और संसार का भेद इस दर्शन का एक विशेष भाग है।

*

PR-39

अद्वैत तत्त्वज्ञानातील भक्तीचे स्थान

नेक अनुउपमा, नागपुर

भारतीय दर्शन साहित्यात जीव, जगत् आणि ईश्वर याच्चा संदर्भावे वेगवेकळे विचारयेतात. जीवनाचे अंतिम ध्येय जे मोक्ष, ज्याच्चा प्राप्सीसाठी जीवाची धावाघाव चालू असने या अंतिम ध्येयप्राप्तीमाठी दर्शनकारांनी वेगवेगळे मार्ग सूचविले आहेत. ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग आणि भक्तिमार्ग या मार्गांच्चा अनुसरणाने अंतिम ध्येय साधता येते. परन्तु यानील ज्ञानमार्ग हा विशिष्ट पात्रता असलेल्या साघकांसाठी असून कर्ममार्गासाठी अनेक साधनाची आवश्यकता आहे। भक्तिमार्ग मात्र सामान्य लोकांचा होय। स्त्री-पुरुष, लहानभोर सर्वांसाठी भक्तिमार्ग मोकळा आहे। म्हणूनच भारतीय दर्शनकारांनी 'भक्तिमार्गरूपी साधन-श्रेष्ठ मानाळोले आहे। निर्गुण ब्रह्माच्या प्राप्तीसाठी सर्वसामान्य साधकास

''भक्तया मामभिजानाति यागन्च्वास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विज्ञते तदनंतरम्॥'' (18.55)

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अशी ही द्वैतात्मक स्थिनी हळूहळू अद्वैतभक्तीन परिणत होते व उपास्य-उपासक भेद नाहीसा होऊन भक्त सचिदानंदरूप परमात्म्याशी एकरूप होतो। शांकरोत्तर दर्शनामध्ये रामानुजांच्या विशिष्ट द्वैतापासून भक्तिमार्गाला च्क्या अर्थाने सुरूवान झाली. भक्तिने या संसारातून सुटका मिळवून वासुदेव नारायणान विलिन होणे हाच मोक्ष होय।

*

PR-40

गीता एक विश्लेषणात्मक दृष्टि

ममता पाण्डेय, दरभंगा

महर्षि वेदव्यास के अद्‌भुत आत्म चिन्तन का दर्शन उनके द्वारा विरचित श्रीमद्‌भगवतगीता का अवलोकन कर होता हैं यह महर्षि के आत्म मंथन से प्राप्त वह अपूर्व दुग्धामृत प्रतीत होता है जिसका जितना ही आत्ममंथन किया जाए उतना ही नूतन भाव रत्न प्राप्त होता है।

भीष्म पर्व में कहया गया है-''सर्वशास्त्रमयी गीता'' गीता का यदि अवलोकन किया जाए तो सारे शास्त्रों का ज्ञान स्वत हो सकता है। महाभारत में कहा गया है सारे शास्त्रों की उत्पत्ति वेदों से हुई, वेदों का प्राकट्य भगवान ब्रह्माजी के मुख से हुआ और ब्रह्माजी भगवान के नाभि-कमल से उत्पन्न हुए। गीता स्वयं भगवान के मुख से निकली। इसलिए उसे सभी शास्त्रों से बढ़कर कहा जाए तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। स्वयं महर्षि वेदव्यास ने कहा है–

गीता सुगीतःकर्त्तव्याः किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः।
या प्रस्वयं पद्मानामस्य मुखपद्माद्विनिः सृता।।

गीता को स्वयं भगवान से बढ़कर भी कहा जा सकता है। यहां भगवान ने स्वयं कहा है–

''गीताश्रयेऽहंतिष्ठामि गीता में चोत्तमं गृहम्।
गीताज्ञान्मुपाश्रित्य त्रिल्लोकान्पाल्याम्यहम्।।''

वस्तुतः गीता-धर्म के रूप में जो द्रष्टव्य होता है वह है भगवान कृष्ण के द्वारा अर्जुन को राजयोग का उपदेश करके भागवत धर्म का पुनरारम्भ। इसका तात्पर्य यह है कि गीता ध र्म सृष्टि के आरम्भ से चला आ रहा था। बीच में उसका लोप हो जाने पर श्री कृष्ण द्वारा उसका पुनरारम्भ हुआ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

*

PR-41

दैनिक युग में गीता की उपयोगिता एवं महत्त्व

मिस सन्धया, जम्मू

भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ 'श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत का एक अंश है जिसका पठन-पाठन, श्रवन-मनन सब प्रकार से हमारा कल्याण कारक है। प्राचीन काल से लेकर आज तक गीता का सर्वाधिक महत्व अपनी इसी विशेषता के कारण रहा है। ज्ञान और भक्ति की अपेक्षा कर्म को ही इसमें अधिक महत्त्व दिया गया है। गीता केवल एक अध्यात्मिक ग्रन्थ ही नहीं है बल्कि एक नीतिशास्त्र या कर्त्तव्यशास्त्र भी है। संसार से भाग कर वनों में जाकर तपस्या आदि करना और इस प्रकार मोक्ष आदि की कामना करना भी गीता नहीं सिखाती है अपितु इस संसार में रहते हुए अपने गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी मनुष्य निषिद्ध कर्मों, काम्य कर्मों, तृष्णा आदि के त्याग द्वारा भी मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर सकता हैं विश्व साहित्य में गीता का विशिष्ट स्थान है भारतीय और विदेशी सभी विद्वान गीता से प्रेरणा प्राप्त करते रहे हैं। गीता ही एकमात्र ऐसा ग्रन्थ जिसका संसार की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। प्राचीनकाल से लेकर आज तक असंख्य जन का मार्गदर्शन गीता करती चली आ रही है। गीता के सिद्धांत सभी देशों, सभी सम्प्रदायों और सभी अवस्था के मनुष्यों के लिए उपयोगी है। गीता में श्रीकृष्ण जी ने हमें कर्त्तव्य से मुँह ना मोड़ना, निष्काम भाव से अपने कर्मों को करना, सुख-दुख में एक समान रहना, आत्मा का शाश्वत होना, मृत्यु और जन्म का निश्चित होना आदि महत्वपूर्ण संदेश दिए हैं। आजकल की भागदौड़ में, संकटमय और निराशा की जिन्दगी में गीता का महत्वपूर्ण स्थान है।

*

PR-42

वर्तमान में चार्वाक के नीति शास्त्रीय सिद्धांत की प्रासंगिकता

श्रीमति सोनी मुण्डा, झारखंड

चार्वाक दर्शन के अनुसार यथार्थ ज्ञान (प्रमा) का साधन केवल 'प्रत्यक्ष' ही एक मात्र प्रमाण है। प्रत्यक्षा ज्ञान का अर्थ इन्द्रियजन्य ज्ञान, जो पांच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्रमाणित है। चार्वाक भौतिकवादी नैतिकता का समर्थन करते हैं। जीवन के चरम लक्ष्य की व्याख्या करना ही नीति विज्ञान का मूल उद्देश्य हैं नैतिक नियम ही आचार के आदर्श कहलाते हैं। ये आदर्श पुरुष मात्र के प्रयोजन ही पुरुषार्थ कहलाता है। ये पुरुषार्थ चार है धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri Foundation USA

चार में से अर्थ और काम को ही चार्वाक पुरुष का प्रयोजन मानते हैं। इन दोनों की प्राप्ति के लिए ही कोई कार्य किया जाता है। अर्थात् संसारिक जीवन को सुखी बनाना ही मनुष्य का लक्ष्य है। अतः चार्वाक का यह सिद्धांत सुखवादी है। इसीलिए चार्वाक का कहना है–

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋण कृत्वा धृतं पीवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनंकुतः॥

*

PR-43

भारतीय दर्शन में कारण-कार्य विचार

अनुराग पाण्डेय, इलाहाबाद

भारतीय दर्शन में कारण कार्य सम्बन्धी विचार बहुत प्राचीन है। भारतीय दर्शनों में इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विचार मिलते हैं। उनमें से कुछ विचार निम्नवत् हैं–

(1) चार्वाक दर्शन स्वभाववाद के आधार पर कार्य कारण भाव पर विचार करता है। इसके अनुसार किसी कार्य को होने में किसी अन्य वस्तु की अपेक्षा नहीं होती है। सभी कार्य अपने-अपने स्वभाव से होते हैं। चार्वाक दर्शन कारणता का निषेध करता है।

(2) बौद्ध दर्शन में कार्य कारण भाव प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अनुसार कारण के होने पर कार्य होता है परन्तु कारण असत् है तथा कार्य सत् है।

(3) न्याय-वैशेषिक दर्शन असत्कार्यवाद को मानता है।

(4) सांख्य तथा रोग दर्शन सत्कार्यवाद को मानता है।

(5) जैन दर्शन की कारण कार्यमीमांसा सत्कार्यवाद तथा असत्कार्यवाद दोनों का सम्मिलित रूप है।

(6) मीमांसा दार्शनिक न्याय वैशेषिक के समान असत्कार्यवाद को ही मानते हैं।

(7) वेदान्त दर्शन में शंकर सत् कारण से असत् कार्य की उत्पत्ति मानते हैं।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-44

कर्म और परमात्मा नवधा भक्ति

रेणुका जे मासार, गुजरात

ब्रह्मा के स्वरूपका निर्देश, ब्रह्म में दिमाग का टिकाने का मेडीटेशन। आत्मसाक्षात्कार के लिए करने का विधि-विधान, ज्योर्तिमय ब्रह्म, और ब्रह्म साक्षात्कार का फल। आत्मसाक्षात्कार का असाधारण साधन है चित्तशुद्धि, आत्मदर्शन के दूजे साधन, और आत्मा-परमात्मा का समबन्ध।

*

PR-45

पातंजल योगसूत्र–स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा एक संदर्भ परक समीक्षा

डॉ. चन्द्रनाथ झा, दरभंगा

पातंजल योग प्रदीपकार ने सभी मतों का आलोड़न कर दो वैकल्पिक मतों का उल्लेख किया है जैसे–

1. रजोगुण की अधिकता से जाग्रत अवस्था में चित्त की वृत्तियां बहिर्मुख रहती है। और स्वप्न की अवस्था में रजोगुण बना रहता है परन्तु तमोगुण से आच्छादित हो जाने से वृत्तिया अन्तर्मुख हो जाती है। निद्रा (अर्थात् सुषुप्तावस्था) में तमोगुण रजोगुण को प्रधान रूप से पूर्णतया दवालेता है, इस कारण उस समय केवल अभाव की प्रतीति कराने वाली वृत्ति रहती है।

निद्रा और स्वप्नज्ञान आलम्बन का तात्पर्य उन्होंने यह कहा है कि जिस प्रकार स्वप्न में तमोगुण के कारण वृत्तियां अन्तर्मुख होती है उसी प्रकार ध्यान की अवस्था में तम के स्थान पर सत्वगुण से वृत्तियों को अन्तर्मुख करनी चाहिए। और जिस प्रकार निद्रा में तमोगुण की अधिकता से अभाव की प्रतीति होती है उसी प्रकार जाग्रतावस्था में ध्यान की अवस्था में सत्वगुण की प्रधानता से एकाग्रता उत्पन्न करनी चाहिए, जिससे वस्तु का यथार्थज्ञान प्राप्त हो।

इस सूत्र का एक वैकल्पिक अर्थ भी ग्रन्थकार देते हैं कि जिस प्रकार कभी-कभी मनुष्य सात्विक और मनोरंजक स्वप्न के तथा गहरी सात्विक निद्रा के पश्चात् जागने पर भी कुछ समय तक यत्नपूर्वक उसी अवस्था को बनाए रखता है इसी प्रकार जाग्रत अवस्था से भूले-जैसे होकर वृत्तियों को अन्तर्गमुख करते रहने से चित्त एकाग्र हो जाता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विज्ञान भिक्षुक का यहां भिन्न मत देखते हैं। उनके अनुसार स्वप्न रूप जो ज्ञान (क्षण भंगुर गुणों वाला) उसके आलम्बन वाला चित्त स्थिर हो जाता है।

*

PR-46

महर्षि अष्टावक्र का अद्वैतवाद

रिपुदपमन सिंह, लखनऊ

महर्षि अष्टावक्र अद्वैतवादी विचार धारा को मानने वाले है उनका विचार है अयामात्मा ब्रह्म तत्त्ववमसि' इस तथ्य का प्रतिपादन अष्टावक गीता में प्राप्त होता है जिसमें ज्ञान मुक्ति, वैराग्य, से सम्बन्धित बिन्दुओं पर इन्होंने इतना मनोहारी चित्रण किया है जो आधुनिक मानव समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं लाभ प्रद प्रतीत होता है।

आत्म एवं ब्रह्म का अन्तर बताते हुए कहते हैं कि यह आत्मा ही ब्रह्म है व्यक्ति में उपस्थित चेतना का नाम आत्मा है तथा समष्टिगत चेतना ही ब्रह्म है, वह ब्रह्म एक ही है जो अलगअलग पदार्थों के कारण अलग-अलग प्रतीत होता है ये भाव और अभाव दोनों चित्त की कल्पना मात्र है यह धारण ही मिथ्या कि परमात्मा है या नहीं क्योंकि वही सब कुछ है।

*

PR-47

न्याय दर्शन में आत्मा एवं मोक्ष

डॉ. कंचन गुप्ता, टिहरी

न्याय दर्शन में आत्मा के स्वरूप का विवेचन प्रमेय के अन्तर्गत किया गया है एवं इसे द्रव्य रूप माना गया है। यह कर्त्ता, भोक्ता, ज्ञाता, विभु परिमाण वाला एवं स्वरूपतः अचेतन तथा अनेक है। महर्षि गौतम ने अपने ग्रन्थ न्यायसूत्र में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख एवं ज्ञान को आत्मा का लिंग कहा है। जयन्त भट्ट ने न्यायमंजरी में नवजात शिशु के क्रिया-कलापों के आधार पर आत्मा को नित्य सिद्ध किया है। नैयायिकों ने आत्मा को दो वर्गों में विभाजित किया है—जीवात्मा एवं परमात्मा। यद्यपि प्रारम्भिक न्याय-दर्शन में ईश्वर का उल्लेख बहुत स्पष्ट रूप से नहीं प्राप्त होता है किन्तु बाद में न्यायकुसुमांजलि की रचना ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने के लिए ही की गई प्रतीत होती है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मोक्ष को न्याय दर्शन में अपवर्ग कहा गया है अर्थात् वह अवस्था जहाँ 'प' वर्ग अर्थात् पाप-पुण्य, फल, बन्धन, भय एवं मृत्यु का अभाव हो। नैयायिकों के अनुसार मोक्षावस्था में केवल दु:खों का ही अन्त नहीं होता है, वरन् उसके साथ ही सुखों का भी अन्त हो जाता है। यह आनन्द विहीन अवस्था है। इस प्रकार प्रकृत शोध-पत्र में न्याय दर्शन के आत्मा एवं मोक्ष सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट करते हुए, क्या वर्तमान भौतिकवादी युग में मोक्ष प्रासंगिक है? इस प्रश्न का समाधान खोजने का प्रयत्न किया गया है।

*

PR-48

कर्म

डॉ. संगीता विद्यालंकार, ज्वालापुर

कर्म शब्द क्रिया का द्योतक है। कर्म शब्द का मानवजीवन के साथ तादाम्य सम्बन्ध है। मानव जीवन का जन्म से मरण तक कर्म से किसी न किसी रूप में सम्बन्ध रहता है। कर्म से अभिप्राय मानवकृत पुण्यापुण्य कर्मो का वर्तमान तथा भावी जीवन से फलोपभोग से है। इसलिए शास्त्रों में भूयो-भूय: सत्कर्म करने का उपदेश दिया गया है। इसलिए गीता ने भी एक स्वर से कर्मवाद की उद्घोषणा की है तथा कर्मयोग की विस्तृत विलक्षण मीमांसा की है।

मानवकृत पुण्यापुण्य कर्मों से तदनुरूप कर्माश्य बनता है। कर्मसंस्कार समूह अर्थात् कर्मों में सूक्ष्म अवस्थान को कर्माशय' कहते हैं और यह कर्मजन्य होता है। पुण्य एवं पापरूप प्रत्येक कर्म का जब वृत्त्याकार समाप्त हो जाता है, तब उसका संस्कार सूक्ष्मरूप से चित्त में निहित रहता है। इस प्रकार कर्म का संस्कार से, संस्कार का आशय से और आशय का वासना से परम्परया सम्बन्ध है। अत: मेरे शोध पत्र का विषय पातञ्जलयोगशास्त्र के आधार पर कर्मवाद की पुष्टि है। मानव जो कर्म करता है, उसे चार भागों में विभाजित किया गया है–

1. कृष्ण कर्म
2. शुक्ल कर्म
3. शुक्लकृष्ण कर्म
4. अशुक्लकृष्ण कर्म

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कर्माशय ही जाति, आयुष, भोग, रूप फल प्रदान करते हैं। कर्माशय के मूल में जो अविधादि क्लेश है, यह दृष्टजन्मवेदनीय तथा अदृष्टजन्मवेदनीय भेद से दो प्रकार के होते हैं।

*

PR-49

आत्रेय रामानपुज का शक्तिवाद

डॉ. दीपक कुमार, आरा

प्रभाकर मीमांसक आठ पदार्थ मानते हैं–द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, सामवाय, शक्ति, सादृश्य एवं संख्या। श्रीकुमारिल भट्ट द्रव्य, गुण, कर्म, में रहने वाली शक्तित्व जाति से युक्त शक्ति को श्रुति और अर्थापत्ति प्रमाण से सिद्ध करते हैं। वह शक्ति लौकिक एवं वैदिक भेद से दो प्रकार की होती है। लौकिक शक्ति अर्थापत्तिगम्य है, जैसे अग्न्यादि में दाहकत्व शक्ति। वैदिक शक्ति विधिवाक्यैकसमधिगम्य होती है, जैसे यागादि में स्वर्गादिसाधकत्व शक्ति।

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार शक्ति अद्रव्यों में दसवां अद्रव्य है। इस शक्ति नामक आद्रव्य का लक्षण करते हुए कहा गया है कि शक्ति वह अद्रव्य विशेष है, जो सभी कारणों के कारणत्व का निर्वाहक होती है। कार्योत्पादन में शक्त होने से पदार्थ कारण बनता है। यह शक्ति वर्क और शास्त्र से सिद्ध होती है। आत्रेय रामानुज कार्यकारणवाद में शक्ति नामक दसवें अद्रव्य के मूल को कार्यकारणभाव के स्वरूप में देखते हैं। कहते हैं :–चूंकि यदि कारण और कार्य दोनों उसी द्रव्य की पृथक् अवस्थाओं के रूप में सादृश्य है तो उनमें से किसी एक को पृथक् रूप से कारण और दूसरे को पृथक रूप से कार्य केसे बनाया जा सकता है? पुनः वे इनमें भेद करते हुए कहते हैं कि कारण वह अवस्था है जो कारणता शक्ति प्रदान करती है और इस शक्ति नामक अद्रव्य की सिद्धि अनुमानाधरित है। इसी की पुष्टि आत्रेय रामानुज के इस विस्तृत चर्चा में की जाएगी।

*

PR-50

पुरातन योग

डॉ. कञ्चन माला, सीतामढ़ी

इस संसार में बहुत से लोग अपनी शक्ति, सामर्थ्य को बढ़ाना चाहते हैं। योग एक ऐसी जीवन पद्धति है जिससे यह संभव है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आजकल की तेज रफतार जिन्दगी में व्यक्ति किसी न किसी शारीरिक बीमारी में आ जाता है। व्यस्तता के कारण सही परामर्श व उचित इलाज के अभाव में छोटी सी तकलीफ बड़ी बीमारी में बदल जाती है। परन्तु योग एक ऐसी जीवन-पद्धति है जिसके सतत अभ्यास से गम्भीर रोग भी दूर भाग जाते हैं। योग पद्धति अपनाने वाला व्यक्ति डाक्टर एवं दवाइयों से क्रमशः मुक्त होना जाता है।

भारतीय समाज में स्वास्थ्य की उत्तम बनाए रखने के लिए पुरातन काल से ही इस विद्या को सराहा है। आज सरकारी व गैर सरकारी संस्थान भी इसके प्रचार प्रसार के लिए कार्य कर रहे है।

*

PR-51

दर्शन अध्यात्म एवं विज्ञान में अन्तर्सम्बन्ध–एक विवेचन

डॉ. हरिकान्त मिश्र, चित्रकूट

'दर्शन' मनुष्य का वह बौद्धिक प्रयास है, जिसके द्वारा वह किसी भी विषय से सम्बन्धित मूल तत्त्वों अथवा आधारभूत मान्यताओं की तर्कसंगत एवं निष्पक्ष परीक्षा करता है, और उसके सम्बन्ध में केवल तक के आधार पर अपना मत निश्चित करता है अर्थात् दर्शन मनुष्य की वह विशुद्ध बौद्धिक क्रिया है, जिसमें निष्पक्ष चिन्तन, तर्क एवं विश्लेषण का सर्वप्रमुख स्थान होता है। दर्शन का क्षेत्र अति व्यापक है। संसार में ऐसा कोई महत्वपूर्ण विषय नहीं है जो दर्शन से असम्बद्ध हो और जिसे दर्शन की आवश्यकता नहीं पड़ती हो। जैसे–साहित्य-दर्शन, विज्ञान-दर्शन, कला-दर्शन, धर्म-दर्शन, राजनीति-दर्शन, समाज-दर्शन, इतिहास-दर्शन, कानून-दर्शन आदि इसी तथ्य के स्पष्ट प्रमाण हैं। उक्त सभी विषयों के लिए दर्शन अनिवार्य प्रतीत होता है क्योंकि वही इनकी आधारभूत मान्यताओं के सत्य अथवा असत्य होने की निष्पक्ष परीक्षा करता है। प्राचीन काल से ही दर्शन को समस्त विज्ञानों का विज्ञान माना जाता है और आज भी किसी विषय की सर्वोच्च/उच्चतम उपाधि को ''डाक्टर ऑफ फिलॉसफी'' या ''पी.एच. डी.'' कहा जाता है।

विज्ञान एवं दर्शन दोनों का लक्ष्य सत्य की खेज है। दोनों ही कुछ सामान्य विधियों जैसे आगमन, निगमन, तर्क, विश्लेषण आदि पद्धतियों का प्रयोग करते हैं तथा भावनाओं से मुक्त रहकर निष्पक्ष भाव से यथार्थता की खोज करते हैं। विज्ञान दर्शन की अपेक्षा मनुष्य के व्यावहारिक जीवन के लिए अधिक उपयोगी प्रतीत होता है। परन्तु विशुद्ध विज्ञान के रूप में

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वह भी दर्शन के समान ही मूलतः सैद्धान्तिक ज्ञान है, जिसका उद्देश्य जीवन और जगत् के सम्बन्ध में मानव की नैसर्गिक अदम्य जिज्ञासा को शान्त करना ही है। इस दृष्टि से दर्शन और विज्ञान में आधारभूत समानता है, क्योंकि दोनों का मूल स्त्रोत मनुष्य की जिज्ञासा ही है और दोनों में भावना की अपेक्षा तर्क को कहीं अधिक महत्व दिया जाता है।

आध्यात्म और विज्ञान की ये दोनों धाराएं हमारे परिपार्श्व में चल रही हैं। सत्य कभी दो नहीं होता चाहे कोई भी खोजे। किसी भी माध्यम से किसी भी नाम से खोजें, सत्य कभी दो नहीं हो सकता। स्वामी विवेकानन्द जी ने धर्म की वैज्ञानिकता घोषित करते हुए कहा था, मेरा अपना विश्वास है ब्रह्म ज्ञान-विज्ञान के लिए जिन अन्वेषण पद्धतियों का प्रयोग होता है, उन्हें धर्म क्षेत्र में प्रयुक्त किया जाना चाहिए। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि धर्म और दर्शन दोनों मानव-जीवन के बहुत महत्वपूर्ण पक्ष होते हुए भी एक दूसरे से मूलतः भिन्न है। आइन्सटीन ने धर्म और विज्ञान के विषय में जो उक्ति कही है कि–"अध्यात्म के बिना विज्ञान और विज्ञान के बिना अध्यात्म क्रमशः लंगडा और अन्धा है" यह कथन पूर्णतः सत्य है।

*

PR-52

विश्व शान्ति में अहिंसा का योगदान

डॉ. रजनीश शुक्ल, नई दिल्ली

वर्तमान विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिए भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित अहिंसा के माध्यम से किस प्रकार विश्व में शान्ति की स्थापना का सफल प्रयास किया जाए, इन्हीं तथ्यों के आलोक में यह आलेख आप के समक्ष प्रस्तुत है।

विश्व के सभी दर्शनों ने अहिंसा को प्रधानता प्रदान की हैं परन्तु जैन दर्शन के लिए तो अहिंसा प्राणभूत तत्व है अथवा यों कहना चाहिए कि इसकी विशद व्याप्ति में ही सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रह आदि सभी व्रतों का समावेश हो जाता है। धर्म का मौलिक स्वरूप अहिंसा है और सत्य आदि उसका विस्तार है। इसलिए जैन दर्शन के महान आचार्य ने कहा है 'अवसेसा तस्स रख्ट्ठा''। शेष सभी व्रत अहिंसा की सुरक्षा के लिए है जैसे अर्थ की रक्षा के लिए तिजोरी की आवश्यकता रहती है। उसके बिना अर्थ सुरक्षित नही रह सकता। उसी प्रकार अहिंसा रूपी धन की रक्षा के लिए इतर व्रत तिजोरी के सदृश है। सारांश यह है कि अहिंसा व्रत के अतिरिक्त जो व्रत है वे सारे अहिंसा तत्व के ही पोषक हैं। वे उनसे कभी भी अपना अस्तित्व अलग-अलग नहीं कायम कर सकते। अहिंसा की व्याख्या करते हुए महावीर

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ने कहा था कि प्राणियों को न मारना चाहिए, न उन पर अनुचित शासन करना चाहिए न उन्हें पराधीन करना चाहिए, न उन्हें परिताप देना चाहिए और न उन्हें उद्विग्न करना चाहिए।

*

PR-53

राजनीतिक अवधारणाओं में मन्त्रणा और सेनापति–निरूपण

विभाकुमारी झा

मन्त्रणा के सम्बन्ध में विद्वानों ने अनेक विधि-विधानों और उसकी सुरक्षा के लिए सतर्कता बरतने की अपेक्षा बताई है। इस सम्बन्ध में मनु का आदेश है कि पर्वत की चोटी पर या एकान्त राजभवन अथवा जंगल में, जहाँ किसी प्रकार से मन्त्र-भेद की आशंका न हो, वहाँ गुप्त मन्त्रणा करनी चाहिए–

गिरिपृष्ठं समारुथ्य प्रासादं वा रहोगतः।
अरण्ये निश्शलाके वा मन्त्रयेद् भूरिभावित्।।

इसी सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य ने भी कहा है कि राज्य का मूलमन्त्र मन्त्रणा ही हुआ करती है। इसलिए मन्त्र को भलीभांति गुप्त रखना चाहिए जिससे राजा के सन्धि-विग्रह आदि कार्यों का फल जब तक प्रत्यक्ष न हो जब तक अन्य लोग मन्त्रणा को न जान पाए–

मन्त्रमूलं यतो राज्यमतो मन्त्रं सुरक्षितम्।
कुर्याद्यथास्य न विदुः कर्मणामाफलोदयात्।।

इसके बाद मन्त्रणा के लिए समय निश्चित किया गया है। मनु ने कहा है कि दोपहरा में अथवा आधी रात में जब चित्त शान्त हो और शरीर क्लेशरहित हो तब राजा मंत्रियों के साथ अथवा अकेले ही धर्म, काम और अर्थ का चिन्तन करे।

*

PR-54

जैन न्याय और आचार्य प्रभाचन्द्र

योगेश कुमार जैन, लाडनूं (राजस्थान)

भारतीय संस्कृति में चिन्तन की धारा का मूलाधार तर्क विद्या रहीं है। तर्क शास्त्र में न्यायशास्त्र हेतुशास्त्र और प्रमाणशास्त्र समाहित है। न्याय का दूसरा नाम ही तर्क शास्त्र है। गौतम

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मुनि को न्याय शास्त्र विद्या का प्रवर्तक माना जाता है। इसका प्राचीन नाम आंवीक्षिकी है। ई. पूर्व 327 में कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में आवीक्षिकी त्रयी, वार्ता और दण्डनीति का निर्देश करते हुए आवीक्षिकी विद्या सर्व विद्याओं का प्रदीप, सब धर्मों का आधार है। न्याय विद्या में संशय, छल, जाति और निग्रह स्थान का प्रयोग किया जाता है। तभी वह हेतुवाद अथवा न्याय विद्या कहलाती है। जिसके द्वारा निश्चित और निर्बाध वस्तुतत्व का ज्ञान होता है उसे न्याय कहते हैं। न्याय या तर्क शास्त्र का मुख्य अंग प्रमाण है। और प्रमाण के भेदों में से भी अनुमान प्रमाण है। जैनदर्शन की आधार शिला अनेकांत और स्याद्वाद पर आधिरित है। स्वयंभू स्तोत्र में आचार्य समन्तभद्रस्वामी कहते हैं कि 'स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषाम्'' स्वयंभू, स्तोत्र 102।

*

PR-55

गायत्री की तन्त्र-पक्षीय सिद्धि का प्रथम चरण : कुण्डलिनिजागरण

कु. राजकुमारी, कानपुर

कुण्डलिनी महाशक्ति को 'विद्युत्त द्रव पदार्थ' अथवा 'नाड़ी शक्ति' भी कहते हैं। ऐसा उल्लेख मिता है कि शरीर में आंतों से घिरा 'आंत्रवेष्ठिनिका' नाम की नाड़ी सर्पिणी सदृश कुण्डली मारे हुए है, जो सम्पूर्ण जड़-चेतना का आधार है। ('सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र' पृष्ठ, 5.66.67

सावित्री की उच्चतम साधना की पृष्ठ-भूमि में कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया का उल्लेख मिलता है। सुषुम्ना क्षेत्र में प्राण-विद्युत्त के दिशाहीन प्रवाह को इड़ापिंगलाका माध्यम से उचित दिशा (ब्रह्म प्राप्ति) में लगाना कुण्डलिनी-जागरण की प्रत्त्या का अंश है। इस क्रम में साधक को मेरूदण्ड में अवस्थित षट्चक्रों की वेधन प्रक्रिया को सम्पन्न करना होता है, जिससे मूलाधार स्थित कुण्डलिनी का मस्तिष्क मध्य स्थित 'सहस्रार' से मिलन की 'महायात्रा' सम्पन्न होती है। ब्रह्मरन्ध्र सहस्रार कमल से मिलने के कारण यह ब्रह्मगायत्री नाम्नी भी है। ब्रह्म ज्योति व जीवाग्नि का यह मिलन ही दार्शनिक रूप में शिव-शक्ति का पारस्परिक मिलन है। शिवलिंग में कुण्डलिनी-जागरण का सम्पूर्ण स्वरूप वर्णित है। शिव-शक्ति के मिलन से सिद्धिधायक गणपति व असुर-विनाशक कार्तिकेय की उत्पत्ति हुई थी। कुण्डलिनी शक्ति का निवास स्थल जननेन्द्रिय मूल है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संख्या का अतिरिक्त पदार्थत्त्व
(पदार्थ तत्त्वनिरूपण के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ. अनिता राजपाल, दिल्ली

वैशेषिक-दर्शन में स्वीकृत चौबीस गुणों के अन्तर्गत संख्या की भी गुण रूप में परिगणना की गई है। 'गुण' पदार्थ की विशेषता यह है कि (1) वह सदा द्रव्यों में ही आश्रित होते हैं। (2) गुणमें गुण नहीं रहते हैं तथा (3) गुण में क्रिया भी नहीं पाई जाती है। नव्य-नैयायिक रघुनाथ शिरोमणि अपने ग्रन्थ 'पदार्थतत्त्वनिरूपण' में प्राचीन वैशेषिकों के 'गुण में गुण नहीं रहते', इसी नियम के आधार पर संख्या के गुणत्व का निराकरण करते हैं तथा संख्या की स्वतंत्र पदार्थ के रूप में सिद्धि करते हैं।

रूपादि गुणों में भी एकं रूपं, द्वे रूपे, त्रीणि रूपाणि, इत्यादि व्यवहार से एकत्वादि संख्यावत्त्व बुद्धि होती है। यदि संख्या को गुण माना जाए तो उसे रूपादि गुण में नहीं रहना चाहिए क्योंकि 'गुण में गुण नहीं रहते', यह नियम है। यदि कहें कि एकं रूपमित्यादि प्रतीतियाँ भ्रम हैं तो ऐसा नहीं कह सकते। भ्रमत्व का निश्चय तो उत्तरकालिक बांध से होता है, यहाँबाध तो हाता नहीं है। अतः एक रूपम् इत्यादि प्रतीतियां प्रमाण है। प्राचीन वैशषिकों की ओर से ऐसा कहा जा सकता है कि इस प्रकार का ज्ञान अर्थात् द्रव्येतर पदार्थ में संख्या का ज्ञान तब होता है, जब एक ही पदार्थ में एकाधिक धर्म समवाय सम्बन्ध से रहते हैं। पर ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि समवाय एवं एकार्थसमावाय अर्थात् एक ही पदार्थ में एकाधिक धर्मों का समवाय, ये दो भिन्न-भिन्न प्रकार के सम्बन्ध हैं, जिनके द्वारा एक ही पदार्थ में संवेत अनेक धर्मों की गणना की व्याख्या सम्भव नहीं हो सकती है। अतः संख्या को अतिरिक्त पदार्थ के रूप में स्वीकार करना उचित है।

*

PR-56

भारतीय और पश्चात्य प्रबन्ध दर्शन में भिन्नताएँ

डॉ. प्रिया खादर, भोपाल

भारतीय और पश्चात्य प्रबन्ध दर्शन में कुछ और विषेष भिन्नताएं है जो कि मनोवैज्ञानिक तथा दर्शन से सम्बन्ति हो उनसे सोचने का ढंग बदल जाता है। हृदय, मस्तिष्क और पाँचों इन्द्रियाँ एक ऐसा त्रिकोण बनाती है। जिनका प्रभाव स्पष्ट रूप से आचार-विचार और उद्देश्य में परिवर्तन लाते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पाश्चात्य पद्यति में किसी भी कार्य के लिए कए अनुबंध आवश्यक होता है अनुबन्ध में दोनों पक्ष अपने-अपने उत्तरदायित्वों और कार्य को पूरा करने के लिए कमीटेड होते हैं यदि कोई भी पक्ष अपने उत्तरदायित्व को पूरा नहीं करता और उसकी इस लापरवाही से दूसरे पक्ष को क्षति पहुँचती है तो वह पहले पक्ष के उपर क्षतिपूर्ति का बाद प्रस्तुत मर सकता है। दोनों पक्षों के आपसी सम्बन्ध, कार्य और उत्तरदायित्व अनुबन्ध की रूप रेखा से ही निर्धारित होते हैं। भारतीय प्रबन्ध दर्शन में यह अनुबन्ध विश्वास का अनुबन्ध होता है जिसमें आत्मीयता अधिक होती है वास्तव में वे केवल कार्य को ही नहीं देखते उसके पीछे खडे व्यक्ति का व्यक्तित्व भी उन्हें दिखाई देता है। इस प्रकार के अन्तरव्यक्तिगत सम्बन्ध दोनों के लिए महत्वपूर्ण और मूल्यवान होते हैं। पाश्चात्य दृष्टिकोण से जो व्यापार में अनुबन्ध के सम्बन्ध सथापित होते हैं उससे कहीं अधिक गहरे संबंध वैदिक दर्शन में स्थित है। इसमें आत्मीयता एक दूसरे पर विश्वास और सहयोग महत्वपूर्ण है यही कारण है कि जब भारतीय प्रबन्ध अपने कार्य को भारतीय धारणा के अपनाता है तो वह अपने अधीनस्थ कार्य करने वाले कर्मचारी के हृदय को छू लेता है जिससे वह अपने शीर्ष प्रबन्धक के साथ मनोवैज्ञानिक ढंग से जुड़ जाता है।

*

PR-57

श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित मन का स्वरूप

डॉ. ब्रह्मानन्द पाठक, लखनऊ

श्रीभगवद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है–''इन्द्रियाणां मनश्चास्मि' (गीता 10. 22) अर्थात् इन्द्रियों में मन मैं ही हूँ''। गीता (3.42)(में ही कहा गया है कि 'इन्द्रियेभ्यः परं मनः' अर्थात् 'मन इन्द्रियों से भी श्रेष्ठ है।

मन की श्रेष्ठता पर विचार करने के साथ-साथ ही उसके वृत्ति का विवेचन भी अपेक्षित हैं कठोपनिषद (13.3) में जीव-रथ के रूपक में इन्द्रियों को अश्व तथा मन को प्रग्रह कहा गया है। बृहदारण्यक उपनिषद (11.58) में 'कामः संकल्प विचिकित्सा' कहकर इच्छा, संकल्प एवं सन्देह को मन का व्यापार कहा गया है। 'शाट्यायनीयोपनिषद् में प्राणीमात्र के बन्ध और मोक्ष का कारण मन ही बताया गया है। विषयासक्त मन बन्धनग्रस्त तथा विषयपराङ्मुख मन मोक्ष का हेतु है। मन की यही विशेषता है–

''मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धायविषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मतम्॥'' (शट्यायनीयोपनिषद्, 1)

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शारीरकोपनिषद् (4) में भी संकल्पनिकल्पात्मकं मनः' कह कर मन की वृत्ति का निरूपण हुआ है। गीता में मन की दुर्ग्राह्यता अस्थिरता एवं चञ्चलता पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। गीता में मन को मथ देने वाला तथा चञ्चल कहा गया है, इसको ग्रहण करना वायु की भाँति दुष्कर कहा गया है।

''चञ्चल हि मनः कृष्णा प्रमाथि बलवदृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सादुष्करम्।। (गीता 6.34)

इस प्रकार मन इन्द्रियेश्वर है। सभी इन्द्रियाँ मन के वश में हैं परन्तु मन किसी भी इन्द्रिय के वश में नहीं है। वह अत्यन्त बलवान एवं भयंकर है। इसके अतिरिक्त वन्ध मोक्ष का कारण भी मन को कहा गया है। अन्त में प्रस्तुत शोध पत्र में मन के समग्र क्रिया-कलापों का विवेचन करने का सार्थक प्रयास करूँगा।

*

PR-58

प्राप्तव्यों का मूल सन्निहित है श्री मद्भगवतगीता में

आशा रानी

भक्ति ज्ञान एवं कर्म को समुच्य रूप में गवेषित करने की विधा गीता की ही लोक जीवन को देन है। निःसंदेह गीता पर उपनिषदों का प्रभाव है तभी तो गीता कहती है–

अविभक्तिं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञोयं ग्रासिष्णु प्रभविष्णु च।।

भगवान कृष्ण के दिए गए उपदेश लोकजीवन को आज भी ग्राह्य हैं। अर्जुन को दिए गए उनके उपदेश से आज भी लोक जीवन दीक्षित हो रहा है। उनके उपदेश पारमार्थिक व्यावहारिक एवं सामाजिक तीनों विधाओं में उपदिष्ट हैं। निष्काम कर्म योग की शिक्षा से यह विदित होता है कि मानव कर्ममार्ग से ही वास्तव में भाग्य पथ का निर्माता होता है। क्योंकि कर्म एवं भाग्य वास्तव में एक दूसरे के पर्याय हैं। श्री मदभगवत गीता में वर्णित सम्पूर्ण प्राप्तव्यों का विधिवत् विवेचन शोधपत्र में वर्णित है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-59

गोरक्षदर्शन में प्राप्त शिव एवं शक्ति का स्वरूप

सुजाता मंगोत्रा, जम्मू

अति प्राचीन काल से ही शिव एवं शक्ति के अस्तित्व को स्वीकार किया जाता रहा है। भारतीय दर्शन परम्परा भी इससे अछूती नहीं है। गोरक्षदर्शन में शिव को एक अद्वैत, निर्गुण, स्वतः, प्रकाशित, अपरिवर्तनीय, भेद रहित तथा समस्त प्रापञ्चिक सत्ताओं के पीछे चरम आध्यात्मिक सत्ता के रूप में तथा शक्ति की आत्मासंशोधक, आत्मगुणात्मक, आत्मविभाजक, सक्रिय दिक्काल बद्ध एवं सापेक्षिक, समस्त प्रापञ्चिक सत्ताओं के रूप में वर्णित किया गया है। शक्ति समस्त शरीरों में व्याप्त होकर चित्त स्वरूप उनमें जीवन देने वाली और शरीर में प्राणों का स्तम्मन किए रहती हैं अतः शक्ति शरीरान्तर्गत प्राण धारा को प्रवाहित करने वाली उसकी संचालिका है। शिव ही भारतीय संस्कृति, धर्म और जीवन में विराट एवं अलौकिक समन्वय के देव हैं। जहाँ शिव का ईश्वरीय स्वरूप समस्त दर्शनों, अध्यात्म, तन्त्र, आराधना तथा उपासना में सर्वप्रिय एवं सर्वोपरि रहा है वहीं उनका शिवमय रूप समस्त दुःखों, असन्तोष आदि में आनन्ददायी हैं शिव ही सृष्टि सृजन एवं संहार रूप में सर्वोपरि हैं। शक्ति पालनकत्री हैं। प्राण सञ्चारिणी है। शिव एवं शक्ति में चन्द्र एवं चन्द्रिका के समान किसी प्रकार का भेद नहीं हैं इन दोनों का तादात्म्य उसी प्रकार का है जिस प्रकार का चन्द्रमा और उसकी किरणों में अर्थात् चन्द्रमा द्वारा प्रकाशित प्रकाश में। जिस प्रकार चन्द्रमा से भिन्न किरणों का अस्तित्व नहीं है वे चन्द्रमा का ही रूप हैं। उसी प्रकार शिव एवं शक्ति किसी प्रकार का भेद नहीं जानना चाहिए। गोरक्षदर्शन में जहाँ शिव विराट समन्वय के देव हैं सृष्टि सृजन एवं संहार रूप में जगत्पिता है तो दूसरी ओर शिव की विराट जगत् व्यवस्था के अन्तर्गत समस्त सत्ताओं को अभिव्यक्त करने वाली विद्या ज्ञान स्वरूपा, अन्धकार हरणी जगज्जननी शक्ति विख्यात हैं।

*

PR-60

वेदांत और मानव जीवन

श्री जी. एन. बारीया, गुजरात

संस्कृत भाषा के विकास के प्रथम चरण में वैदिक संस्कृत और दूसरे चरण में लौकिक संस्कृत माना जाता है। ऋषि वैदिक संस्कृत के जन्मदाता माने जाते हैं। भारतीय संस्कृति और

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इतिहास के ज्ञान के लिए संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य है क्योंकि संस्कृत शब्द भी सम् धातु पर से ही निस्पन्न हुआ है। संस्कृति शब्द का यथार्थ निर्णय करना मुश्किल है फिर भी सर्वप्रथम सरल अर्थ देख लेते हैं।

संस्कृतिपूर्ण प्रजा अर्थात् संस्कृति।
"सभायां साधु इति सभ्यः।"
"आनंदात् हि एव खलु इमानि भूतानि जायन्तो,
आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्द प्रन्त्यभिसंविशन्ति।"

आनंद में से ये सभी प्राणी ज़न्मते है। आनंद से ही जन्मे हुए जीते है। आनंद में ही जाते हुए ये प्रवेश करते है। कटकर जीवन का आरम्भ मध्य और अंत् आनंद स्वरूप है। ऐसा सिद्ध कर हमें शोक से परे रखता है। "तरति शोकं आत्मवित्।" आत्मा को जाननेवाला शोक को हर लेता है। यह वेदांत की प्रसिद्ध प्रतिज्ञा है। वेदांत का आह्वान् है। "आओ। अमृत के संतान्। आओ। में तुम्हारा स्वागत करता हूँ। मैं तुम्हें दुःखत्रय से अस्पृष्ट भवरोग से असंयुक्त, आशांति से मुक्त और उपद्रव शून्य आनंदधन जीवन की भेंट देता हूँ। मैं तुम्हें अन्धकार से ज्योति की तरफ और असत् से सत् की ओर, मृयु से अमृत की ओर ले जाऊँगा। तुम दुःखी मत हो। तुम्हारे अपने स्वरूप में ही तो शांति का अटूट भण्डार है।

अंत में आज हमें ज्ञान, कर्म भक्ति के त्रिवेणी संगम की आवश्यकता है। अगर दुनिया के पास शिव की बुद्धि, और गांधीजी का कर्मयोग होगा तो संसार सुखमय बनेगा। वेदांत विद्या का संदेश है कि–

"लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधि।"

प्रभु! मुझे उस पूर्णता की ओर जे जाओ, जहाँ प्रकाश ही प्रकाश हो। अस्तु।

*

PR-61

आधुनिक युग में यम-नियम की उपयोगिता

रीता भल्ला, शिमला

"अहिंसा सत्या ब्रह्मचार्य परिग्रह यमाः"।
"जाति देश काल समयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

समाज यदि इन पांच यमों का पालन करता है तो व्यक्ति निर्भय होकर जीवन व्यतीत करता है। परन्तु इन पर से विश्वास उठ जाने पर सारी सामाजिक व्यवस्था कुछ ही दिनों में अस्त्र व्यस्त हो जाएगी जिस से समाज में हिंसा, झूठ बोलना, चोरी करना, धन का संचय करना आदि भावनायें जन्म लेगी जिसके फलस्वरूप समाज में जीवन जीना अत्यन्त दुर्लभ हो जाएगा क्योंकि यम का सम्बन्ध समाजिक जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। योगदर्शन में नियम भी पांच कहे गए है–

"शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्राणिधानानि नियमः"

नियम का सम्बन्ध व्यक्तिगत जीवन से है। जिन व्रतों का पालन करने पर जोर दिया है वे सब ऐसे हैं जिनसे मनुष्य का जीवन वास्तव में सुखी और सन्तुष्ट हो सकता है। यदि व्यक्ति इन सब यम व नियमों को अपने जीवन में धारण करें तो उसकी जीवन धारा, सुख, आनन्द, शोक रहित, रोग रहित, मानसिक तनाव से दूव व सन्तोष पूर्ण व्यतीत होगी। वास्तव में मनुष्य का लक्ष्य, जहाँ परमात्मास्वरूप होना है वहीं शरीर व मन को व्याधि रहित रखना और सुख से जिन्दगी जीना है। वही तभी सम्भव है जब हम अव्यंग योग के प्रथम अंग यम व नियम को पूर्णतया जीवन में आत्मसात् करले जिससे स्वयं व समाज दोनों का उद्धार होगा।

*

PR-62

श्रीमद्भगवद्गीता तथा योग

डॉ. श्वेता शर्मा, हिसार

यह शोध-पत्र पंचशीर्षक है।

1. गीता ज्ञान की आवश्यकता–मोहशोक–विनाशार्थ
2. गीता–नाम का यथागीता याथार्थ्य
3. गीता का मुख्य प्रतिपाद्य–योग अथवा आत्मयोग
4. आत्मयोग की अचूक चाबी–सात्त्विकी बुद्धि
5. योगमयी गीता का निष्कृष्टार्थ निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि योगमयी गीता का आत्मयोग, अर्जुनरूपी जिज्ञासु-जीवों को, उनके मोहशोकात्म भौतिक अहंकार से तोड़ता है तथा उनके ही सुखशान्त्यात्मक आत्मिक

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अहंकार से जोड़ता है, ताकि आत्मसंस्थ वे लोग, घोरातिघोर दु:खों की घनघोर आंधी में भी, टस से मस न हां, (यस्मिन् स्थितो न दु:खेन गुरूणापि विचाल्यते, 8/7)

गीतानुसार, ज्ञातव्य है कि यह सारा आगमापायी विश्व–ब्रह्माण्ड, ब्रह्म–परमात्मा में ही कल्पित-आरोपित है, लेकिन वह ब्रह्म-परमात्मा, स्वयं कथमपि कल्पित नहीं है, क्योंकि वही परमात्मा, चिदाभास जीवरूपत: इसी 3 1/2 हाथ की नश्वर काया में, (अन्तवन्त इमे देहा: 2/8) आजीवन विराजमान रहता है, (परमात्मेति चाप्युक्तों देहेऽस्मिन् पुरूष: पर: 13/22) और इसे योगधारणा (8/12) एवं आत्मयोग से बखुवी ऐहसासा-महसूस भी जा सकता है। इसीलिए योगमयी गीता में इसी सुनिश्चित श्रेयस्कर आत्मयोग का ही सर्वाधिक अभिनन्दन–अभिवादन हुआ है। जैसा कि–

तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद्योगी भवार्जुन। गीता, 6/461

❋

PR-63

जीवन दर्शन एवं गुरूतत्त्वचिंतन

डॉ. विनोद कुमार सिंह, कैमूर

राष्ट्र, समाज व्यक्ति सभी का प्रकाश स्तम्भ, मार्गदर्शक गुरु ही होता ह। गुरू को वैष्णव और अवैष्णव सम्प्रदायों, योग सम्प्रदाय तथा कबरी पंथ आदि में भी अधिक महत्व दिया गया है। शिव संहिता में गुरू को माता-पिता और साक्षात् देव माना गया है। श्रेता श्रतर उपनिषद में भी कहा गया है–'यस्य देवे परायक्रिर्यथा देवे यथा गुरौ'। तुलसीदास ने कहा है कि पिद्याता के कोप से गुरू रक्षा कर सकते हैं परन्तु गुरू के विरोध से रक्षा करने वाला कोई नहीं होता। वास्तव में संसार में गुरूही नेत्र है गुरू ही दीप है गुरू ही सूर्य-चन्द्र है, गुरू ही देवता है, गुरू ही सन्मार्ग है, गुरू ही दिग्मंडल है तथा गुरू ही सद्धति स्वरूप है। शंकराचार्य ने भी कहा है–

"यस्य प्रसादादहमेव विष्णु र्मथ्येव सर्व परिकल्पितं च।
इत्थं विजानानि सदाऽत्मरूपं यस्यऽध्रि युग्मं प्रणतोऽस्मि नित्यम्"।

अद्वैतानुभूति शंकराचार्य 15

की निम्बार्काचार्य का कहना है–"गुरू सत्यों का शाश्रत रहस्य है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

परन्तु आज इस भौतिक वादी युग में चारों तरफ अराजकता, भ्रष्टाचार, कदाचार, अनाचार, अपराधीकरण, अपसंस्कृति, अनाचरण, तनाव, हिंसा, आदि व्याप्त है यह वास्तव में हमारे लिये चुनौती का दौर है इससे हमें घबराना नहीं चाहिए। प्रकाश कभी बुझता नहीं। हवा कभी थमती नहीं। आकाश कभी झुकता नहीं। धरती कभी रोती नहीं। सच्चे गुरू के सान्निध्य से जीवन में रोशनी लायेगें ऐसा हमारा विश्वास है। सच्चा गुरू वही होता है जो शिष्य के अन्दर छिपी हुई प्रतिभा को परखकर, जौहरी की भाँति उसे तलाश कर बाहर ले आये। यदि विवेकानन्द स्वामी रामकृष्ण के सम्पर्क में नहीं आते तो उनके जीवन की दिशा ही सवर्था भिन्न होती। शिष्य एकलव्य ने मात्र अपने गुरू की प्रतिमा से धनुष विद्या में प्रवीणता प्राप्त की। गुरू के नाम स्मरण से ही सारे अवगुण समाप्त हो जाते हैं। गुरू के सत्संग से जीवन प्रकाश से भर जाता है। गुरू ही ध्यान, पूजा और मोक्ष का मूल है। ध्यान का मूल है–गुरू की मूर्ति, पूजा का मूल है–गुरू का चरण, मन्त्र का मूल है–गुरू का वाक्य और मोक्ष का मूल है–गुरू की कृपा।

*

PR-64

श्रीमद्भागवतम् में दिव्य प्रेम दर्शन–एक विवेचन

डॉ. जय शंकर झा, दरभंगा

वैदिक वाङ्मय की समृद्ध परम्परा में श्रीद्भागवतम् सर्वाधिक रसमयी कृति है। इसके माधुर्य की श्रीवृद्धि में श्रीशुक जैसे महामुनि के भावभरित अवदान का स्वयं व्यासदेव ने ही ग्रन्थ के मंगलाचरण में मुक्त कंठ से गायन किया है।

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिकाः भुवि भावुकाः॥

(श्रीमद्भागवतम् 1/1/3)

निगम रूपी कल्पवृक्ष के इस रसीले फलं में तर्क की गुठली और विवाद का छिलका तो है ही नहीं, बस रसो वै सः' ही लबालब भरा हुआ है। "तेनेयं वाङ्मयी मूर्ति प्रत्यक्षा वर्तते हरेः" (पद्मपुराण उत्तरखण्ड अध्याय 43 श्लोक 62) वस्तुतः दिव्यप्रेम के पूर्णावतार ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण चन्द्र ने भागवतरूपी अपनी वाङ्मयी मूर्ति में कलिसंतप्त मानव के हृदय को उदात्त बनाकर उसके प्रेमपिपासु प्राणों को आप्यायित करने का स्वयं ही एक अविनाशी आयोजन किया है। इसी से तो ग्रन्थ महात्म्य में पद्मपुराण का उद्गार है कि–कलियुग के दुष्प्रभाव से आक्रान्त

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मानव जब आसुरी भाव को उपलब्ध होकर दुःखदलित होगा तो उसके मनः शुद्धि के लिए सर्वाधिक समीचीन उपाय के रूप में श्रीमद्भागवतम् ही प्रस्तुत हो सकेगा–"एतस्मात्परं किंचिन्मनः शुद्धये न वर्तते"

*

PR-65

श्रीमद्भागवत में सृष्टि-प्रक्रिया

डॉ. श्रीप्रकाशराय, कैमूर, बिहार

नारायण ने ब्रह्मण्डरूपी अण्डे को फोड़कर उससे विराट पुरुष को निकाला जिसके कमर के नीचे के भाग से अतल, वितल, सुतल, रसातल, तन्तानल, महातल और पाताल तथा पेड़ से ऊपर के अंगों से भूः, श्रुवः, स्वः, महः जनः, पतः और सत्यम् उत्पन हुए। इस विराट पुरुष का मुख ब्राह्मण भुजायें क्षत्रिय, जांचे वैश्य एवं पैर शूद्र हैं।

पुरुषस्य मुखं ब्रहनक्षत्रयेतस्म बाहवः।
ऊर्वोश्यो भगवतः पद्भ्या। शूद्रोऽभ्यजायत्।। 2.5.37

यह कल्पना पुरुष सूक्त के आधार पर की गयी प्रतीत होती है–

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरु तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यांशूद्रोऽजायत्।।"

नारायण को पौराणिक दृष्टि से भक्त, साधु, सन्यासी आदि के हितकारी, धर्म के पोषक, अर्धन के विनाशक के रूप में देखा जाता है। श्रीमद्भागवत की सृष्टि प्रक्रिया के उल्लेख का आधार केवल दार्शनिक पक्ष का विवेचन न होकर वैष्णव तत्त्व का महत्त्व प्रदर्शन भी माना जा सकता है।

*

PR-66

पातञ्जल योग के अनुसार चित्त का स्वरूप, भूमियाँ एवं वृतियाँ

तरसेम कुमार शर्मा, जम्मू

योग दर्शन में चित्त के विविध स्वरूपों का विवेचन है! योग आत्मसाक्षात्कार और ज्ञान दोनों को महत्त्व देता है। इन दोनों की प्राप्ति में चित्त का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। क्योंकि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चित्त ही मानव जीवन की समग्र किया प्रतिक्रियाओं का मूल आधार है। यहाँ चित्त से अभिप्राय है! अन्तकरण! अन्तः करण में मन बुद्धि, और अहंकार समाहित है! चित्त सत्त्व, रज, तम! तीनों गुणों से युक्त त्रिगुणात्मक है! मूढ़ विक्षिप्त, एकाग्र और निरूद्ध "क्षिप्त मूढं विक्षिप्तमेएकाग्रं निरुद्धमिति चिन्तभूमयः।" मनुष्य का चित्त जिन-जिन परिस्थतियों में रहता है, उसी को चित्त वृत्ति कहते है! महर्षि पंतञ्जली के अनुसार चित्त क्लिष्ट और अक्लिष्ट भेद से दो वर्गो में विभाजित है! जो वृतियाँ धर्म, अधर्म तथा वासना समूह को उत्पन्न करने वाली हैं, अतः क्लेश मूलक हैं; वे क्लिष्ट कहलाती हैं। जो वृति प्रकृति पुरुष के विवेक को विषय बनाती है! तथा गुणधिकार की विरोधनी है वे अक्लिष्ट कहलाती है! ये वृतियाँ पाँच प्रकार की हैं! प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति!

*

PR-67

योग का महत्त्व

गोविन्द लाल, जम्मू

'योग' शब्द भिन्न-भिन्न विषयों अथवा क्षेत्रों में विशिष्ट अर्थ का द्योतक होने से अपना विशेष महत्त्व रखता है! व्याकरण की दृष्टि से 'युज' धातु से निस्पन्न होने वाला 'योग' शब्द संयोग एवं समाधि के अर्थ में प्रयुक्त होता है। ज्योषिशास्त्र में विविध ग्रहों के स्थान एवं समयविशेष में परस्पर मेल अथवा दृष्टि को 'योग' कहते है! आयुर्वेद में विविध प्रकार के जड़ी-बूटियों के मिलान से बनने वाली औषधि विशेष योग कहलाती है! गणित शास्त्र में दो अथवा अधिक संख्याओं का जमाव 'योग' कहलाता है। ज्योर्तिज्ञान में मुहूर्त समय आदि के लिये तथा जातक के जीवन में धटित होने वाले प्रभाव विशेष को भी 'योग' कहा जाता है! योग साधन को अपनाने से धर्म अर्थ, काम और मौक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

*

PR-68

विशिष्टाद्वैत दर्शन में ईश्वर का स्वरूप

डॉ. नरेश दीक्षित, लखनऊ

श्री रामानुजाचार्य द्वारा प्रतिपादित दर्शन को ही विशिष्टाद्वैत-दर्शन के नाम से जाना जाता है (वेदान्तदेशिक) ने अपने ग्रन्थों में तत्त्वों का विवेचन रामानुज को ही आधार मानकर किया

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

है। विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तनुसारेण इश्वरो जड़चेतनात्मकयाखिलस्य जगतो नियामकः अखिलहेयप्रयत्नीकः अखिल कल्याण गुणसागराः 'अतो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी चैत्युक्तानां चतुर्विधानां पुरुषाणामाराध्यः लौकिकलौकिकानां फलानां निरपेक्षप्रदाता, लक्ष्मीभूनीलादेवीनां नायकश्च वर्तते। भगवान् परमात्मा, परब्रह्मेत्यादिकाः शब्दः ईश्वरस्यैव साक्षाद् वाचकाः इयमेव यः सर्वज्ञः सर्वनि॰ (मुण्डकोपनिषद्) श्रुतिनसारेण ईश्वरः–सर्वज्ञः, सर्वशक्ति, सर्वमूलं, सर्वधाराञ्च वदन्ति–'सत्यंज्ञानमन्तं ब्रह्म' (छन्दो

ग्योपनिषद्) जगत् सर्वं शरीरं ते (वाल्मीकि रामायण युद्धकाण्ड) तानि सर्वाणि तद्रूपः (विष्णुपुराण) "ईश्वरः एव सृष्टि स्थिति, संहारार्थम्, संसारिणां संरक्षणार्थञ्च–संकर्षेण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध आख्य, ब्यूह, रूपेण आविर्भवति। अयमेव श्रीमद् भगवद्गीतां उक्तम्–

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे॥ (श्रीमदभागवद्गीता 5-58)

उपनिषद्दों में आत्मा को ज्ञान स्वरूप कहा गया है और रामानुज दर्शन में ईस उपनिषद् से कम न करके तद्वत् ही स्थापित किया गया है। यहाँ सारांश रूप में बताया जा रहा है विस्तृत वर्ण आगे शीर्षक में किया गया है।

*

PR-69

वैदांत के पंचमदेव दर्शन में ब्रह्म का अवलोकन

विशाखा कुमारी, दरभंगा (बिहार)

उपनिषद् ब्रह्मसूत्र और भावत्गीता को वेदांत की प्रस्थानत्रयी कहा जाता है। वैसे वेदांत की ब्रह्म-विषयक अवधारणा अत्यंत मौलिक सर्वाधार है। वेदांत में शंकराचार्य के ब्रह्म-विचार चिरंतन सत्य का पर्याय है। जीव और ब्रह्म में अभिन्न संबंध है, ब्रह्म को इन्होंने अनिर्वयनीय माना है। शंकर के ब्रह्म को ही आत्मा कहा है, रामानुज ने ब्रह्म और ईश्वर में भेद नहीं किया है इनके अनुसार ब्रह्म ही ईश्वर है। रामानुज ने ब्र को स्रष्टा, पालनकर्त्ता और संहारकर्त्ता कहा है। वह विश्व का निमित्त और उपादान कारण दोनों हैं। वह अपने अंदर निहित अचित् तत्त्व से विश्व का निर्माण करता है। जिस प्रकार मकड़ा अपनी सामग्री से जाल बुन लेता है उसी प्रकार ईश्वर स्वयं सृष्टि कर लेता है। इनका मत विशिष्टद्वैत कहलाता है।

माधवाचार्य वेदांत है ब्रह्म संप्रदाय के प्रणेता हैं। ये उग्र द्वैतवादी भी हैं। निम्वार्क सनक सम्प्रदाय के प्रणेता हैं। इन्हें सुदर्शन चक्र का अवतार माना जाता है। इनका दर्शन द्वैता-द्वैत या

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भेदाभेद कहलाता है। बल्लवभाचार्य के मत में ब्रह्म ही एक मात्र अद्वैत तत्त्व है। ब्रह्म कार्य और कारण दोनों रूपों में शुद्ध है।

भगवान श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि वेदांत के पंचम देव दर्शन में ब्रह्म का अवलोकन आज के बढ़ते आतंक और समाजिक परिवेश में अत्यंत उपयोगी और विश्वशांति में वरदानपरक है।

*

PR-70

हाटेश्वरी माता का ऐतिहासिक महत्त्व

हितेन्द्र आर. दुल्टा, शिमला

हाटेश्वर के प्रसिद्ध पर्वतीय नगर एवं हिमाचल प्रदेश की राजधानी से 100 कि.मी. की दूरी तै. जुब्बल एवं तै. रोहडू के संश्लेषण स्थल, ग्राम हटाकोठी में माता हटेश्वरी का भव्य मन्दिर पावन पब्बर नदी के छोर पर समतल धान की क्यारियों में स्थित है। हाटकोटी को "त्रिवेणी संगम" भी माना जाता है। पूर्व पौराणिक विवेचन में हाटकेश्वरी का ही वर्णन आया है। चाहे देवी भागवत् हो या श्रीमदभागवत्। शिवपुराण हो या सकन्दपुराण, सब स्थानों में हाटकेश्वरी का ही नाम आया ह। उसी की शक्ति का नाम हाटकेश्वरी या हाटेश्वरी होगा। क्योंकि शक्तिमान् और शक्ति, दो भिन्-भिन् वस्तुएँ हैं। जैसे अग्नि और दाहन शक्ति। ईश्वर की संविदरूपा शक्ति अनेक नामों से कही जाती है। तथा अवबोधित भी होती है तथा नाम करण का कोई न कोई निमित कारण होता ही है। हाटकेश्वरी शिव का अगर यहाँ स्थान माने, तो पूर्व निर्ष्टि व्याकरण के नियम से हाटकेश्वरी या हाटेश्वरी नाम बन जाएगा। अगर हम इस देवी को परिमित परिमेश की देवी ही माने और ईश्वर शक्ति को संकुचित करके, ग्राम शक्ति को संकुचित करके, ग्राम शक्ति में ढाल दें, तो इस देवी का नाम हाट ग्राम की ईश्वरी होने से "हाटेश्वरी" हो जाएगी। जैसा कि यहाँ के लोगों का आग्रह भी है। अगम शक्त-सम्प्रदाय के मुख्य तीन सम्प्रदायों जैसे-(1) आदि (2) कादि (3) हादि को अभिलक्ष्य रके उपसकों की दृष्टि रखकर नामकरण पर विचार करें तो यह "हाटेश्वरी" ही होगी। तथा निरूक्त और भाषा विज्ञान के आधार पर, बाद में "हाटेश्वरी" ही होगी। अत: आज हाटकोटी स्थान की देवी हाटेश्वरी या हाटकेश्वरी नाम से ही अधिक प्रसिद्ध है।

मन्दिर परिसर में एक गर्भ गृह है। जिसमें मां की विशाल मूर्ति, स्थापित है। यह मूर्ति महिषासुर मर्दिनी की है। इतनी विशाल देवी प्रतिमा हिमाचल में ही नहीं, अपितु भारत के प्रसिद्ध

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देवी मन्दिरों में भी देखने को नहीं मिलती। चाहे कन्याकुमारी की प्रतिमा देखे या मदुराई में देवी की। चाहे मुम्बई के महालक्षी मन्दिर में महालक्ष्मी की मूर्ति हो चाहे महाकाली कोलकता वाली, चाहे गवाहाटी का कामाख्या हो या काठमाण्डू की गुहोश्वरी, चाहे तारादेवी हो या सराहन की भीमाकाली, चिन्तपूर्णी हो या नयाना देवी, कुल्लू की हिडिम्बा हो या मनसा देवी, ज्वालामुखी की ज्वाला हो या मण्डी की शकम्भरी, कही पर भी मां हाटश्वरी के विग्रह का मुकाबला नहीं किया जा सकता है।

*

PR-71

भारतीय दर्शन में योग की अवधारणा

पवन कुमार, अमृतसर

सांख्य और योग भारत के प्राचीन तथा प्रसिद्ध दर्शन हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण भूमण्डल के विद्वानों को विस्मित किया है। योग परमात्मा (चेतनत्त्व) के निर्गुण शुद्ध स्वरूप को जानने के साधन बताता है। योग शब्द संस्कृत के 'युज' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'जोड़ना' अथवा किसी कार्य में अपने को लगाना। इस प्रकार मूल अर्थ में इसका अभिप्राय है किसी कठिन-कठोर कार्य के लिय अपने को तैयार करना। जिस प्रकार के उद्देश्य की सिद्ध करती होती है उसी प्रकार का उद्योग भी होता है। इसलिये उद्योग मानसिक भी हो सकता है, शारीरिक भी। पूर्ण स्वस्थता अथवा दीर्घ जीवन प्राप्त करने के उद्देश्य को लेकर मन और शरीर से जो क्रिया होगी उसे 'योग' (हठयोग) कहेंगे। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार चित्त की वृत्तियों का वास्तविक निरोध करना ही योग है और यह योग ही कैवल्यमुक्ति का सर्वोत्तम साधन है।

योग एक मानसशास्त्र है जिसमें मन को संयत करना और पाशविक वृत्तियों से खींचना सिखया जाता है। जीवन की सफलता, किसी भी क्षेत्र में, संयत मन पर ही निर्भर करती है। योगसूत्रों के दो भाग हैं–हठयोग हौर राजयोग। हठयोग में आसनों की शिक्षा है–आसनों से आरोग्य और बल प्राप्त होता हे। राजयोग में 'मन' को विवेक और वैराग्य द्वारा बाह्य विषयों से हटाने का अभ्यास किया जाता है। इसके लिए श्रवण और मनन की आवश्यकता अपरिहार्य है।

'योग' शब्द नाना प्रकार के व्यापक अर्थों में व्यवहत हुआ है। इसी की व्याख्या अपने शोध पत्र में करूँगा।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-72

प्राचीन भारत में दण्ड व्यवस्था

प्रो. के. पी. सिंह, अम्बाला, हरियाणा

प्राचीन भारत में न्याय का आधार धर्म था। धर्म के आधार पर मानव के लिए कुछ अधिकार एवं कर्तव्यों का निरूपण किया गया था। उस समय की न्याय व्यवस्था निष्पक्ष थी। महाभारत में कहा गया है कि पक्षपात पूर्ण न्याय अन्याय है और इसे अपराध माना गया है। विशुद्ध आचरण के लिए विश्व में जयद्गुरू के रूप में विख्यात् भारत आज अनेक समस्याओं से आक्रान्त होता जा रहा है।

इन समस्याओं के मूल कारण पर विचार किया जाए तो यह तथ्य सामने आता है कि नागरिकों का भ्रष्ट आचरण ही अधिकतर समस्याओं को जन्म देता है। उपभोक्ताओं की वञ्चना भी आज देश की बहुत बड़ी समस्या बन चुकी है। भ्रष्ट तरीके अपना कर आज उपभोक्ताओं को धड़ल्ले से लूटा जा रहा है। अधिकारी हो या कर्मचारी व्यापारी हो या दस्तकार सभी येन केन प्रकारेण अधिकाधिक धन उपार्जित करना चाहते हैं। इस अंधी दौड़ में वे प्रायः नैतिकता और सद्व्यवहार की अनदेखी कर जाते हैं।

कौटिल्य के समय में तीन प्रकार के दण्ड प्रचलित थे–अर्थदण्ड, शरीरदण्ड और कारागार दण्ड। दण्ड का पहला सिद्धान्त अपराध पर आधारित था, दूसरा अपराधी की आर्थिक क्षमता पर, तीसरा वर्ण व्यवस्था पर। सामान्यतया अपराधी को अर्थदण्ड एवं कारागार दण्ड ही दिये जाते थे। दो प्रकार के कारागार की व्यवस्था थी–बन्दीगृह और सुधारगृह। इससे यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल में प्रचलित दण्ड व्यवस्था सुधारात्मक थी। कौटिल्य के समय में न्याय करने में राजा का न्यायालय अन्तिम न्यायालय माना जाता था, जिसका न्यायाधीश राजा होता था।

न्याय, कानून एवं नैतिकता पर आधारित था। कौटिल्य के अनुसार समाज में कानून के, चार मुख्यश्रोत थे–धर्म, यवहार, चरित्र और राज्यशासन। धर्म सत्य पर आधारित था, साक्षियों पर, परम्परागत रूप से चले आये नियम चरित्र कहलाते थे और राजा द्वारा प्रचलित आज्ञा राज्य शासन कहलाता था। अतः प्राचीन भारत में विद्वानों द्वारा प्रस्तावित दिश-निर्देश निश्चित रूप से उपभोक्ताओं के साथ होने वाले वञ्चनापूर्ण व्यवहार की समस्या का समाधान हो सकता है। इस आलेख में प्राचीन भारत में दण्ड व्यवस्था की इन्हीं बिन्दुओं पर विचार किया गया है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-73

"धर्म" और "सम्प्रदाय"–एक अनुचिन्तन

डॉ नीलम पाठक, रांची

'धृ' धातु से बने धर्म शब्द का अर्थ है–धारण करना। जो तत्त्व सम्पूर्ण संसार के जीवन को धारण करे उसे धर्म कहना उचित होगा। भारतीय साहित्य में धर्म शब्द को बहुत ही व्यापक और विविध अर्थ में परिभाषित किया गया है। जैसे–"धरति विश्वं यः स धर्मः"–जो विश्व को धारण करे, वह धर्म है। "ध्रियतेऽधः पतनपुरूषोऽनेनेति धर्मः"–जो निकृष्ट योनि में गिरने वाले पुरुष की रक्षा करे, वह धर्म है। "ध्रियते जनैरिति धर्मः" –जो मनुष्यों के द्वारा धारण किया जाता है, वह धर्म है। महर्षि कणाद का कहना है–यतोऽभ्युदय निःश्रेयस् सिद्धि स ध र्मः" जिससे इहलौकिक अभ्युदय और परम कल्याण की प्राप्ति हो, वह धर्म है। मनुस्मृति में धर्म को इस प्रकार परिभाषित किया गया है–"धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।" + धीर्विद्या

धीर्विधा सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।"-अर्थात् धृति, क्षमा, दम, प्रस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, विधा, सत्य और अक्रोध-ये धर्म के दस लक्षण है।

"सम्प्रदाय" शब्द को भी अब जरा समझ लें। आप्टे संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश में सम्प्रदाय के छः विभिन्न अर्थ बतलाए गए हैं जो इस प्रकार हैं–

* परम्परा प्राप्त सिद्धान्त या ज्ञान।
* धर्म-शिक्षा की विशेष पद्धति।
* धार्मिक सिद्धांत जिसके द्वारा किसी 'देवता' विशेष की पूजा बतलाई जाए।
* प्रचलित प्रथा।
* प्रचलन
* परम्परा

विचारणीय है कि क्या सम्प्रदाय शब्द का प्रयोग जनमानस द्वारा इसी अर्थ में किया जाता है। उत्तर है निषेधात्मक जिस तरह 'मृग' शब्द 'हरिण' पशु विशेष अर्थ में रूढ हो गया है, उसी तरह सम्प्रदाय शब्द भी 'धर्म अर्थ में रूढ हो गया है। फलतः हम हिन्दू सम्प्रदाय, मुस्लित सम्प्रदाय, ईसाई संम्प्रदाय के स्थान पर हिन्दू धर्म, मुस्लिम धर्म, ईसाई धर्म का प्रयोग

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करते हैं। यह गलत प्रयोग ही सारी समस्याओं का मूलाधार है। धर्म तो वस्तुतः वह सार्वभौम शक्ति है, जिसका लक्ष्य है "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।" इसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति अपनी इच्छानुसार विभिन्न सम्प्रदायों की शरण लेता है।

*

PR-74

बल्लभ-दर्शन में 'ख्याति'

डॉ. गिरिधर गोपाल शर्मा, दिल्ली

वेदान्त-दर्शन के आचार्यों ने जगत् के विवेचन के विषय में विभिन्न ख्यातियों का वर्णन किया है। 'ख्यातिवाद्' 'प्रत्यक्षवाद' है। किन्तु 'प्रत्यक्षवाद' 'भ्रमवाद' में परिणत हो गया। क्योंकि प्रत्यक्ष के दो रूप हैं–निश्चित और अनिश्चित। उनमें से 'ख्यातिवाद' मात्र भ्रम या भ्रान्ति है; जो कि अनिश्यात्मक ज्ञान से जुड़ गया। फलतः: 'ख्यातिवाद- भ्रमवाद या सुविदित है।

भ्रमस्थल में दार्शनिकों के मध्य मतैक्य नहीं हें। परिणामतः भ्रमस्थल में विभिन्न 'ख्यातिवाद- जैसे असत्ख्याति, आत्मख्याति, अख्याति, अन्थाख्याति, अनिर्वचनीयख्याति, सत्ख्याति आदि प्रचलित है। इसी क्रम में वल्लभ-दर्शन में यह भ्रमवाद 'अन्यख्याति' नाम से विदित है।

इन्द्रिय के द्वारा गृहीत हो रहे शुक्लि आदि रूप विषय से भिन्न रजत आदि रूप अन्य पदार्थ की ख्याति या प्रतीति 'अन्यख्याति' कही जाती है। यह भ्रमात्मक ज्ञान बुद्धिवृत्तिरूप है एवं विपर्यास है। वल्लभाचार्य सुबोधिनी में कहते हैं –विपर्यासो भिन्नार्थ प्रतिपादकः' विपर्यास भिन्नार्थ प्रतिपादक होता है। निरूपाधिक भ्रम के स्थल में इन्द्रियाँ विद्यमान पदार्थ का ही ग्रहण करती हैं न कि अविद्यमान और अवास्तविक या मायिक पदार्थ का।

वल्लभ-दर्शन के प्रतिष्ठापक आचार्य वललभाचार्य से लेकर गोस्वामी विट्ठलनाथ, गोस्वामी पुरूषोत्तम, गोस्वामी हरिराय, गोस्वामी गिरिधर, गोस्वामी गोकुल नाथ और बालकृष्ण भट्ट आदि आचार्यो ने अपने-अपने ग्रंथों में 'ख्याति-अन्यख्याति' का प्रतिपाद किया है। उक्त शोध-पत्र में यही विषय प्रतिपादित है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-75

श्रीमद्भगवद्गीता में धर्म तत्त्व

डॉ. नलिनी शुक्ला, लखनऊ

इस विशाल विश्व के विभिन्न अवयवो को एकसूत्र में बाँधने वाला सार्वभौम तत्त्व धर्म है धर्म के बिना मनुष्यमात्र का असितत्व असम्भव है। इसी कारण साक्षत परमेश्वर के मुखारविन्द से निःसृत श्रीमद्भागवत गीता में धर्म के व्यापकता से प्रतिष्ठित किया गया है। अर्जुन को उपदेश देते हुए भगवान् मनुष्यमात्र का धर्म कर्म करना बताते हैं। कर्म को यहाँ 'धर्ममय अमृत' कह कर सम्बोधित किया गया है।

गीता के अनुसार धर्म ही मनुष्य को स्वार्थ अभिमान त्याग करके दूसरो का हित सिखाने वाला तत्व हे। धर्म ही प्राणिमात्र को मर्यादित करता है तथा उसे उच्दखल नही होने देता। धर्म ही मनुष्य में मनुष्यता लाता है। यदि मनुष्य धर्म को त्याग दे तो वह पशुओं से भी पतित होगा। इसलिए मनुष्य को किसी भी प्रकार से धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए। हाँ यह अवश्य है कि धर्मो का आश्रय शरीर न होकर ईश्वर प्राप्ति ही होनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि ध र्म का पालन निष्कान भाव से ईश्वर का आश्रय लेकर करना चाहिए।

श्रीमद्भागवतगीता को परमपिता परमात्मा स्वयं साक्षात धर्ममय बताते हुए कहते है–

"अध्येष्यते च य इमं धर्म संवादनावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यागिति में गतिः।।"

*

PR-76

सामाजिक विनिमय के सिद्धान्त एवं वर्तमान सामाजिक परिवेश में इसकी उपयोगिता एक दार्शनिक विवेचन

वन्दना, पटना

विगत दो शताब्दियों से समाजशास्त्र में सिद्धान्त निर्माण के क्षेत्र में काफी गंभरता से कार्य हो रहा है। इसी गंभीरता के कारण समाजशस्त्र में सिद्धान्त के क्षेत्र में कुछ नवीन सिद्धान्तों का जन्म हुआ है। सामाजिक विनिमय के सिद्धान्त इन्हीं नवीन विधाओं में एक महत्वपूर्ण विधा है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इस सिद्धान्त में मौद्रिक स्त्रोत उपयोतितावादी दर्शन, मनोविज्ञान और मानवशास्त्र में पाया जाता है। मानवशास्त्रीय विनिमय सिद्धान्त की परंपरा से सामाजशास्त्रीय विनिमय सिद्धान्त ने बहुत कुछ ग्रहण किया है। आधुनिक सामाजिक विनिमय सिद्धान्त मुख्य रूप से दो समाजशास्त्री जार्ज कॉस्पर होमेन्स और पीटल ब्ला से संबंधित है। होमेन्स के सिद्धान्त में व्यवहारवादी विनिमय को अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। जबकि पीटर ब्ला का अध्ययन सामाजिक संरचना पर केन्द्रित है। विनिमय संबंधो को कुछ क्रियाओं और वस्बुओं के लेन-देन तक ही सीमित नहीं किया जा सकता है। विनिमय में मनुष्य भौतिक लक्ष्यों की प्राप्ति तो करता है लेकिन कई बार वह अभौतिक स्त्रोंतों जैसे-सवेंग, सेवाएँ, प्रतीक इत्यादि द्वारा भी वह लाभ प्राप्त करना चाहता है। मनुष्य एक तार्किक प्राणी है जो न्यूनतम लागत पर अधिकतम लाभ पाने के उद्देश्य से अन्तः क्रिया अर्थात् विनिमय व्यवहार करता है।

*

PR-77

औपनिषदिक अध्यात्म ज्ञान का प्रथम सोपान 'सदाचार' तथा वर्तमान में उसकी प्रांसगिकता

डॉ लता गर्ग, सहारनपुर

दर्शनशास्त्र का उद्देय अध्यात्म तथा भौतिकता का ज्ञान कराते हुए सुख और शान्ति की प्राप्ति कराना रहा है। सर्वोच्च सुख को विभिन्न नाम दिये गये हैं–मोक्ष, निर्वाण, कैवल्य तथा मुक्ति। सामान्य व्यक्ति इसे रहस्यात्मक तथा कोपल कल्पित भले ही समझता रहे परन्तु वास्तविकता तो यही है कि जीवन में आत्यन्तिक सुख के लिय औपनिषदिक पारलौकिक ज्ञान का अत्यधिक महत्त्व है, क्योंकि परलौकिक ज्ञान ही जीवन का चरम लक्ष्य है सभी दर्शनों और धर्मो का विस्तार इसी एक उद्देश्य के लिये समर्पित है परन्तु इस आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति सरलता से यों ही नहीं हो जाती। सदाचार को अपनाये बिना परलौकिक ज्ञान की प्राप्ति हो ही नहीं सकती। औपनिषदिक ब्रहमज्ञान का प्रथम सोपान सदाचार ही है। जब तक साध क का आचरण सत्य, अंहिसा, अस्तेय, ब्रहमचर्य, स्वाध्याय, त्याग, तपस्या, दया, दान आदि भावों से युक्त नहीं होता उसकी साधना आगे चल ही नहीं सकती। बड़े-बड़े कष्टों में भी विचलित न होना, इन्द्रियों और मन को वश में रखना, अग्निहोत्र करना, अतिथि सेवा, गुरूजनों का सम्मान आदि सबसे श्रेष्ठ तप है। सभी उपनिषद् प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सदाचार के इन नियमों के पालन करने का आग्रह रखते हैं। किसी भी समाज के श्रेष्ठ पुरूष जिस प्रकार के व्यवहार को अच्छा मानते हैं, वहीं व्यवहार उस समाज का सदाचार कहलाता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रत्येक समाज में सदाचार की कुछ आकांक्षाऐं, आदर्श तथा मर्यादायें होती है। भारतीय संस्कृति है जो बिना धर्म और दर्शन के कुछ नहीं है। यहाँ प्रत्येक आचार धर्म से संतुलित होता है और दर्शनिक तथ्य रखता है। अतः हमारे समाज का सदाचार ऐसा नहीं जो केवल कल्पना कर लिया गया हो। वस्तुतः आधारभूमि बहुत ही दृढ़ है।

❋

PR-78

धर्मशास्त्र में योगशास्त्र

मेघना श्रीवास्तव, इलाहाबाद

धर्म एक ऐसा व्यापक शब्द है जिससे जाति विशेष की सभ्यता, संस्कृति आचार विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज तथा जीवन प्रणाली की प्रक्रिया और निदर्शन प्रस्तुत होता है।

"धारणद् धर्म इत्याहुः" के अनुसार धर्म जीवन का मूलाधार है। मनुस्मृति में धर्म का लक्ष्य इस प्रकार दिया गया है–

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्थ या प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विध प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥

श्रुति अर्थात् वेद के पश्चात् धार्मिक तथ्यों के प्रस्तुती करण में स्मृति साहित्य की ही मान्यता है। स्मृति शब्द का अर्थ है "स्मरण" अर्थात वह वस्तु जो स्मरण की जाए या परम्परा से प्राप्त की जाए। विशिष्ट अर्थ में स्मृति शब्द से धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों का ही बोधा होता है। इसमें मुख्य रूप से मनुस्मृति, यज्ञवल्क्य स्मृति, पुराण उपनिषद, रामायण और महाभारत को सम्मिलित किया जा सकता है। इन सभी ग्रन्थों में मानव जीवन के सभी पहलुओं का धर्म के साथ सम्बन्ध बताया गया है।

कृत कार्या का विधान तथा अकृत कर्मो का निषेध इन धर्मशास्त्रों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। योगशास्त्र में प्रतिपादित अष्टांग योग का उल्लेख प्रायः सभी धर्मशास्त्रों में भिन्न-भिन्न रूप से मिलता है। इनका पालन करने से सत्कर्मो की वृद्धि, असत् कर्मो का नाश; समरत क्लेशो से निवृत्ति तथा चित्त की निर्मलता प्राप्त होती हे। अन्तः करण आत्म साक्षात्कार के योग्य बन जाता है। योग के आठ अंग इस प्रकार से है–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-79

विशिष्टाद्वैत वेदान्त को लोकाचार्य का अवदान

पूनम पाण्डेय, इलाहाबाद

आचार्य रामानुज की मृत्यु के अनन्तर तेरहवीं शताब्दी के लगभग श्री वैष्णवों में प्रपत्ति तथा अन्य 18 विषयों पर मतभेद के कारण तेङ्गलै और बङ्गलै दो सम्प्रदाय हो गये। इनमे तेङ्गलै तमिल प्रबन्ध को शास्त्रीय तथा तमिल वेद को प्रामाणिक मानते थे। वे संस्कृत निबन्ध ग्रन्थों में आस्था नहीं रखते थे। बङ्गलै संस्कृत एवं तमिल दोनों को समान प्रामाणिक मानते थे। आचार्य श्री लोकाचार्य इस तैङ्गलै मतवाद के प्रवर्तक हैं। इनका जन्म 1264 ई. में हुआ था। इन्होंने 18 ग्रन्थों की रचना की है किन्तु तत्त्वत्रय, तत्त्वशेखर, अर्थपञ्चक तथा श्रीवचनभूषण में ही इन्होंने मुख्यतया अपने दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। अपने इस शोधपत्र में इन ग्रन्थों में प्रतिपादित श्रीलोकाचार्य के विशिष्टाद्वैतपरक सिद्धान्तों का परिशीलन किया जायेगा।

विशिष्टाद्वैतवेदान्त को श्रीलोकाचार्य का मुख्य अवदान श्री एवं प्रपत्ति के विषय में है। इन्होंने श्री को पुरुषाकार माना है। वह जीव हे अपराधों को ईश्वर से क्षमा करवाती हे। ईश्वर एवं जीवन दोनों को अपने वश में रखती है। प्रपत्ति में लोकाचार्य कर्म के अस्तित्व को नहीं स्वीकारते। इनके अनुसार प्रपत्ति के लिये जीव को कर्म करने की आवश्यकता नहीं है, शरणापन्न होते ही भगवान् स्वयं जीव का उद्धार करते हैं। इनके इस सिद्धान्त को ग्रन्थों में मार्जार-किशोर के दृष्टान्त द्वारा समझाया गया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने प्रपत्ति में विषय को नियम माना है तथा प्रपत्ति की ज्ञान, वरण, प्राप्ति तथा प्राप्यानुभव चार दशाएँ और आर्त्त एवं दृप्ति के भेद से दो स्वीकार किए हैं।

*

PR-80

गीता : एक व्यवहारिक अध्ययन

मञ्जरी सिन्हा, इलाहाबाद

मनुष्यमात्र के उद्धार के लिए वेदान्त की भाषा में तीन राजमार्ग प्रस्थानत्रय के नाम से कहे गये है। इस प्रथानत्रय में उपनिषद अधिकारी पुरूषों के लिए उपयोगी है 'ब्रह्मसूत्र' विद्वानों के लिए उपयोगी हैं किन्तु "श्रीमद्भगवद्गीता" सभी वर्गो के लिए उपयोगी है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

"श्रीमद्भगवद्गीता" अपनी व्यवहारिकता के कारण सदैव ही कल्याण का आधार रही है। जिस प्रकार से विज्ञान एक व्यवस्थित ज्ञान है उसी प्रकार से गीता भी एक व्यवस्थित तथा व्यवहारिक परिपाटी है। गीतोक्त मार्गत्रय इसी परिपाटी का विवेचन करते है।

गीता का कर्मयोग जगत् के लिये है अर्थात् जगत् के साथ कर्त्तव्य तथा सम्बन्ध पर प्रकाश डालता है। आज के युग में गीतोक्त कर्म का अनुसन्धान अत्यन्त हितकर है। गीतोक्त कर्मानुसन्धान से मनुष्य स्वयं से ही स्वयं को जानने का अधिकारी बन जाता है जो कि सच्चा ज्ञानयोग है। गीता का भक्तियोग 'वासुदेव' सर्वम्' पर आधारित है जो एकेश्वरवाद का पुट देता है तथा सरल एवं व्यावहारिक भी है।

*

PR-81

भारतीय आस्तिक दर्शनों में प्रमाण मीमांसा

डॉ. नीतू सिंह, सुल्तानपुर

यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के साधन को ही प्रमाण कहा गया है। न्याय दर्शन वात्स्यायन भाश्य में "प्रमाणों द्वारा किसी अर्भ की परीक्षा को न्याय कहा गया है। अतः दार्शनिक विवेचना की मूलभित्ति प्रमाण विमर्श पर ही स्थिर है। इसी कारण प्रो. एम. हिरियन्ना यह मानते हैं कि "वस्तुतः विभिन्न प्रमाणों के द्वारा प्राप्त परिणामों का ही सामान्य नाम दश्न है। प्रमाण से अर्थ की सिद्धि होती है? इस मूल सिद्धान्त के स्वीकार करने से प्रमाण के अस्तित्व में किसी को आपत्ति नहीं है। चार्वाक (लोकायत) मतानुयायी केवल प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो प्रमाणों को मानते हैं। सांख्य और योग दर्शन में प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम (वेद और तदनुकूल आप्तोपदेश) ये तीन प्रमाण माने गये हैं। वैशेषिक तथा नैयायिक प्रत्यक्ष, अनुमालन, उपमान (सादृश्य अर्थात् गौ के सदृश्य गवय-नीलेगाय) और शब्द इन चार प्रमाणों को मानते हैं। प्रभाकर भट्ट के मतानुयायी मीमांसक उक्त चारों प्रमाणों के साथ "अर्थापत्ति" नामक पाँचवा प्रमाण भी मानते हैं। कुमारिल भट्ट की परम्परा वाले मीमांसक प्रतयक्ष से षट् प्रमाण मनने के पक्ष में है। वेदान्ती भी षटप्रमाणवादी हैं। पाराणिकों को आठ प्रमाण है–1.प्रत्यक्ष, 2. अनुमान, 3. शब्द, 4. उपमान, 5. अर्थापति, 6. अभाव, 7. सम्भव और 8. ऐतिह्य मान्य है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-82

अरविन्द की दृष्टि में सौर-मण्डलीय-देवता

डॉ. हेरम्ब पाण्डेय, वाराणसी

वेद-विद्या के मनीषियों में योगी अरविन्द का विशिष्टि स्थान है। उन्होंने वैदिक मन्त्रों की दार्शनिक दृष्टि से याख्या की है। अरविन्द के अनुसार वेद विशुद्ध रूप से दार्शनिक ग्रन्थ हैं न कि कर्मकाण्ड या इतिहास। वैदिक-ऋचाओं के मूल अर्थ अनेक आवरणों में लिपटे हैं—जो योग तथा तप से पवित्र हुए हृदय में स्वतः स्फूति होते हैं। व्याकरण की दृष्टि से सामान्य प्रतीत होने वाले शब्द-समुदाय भी अर्थ की दृष्टि से नितान्त गूढ़ एवं असामान्य होते हैं। अरविन्द ने कहा है कि निरुक्तकार यास्य ने जिन तीन-आधिभौतिक, एवं आध्यात्मिक अर्थों का उल्लेख किया है, उसमें आध्यात्मिक अर्थ ही वैदिक ऋचाओं का वास्तविक अर्थ है। अरविन्द का उक्त विचार वैदिक देवताओं के सन्दर्भ में भी है।

अरविन्द के अनुसार देवता शब्द दिव् धातु से उत्पन्न है, जिसका अर्थ है—चमकना दमकना, स्पन्दित होना या क्रीड़ा करना। इस दृष्टि से देवता तत्त्व के प्रकाशक हैं। प्रकाश देवों का सामान्य गुण है। प्रकाशकत्व रूपी सामान्य गुण विशिष्ट में विशेष रूप से विद्यमान रहता है।, ऐसे देवों की श्रेणी में ही सौर-मण्डलीय-देवता आते हैं। वे सही अर्थो में अज्ञान से प्रकाश की ओर प्रवृत्त करने वाले होते हैं। इस प्रकार अरविन्द ने सौर-मण्डलीय-देवताओं को प्रकाश अथवा ज्ञान से सीधे सम्बद्ध किया है।

*

PR-83

भारतीय चिन्तन परम्परा में नीति निर्धारक तत्व-एक समीक्षा

डॉ. बी. एन झा, बिहार

भारतीय चिन्तन परम्परा के मौलिक नैतिक प्रत्ययों की चर्चा करते हुए हम कह सकते हैं कि भारतीय दर्शन में वर्ण एवं आश्रय का विचार प्राचीनतम है। वर्ण व्यवस्था नैतिकता का सामाजिक पहलू है जबकि आश्रय व्यवस्था नैतिक विकास का वैयक्तिक पक्ष है। दोनों का उद्देश्य 'परमान्द' की प्राप्ति ही है। मनु के समय समाज चार वर्णों में विभाजित था– (1) ब्राह्मण (2) क्षत्रिय (3) वैयव एवं (4) शुद्र। आधुनिक शब्दावती में इन्हें शिक्षक, रक्षक, पोषक और सेवक की संज्ञा दे सकते है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ब्राह्मण वर्ण की चर्चा करते हुए विभिन्न दर्शन ग्रन्थों में स्वीकार किया गया है, कि शैच, अद्रोह, दया, दान, अध्यापन, यज्ञ करना एवं कराना, स्नान, तर्पण, देवाराधना, सर्वहित भावना, समस्त प्राणियों से मैत्री भाव रखना आदि कर्त्तव्यों का पालन करने वाले वर्ण को ब्राह्मण वर्ण की संज्ञा दी गई, जिन्हें आज शिक्षक के रूप में पाते है। गीता में भी इसे स्वीकारा गया है। मनु स्मृति में क्षत्रियों का कर्त्तव्य मुख्य रूप से प्रजाजनों की रक्षा करना, ब्राह्मणों को दान देना, यज्ञ करना एवं वेदों का अध्ययन करना माना गया है। "विष्णुपुराण" में पृथ्वी की रक्षा करना, शस्त्र धारण करना, यज्ञों का अनुष्ठान करना ही क्षत्रियों का निश्चित कर्त्तव्य माना गया है।

❋

PR-84

गीता तथा आत्मपरमात्मानुभूति

डॉ. सनन्दन शर्मा, रोहतक

यह शोध-पत्र निम्नलिखित पांच भागों में विभक्त है:-

1. गीता-ज्ञान गौरव
2. गीता-योग का आविर्भाव
3. ब्रह्मपरमात्मा, आत्मा तथा जीवात्मा
4. जीवात्मा की कृतकृत्यता
5. निष्कर्म

आज के वैज्ञानिक युग में, गीता-सार "प्रत्यक्षावगमं, धर्म्य, सुसुखं कर्तुम् अव्ययम्" (गीता, 9/2) अध्यात्म शास्त्र, दुर्लभ है। गीता मे अपने कौशल से अतीन्द्रिय परम्परा को भी बुद्धिग्राह्य बनाकर, आत्मा के स्तर पर प्रत्यखायमाण कर दिया है, क्योंकि "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठ" (18/61)। भावार्थ यह है कि ईश्वर सभी के अन्तः करणों मे, शुद्ध 'अहं' के रूप में साक्षात् आजीवन विराजमान रहता है और कोई भी सचेत प्राणी उसकी साक्षात् अनुभूति को नकार नहीं सकता। गीताकार ने शरारस्थ आत्मपरमात्मा का क्षेत्र-क्षेत्रय (13वां अध्याय) देह-देही (2/20) और क्षर-अक्षर (15/16) आदि माध्यमों से इतना विशद विवेचन किया है कि उसे अनुभूति के स्तर पर उतारने में कोई भी दिक्कत पेश नहीं आ सकती है।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-85

वेदान्त में स्वास्थ्य–चिन्तन

अजीत कुमार शास्त्री, घोरडी

मानवीय शरीर की रचना और उसमें सम्बद्ध विविध पक्ष बहुत ही जटिल और व्यापक स्तर पर अपनी महत्ता को प्रतिपादित करते हैं 'वेदान्त' का विषय प्रायः ब्रह्म है। परन्तु ब्रह्म इसी शरीर में रहता हुआ भी साधारणतयः प्राप्त नहीं है। इसी ब्रह्म नाम परमानन्दानन्द की प्राप्ति का सुखदानुभव करना ही मानवीय संवेदना का लक्ष्य रहा है। यही लक्ष्य, यही प्रश्न आज के आधुनिक प्रगतिवादी, भौतिकवादी, और वैज्ञानिक युग में भी बुद्धि जीवियों, पण्डितों वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिको, चिकित्सकों, मनोचिकित्सकों के लिए खोज और अन्वेषण का विषय है। इसी संदर्भ में मैं कहना चाहूँगा कि, यह असवस्थतन और मन ही उस परम् ज्योति की प्राप्ति में, उस ज्ञान की मशाल को जगाने में सबसे बड़ी वाधा है। बस आवश्यकता है अपने तन और मन को समझने की, परिमार्जित क़रने की, परिशोधन करने की, तथा जनने और पहचानने की। इसमें स्थित ब्रह्म को जानना, उसके सूक्ष्म अंश को प्राप्त करना जोकि हमारे देह में आत्मा के रूप में स्थित है। जिस के आभास मात्र से त्रिविध क्लेशों का नाश हो जाता है। वास्तव में पाँच आवरणों या कोशों से यह ढका हुआ है। इसको पाँच प्रकारों में विभाजित किया गया है। 1. अन्नमय कोश (शरीर), 2. प्राणमय कोश, 3. मनोमय कोश, 4. विज्ञानमय कोश, 5. आनन्दमय कोश

जब मनुष्य इन पाँच आवतरणों को आवृत्त कर लेता है तो अवश्य ही परम् सुःख–शान्ति, आरोग्य उत्तम शरीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य की परिकल्पना की जा सकती है।

*

PR-86

भक्ति में तन नहीं, मन चाहिए

श्रीमती ए. निशा, गाजियाबाद

उपासना शरीर से नहीं होती है, अपितु इस में मन लगाना पड़ता है। जब तक मन इधर–उधर भटकता रहेग, ईश्वर से साक्षात्कार नहीं हो सकता है। जब तक मन का संसारीक विषयों में आसक्ति बनी रहेगी, उस समय तक ईश्वर से निकटता मनुष्य की नहीं हो सकती। ऐसी दशा में ईश्वर को प्राप्त करने के अनेक साधन शास्त्रों में बताए गए है। भोग, तपस्या भक्ति आदि ईश्वर–प्राप्ति के साधन है। भक्ति साधन तथा निरान्तर ब्रह्म से जुड़ी हुई है। इस

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सन्दर्भ में भक्ति के नौ भेद बताए गये हैं, जो श्रवसा, कीर्तन, स्मरशा, वन्दन, अर्चन, दास्य, सख्य, निवेदन आदि है। भक्ति मार्ग से भिन्न वेदों, उपनिषदों तथा दार्शनिक ग्रंथो में ज्ञान, योग तथा तप के योग से ईश्वर को प्राप्त करने के विभिन्न मार्ग बताए गए है। इस पत्र में सभी साधन पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

❋

PR-87

शंकराचार्य के स्तोत्रों में अन्न दर्शनों का प्रभाव

डॉ. डाहयापुरी एच. गोस्वामी, गुजरात

आदि शंकराचार्य के स्तोत्रो के परिशीलम से स्पष्ट होता है कि शांकर स्तोत्रो में पूर्ववर्ती एवं समकालीन अनेक दार्शनिक विचादर्शनाओ का संकलन हुआ है। यही कारण है कि शंकराचार्य के नाम पर प्राप्त अनेक स्तेत्रों में विभिन्न दर्शनों का परित्यक्षित होता है। इसी सोपपत्र में खास करके सांख्यदर्शन, योगदर्शन, बौददर्शन एवं शैव-साक्त दर्शनों का जो प्रभाव परिलखित होता है इसका संक्षेप में साधारण निरूपण किया गया है।

शंराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्रभाष्य में सांख्यदर्शन का खण्डन किया है, तो भी उनके स्त्रेतों में सांख्यसिद्धान्त और अद्वैव सिद्धान्त में साम्य दृष्टिगत होता है। सांख्यों की प्रकृति शंराचार्य ने माचा के रूप में स्वीकृत की हे। शांकर मायावाद में अनेक सांख्यदर्शन की प्रकृति का दर्शन होता है।

शंकराचार्य ने अपने स्त्रोतो में मोक्ष के उपाय के रूप में पातंजल-योगविद्या का आचार्य लिया है। उनके द्वारा प्रतिपादित मोक्ष साधानचतुष्टयी में योग के कई अंग दिखाई पडते है। 'मोहमुद्गरस्त्रेत' 'देव्यापरापक्षमापन' इत्यादि स्तोत्रों में योग के अनेक प्राणयामादि अंगो का निरुपण हुआ है। शंकर स्तोत्रों में अनिक्त अष्टांग योग का प्रभाव लक्षित होता है।

शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र भाष्य में बौद्ध दर्शन का खण्डन किया है, किन्तु शंकराचार्य के द्वारा स्वीकृत मायावाद का मूल बौध दर्शन में है। इसलिये ही शंकराचार्य पर 'प्रच्छन्न बौ का आक्षेप हुआ है। शंराचार्य कं स्त्रोतो में मायावाद का निरुपण सर्वत्र हुआ है।

शंराचार्य के वेदसाटशिवस्त्रोत्र, शिवमामरूपूया, शिवानन्द लक्ष्मी शिवाष्टक इत्यादि स्तोत्रों के आर्पार पर स्पटष्ट होता है कि वे मुख्यतः शिवोपासक थे।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-88

भारतीय संस्कृति की पोषिका-माँ गंगा

डॉ. रचना शर्मा, मीरजापुर

भारतीय जन-मानस में गंगा एक विशाल जल-प्रवाह मात्र नहीं अपितु संस्कृति की संवाहिका, रक्षिका एवं पोषिका बनकर अद्यतन प्रवाहित हो रही है। माँ से लेकर वर्तमान तक यह अटूट आस्था और विश्वा से पूजि हुई है। प्राणीमात्र के जीवन में जल का महत्त्व अज्ञात नहीं है। जीवन के लिए अनिवार्य होने के साथ ही जीवन धारा में जल धार्मिक क्रियाओं यथा अभिचार, मंगल विवाह एवं महाश्मशान की दृढभूमि भी है अतः देवनदी 'गंगा' युगों-युगों से पूजनीय रही है। वैदिककाल से लेकर पौराणिककाल तक एकस्वर में गंगा का महिमागान एवं महात्म्य कथन उसकी जनोपयोगिता को सूचित करता है। ऋग्वेद के षष्ठ मण्डल 6/45/31 एवं दशम मण्डल 10/75/5-6 में गंगा का महिमागान सर्वप्रथम किया गया है और सभी नदियों में सर्वप्रथम पूज्य स्वीकार किया गया है-

इमं मे गंगे जमुने सरस्वति शुर्द्रि स्तोमं सचता पुरुष्णाया।
असिकन्या मरुद्वृधे वितस्तर्याजीकीये श्रृणुत्था सुषोमया॥

शतपथब्राह्मण, जैमिनीय ब्राह्मण ओर तैत्तरीय आरण्यक में गंगा का अनेकशः उल्लेख मिलता है। वैदिककाल की अपेक्षा पौराणिक काल में गंगा जन हृदय में विशेश रूप से प्रतिष्ठत हुई। श्रीमद् भगवद्गीता में स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने "स्रोतसामस्मि जाह्नवी" (10/31) कहकर माँ गंगा के महात्म्य को स्वरूप माना है। ब्रह्मपुराण, पदमपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, मत्स्यपुराण , श्रीमद्भागवत, देवीभागवत, मार्कण्डेयपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, लिंग पुराण, स्कन्धा पुराण आदि अधिकांश पुराणों में विभिन्न आख्यानों-उपाख्यानों के मायम से गंगा की माहत्म्य कथन किया गया है।

*

PR-89

ईसाई धर्म में पाप एव प्रायश्चित्त की अवधारणा

डॉ. विनय कुमार सिन्हा, पटना

मानवीय पाप एवं इसके प्रायशिचत की अवधारणा एक ऐसी अवधारणा है जिसे ईसाई धर्म के अन्तर्गत् बहुत स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया गया है। एक इश्वरवादी प्रकृति के ध

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

र्म होने के कारण यह धर्म मानव को ईश्वर की एक अनुपम सृजनकृति के प में स्वीकार करता है। स्वभावत: उसके समक्ष इस प्रश्न की व्याख्या अति उग्र रूप में उर्पासीत होती है कि एक प्रेममय ईश्वर का यह सृजन मानव अशुभ एवं बुराईयों का शिकार क्यों है? ईसाई धर्म इस 'क्यों' की व्याख्या तथा इसके 'निदान' की विवेचना को बहुत अधिक महत्त्व प्रदान करता है।

ऐतिहासिक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि ईसाई धर्म का विकास यदी धर्म की मान्यताओं के आधार पर हुआ है। यद्यपि अपनी विकसित मान्यताओं में कहीं-कहीं यह ध र्म सहूदी मान्यताओं से भिन्न होकर व्यापक रूप ग्रहण कर लेता है, फिर भी इस पर यहूदी मान्यताओं का प्रभाव स्पष्टता: दृष्टिगोचर होता है। पाप अथवा अशुभ के संदीं में यह बात स्पष्ट रूप से प्रकाश में आती है। यहूदी मान्यताओं के समान ही इसाई धर्म भी पाप अथवा अशुभ को वशं परम्परागत् स्वीकार करता है। यह धर्म भी यह स्वीकार करता हैं कि प्रथम मानव जोड़ी आदम तथा इवा ने व्यकि रूप शैतान के प्रभाव से आकर ईश्वर के आदेशों की अवहेलना की तथा उसके द्वारा बनाये गए नियमों का उल्लघन किया, जिसके फलस्वरूप वे पाप के भागी बने।

*

PR-90

शाङ्करवेदान्त में अध्यास का निरूपण

विवेकमणि त्रिपाठी, वाराणसी

वादरायण व्यासकृत अध्यात्मरामायण में अध्यास के सम्बन्ध में कहा गया है.कि जन्मादि षड्भावविकारों से रहित ज्ञान स्वरूप एवं सच्चिदानन्द रूप आत्मा में अज्ञान जन्म संसार की जो प्रतीति होती है उसका कारण अध्यास ही है जो कि अज्ञान जन्य है तथा आत्मज्ञान उत्पन्न करने पर अध्यास का नाश हो जाता है। अध्यात्म रामायण में उत्तरकाण्ड के पाँचवें अध्याय में श्लोक 36, 37, 38 तथा 41 में अध्यास को परिभाषित किया गया है। 'यदन्यदन्यत्र विभाव्यते भ्रमादध्यास मित्याहुरम् विपश्चित:'' असर्परूप रस्सी पर सर्प का आरोप अध्योरोप कहलाता है तथा रस्सी में सर्प की प्रतीति ''अध्यास'' है। जन्मजमान्तर से परस्पर मिल कर रहने के कारण आत्मा को बुद्धयादि, में अहं की प्राप्ति हो जाती है। अग्नि के संयोग में लोहे में अग्नित्व की प्रतीति होने लगती है तथा दोनों में अभेद बुद्धि उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार बुद्धि और आत्मा का तादात्म्य हो जाता है तथा आत्मा की चेतनता बुद्धि में एवं बुद्धि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आदि की जड़ता आत्मा में प्रतीत होने लगती है। इसलिए अध्यास के कारण बुद्धि से लेकर शरीर पर्यन्त अनात्मवस्तुओं को ही आत्मा मानने लगते हैं।

*

PR-91

वात्स्यवरदाचार्य कृत तत्त्वसार में वर्णित आदेश शब्द का विवेचन

डॉ. सुधा शुक्ला, लखनऊ

दार्शनिक ग्रन्थों के अन्तर्गत वात्स्यवरदाचार्य ने रामानुज दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों को सर्वसुलभ करने के लिए उनकी व्याख्या अपने ग्रन्थों में की है। इस वर्गीकरण के अन्तर्गत प्रमेय माला, प्रपत्र पारिजात, तत्वनिर्णय, तत्त्वसार इत्यादि ग्रन्थ आते हैं। धार्मिक ग्रन्थ के वर्गीकरण के अन्तर्गत आराधन कारिका, यतिलिङ्ग समर्थन, परमार्थ स्तुति, परत्यादि पञ्चकम् आदि है।

तत्वसार नामक यह ग्रन्थ वात्स्यवरदाचार्य के दार्शनिक ग्रन्थों के वर्गीकरण में आता है। तत्त्वसार में मुख्य रूप से चौवालीस विषयों का वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ 104 श्लोकों में निबद्ध है और वे सभी श्रीभाष्य के पक्ष में उपस्थापित है। तत्त्वसार नामक ग्रन्थ्ज्ञ में आचार्य वात्स्ववरदाचार्य ने जिज्ञासाधिकरण, जन्माद्याधिकरण, शास्त्रयोनित्वाताधिकरण इत्यादि अधिकरणों में महत्त्वपूर्ण एवं विवादग्रस्त विषयों का विश्लेषण अत्यन्त सरलता एवं गम्भीरता से किया है। उन्हीं विषयों के अन्तर्गत एक विषय आता है आदेश शब्द का निरूपण। वात्स्यवरदाचार्य के अनुसार आदेश शब्द का विवेचन ही मेरा मुख्य विषय है। आदेश शब्द आङ् पूर्वक दिश धातु से घञ्स प्रत्यय करके बना है। छान्दोग्योपनिषद के आत्म विद्या प्रकरण में एक विज्ञान से सर्वविज्ञान की समिज्ञा करते हुए श्वेतकेतु के पिता उद्दालक महर्षि ने कहा हैउत्तमादेशम् प्राक्ष्यः येनाश्रुतंऽश्रुतम्। इस श्रुति में आए हुए आदेश शब्द का अर्थ आचार्य शंकर ने उपदेश किया है अर्थात् क्या तुमने अपने गुरुओं से उस उपदेश को पूछा है जिस उपदेश के सुनने से अश्रुत पदार्थ भी श्रुत हो जाता है। अद्वैती विद्वानों के द्वारा आदेश पद का यह अर्थ किया गया। यह अर्थ श्रीवरदाचार्य को अनभिप्रेत है। उनका मानना है कि आदेश शब्द का अर्थ उपदेश नहीं किया जा सकता है क्योंकि ऐसा अर्थ मानने पर प्रकरण तथा श्रुत्यन्तरो से विरोध होगा। अतःएव शब्द का अर्थ प्रकाशक मानना चाहिए।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-92

अद्वैत वेदान्त दर्शन में मानव व्यक्तित्व की मीमांसा

डॉ. सरोज कौशल, जोधपुर

1. अद्वैत वेदान्त शाखा वैचारिक धरातल के स्तर पर अत्याधिक उच्चासीन है। इसका अलिकारी भी साधारण नहीं अपितु 'साधनचतुष्टयसम्पन्नः प्रमाता' है। नित्यानित्यवस्तुविवक, इहामुत्रार्थ फलभोगविराग, शमादिषट्कसम्मत्ति तथा मुमक्षुत्व ये चार बिन्दु सिद्धान्त तथा प्रयोग दोनों रूपों में हमें प्राप्त हैं। ये व्यक्तित्व विकास के आदि सूत्ररूप है।

2. अद्वैत वेदान्त दर्शन में मनुष्य की सीमाओं, क्षमताओं और योग्यताओं के आध ार पर सोपानक्रम का निरूपण किया गया है। निर्विकल्पक समाधि का निरूपणसविकल्पक पूर्वक किया गया है।

3. विधि एवं निषेध वाक्य–व्यक्तित्व विकास के साक्षात् सूत्र है।

4. **असत्ये वर्त्मनि सिथत्वा ततः सत्यं समीहते**यह सिद्वान्त अद्वैत वेदान्त दर्शन के अन्यन्त विस्तार से निरूपित है।

5. **अर्थवा द्वारा व्यक्तित्व विकास का आदर्श प्रस्तुत करना शास्त्र का मार्गदर्शन है।**

*

PR-93

ईशावास्योपनिषद्

रूवी कुमारी, नालन्दा

मुक्तिकोपनिषद् में उपनिषदों की संख्या 108 मानी गई है। मुख्य उपनिषदें 10 कही जाती हैं। शंकराचार्य ने ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य तैत्तिरीय, ऐतरेय, छादोग्य, बृहदारण्यक तथा श्वेताश्वर– इन ग्यारह उपनिषदों पर भाष्य लिखा है, उन्हें प्राचीन और प्रामाणिक माना जाता है।

शुक्ल यजुर्वेद की कण्व एवं माध्यंदिन वाजसनेयी संहिता का अंतिम 40वाँ अध्याय ईशावास्योपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध है। अष्टादश श्लोकों को अपने परिधि में समेंटे यह एक लघुकाय उपनिषद् है जो महत्त्व की दृष्टि से सर्वोपरि है। वेद का सारस्वरूप आत्मज्ञान एवं

CC-0, JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गूढ़ तत्त्व को यह उपनिषद् आत्मसात किए हुए है। इस उपनिषद् का प्रथम मंत्र शांतिमंत्र है जो ईश्वर और जगत् की पूर्णता का सिद्धान्त प्रतिपादित करता हैं अष्टादश मंत्रों की छोटी-सी परिधि में यह उपनिषद् आत्मा का महत्त्वपूर्ण रहस्यात्मक वर्णन, स्थितिप्रज्ञ, परवर्ती कर्मयोग का दिग्दर्शन, कर्म और ज्ञानदो विपरीत भावों का तर्कसंगत समन्वय है। भारतीय विचार-विधान के विकास में उपनिषदीय ऋषियों के इन विरोधी भावों के तर्कसंगत समन्वय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। छोटी-सी कलेवर की यह उपनिषद् वर्णन की दृष्टि से गागर में सागर समाए रखने की कहावत को चरितार्थ करती है।

*

PR-94

श्रीमद्भगवद्गीता में 'लोक' शब्द की अवधारणा

डॉ. राजेश लाल मेहरा, मध्यप्रदेश

लोक एक व्यापक अर्थ सत्ता रखने वाला शब्द है। शब्दकोश में इसके विभिन्न अर्थ मिलते हैं, जैसे स्थान, संसार, प्रदेश या क्षेत्र, जन जो लोग (जन साधारण), समाज, प्राणी, यश आदि। लोक शब्द संस्कृत के लोक-दर्शन धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है। लोक-दर्शने' धातु का अर्थ होता हैदेशना, जिसका लट्लकार में अन्य पुरुष का एक वचन है लोकते। अतः लोक शब्द का अर्थ हुआ देखने वाला। इस प्रकार वह समस्त जनसमुदाय को इस क्रिया को करता है, लोक कहलाएगा।

लोक शब्द अत्यन्त प्राचीन है, जिसका उल्लेख ऋग्वेद, एतरयोपनिषद्, जैमिनी उपनिषद, ब्राह्मण वाराह पुराण, पाणिनि के अष्टाध्यायी, रामायण, महाभारत आदि अनेक संस्कृत ग्रन्थों के साथ पालि-प्राकृत के ग्रंथों में भी मिलता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने मानस में अनेक स्थानों पर लोक शब्द का प्रयोग किया है। भारत की अनेक भाषा-बोलियों में भी वर्षों से लोक शब्द का प्रयोग लोकसंस्कृति, लोकसाहित्य, लोकचेतना, लोकविश्वासों आदि में भी वर्षों से लोक शब्द प्रयोग लोकसंस्कृति, लोक साहित्य, लोकरुचेना, लोक विश्वायों आदि के साथ प्रयोग होता आया है।

श्रीमद्भगवद्गीता के विभिन्न अध्यायों में अलग-अलग संदर्भों में लोक शब्द का 40 से अधिक बार प्रयोग हुआ है। स्थानवाची संदर्भों में लोक शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। यथा-त्रिषु लोकेषु, मानुषे लोके, पुण्यकृतां लोका, सुरेन्द्रलोकं, स्वर्गलोकं, मर्त्यलोकं, लोकान्समग्रा आदि। इसी प्रकार संसार ओर जनसाधारण के लिए भी यथास्थान इसका उल्लेख मिलता है,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जैसे–येषां लोक इमाः प्रजाः, विशन्ति लोकास्तवापि, श्रुतिमल्लोके, लोकोऽयं कर्मबंधन, लोक 'स्तदनुवर्तते आदि। टीकाकारों ने 'लोकसंग्रह' जैसे शब्दों की विशद् व्याख्या की प्रस्तुत है।

*

PR-95

मनोनुशासनम् एवं पातंजल योग सूत्रः एवं अध्ययन

डॉ. प्रकाश सोनी (वर्मा), मुम्बई

मनोनुशासंनम् तथा पतंजलयोगसूत्रम् के तुलनात्मक अध्ययन के अन्तर्गत अष्टांगों पर चर्चा की गई है। पतंजलि द्वारा प्रयुक्त योग के आठ अंगों का संमावेश मनोनुशासन में हो जाता है। जैसे यम तथा नियम के स्थान पर पंच महाव्रत उनकी भावनाएं तथा बाह्य आभ्यन्तर तप के अन्तर्गत स्वाध्याय आदि उपलब्ध आसन के स्थान पर मनोनुशासनम् में आसनों का कायक्लेश के रूप में निर्देश मिलता है। कायोत्सर्ग के अन्तर्गत प्राणायाम का समावेश है तथा प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि के स्थान पर गुप्ति, समाधारण, ध्यान, समाधि आदि का विधान है। पातंजल के पहले अध्याय के प्रारम्भ में योग–निरोध की बात कही गई है ओर दूसरे अध्याय के प्रारम्भ में क्रियायोग की बात कही है। मनोनुशासनम् में योग की परिभाषा में ही पहले शोध न और उसके पश्चात् निरोध की बात प्रस्तुत हैं केवल चित्तवृत्ति के निरोध से योग की पूरी परिभाषा नहीं बनती है। चित्तवृत्ति का निरोध और क्रियायोग दोनों मिलकर येाग की पूरी परिभाषा देते हैं।

प्रस्तुत तुलनात्मक अध्ययन में नाम, विषय, सम्बन्ध, प्रयोजन तथा भाषाशैली के साथ साम्य–वैषम्य पर विचार किया गया है। वस्तुतः तुलना करना बहुत कठिन भी है और बहुत सरल भी है। कोई भी विषय ऐसा नहीं है, जो किसी एक बिन्दु पर समान न होता हो। एक बिन्दु ऐसा आता है, जहाँ दोनों बिन्दु समान भूमिका पर आ जाते हैं। जहाँ इन्द्रिय प्रत्यक्ष का प्रश्न है, उसमें कोई अन्तर नहीं है। ऐसे कुछ बिन्दु और हो सकते हैं, जो एक समान प्रतीत होते हैं, किन्तु यह वास्तविक तुलना नहीं है। किसी ग्रन्थ की आधारभूमि क्या है? किस पृष्ठभूमि के आधार पर उसका दर्शन पनपा है, विकसित हुआ है? इन प्रश्नों के संदर्भ में जो तुलना होती है वह वास्तविक होती है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-96

भारतीय दर्शन में कर्म की अवधारणा

डॉ. बिनोद कुमार चौधरी, नालन्दा

कर्म शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है क्रिया, लेकिन कर्म एक सिद्धान्त के रूप में कर्मवाद कहलाता है जिसका अर्थ है–'सभी कार्य एक नियम से संचालित होते हैं। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'लोकोऽयं कर्मबन्धनः।'' संकुचित अर्थ में कर्म के तात्पर्य हैं–मानवीय कर्म। लेकिन व्यापक अर्थ में कर्म का अर्थ सभी प्राणियों एवं वस्तुओं के कर्म से है। कर्म का इतना अधिक महत्व है कि प्राणियों का पुनर्जन्म का आधार भी कर्म ही होता है। व्यक्ति जिन माता-पिता, परिवार तथा समाज में जन्म लेता है, वे सब उसके (प्रारब्ध) कर्मों के ही परिणाम होते हैं–**'फलस्य वा पूर्वावस्था पूर्व नामास्तीति तर्क्यते।'** कर्म में विश्वास रखने वाले एक प्राचीन मनीषी को अपने कर्म पर इतना भरोसा था कि वह कहा करता था कि 'मेरे दाहिने हाथ में पुरुषार्थ है और बाएं हाथ में सफलता रखी है–**'कृते मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।'** कर्म-सिद्धान्त के अनुसार प्राणियों को अपने द्वारा सम्पादित कर्मों के फल को भोगना ही पड़ता है। कहा भी गया है कि 'अवश्यमेव हि भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।' प्राणी जैसा कर्म सम्पादित करता है, उसी के अनुरूप फल प्राप्त करता है। सन्त तुलसीदास ने इस आशय को व्यक्त करते हुए 'रामचरितमानस' में लिखा है–

'कर्म प्रधान विश्व रचि राखा
जो जस करहिं सो तस फला चाखा'

कर्म सिद्धान्त में विश्वास रखने वाले भारतीय दार्शनिकों में मनुष्य के तीन जीवनों को स्वीकार किया है–भूतजीवन, वर्तमानजीवन तथा भविष्यजीवन। इनमें मनुष्य का वर्तमान जीवन उसके भूत जीवन के कर्मों के फल के अनुरूप एवं भविष्य जीवन, वर्तमान जीवन के कर्मों के अनुरूप होता है। यह ठीक है कि मनुष्य का अधिकार भूत जीवन पर नहीं है, लेकिन वर्तमान जीवन पर उनका पूर्णतः अधिकार होता है। अतः उन्हें चाहिए कि वर्तमान जीवन में ऐसा कर्म सम्पादित करें कि उनका भविष्य उज्ज्वल हो सके। इसी अर्थ में भारतीय दार्शनिक ने मनुष्य को अपने भाग्य का निर्माता कहा है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए प्रसिद्ध कवि दार्शनिक इकबाल ने कहा है कि **'खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तकदीर के पहले खुदा बन्दे से खुद पूछे कि तेरी रजा क्या है।'**

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-97

दर्शन में धर्म का स्वरूप

मो. मेराज अहमद, श्रीनगर

धर्म मानव का स्वभाविक गुण है, बिना धर्म के मानव का समग्र विकास सम्भव नहीं है किन्तु सामान्यतया धर्म का अर्थ किसी समुदाय विशेष के मानने वालों से लगाया जाता है–जैसे, हिन्दू, इस्लाम, बौद्ध, आदि। परन्तु दर्शन में धर्म इनसे भिन्न स्वरूप वाला है। वस्तुतः दर्शन धर्म का बौद्धिक विवेचन करता है। इसमें धर्म से संबंधित सभी तथ्यों का संकलन करके उसका मूल्यांकन किया जाता है, ताकि सभी धर्मों के लिए सामान्य सिद्धान्तों की खोज की जा सके। दर्शन किसी भी धर्म विशेष का पक्षपात नहीं करता है बल्कि धार्मिक अनुभूतियों एवं मान्यताओं का पक्षपात रहित अध्ययन प्रस्तुत करता है। प्रत्येक धर्म के ग्रन्थों में इनका स्वरूप निहित होता है, जिनका कोई न कोई दार्शनिक आधार अवश्य होता है।

*

PR-98

दर्शन का स्त्रोत धर्म एक अध्ययन

कृष्ण कुमार शास्त्री सूद

धर्म से तात्पर्य हिन्दू, मुस्लिम इत्यादि से नहीं अपितु उस जीवन शैली से है जिसे जीकर ऋषि मुनियों ने परमानन्द की प्राप्ति की, उस आनन्द को अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने जिन प्रतीकों का सहारा लिया, उसी का नाम दर्शन पड़ा।

इसके अनेक उदाहरण हैं जैसे–

श्री बुद्ध जी, श्री कबीर जी, श्री नानक जी, इन्होंने आन्तरिक धर्म से परमात्मा को पाया। इन्होंने कोई दार्शनिक मान्यता स्थापित नहीं की। जब बुद्ध से किसी ने पूछा आपकी दार्शनिक मान्यता क्या है तो उनका उत्तर था

विद्विगतं ति खो वच्छ।
अपनीतमेतं तथागतस्स।।

तथागत की दार्शनिक मान्यताएँ समाप्त हो गई हैं।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-99

योगकारिका में चित्तपरिकर्मविमर्श

रजनी सिन्हा, वाराणसी

'योगकारिका में चित्त परिकर्म विमर्श' शीर्षक प्रस्तुत शोध पत्र में इसी समस्या का समाधान ढूँढने का प्रयोस किया गया है। चित्त को निर्मल करने की पद्धति ही चित्त का परिकर्म है। चित्त को एकाग्र करने के लिए योग के मुख्य साधनों में, वैराग्य एवं अभ्यास के बाद परिकर्म का स्थान आता है। परिकर्म के विषय में पतञ्जलि ने कहा है 'मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदु:खपुण्यापुण्य-विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्' अर्थात् सुखी दुखी, पुण्यात्मा और पापात्मका के विषय में क्रमशः मैत्री करूणा, मुदिता और उपेक्षा की भावना से चित्त प्रसन्न होता है। ऐसी भावना ही परिकर्म है। योगकारिकाकार स्वामी हरिहरानन्दजी ने परिकर्म के स्वरूप को प्रस्तुत करते हुए सूत्रकार महर्षि पतञ्जलि, महर्षि व्यास एवं भाष्यकार का अनुसरण करतेहुए परिकर्म का स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है कि ईर्ष्या और क्रोधादि पिशुनभाव मनुष्यचित्त को स्थिर नहीं होने देते। अतएव मैत्री आदि की भावना द्वारा चित्त को प्रसन्न करना चाहिए। तब वह चित्त एकाग्र हो जाता हैं अतः सुखी, दु:खी, पुण्यशील और अपुण्यवान व्यक्तियों में क्रमशः मैत्री करुणा, मुदिता और उपेक्षा का भाव चित्त में लाने का अभ्यास करने से ही चित्त की शुद्धि होती है और शुद्ध चित्त प्रसन्न होकर स्थिरता का लाभ करता है। परिकर्म के स्वरूप को स्वामीजी ने योगकारिका में इस प्रकार बताया है–**'ईर्ष्याऽसूयादि-संक्लेशाद्-अपरिष्कृचेतसः। मैत्र्यादीनां प्रजायेत प्रसादो नित्यभावनात्॥'** (योग कारिका 1/7)

❋

PR-100

ज्योतिष शास्त्र में सप्तम भाव की समीक्षा

डॉ. उमेशभग, मधूबनी

वेदकेषड्ङ्गों में महत्वपूर्ण ''नेत्र रूप'' स्थान पाने वाले ग्रहनक्षादिकों के तेजपुञ्ज प्रकाशों के प्रभाव से विश्व के शुभाशुभ फलों को दर्शाने वाला यह ज्योतिषशास्त्र स्कन्धत्रयों में विभक्त है। प्रस्तुत मेरा यह शोधपूरक लेख 'ज्यौतिष शास्त्र में सप्तम् भाव की समीक्षा ज्यौतिष के स्कन्ध त्रयों में 'होरा' स्कन्ध पर आधारित है।

तन्वादि द्वादश भावों में सप्तम्भाव से विचारणीय बातें निम्न हैं–

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यथा–विवाह योग, विवाह प्रतिबन्धकयोग, स्त्री के रूप रंग स्वभाव, पति-पत्नी में प्रेम सम्बन्ध, तलाक, नपुंसकता, कामवासनाशक्ति, विवाहसमय निर्धारण, स्त्री संख्याविचार स्त्रीरोग विचार, स्त्री के कुल (वंश) का ज्ञान, वैधव्यविचार, विवाह की दिशा, ससुराल की दूरी ज्ञान करना, प्रेम विवाह ससुराल से धनागम (धनप्रापित), पति-पत्नी के मृत्यु विचार, इत्यादि सारी बातों की जानकारी जन्मलग्न कुण्डली के सप्तम् भाव से किया जाता है।

*

PR-101

श्रीमद्भागवतीयंसाङ्ख्यदर्शनम्

करुणेश कुमार पाण्डेय, वाराणसी

विविध पुराणों ने सांख्य दर्शन में प्रतिपादित तत्त्वों तथा सृष्टि प्रक्रिया को स्वीकार किया है किन्तु सांख्यसिद्धान्त की यह मान्यता यथावत नहीं है जैसे वायु पुराण में तन्मात्राओं एवं महाभूतों की संख्या तो उतनी ही है जितनी सांख्य दर्शन में है, किन्तु उनकी उत्पत्ति प्रक्रिया में भेद है। इसी तरह सांख्यदर्शन के तत्त्वों तथा विभिन्न सिद्धान्तों को तो भागवतृ में स्वीकार किया गया, किन्तु इसमें ईश्वर तत्त्व के ज्ञान से ही कैवल्य अर्थात् मुक्ति को स्वीकार किया गया वहाँ भागवत में भक्ति से भी मुक्ति की बात कही गई। प्रस्तुत लेख भगवत में प्रतिपादित सांख्य दर्शनके इस परिवर्तित रूपको रेखाङ्कित करता है।

*

PR-102

श्रीमद्भगवद्गीता तथा योग

डॉ. श्वेता शर्मा, हिसार

यह शोध-पत्र पंचशेर्षक है।

1. गीता ज्ञान कीआवश्यकता-मोहशोक-विनाशार्थ
2. गीता-नाम का यथागीता याथार्थ्य
3. गीता का मुख्य प्रतिपाद्य-योग अथवा आत्मयोग
4. आत्मयोग की अचूक चाबी-सात्त्विकी बुद्धि
5. योगमयी गीता का निष्कृष्टार्थ निष्कर्ष

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि योगमयी गीता का आत्मयोग, अर्जुनरूपी जिज्ञासु-जीवों को, उनके मोहशोकात्मक भौतिक अहंकार से तोड़ता है यथा उनके ही सुखशान्त्यात्मक आत्मिक अहंकार से जोड़ता है, ताकि आत्मसंस्थ वे लोग, घोरातिघोर दु:खों की घनघोर आंधी में भी, टस से मस न हों, यस्मिन स्थितो न दु:खेन गुरुणापि विचाल्यते, 8/7)।

*

PR-103

भारतीय चिन्तन परम्परा में नीति निर्धारक तत्त्व : एक सर्वेक्षण

डॉ. बी.एन. ओझा, पटना

भारतीय चिन्तन परम्परा में नैतिकता का विचार एक विशाल विचार-प्रवाह है जो वेदों से चलकर आधुनिक युग तक अनवरत रूप से प्रवाहित हो रहा है और अपनी अनन्त यात्रा में आगे बढ़ने के लिए सतत् प्रयत्नशील हैं यही कारण है कि नीतिशास्त्र के अनेक ग्रन्थ-वेद, उपनिषद्, स्मृतियाँ, रामायण, महाभारत, गीता-पुराण, दर्शन-ग्रन्थ, नीति ग्रन्थ, अनेक संतों एवं महापुरुषों के वाणियों के संकलन इस सतत् बौद्धिक प्रयास के परिणाम हैं।

मध्यकालीन महापुरुषों के वचन धर्म-नीतियों के अलावा और कुछ नहीं हैं। 19वीं शताब्दी में राजा राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, गुरु रवीन्द्र नाथ ठाकुर, अरविन्द, महात्मा गाँधी और आचार्य विनोवा भावे आदि ने हिन्दुस्तान की सोई हुई नैतिक आत्मा को अपने बौद्धिक चिन्तन प्रयासों से जगाने का काम किया है तथा बहुत हद तक सफलता भी प्राप्त की है।

जीवन के बढ़ते कदम के साथ-साथ विचार एवं परिस्थितियाँ भी बदलती रहती हैं। फिर इतने विशाल चिन्तन परम्परा में विचारों एवं सिद्धातों का परिवर्तन एवं मतभेद स्वाभाविक है। बावजूद इसके समस्त नीतिशास्त्र धार्मिक अनुभतियों, विवेक एवं व्यवहारिक अनुभावों का प्रतिफल है तथा भारतीय विचारधारा से बाह्य नैतिक ढाँचे में विविधता होते हुए मुख्य विचारधारा सनातन नैतिक सिद्धान्तों की ही रही हैं। सभी नैतिक एवं धार्मिक ग्रन्थ, सन्तों एवं महापुरुषों के नैतिक स्वर शाश्वत सत्य से ही प्रेरणा प्राप्त करते रहे हैं।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-104

भारतीय दर्शन में योग की अवधारणा

पवन कुमार, अमृतसर

सांख्य और योग भारत के प्राचीन तथा प्रसिद्ध दर्शन हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण भूमण्डल के विद्वानों को विस्मित किया है। योग परमात्मा (चेतनतत्त्व) के निर्गुण शुद्ध स्वरूप को जानने के साधन बताता हैं योग शब्द संस्कृत के 'युज' धाातु से बना है, जिसका अर्थ है 'जोड़ना' अथवा किसी कार्य में अपने को लगाना। इस प्रकार मूल अर्थ में इसका अभिप्राय है किसी कठिन-कठोर कार्य के लिए अपने को तैयार करना। जिस प्रकार के उद्देश्य की सिद्धि करनी होती है उसी प्रकार का उद्योग भी होता है। इसलिए उद्योग मानसिक भी हो सकता है, शारीरिक भी। पूर्ण स्वस्थता अथवा दीर्घ जीवन प्राप्त करने के उद्देश्य को लेकर मन और शरीर से जो क्रिया होगी उसे 'योग' (हठयोग) कहेंगे। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार चित्त की वृत्तियों का वास्तिविक निरोध करना ही योग है और यह योग ही कैवल्यमुक्ति का सर्वोत्तम साधन है।

*

PR-105

योगतन्त्र की दृष्टि में कुण्डली (चक्र) तत्त्व विमर्श

डॉ. रोहित पाण्डेय, वाराणसी

तत्वज्ञान के लिए समाधि आवश्यक है। योगियों ने शरीर में षट्चक्रों की परिकल्पना की है, ये शरीरस्थ भाावचक्र हैं जिनका ज्ञान योगी समाध्यवस्था में प्राप्त करते हैं। कन्द से निकलने वाली बहत्तर हजार नाड़ियों में दश प्रमुख हैं ओर उनमें भी तीन अत्यन्त मुख्य हैं:-इडा, पिंगला और सुषुम्णा। इडा मेरुदण्ड के वामभाव में स्थित हैं, यह शीतल स्वभाव की नाड़ी है, क्योंकि इसका देवता चन्द्रमा हैं इसी कारण इसे चन्द्रनाड़ी भी करते हैं।

मेरुदण्ड के दक्षिण भाग में पिंगला या सूर्यनाड़ी स्थित है जो ऊष्ण स्वभाव की होती है, इसका देवता सूर्य है। इन दोनों के मध्य में सुषुम्णा नाड़ी अवस्थित है जिसका देवता अग्नि है। यह नाड़ी ज्ञानस्वरूपिणी हैं जिसके अन्दर सम्पूर्ण ज्ञान-राशि प्रसुप्त रहती है। प्राण का प्रवाह इडा व पिंगला से निरन्तर होता रहता है। योगी इडा व पिंगला में प्राण के प्रवाहन को रोककर सुषुम्णा में प्रवाहित करते हैं। सुषम्णा के मध्य में वज्रा नाड़ी सज्रा के मध्य में वित्रिणी नाड़ी चित्रिणी के मध्य में अवस्थित है जो आदिदेव का परमस्थान है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वह कुण्डालिनी शक्ति सुषुम्णा को ही आधार बनाकर बसती हैं। शरीर में नीचे से ऊपर की ओर क्रम से छः चक्र बसते हैं जिनके नाम क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान मूल, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञाचक्र है।

*

PR-106

योगतन्त्रागमदृष्ट्या मुद्रा स्वरूप विमर्श

डॉ. राघवेन्द्र जी दूबे, वाराणसी

मुद्रा शब्द भारतीय संस्कृति में अधिक प्रचलित है। सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में अनेक ऐसे प्रकरण हैं जहाँ इनका प्रयोग होता आया है। स्थापत्य, कला, नृत्याभिनय, पूजा आदि ऐसे अनेक स्थल हैं, जहाँ मुद्राओं का विशेष प्रयोग हुआ है। आज के परिवेश में मुद्रा शब्द पैसे रुपए के प्रयोग में अधिक प्रचलित है, किन्तु वस्तुतः यह संवेदनाओं, भावों, विचारों व जहाँ पर ध्वन्यात्मक भाषा उन्हें प्रकट करने में अक्षम होती है वहाँ उनका प्रयोग होता है। इतिहासकारों के शब्दों में पुराप्रागैतिहासिक काल में जब मनुष्य के पास अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए सुव्यवस्थितध्वनि संकेत की भाषा नहीं रही होगी तब वह अपने आवश्यकताओं और विचारों को व्यक्त करने के लिए इन मुद्राओं का सहारा लिया करता होगा। भाषा का विकास भी हस्त संकेतों की उपयोगिता और सार्थकता को गौण न कर सका। आज भी वैचारिक आदान-श्प्रदान में भाषा के साथ मुद्राओं या हस्त संकेतों का प्रयोग होता है तथा इससे भावों को सूक्ष्मता से ग्रहण करने में सुगमता होती है। मुद्राओं का प्रयोग संसार के प्रायः सभी संस्कृतियों ओर सभ्यताओं में हुआ है। वैसे आदिम जनजातिय पूजा प्रणाली तान्त्रिक पूजा पद्धतियों में ही ये सुरक्षित हैं। तन्त्रशास्त्र में इसका विशेष महत्व है, भारतवर्ष के सभी सम्प्रदाओं में चाहे वे वैष्णव हो, दौर्गात्य हो शैव शाक्त, कालमुख, वीरशैव, गाणपत्य हों अथवा कुछ ऐसे भी जनजातीय समाज हैं जो जैन, बौद्ध, शैवशाक्त सम्प्रदायों के सम्मिलित रूप में, तान्त्रिक पूजन पद्धतियों का मिश्रित रूप में प्रयोग करते हैं। प्रायः सभी वैष्णव पुराणें में देवता की प्रसन्नता के लिए मुद्राओं का प्रयोग किए जाने का उल्लेख है, किन्तु सम्प्रदायभेद से उनके प्रयोग का ढंग निम्न रहे।

सम्प्रदायगत भेद से मुद्राओं का प्रयोग एक ही देवता के लिए भिन्न-भिन्न रूप में होता है। शारदातिलक में अंगुलिमुद्राओं की अवधारणा का दार्शनिक विवेचन के आधार पर उनका विस्तार एवं वर्गीकरण किया गया है। हॉथ की पॉचों अँगुलियों को पंचमहाभूतों का प्रतीक बताया

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गया है। इसमें अंगुष्ठ आकाश का, तर्जनी वायु की, मध्यमा अग्नि की, अनामिका जल की तथा कनिष्ठा भूमि की भौतिक प्रतिकृति होती है। इन पंचमहाभूतों की स्वरूपभूता अंगुलियों के परस्पर संगठन से निर्मित संकेत, देवताओं में हर्ष, आह्लाद उत्पन्न करता है, तथा ये साधक को देवताओं का सामीप्य प्रदान करने में सहायक होती है। ये ही संसार के भुक्ति और मुक्ति का साधन बनती है।

*

PR-107

सांख्य की प्रकृति और वेदान्त की माया

डॉ. कु. उषा माथुर, मेरठ

सांख्य और वेदान्त दोनों ने सृष्टि के पूर्व एक अव्यक्तावस्था को स्वीकार किया है। एक ने उसे प्रकृति नाम दिया, दूसरे ने माया। ने अनुमान के आधार पर प्रकृति और माया की सिद्धि की है। प्रकृति और माया दोनों ही अनादि हैं और दोनों ही त्रिगुणात्मिका हैं। दोनों का ही सृष्टि विकास में योगदान है। ये समानताएं होते हुए भी प्रकृति और माया में अनेक विभिन्नताएं हैं। सांख्य नपे तर्क और हेतुओं के द्वारा प्रकृति के अस्तित्व को सिद्ध किया है, किन्तु माया को तर्क से सिद्ध नहीं किया जा सकता। माया और ज्ञान एक दूसरे के विरोधी हैं। सांख्य की प्रकृति सत् है, किन्तु वेदान्त की माया को सृष्टि का उपादानप कारण नहीं कहा जा सकता। वह तो एक भ्रान्ति है जो ब्रह्म में जगत् का आरोप कर देती है। दोनों में एक बड़ा अन्तर यह प्रतीत होता है कि प्रकृति का सृश्टि विकास मे स्वतन्त्र योगदान है, जबकि माया ईश्वर पर आश्रित है। किन्तु सांख्य दर्शन मे यह स्पष्ट कहा गया है कि प्रकृति चेतना पुरुष के सान्निध्य से ही सृष्टि रूप में परिणत होती है। ऐसी अवस्था में इसे स्वतन्त्र कैसे कहा जा सकता है? प्रकृति और पुरुष के सहयोग से सृष्टि होती है या माया और ब्रह्म के, बात तो एक ही है, केवल नामभेद हैं माया भी चेतन ब्रह्म से संयुक्त होकर सृष्टि करती है और प्रकृति भी चेतन पुरुष के संयोग से। दोनों को ही चेतन की अपेक्षा है। अन्तर तो वास्तव में यह है कि सांख्य की प्रकृति कर्तृत्व गुण से युक्त है। वह स्वयं ही सृष्टि रचना करती है। इसके विपरीत वेदान्त की माया कर्तृत्व गुण से रहित है। उससे संयुक्त होकर ब्रह्म ही सृष्टि रचना करता है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-108

परमहंस : एकविमर्श

डॉ. परमात्मा दुबे, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वद्यिालय

भारतीय संस्कृति और सभ्यता का उन्नत, उदात्त, उत्कृष्ट एवं सर्वतन्त्रस्वतंत्र गुणवत्ता का अभिव्यंजक शब्द है–परमहंस, जो अपनी महानता, यौगिकक्षमता, माङ्गलिकता एवं परोपकारभावना के कारण विश्व में अभ्यर्चित किंवा सम्पूजित है। श्रेष्ठ आत्मा परमहंस है। 'परमः श्रेष्ठः हंसः सोऽहं आत्मा यस्य'। जो निर्द्वन्द्व, ब्रह्मतत्त्वप्रपन्न, युद्धमानस, कुलीन निर्मम और जीवन्मुक्त होता है। चार प्रकार के अवधूतों में श्रेष्ठ होता है। महानिर्वाणतन्त्र का कथन है–

चतुर्णामवधूतानां तुरीयो हंस उच्यते।
त्रयोऽन्येभोगयोगाढ्या मुक्ताः सर्वे शिवोपमाः।।

उपनिषद् साहित्य एवं तन्त्रागम साहित्य में 'परमहंस' के स्वरूप का विस्तार से वर्णन मिलता है। आरुणिकोपनिषद् नारदपारिबाजकोपनिषद्, निर्वाणोपनिषद्, भिक्षुकोपनिषद् परमहंसोपनिषद् आदि में इसका स्वरूप विस्तार से वर्णित है। वह परमरहस्य का ज्ञाता, तत्त्वनिष्णात, संसारविरक्त तथा शिवस्वरूप होता है। परमहंसोपनिषद् की पंक्ति द्रष्टव्य है–न दण्डं न कमण्डलुं न शिखां न यज्ञोपवीतं न चाच्छादनं चरति परमहंसो न शीतं न चोष्णं न सुखं न दुःखं न मानावमान इति षड्ूर्मिवर्जितो न शब्दं न स्पर्श-------शान्तमचलमद्वयानन्दविज्ञानघन एवास्मि। तदेव मम परमं धाम तदेव शिखा यज्ञोपवीतं च। परमात्मात्मनोरेकत्वभावेन तयोर्भेद एव विमग्नः सा संध्या।

परमहंसोपनिषद्

*

PR-109

शङ्कर-मण्डन-शास्त्रार्थ-समीक्षा

डॉ. अमर नाथ झा, मुजफ्फरपुर (बिहार)

मिथिला विभूति मण्डन मिश्र का आद्य शंकराचार्य के साथ शास्त्रार्थ एवं मण्डन मिश्र का पराजय, सरस्वती की अवतार भारती के द्वारा शंकर से काम सम्बन्धी प्रश्न, मण्डन मिश्र का सन्यास धर्म स्वीकार कर सुरेश्वराचार्य के नाम से ख्यात हाकर श्रृंगेरी मठ का प्रथम अध्यक्ष बनना आदि विवादित प्रश्न मात्र मिथिला की छवि को धूमिल करने का एक सुनियोजित षड्यंत्र रहा है, जिसका न कोई ऐतिहासिक और न प्रामाणिक आधार है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सब से दु:ख की बात यह है कि मिथिला के विद्वत मण्डली मात्र परम्परा से चले आ रहे भक्ति और शृंगार विषयक रचना में तल्लीन रहे। अद्यपर्यन्त कोई भी विद्वान (एक-आध अपवाद को छोड़कर) मिथिला पर तथाकथित कपोल कल्पित कथा द्वारा लगाये गये दाग को धोने का प्रयास तक नहीं किया। खासकर मिथिला के संस्कृत विद्वानों का तो यह परम पुनीत कर्त्तव्य था जो इस मिथ्या कलंक का प्रक्षालन करते।

ध्यातव्य हो कि राष्ट्रपति सम्मानित मेरे पूज्य पिताजी (डॉ. वैद्यनाथ झा, पूर्व विश्वविद्यालय आचार्य, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर) एक मैथिल संस्कृत शिक्षक होने के नाते अपना धर्म एवं कर्त्तव्य समझकर विगत तीस पैंतीस वर्षों से इस मिथ्या प्रवाद को निरस्त करने के प्रयास में लगे हुये थे, और अन्ततः जगज्जननी माँ जानकी की कृपा से मिथिला (जानकी जन्म भूमि) पर लगाये गये इस मिथ्या कलंक के प्रक्षालन में उनका तीस-पैंतीस वर्षों का तपस्या सफल हुआ और परिणामस्वरूप "मण्डन मिश्र श्रद्धा कुसुमाञ्जलिः" नाम का संस्कृत ग्रन्थ पुस्तकाकार हो सका। इस ग्रन्थ में मण्डन-शंकर-शास्त्रार्थ आदि के सम्बन्ध में तथाकथित भ्रामक प्रचार का निराकरण के साथ मिथिला विभूति दिगन्त विख्यात पण्डित-मण्डल-मण्डन मिश्र के यश को पुनः स्थापित कर मिथिला के संस्कृति को अक्षुण्ण रखने का प्रयास किया गया है।

*

PR-110

सद्धर्म पुण्डरीक में धर्म की अवधारणा

प्रो. एस.पी.शर्मा, अलीगढ़

प्रस्तुत शोध पत्र में सद्धर्म पुण्डरीक के जापानी चीनी और भारतीय संस्कारों के आधार पर धर्म की तुलनात्मक अवधारणा को प्रस्तुत किया गया है।

*

PR-111

गीता का भक्तियोग : भगवत्प्राप्तिं का सहज मार्ग

डॉ. नन्द किशोर ठाकुर, दरभंगा

भक्तियोग की महिमा को सर्वोपरि सिद्ध करना प्रस्तुत शोध पत्र का मूल स्थापना है। 'भज्' धातु से भाव में क्तिन् प्रत्यय करने पर भक्ति शब्द निष्पन्न होता है। इसे परिभाषित

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करते हुए भक्ति के आचार्यों में अग्रगण्य देवर्षि नारद ने अपने भक्तिसूत्र में भक्ति को परमप्रेम का प्रकर्ष माना है-''सात्वस्मिन् परमप्रेमरूपा'' (ना० भ० सूत्र-02)। वहीं नारद के भी पूर्ववर्ती महर्षि शाण्डिल्य ने अपने भक्तिसूत्र में ईश्वर में परमानुराग (सा परानुरक्तिरीश्वरे - शा० भ० सूत्र - 02) को भक्ति की संज्ञा से अभिहित किया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भक्ति को योग की कोटि में रखकर इसे ज्ञानादि योगों से भी अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। वस्तुतः भक्तियोग गीता का हृदय ही है। अष्टादश अध्यायी इस दिव्य ग्रन्थ के कलेवर में सप्तम अध्याय से द्वादश अध्याय तक भक्तियोग की परिधि मे आते हैं। वस्तुतः गीतोक्त कर्मयोग जहाँ भक्तियोग का पूर्वपीठ है, वहीं ज्ञानयोग से इसका खण्डन न होकर मण्डन ही होता है। अष्टादश अध्याय वर्णित प्रपत्तियोग भक्तियोग की पराकाष्ठा है। गीता के कतिपय सूत्रों में भक्तियोग का बड़ा ही सूक्ष्म संकेत प्राप्त होता है। 'मामनुस्मर युद्ध्य च' से लेकर 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' तक जिस प्रपत्तिपूरित भक्तियोग का निदर्शन हमें प्राप्त होता है, वह निश्चय ही भगवत्प्राप्ति का सर्वाधिक सुलभ मार्ग है।

कर्मयोग में जहाँ अन्तःकरण के कालुष्य का नाश होता है, वहीं भक्तियोग से भक्त अपने आराध्य भगवान् का आत्मानुन्धान कर कृत्य-कृत्य हो जाता है। ज्ञानमार्ग कृपाणधारावत् होने के कारण सामान्य जिज्ञासुओं के लिए सर्वथा दुष्कर है। अतएव ''मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरू.....।'' ''यत्करोषि यद्श्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत् तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरूष्व मदर्पणम्।'' इत्यादि श्लोकों में भगवत्प्राप्ति के लिए भक्तियोग की स्थापना स्वयं गायक भगवान् श्रीकृष्ण ने ही किया है।

*

PR-112

संस्कृतसाहित्य में तारकब्रह्म अथवा तारकमन्त्र

डॉ. महेश दत्त शर्मा, बदायूँ (उ०प्र०)

विश्व साहित्य में वेदों का अप्रतिम स्थान है। वेदों की रचना के विषय के अद्यावधि इदमित्थं रूप से यह नहीं कहा जा सकता हैं कि इनकी रचना किसने की है? कहाँ पर की है? और कैसे की है? अतः अधिकांश विद्वान् वेदों का रचयिता परमपिता परमात्मा को ही मानते हैं। वेद मानवीय कृतियाँ नहीं है, अतः वे अपौरुषेय हैं, वे नित्य हैं। पुरुष की सत्ता एवं पुरुष का ज्ञान-दोनों ही नाशवान्, अस्थिर एवं अनित्य हैं - ''पुरुषविद्यानित्यत्वात्'' (निरुक्त, प्रथम अध्याय, प्रथम पाद) इस कथन में आचार्य यास्क का भी यही अभिमत है। इन वेदों

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

का प्राथमिक स्वरूप मन्त्रात्मक है, जिसमें तपोनिष्ठ साक्षाद् ज्ञानद्रष्टा ऋषियों ने अपनी तपस्या से मनन-चिन्तन-पूर्वक अपने हृदय में उपस्थित एवं भावरूप में विद्यमान अर्थों की अभिव्यक्ति मन्त्रों के माध्यम से की है, अर्थात् मन्त्रों का साक्षाद् दर्शन किया है (गोप. ब्रा. 1.1.9 - "श्रेष्ठो हि वेदस्तपसोऽधिजातो ब्रह्मज्ञानां हृदये सम्बभूव", इन ऋषियों की तपोजन्य ध्यानमग्नता के विषय में ऋ. 4.10.1 का - "ऋषयो दीध्याना:" वचन भी द्रष्टव्य है)।

ऐसे मनन-चिन्तन-प्रधान मन्त्ररूपात्मक वेदों की कितनी संख्या थी? यह भी अद्यावधि विवादास्पद है। इन मन्त्रों का पद्यात्क और गद्यात्क उभय प्रकार का स्वरूप वैदिकसंहिताओं में देखा जाता है जिसको उत्तरवर्ती समस्त साहित्य का उद्गमस्थल कहा जा सकता है।

वेदों में विविध प्रकार का ज्ञान और अनेक प्रकार की विद्याओं (ब्रह्मविद्या, अग्निविद्या, सञ्जीवनविद्या, आत्मविद्या, गारुडविद्या, चाक्षुषविद्या, सारस्वतविद्या आदि) का प्रतिपादन किया गया है। परन्तु वेदों में जिस प्रकार के मन्त्र हैं और उनकी विद्वन्मण्डल में जो पवित्रात्मक मान्यता है वेदोत्तरवर्ती साहित्य में इस विषय में कुछ शिथिलता देखी जाती है; क्योंकि वैदिकसंहिताओं और उपनिषदों में प्राप्त ज्ञानसाधना और मन्त्रसाधना का उत्तरवर्ती साहित्य में पूर्ववत् स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं होता है। उत्तरवर्ती उपनिषदों, स्मृतियों और पुराणों में जिस तारकब्रह्म अथवा तारकज्ञान अथवा तारकमन्त्र के विषय में जो जानकारी मिलती है वह वैदिक मन्त्र-साधना की अनुगामिनी होती हुई भी वैदिक मन्त्ररचना से प्राय: भिन्न और दूरवर्तिनी है।

*

PR-113

अद्वैतवेदान्त की वर्तमान में प्रासङ्गिकता

डॉ. रामसेवक दुबे, इलाहाबाद

अद्वैतवेदान्त दर्शन की विषयवस्तु वास्तव में मानव को यथार्थ चिन्तन करने हेतु बाध्य करती है। शंकराचार्य ने "सत्यानृतमिथुनीकृत्यप्रवर्तितोऽयं लोकप्रवृत्ति जगद् व्यवहार:" रूप में जो मीमांसा लोकजीवन के समक्ष रखी थी, वह आज के परिवेश में सर्वथा सटीक बैठती है। चाहे गार्हस्थ्य जीवन हो, या कार्यालय, उद्देश्यप्राप्ति हो, यशार्जन हो, या धनार्जन सभी में उपरोक्त मत सटीक बैठता है। ब्रह्म एवं माया के दृष्टान्त मानव को परम सत्ता की प्राप्ति की तरफ अग्रसर करते हैं, साथ ही यह की चिन्तन करने को विवश करते हैं कि व्यक्ति को नि:स्वार्थ होकर कर्ममार्ग में प्रवृत्त होना ही चाहिए, क्योंकि लौकिक जीवन के विविध उदाहरणों से द्रष्टव्य है कि कर्म ही भाग्य का मार्ग प्रशस्त करता है, एवं भाग्य कर्म को करने को प्रेरित

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करता है। यदि ब्रह्म की तरह की आचरण व्यक्ति करना प्रारम्भ कर दे, तो शायद पुनः भारतवर्ष वही सोने की चिड़या कहलायेगा, एवं फिर से विश्वगुरु पद पर प्रतिष्ठित हो सकेगा।

ब्रह्मपरिणामवाद के सिद्धान्त के सम्पूर्ण तथ्य तभी मानव अङ्गीकृत कर पायेगा, जब उसका चिन्तन यथार्थ की कसौटी से निगमित होगा, अतएव वर्तमान काल में भी अद्वैतवेदान्त की महनीय आवश्यकता विश्व समाज को है। सम्पूर्ण विवरण शोधपत्र में सविस्तार वर्णित हैं।

*

PR-114

Divakara and Navya-Nyaya : A Critical Study

Prof. G. Narayan Swami, Chennai

In the philosophical tradition of Navya-nyaya, Mahamahopadhyaya Divakara Unpadhyaya is a great logician after Gangesha Upadhyaya. He was the grand-son of Gangesha and deserves a very important place as much as shrivatsa, Vardhmana etc.

From materials collected from various sources, it is knownthat he flourished sometimes in the 2nd quarter of 15th century A.D. He was the pupil of vardhamana Upadhyaya, who was the brother of his father Shri vatsa Upadhyaya. His most valuable commentaries on Navya-nyaya, Vaisheshika philosophy and other intellectual studies are not yet published.

Divakara, his commentary on Anumana Khanda of Tattvachintamani is a very distuguished work in the literature of new logical school (Navyanyaya). Anumiti and other allied subjects are discussed by him in this commentary, which eventually remain unclear still in the previous works.

A humble attempt is made in this paper to discuss some of those points. The text of Divakari or Mani-vivriti is under constuction. The little part of this text is following :--- pratyakshapramanopajeeva- katvat... anumana- pramanam niroopyate....adhikam tu prakashenusandheyam... .

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-115

The concept of Brahman in Ṛgveda and Early Upaniṣads

Dr. Dharmaraj Adat, Kalady, Kerala

Brahman is the pivotal concept in Adaita Vedānta. It is nirguṇa, the only one truth, the absolute eternal and the ultimate reality. According to them we cannot define it. It is beyond the reach of speech. The whole of idealistic thinking in India consider Brahman as their integral part. All most all the philosophies in India enlisted as vaidika or Āstika proclaims their indebtedness to the Vedas. Among the Vedas the prominent one is, of course, the *Ṛgveda*. As a usual practice all the idealistic philosophers claim their fundamental concepts to the Vedas. Regarding the concept of Brahman also they argue as originated in the Vedas. But if we analyse the pre-history of the concept of Brahman. we can see the fact that such an interpretation and theories arround it are often based on considerations extrinsic to the strictly Vedic tradition. Even though the Vedic poets, the early composers and reciters of the Vedic verses used the word Brahman along with its derivatives not less than 232 times in the *Ṛgveda* itself, it is not the above mentioned ideas that provoked their minds. In order to understand their mind, the social condition in which they lived in is to be analised critically and objectively.

❋

PR-116

The Concept of Tapas and Indian Theology

Dr. Asha Goswami, Delhi

The Ṛgveda seems to plunge first into providing the ancient Indian imagery of the notion of Tapas in the form of double connotation implying primarily 'the sence of heat or energy' and secondarily 'of the thought of creation or the creative fervour.' Next, similar to the Ṛgvedic concept of Tapas, the later sources like the Atharvaveda & the Bhagavadgītā too be ascertained to retain both the significations of the notion Tapa e.g., (a) willful thought of creation and self reflection on the plan of creation of the world conceived by the Supreme Brahman, symbolized as the heating phenomena of the Sun disciplines like concentration of the body, senses and mind.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-117

A Tryst with the Divinity

Dr. Uma Deshpande, Baroda

In this paper an attempt is made to shed light for the first time on the valuable contribution made by H.H. Raṅga Avadhūta (P.V. Valame) to different branches of Indology.

He was a celebrated scholarly saint (1898-1968 AD.) who elucidated several aspects of Indian culture through his discourses, poems and prayers written in different Indian languages like Sanskrit, Marathi, Gujarati and Hindi.

Replete with moral and philosophical contents, these compositions are endowed with charming literary beauty, devotional fervour as well as ethical guidelines. Apart from the metuphysical explainations his books also depict practical philosophy following which a person can attain worldly delight and spiritual enlightenment.

*

PR-118

The Bhagavat-Gītā --A New Scientific Approach

Dr. Parvati Banerjee, Varanasi

The Bhagavad-Gītā is an integral part of the Mahabhārata (Bhīṣmaparva, 25-42). It is a part which stands for the whole. It epitomises the life seen steadily and seen as a whole. The Gītā as the epitome of all philosophical science and knowledge has unveiled the ultimate truth. The Gītā can fill-in the gap found out in the realm of scientific investigation. In describing God, as the creator of this universe, the Gītā has revealed the mistries of God's creation as a sample of his lila. In order to give true identity of God, we should rely upon the Gītā on Godhood and the mistries of His creation with its critical examination with reference to the light of modern scientific discoveries. The Gītā is the chief source of inspiration and guidance for scientific investigations and formulation of various theories of modern scientists.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-119

A Glimpse into Sṛṣṭibhedavāda

Dr. Sunanda Y. Shastri, Ahmedabad, Gujarat

Sṛṣṭibhedavāda of Śuddhādvaita sect expresses the gist of its philosophical thought. The Supreme Brahman has become world and the individual souls by its own will. Sṛṣṭibhedavāda has elaborated and explained how the will of the Supreme Self has reveals its Līlā through different names and forms. Any name, form and Karma revealed (आविर्भाव) without concealing any of the three divine aspects -Sat, chit and Ānanda, is Ādhidavika (Supernatural). The Supreme self can reveal these divine aspect wherever and for whoever 'It' wills. The will of the supreme self has no limitation of time and space. This paper endeavors to highlight the different aspects of सृष्टिभेदवाद.

❋

PR-120

Divakara and Navya-Nyaya : A Critical Study

Dr. Satchidanand Mishra, Sagar (M.P)

Mahamahopadhyaya Divakara Upadhyaya, a prominent representative of new logician school of Mithila, was a contemporary of Mm. Pakshadhara Mishra.

From the abundance of manuscripts it is known that his commentary (known as vivriti on the Avayava section of Tattvachintamani was very popular in the Mithila region. The full text of the commentary has been restored and edited by the present scolar and the publication of it is in the process.

It is at least from the next of Divakara that we come to know the exact notion of Gangesha on the points of Navya-nyay. Divakara is unbiased and faithful to the original and as such his interpretation has become all the more important for preservation of the tradition set by Gangesha. The vivriti is penetrating and elaborating.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-121

Divakara : A Critical Study

Dr. Amarnath Pandey, Lucknow

In the Indian tradition of Navya-nyaya Philosophy, Mm. Divakara Upadhyaya was a great logician. After the Gangesha Upadhyaya he belongs to the same family and a very important place as much as Vardhamana and others. From various sources his date was approx. 2nd quarter of 15th century A.D. and was the pupil of Mm. Shreevatsa Upadhyaya and Mm. Vardhamana Upadhyaya. His most valuable commentaries on Navya-Nyaya, Vaisheshika, Mimamsa Philosophy and other intellectual studies are not yet published.

His Tattvachintamani's Commentary on Anumana Khanda was very distinguished work. Anumana, Anumiti and other parts are discussed by him in this commentary which are not so clear in his pre-commentaries. I will try to discuss these things. In his commentary on Vivriti (Divakari) this part of text reads :-- pratyaksha-pramanopa-jeevakatvat...anumanapramanam niroopyate... adhikam tu prakashenusandheyam...

*

PR-122

Prof. R.D. Ranade's Philosophy of Mysticism

Dr. N.V. Kulkarni

Prof. R.D. Ranade was born on 3rd July 1886 at Jamkhandi, Karnataka, India. He passed his M.A. (Philosophy) from the Bombay University, standing 1st in the University and winning the Chancellor's Gold Medal in 1914. He had already started his spiritual journey from 1901 and followed it continuously. Gurudev Ranade was a mystic philosopher. He considered:

* The philosopher's supreme business is to bring about peace and harmony in the society, the state and the world at large.
* When a philosopher speaks about his spiritual experiences he is neither a Hindu, nor a Muslim, nor a Christian, he is a citizen of the world and as a matter of fact a citizen of the 'spiritual world'.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

* The philosopher endeavours to realize the nature of the Ultimate Reality for himself and to see this is spread out into the society.

* The Mystic may be Philosopher but is not necessarily so. His mystic experience is sufficient for his own elevation into Divinity; but if he philosophises, he may raise thinking humanity into a Divine Kingdom of Ends.

❋

PR-123

The Doctrine of Bhāvādvaita and its place in the System of Advaita Vedānta

Dr. Sujata Purkayastha, Gauhati

The system of Advaita Vedānta teaches the truth that the world of multiplicity (*prapanca*) has no reality, it is non-existent (abhāva) from the transcendental point of view. The Śruti texts also declare the negation of the world in clear terms. The Advaita Vedāntins also uphold the view that the realization of Brahman destroys avidyā or nescience, the root cause of world-appearance. According to Maṇḍana, these two, viz., the removal of avidyā (*avidyānivṛtti*) and the negation of the world (*prapancābhāva*) are the two negative realities, which exist along with *Brahman*, the positive Absolute. These negative realities do not come in conflict with the monistic idea of Advaita Vedānta, since no positive (*bhāva*) reality other than *Brahman* is accepted here. Maṇḍana also asserts that there are only two negative realities, viz., *avidyānivṛtti* and *prapancābhāva* which are not destroyed by Brahman-realization. Hence, their existence, along wth Brahman cannot be denied.

❋

PR-124

Influence of Vedanta on Indian Life

Dr. C.A. Shaila, Karivattom, Kerala

Vedanta Philosophy in one or another form is closely connected with the religion of India. It deals with the religious and philosophical speculatins of the

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Upanisads. The principal Upanisads, the Brahmasutra and the Bhagavatgita forming the basis of Vedanta. Inorder to be able to account for what seem to us mere sparks of thought mere guesses at truth, we are driven to admit a long familiarity with philosophical problems before the time that gave birth to the upanisads which we possess. We can see that the Indian mind being nourished through ever so many channels all starting from a vast accumulation of religions and philosophical thought. Religion should contain everything one might expect good life. The elementary duty of religious faith is that it may lead individuals towards the freedom of soul or spiritual happiness. The Social reformers of India believe that the task of religion is to guide man in his spiritual and moral development. Physical and Spiritual betterment should result from religion. Self determination, self realization and self integration was the hall marks of a good life. Happiness is the Universal aim of life. True happiness of human beings lies not in the possession of out ward thing but in the fulfilment of the higher mind spirit, in the development of what is most inward in us.

*

PR-125

Contribution of K.M.Jha to Navya-Nyaya Philosophy

Dr. Naveen Chandra Mishra, Surat

Mm. Krishnamadhava Jha is undoubtedly one of the strong pillars of modern Sanskrit philosophy, He is well known for his two works i.e. Paramalaghu manjusha-tattvaprakashika and Alamkara-vidyotanam, but some other works in Philosophy are ascribed to him. Siddhantalakshana-subodhini is one of them.

K.M.Jha was a teacher in Nyaya Philosophy for thirty-five years in JBM College at Mumbai. This institution was established by Gokulanatha ji Maharaja of Mumbai for promoting Sanskrit studies. Though Krishnamadhava Jha was a teacher in Navya-nyaya but inother branches of Sanskrit studies also. The saying ''Kanadam paniniyamcha sarvashastropakarakam'' is very true as far as KMJha in concerned. The thorough knowledge of Navyanyaya helped him tomaster over other Shastras also. He has written fifty short poems in sanskrit about the categories of Nyaya Philosophy.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

In this paper an attempt has been made to assess the contribution of Mahamaho, Krishnamadhava Jha. In this article a close-study also of this treatise is made. We have tried to attempt a critical and comparative study of the same.

❋

PR-126

Russell and Sabara on Meaning

Bhupesh Sharma

The realistic approach towards philosophy of language, as well as meaning is such that words refer. But the referent needs not always be something like physical object; it may even be a concept, a law and so on. The problem of meaning which is central to the philosophy of language has been approached in the above mentioned style by English Philosopher Bertrand Russell on 20th Century. In Indian realistic tradition in Pūrva-Mīmāmsā Sabara held that even when word refers to thing for its meaning, it infact refers to some form which is universal and this universal form constitutes meaning. These two views of Russell and Sabara are very close although Sabara is ancient but Russell is contemporary. Therefore a comparative study of the two views has been attempted.

❋

PR-127

Epithets of Agni in the Apri Hymns : A Study in the Light of Sri Aurobindo

Jagamohan Acharya, Vani Vihar

Veda gave us an image of spiritual and psychological experience. The European scholars have developed their interpretation with the commentary of Sayana as their base. Sayana's interpretation is ritualistic where as the interpretation of the west is more materialistic. Swami Dayananda gave multi meaning of the roots in the Sanskrit language. He has tried to show that God has the existence of different gods in due to his power. Sayana attempts to preserve the traditional interpretation in his time. Sri Aurobindo has propounded a new interpretation based on psychological, symbolical, metaphysical and philosophical justification.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

These in their own line also explain the Epithets of Gods. Agni is the chief terrestrial deity personification of the fire of the sacrifice, which is center of ritual poetry of the Veda. Some epithets of Agi exhibit a semi-independent character. The apri sukta is traditionally recited in the agnistoma rite. They are all invoking through the mouth of Agni. The epithets of Agni in the apri sukta like tanunapat, narasamsa etc have been traditionally interpreted Sri Aurobindo's interpretation are noteworthy. The present paper wills high thought the significance of Sri Aurobindo interpretation that is a new light in the Vedic tradition of interpretation.

*

PR-128

The Concept of Devotion in the Neo-Vaisnavite Srimanta Sankardeva's Philosophy

Dipika Roy Medhi, Guwahati

The Vaisnava movement initiated by Srimanta Sankardeva, the versatile dynamic personality, socio-cultural reformer of Assam, not only brought about an innovation in religious life but also heralded the advent of a socio-cultural renaissance in the sixteenth century Assam. Sankardeva followed the Srimadbhagavadgita (the necter of Upanisads) and the Bhagavata Purana, as the basic spricptures of his teaching by which he could glorify devotionalism to the core.

Vaisnavism preached by Sankaradeva is called eka-sarana-nama-dharma which is supreme devotional surrender to one, i.e. Lord Narayana-Vishnu-krishna whose name is Rama, Hari and thousand more. Sankaradeva had endowed a simple, loving and liberal religion which is shorn of the rituals, bloody sacrifices and superstitions. To the Sankaradeva's Mahapurusiya devotion Krishna is the source, the sustainer and the destination of everything of the universe. Vaisnavism of Sankaradeva is uncomprising in its attitude against the worship of other Gods & Goddesses. The individual souls and the innumerable worlds are the expressions only of a tiny fraction. The world is Gods creation where the creator is hidden due to his own maya. Through only devotion the individual self with his naratanu will get rid of earthly suffering. Ignorance is the root cause of sufferings. For Sankardeva ignorance is one's ignorance of identity as a part of God.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-129

The concept of *ŚARĪRA ŚARĪRI BHĀVA*

Acharya Varadarajan R, Vadodara

Rāmānujācārya explains, the association of the individual soul and the non sentient, of the individual soul and the non sentient, with Brahman, as a body, associated with soul. It is termed, as, the concept of śarīra śarīribhāva. To claim the support from the books of prasthānatrayī i.e. the upaniṣads, the brahmasūtras and the gītā, He interprets them, in the light of śarīra śarīribhāva.

He begins with the rejection of some corporeal concepts, in the ophorism (sutra), ''apītau tadvataprasangadasmaṅjasam'' Br. 2.1.4. And, explains the concept of the body as,

''yet cetansya yadravyam sarvātmanā svārthe niyantum dhārayitum ca śakyam, tatcceś esteikasvarūpam ca, tat tasya śarīramiti śarīralakṣaṇamāstheyam''

Br. Rama.2.1.9

Claiming support from the Bṛhadaranyak upanisad, he quotes, the antaryāmi Brahman, where, the earth, as well as, the individual soul etc. are refered to as the body, sarira of Brahman. The upanisad further states:-

'yaḥ pṛthivyām tiṣṭan - yasya pṛthivi śarīram, 'yo vijnāne tiṣṭan - yasya vijanānam śarīram', and 'yaḥ ātmani tiṣṭam - yasyātmā śarīram',

He also interprets the statement, tattvamasi of chandogy upaniṣad, in the light of sarira sariribhave and proves that, the words, 'tat' and 'tvam', both refer to Brahman

The support of brahmasūtras, is claimed by commenting on the sūtras viz 1.1.1 etc., and the concept of body referring to Brahman, is also explained.

Lastly, also claiming the support of the Gītā explanation of the concept of the body, is elaborated and the verses are commented, in that light. Thus, the concept of sarira sariribhava, is advocated as supported, by all the prasthānatrayas.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-130

Concept of social Evolution in Aurobindo's Metaphysics

Dr. Nabanita Das, Gopalgaon, Balasore, Orissa

In his metaphysics, the approach is scientific but the conclusion is spiritual. Absolute, the ultimate reality dwells in matter and there is evolution of matter to Brahman. Sri Aurobindo points out that matter contains life and life contains mind. The scientific reality so transformed into spiritual reality. The evolution is spiritual in order to visualize a state of unity and identity. The concept of ideal social order of Sri Aurobindo is rooted in the absolutistic metaphysics of Vedanta. He presents a view of ideal society and social evolution, which is inline of the realism of the divinity in every walk of life. Sri Aurobindo is an ardent votary of spiritualism, but he himself has negated the polarities of absolute spiritualization. So it has been necessary to examine two alternate standpoints of social change, i.e. Sri Aurobindo's metaphysics and the metaphysics of Karl Marks. Sri Aurobindo's ideas in explaining the social evolutionary process is significant as he says that different parts of reality like matter, life, mind and supermind are integrally related. The model of a social developent, as conceived by Sri Aurobindo, is a universal one, which explains in its own way the evolution of man, spirit and society.

*

PR-131

Moksha a critical study with reference to Samkhya philosophy

Pankaj Sharma, Guwahti, Assam

The concept of liberation occupies an important place in the Samkhya philosophy. Liberation is understood in the sence of complete cessation of universal pain without a possibility of return. In this context Samkhya speaks of three kinds of pain, which are to be permanently removed. Liberation is understood negatively as 'freedom from ', and not as 'freedom of'. Ignorance of non-discrimination between Purusa, the self and Prakriti, the matter in short, the ignorance of the ultimate reality. Liberation, therefore, is possible through knowledge which Samkhya speaks of is not ordinary knowledge. It is the discriminative knowledge between Prakriti and

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Purusa. Bondage and liberation,therefore,refer to the conjunction and disjunction of Purusa and Prakriti, resulting from none ûdiscrimination and discrimination and this process is only phenomenal since self is not touched by it.

Samkhy believes liberation is both in life in this world or emancipation of the soul while living in this body and liberation after death of it's body or emancipation of the spirit from all bodies.

Though from the point of view of speculative philosophy Samkhy view of liberation lacks some important points yet it can flow us rays of hope for attaining freedom from universal sufferings the practical end.

*

PR-132

The philosophy of Śrī Nārāyaṇa Guru

Dr. Kalyani Kutti Ponnatu, Maduari

Śri Nārāyaṇa Guru was unique in being gifted with a penetrative intellect coupled with a comprehensive vision. A versatile scholar in Sanskrit. Malayālam and Tamil and endowed with deep insight into most schools of Indian thoughts, Śri Nārāyaṇa Guru shaped himself into a spiritual preceptor of a very high order. In his spiritual life, he found his sympathies inclining towards the society down-trodden and a purpose taking shape in him to uplift them from their social and consequently spiritual degradation. The study reveals the concept of Śri Nārāyaṇa Guru's philosophy.

*

PR-133

The means of knowledge in the Sāṁkhya system

Dr. P. K. Sasidharan Nair, Maduri Tamil Nadu

Means of cognition is that through which things are cognised. The said means comes to be recognized as the instruction on right cognition. This represents a mental cognition free from the contact of all that is either doubtful or wrong or unknown; what is brought about by the instrument is right cognition in the form of

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

an apprehension by the human agent, and that which leads to such right notion is the means of cognition. Thus the means of cognition becomes differentiated from all that leads to wrong notion, viz., doubt, misconception, remebrance and the like, which are not the 'means of right cognition. Pramāṇa is a mental function which leads to correct knowledge; to achieve this object; it should be from doubt and error and should relate to what is not already known. Three pramāṇas or measure are so called because in the same way is in common life grains are measured by measures such as a prastha, and sandalwood, etc., weighted by a balance, the tattva also, the principles, the bhāvas (their modifications) and the bhūtas, elemental substances, are measured or proved by the pramāṇas. require little explanations they have been fully examined. Still each system of philosophy takes its own view of them and the character of each in more or less determined by the view taken of the real nature of knowledge.

Pramāṇa is the instrument of the means of pramāor valid cognition which produces pramiti, that is accurate knowledge, now or pervious unacquired and has its content uncontradicted and karaṇa is conceived as the unique or special cause through the action of which a particular effect is produced. Different views are expressed by the divergent schools of thought in India as to weather cognition guarantees the validity itself or it acquires its validity by conditions extraneous to it. The Sāṁkhya holds that our knowledge can be accepted as valid only when it is got through the recognized means of knowledge. The present study discusses the concept of nature of knowledge in the Sāṁkhya system.

*

PR-134

Concept Obstacles to Samādhi in the Yogavārttika of Vijñānabhikṣu

N. Sivamikkani, Maduri, Tamilnadu

Patañjali, the great master of the yoga system, calls these pieces of mind as vṛttis, modifications, which are ever arising and never subsiding. Yoga or union (yuj =to yoke)of individual self with the Supreme self with result through yoga or Samādhi, (yuj = to get smādhi or perfect concentration) when these vṛttis are controlled, supressed and eliminated, by the right kind of discipline and training.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

This discipline and training is also yoga. The Antarayas are nine (vide yoga Sūtras I.30): Vyādhi (disease), Styāna (mental laziness), Saṁśaya (doubt), Pramāda (heedlessness), Ālasya (physical laziness), Avirati (absence of dispassion), Bhrāntidarśana (false perception), Ālabdha-bhūmikatva (non-attainment of yogic states)and Anavasthitatva (falling away from yogic states when obtained. The present article examines the concept of obstacles to samādhi pertaining to Antaryas.

*

PR-135

The philosophy of Sri Chattampi Swamikal

V.Radhakrishnan Nair, Maduri

Sri Chattambi Swamikal acquired deep erdition both in Vedanta and Saiva Siddhanta. It was Sri Chattambi Swamikal who had brought about the synthesis of yoga and Vendanta darsansas and thereby formed the new system of Thirthapada Sambradayam. The Thirapada Sambradayam is a harmonious blending of Advaita of Sankara and the Saiva Siddhanta of south India. He estblished yoga- Jnana system in Kerala through his teaching and through the ôThirthapada Sambradayam''. Theory and practice are the two aspect of every branch of knowledge. He says that life gets enriched as Atman is known. Yoga is none other than living the life abundantly. Yoga is the science of self culture. By the practice of yoga mind grows in purity. To the purified mind the concept of Atman becomes progressively lucid. This is how jnana and yoga mutually aid.

*

PR-136

Devottee, Devction and reality in the Yoga system

R. Surendranath Thamburaj, Maduri, Tamilnadu

Individual self is identical with the supreme self. Brahman the one without beyond attributes without parts, subtle, absolute and taintless there is no duality what so every in it. The individual soul is, no doubt brahman for the simple reason that there is nothing but brahman is not the individual soul which in its present state in personal that is conditioned and phenomenal. Soul is generally accepted as an

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

eternal and permanent principle. All orthodox schools agree that soul is essentially pure and it is never effected by any kind of worldly impurities. There is how ever no universal agreement among the different schools or Indian philosophy regarding the phenomena that is knowable by the senses but is conceivable character of ātman.

*

PR-137

The phases of Sabījasmādhi in the yoga system- A conceptual Analysis

T.S. Kumaran, Madurai-India

The phases of sabījasamādhi are for viz. Savitarka, nirvitarka, savicara and nirvicāra. At first, the saviarka is discussed. When the mental field is purified, it can accurately reflect whatever is presented to it.At this level, while thought transformations persist and the mind is not yet perfect tranquil, contents of mental field are intermingled. The thought transformation is since being intermingled with the option of word, object and idea, there can be confusion due to subtle, incessant thought process which are driven by the forces of unconscious impression. This intermingled thought transformation is called supposional. Śabda refers to the knowledge of the word and is not considered any way. 'Artha' refers to the true knowledge of the object or its real meaning. 'Jñāna' refers to the common knowledge based on the cognition of the sense organs. Being unable to distinguish the difference between these three, the mind hovering between them is called Vikalpa or inference.

*

PR-138

Yama and Niyama in a new perceptive; a study based on the yogasūtras of Patañjali

P.P.Sudarasan, Madurai, Tamilnadu

Yoga is more than just a physical discipline It is a way of life, a rich philosophical path. It is vital for man, for his mental and physical health, his efficiency, his creativity, and the self-actualization of his hidden genius. In the Aṣṭāṅga yoga

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

given by Patañjali, the first two limbs constituting yama (restraint and Niyama (self-discipline) are most important without which the practice of āsana, prāṇāyāma, pratyāhāra, dhyāṇā, dhyāna, samādhi will not yield any positive results. The Yamas and Niyamas are ten good guidelines for leading a healthier, happier life for bringing spiritual awareness into a social context. It is my aim to study the concept of Yama and Niyama on the basis of Patañjali yoga sūtras.

*

PR-139

Vākya Vṛtti- A study

A. Srividya, Madurai, Tamilnadu

Śrī Śaṅkara who is considered as one of the greatest philosopher sages in India is the first to systematise the doctrine Advaita Vedānta. The Vākyavṛtti which is attributed to Śrī Śaṅkara is a masterpiece on the Advaita Vedānta. It gives an explaining the import of the axiom of identity, tattvamasi (that art thoug). This axiom is the corner stone of the Advaita Vedānta. This book is especially meant for those who persue the Vedāntic discipline eventually to be established in the truth of identity and the ineffable peace. 'Tat tvam asi,' is the great formulation that Śrī Śaṇkara disclosed to the world from his study of the upaniṣads and spiritual experience. When the disciple is well prepared and well disposed in mind, the guru, imparts to him the esoteric teaching 'tat tvam asi' 'you yourself are Brahman'. There is an experience in which you will see your soul Ātman (in the parāmātman). In the present article effort is made to study the various tents dealt with the Vākyavṛtti.

*

PR-140

Steps to the attainment of knowledge-A steps based on the Aparokṣānubhūti

N.Mohana, Maduari, Tamilnadu

Aparokṣānubhūti is one of the most important work of Śri Śankarācārya on Advaita Vedānta according to which a competent student is an aspirant who, by studying in accordance with the prescribed method, the Vedas and Vedāngas, has

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jaipur. Digitized by eGangotri Foundation USA

obtained a general comprehension of the entire Vedas, who being absolved from sins in this or in a previous life by the actions known as Kāmya and niṣiddha and by the performance of actions called nitya and naimittika as well as by penance and, devotion has become entirely pure in mind and who has adopted the four sādha nas or means to the attainment of spiritual knowledge. The basic teaching of Advaita is the direct method of realization of Brahman, which is not worship, but the path of knowledge consisting in having the instruction of a teacher, reflecting on its meaning and meditation on truth with single-minded devotion. Philosophical discrimination (viveka) and renunciation of the unreal (vairāgya) constitutes for Śankara the basic discipline for the realization of Brahman. The Aparokṣānubhūti gives four preliminary qualification for the attainment of knowledge which are.

❋

PR-141

Madhva Vedanta Mein Jagat Ka Swarup

Vimalesh Kumar Thakur, Delhi

Jagat (i.e., the objective world) is in real in Madhva-Vedānta. The question is how will we establish the reality on the objective world (Jagat)? Here, we have some points. We people experience things differently; either we have true experience or false experience. The experience of a flower as flower is true experience, whereas the experience of a rope as snake is false experience. Therefor the snake is not real. In Madhva Vedānta, a 'Real' is a defied as that which is not super imposed that which is not sublated later. So Abadhyatva or non-sublation is a crieria of reality. This is epistemological criterion. In Davita, as it is. Therefore objective world is real.

❋

PR-142

The concept of Devotion in The neo-Vaisnavite Srimata Sankardeva's philosophy

Dipika Roy Medhi, Guwahati

The Vaisnava movement initiand by Srimanta Sankardeva, The versatile dynamic personality, social-cultural reformer of Assam, not only brought about an

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

innovation in religious life but also heralded the advent of a social-cultural renaissance in the sixteenth century Assam. Sankardeva followed the Srimadbhagavadgita (the necter of Upanisads) and the Bhagavata Purana, as the basic spriptures of his teaching by which he could glorify devotionalism to the core.

Vaisnavism preached by Sankaradeva is called eka-sarana-nama-dharma which is supreme devotional surrender to one, i.e. Lord Narayana, Vishnu, Krishna, whose name is Rama, Hari and thousand more. Sankaradeva had endowed is a simple, loving and liberal religion which is shorn of the rituals, bloody sacrifice and superstitions. To the Sankaradeva's Mahapurusiya devotion Krishna is the source, the sustainer and destination of everything of the universe. Vaisnavism of Sankaradeva is its attitude against the worship of other Gods and Goddesses. The individual souls and the innumerable worlds are the expressions only of a tiny fraction. The world is Gods creation where the creator is hidden due to his own maya. Through only devotion the individual is the root cause of sufferings. For Sankardeva ignorance is one's ignorance of identity as a part of God.

*

PR-143

Human Welfare in Bhagavad Gītā

Suneti Mishra, Cuttack

Bhagavad Gītā is the essence of Vedānta or all the Upaniṣads.

The vedantic knowledge delineates the philosophy of the Vedas. This philosphy is expounded in the lineage of guru and śiṣya. The Upanisadic episodes highlight the realistic concept of the individual soul and supreme Brahman. Considering the factors of resurrection, the cause and effect etc., the royal road of human goal has been chiselled in the line of perpetual devlopment of merits or puṇya. The individual soul installed in the corporeal frame of human body earns merits or demerits according to its involvement in the illusionary aspect of the world.

Bhagavad Gītā deals both in cosmic macroscopic vision of the world by demonstrating the cosmic form of the lord and at the same time the microscopic vision of the intrinsic world or the atomic installation of the lord everywhere in

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

every subject and object. This vision annihilates the ignorance and illusion of human being and makes man free from all sorts of passion and infatuation. The strong attachment or the bondage is released and man attains mental equilibrium.

*

PR-144

Pholosopher - Kings of Mithila

Gangadhar Jha Shastri, Mithila, Bihar

'Sruti Bibhinnāh Smrityor bibhinnāh', then, what should be the philosophy of our lives? Mahajano jengatah sa panthah'.

Greek Philosopher Plato had given the concept of Philosopher-king but that was an utopean conception. Mithila region of Inidan has got a long tradition of 54 real philosopher kings called Janaks (Mahajan) or Videhas. Moreover, out ot 6 fundamental Indian philosophies, 4 are the products of this region. In addition to that Buddhism and Jainism were also born here.

Ānobhadrāh Kratbo Yantu Viswatah.

Let noble thoughts come to us from every side, so, with large heartedness and broad mindedness Rigvedas teach us that human development must be the fundamental point of all the philosophies of the world. We see that western philosophies were born in the Greek city-walls, where as Indian philosophy flourished under the wide sky and sacred environment of forests. The mango-groves of Mithila have got very significant contributions.

In the Indian sub-continent between the Hymalyas, the Ganges, Narayani and the Kosi rivers, Mithila region was an ideal country renouned in the world for its philosophical ruling. Janakpur was its capital for a very long time.

Let us see the following long list of 54 Philosopher kings of Janaka-tradition of Mithila ....

1. Nimi 2. Mithil 3. Udabasu 4. Nandiwardhan 5. Suketu 6. Deorāt 7. Brihadrath 8. Mahābirya 9. Sudhrite 10. Dhristketu 11. Haryaswa 12. Maru 13. Pratipak 14. Kirtirath 15. Deomirh 16. Vidhrit 17. Mahadhriti 18. Kirtirat 19.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Mahāroma 20. Swarnromā 21. Haraswaromā 22. Siradhwaj (The father of Sri Janki ji) 23. Kushadhwaj 24. Dharmadhwaj 25. Kritadhawj 26. Mitadhwaj 27. Kesidhwaj 28. Khandikya 29. Bhanumān 30. Satyumn 31. Muni (Shuchi) 32. Sandhwaj 33. Urdhyaketu 34. Purujeet 35. Aristname 36. Srutayu 37. Suparswak 38. Chitrarath 39. Kshemadhi 40. Samrath 41. Satyarath 42. Upguru 43. Upgupt 44. Waswanant 45. Yujudh 46. Subhāsan 47. Srut 48. Joy 49. Vijoy 50. Rit 51. Sunak 52. Beet Habya 53. Dhriti 54. Bahulaswa.

*

PR-145

A Discussion on Adhyāsa

Dr. Sumita Chaudhry, W.Bengal

The propounder of Advaitavedānta announce that Brahman, the Unqualified Supreme Self is the Absolute Reality. Brahman is one and without a second. Saccidānanda is the svarupalakṣaṇa of Brahman while the taṭasthalakṣaṇa empasises that Brahman is the cause of creation, sustentation and destruction of the world. Now comes the question how the Unqualified Self can be established to be the cause of this world. The Advaitins solve this problem by stating that Brahman being shrounded by Nescience appears to be the cause of the world. Nescience is the cause of superimposition.

Vacaspati Misra while referring to various types of superimposition (adhyāsa) like pītaśaṅkhādhyāsa. Diṅmoha, atātacakra etc. has given an elarborate exposition on pītaśaṅkhādhyāsa. Lastly Vacaspati expresses his view in favour of accepting pītaśaṅkhādhyāsa to be a type of tādātmyādhyāsa.

*

PR-146

Summary of Bhartrihari Nirvedam

SVR Murthy, Puri

It is a Sansrit drama written by Maha Mahopadhyaya Hari Har. It's plot revolves around the main characters of King Bhartrihari, Queen Bhanumati, Minister

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Devatilaka and Ascetic Goraksha Natha, the chief exponent of 'Hatha Yoga' and the very incaranation of Lord Shiva. The plot unveils with the anxiously looking upon Bhanumati waiting for the protagonist, King Bhartrihari, who disappears temporarily with out informing her. On his return, he tells her that he has gone to the banks of the river Ganges on a notice of astrologers about some impending perils in future and there he has performed the required rites to appease the planets to avert the dangers of future. After that, he leaves for hunting along with the waiting solidiers, leaving his queen in sorrow. The climax reaches when he tried to test her love for him. He sends a false message to her about his death in hunting. The queen dies when she riceived the news. The grief-stricken king curses himself for the tragedy. The denouement begins with the arrival of the ascetic Gorakshnath Baba. He sends the king into 'nirvedam'. The king's detachment is so strong that even the resurrection of the queen hadn't changed his mind. In the end, he hands over the kingom to his minor son with the Minister Devatilaka dn the queen as the minor king's guardians. This drama has an underlined moral of the mutual love and faith between husband and wife.

*

PR-147

An Essay on Suicide with Special Reference to G.R. Malkani and Aurthur Schophenhauer

Dr. Sumitra Purkayasthu, Jorhat

The word 'suicide' means killing oneself intentionally. A person who dies by his won hand knowingly is said to have committed suicide. It is different from mercy killing since here the person kills himself inten-tionally. On the other hand, in the case of mercy killing, the killing is done by others with the consent of the person who is being killed.

The problem of suicide has been thoroughly discussed by different philosophers as well as the psychologists of modern times. Many ancient philosophers and religious leader have condemned suicide as a sin against God or against society. The contemporary Indian philosopher Prof. G.R. Malkani contends that suicide, though requires courage, should be condemned by human society. He is of the opinion that a person who commits suicide is actually doing an offence towards

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

himself and also towards the society. Life is the means to acquire values of life. If the life is no longer there, attainment of values in life by an individual is out of question.

Aurther Schophenhauer, a philosopher of nineteenth century also condemned suicide in some of his writings, viz., ''The world as will and Ideas'' and ''On Suicide'' etc. He regards sucide as an error. It can give only an apparent release form worldly sufferings.

*

PR-148

The theory of Atman as conceived by Sri Sri Thaku Anukulachandra; Fulfiller the best

Dr. Niranjan Mishra, Jharakhanda

''Atman'' is the very kwy-notion for understanding Brahman and so has importance in Indian philosophy. Attempts made so far to define it, but a clear definition could not have been established, only some attributes, adjectives composed to understand 'Atman'. Atman is described as eternal, all-pervaisve, stable, immovable and not destroyed, cut, or dried, but what does Atman mean-is not clearly stated.

Sri Sri Thaku Anukulachandra; the purusottam of the age attempts to define the term Atman in a noval way. According to Him Atman is defined as below-

-Atman is the eternal go of life.

-The inner moving attraction is Atman-which is ever-moving through various leading rounds.

-The ever-moving being is Atman.

-The imperishable power of the practical knowledge that which is evergoing towards the infinity through endless time and edge is Atman.

The imperishable power of practical knowledge, ego, being, life-urge-all these accepted as Atman in the ideology of Sri Sri Thakur. The ego of which whatever maturity has been attained and is going on attaining is Atman.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आत्मन् is derived form the root : अत् and it means 'to go'. Sri Sri thakur's definition is supported by the etymological derivation.

❋

PR-149

Priestess in Mannarassala-A Rare Specimen of Serpant Worship in South India

Dr. Anand Dilip Raj, Kerala

Serpant worship of *Naga* worship is one of the ancient forms of worship in the world. Many living traditions of this adoration are still surviving in South India. In that part of India, each and every village has a particular place to worship *Naga*, usually at the foots of holy trees like *Asvkta, Vilva, Neem* etc. As important members of Hindus pantheon, *Nagas* are worshipped with great piety. Many serpant shrines, contains huge Anthills or termite mounds as their sanctum. The Anthills are often worshipped as *Valmikesvara*. Many oral narratives of serpants like, holding the "*Nagamanikya* on their head, the power of them to curse, their divine capacity to give children are eugolished by traditional singers the "*pulluva's*" in their *veenas*.

Nagarajasvami temple at *Mannarassala* in Alappuzha district of Kerala, is one of the important temples of serpant worship. Many stories are circulated as the myth of origin of the temple. One is the story of burning *Khandavana* pictured in *Mahabharatha*. The other is related to the *Parasurama*, who is said to be the creator of the Kerala. The temple is traditionally related to *Erinjalappalli Illom*, a *Namboothiri* Brahmin family. It is belived that the serpant king *vasuki* was born as the child of a couple there. So only the senior daughter-in-law of that family is permitted to perform puja in the *Nilavara*, the sanctum sanctorum of the temple. The women who has ordianed as a priestess, should have practice strict celebacy and penance. She is called as "*Valiya Amma* (Divine Mother or Great Mother)". All the important pujas of the temple like *Mannarassala Aayilliom, Sarpabali, Noorumpaalum, Pallipaana* and *Gandharvan paatu* are performed under the headship of the great mother.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-150

Bhakti in Jagaddhar Bhatt's Stuti Kusumanjali

Brijnath Watal Betab, Delhi

Bhakti to common man's understanding is obeisance to God. In today's literature it is referred to as the movement of spiritual devotionalism that swooped India between 14th & 17th century from South to North. A huge devotional literature was produced in India during that period, under the influence of this movement. Some of the most prominent propounders of this Bhakti movement were Shri Madhvacharya, Chaitanya Mahaprabhu, Sant Tukaram, Kabir and Meera to name a few

In Indian Spiritual thought, however, Bhakti is the process to know the Lord. Or in other words the process of getting established ion to the path of recognition of the I consciousness and the surrender of this I consciousness to the Supreme consciousness, whose free will influences the individual consciousness. And the object of such surrender is to attain Moksha, Salvation.

In terms of Kashmiri Shaivism, Abhinavgupta holds that 'surrendering everything to God is possible when one attains identity with God through meditation.' And it is in meditation that yogis and devotees have poured out their heart in the form of Stuti's [Hymns of Praise] to their chosen deities. Lord Shiva being the Premier deity is not only worshiped but adored and paid obeisance.

Sanskrit literature is full of such Stuti's in which the chosen deity, Vishnu, Shiva or Rama are adored. One such Stuti that outscores many others in Bhaktibhava [Emotional devotionalism] is the STUTI KUSUMANJALI of Jagaddhar Bhatta, a Shaivite from Padmapur [modern Pampore] in Kashmir.

The thirty ninth Stotra of the Stuti Kusumanjali that has 16 Shloks, gives us the Vansavarnanam [Family Description] of the poet. It tells us that the poet Jagaddhar Bhatta was the illustrious grand son of Sh. Ghor Dhar, who wrote a commentary on Yajurveda under the title of Ved Vilasa. His father Sh. Ratan Dhār was no less a genius. His heard is said to have been the abode of Saraswati, the Goddess of learning.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-151

Concept and means of mokṣa in Advaita Vedānta

Dr. P.Upalsala Devipillai, Thirmananthapuram

The word mokṣa comes from the Sanskrti root 'mue' meaning 'to loose' or 'to set free' or 'to let go', 'discharge', 'liberate', deliver etc. Mokṣa is the liberation from the chain of births and rebirths. In this system, mokṣa is not utpādyam, something to be produced. It is not prapyam, what is to be attained. It is a new stage, it is only the realization of what one always has been. It is not samskāryam, something to be purified. Purification implies removal of impurity.

Knowledge is the means of mokṣa and not action. When ignorance is removed through knowledge, there is release. How to attain this knowledge which leads to mokṣa is also included in this paper.

Sri Sankar's conception of mokṣa is unique. It is the natural state of man's consciousness.

Mokṣa is the birth-right of all individuals, according to Advaita Vedānta. This is the celebrated doctrine of Sarva-mukti. With the removal of māyā, the soul shines in all its natural splendour and realizes its identity with the absolute.

❋

PR-152

Cosmology in Samkhya

Dr. S.Geethamony Amma, Kerala

According to Samkhya, *Prakrti* is the substratum of the changing phenomena of the world. It is the equilibrium of the three gunas, *sattva, rajas* and *tamas*. The equilibrium of the *gunas* is disturbed by some kind of influence of the *Purusa. Prakrti* evolves to realize their ends, experience and liberation. When the equilibrium of the *gunas* is disturbed, some *gunas* overpower the other *gunas*, and starts the process of evolution. Production is manifestation or evolution. Destruction is non-manifestation or envelopment. The Samkhya clearly enunciated the doctrine of evolution. The manifold world is evolved from *Prakrti*, which is the first cause. It is the matrix of the whole world of effects, physical and psychical. The world is

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

unconscious. It cannot be transformation of a spirit, which is unchangeable and immutable (*kutastha*). It is the transformation of the unconscious *prakrti*. Change is said to be of two kinds-homogeneous or *Svarupaparinama* and heterogeneous or *Virupaparinama*. During the state of dissolution of the world, the gunas change homogeneously, *sattva* changes into *sattva, rajas* into *rajas* and *tamas* into *tamas*. This change does not disturb the equilibrium of the *gunas* and evolution cannot takes place. Evolution starts when there is heterogeneous change into the *gunas*.

The *Samkhya* maintains that the effect pre-exists in the cause in a potential condition; the effect is a modification (*parinama*) of the cause; it is a manifestation, development, or redistribution of the cause. The effect is not a new beginnign (*aramba*). It is not a new creation. It is not non-existent (asat) in the cause. It exists (*sat*) in the cause prior to its manifestation. So the *Samkhya* advocates the doctrine of *Satkaryavada*, ie., *Parinamavada*.

❋

PR-153

Sankhya and Yoga as Presented in Narayaniya

Dr. G. Usha Kumary, Thirmananthpuram

Melputtūr's most significant poetic contribution is Nārayanīya which deals with the glory of Lord Viṣṇu. Though Srimad Bhāgavata purāṇā is written in twelve skanda consisting of 18000 verses, Bhattatirippād skillfully captured its essence without loosing its beauty and meaning in 1034 verses. Indeed his poetic gift and craft were marvelous. The main subject of Narayaniya is the celebration of the glory of Bhagavan Narayana. Merging the concept of Braḥman with Lord Guruvayūrappan. Nārayaṇīya elevates the reader to sublime heights of Bhakti by his expression of Bhaktibhāva. The books transport the reader to an enchanted world with its evocation of Rasa. It also brings bliss and joy to the Dārsanika-s. Bhattatiri possesses the rare talent to describe things in a succinct and brief manner using minimum words.

Quite deftly, he has described Sankhya and Yoga in separate Dasaka-s. The story of Ramayana described in two dasaka and the epic work Bhagavadgīta in a single śloka. The proposed paper attempts to deal with the Sankhya-Yoga Darsana

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

rendered in Nārayaṇīya. It also takes-up for detailed discussion of Viṣṇu incarnated as Kapila, exhorts and advises Sankhya tattva to his mother and enlightens the people how to gain mokṣa through the practice of Aṣṭāṅga Yoga.

*

PR-154

Vedanta Philosophy as Depicted in Sri Aurobindo's Poetry

Dr. Amalendu Chakrabarty, Gauhati

An elementary contradiction between poetry and philosophy was mentioned in Plato's Republic for the first time. A philosopher deals with logic and truth, while a poet lives in an illusive world. None other than Aristotle himself was one among those who declined to accept this ancient strife between these two groups of thinkers. According to him, poetry can indeed be more philosophical than history.

Sri Aurobindo, who was a poet as well as a philosopher of modern times, finally concluded in his book The *Future Poetry*, that beyond a particular level, poetry and philosophy become indistinguishable. We shall, in our proposed paper, try to establish how much of his philosophical views regarding life and the world as depicted in his poetry tally with *Vedanta* philosophy. Sri Aurobindo's philosophy was not a replica of Classical Indian philosophy. However, *Parinamavada* or the theory of evolution, of Indian devotional philosophy or *Bhakti* philosophy, did influence the poet in Sri Aurobindo. It is an accepted fact that in reality his poetry was not free from his philosophical thoughts, which were basically centered on the *Vedas* and the *Vedanta*. In his poetry that he composed placing himself on a pedestal of the Super mind, poetry and philosophy became unified attaining poetic greatness factually.

*

PR-155

An Analysis of J.Krishnamurti's Concepts of Love and War

Dr. Dinesh Kumar, Patna

J. Krishnamurti is one of the few non-traditional but original Indian thinkers of our times. He is an unorthodox thinkers who used to express his thoughts inform

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

of dialogues which are acutally excercies in self-analysis. J. Krishnamurti is an unique conversationalist who expressed his views on a wide range of topics in course of his conversations. The concept of freedom is the central concept of his teaching. The concept of freedom is closely linked with the concept of love. Freedom and love, according to Krishnamurti, complement one another-the two are inseparable in their true meaning. He maintains that a loving person will always be an invincible fighter for freedom and the one who has gained freedom will always be a messenger of love.

Moreover, Krishnamurti maintains that where is fear, there is no freedom. Fear brings voilence only. A man who is fear-ridden can never be free nor can he be a loving person.

A man devoid of fear is devoid of violence. Again, violence inherent in human nature is manifested in the different forms of social conflicts and International wars. Hence, to overcome fear means to overcome violence. This fear could be overcome by immense love, compassion and kindness. Here Krishnamurti's views appear very near to the teahings of Buddhism and Gandhian philosophy. Still he is quite original in his approach.

J. Krishnamurti maintains that if human society needs any revolution at all then it needs the revolution of love. It is only love that can bring order, peace and harmony in the world. According to him, war is a spectacular expression of our daily conduct. In order to wipe out wars from the surface of the earth we will have to learn to love each other which will in turn require some inner transformations of our hearts and minds and some significant changes in our daily life as well.

*

PR-156

Glimpse of Śarīras

(Comparative View of Vedānta and Sāṁkhya Systems)

Dr. Shakuntala Punjani, Delhi

It is evident that we all possess physical frames with different limbs : this verily is Gross-body-Sthūla Śarīra. These other bodies which are not visible to us. The verse from Aṣṭāvakra Saṁhitā supports this theory:-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यदि दहं पृथक्कृत्य चिति विश्रम्य तिष्ठसि।
अधुनैव सुखी शान्तो बन्धमुक्तो भविष्यति॥

''If you detach youself from the body and rest in consciousness, then you wil be happy, peaceful and free.''

Here, the words 'you'; 'youself'; and 'body' denote different bodies. Logical inference helps us to understand the exestence of more than one frame. We perform many actions in present life and the results of all these actions are not reaped in our life-time because our physical frame pesides at the end of life. If one is not rewarded or punished for one's actions then the validity of CAUSE and Effect theory will be at stake. This argument bads to the theory of REBIRTH and one experiences and accumulates result of one's actions done in previous life; similarly the result of one's unrewarded actions done during the present life-time will be surely reaped in the future birth. The fundamental question occurs to mind, 'Who transmigerates the impressions of one's present actions to the future birth? There is subtle body-Sūkṣma. Śarira or Liṅga Śarīra who performs this important task.

❋

PR-157

'The Purusha' concept in Gita

Suresh Kumar P.T., Kerala

I. Introduction

The study of the concept of ''Purusha'' is of paramount important in Indian Metaphysics. Though this concept has interrupted differently through ages, this study reveals that, 'the Purusha' stands for enternal bliss'.

II. Earlier Literature on Purusha

(a) In Vedic Samhitas

(b) In the Upanishads

(c) In Buddhism

(d) In Nyaya-Vaisasika

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

III. The Purusha Concept in Bhagavad-Gita

(a) As God

(b) As an ordinary human being

(c) The Ksara Purusha

(d) The Aksara Purusha

(e) The Purushothama, etc.

III. Expressions in Gita :

The Soul experience stages of life (Jagrath, Swapna etc.) through out the body, likewise it enter another body as the body falls, (2/13). For it change of body is like change of clothes, (2/22). A person who has the knowledge, of the self and body graves neither for the living nor for the dead, (2/11). The soul is eternal and real, the body is unreal (13/30).

IV. The Nature of 'Purusha Realised'

V. Why Purusha is interpreted differently?

VI. Conclusion

This brief study underlines the fact, the purusha is the nature of ''eternal grace'' or say bliss and it can be manifested differently. Sok we have different purushas with one graceful eternal purushothama, that is the 'Real Purusha'.

*

PR-158

Ancient Śaiva System : Text and Practice

Dr. T. Ganesan, Ponidcherry

The ancient form of śaivism is variously called *śaiva* and sometimes *pāśupata*. Generally this ancient system is fully based on the Veda-s and the *smṛti* texts. But we come to know of their exclusive scriptures called Āgama-s from such ancient śaiva texts as the *Śivadharmottara*. This text so far unpublished in its original is a very interesting text and is a mine of new informations on the doctrines, rituals,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

mantra-s and yoga practices followed by the adherents of the old *śaiva* system. In my paper I would bring to highlight some of the views of the *Śivadharmottara* on world creation, the evolution of the world, the arguments for the existence of Śiva as the supreme godhead, the ancient forms of yoga practised by the *śaiva yogī* and some of the similarities between them and the corresponding views found in some of the yoga chapters (*yogapāda*) of the available *Śaivāgama-s*. These arguments may be used to prove that *Śivadharmottara* is one of the most ancient forerunners and a repository of classical views on many of the philosophical concepts which were later developments and incorporated in many of the *Śaivāgama-s*.

*

PR-159

The Prābhākaras Mīmāṁsā and the Vaiśeṣika System -A Comparative Study

Purnima Ghosh, Kolkata

Doctrine of category is the essence of the Vaiśeṣika philosophy. The Pūrvamīmāṁsā system, though mainly focuses on the Vedic interpretation also admits the theory of categories. Both the Bhāṭṭa and the Prābhākara schools admit the Catagories of real. But while the Bhāṭṭas admit five categories the Prābhākaras are concerned with the eight categories. The Vaiśeṣika Categories are seven in number. They are substance, quality, action, generality, particularity, inherence and negation. The first four are admitted by the Bhāṭṭas alone with negation. The Prābhākaras admit six Vaiśeṣika Categories with in exception to particularity (*Viśeṣa*) in the addition to other three categores - casual efficacy (*śakti*), similarity *(sādṛśya*) and number (saṁkhyā). Out of these additional categories, causal efficacy has been admitted by the earlier Vaiśeṣikas and number is included in quality.

The Prābhākaras admit the Vaiśeṣika nine-substance formula and reject the status of darkness (*tamas*) as tenth category. But the Prābhākara systems differs on the view of perceptibility of air. It prefers inferability of air.

The Vaiśeṣikas admit twenty four types of quality while the Prabhakaras admit twenty two.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-160

Priestess in Mannarassala -A Rare Specimen of Serpant worship in South India

Dr. Anand Dilip Raj, Kerala

Serpant worship or *Naga* worship is one of the ancient forms of worship in the world. Many living traditions of this adoration are still surviving in South India. In that part of India, each and every village has a particular place to worship *Naga*, usually at the foots of holy trees like *Asvakta, Vilva, Neem* etc. As important members of Hindus pantheon, *Nagas* are worshipped with great piety. Many serpant shrines, contains huge Anthills or termite mounds as their sanctum. The Anthills are often worshipped as *Valmikesvara*. Many oral narratives of serpants like, holding the ''*Nagamanikya* on their head, the power of them to curse, their divine capacity to give children are eugolised by traditional singers the ''*pulluva's*'' in their *veenas*.

The present paper briefly describes the mythology, rare customs and mode of worship associated with the priests of *Naga Raja Svami temple* at *Mannarassala*.

*

PR-161

Introduction to Cosmology in Indian Philosophy

Lekha Subhash, Kerala

Cosmology can be classified into many. Mainly they are (1) Metaphysical cosmology (2) Religions cosmology (3) Esoteric cosmology (4) physical cosmology. Indian Philosophy including in the part of religions cosmology.

Many world religions have origins beliefs that explain the beginning of the universe and life. Often these are derived from scriptual teachings and held to be part of the faith's dogma, but in some cases these are also extended though the use of philosophical and metaphysical arguements. In some origin beliefs, the universe was created by a direct act of a god or gods who are also responsible for the creation of humanity. In many cases, religions cosmologies also foretell the end of the universe, eitgher through another divine act or as part of the original design.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-162

Chief end of life : Nyaya view

Dr. Krishna Chakraborty, Calcatta

He alone can make a jar who knows the way to make a jar and he alone can arive in Kāśī without a guide who knows the root of Kāśī, thus knowledge assists us in the attainment of oridnary objects, it certainly should be of assistance in the attainment of chief end of life also. What is chief end of life 2. Chief end of man is to attain that endless joy which may accrue to the soul from the grace of the supreme Lord.

In this world joy is mingled with sorrow, but thejoy which will be without admixture of sorrow i.e. to be attained, ie.e possible only by the grace of Supreme Lord. *Gautama* argues, chief end of man is '*Nihśreyasādhigamaḥ*' or liberation. It is possible through real knowledge *'Tattvajñānāt'*.

In respect of whatever thing there is true knowledge and false knowledge also to attain the summumbonous or ''the chief end of life'' correct knowledge of sixteen categories is essential; the whole world is bound with sixteen categories as has been mentioned by *Gautama, Pramāprameyasaṁśya prayojana dṛṣṭānta siddānta Tattvajñānnihsreyasādhigamaḥ* (*nyayasūtra*, 1.1.1)

In the next aphorism *Gautama* set forth the order in which the knowledge of truth is conducive to the attainment of the chief end of man,-

''*Dḥukhajanmapravṛttidoṣamithyājñānānāmuttarottarpāya tadanantara-bhāvādapavargah* (Nyāya sūtra-1.1.2) Absolutely dismissal of false cognition is necessary for attaining salvatin or chief end of life. True knowledge is the main criterion of acquiring Lord's grace or endless joy.

*

PR-163

Value based education through Yoga Darsana

Saswati Nath, Bhubaneswar

At present when social, moral, cultural and spiritual values are disintegrating, when religion is loosing it hold, when power and knowledge are being misused for

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri

vested interested, when nations don't trust one another, when black marketing, corruptin, barbarism, indiscipline, violence are fast spreading, it is essential that Value based education should be introduced. Values are the only balm, which can heal the wounds of humanity. Only value based education can promote individual and social welfare, love, peace, goodwill and understanding. This is essential. For a healthy personality of a human being, for a peaceful family, for a mighty nation and for the universe.

To solve the present day problems we have to go to the past. The way of living in the ancient days, which is simplified in Patanjali's *Yoga Darsana*. Which can protect the contradictory force of human race.

Children are those raw materials, whom we should give proper education through which their instinct will be sublimated and they will learn the art of living. Though schools are minitary communities in order to solve the problems of the society we have to introduce value based education in schools.

❋

PR-164

The concept of Brahman in Ṛgveda and Early Upaniṣads

Dr. Dharmaraj Adat, Kerala

Brahman is the pivotal concept in Adaita Vedānta. It is nirguṇa, the only one truth, the absolute eternal and the ultimate reality. According to them we cannot define it. It is beyond the reach of speech. The whole of idealistic thinking in India consider Brahman as their integral part.

All most all the philosophies in India enlisted as Vaidika or Āstika proclaims their indebtedness to the Vedas. Among the Vedas the prominent one is, of course, the *Ṛgveda*. As a usual paractive all the idealistic philosophers claim their fundamental concepts to the Vedas. Regarding the concept of Brahman also they argue as originated in the Vedas. But if we analyse the pre-history of the concept of Brahman, we can see the fact that such an interpretation and theories around it are often based on considerations extrinsic to the strictly Vedic tradition. Even though the Vedic poets, the early composes and reciters of the Vedic verses used the word Brahman along with its derivatives not less than 232 times in the *Ṛgveda* itself, it is not the

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

above mentioned ideas that provoked their minds. In order to understand their mind, the social condition in which they lived in is to be analised critically and objectively.

The most striking feature of the Ṛgvedic society which is evident from their verses is the desire for the this-worldly objects, which directly or indirectly formed the core of the Vedic songs, with a pronounced collective bias. Our ancestors were not, in other words, the desire of the individual for his personal prospirity, but pronouncededly and positively the desire of the group for its collective prospirity. The problem they mainly faced was their survivality. Their desire for food, cattle and other forms of material wealth with health formed the biggest stratum of their poetry which equals in bulk rather to say, to the surviving poems of Homer. Brahman is one of the most important word they used to denote their worldly desires like food, cattle and other forms of material wealth.

*

PR-165

Concept of 'Self' in Hinduism

Chandni Sinha, Patna

The self forms the very care of man's being. It is different from his physical body, vital energy, senses and mind. Man's ego is not this self. The ego or I ness is an idea only, it is purely mental. Being mental, it cannot be the self. This self of man is called Atman in Sanskrit.''

According to Hinduism, the world around us is not real, because it is impermanent and ever changing. The world in which we live is a world of ignorance and falsehood or untruth, class Asat, in contrast to Sat or the world of Truth that exist beyond it where neither the mind, nor any of the senses can ever reach even remotely.

''The self is the enemy of the self and the self is also the friend of the self''. The outer self is an enemy of the inner self often are become attached with the external world.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-166

The-Guru-Parampara-in-Upanisad

Dr. Nirmala Nayak, Khurda

The word Guru consists of two syllables 'Gu' and 'Ru', 'Gu' means darkness and 'Ru' means the dispeller. Thus, Guru is the spiritual entity who dispells darkness. The spiritual journey of a disciple is achieved through surrender, spiritual quest and service. Hence, it is true that Guru appears in response to our sincerest yearnings and prayers. The Guru who imparts knowledge and skill to the disciple is known as Siksa Guru. The Guru who shows the beacon light in the spiritual journey from untruth to truth, from darkness to light, from imperfectin to perfectin is called asDiksa Guru. So, here comes the role of Upanisads. Spiritual wisdom is preserved and continued through tradition of Guru-Shisya relationship.

The Upanisads are the earliest philosophical classics of the world. They embody the quintessence of the Vedic Wisdom and are the subsequent philosophical speculations in India. They are otherwise known as Vedanta because they form the concluding portion of the Veda. Over and above self-discipline, penance and cultivation of moral virtues, the role of Teacher or Guru is deemed indispensable for obtaining self knowledge. Hence, the role of a guide becomes a bounden necessity. The Guru is supposed to be the very embodiment of ideals and perfections that the disciple or Shisya strives to imbibe.

❋

PR-167

The Neo-Vaisnav Religion of Sankaradeva

Dr. Rubi Mahata, Assam

The glorious Bhakti Monement starting from the twelfth century A.D. to the sixteenth century A.D. was gradually and continuously growing in Assam too. Assam, the easternmost part of the country could attain a high level of excellence in its literature and culture under the blessed guidance of Srimanta Sankaradeva (1449-1568), the founder of Assam Vaishnavism. It is not necessary to mention how Sankardeva is associated with the soul of Assamese. He was bringing spiritual revolution among the people of Assam irrespective of caste, sex and religions

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

through his 'Eka Sarana Nama Dharma'. He says, 'Eka Deva Eka Seva Eka Bine Nai kewa'. For him there is only one God. Instead of many we have to worship one God. 'Sravana-kirtana' is the best way to worship God.

Srimanta Sankardeva embodied the concept of complete Surrender before the Lord, as taught in Geeta, in his initiatin process 'Sarana', which means surrender or submission. From the very beginning, the devotee is guided to consider the Lord as his/her ultimate resort.

*

PR-168

Cosmic Influence of the Subconcious

M.K. Adettiwar, Pune

The subject is neither scientific nor only philosophical, but it is a combination of both. It is related to the human min, thought process, actions and the result. Consequently the effect on our life in total.

In Nyaya sutras it is said:-

Purvabhyast Smrutya nu Bandha Jjatashya Harsha Bhaya Shoka Sampranipate]]10]] chapter3, part 1,

The new born child is seen to have all instincts of hunger, cry, happiness sorrows and fear. The question is, how he got all at a birth when he did not experience anything before? Immediately after his birth he cries and sucks breast of the mother. Where from he got that knowledge of first crying to indicate hunger and then sucking breast? When he is done with sucking milk, he is satisfied and automatically leaves the nipple.

This is a natural action stored in his memory because of

Savya Drushta Shyetren Pratyadnyana]]7]] chapter 3, part 1 slok 7 of nyaya sutras.

In previous life when he was hungry, he sucked milk and quenched his hunger. When he is reborn again; those memories of hunger, sucking and happiness repeated in this birth. It indicates that memories and actions don't die, they repeat

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

whenever similar situation takes place again. The aim of human life is not only to be happy but to get rid of sorrows and pains, unhappiness and sufferings. All his desires cannot be fulfilled, consequently turn into unhappiness and are stored in the subconscious. This becomes SANCHIT for subsequent birth. Similarly good actions also are stored and become sanchit. Our aim is to neutralize the effects by being conscious.

*

PR-169

Relation in Mimamsa

Prof. Rajendra Nath Sarma, Guwahati

Relation (Sambandha) is one of the most important issues in the systems of Indian Philosophy, Rhetorics and in grammar. The problem of relatin rightly claims the most fundamental position and metaphysical discussions. The Realists like the Naiyayikas, the vaisesikas and both the schools of Mimamsa viz., the Bhatta and the Prabhakara admit the real entity of relatin. For the Realists, it is impossible to acquire knowledge without the ontological reality of a relation. As a matter of fact, relation plays a vital role in respect of the process of the production of knowledge.

It is difficult to define a relation but it can be explained only. A relation supposes at least two things between which it is or it holds. The conception of relation is interesting and all pervasive. Though in both the schools of Mimamsa, relation is accepted, still there is difference between them in respect of their treatment of the same.

*

PR-170

Arthāpattipramāṇam -A discourse in the Light of Mīnāmsā Philosophy

Dr. Snigdha Das Roy, Assam

Arthāpattipramāṇam has been accepted by the Mīmāṁsakas and vedāntins as the source of valid knowledge, while others do not. This paper ventures to show

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

the scope and justification of the claim of Arthāpatti as a means of valid knowledge. Arthāpatti is the supposition of some unperceived fact to explain some otherwise inexplicable facts. Nārāyaṇabhatta in his Mānameyodaya states - anyathānupapattyā yadupapādakalpanan/Tadārthāpattirityevam lakṣanam bhāsyabhāṣitam. The difference of analysis of arthāpatti of Prabhākara and Kumarilabhaṭṭa, the two stalwarts of Mīmāmsā Philosophy will get a room for discussion in the paper. The submission of other schools of philosophy that arthapatti is superfluous in the realm of proof accepted by them will be answered in the paper. In Mīmāmsā philosophy arthāpatti pramāṇa has a special importance. It bears a special potency here because in the sacrifices which lead to heaven is not within the preview of Pratyakṣa etc.

*

PR-171

Srimanta Sankaradeva-A Religious Refofrmer

Sri Dibyajyoti Mahanta, Nagaon (Assam)

Srimanta Sankaradeva (1449-1568 AD) is well known for the refrom activities related to religion and culture which had influenced the entire society to such a great extent that its impact is still realized in the present time as well. The entire life of this greatest personality of all times was dedicated for religious, social, economic and literary activities of Assamese people that had enabled social reconstruction and religious regeneration in the north eastern part of India. He is the founder of the Eka Sarana Nama Dharma, the concept of which is to surrender whole-heartedly to one and only one God Vishnu in his incarnation as Krishna and interdicts its followers from the worship of any other god or goddess. The new religion is founded on the liberal doctrine of the concept of Bhakti. Absolute self surrender at the feet of the Lord Krishna and a feeling of ecstatic joy and happiness in serving or worshipping Him are the main significances of Bhakti. The message of this Neo-Vashnavite movement was carried to the hearts of the people irrespective of caste, creed, age, sex and economic conditions, through wast literary activities as well as other cultural activities like devotional songs, drama, nama-kirtana and simple honest living. His religious, literary, and cultural activities were compliment to one another.

Sankaradeva established Namaghara and laid the foundation of the Sattra institution. The Namaghara is a congregational prayer-hall where people from all

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

caste and creed sit together for the purpose of chanting the name of Krishna and for other religious activities. The functions of the Namaghara was not confined to Nama-Kirtana only, but it performed other activities. The functions of the Namaghara was not confined to Nama-Kirtana only, but it performed other activities like a village panchayat or a village court, a cultural hall or stage and a place of religious discourses and debate. The Sattras were establishe for functioning as an organ of religious propagatinon and which are almost like monasteries or moths.

The many folded activities of Sankaradeva contributed solely and extensively in forming a vast culturally advanced Assamese society. In recognition of his extraordinary qualities and contributions to the society he is attributed and worshipped as a Mahapurusha, that is a great sole, whose universal message of love, amity, fellow-feeling tolerrance, morality, peace and concord and service to humanity is still relevant in the context of present world affairs and life.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 12

DRAVIDIC STUDIES

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

DS-1

कन्नड़ से हिन्दी में अनुदित काव्य : एक अनुशीलन

डॉ. भारती हिरेमठ, कर्नाटक

'श्री रामायण दर्शनम्' कुवेम्पु की श्रेष्ठ रचना है। कुवेम्पु को कई पुरस्कार 'श्री रामायण दर्शनम्' से प्राप्त हैं। 'केंद्रीय साहित्य अकादमी' का पुरस्कार, 'भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार' तथा कर्नाटक सरकार के द्वारा संस्थापित 'पंप पुरस्कार' इनसे सम्मानित होने का सौभाग्य कुवेम्पु जी को मिला है। 'श्री रामायण दर्शनम्' का अनुवाद डॉ. सरोजिनी महिषी जी ने तथा डॉ. प्रधान गुरुदत्त जी ने किया है। इसके लिए डॉ. प्रधान गुरुदत्त जी को 50 हजार का पुरस्कार केंद्रीय हिन्दी निदेशालय से प्राप्त है।

पारम्परिक विचारधारा के साथ समकालीन विचारों एवं मनोधर्म के मेल को 'श्री रामायण दर्शनम्' में देख सकते हैं, इसमें नये दर्शन को आत्मसात किया गया है।

'श्री रामायण दर्शनम्' का अनुवाद करना सरल बात नहीं थी। इन अनुवाद की समस्याओं को प्रधान गुरुदत्त जी ने सही पहचाना है।

*

DS-2

Indo Aryan Words in the Dravidian Etymological Dictionary

Dravidian Etymological Dictionary (DED) is a monumental work by the eminent Ideologiest, Dr. Emenue and T. Burrow. The impression that the words present in DED are original Dravidian words deserves re examination.

The well-known Professors analyzed the Dravidian words under the impression that if a particular word is present in almost all the cultivated language and some uncultivated languages is Dravidian. It is not justifiable.

These scholars might have followed the good old system of the etymological treatment of Yaska. They adopted a different method for analysis.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Even though they have concentrated in Dravidian lexical items, they compared these words with the Sanskrit equivalents. In most of the cases the so-called Dravidian words might have been originated from Indo Aryan Languages probably from Prakrits.

Nobody can deny that Indo Aryan has made a prominent role in the formation of certain Dravidian languages like Malayalam. A very number of words present in modern Malayalam might have originated from Sanskrit or Prakrits.

The present study is an attempt to find out the presence of Indo Aryan words in DED, which may support the famous theory *India is a Linguistic Area*. In this paper I tried to find out the Dravidianism by comparing its occurrence in various Dravidian languages and its occurrence in Sanskrit and Prakrit Dictionaries.

*

DS-3

Family Names in North Karnataka

Dr. (Smt.) Shree S. Herlekar, Dharwad

In North Karnataka each and every person has a Family Name or Surname. A family name is the part of person's name that indicates to what family he or she belongs. The family name is written last giving rise to term last name for family name.

In North Karnataka, most family names fall in to following types:

* **Occupation: Eg:** Vaidya, Purohit, Kumbar, Badiger, Kambar, etc.
* **Cast or Religion: Eg:** Achar, Raikar, Kamat, Hiremath, Malimath, Hegde, Shettar, Nadaf, Pathan, Khan, Fernandez D'Souza, etc.
* **Personal Characteristics: Eg:** Giddannavar, Bolannavar, Satyannavar, Sullad.
* **Geographic Features: Eg:** Hallad, Adavi, Gudded, etc.
* **Place Name, Names derived from places :** Eg: Dharwadkar, Hukkeri, Hubli, Hebballi, etc.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

* **Name of their holdings, Manor or Estate:** Eg: Muttin, Kubasad, Havalad, Jolad, Akki, Doddmani, Kattimani, Koti, Totad, etc.

* **Names derived from Neighbouring States:** Eg: Pathak, Dongre, Khote, Khare, Rodda, Chinchore, Kadapa, Godbole, Godse, Gokhale, etc.

Some family names in North Karnataka can be mistaken for non Karnataka, eg: Patil, Joshi, Yajurvedi, etc.

The original meaning of the name may no longer obvious in present days. The convention is to write the first name followed by middle name and the family name. It is common to use father's name or husband's name as middle name, and family name as last name.

*

DS-4

Pen Names of Women Vachana Writers

Dr. Rajeshwar Maheshwaraiah, Dharwad

The religion that brought revolution in social sphere with the target of social up-liftment along with self elevation is Vi:rashaivism. The ŚaraNa:s of this religion in the twelfth century in Karnataka endeavoured to bring the doctrines of Vi:rashaivism through Vachana:s to the common man. They expressed themselves through a simple and fascinating language of vachans.

Innumerable ŚivaŚraNes were also engaged themselves in literary activities at that time to such an extent that the world has never witnessed such a poetic panorama before. Nearly thrity three ŚaraNes were engrossed in Poetic composition in Kannada.

Perhaps this seems to be unique in the history of the world that such a large number of women writers came forward to express themselves through poetry. They proved that woman can create exquisite literature.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

DS-5

Kerala Tribes and their Languages

Vidhu Narayan UCC, Aluva-2

There are fifty three tribal communities living in Kerala. Each of them is entirely different in their culture and language traditionally. The official language of Kerala is Malayalam. But the real fact is some tribes like paniya, Irula, Muduga etc. possess their own languages with separate identity. Hill tribes like Palliyars, Hill Pulayas speaks Tamil as their mother tongue some communities living in the northern part of Kerala speaks kannada. About sixty percent of tribal languages differ from Malayalam only in vocabulary where the grammatical laws are the same. Aim of the present paper is to analyse the linguistic status of Kerala tribes.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 13

TECHNICAL SCIENCES & FINE ARTS

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-1

कालिदासकाव्येषु पर्यावरण-संरक्षण-चिन्तनम्

डॉ. प्रकाश चन्द्र पन्तः, हरिद्वारम्, उत्तराञ्चलम्

यदस्मान् परितः आवृणोति येन वयं परितः आवृत्तास्तत् पर्यावरणं नाम।

प्राचीनकविषु महाकविः कालिदासः श्रेष्ठतमः, तेन प्रकृतिप्रेम्णः विशेषरूपेण पादपसंरक्षणस्य किमप्यद्भुतं वर्णनं कृतं वर्तते। ऋतुसंहाराख्ये काव्ये कालिदासेन षण्णामृतूनां मनमोहकं वर्णनं कृतमस्ति। रघुवंशेऽपि तथैव। अभिज्ञानशाकुन्तले नाटके मानवस्य सहचरीरूपेण प्रकृतेः यद् चित्रणं कृतमस्ति तत्तु परमहृदयावर्जकमस्ति। तत्र पादपानां संरक्षणस्य प्रकृतिप्रेम्णः वर्णनं कुर्वन् महाकविः कथयति—

"पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्माष्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आदौ वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्याः भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥" (शाकुन्तलम् 4/9)

एवम्प्रकारेण अभिज्ञानशाकुन्तले रघुवंशे ऋतुसंहारे च यथावसरं कविना पर्यावरणसंरक्षणस्य विशिष्टं चिन्तनं विहितं, तस्य सर्वस्य यथाशक्ति शोधपत्रेऽस्मिन् वर्णनं भविष्यति। इति।

❀

TS & FA-2

परिवेशो हि प्रासङ्गिकः

डॉ. लक्ष्मणचरण विश्वालः, बालेश्वरम् (उत्कलम्)

इदानीन्तनविज्ञानयुगे विज्ञानस्य उत्तरोत्तरप्रगतिवशात् मानवोऽद्य सभ्यतायाः शीर्षावस्थायां समुपनीतः। फलतः तस्य जीवनं सरसं सुन्दरं मधुमयं च भवति। परन्तु अन्यपक्षे वास्तवतः वैज्ञानिकप्रगत्या सह परिवेशप्रदूषणात् मानवस्य जीवनं क्रमशः विपन्नं भवति। अधुना परितः संपूर्ण्णपरिवेशः एवं प्रकारेण व्याप्तः दूषितश्च येन कश्चिदपि आत्मानं तस्मादूषितपरिवेशात् मोचयितुमक्षमः। शिल्पस्य संप्रसारणम्, अरण्यसंपदः विनाशम्, यानवाहनस्य बहुप्रचलनम्, जनसंख्यायाः विस्फोरणम्, मारणास्त्रस्य प्रयोगः, कीटनाशकाद्यौषधानां प्रयोगः, वैज्ञानिकपरीखा चेत्यादिविविधकारणवशात् परिवेशः क्रमशोऽधिकं प्रदूषितो

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भवति। फलतोऽद्य समग्रपृथिव्यां परिवेशात्मिका जटिला समस्या समुदिता। कस्यचित् देशस्य प्रगत्यर्थं शिल्पस्य प्रसारः स्पृहणीयः। शिल्पस्य विकाशानुसारं राष्ट्रस्य आशानुरूपा समुन्नतिः परिलक्ष्यते। अधुना विकाशशीलेषु राष्ट्रेषु शिल्पकेन्द्राणां बहुलनिर्माणमपरिहार्य्यं दृश्यते। शिल्पकेन्द्रभ्यः निष्कासितानां विषाक्तपदार्थानां नदीसरोवरादिजले समिश्रणं भवति। अनेन जैविकवस्तुनः विघटनं भवति। फलतः जले द्रवीभूतं अम्लजानं दूषितं भवति। दूषिताम्लजानग्रहणेन जलचरप्राणिनः मृत्युं लभन्ते। अस्य कुप्रभावः अन्येषां जलचरप्राणिनामुपरि पतति। अपि च शिल्पकेन्द्रेभ्यः निष्कासितधूमैरङ्गारकाम्लजानस्य आधिक्याद् वायुः विषाक्तो भवति। सभ्यराष्ट्रेषु अधिकतया यानवाहनप्रचलनेन बहुसंख्यकशिल्पकेन्द्राणां स्थापनेन च अङ्गारकाम्ल-जानस्य मात्राधिकंवृद्धिर्जायते। अस्मात् कारणात् पृथिव्यां तापमात्रायाः वृद्धिर्भवति। फलतः यथासमये विभिन्नऋतूनां आश्यकीयप्रभावो न दृश्यते।

परिवेशप्रदूषणार्थं जनविस्फोरणमेव अन्यमेकं कारणम्। यद्यपि सर्वकारपक्षतः जन्मनियन्त्रणादयः विविधोपायाः स्थिरीकृताः; परन्तु प्रतिवर्षं जनसंख्यायाः प्रावल्यं दृश्यते।

*

TS & FA-3

स्वस्थ जीवनधारणे आयुर्वेदस्य योगस्य च प्रयोजनम्

डॉ. अनादिचरण बेहेरा, बालेश्वरम्

मुनीनां ऋषीणाञ्च देशं भारतवर्षम्। लोकानां आत्मनश्च मङ्गलविधानं तेषामासीत् परमलक्ष्यम्। स्वस्थशरीरं विना धर्माचरणं मङ्गलविधानञ्च असम्भवतमं भवति। इति कृत्वा प्राक्तन मुनिभिः स्वस्थशरीराय विभिन्नाः उपायाः निर्धारिताः। तेषु उपायेषु आयुर्वेदचिकित्सा पद्धतिः अन्यतमा। आयुर्वेदक्षेत्रे प्राक्तनाः चरक-शुश्रूत-वाग्भट्टादयः ऋषयः स्वीयेषु आयुर्वेदशास्त्रेषु स्वस्थजीवनयापनाय सविस्तरवर्ण्णनं कृतवन्तः। आयुर्वेदे अष्टाङ्ग आयुर्वेदः यथा—शल्यतन्त्र (Surgical Treatment) शालक्यतन्त्र (ENT Treatment) कायचिकित्सा (Medicine Treatment), भूतविद्या (Mental Diseases), कौमारभूत्य (Paediatric Treatment), अगदतन्त्र (Toxycology), रसायनतन्त्र (Having anabalic proparties), वाजीकरणतन्त्र (Sexual Diseases), इत्यादयः प्रधानाः।

यथा स्वस्थजीवनधारणाय आयुर्वेदस्य आवश्यकता अस्ति। तथैवापि स्वस्थजीवनधारणाय पातञ्जलप्रभृतयः योगप्रवर्त्तकाः अष्टाङ्गयोगानां प्रयोगः कृतः। यथा—यमः, नियमः, आसनम्, प्राणायाम्, प्रत्याहारः, ध्यानं, धारणा, समाधिः एतेन मानवाः स्वस्थजीवनधारणार्थमपि सक्षमाः भवन्ति।

आयुर्वेदक्षेत्रे रोगः द्विभागः कृत। शारीरिकः मानसिकश्च।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पुनश्च शारीरिक दोषत्रयमस्ति—यथा—वातः, पित्तः, कफश्च। मानसिक क्षेत्रेऽपि सत्त्व-रज-तम भेदेन दोषः त्रिविधः। एतेषां दोषाणां उपशमः आयुर्वेदचिकित्सा द्वारा क्रियते। तथैव योगक्षेत्रेऽपि शारीरिक, मानसिकादि पीडायाः उपशमः भवति। यम-नियम-आसन-प्राणायामद्वारा रोगविनाशनं नूनं भवति। प्रत्याहर-ध्यान-धारणा-समाधिद्वारा मानसिकव्याधिनामुपशमः जायते। पुनश्च धीशक्तेः, स्मृतिशक्तेः, धृतिशक्तेरपि परिवर्द्धनं भवति। एतद्वारा मानसिकशान्तिरपि जायते। प्रस्तुतशोध प्रबन्धे एतेषां सविस्तरवर्ण्णनं भविष्यति।

*

TS & FA-4

देवपूजोपचारेषु गान्धर्वकलायाः प्रासङ्गिकता

डॉ. श्रीनिवास आचार्य, पुरी, (ओडिशा)

देवदेवीनां पूजाविधौ तत्र पञ्चोपचाराः, दशोपचाराः, षोडशोपचाराः, अष्टादशोपचाराः, द्वात्रिंशदुपचाराः, षट्त्रिंशदुपचाराः, चतुष्ट्युपचारा, शतोपचाराश्च विधीयन्ते। सामान्यतः भगवतः विष्णोः षोडशोपचारविधिना क्रमशः पूजा क्रियते। तद्यथा—आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्। मधुपर्काचमस्नानं वसनाभरणानि च। गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं वन्दनं तथा। षोडशोपचारः पुरुषसूक्तस्य ऋग्भिः प्रारभ्यते। षोडशोपचारस्य पश्चात् विष्णुनामकीर्त्तनं हवनं च क्रियेते। विष्णोः परितोषाय स्तोत्राणि गीतनृत्यवाद्यादीनि च प्रस्तूयन्ते। वैष्णवधर्मे सम्मतानां विविधदेवानां पूजायै बहूनि स्तोत्राणि विरचितानि। स्तोत्राणां महिमा भागवतवचने निगदिता। तद्यथा—

विन्दते पुरुषोऽमुष्माद्यद्यदिच्छत्यसंत्वरन्।
मद्गीतगीतात्सुप्रीताच्छ्रेयसामेकवल्लभात्॥
इदं यः कल्य उत्थाय प्राञ्जलिः श्रद्धयान्वितः।
शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो मुच्यते कर्मबन्धनै॥ (भाग. 4/24/77-78)

वामदेवसंहितायां सप्तमाध्याये पूजाप्रकरणे द्वात्रिंशदुपचाराः वर्णिताः सन्ति। उक्तञ्च—

घण्टावादनकं कुर्यात् धूपदीपौ क्रमात् पुनः
पुष्पाञ्जलिश्रयं दत्त्वा पूर्वञ्च हिमात्मजे
पठन् स्तुतिं च परमां कर्पूरावर्त्तिमाचरेत्
नीराजनं च देवानामग्रे कुर्य्यान्मनोरमम्
अनेन विधिना देवि! पूजयेत् विष्णुमव्ययम्॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एकादशीतत्त्वे ये षट्त्रिंशदुपचाराः कथिताः तेषु नर्त्तन-गीत-वाद्यगानानि गृह्यन्ते यानि गान्धर्वकलायाः अङ्गीभूतानि भवन्ति।

*

TS & FA-5

संस्कृतस्य व्यवसायात्मकं महत्त्वम्

डॉ. सन्तोष कुमार पाण्डेयः, राँची (झारखण्ड)

संस्कृतवाङ्मये ज्ञानस्य विज्ञानस्य च प्रभूतं विवेचनं विद्यते। तत्र मोक्षादिविषयजन्यमाध्यात्मिकं चिन्तनं ज्ञानं, शिल्पशास्त्रादिकस्य च ज्ञानं विज्ञानमिति। सामान्येन भौतिकं चिन्तनं विज्ञानमाध्यात्मिकं चिन्तनं ज्ञानमिति।

विज्ञानेषु चतुरशीति विज्ञानानि संस्कृतवाङ्मये ख्यातानि तेषु हेतुविज्ञानं, तत्वविज्ञानं, मोहविज्ञानं, दन्तविज्ञानं, रसायनविज्ञानमित्यादीनि सन्ति। अतः परमपि आयुर्विज्ञानं, वादविज्ञानं, नीतिविज्ञानं धारणविज्ञानञ्चेति विज्ञानेषु वर्णितम्। व्यावसायिकविषयेषु कलाया वर्णनमपि प्राप्यते। तासु गीतकला, वाद्यकला, नृत्यकला, गणितकला प्रभृति द्विसप्ततिकला संस्कृतवाङ्मये विवेचिताः।

प्राचीनभारते कलाविज्ञानरूपा व्यावसायिकविषयाः प्रभूता आसन् परमिमे विषया संस्कृतज्ञैरूपेक्षिता विविधकारणाद् वा लुप्तता गताः। विदेशीयाणामाक्रमणं तैः स्वभाषाया भारते प्रसारः, विदेशीभाषाया भारते प्रभुत्वमित्यादीनि कारणानि सन्ति। स्वतन्त्रभारतेऽपि इमे संस्कृतस्य व्यावसायिकविषयाः सर्वकारैः संस्कृतज्ञैर्भारतीयनागरिकैश्च प्रायेणोपेक्षिताः सन्ति।

*

TS & FA-6

धर्मशास्त्रे अशौचस्य वैज्ञानिकत्वम्

डॉ. अतुल कुमार नंदा, पुरी (ओडिशा)

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृति॥ (मनुः 2/10)

एतेन शास्त्रमिदं वेदवद् प्रमाणभूतं मनुगौतमादिप्रणीतं सकलशास्त्रललामभूतं समस्तपुरुषार्थप्रदायकं सकललोकसुरक्षकं सकलज्ञान-संस्कार-सदाचारादिशिक्षादायकं सर्वान्ते मोक्षदायकं गुणिगणसमादरणीयं शास्त्रं भवति धर्मशास्त्रम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आस्मननेव धर्मशास्त्रे स्मृतिसूत्रभाष्यनिबन्धरूपे परिदृश्यमानेषु बहुषु विषयेषु मुख्यतः आचार-व्यवहार-प्रायश्चित्तेषु गाम्भीर्यमनुभूयते। प्रायश्चित्तं तावद्व्रतरूपत्वादशौचपालनमपि व्रतरूपेण परिपालनत्वात् प्रायश्चित्तमध्ये तत्र भगवता योगीश्वरेण आशौचप्रकरणं सन्निहितम्। आशौचन्तु कालस्नानाद्यपनुद्यपिण्डोदक-दानादिविधेः अध्ययनादिपर्युदासस्य निमित्तभूतः पुरुषगतः कश्चनातिशयो कथ्यते। न पुनः कर्म अनधिकारमात्रम्। अशुद्धाबान्धवाः सर्वे इत्यादौ अशुद्धत्वाभिधानात्। अशुद्धशब्दस्य न वृद्धव्यवहारे अनाहिताग्निदीक्षितादौ अनधिकारिमात्रे प्रयोगाभावाद् वृद्धव्यवहारः व्युत्पत्तिनिबन्धनत्वात् च शब्दार्थावगतेः। किञ्च यद्याशौचिनां दानानिषेधदर्शनात् तदयोग्यत्वमाशौचशब्दाभिधेयं कल्प्यते तर्हि उदकदानादिविधिदर्शनात् तद्योग्यत्वमप्याशौचशब्दाभिधेयं स्यात्। तत्रानेकार्थकल्पनादोषप्रसङ्ग इति उपेक्षणोऽयं पक्षः। इदं तावदाशौचं जननमरणभेदेन द्विविधं भवति। यदा सपिण्डमध्ये कस्यचन मरणंतदा मरणाशौचं तथैव सपिण्डमध्ये कस्यचन शिशोः जनने जननाशौचं भवति। आशौचस्य पालनमपि वयोवस्थादिभेदेन भिन्नं भवति। यत्कृतं मनुना—

दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते॥ (5/95)

*

TS & FA-7

वृष्टिलक्षणविमर्शः -कृषिपराशरे आधुनिकविज्ञाने च

डॉ. अरुणकुमारमण्डलः, शान्तिनिकेतनम्

कृषिपराशरो नाम कृषिकर्मविवेचनात्मकः कश्चित् विज्ञानग्रन्थः। तत्र प्राचीने भारतवर्षे प्रचलितस्य विज्ञानबोधस्य विविधाः सिद्धान्तमयूखा विकीर्णा उपलभ्यन्ते। यतः देहिनां जीवनरूपा कृषिरद्यापि प्रधानतया वृष्टिमूला, वृष्टिज्ञानं पुनः सर्वेषां कृषकाणामन्नोपजीविनां मनुष्यमात्राणां च हितार्थाय भवति तस्मादस्मिन् ग्रन्थे वृष्टेर्विविधलक्षणमालोचितमुपलक्ष्यते। केन मेघलक्षणेन, केन वातलक्षणेन, केन ज्योतिषतत्त्वेन, कस्मिन् सम्बत्सरे, कस्मिन् मासि, कस्मिन् पक्षे कीदृशी गर्जनसमन्विता, कीदृशी करकापूर्णा, कीदृशी सान्द्रा वारिवृष्टिर्भवति - सद्योवृष्टेरनावृष्टेर्वा कानि कानि लक्षणानि - तच्छर्वमालोचित-मालक्ष्यतेऽस्मिन् ग्रन्थरत्ने। पक्षान्तरे आधुनिक विज्ञानानुसारेण वायोः भारपरिमाणं, उष्णता, जलीयवाष्पानामुपस्थितिः, आपेक्षिकी आर्द्रता इत्यादीनि तथ्यजातानि पर्य्यालोच्य वर्षणस्य पूर्वाभासः प्रदीयते वैज्ञानिकैः। अनयोः सिद्धान्तयोः तुलनात्मकमालोचनमेकं प्रस्तोष्यतेऽस्मिन् सन्दर्भे।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-8

पर्यावरणम्

डॉ. नगेन्द्रनाथ झा, जम्मू

परितः आवरणं नामपर्यावरणम्। अर्थात् अस्मासु परितः यानि तत्त्वानि विराजन्ते तानि सर्वाणि पर्यावरणान्तर्भूतानि सन्ति। यथाः-अनिलः, वारि, पृथ्वी, वनस्पतयः पादपा, ओषधयः पशवः, पक्षिणः, जन्तवः, एवं मानवादयः तत्वानां समाहारः एव पर्यावरणम्। एतेषां तत्त्वानतादृशं सन्तुलनं विश्वस्मिन विद्यते येन प्रकृतिः अद्य पर्यन्तं संरक्षिता सञ्जात एषु तत्त्वेषु कश्चन उत्पादक उपभोक्ता च भवति येन केषामपि तत्त्वानां बाहुल्यं न भवति न च तन् न्युनत्वं भवति।

वैज्ञानिकदृष्टयापि पर्यावरणस्य अस्माकं कृते महत्वं वर्त्तते। यतो हि वायुमण्डले ओजोन नामकावरणस्य निर्माणं प्राकृतिकी प्रक्रिया वर्त्तते। सूर्यरस्मिः यदा वायुमण्डलस्य उच्चस्तरे लगति तदा उच्च ऊर्जा विकरणेन निर्मितस्य आक्सीजन इत्यस्य कश्चिद भागः अणुभिः सह मिलित्वा ओजोन नामकावरणस्य निर्माणं करोतिं इदमावरणं पृथिव्याः रक्षा कवचमस्ति एवञ्च समतापमण्डले पृथ्वीतः 30 कि. मी. उपरि निवसति। इदमावरणं सूर्यरश्मितः समागतेभ्यः अलट्रावायलेट वैराबैगिनी किरणेभ्यः पृथिव्याः रक्षाम् करोति। यद्यपि पर्यावरणस्य एतादृशी व्यवस्था सृष्ट्यामारम्भकालादेव विद्यते तथापि कालान्तरे जनसंख्या वृद्धि कारणात् अस्माकमावश्यकताः अपि वृद्धाः। अतः अस्माकं कृते पृथ्वय आवटश्यकता जाता, खाद्य सामग्रीणामावश्यकता प्रवृद्धा जनसंख्या वृद्धिकारणात् मलमूत्रादीनि दुर्गन्धयुक्तानि अनिलो, जलं पृथ्वी च दुष्टि भवन्ति। विषाक्तधूमेनापि प्रदूषणं भवति।

*

TS & FA-9

वृष्टि-विज्ञान-परिशीलनम्

डॉ. विनोदानन्द झा, बिहार

वृष्टि गर्भकालिक पञ्चलक्षणेभ्यो वृष्टिगर्भस्य वर्षण क्षमताया ज्ञानम् भवति। यथा-पवन-मेघ-गर्जन विद्युत् मेघान्विनोगर्भ प्रकृतिभ्यः पञ्च लक्षणम् परिलक्ष्यते। अत्रैव वराहपराशर-गर्ग-ऋषिपुत्र-कश्यपादीनां वचनञ्च सम्यक्तया नितरामपेक्षते। गर्भस्य विपाकावधिः सामान्यतः सार्द्धषण्मासमितो भवति। वृष्टि गर्भाणां प्रसवकाल विषये इदमेव तथ्यपूर्णं विवेचनं यत् शुक्लेपक्षे धृतोगर्भः कृष्णपक्षे वर्षति। कृष्ण पक्षे धृतोवृष्टि गर्भः शुक्लेपक्षे वर्षति। दिवाधृतो वृष्टिगर्भः निशायां, निशिधृतो वृष्टिगर्भः दिवाकाले वर्षति। संध्यायां धृतो वृष्टिगर्भस्तु सन्ध्याविपर्ययेण सन्ध्यायामेव प्रसवमेति। यथा-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सितपक्षभवाः कृष्णे शुक्लेकृष्णाः द्युसम्भवा रात्रौ।
नक्तं प्रभवाश्चाह्नि सन्ध्याजाताश्च सन्ध्यायाम्॥

अतएव प्राच्य भारतीयाः पद्धतिः स्वीयासु विज्ञान-शाखासु ईश्वरकृतां सृष्टिरेव प्रयोगशाला वर्त्तते। निसर्गोत्पादितानि सर्वसुलभानि उपकरणानि सर्वसाधारणैः साध्यानि भवन्ति। कार्तिक मासादारभ्य वायुगतेरध्ययनात्, आकाशलक्षणानि, पर्यवेक्षणाच्च वृष्टि गर्भाणां स्थितिमवगम्य वत्सरारम्भात् प्रागेव वत्सरस्य तत्तद्दिवसविशेषे कालविशेषेच भाविन्याः वृष्टेः सुनिश्चितं ज्ञानं भवति। चैत्रवैशाखादिषु मासेषु कृतानि वायुगतेराकाश लक्षणानाञ्च पर्यवेक्षणानि वत्सरस्य पूर्वानुमितेः वृष्टि क्रमे अपेक्षितानि सन्ति। यथा-तस्योपलब्धिर्वृहस्पतेः स्थान-गमन-गर्भाधानेभ्यः, शुक्रोदयास्तमयचारेभ्यः सूर्यस्य प्रकृतिविकृताच्चेति।

वृष्टि ज्ञानाय पराशरोक्त यन्त्रविधिप्रकारः गर्गोक्तकुम्भप्रयोगविधिः, गर्गमतमाश्रित्यवराहस्य रोहिणी योगाध्याये वृष्टि ज्ञानप्रकारः अत्रैव भट्टोत्पलेनोद्धृतं विचारं, अवस्थान विशेषे ज्ञातस्य चन्द्रोदयस्य, शुक्रोदयस्य, शुक्रास्तस्य, शनेरस्तङगमनस्य, बुधोदयस्य, बुधास्तस्य, गुरोरूदयस्य च वृष्ट्यादि विषये विशिष्टः, प्रभावो वर्त्तते। चन्द्रोदयकालवशात् वृष्ट्यादि ज्ञान विवेचनं, मेघमाला, वनमाला, कृषिपद्धतिः, स्मृतितत्वः, कृषिपराशरादीनां ग्रन्थानां, सम्यकानुशीलने सति वृष्टि ज्ञानं नितरां शोभते। नारदमते वृष्टयादि सूचकाः योगाः ग्रहनक्षत्रयोगेभ्यो वृष्ट्यादेर्ज्ञानम् भवति। नारदमते एवं रोहिणी योगाद् भाविवार्षिक वृष्टेः पूर्वानुमानं भवति। पराशरमते आषाढ़ी योगे वृष्टयादि पर्यवेक्षणमावश्यकं परिलक्ष्यते।

मैथिली भाषायाम् डाकवचनामृतम्, बंगभाषायां खमारवचनं, हिन्दीराजस्थानीभाषयोः घाघभड्डरी-कृतोक्तयः, कन्नरभाषायां तिरिककुरल ग्रन्थः, तमिलभाषायां करणपशुग्रन्थः, भारतीयभाषासु प्राच्यविज्ञानशास्त्र विषयकाः बहवो ग्रन्थाः एतद्विषयस्य ज्ञानवर्धनानि कुर्वन्ति। परञ्चानुशीलनं अनुसन्धानञ्च आवश्यकं परिलक्ष्यते।

*

TS & FA-10

वैदिक साहित्ये (वाङ्मये) कृषिः

डॉ. सुदेश गौतम, शिमला

कृषिः शब्दोत्पत्तिः तुदादी च भवादी गणीय कृष् विलेखने धातोः ''इक'' प्रत्यये कृते सति भवति। विलेखनं, आकर्षणम्, कृषिकर्मम् सन्ति यथा ''चीयते बालि शस्त्रापि सत्क्षेत्रपतिताकृषिः'' कृषिः क्लिष्टाऽवृष्ट्या कृषिः गोरक्ष्यवाणिज्यिं वैश्य कर्म स्वभावजम्। वैश्यस्य कृषिमेव च इति लौकिक साहित्येऽपि मिलन्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वैदिक वाङ्मये कृष्टिः। कृष्ट्यः शब्दयोः प्रभोगेन प्रतीयते यत् तस्मिन् काले सर्वेजनाः कृषिं कुर्दन्ते स्म। यतो हि अस्यशब्दस्यार्थः वैदिकवाङ्मये इत्थमस्ति यत् विद्वानपुरुषः, आकर्षणम्, हल चालनम् लाङ्गल चातानञ्च मितः ऋग्वेदे ऋचास्ति ''रहानि विश्वा ततनन्त कृष्टमः'' वैदिक कालेऽपि कृषिकार्यं विज्ञानाम विशेषज्ञानामेव कार्यमासीत्। यथा आद्यत्वेऽस्मिनक्षेत्रे बहमः प्रयोगाः भवन्ति तेषां सर्वेषां बीजं वैदिकवाङ्मये पूर्णतया मिलति।

तस्मिन् काले अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व इति महावाक्यं ''जय जवान, जय किसान'' च जय जवान, जय किसान, जय विज्ञान ''वत् आसीत्। सर्वेजनाः भूमिं मातावत् पूजयन्ति स्म। यथा माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'' अतः वैदिक वाङ्मये बहुविधलाङ्गलानाम् सिंचन साधनाम कृषिः योग्य पशुनाम, शकन-करीषादिनाम्, कृप, तडाग, नदी ससिद्सेचन साधनानं वर्णनं विभिन्न सभलेषु मिलति।

*

TS & FA-11

याज्ञवल्क्यस्मृतौ आधुनिक चिकित्साशास्त्रे च शरीरसंरचनाविचारः

डॉ. राधागोविन्दत्रिपाठी, तिरुपतिः

प्रविधेः अभिवृद्धिः यथा प्रतिदिनं जायमाना वर्तते, तथैव तं प्रविधिमाश्रित्य नूतनानि तथ्यानि आविष्क्रियन्ते। किञ्च शरीरसंरचनाशास्त्रस्याभिवृद्धिरपि प्रविधिशास्त्रेण उपस्क्रियते। किं हि शरीरसंरचनाशास्त्रम्? किमस्मिन् विषये याज्ञवल्क्यस्मृतौ आधुनिकचिकित्साशास्त्रे च विचारभेदः दृश्यते? बाह्याभ्यन्तरावयवसम्बन्धीदं च विज्ञायते किमिदं विनूतमद्याविष्कृतम्? नेति वक्तुमस्ति निदानम्? धर्माचारसंवलितेषु स्मृतिग्रन्थेषु भृशं परिचर्चितमिदं शास्त्रं प्रासङ्गिकम्। भगवान् याज्ञवल्क्य ब्रवीति शरीरसंरचनामनुपमां यत् विज्ञानिनामाधुनिकानामपि विस्मयावहं स्यात्। दद्धि शरीरसंरचनातत्त्वं वैज्ञानिकपक्षमवलम्ब्यात्र प्रबन्धेऽस्मिन् सप्रमाणं विचारयिष्यते।

*

TS & FA-12

रघुवंशमहाकाव्ये पर्यावरण विचारः

डॉ. फूलकान्त मिश्रः, बिहार

महाकविः कालिदासः विश्वकविः विद्यते। यतो हि कालिदासस्य काव्ये मानवोपयोगिनां विविधविषयानां विचारः अवश्यमेव प्रतिभाति। पर्यावरण पदं परि आङ् उपसर्गात् वृधातोः ल्युट्

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रत्ययेन सिद्धयति। पर्यावरणपदस्य विग्रहो भवति परितः आवरणं करोति तत् पर्यावरणमिति। पर्यावरणेषु पृथिव्यप् तेजो वाय्वा काशादिनी पञ्चभौतिकतत्वानि विशेषेण गृहयन्ते। एतेषां पञ्चमहाभूतानां समुचितं संतुलनमेव शुद्धं पर्यावरणं कथ्यते।

समाजस्थाः मानवाः विविधजीवाश्च एभिः पञ्चतत्वैनिर्मिताः सर्वदैव तेषामाश्रय एव तिष्ठन्ति। एतानि प्राकृतिकं पर्यावरणानि सर्वथैव मानवोपकारकानि भवन्ति। अस्मदीयं शरीरं पञ्चमहाभूत तत्वैः विनिर्मितमस्ति। महाकविकालिदासस्य रघुवंशमहाकाव्ये पर्यावरणेन चर्चितस्य महाभूतपदस्य वर्णनं प्रथमसर्गे विद्यते। अर्थात् पुरमयोध्यां मेघा अपां विसर्गाञ्जनसेवात् निदाधग्लपिता ग्रीष्मतप्तामुर्वीमिव नवीचक्रुः परिपूर्याञ्चक्रुः। एवं प्रकारेण रघुवंशमहाकाव्ये चर्चितस्य पर्यावरणस्य विवरणं प्रस्तुतशोधपत्रे भविष्यति।

❋

TS & FA-13

ज्योतिर्विज्ञाने भूजलपरिज्ञानम्

डॉ. मिथिलाप्रसाद त्रिपाठी, मध्यप्रदेश

भूमौजलस्थितिरस्त्येव जनाः कूपखननादिभिः भूमेर्जलमवगच्छन्ति स्म। साम्प्रतमपि जनाः भूच्छेदकैर्यन्त्रैर्भूवो जलमवाप्य यन्त्रैरुपक्षिपन्ति क्षेत्रेषु सिञ्चनार्थम्। भूतले विविधाः वृक्षाः वनस्पतयो वल्मीकाः मिलन्ति। तेषां माध्यमेन जलपरिज्ञानम् यथा शक्यते तथा वराहमिहिराचार्यः वृहत्संहितायां दकार्गलाध्याये (54) सपादशमितैः पद्यैरवर्णयत्। मुख्यतया वेतस्-जम्बू-निर्गुण्डी-बदरी-कम्पिल्लोदुम्ब-रार्जुनश्योनाकविभीतककोविदार सप्तपर्ण-करञ्ज-मधूक-तिलक-कदम्ब-नारिकेल-ताल-कपित्थाश्मन्तक हरिद्रा-कण्ट-कारिका-खर्जूर-कर्णिकार-पीलु-करीर-रोहितक-शमीवृक्षाः वल्मीकश्च जलसूचकेषु भवन्ति लक्षणेषु।

भूमेरपि स्वरूपं विलोक्य गोक्षरोशीकुलादयो द्रव्याणि कुशकाशादयस्तृणाविशेषाः जलसूचकानि भवन्ति ज्ञापयितुं समर्थाः। भूमेर्वर्णज्ञानादेवान्तः स्थितं जलं स्वादु-क्षार-मिष्टादिकं यथा भवति तथाऽवलोक्यते। यद्यपि कूपजलबोधनार्थं विविधानि चक्राणि वर्णितानि सन्ति परन्तु भूमौ विलोक्य वृक्षादीनपि तत्रत्यं जलमधस्तात् कियन्मितमिति बोद्धुं शक्यते। यद्यपि वृहद् वास्तुमाला कूपाराममीमांसादिषु ग्रन्थेष्वपि समुल्लेखः भूजल परिज्ञानार्थं मस्ति परन्तु तत्रत्यं सर्वं वराहमिहिरादेव संग्रहीतं वर्तते। निबन्धेऽस्मिन् वृक्षादिभिः भूमौ स्थितं जलावज्ञानं यथावर्णितमुपपादितमस्ति।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-14

संस्कृते आरोग्य विज्ञानम्

डॉ. रामाधार द्विवेदी, मध्यप्रदेश

यत् विशिष्टं ज्ञानं तत् विज्ञानमित्युच्यते। अस्माकं भारतदेशे सृष्ट्यारम्भादेव ऋषिभिः तत्वविज्ञैश्चयत् किमपि चिन्तनं कृतम् तत् सर्वं विशिष्टमेवासीत्। प्राचीने भारते मानव संस्कृतेः विशेषविकासः दृश्यते स्म। अस्माकं देशस्य तत्वज्ञाः ऋषयः प्रायः सर्वेषु क्षेत्रेषु बहुचिन्तनं कृतवन्तः। यादृशञ्चिन्तनमत्र भारते प्रवृत्तम् न तादृशमन्यत्र जगति कुत्राऽपि दृश्यते। विश्वास्मिन् यदा कुयाऽपि संस्कृतेः वीजवपनमेव नाऽभूत् तदा भारते संस्कृतेः सुविकासः आसीत्। तामेव संस्कृतिमनुसरन्तः तदनुगुणं व्यवहारं कुर्वन्तः जनाः उदात्तं सार्थकञ्च स्वजीवनं यापिवन्तः। तत् सर्वमपि तत्वचिन्तनं संस्कृत वाङ्मये प्रतिष्ठितम्।

अस्माकं पूर्वजन्मामुभयविध चिन्तनमस्ति। आध्यात्मिकं भौतिकञ्च। संसारेऽस्मिन् सर्वमापि कार्यं प्राणिनामाधारितमेव भवति। विशेषतः मानवजीवनमेवाधारीकृत्य ज्ञानविज्ञानयोः उपयोगः दृश्यते। मानवजीवनं यदा रोगरहितं स्वस्थञ्च भवति तदा एव सर्वमपि जागतिकं आध्यात्मिकञ्च कार्यं समम्पादयितुं समर्थः भवति। एतस्यकृते चिकित्सा विज्ञानमेवोत्तमं साधनमस्ति। अस्माकमायुर्वेदशास्त्रे मानवहितकरोपदेशा एव अनुकरणीयाः। आयुषः वेदः आयुर्वेद इति परिभाषा-

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते।। चरक सूत्र 1.40

*

TS & FA-15

वैदिक साहित्य के परिप्रेक्ष्य में नृत्य कला

डॉ. सुषमा देवी गुप्ता, जम्मू

वैदिक युग में कलाओं के अस्तित्व की व्यापक सूचनाएं उपलब्ध हैं। उस युग में कलाओं के वाहक एवं प्रवर्तक तीन प्रकार के कलाकारों का पता चलता है, जिनके नाम हैं :–गायक, वादक और नर्तक। कलाकारों की ये तीन श्रेणियां पर्याप्त उन्नति पर थीं। संगीत एवं नृत्य का विशेष आयोजन होता था। उनमें पुरुष नर्तकों के अतिरिक्त महिला नर्तकियां भी भाग लेती थीं। नर्तकियां अपने पैरों में घुंघरू बांधकर सार्वजनिक रूप में अपने नृत्य का प्रदर्शन करती थीं। सोम रस का पान कर पुरुष-स्त्रियां सामूहिक रूप में नृत्य में भाग लेते थे जिससे तत्कालीन समाज में नृत्यकला की लोकप्रियता का सहज ही पता चलता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ऋग्देव के 'उषस सूक्त' में उषा की उषमा नर्तकी से दी गई है जिससे नर्तकी की श्रेष्ठता एवं समाज में नृत्य की अच्छी प्रतिष्ठा ध्वनित होती है साथ ही नृत्य के साथ बजाए जाने वाले वाद्यों के विषय में भी विदित होता है। यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता के 'पुरुष सूक्त' से यज्ञ के विभिन्न अवसरों एवं क्रियाओं पर नृत्त यानि ताल-लयवबद्ध अभिनय हेतु सूत की नियुक्ति एवं कुछ यज्ञों के अवसर पर 'वंश-नर्ती-नृत्य' विशेष के आयोजन की सूचना संसूचित होती है।

अथर्ववेद में तो अनेक स्थलों पर विभिन्न सन्दर्भों में नृत्य आयोजित किए जाने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। ग्यारहवें काण्ड के 8वें सूक्त में हास्य या विनोद के सम्मिश्रण से युक्त नृत्य किए जाने की कामना की गई है। 12वें काण्ड के 'पृथ्वी सूक्त' में भूतल पर मनुष्यों द्वारा नृत्य-गीतों के मनोहर आयोजन का वर्णन हुआ है तो मकान के चारों ओर घूमकर नाचने का भी उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त स्त्रियों एवं क्लीब यानि नपुंसकों (हिजड़ों) को नाचने वाला कहा गया है। मच्छरों के नाचने की उपमा भी हिजड़ों के नृत्य से दी गई है। काठकसंहिता में भी नृत्य-संगीत तथा नर्तकों-गायकों का उल्लेख हुआ है।

वेदों की ही भांति ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों एवं षड्वेदांगों में भी नृत्य-संगीत से सम्बन्धित सामग्री बिखरी हुई है जिसका सूक्ष्म अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि वैदिक युग में कलाकारों और कलाओं का एक निश्चित स्थान बन चुका था। उस युग के समाज का जो स्वरूप संहिताओं और परवर्ती वैदिक साहित्य में देखने को मिलता है, उससे यह भी विदित होता है कि परमार्थ प्राप्ति के साधनों में कलाओं को भी एक साधन माना गया था। इस प्रकार कला न केवल ऐहिक जीवन के मनोविनोद एवं मनोरंजन तक ही सीमित थी, अपितु उसे धर्म, अध्यात्म एवं परमार्थ प्राप्ति का भी माध्यम माना जाता था।

*

TS & FA-16

शुभाशुभफल प्राप्ति में रत्नों का योगदान

दीपाली खजूरिया, जम्मू

रत्नों का प्रयोग सर्वप्रथम सजावट तथा आभरण के लिए किया जाता था। बाद में ज्योतिषियों ने इससे होने वाले शुभाशुभ फलों का विवेचन किया और चिकित्सादि प्रयोगों में भी इन रत्नों की भस्म द्वारा अनेक प्रकार के रोगों का उपचार करने लगे। अतः देखा जाता है कि रत्न मानव जीवन में हर प्रकार से उपयोगी सिद्ध हुए।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रत्नों को विविध प्रकारों से बताया गया है जिनमें से प्रमुख रत्न-वज्र (हीरा), मुक्तामणि, पद्मराग, मरकत, इन्द्रनील, वैदूर्य, पुष्पराग, प्रवाल इत्यादि नाम दिए गए हैं। इनका यह नामकरण इनकी योग्यता, संग्रहण एवं गुणों को दृष्टि में रखकर किया गया है। सर्वप्रथम रत्नों के आकार, वर्ण, गुण, दोष, फल, परीक्षा इत्यादि का ज्ञान सभी शास्त्रों में वर्णित मिलता है।

रत्न केवल शोभा के लिए ही नहीं धारण किए जाते अपितु यह मनुष्य के जीवन में विभिन प्रकार से उपयोगी सिद्ध होते हैं। अनिष्ट ग्रहों के शमन, नीच, अस्त, वक्री एवं निर्बली ग्रह को अनुकूल बनाने के लिए रत्न अतिमहत्व पूर्ण सिद्ध होते हैं इस के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के रोगों का नाश करने में भी रत्नों का प्रयोग किया जाता है। ग्रहों द्वारा उत्पन्न रोग का शमन करने में उस ग्रह सम्बन्धी रत्न को धारण एवं रत्न की भस्म को औषधि के अनुसार प्रयोग करने से असाध्य से असाध्य रोग का नाश हो जाता है। भाग्य वृद्धि, अकस्मात धनलाभ, यश, मान, प्रतिष्ठा की प्राप्ति एवं कार्य सिद्धि के लिए रत्न अतिलाभदायक सिद्ध होते हैं।

*

TS & FA-17

मूर्च्छना पद्धति एवं मूर्च्छना वाद्य

डॉ. (सुश्री) सरिता निगम, कानपुर

प्रत्येक ललित कला का उद्देश्य भावाभिव्यक्ति है एवं प्रत्येक ललित कला की चरम्परिणति संगीत कला है एवं संगीत कला का भी लक्ष्य रस की सृष्टि ही है तथा उस रस सृष्टि से संगीतज्ञ एवं श्रोता दोनों को निमग्न कर भावाविभोर कर देना ही संगीत का परम प्रयोजन है तभी तो श्रीमद्भागवत् में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि–

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुंदगीतमार्वतलक्षित मनोभवभावेगाः।
आलिंग्न मनस्थगित मूर्तिभुजैर्मुरारेर्गृहणान्ति पादयुर्गलकमलोपहागः॥

अर्थात् तभी तो श्री कृष्ण के गीतों को सुनकर नदियां भी अपने मनोगत भावावेग को अपनी उत्ताल तरंगों के माध्यम से व्यक्त करने को विवश हो जाती हैं। यही नाद माधुरी हमारी गौरवमयी संस्कृति का श्रृंगार है परन्तु अपने संगीत के इस गौरवमय अतीत के परिप्रेक्ष्य में जब आज के शास्त्रीय संगीत को देखते हैं तो मन-विक्षोभ से भर जाता है। आधुनिक शास्त्रीय संगीत में भाव के अभाव की खोज करने पर जो एक महत्वपूर्ण कारण हम पाते हैं वह है मूर्च्छना प्रणाली की उपेक्षा। यह मूर्च्छना प्रणाली वास्तव में है क्या? प्राचीन भारतीय संगीत में

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इसका क्या स्थान एवं स्वरूप था? मूर्च्छना का अन्तरंग परिचय देते हुए प्रस्तुत लेख में मूर्च्छना की व्युत्पत्ति, मूर्च्छना की संगीत शास्त्रीय परिभाषा, मूर्च्छना का आधार, मूर्च्छना का स्वरूप तथा प्रकार, मूर्च्छना का प्रारम्भ तथा द्वादशस्वर मूर्च्छना का विशद विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

*

TS & FA-18

भारतीय सौन्दर्यशास्त्र और संगीत कला

डॉ. रीता तिवारी, बस्ती, उ०प्र०

काव्य के साथ संगीत का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों ही कलाएं इन्द्रियज्ञेय हैं। भारतीय संगीत को चारों वेदों का सार कहा गया है। छन्दोबद्ध काव्य ही संगीत की आधार भूमि है। संगीत का प्रयोजन न तो काव्यगत विचार सौन्दर्य को प्रकट करना है न काव्यगत अर्थ को प्रकट करना है। न ही अक्षरों की मधुरता को व्यक्त करना है।

–अभिनवभारती, अध्याय-29, श्लोक-47

वस्तुतः भरतमुनि ने यह निर्देश शास्त्रीय आधार पर दिया है कि काव्य सौन्दर्य से रहित छन्दोंबद्ध काव्य को ही गेय स्वरों के रूप में बदलना चाहिए। केवल श्रवणेन्द्रिय के सुख के लिए ही संगीत का प्रयोग नहीं होना चाहिए। बल्कि उन भावों और रसों को प्रकट करने के लिए उसका उपयोग करना चाहिए, जिसको किसी कारणवश भाषा में प्रकट करना सम्भव नहीं है।

–अभिनवभारती, अध्याय-32, श्लोक-35

महाकवि कालिदास ने संगीत की उत्पत्ति परमात्मा से पुराणों में शिव तथा पार्वती के संयोग से राग-रागिनियों की उत्पत्ति बतलाई गई है। संगीत को मोक्षप्रद कहा गया है। संगीत ही आत्मा को नश्वर से अनश्वर की ओर ले जाता है। इसकी सत्ता अनन्तलोक के लिए ही होती है। स्वरों और भावों के बीच किसी अर्थबोध की उत्पत्ति नहीं होती। तात्कालिक प्रभावोत्पादकता के कारण ही संगीत काव्य से अधिक व्यापक रूप में हृदयग्राही होता है। काव्य उन्हीं को प्रभावित करता है, जिनको काव्य को पढ़ने या सुनने से अर्थों या विचारों का अबाध प्रवाह अभिधेयार्थ के ज्ञान के कारण उद्भूत हो सकता है। परन्तु संगीत अपनी ओर सभी को आकर्षित करता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इसका प्रभाव देवता, मनुष्य, नर-नारी, अबोध शिशु, पशु-पक्षियों तक व्याप्त है। संगीत धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि का साधन होने के साथ-साथ देश के जन सामान्य का हृदय-रंजन भी करता है।

*

TS & FA-19

प्राचीन भारतीय दर्पण-विज्ञान

डॉ. शैलजा पाण्डेय, इलाहाबाद

प्राचीन भारतीय मनीषियों की अध्यात्म के साथ-साथ लोक में भी अव्याहत-गति रही है। परा के साथ ही पदार्थ-विद्या पर भी उनका अधिकार था। महर्षि भरद्वाज ने वैमानिकशास्त्र के सन्दर्भ में दर्पण-विज्ञान के अन्तर्गत 7 प्रकार के यान-दर्पणों का वर्णन किया है। ये हैं–विश्वक्रिया दर्पण, शक्त्याकर्षण दर्पण, वैरूप्य दर्पण कुण्टिणी दर्पण, पिंजुला दर्पण, गुहागर्भ दर्पण तथा रौद्री दर्पण। विश्वक्रिया दर्पण के द्वारा यान चालक को सभी प्राणियों के क्रिया-कलापों का दर्शन होता है। शक्त्याकर्षण दर्पण अन्तरिक्ष में यान के मार्ग में स्थित देहनाशक विषशक्तियों को अपनी ओर खींच कर उनका नाश करता है। वैरूप्य दर्पण के प्रभाव से आक्रमणकारी शत्रु भय, मूर्छा तथा विस्मृति आदि की दशा प्राप्त करते हैं। कुण्टिणी, पिञ्जुला एवं गुहागर्भ दर्पण अन्तरिक्ष में स्थित विषाक्त शक्तियों से विमान की रक्षा करते हैं। रौद्री दर्पण का प्रयोग शत्रुओं के यान के विनाश के लिए किया जाता है। महर्षि भरद्वाज ने इन दर्पणों की निर्माण-प्रक्रिया का एवं इनके प्रयोग का यन्त्रसर्वस्व के वैमानिकशास्त्र में विस्तार से वर्णन किया है।

*

TS & FA-20

दुर्ग-संरचना प्राचीन भारत में राजा एवं प्रजा की सुरक्षा-जागरुकता के प्रतीक

विद्याधर सिंह, जम्मू

'दुर्ग' शब्द का अभिप्राय ऐसे किले से है, जिसका निर्माण ऐसे स्थल पर किया जाए, जहाँ पहुँचना कठिन हो। मयमत, शिल्परत्न प्रभृति वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में दुर्ग की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि–''दुर्ग उसे कहा जाता है, जो दुर्गम, दुर्लङ्घ्य एवं दुरवगाह हो तथा जिसका

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निर्माण रक्षा एवं विजय-प्राप्ति के उद्देश्य से किया गया हो और जो शत्रुओं के द्वारा अभेद्य हो।'' यह तथ्य अवधारणीय है कि दुर्ग का प्रत्यक्ष सम्बन्ध युद्ध से है, अतः काल-प्रवाह के साथ-साथ युद्ध करने की विधियों में परिवर्तन होंने के कारण दुर्ग का अर्थ भी बदलता रहा है। इस दृष्टि से आधुनिक समय में किसी भू-भाग की नैसर्गिक रक्षा-शक्ति की वृद्धि करने अथवा भूमि में बङ्कर आदि के निर्माण को भी एक प्रकार से दुर्ग-रचना माना जा सकता है।

मानव-सम्यता के विकास-क्रम की सबसे बड़ी विडम्बना यही रही कि मानव के लिए सबसे बड़ा भय का कारण मानव ही बना, अतः एक दूसरे से आत्मरक्षा की भावना ने ही दुर्ग-रचना की धारणा को जन्म दिया। आदिकाल में वह कन्दराओं, वृक्षों आदि को आत्मरक्षा का साधन बनाते रहाहै परन्तु सभ्यता के विकास के साथ नगर कर दुर्ग के रूप में निवेश या प्रतिरक्षा-हेतु पृथक् रूप में दुर्ग का निर्णण मानव की सुरक्षा-सम्बन्धी चिन्ताओं का ही परिणाम है। मनुस्मृति, अर्थशास्त्र, विश्वकर्मवास्तुशास्त्र, मानसार, मयमत, समराङ्गणसूत्रधार, युक्तिकल्पतरु एवं शिल्परत्न प्रभृति प्रन्थों में अनेक प्रकार के दुर्गों एवं उनकी रचनागत विशेषताओं का उल्लेख हुआ है। इन ग्रन्थों में दुर्गों के निर्माण के लिए जिस प्रकार के स्थलों का निर्देश दिया गया है वे अत्यन्त जटिल एवं विकट है। हमारे प्राचीन नीति-निर्धारकों एवंवास्तुशास्त्रीय आचार्यों ने दुर्ग के विविध भेदों के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किए हैं उससे इस धारणा को बल मिलता है कि वे गृह, प्रासाद तथा नगरादि की सुरक्षा के प्रति सदैव जागरूक रहते थे।

प्रस्तुत शोध-पत्र में भारतीय स्थापत्य-ग्रन्थों एवं अर्थशास्त्र आदि अन्य शास्त्रों में वर्णित प्रमुख दुर्गों की चर्चा करते हुए आधुनिक भारत में उनकी उपादेयता की दृष्टि से समीक्षा की जाएगी।

*

TS & FA-21

कामविज्ञान (शास्त्र) का प्रयोजन

डॉ. श्री नारायण सिंह, वाराणसी

वात्स्यायन के अनुसार–'**श्रोत्रत्वक् चक्षुजिह्वाघ्राणानामात्म संयुक्तेन मनसाधिष्ठितानां स्वेषु-स्वेषु विषयेष्वानुकूलल्यतः प्रवृतिः कामः**' काम है। काम के शमन के बिना मनुष्य अपने ध्येय को प्राप्त नहीं कर सकता है। काम को अनेक रूपों से व्यक्त किया गया है, लेकिन महर्षियों ने धर्म्म-सम्मत काम को महत्व प्रदान किया है। 'कामसूत्रम्' का अध्ययन या रतिरहस्य, अनङ्गरङ्ग पञ्चसायकादि का अध्ययन व्यक्ति को व्यभिचारी, निर्लज, असामाजिकता या वेश्यावृत्ति

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

की ओर प्रवृत्त नहीं करता, अपितु वह अपने कान्तासम्मित उपदेश के द्वारा सरलता से धर्मानुकूल काम के प्रति प्रवृत्ति तथा धर्मविरुद्ध काम के प्रति निवृत्ति में पाठक को प्रेरित करता है। कामशास्त्र पति-पत्नी के धार्मिक और सामाजिक नियम की शिक्षा देता है। फलतः उनके जीवन में एक पत्नीव्रत या पातिव्रत को भंग करने की चेष्टा या आकांक्षा कभी पैदा नहीं हुआ करती। दाम्पत्य जीवन पूर्णतः सुखी और संतुष्ट होता है। यह शिक्षा कामशास्त्र से मिलती है।

सा चोपायप्रतिपत्तिः कामसूत्रादिति वात्स्यायनः ॥ 1/1/11॥ (कामसूत्र)

कामशास्त्र व्यक्ति को कामके वशीभूत होने से रोकता है क्योंकि--**'देवराजश्चाहल्यामति-बलश्च कीचको द्रौपदीं रावणश्च सीतामपरे चान्ये न बहवो दृश्यन्ते कामवशगा विनष्टा इत्यर्थ चिन्तकः॥'** 36॥ (कामसूत्र) कामसूत्र के साम अधिकरण– 1. साधारण (5 अध्याय), 2. साम्प्रयोगिक (10 अध्याय), 3. कन्यासम्प्रयुक्तक (5 अध्याय), 4. भर्याधिकरण (2 अध्याय), 5. पारदारिक (6 अध्याय), 6. वैशिक (6 अध्याय), 7. औपनिषदिक (2 अध्याय)--जिनमें तन्त्र-मन्त्र औषधि-नष्टरागवर्धनादि) के अतिरिक्त कामशास्त्र की आधारभूत चौसठ कलाएँ भी हैं। जिन शिल्पकलाओं से स्त्री-पुरुष धन कमा सकते हैं। कामशास्त्र व्यभिचार को रोकता है। वेश्यागमन का निषेध करता है, परस्त्रीगमन के खतरों को दर्शाता है। यह अपनी शिक्षा द्वारा व्यक्ति को पराए पुरुष से पत्नी की रक्षा का उपाय बताता है।

*

TS & FA-22

नाट्यशास्त्र में वर्णित सांगीतिक तत्त्व (गीत, वाद्य एवं नृत्य)

डॉ. पुष्पलता अग्रवाल, इलाहाबाद

'गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते' संगीत का जन्म सृष्टि के प्रारम्भ से ही माना गया है। एक धार्मिक मतानुसार भगवान शंकर संगीत के सृष्टिकर्ता माने गए हैं। देवी सरस्वती ने वीणावादन किया, मंगल मूर्ति गणेश मृदंग वादक बने। भगवान श्रीकृष्ण ने वंशीवादन कर समस्त सृष्टि को चमत्कृत कर दिया। पराशक्ति राधा तत्व ने वंशी की धुन पर नृत्य किया। इस प्रकार गायन, वादन तथा नृत्य ये तीनों कलाओं का समूह संगीत कहा गया।

वेदों के अनुसार शब्द और स्वर की उत्पत्ति ओइम् के गर्भ से हुई। वेदों में, पुराणों में, रामायण एवं महाभारत में तत्पश्चात्बौद्ध एवं जैन युग में तदन्तर गुप्त काल एवं कनिष्क युग में संगीत का उत्तरोत्तर विकास हुआ। परन्तु संगीतशास्त्र के रूप में ईस्वी पूर्व प्रथम-द्वितीय शताब्दी में भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र की रचना की। यद्यपि यह ग्रन्थ मुख्य रूप से नाटकीय

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विधानों का चित्रण करता है परन्तु भरत की दृष्टि में नाट्य-प्रयोग की सिद्धि के लिए गीत-वाद्य का विशेष महत्त्व है इसी लिए इस ग्रन्थ के 28 से 34 अध्याओं में नाट्य अंग के रूप में गीत वाद्य एवं नृत्य का विवेचन किया गया है।

*

TS & FA-23

आयुर्वेद में वात ज्वर

अर्चन परिहार, जम्मू

आयुर्वेद वह शास्त्र है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी आयु को प्राप्त करता है। आयुर्वेद के द्वारा मनुष्य आयु के विषय का ज्ञान प्राप्त करता है, इसलिए आयुर्वेद कहलाता है। प्राचीन काल से ही आयुर्वेद में विभिन्न प्रकार के रोगों के कारण, लक्षण तथा उनके उपचार के विषय में बताया गया है। उन विभिन्न रोगों में से ज्वर भी एक रोग है। इसके विषय में भी सम्पूर्ण जानकारी आयुर्वेद में उपलब्ध है। ज्वर भगवान रुद्र का क्रोध स्वरूप है। यथा :-

प्रवृत्रिस्तु परिग्रहात् निदाने पूर्वमुदिष्य रुद्रकोपाचदारुणात्।।

चं. संहि-11(3/14)

वातज्वर मलमूत्रादि वेगों को रोकने से, भोजन आदि में अरुचि पसीना न आना, नींद न आना, सूखी खांसी और रुक्ष शीतल आदि पदार्थों के सेवन से होता है। भय से तथा उपवास करने से, तैरने से एवं मलमूत्रादि के वेग को रोकने से वात-कुपित होता है।

वातज्वर की चिकित्सा में गुडूची 6, सारिवा (अनन्तमूल), मुनक्का, पुनर्नवा (गदहपूरमा) वन सौंफ गुड के साथ इन द्रव्यों का क्वाथ पान करने से वातज्वर का नाश होता है। हिंगुलेश्वर 120 मि. ग्रा. गोंदती भस्म 120 मि. ग्रा., भुने ज़ीरे का चूर्ण 1/2 ग्रा., इन तीनों को मिलाकर प्रातः दोपहर एवं सांयकाल में गरम जल के साथ रोगी को देने से वातज्वर नष्ट होता है।

वर्तमान काल में हम प्रकृति से दूर होते जा रहे हैं और यही कारण है कि हमारा शरीर रोगों का घर बनता जा रहा है। इस प्रकार में सुखी जीवन जीने की इच्छा रखने वाले बुद्धिमान व्यक्ति आहार-विहार-विचार और चेष्टाएं हितकारक रखने का प्रयत्न करें। क्योंकि उचित आहार, निद्रा, और ब्रह्मचर्य यह तीनों वात-पित्त और कफ के समान शरीर को स्वस्थ एवं निरोग बनाए रखते हैं।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-24

आयुर्वेदिक सिद्धान्तों द्वारा मधुमेह-चिकित्सा

सीमा साहनी, जम्मू

आयुर्वेद सभी रोगों की उत्पत्ति अनुचित आहार-विहार के कारण मानता है, जब दूषित आहार-विहार अधिक समय तक चलता रहता है तब शरीर की जीवनी शक्ति क्षीण हो जाती है अर्थात् दोष कुपित हो जाते हैं, तभी रोग उत्पन्न हो जाते हैं इसी कारण मधुमेह भी हो जाता है।

पहले कफज प्रमेह की उत्पत्ति कफकारी अहार-विहार से होती है बाद में रोग पुराना पड़ने पर मधुमेह हो जाता है। वातकारक आहार-विहार की अधिकता आरम्भ आरम्भ से ही मधुमेह हो जाता है। आयुर्वेद में मधुमेह वातज व्याधि माना गया है।

स्वास्थ्य सम्बन्धित समस्याओं में मधुमेह एक आम समस्या है। विगत दो दशकों में यह व्याधि संसार में आश्चर्यजनक रूप से बढ़ी है। वर्तमान काल में यह रोग 80 प्रतिशत मनुष्यों को हो चुका है। वर्तमान अध्ययन मधुमेह विषयक भारतीय पारम्परिक आयुर्वेदिक चिकित्सा के प्रभाव का आकलन हेतु किया गया है। जिससे यह ज्ञात हुआ कि इस रोग में सर्वप्रथम दोष की प्रधानता देखते हुए रोगी के शारीरिक बल को ध्यान में रखते हुए संशोधन, बृंहण, सन्तर्पण एवं संशमन आदि चिकित्सा करनी चाहिए।

*

TS & FA-25

नारायण विलास में केन्सर

डॉ. शक्तिकुमार शर्मा 'शकुन्त', राजस्थान

आज के युग में भयावह रोगों में सर्वाधिक घातक और आतंक का पर्याय बना रोग केंसर ऐसा प्रतीत होता है कि वह आज का सर्वाधिक नवीन रोग है जिसका निदान और चिकित्सा आज भी रहस्य बनी हुई है। साहित्य संस्थान में सुरक्षित 16वीं शताब्दी की रचना नारायण विलास में अन्य रोगों के साथ इस रोग का निदान एवं चिकित्सा अबुर्द, योनिकन्द, स्तन ग्रंथि के रूप में दे रखी है। जिन्हें क्रमशः शरीर के ऊपरी भाग में पाए जाने वाले गले और मुख के केंसर, गर्भाशय के केंसर तथा स्तन केंसर के रूप में जाना जा सकता है। इनके अनुसार गात्र में स्थित दोष मांस और रक्त को दूषित कर गोल, स्थिर, मंद पीड़ा वाली बहुत

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

समय में बढ़ने वाली एवं पकने वाली ग्रंथि को अर्बुद कहते हैं। इसके दो भेदों की चर्चा यहां रक्तार्बुद और मांसार्बुद के रूप में व्याख्यायित है। एक अर्बुद के ऊपर दूसरा अर्बुद एक साथ दो अर्बुद हों तो उसे द्विरर्बुद कहते हैं। इसी तरह एक बार अर्बुद का ऑपरेशन कर उसे निकालने के बाद उसी स्थान पर होने वाले दूसरे अर्बुद को अध्यर्बुद कहा जाता है।

इसकी चिकित्सा के रूप में वाष्प स्वेदन, शिरोविरेचन, विरेचन, शोधन प्रक्रिया है, दूसरी प्रक्रिया शस्त्र से विदीर्णकर शरीर से उसे बाहर निकालना है जिसे आज की भाषा में ऑपरेशन कहते हैं।

रावण के वैद्य सुषेण की चिकित्सा का उल्लेख करते हुए गंधक, शिलाजीत, सौंठ, विडंभ, यव की भस्म तथा कृकलाश का रक्त मिलाकर अर्बुद पर लेप करने का विधान दिया है।

अभी कुछ मास पूर्व राजस्थान पत्रिका में प्रकाशित हुआ है कि जर्मनी के किसी शोध संस्थान ने यह प्रतिपादित किया है कि केंसर पर अदरक के रस का लेप वही क्रिया करता है जो रेडियो थेरेपी करती है। इससे केंसर गांठ संकुचित होकर नष्ट हो जाती है। यदि नारायण विलास के उपर्युक्त प्रयोगों को किसी कुशल चिकित्सक की देखरेख में किया जाए तो ये भी चामत्कारिक प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं।

*

TS & FA-26

संङ्गीत के संस्कृत ग्रन्थों में वाद्य उपकरणों की परम्परा और विकास

डॉ. रेखा त्रिपाठी, इलाहाबाद

भारतीय संङ्गीत मूलतः संस्कृत ग्रन्थों में वर्णित संङ्गीत विषयक तत्त्वों के आधार पर ही अपनी प्राचीनता एवं उसके क्रमिक विकास को प्रमाणित करने में सक्षम सिद्ध होती है। संङ्गीत के मूल उत्स वस्तुतः वैदिक ग्रन्थों में ही दृष्टिगत होने लगते हैं। ऋग्वैदिक काल में 'समन' जैसे उत्सवों का उल्लेख मिलता है। इसमें याज्ञिक क्रियाएँ उत्साहपूर्वक नाच गाने के साथ सम्पन्न होती थीं। शनैः शनैः सामवेद में तो संङ्गीत के सम्पूर्व तत्त्व विकसित होते हुए परिलक्षित होते हैं। संङ्गीत के तीनों ही तत्त्व गायन, वादन और नर्तन ये तीनों विधाएँ उत्तरोत्तर विकसित होती रहीं। आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में संङ्गीत का शास्त्रीय स्वरूप देखनेको मिलता

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

है उसी को आधार मानकर संस्कृत में अनेक संङ्गीत परक ग्रन्थों का प्रणयन किया गया। इनमें मातङ्गकृत बृहद्देशीय, पार्श्वदेवकृत संङ्गीतसमयसार, नान्यदेव का सरस्वती हृदयालंङ्कार, शार्ङ्गदेवकृत संङ्गीतरत्नाकर, पुण्डरीककृत सद्रांग-चन्द्रोदय, रागमाला, रागमञ्जरी, नर्तननिर्णय पं. सोमनाथ द्वारा प्रणीत रागविवोध, दामोदरपण्डितकृत संङ्गीतदर्पण, अहाबलकृत संङ्गीतपारिजात, पं. हृदयनारायण देवकृत हृदय-कौतुक, पं. भावभाट्टरकृत अनूपविलास, अनूपांकुश, अनूपसंङ्गीतस्त्नाकर, महाराणाकुम्भनदेवकृत वाद्यरत्नकोश, श्रीकंण्ठपंडितकृत रसकौमुदी, राधाकान्तदेवकृत शब्दकल्प प्रुभ, पं. कृष्णानन्द व्यासकृत रागकल्पद्रुम, पं. विष्णुनारायण भातखण्डे द्वारा प्रणीत हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, अभिनव रागमञ्जरी, लक्ष्यसंगीत इत्यादि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। इन ग्रन्थों में भरत का नाट्यशास्त्र, संङ्गीतरत्नाकर संङ्गीत दर्पण आदि महत्त्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थ माने जा सकते हैं।

*

TS & FA-27

कालिदास के ऋषि एक मूल्यांकन

सुश्री संगीता कुमारी दुमका, झारखंड

कालिदास के रूपकों में से विश्व विख्यात अभिज्ञान शाकुन्तलम् के विस्तृत कलेवर में कुल चार ऋषियों का उपस्थापन हुआ है–विश्वामित्र, दुर्वासा, ऋषिकण्व एवं मारीच। ऋषि मन्त्रद्रष्टा होते हैं, उनका परमपिता से साक्षात्कार हुआ रहता है अत:एव उनमें सांसारिक माया के बन्धन अथवा स्वार्थादि के चिह्न तक नहीं मिलते। उन्हें दैहिक, दैविक और भौतिकरूपी त्रिविधताप भी व्याप्त नहीं कर सकते। वे अहर्निश सांसारिक गूढ रहस्यों के उद्बोधन, साथ ही लोकल्याण को सर्वाधार बनाए जीवन्तता की कामना करते हैं। सांसारिक मान-प्रतिष्ठा एवं भूख प्यास की उन्हें चिन्ता तक नहीं होती। इसके विपरीत इनके ऋषि उपर्युक्त नियमों पर नियमित नहीं उतरते। ऋषि विश्वामित्र कहने भर के लिए तपस्वी हैं, तपोबल पर उन्हें गर्व भी है। तपबल के आधार पर वे इन्द्रासन तक में सत्तासीन हो सकते हैं नानाविध भोज्य वस्तुओं को अपने इर्द-गिर्द फैला सकते हैं। मेनका को पत्नी बना सकते हैं परञ्च आत्मजा शकुन्तला को रामभरोसे छोड़ पिताधर्म का पालन नहीं कर सकते हैं। ऋषिकण्व ऐसे ऋषि हैं जिनके अन्त:करण में दया है, किसी के वे आश्रय हो सकते हैं। उसका लालन-पालन भारतीय सामाजिक मर्यादा के अनुरूप सारे कार्यों का सम्पादन अपना धर्म समझते हैं। चाहे वह शकुन्तला ही क्यों न हो। शकुन्तला की किलकारियों, उस पर उनकी पैनी नजर भी उनकी जीवन्तता का राज होता है, जब तक उसका विवाह नहीं हो जाता, वह दुल्हन बनकर अपने पतिगृह

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नहीं चली जाती, वास्तविक पिता कण्व अत्याधिक चिन्तित दिखते हैं। नवविवाहिता शकुन्तला के हस्तिनापुर गमन पर तो उनका पिता हृदय सीमा को तोड़ जाता है। एक ऐसे भी ऋषि हैं जिन्हें मात्र स्वकीय मान-प्रतिष्ठा की चिन्ता है, तनिक मान-सम्मान में विलम्ब हुई नहीं कि वे अपने तपबल का प्रभाव आजमाने लगते हैं। ऋषि दुर्वासा ऐसे ही व्यक्ति हैं तभी तो जिन्हें अबोध, नवविवाहिता, राजवैभव की स्वर्णिम परिकल्पना में खोई शकुन्तला भी उनके शाप का भाजक बन जाती है, अन्त में, महाकवि के एक ऐसे तेजस्वी ऋषि भी हैं जिनके अन्तः तेज तक से दिशाएँ भास्वरित रहती हैं, जो सबों को ऐश्वर्य से भर देने की क्षमता से युक्त होते हुए भी स्वतः वायुसेवन द्वारा ही अपनी जीवन्तता बनाए हुए हैं। सर्वत्र लोक निष्णात नियमों का बखान करते हैं, ऋषि पत्नियों सहित अपनी पत्नी अदिति को पातिव्रत्य धर्म का पाठ पढ़ाते हैं।

निष्कर्षतः महाकवि के ऋषि कल्याणकारी होने चाहिए। तपश्चर्या के पुनीत कार्यों को सम्पन्न करते रहने के साथ-साथ उनको लोक कल्याण भावना सर्वोपरि होनी चाहिए।

*

TS & FA-28

यौगिक परम्परोक्त प्राणायाम एवंउसका चिकित्सकीय लाभ

अमर बाजपेयी, वाराणसी

प्राणस्य आयामः प्राणायामः। प्राणायाम्, शब्द प्राण में आङ् उपसर्ग पूर्वक यम् (नियन्त्रणार्थक) धातु से धुञ् प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। प्राणायाम का शाब्दिक अर्थ होता है प्राण का नियन्त्रण या निरोध। जैसा कि स्मृति में कहा गया है–

"प्राणो देहगतो वायुरायामस्तन्निबन्धनम्"।

पातंजल योगदर्शन में प्राणायाम को पांच सूत्रों में व्याख्यायित किया गया है। आसनसिद्ध हो जाने पर श्वास-प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम है। प्राणायाम वाह्यवृत्ति (रेचक), अन्तःवृत्ति (पूरक) और स्तम्भवृत्ति (कुम्भक) के भेद से तीन प्रकार का होता है। यह त्रिविध प्राणायाम देश, काल और संख्या से परीक्षित होता हुआ दीर्घ व सूक्ष्म होता जाता है। वाह्य वृत्ति (रेचक) और अन्तरवृत्ति (पूरक) दोनों से रहित चौथा प्राणायाम है। अर्थात् जब प्रणायाम में दीर्घता और सूक्ष्मता आ जाती है यानि रेचक और पूरक प्राणायाम सिद्ध हो जाते हैं तो इन दोनों की गतियों का पूर्ण निरोध ही चतुर्थ प्राणायाम या 'केवल कुम्भक' प्राणायाम है। याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है–

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रेचकं पूरकं त्यक्त्वा यत्सुखं वायुधारणम्।
प्राणायामोऽयमित्युक्तः स वै कंवलकुम्भकः॥

प्राणायाम के अभ्यास से ज्ञान रूपी प्रकाश पर पड़ा हुआ आवरण नष्ट हो जाता है तथा मन की धारणाओं में योग्यता हो जाती है। अर्थात् मन धारण के योग्य हो जाता है, प्राणायाम् के अभ्यास से।

योगतंत्रादि परम्परा में प्राणायाम् को विशेष महत्व दिया गया है क्योंकि प्राण और मन में बहुत ही गहरा सम्बन्ध है जैसा कि हठयोगप्रदीपिका में कहा गया है–

चले वाते चलं चित्तं निंश्चले निश्चलं भवेत्।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्॥

अर्थात् प्राणवायु के चलायमान होने से चित्त भी चलायमान होता है और प्राणवायु के निश्चल होने पर चित्त भी निश्चल होता है और प्राणवायु तथा चित्त इन दोनों के निश्चल होने पर योगी स्थाणुरूप को प्राप्त होता है यानि स्थिर और दीर्घ काल तक जीता है।

हठयोगप्रदीपिका में कुम्भक के आठ भेद बतलाए गए हैं–

सूर्यभेदनमुज्जायीं सीत्कारीं शीतलीं तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्टकुभकाः॥

अर्थात् सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा, प्लाविनी ये आठ प्रकार के कुम्भक प्राणायाम हैं।

*

TS & FA-29

'मानवाधिकार' शिक्षा का महत्त्व

धनेश्वर पण्डित

मानवाधिकार शिक्षा का अर्थ है वैसी शिक्षा जो विश्व के मानव समुदाय के लिए हितकर हो, कल्याणकारी हो, समाजहित, देश हित तथा विश्व हित की भावना से प्रेरित हो। यह मनुष्य का पूर्ण जीवन शैली है, जो मानवीय कर्तव्य के साथ चलता है। मानवीय अधिकार और कर्तव्य का परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। दोनों की सम्पूर्णता एक दूसरे के बिना अधूरी है। अपने अधिकार को हम परहित से परे होकर नहीं देखें। मानवीय कर्तव्य और अधि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कार के बीच सर्वश्रेष्ठ सांमञ्जस्य सम्भव है। मानवाधिकार शिक्षा व्यक्ति को अपने निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र में न्याय एवं उदारता पूर्ण कार्य करने का कौशल प्रदान करती है। यह कार्य-शैली मनुष्य को शान्ति संकट कालीन दोनों ही परिस्थिति में घबड़ाने से बचाती है। जब कोई व्यक्ति मुसीबत या संकट में स्थिर रहेगा तभी तो वह अपने अन्दर जो निहित ऊर्जा (Potential) है उसका समुचित उपयोग कर पाएगा। इसी के माध्यम से व्यक्ति अपने मस्तिष्क एवं आत्मा के सर्वोत्तम अंश को अच्छा से अच्छा ढंग से प्रकट कर पाएगा।

मानवाधिकार शिक्षा का अर्थ है–जागरुक होना। जागरुक होने से उन्हें कोई व्यक्ति लालच में फंसा कर मुसीबत में नहीं डाल सकता है, क्योंकि इस शिक्षा से उसके अन्दर सबसे पहले आत्म-सम्मान एवं आत्म-निर्णय की भावना जागृत होती है जिससे वह अपना सही पथ का चयन कर सकता है।

*

TS & FA-30

वृक्षारोपण एवं वास्तुचिन्तन

डॉ. शीला चौबीसा, जयपुर

आज समस्त विश्व पर्यावरण असन्तुलन को लेकर चिन्तित नजर आता है और विदेशों में उपजी चिन्ता भारतीय जनमानस को भी उद्वेलित कर रही है। पर्यावरण के प्रति हमारी चिन्ता का कारण अपनी पुरातन ज्ञान परम्परा की अवहेलना या विस्मृति ही है। यदि हमारे प्राचीन मनीषियों के चिन्तन से परिचित हों तो पर्यावरण स्वतः ही व्यवस्थित हो सकता है। मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओं में जल, वायु और मकान महत्त्वपूर्ण हैं और हमारी परम्परा पंचमहाभूतों के सन्तुलन पर जोर देती है। मनुष्य घर का निर्माण कर अपनी जीवनचर्या परिचालित करता है और एक श्रेष्ठ घर वही है, जिसमें रहते हुए मनुष्य असीम शान्ति का अनुभव करे। वास्तुशास्त्र प्रकृति के साथ मनुष्य के तादात्म्य का शास्त्र है और गृहनिर्माण करते समय प्राकृतिक तत्त्वों से व्यक्ति का जुड़ाव बना रहे, इस चिन्तन को लेकर प्रवृत्त होता है।

भारतीय परम्परा सनातन काल से वृक्षारोपण को महत्त्व देती आई है और एक वृक्ष लगाने का पुण्य दस कन्याओं के विवाह के समान माना गया है। वृक्षच्छेदन को हमारे यहां पातकों में परिगणित किया गया है। पर्यावरण सन्तुलन में वृक्षों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। आज घटते जंगल पर्यावरण असन्तुलन का महत्त्वपूर्ण कारण हैं। वृक्षारोपण एक महान कृत्य है। वास्तुशास्त्र में वृक्षारोपण के सम्बन्ध में विविध नियमोपनियम वर्णित किए गए हैं। घर में

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कौन-कौन से वृक्ष लगाने चाहिए। किस दिशा में कौनसा वृक्ष लाभदायी होता है। पूर्व में सघन वृक्ष लगाने का निषेध एवं पश्चिम में सघन वृक्षारोपण के क्या कारण हैं? इनके पीछे विद्यमान वैज्ञानिक कारणों का विश्लेषण करें तो आश्चर्यजनक तथ्य सामने आते हैं। प्रस्तुत शेध पत्र में वृक्षारोपण एवं वास्तुचिन्तन के वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक एवं धार्मिक कारणों का विश्लेषण किया जाना अपेक्षित है।

*

TS & FA-31

वास्तुविज्ञान का मूलस्त्रोत है वैदिक वाङ्मय

अमनकुमार शर्मा, जम्मू

विश्ववाङ्मय के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद भरतवर्ष एवं भारतीय संस्कृति के प्राण हैं। भारतीय परम्परा में वेदों को साक्षात् ईश्वर स्वरूप माना गया है तथा वेदों के ज्ञान को स्वत: प्रमाण माना गया है। वेद सभी प्रकार की विद्याओं के मूलस्त्रोत हैं। वेदों में आध्यात्मिक ज्ञान के साथ-साथ भौतिक विज्ञान के बीज संक्षिप्त रूप में ही सही वेदों में अवश्य प्राप्त होते हैं। वेदों में 'वास्तुविज्ञान' सम्बन्धी तथ्य भी अनेक स्थानों पर प्राप्त होते हैं। वेदों में अनेक प्रकार के भवनों के नाम गिनाए गए हैं। ऋग्वेद में गृह एवं गृहद्वार के निर्माण के सम्बन्ध में कहा गया है कि गृह के द्वार बहुत वायु के प्रवेश योग्य, दृढ़, सुयोग्य, अधिक प्रस्थ कपाट युक्त एवं सुसज्जित होना चाहिए। गृह के भीतर वायु के सखिभूत निवास की बात ऋग्वेद में प्राप्त होती है। गृह के अन्दर अग्नि प्रज्जवलन के महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि यह अग्नि अन्धकार एवं अन्धकार के आश्रित दंश मशकादि कीटों का नाश कर गृह के भीतर के वातावरण को शुद्ध एवं स्वच्छ बनाती है तथा इससे गृह की आर्दता (सीलन) भी नष्ट हो जाती है। गृहनिर्माता सामग्री के रूप में मिट्टी, पत्थर, लकड़ी एवं घास-फूस के प्रयोग के संकेत वैदिक वाङ्मय में प्राप्त होते हैं। मनुष्यों के साथ-साथ पशुओं के रहने के स्थान जिसे 'आवसथ' कहा जाता था के निर्माण की संसूचना भी प्राप्त होती है। वेदों के साथ-साथ वैदिक वाङ्मय के अन्य अंगों उपनिषदों, ब्राह्मणों आदि में भी 'वास्तुविज्ञान' सम्बन्धी अनेक विचार मिलते हैं। उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से यह कहा जा सकता है कि ''वास्तुविज्ञान का मूल स्त्रोत है वैदिक वाङ्मय।'' सम्पूर्ण तथ्यों का निदर्शन शोधपत्र में सन्निहित है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वास्तुशास्त्रीय पुरनिवेशः आधुनिक नगरस्थापत्य-हेतु दिशा निर्देश

प्रो. केदार नाथ शर्मा एवं **विद्याधर सिंह** (शोध छात्र) जम्मू

प्राचीन भारतीय वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थ भारतियों के निर्माण सम्बन्धी कौशल का एक सुन्दर निदर्शन है। वैदिक युग में भारतीयों का जीवन धर्म प्रधान था। अतः उनकी रचनात्मक ऊर्जा का अधिकतर प्रयोग भी धार्मिक स्थलों के निर्माण में ही देखने को मिलता है। वैदिक युगीन भारतीयों का निवास स्थल यद्यपि धर्मसम्बद्ध होते थे। परन्तु उनमें सरलता और सौम्यता थी। उनके निर्माण कौशल का समस्त वैभव उनके द्वारा बनाए गए मन्दिरों की भव्यता में दिखलाई पड़ता है।

कालक्रम के अनुसार भारतीयों का जीवन जब भौतिकता की ओर बढ़ता गया तो उन्होंने अपने निवास स्थलों को भी वैभव सम्पन्न बनाया। प्रथमतः यह प्रक्रिया राजाओं और राजपुरुषों के भवनों में दिखलाई पड़ती है। बाद में क्षमता के अनुसार साधारण जनों ने भी अपने निवास और व्यवसाय के लिए छोटे-बड़े भवनों का निर्माण करवाया। सिंधु घाटी और हड़प्पा मोहनजोदड़ो (3000-3500 ई. पू.) के प्राचीन भवन, तरणताल और प्रासाद के भग्नावशेषों को देखकर सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सभ्यता के प्रथम चरण में यहाँ के शिल्पी विद्वानों ने सर्वाङ्गीण सफलता अर्जित कर ली थी। उस युग में वास्तु का अर्थ होता था। एक ऐसा गृह या भवन जो इसमें रहने वाले को सुख, आराम, सुरक्षा प्रदान करे, सम्पन्नता धर्मार्थकाममोक्षा की सभी शाखाओं की उपलब्धि करवाए।

स्थापत्य कला से सम्बद्ध मानसार, मयमत, समराङ्गणसूत्रधार, अपराजित-पृच्छा, शिल्परत्न, वास्तुराजवल्लभ एवं विविध पुराणों, रामायण-महाभारत आदि में वर्णित पुर आदि के निर्माण से सम्बद्ध विवरण आधुनिक नगर योजना के लिए प्रेरणादायक हो सकते हैं। भूगर्भ-विज्ञान से सम्बद्ध भूमि चयन जैसा अति सूक्ष्म विषय हो या जनसाधारण की यातायात की सुविधा को ध्यान में रखकर बनाए जाने वाले नगर के राजमार्ग, महारथ्या, उपरथ्या, रथ्या, यानमार्ग, जङ्घापथ, घण्टामार्ग आदि विविध-विशेषताओं से युक्त मार्गों का वर्णन हो, या वर्णों एवं विभिन्न व्यवसायिकों के लिए पृथक-पृथक बसाने की बात हो अथवा नगर सौन्दर्यीकरण की बात हो या नगर सुरक्षा के उपायों का विधान हो, हर क्षेत्र में वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थ आधुनिक नगर योजनाकारों को दिशा-निर्देश करने में सहायक हो सकते हैं।

प्रस्तुत पत्र में (1) भूमि चयन (2) वास्तु पद विन्यास, (3) शिलान्यास, (4) जातिवर्णाधिवास, (5) सुरक्षा उपाय, (6) देवतुल्यीकरण एवं सौन्दर्यीकरण जैसे नगरादि निवेश

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

की दृष्टि से आवश्यक बातों को प्राचीन वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों के आधार पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाएगा।

*

TS & FA-33

संस्कृत साहित्य में स्त्रियों के साम्पत्तिक मानवाधिकार

डॉ. सुनीता जायसवाल, उत्तरप्रदेश

मानव अधिकार वे न्यूनतम अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक रूप से प्राप्त होना चाहिए, क्योंकि वह मानव परिवार का सदस्य है। जो मानवाधिकार मानव गरिमा को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं, उन्हें मानवाधिकार कहा जाता है।

महिलाओं के अधिकारों के अभिवर्धन हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की उद्देशिका में मूल मानवाधिकारों, सामाजिक व्यक्ति की गरिमा और मूल्य, पुरुषों और स्त्रियों के समान अधिकारों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय तन्त्र के उपयोग की घोषणा की गई है। स्त्रियों की मनुष्यों के साथ समता का उपबन्ध चार्टर के अनुच्छेद 08 में किया गया है।

चार्टर के अनुच्छेद 17 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं तथा दूसरों के साथ उम्पत्ति रखने का अधिकार है, कोई भी अपनी सम्पत्ति से मनमाने तौर पर वञ्चित नहीं किया जा सकता है। स्त्रियों के यह साम्पतिक मानवाधिकार तैत्तिरीय संहिता, काष्ठक संहिता, मैत्रायिणी संहिता, शतपथ ब्राह्मण, ऋग्वेद, मनुस्मृति, बौधायन धर्मसूत्र, वशिष्ट धर्मसूत्र, गौतम धर्मसूत्र, याज्ञवल्क्य स्मृति, कौटिल्यीय अर्थशास्त्र आदि संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों में पर्याप्त रूप में परिलक्षित होते हैं।

*

TS & FA-34

संस्कृत ग्रन्थों में स्वप्नोल्लेखों की वैज्ञानिकता

डॉ. गोविन्द गन्धे, ग्वालियर

संस्कृत ग्रन्थों में मनुष्य को निद्रावस्था में दिखाई देने वाले स्वप्नसंसार के विषय में पर्याप्त विवेचन प्राप्त होता है। यह विवेचन न केवल सांगोपांग है अपितु क्रमवद्ध रूप में वैज्ञानिकता के साथ उपलब्ध होना है। चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थों में व्यक्ति के खान-पान, उसकी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शारीरक अवस्था आदि को आधार बनाकर स्वप्नविषयक विवेचन प्राप्त होता है। दर्शन एवं अन्यग्रन्थों में अलौकिकतत्व की दृष्टि से स्वप्न का वर्णन प्राप्त होता है।

स्वप्नोत्पत्ति के कारण, स्वप्न का फलाफल एवं स्वप्नों की सार्थकता तथा निरर्थकता, साथ ही स्वपनदर्शन के समय के आधार पर उसके फलित होने की अवधि की सूचना निश्चय ही स्वप्नविषय को वैज्ञानिक आयाम प्रदान करनी है। इन्हीं सब बिन्दुओं को केन्द्र में रखकर प्रस्तुत विषय को इस शोध पत्र में विस्तार के साथ वर्णित किया गया है।

*

TS & FA-35

सूर्य-स्तवन का भैषज्य मूल्यांकन

भोलेन्द्र पाण्डेय, जमशेदपुर

भगवान् मरीचिमाली आकाश मण्डल के समुज्ज्वल मणि के रूप में अन्धन्तम के नाशक है, वही समग्र रोगों के विनाशक विधातक भी हैं आयुर्वेदान्तर्गत चिकित्सा की विभिन्न पद्धतियों में सूर्य-चिकित्सादिका उल्लेख प्राप्त होता है। प्राकृतिक-चिकित्सा में सूर्य चिकित्सा को विशेष स्थान प्राप्त है। विश्व का सम्पूर्ण भौतिक विकास सूर्य की सत्ता पर ही निर्भर है।

सूर्य की शक्ति के बिना पौधे उग नहीं सकते, वायु का शोधन हो नहीं सकता तथा जल की उपलब्धि भी संभव नहीं हो सकती। शारीरिक रसों का परिपाक सूर्य की ऊष्मा से ही सम्पन्न होता है। शारीरिक शक्तियों का विकास, अंगों की पुष्टि तथा मलों का निःसरण आदि कार्य भी सूर्य की विकास, शक्ति द्वारा ही सम्पन्न होते हैं।

सूर्य में प्रबल रोग नाशक शक्ति विद्यमान है जिससे कठिन से कठिन रोग भी दूर किये जा सकते हैं। रक्त का पीलापन, पतलापन, लोहे की कमी, नसों की दुर्बलता आदि रोगों में सूर्य चिकित्सा अत्यन्त फलदायी है। सूर्य की रक्ताम किरणें मात्र रोगोन्मूलनकारक ही नहीं, वरन् दीर्घायु कारक और अनिष्ट-निवारक भी है। इसी कारण ऋषियों एवं आचार्यों ने सूर्य नमस्कार एवं सूर्योदयपासनादि का विधान किया था। 'अस्योपासनमात्रेण सर्वरोगात् प्रमुच्चते' कहकर पद्मपुराण ने उनके स्तवन एव उपासना पर बल दिया है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-36

वैदिक सामगानः शास्त्रीय संगीत का मूलाधार

डॉ. निशा पाठक, कानपुर

पूर्वीय साहित्य, ज्ञान-विज्ञान और मानव सभ्यताओं का अजस्त्र स्रोत वेद है। वेदों में संगीत का उल्लेख इतना अधिक है कि उससे वैदिक कालीन संगीत संस्कृति का पता चलता है। उस काल कें संगीत का स्वरूप पूर्णरूपेण आध्यात्मिक था तथा उसे मोक्ष प्राप्ति का साध न माना जाता था।

सामगान वैदिक काल की गायन कला का प्रतिनिधित्व करता है। सामवेद का दर्शन ऋचाओं को गेयता देने के लिए किया गया था। ऋग्वेद में वे मंत्र जिनमें देवताओं की स्तुति की गई है, और जिन्हें गाया जा सकता है, उन्हें 'साम' के रूप में महर्षि वेद व्यास ने संग्रह किया। "ऋचि अध्यूढ़ं साम गीयते" (छा. उ.) अर्थात् साम ऋक् पर अधिष्ठित है। ऋग्वेद के मंत्रो के शब्दों का स्वर निबंधन ही साम है। भागवतगीता में श्रीकृष्ण ने "वेदानां सामवेदोऽस्मि" कह कर सामवेद की गरिमा को प्रकट किया है।

वैदिक यज्ञानुष्ठान एवं विभिन्न संस्कारों में सामगान का विशेष महत्व है। यजुर्वेद की तैत्तरीय संहिता में कहा गया है "अयज्ञोवा एषः योऽसामा" अर्थात् जिस यज्ञ में सामगान न हो वह यज्ञ ही नहीं है।

वैदिक संगीत के शास्त्रीय रूप में सामगान प्रचलित था। सामवेद में दो प्रकार के संकलन तैयार किये गए (1) अर्चिक संहिता में ऋग्वेद की उन ऋचाओं का संकलन था जिन पर साम गाए जाते थे तथा जिनका उच्चारण उदात्त, अनुदात्त, एवं स्वरित इन तीन स्वरों से युक्त था। (2) गान संहिता में ऋचाओं का स्वर सहित गेय रूप संकलित है, जिसके अन्तर्गत गान करते समय क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र अतिस्वार्य इन स्वरों से युक्त गान किया जाता था।

सामो को विशिष्ट काल व ऋतुओं में गाने का विधान भी वैदिक साहित्य में मिलता ह। इसी नियम का गांधर्व व देसी संगीत में काल का ऋतुओं पर आधारित रागगान पर प्रभाव माना जा सकता है। ऋषियों का विशिष्ट सामों के गायक के रूप में भी उल्लेख मिलता है। इसी परम्परा का विस्तार कालान्तर में विशिष्ट नामों से प्रसिद्ध रागों के निर्माण के रूप में दिखई देता है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-37

भद्रवाही भाषा में उपलब्ध औषधि नामों का अध्ययन आयुर्वेद के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. नंजला राठौर, जम्मू

भद्रवाही भाषा का स्रोत और विकास प्राचीन भारतीय आर्य भाषा से ही माना जाता हैं। आयुर्वेदिक जड़ी-बूडियों के अध्ययन के उद्देश्य से ही भद्रवाही भाषा में उपलब्ध 45 जड़ी-बूटियों के नामों को अपने अनुसन्धान का आधार बनाया। जम्मू नगर से 125 मील पूर्वोतरीय दिशा भाग में चारों तरफ पहाड़ो से घिरा हुआ तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के प्राकृतिक गुण लिये हुये भद्रवाह नामक एक बड़ी पहाड़ी तहसील है।

घने जंगलों से ढके पहाड़ विविध प्रकार की जड़ी-बूटियाँ के वनस्पति संसाधन हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार की सुगन्ध वाली जड़ी-बूटियाँ इस वादी की प्राकृतिक सौन्दर्य की आभूषण हैं। भद्रवाह को छोटा काश्मीर भी कहते हैं। यह वादी स्विटजरलैन्ड की तरह मोहित करने वाले लुभावन दृश्य प्रदान करती हैं। पहाड़ों के कारण समय-समय पर वर्षा होती है जिससे घाटी हरी-भरी दिखाई देती है। व्यवहारिक भिन्नताओं और भिन्न जलवायु के कारण भद्रवाह की घाटी विभिन्न वनस्पतियों के लिए समृद्ध है।

*

TS & FA-38

हृदय रोग, निदान और उपाय–आयुर्वेद की दृष्टि में

शीतल शर्मा, जम्मू

मनुष्य के समस्त शारीरिक अंगों का अपना-अपना अनिवार्य महत्त्व है, इन अंगों में 'हृदय' का मानव शरीर में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। रक्त का आधार तथा अपने संकोच और विस्तार से रक्त का समस्त शरीर में परिचालन करने वाला यन्त्र 'हृदय' कहलाता हैं शरीर के अंग-प्रत्यंगों की हृष्टि-पुष्टि के लिए हृदय का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। अतः हृदय को मानव के प्राणों का आधार तथा भावनाओं का प्रतीक माना जाता है। हृदय ही एक ऐसा माध्यम है जिसमें जीवनी शक्ति प्राणवायु के संचरण सहित अशुद्ध रक्त का शुद्धिकरण एवं शुद्ध रक्त का वहन सम्भव होता है। हृदय के सर्व अंगों के प्रकृत रहने पर हृदय तथा शरीर का कार्य भी प्राकृतिक रहता है। अतः इस के विकृत होने पर हृदय का कार्य भी विकृत

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हो जाता है, जिससे हृदय रोग उत्पन्न होता है। चरकसंहिता के अनुसार अत्यधिक व्यायाम, तीक्ष्ण और अत्यन्त विरेचन, चिन्ता, भय, त्रास, किसी रोग का उपचार न होना, अधिकवसायुक्त भोजन का सेवन, हृदय रोग की वृद्धि के कारण है। इसके अतिरिक्त अति गर्म व गुरु भोजन कषाय तथा कड़वे पदार्थों के सेवन से, अधिक मद्यपान का प्रयोग करने से हृदय रोग उत्पन्न होते है। चरकसंहिता के अनुसार हृदयरोग की उत्पत्ति के प्रमुख पाँच प्रकार है–1. वातजन्य, 2. कफजन्य, 3. पित्तजन्य, 4. सान्निपातिक या त्रिदोषज, 5. कृमिजन्य रोग। प्राचीन चिकित्सा पद्धति में आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति ही एकमात्र ऐसा उपाय है जो रोग का नाश तो करती ही है साथ ही दुष्प्रभाव रहित भी है। चरकसंहिता के आधार पर हृदय रोगों का निदान निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

नागबला की जड़ तथा अर्जुन की छाल के चूर्ण को गाय के दूध के साथ पान करने से हृद्रोग में लाभ मिलता है।

कुटकी और मुलहठी इन दोनों के समान भाग के कल्क को मिश्री के शर्बत में घोलकर सेवन करना चाहिए। अर्जुनवृक्ष की छाल के चूर्ण के साथ, हजारपुट, अभ्रक भस्म को अर्जुन की छाल के काढ़े में सात बार भावना देकर रोगी को प्रयोग करना चाहिये। सम्पूर्ण विवेचन शोधपत्र में दृष्टव्य है।

*

TS & FA-39

वास्तुशास्त्रीय गृह-निर्माण में मुख्य-द्वार-निर्णय

मोहिन्द्र नाथ शर्मा, जम्मू

गृह, भवन, मंदिरादि के निवेश में द्वार एक अपरिहार्य रचना है। गृह, भवनादि के आभ्यन्तर-प्रवेश एंव बाह्य-निर्गमन के लिए निर्मित विशेष प्रकार के छिद्र को 'द्वार' कहते हैं–

"द्वरति निर्गच्छति गृहाभ्यान्तरादनेनेति द्वारम्"

द्वार केवल भीतर-बाहर आने जाने का साधनमात्र ही नहीं, अपितु हिसक पशुओं एंव अनपेक्षित व्यक्तियों से सुरक्षा का साधन भी है।

विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न समयों पर प्रचलित वास्तुकला के अनुसार द्वारों का रूप बदलता रहा है। प्राचीन भवनों के अवशेषों में ऐसे सभी रूपों के द्वार मिलते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भारतीय वास्तुकला दैवी भावना से ओतप्रोत है। यहाँ का गृह-कर्म सनातन से धार्मिक-कृत्य के रूप में प्रतिष्ठित रहा है। गृह का मुख्य-द्वार भी इस प्रभाव से अछूता नहीं रहा है। भारतीय वास्तुशास्त्रियों ने गृह के अन्य अंगो-उपागों की चर्चा करते हुए गृह के मुख्य-द्वार-निर्णय के विषय में भी अनेक दैवी-सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं।

प्राचीन भारतीय वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में गृह के मुख्य-द्वार निर्णय के विषय में पर्याप्त संकेत मिलते हैं। जैसे-गृहस्वामी की राशि के आधार पर मुख्य-द्वार-दिशा का निर्णय, ब्राह्मण आदि वर्णो के आधार पर दिशा का निर्णय, वास्तु-पद-विन्यास के आधार पर दिशा-निर्धारण, क्षेत्रफल की आय के अनुसार दिशा का निर्णय, दिशा निर्धारण के पश्चात् स्थान-विशेष में द्वार-स्थापना, द्वार-माप, द्वार-वेध, द्वार के गुण-दोष, द्वार के लिये उपयोगी काष्ठादि सामग्री, द्वार लगाने के लिये शुभाशुभ मुहूर्तों के साथ-साथ पूर्वादि आठों दिशाओं में स्थित द्वारों का फल भी वर्णित है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में मानसार मयमत, समराङ्गणसूत्रधार बृहत्संहिता वास्तुराजवल्लभ एवं अग्निपुराण इत्यादि प्राचीन वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों के आधार पर मुख्य-द्वार-निर्णय की समीक्षा की जाएगी।

*

TS & FA-40

वैदिक साहित्य में पर्यावरण चिन्तनः एक वैज्ञानिक दृष्टि

डॉ. नन्दन भार्गव, कोटा

'परितः आवृणोति इति पर्यावरणम्' आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि कोण से जीव के चारों ओर विद्यमान भौतिक, रासायनिक एवं जैविक परीस्थितियाँ उसका पर्यावरण है। वैदिक काल पर्यावरणीय स्वर्णिम युग था जो कि अप्रदूषित था। पेड़-पौधों की सुरक्षा, जल की स्वच्छता, यज्ञ आदि का अत्यधिक महत्त्व था।

प्रस्तुत शोध पत्र में अग्नि, वर्षा, जल, जलविज्ञान, मेघनिर्माण, जलवृष्टि विज्ञान, यज्ञ, सूर्य, और ऊर्जा, वनस्पति चेतना, अजैविक कारण (Abiotic factors), स्थलाकृतिक कारक (Topographical factor), जलीय कारक (Water fctor), जैविक कारक (Biotic factor) का विभिन्न वैदिक ऋचाओं में वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन किया गया है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-41

प्राचीन संस्कृत साहित्य में देवप्रासाद निर्माण के हेतु एवं प्रयोजन

मञ्जु देवी, जम्मू

प्राचीन संस्कृत साहित्य में देवप्रासाद अर्थात् वर्तमान कालीन मन्दिर निर्माणके कारणों एवं प्रयोजनों का विशद विवरण उपलब्ध होता है जिनमें मुख्यतया पुराण-साहित्य एवं वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थ आते हैं। इन ग्रन्थों का विस्तृत एवं सूक्ष्म अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि देवप्रासाद का प्रमुख हेतु समाज में कर्मकाण्ड की गहरी धार्मिक भावना तथा मूर्ति पूजा की भावना रहा है। देवप्रसाद निर्माण के मुख्य हेतुओं में पुर्नजन्म एवं कर्म सिद्धान्त भी निहति हैं। इसी प्रकार देवप्रासाद निर्माण का एक अन्य हेतु स्वर्ग प्राप्ति भी रहा है। इसके अतिरिक्त मोक्ष प्राप्ति के लिये भी देवप्रासाद का निर्माण हुआ। भारतीय जीवन सदैव ही अध्यात्मक से अनुप्राणित रहा है। बिना प्रयोजन के साधारण बुद्धि वाले मानव भी साधारण कार्य नहीं करते। मन्दिर निर्माण देव प्रतिष्ठा आदि कार्यों के भी अनेक प्रयोजन अवश्य ही रहे हैं। देवप्रासाद निर्माण का मुख्य प्रयोजन धार्मिक चेतना एवं मोक्षाभिलाषा था। पुण्य प्राप्ति भी देवप्रासाद निर्माण का एक प्रयोजन था। देवप्रासाद निर्माण का अन्य प्रयोजन शुभ फल प्राप्ति भी रहा है। जो फल यज्ञों के द्वारा नहीं प्राप्त होते हैं वह देवालय अर्थात् देवप्रासाद निर्माण से अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं।

*

TS & FA-42

हिमाचल प्रदेश की संस्कृति में लोक-नृत्यों का साहित्यिक महत्त्व

डॉ. मुकेश कुमार शर्मा, शिमला

हिमाचल प्रदेश नृत्यों की धरती है। इसके नृत्य मनोरजंन प्रधान तथा रूढ़ हैं। यहां के उत्सव, त्यौहार, मेले तथा संस्कार समूह नृत्यों तथा गीतों से संपन्न होते हैं इन नृत्यों में स्थानीय इतिहास, सांस्कृतिक परम्पराएँ एव लौकिक मान्यताएँ प्रतिबिम्बित मिलती हैं।

देव नृत्य, राक्षस नृत्य, नागस नृत्य, डंगी नृत्य, लासा नृत्य, नाटी नृत्य, डुमशोम नृत्य, धरवेणी नृत्य, द्मणी नृत्य आदि लोक नृत्य बड़े चाव तथा मस्ती से नाचे जाते हैं। ये नृत्य जीवन की एकरसता को तोड़कर उसमें नवीनता का संचार कर नई चेतना एंव उल्लास भरते हैं। यें घण्टो तक चलते हैं। गीतों के विभिन्न सोपनों पर शहनाई, बंसी तथा ढोल के बोल बदल जाते हैं। नर्तकों के पद-संचालन में उसी क्रम से बदलाव आता रहता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गीत, लय एंव अभिनव में स्वाभाविक करवटों के फलस्वरूप सारा वातावरण रंग, रस में भीगता दर्शकों को अनुरंजित करने लगता है। लोक नृत्य और लोकगीत एक ऐतिहासिक धरोहर होती है, एक विशेष समुदाय, जाति, प्रान्त की व देश की ऐसी धरोहर है, जिनके माध्यम से मनोरजंन के साथ-साथ आपसी भाईचारे, सहयोग व मिलजुल कर कार्य करने की भावना एक घर गांव कस्बे, शहर, प्रान्त से चलकर देश की एकता और अखण्डता का आधार बनती है। हिमालच में विभिन्न प्रकार के नृत्य हैं जिनके नाम भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं। हिमाचल के विभिन्न नृत्यों के स्थानीय नाम इस तरह से हैं।

राक्षस नृत्य धम्म:–किन्नर क्षेत्र के परंपरिक लामाओं तथा देवताओं के नृत्य और राक्षस सम्बन्धी नृत्य आदिम जीवन के समृति दिलाते हैं। किन्नरों को तो 'हिरण नर्तक' की संज्ञा दी गई है। राक्षस नृत्य मुखौटे पहनकर नाचा जाता है। इस क्षेत्र में दुरात्माओं तथा राक्षसों से फसल की रक्षा हेतु लोकनृत्यों का आयोजन किया जाता है। 'धम्म' इस प्रकार का एक नृत्य है। माला नृत्य–यहाँ का 'माला-नृत्य' अत्यन्त लोकप्रिय है।

इसमें परंपरित वेश-भूषा से सुसज्जित नर्तक एक दूसरे को इस प्रकार पकड़ते है कि उनके बाजुओं द्वारा गुणा का चिन्ह बन जाता है। नाटी नृत्य–कुल्लू-मण्डी, सिरमौर तथा चंबा आदि क्षेत्रों में नाटी नृत्य अनेक रूपों में प्रचालित है। कुल्लू की ऐतिहासिक दृष्टि से इसे सिराजी नाटी कहा जाता है।

इसमें गीत कुल्लू से तथा सूर-ताल भीतर सिराजी से लिए हैं। यह अनेक नाचों का समूह है। कथक नृत्य की भांति इसकी विधाएँ तथा नाम हैं। यह विलंबित गति का नाच है, यह कभी तो तीन चार अहोरात्री तक चलता रहता है। यह व्यवसायिक नृत्य न होकर समूचे लोक का नृत्य है। इस तरह से हिमाचल में प्रत्येक जिले का लगभग हर जिले के भिन्न-भिन्न लोक नृत्य हैं औ गीतों और नृत्यों से प्रदेश की गाथा प्रस्तुत की जाती है।

*

TS & FA-43

भारतीय प्राचीनेतिहास के कालक्रम की समीक्षा

प्रो. डा. दामोदर झा, होशियारपुर

भास्कराचार्य (गणिताध्याय म. अ. कालमान 21-24; 28) आदि सिद्धान्तज्यौतिष के आचायो के अनुसार शकाब्द से 3169 वर्ष पूर्व कलियुगारम्भ हुआ था। श्रीमद्भागवतपुराण (12/3/33) के अनुसार श्रीकृष्ण के शरीरत्याग के सनय से कलियुगारम्भ हुआ। इससे 36

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वर्ष पूर्व युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ (महाभ. मौशल 1/1)। महाभारत (1/2/7) के अनुसार कलियुग और द्वापर की सन्धि में कौरव पाण्डव का युद्ध हुआ।

इसके विरुद्ध वराहमिहिर ने बृहत्संहिता (सप्तर्षिचार 2-3) में युधिष्ठर का राज्यकाल शककाल से 2526 वर्ष पूर्व माना है। उन्होंने यह मत गर्ग के अनुसार लिखा है। बृहत्संहिता के टीकाकार उत्पलभट्ट ने जो गर्गवाक्य उद्धृत किया है उसके अनुसार कलिद्वापर सन्धि में सप्तर्षि मघानक्षत्र में थे। वराहमिहिर भी यही बात कहते हैं कि युधिष्ठिर के शासनकाल में सप्तर्षि मघ नक्षत्र में थे। अत: यदि उनमे मत में 653 कलिगत में युधिष्ठिर थे तो दोनों समय सप्तर्षि मघा में ही नहीं हो सकते। कल्हण ने राजतरंगिणी में वराहमिहिर के एक पक्ष को मानते हुए कलियुगादि में महाभारतयुद्ध का होना भ्रमास्पद माना है (राजतरं 1/48-51)। कल्हण ने (राजतरं 1/44) यह भी कहा है कि पाण्डवकालीन काश्मीर राजा गोनन्द से 52 राजाओं के विवरण प्राप्त नहीं होते। अत: महाभारत को कलियुगादि में घटित नहीं मानना चाहिए। यहाँ यह प्रतीत होता है कि वराहमिहिर और कल्हण स्वयं भ्रमग्रस्त हैं। सभी सिद्धान्तज्यौतिष ग्रन्थकार एकमत से शकपूर्व 3169 में कलियुग का आरंभ मानकर आजतक सूर्य-चन्द्रग्रहण आदि का गणित करते आ रहे हैं जो प्रत्यक्ष दृश्य होते हैं। अत: वराहमिहिर और कल्हण के मत महाभारत युद्ध और युधिष्ठिर के विषय में शुद्ध नहीं हे। इस भ्रम के निम्न लिखित कारण हो सकते है–

1. बृहत्संहिता का पाठ–षड्द्विकपञ्चद्वियुत: शककाल:–ही भ्रष्ट हो।

2. वराहमिहिर ने स्वयं आकाशपरीक्षण न किया हो क्योंकि वस्तुत: सप्तर्षियों में गति ही नहीं।

3. वराहमिहिर का उद्धृत शककाल 550 ई. पू. में स्थापित ईरानी सम्राट् साइरस का शककाल हो जैसा कोटा वंकटाचलन (क्रोनोलेजी ऑफ एन्शिएन्ट हिन्दु हिस्टरी, भाग 2 पृ. 67) का अनुमान है।

4. पाण्डवों के समकालीन काश्मीरराजा गोनन्द के 643 वर्ष पश्चात पुन: गोनन्द नाम का कोई काश्मीर राजा हुआ हो जिसे भ्रमवश कल्हण ने पाण्डवकालीन मान लिया हो क्योंकि 52 राजाओं के नामक्रम विस्मृत होने को कल्हण स्वीकार करते हैं।

ऐहोल के शिलालेख में भी 3735 कलिगत 556 शक से समान माना गया है। अत: कलिगताब्द ज्योतिर्गणित, महाभारत, विष्णुपुराण, भागवतपुराण, शिलालेख आदि से प्रमाणित है जिसके अनुसार द्वापर के अन्त में युधिष्ठिर की स्थिति सिद्ध है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-44

राजस्थान में संकलित जैन चित्र संपदा

(11 वी श. से 19 वी श. तक)

डॉ. (श्रीमती) कमला गर्ग, जयपुर

प्राचीन साहित्य एवं चित्रों की सुरक्षा तथा चित्र निर्माण के लिए राजस्थान का वातावरण जैन धर्म के लिए बहुत उपयुक्त सिद्ध हुआ। यहाँ के शासकों एवं समाज के सभी वर्गों की रूचि के परिणाम स्वरूप लाखों की संख्या में जैन, पाण्डुलिपियाँ तैयार की गई तथा सहस्त्रों प्राचीन पाण्डुलिपियों की प्रतिलिपियाँ तैयार करवाकर उन्हें सहज बोधगम्य बनाने हेतु चित्रित भी कराया गया। राजस्थान में इन पाण्डुलिपियों के उचित संरक्षण-संवर्द्धन हेतु ज्ञान भण्डारों की स्थापना की गई। उपाध्याय समय-सुन्दर गणिकृत 'कल्पलता' ग्रंथ में प्रमाण उपलब्ध होते है, जिनके अनुसार श्री जिनभद्रसूरि जी के उपदेश से राजस्थान के जैसलमेर, जालौर एवं नागौर आदि स्थानों में ज्ञान भण्डारों की स्थापना हुई। जिसमें संग्रहित जैन सचित्र पाण्डुलिपियां में परम्परा के विकासक्रम एवं विविध चित्रात्मक गतिविधियों को देखा जा सकता है।

राजस्थान में प्राचीनतम् सचित्र ताड़पत्रीय जैसलमेर के श्री जिनभद्र सूर ज्ञान भण्डार में 1060 ई. की द्रोणाचार्य कृत 'ओघनिर्युक्तिवृत्ति' है। इसके समकालीन दूसरी चित्रित प्राचीनतम पाण्डुलिपि दशवैकालिक सूत्र वृत्ति है। 1185 ई. की 'महावीर चरित्र गद्य-पद्य-बद्ध' नामक सचित्र ताड़पत्रीय पाण्डुलिपि के चित्रों में सर्वप्रथम जैन चित्र शैली का मौलिक स्वरूप दिखायी देता है। इसी क्रम में मेवाड़ में चित्रित 1260 ई की 'सावगपडिकमणसुतचुर्णी' नामक पाण्डुलिपि को ले सकते है।

14 वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी की अवधि में ताडपत्रों के साथ-साथ कागज की उपलब्धता के कारण इस पर अधिकाधिक चित्रांकन कार्य होना आरम्भ हो गया। राजस्थान में कागज पर चित्रित प्राचीनतम् पाण्डुलिपियाँ जैसलमेर भण्डार में संग्रहित 'कल्पसूत्र', 'कालकाचर्यकथा' को माना गया है। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के संग्रह में 'कल्पसूत्र' 'कालकाचर्यकथा' की अनेकों सचित्र कागदीय पाण्डुलिपियाँ देखने को मिलती हैं, जिसमें 14वीं शताब्दी की 'कल्पसूत्र-सावचूरि' को महत्वपूर्ण माना जा सकता है। बीकानेर के अगरचन्द नाहटा के संग्रह में 15वीं शताब्दी का सचित्र 'कल्पसूत्र' महत्वपूर्ण ग्रंथ है। जयपुर में महाकवि पुष्पदन्त द्वारा रचित 'आदि-पुराण' पाण्डुलिपि चित्रों की दृष्टि से अति उल्लेखनीय मानी गयी है। एक अन्य चित्रित 'आदिपुराण' जो 1606 ई. में मौजयाबाद में चित्रित हुआ, जिसमें 338 चित्र जैन शैली के हैं। जैसलमेर के जैन ज्ञान भंडार में संग्रहित 'शालिभद्रचौपाई' पर मुगल एवं राजस्थानीय

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चित्र शैली का प्रभाव है। अन्य मुख्य सचित्र पोथियों में हम 'यशोधर-चरित्र' 'भक्तामर-स्तोत्र,' 'संग्रहणी सूत्र,' चौबीस तीर्थंकर पूजा, 'त्रिलोक दीपक-वामदेव, 'त्रैलोक्यसार समदृष्टि' एवं 'मोक्षशास्त्र-तत्वार्थ सूत्र' आदि को ले सकते हैं।

*

TS & FA-45

स्वतन्त्र भारत की चित्रकला में बिम्ब-विधान

श्री योगेन्द्र गुप्ता, जयपुर

स्वतन्त्रता के बाद कलाकारों ने भारतीय परम्परागत कला के रूढिगत पक्षों को अस्वीकार कर उन्हें समकालीन चेतना के अनुरूप एक नया रूप प्रदान किया। भारतीय कलाकारों ने पश्चिमी कला धारा से तथ्य ग्रहण अवश्य किये है पर वे 'वादों' की संस्कृति में नहीं उलझे। धीरे-धीरे आधुनिक कलाकारों के कई वर्ग बन गए। यह विकास क्रम आकृतिमूलक से अर्थ आकृति तथा अनिश्चित स्थिति से आकृति विहिन की ओर रहा है। चित्रों में 'बिम्ब' या 'रूप' के लिए चित्रकारों ने विभिन्न शैलियों, प्रवृतियों, वादों, सिद्धान्तों, दर्शन, प्रकृति के रूपों, मिडिया, फैशन, औद्योगिकी, जन-जीवन, एवं संस्कृति आदि अनेक स्थानों से चित्रात्मक संदर्भ लिये। वहीं इन्होंने लोककाल, आदिमकला, प्रागैतिहासि कला, बाल कला, लघुचित्र शैली, भित्तिचित्रण परम्परा, तांत्रिक कला, आदि आंलकारिक प्रतीकात्मक, अभिव्यंजनात्मक एवं शास्त्रीय कलाओं के सृजनात्मक गुणों से अपनी चित्रभाषा का विकास किया। चित्रकारों ने यहाँ फन्तासी, रोमांस, अतियर्थार्थ रूपों में कला-सृजन किया है, वहीं राजनैतिक एवं सामाजिक यथार्थ दर्शाने वाली मर्मस्पर्शी कृतियों का अभिव्यंजनात्मक शैली में चित्रण किया है। मनोवैज्ञानिक स्थितियों को भी विकृतियों एवं संदर्भों के माध्यम से व्यक्त किया है। यहाँ तक परामनोवैज्ञानिक स्थितियों या अनुभूतियों को लेकर भी आधुनिक चित्र बने है। तांत्रिक शब्दावली के साथ आधुनिक प्रयोग भी चित्रकला में दिखते है। अमूर्त चित्रण वस्तुनिरपेक्ष आकार एवं ज्यामितिय रूप लिए है। जिसका उद्देश्य कला तत्वों का सृजनात्मक प्रयोग है। चित्रण विधियों एवं सामग्रियों में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है। अब कोई भी विधि और सामग्री मानो कला के लिए वर्जित नहीं रह गयी। आज की कला को 'इलेक्टज्म' (Electism) के अन्तर्गत रख सकते है। जिसमें विभिन्न कला, रूपों, धारणाओं, दर्शन, संस्कृति आदि से अपनी रूचिनुसार चुनकर चित्रकार कला-बिम्बों की रचना करता है। गत छः दशकों से कला के प्रतिबिम्बों व मूल्यांकन के दृष्टिकोण में जो परिवर्तन आ रहे है उनका कारण है सोच की विस्तारता एवं बड़े-बड़े कला मंचों तक पहुँचने की सृजनात्मक होड़।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-46

कादम्बरी का वास्तुपरक विश्लेषण

राजेश कुमार रावत, ग्वालियर

भारतीय वास्तुशास्त्र का बड़ा व्यापक क्षेत्र है जिसमें पुर, भवन प्रासाद के साथ साथ मूर्तिकला, चित्रकला, यन्त्र घटना तथा काष्ठकला भी समान रूप से अपना स्थान रखते हैं।

महाकवि बाण भट्ट ने राजा के हित एवं प्रिय का सर्वतोभावेन चिन्तन किया है। इसमें राजा के जीवन में विचारणीय सभी बिन्दुओं पर सम्यक् दृष्टिपात किया है। नृप के आवास योग्य सर्वाधिक सुरक्षित वास्तु दुर्ग निर्माण पर ग्रन्थ कार की दृष्टि जाती है। दुर्ग की सुरक्षा के हेतु एवं उसे दुर्गम एवं दुर्जेय बनाने हेतु यान्त्रिक व्यवस्था एवं धर्म शास्त्रीय व्यवस्था आदि का वर्णन कया गया है। रणप्रयाण के अवसर पर विविध शकुनों पर विचार किया गया है।

बाणभट्ट रचित कादम्बरी में जो राजभवनों का वर्णन मिलता है उनमें आंगन या कोर्टो की प्रमुख विशेषता है। अतः कोई भी राजभवन हो उसके विन्यास का आधार आंगन या कोर्ट है। कादम्बरी के तारापीड के महल में सात कक्षायें थी। ये सभी विवरण राजनिवेश के अन्तर्गत आते है।

बाण विरचिता दिव्या कादम्बरी में चित्रों का विलास पद-पद पर दिखाई पड़ता है। बाण भट्ट के राजभवनों के वर्णन में जो चित्रशालायें वर्णित हैं, वे विमान शैली पर निर्मित प्रतीत होती है। नारद शिल्प में जो चित्रशाला का शास्त्रीय विवेचन है, उसी के आधार पर ये विभाव्य है।

इस प्रकार महाकवि बाणभट्ट रचित कादम्बरी में पग पग पर वास्तुशास्त्रीय निवेशों का वर्णन प्राप्त होता है मुख्य रूप से राजनिवेश का वर्णन इस शोध पत्र में किया गया है।

*

TS & FA-47

अथर्ववेदीय मनौवैज्ञानिक चिकित्सा

डॉ. दीनानाथ 'आचार्य', बिहार

मानव-धर्मों का पालन स्वस्थ शरीर के माध्यम से ही संभव है जैसा कि महाकवि कालिदास ने कहा है-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।" कुमारसंभवम् 5/33

आचार्य चरक ने धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की सिद्धि का मूल उत्तम स्वास्थ्य कहा है–

"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।" चरक संहिता, सूत्र 1/15

अथर्ववेद (11.4.16) में स्वास्थ्य-लाभ हेतु चार प्रकार की चिकित्साओं (1) आध र्वणी, (2) आङ्गिरसी, (3) दैवी एवं (4) मनुष्यजा का संकेत प्राप्त होता है, जिसमें प्रथम आथर्वणी चिकित्सा का सम्बन्ध अथर्वन् या अथर्वा ऋषि द्वारा दृष्ट एवं प्रवर्तित पद्धति से है जिसमें अथर्ववेदोक्त मन्त्रादि के प्रयोगों द्वारा मनोवैज्ञानिक चिकित्सा की जाती है।

वस्तुत मन ही मनुष्यों के बन्ध (व्याधि, दु:ख) और मोक्ष (आरोग्य, सुख) का कारण है–

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो।" मैत्रायणी उपनि 4/11

मानसिक विकारजन्य रोगों का उपचार मानस-चिकित्सा द्वारा संभव है, जैसा कि अर्थवेद (5.11.1) में वर्णन उपलब्ध होता हे कि वरुण देव ने मनोवैज्ञानिक उपचार के द्वारा चिकित्सा की। मनोबल का ह्रास ही रोग-शोक आदि का कारण है और उसका उत्थान दोषों का परिहासक है। अथर्ववेद (10.60.10) में उल्लेख है कि मनोबल के विकास के द्वारा मृत्यु के मुँह में पड़े हुए मित्र को बचा लाता हूँ और उसे पूर्ण सुरक्षा प्रदान करता हूँ। रोगी का मनोबल बढ़ाना तथा स्वस्थता हेतु आश्वासन देना इस चिकित्सा क्षेत्र के अन्तर्गत आता है।

*

TS & FA-48

भारतीय चिकित्सा शास्त्रों में वानस्पतिक चिन्तन

डॉ. मीरा शर्मा एवं **रश्मि शर्मा**, आगरा

भारतीय चिकित्सा विज्ञान में वनस्पतियों को विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत करते हुए हर वनस्पति के द्रव्यत्व को गुणाङ्कन किया गया है। 'द्रव्ये रसो, गुणो, वीर्य, विपाक, शक्तिरेव च पदार्था: पञ्च तिष्ठन्ति' (भावप्रकाश प्रथम अध्याय 5.181) कहकर पाँच गुणों का समर्थन किया है। यथा वनस्पति के पाँच गुण पञ्च महाभूत से सम्बन्धित बताये हैं (भावप्रकाश 5 प्रकरण 2,11) लघु का आकाश से, गुरु का पृथिवी से, स्निग्ध का जल से, रूक्ष का वायु से आर

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तीक्ष्ण का अग्नि से सम्बन्ध है। इस प्रकार पञ्चभौतिक गुणों से समन्वित वनस्पतियों तथा मानव शरीर विज्ञान का तादात्म्य देखते हुए मनुष्य के रोग निवारणार्थ वनस्पतियों की उपयोगिता को दर्शाया है।

इन वनस्पतियों का प्रयोग जहाँ 'भेषज' रूप में रोगों के शमनार्थ होता है वहीं 'होम' तथा 'मणि' के रूप में भी इनका प्रयोग रोगों की मुक्ति पाने हेतु होता रहा है। चरक संहिता में तीन प्रकार की औषधि का उल्लेख आया है। (चरक संहिता तिस्त्रैषणीयाध्यायः 11.54) 1. दैवत्यपाश्रय 2. युक्तिव्यपाश्रय 3. सत्त्वावजय। 'दैवत्यपाश्रय' ओषधियों के अन्तर्गत 'हवन' तथा 'मणियों' का उल्लेख आया है।

वनस्पतियों के सेवन से जो लाभ प्राप्त हो सकता है वह उसकी शाखा आदि के पास में रहने या शरीर के किसी अंग पर बाँधने से भी प्राप्त हो सकता है। यथा 'जांगिण मणि' (अर्जुन वृक्ष) टूटी हड्डी, सर्दी से होने वाले रोगों के लिए, 'औदुम्बर मणि' (उदूम्बर, गूलर) हृदय, बुद्धि तथा नेत्र आदि के लिए लाभप्रद है (सुश्रुत संहिता 46.331-332)। इस प्रकार वनस्पतियाँ मणि रूप में भी विविध रोगों का प्रतिकार कर रोगकृतियों का नाश करती हैं, तथा इनके धारण करने से बलवर्द्धक शक्ति शरीर में क्रियाशील हो जाती है।

यज्ञ तथा होम आदि में भी ठोस पदार्थों में सर्वश्रेष्ठ वनस्पतियाँ अग्नि में जलाने से कुछ गैस निकली है जो होम या यज्ञकर्त्ताओं के शरीर में अनायास प्रविष्ट होकर रक्तप्रवाह प्रणाली तथा वात-कफ के अनुपात पर प्रभाव डालती है। वनस्पतियाँ पृथ्वी से जल तथा लवण, सूर्य से रश्मि तथा वायु से कार्बन की प्राप्ति कर मानव के शरीर में भिन्न-भिन्न प्रकार की शक्ति प्रदान करती हैं।

विज्ञान के नये-नये आविष्कारों के साथ-साथ भारतीय चिकित्सा विज्ञान में भी बहुत परिवर्तन आया। पाश्चात्य प्रभाव के कारण रासायनिक चिकित्सा पद्धति का आकर्षण बढ़ता गया किन्तु 1974 में विश्व स्वास्थ्य संगठन के द्वारा भारतीय चिकित्सा पद्धति को पुनर्मान्यता मिली है। आज जबकि वनस्पतियों की खोज और उपयोग को अन्तर्राष्ट्रीय विस्तार प्राप्त हो रहा है इस बात की महती आवश्यकता है कि प्राचीन वनस्पतियों के विषय में की जा रही आधुनिक गवेषणाओं को संकलित करके समन्वयवादी दृष्टि अपनाते हुए इस प्राचीन थाती को संसार के समक्ष अपने व्यापक रूप में प्रस्तुत किया जाये।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-49

भीतरगाँव व अहिच्छत्रा की मृण्मय कला

डॉ. रागिनी रॉय, आगरा

प्राचीन भारत में ईसा पूर्व चौथी सदी से मन्दिर निर्माण का क्रम आरम्भ होता है परन्तु मृण्मय मन्दिरों का निर्माण 5वीं-6ठी शती से दिखाई देता है। मिट्टी से निर्मित एवं पकी हुई पद्धति से प्रस्तुत कलात्मक वस्तु को मृण्कला कहते हैं। कला के विभिन्न साधनों के माध्यमों में इसका भी अपना विशेष स्थान रहा। भारतीय मृण्कला का इतिहास 5,000 वर्ष से भी अधिक प्राचीन है।

गुप्तकाल की वास्तुकला में भी गुप्त काल की स्वर्ण युग की अमिट छाप प्रतिफलित होती है जिसका परिचय सार्वजनिक आवास, मन्दिर, विहार तथा स्तूप आदि में मिलता है। गुप्त कालीन चित्रकला के उत्कृष्ट प्रमाण अजन्ता के रूप में प्राप्त हैं वही वास्तुकला तथा मूर्तिकला भी इस उत्कृष्टता से अधूरी नहीं रही। इस काल की निर्मित मूर्तियों के शारीरिक आकार ठोस पूर्ण मात्रा में विशेष लोच तथा आकर्षक भंगिमा लिए हुए हैं। मन्दिरों को अलंकृत करने के अनेक स्पष्ट प्रमाण हमें गुप्त काल में प्राप्त होते हैं।

गुप्तकालीन मृण अलंकारणों की आभा बिखेर रहे मन्दिरों में सर्वाधिक शालीन एवं महत्वपूर्ण मन्दिर भीतर गाँव का है। यह उत्तर-प्रदेश के कानपुर जिले से 20 मील दूर दक्षिण में है। यह मन्दिर गाँव की पूर्वी सीमा पर स्थित है। उक्त मृण मन्दिर की बाहरी दीवारी भागों पर भी अलंकृत मृणफलकों को प्रस्तुत किया गया है। मन्दिर का गर्भगृह 15 फुट वर्गाकार में है। इस मन्दिर के फलकों पर रामायण, महाभारत तथा पुराण आदि गाथाओं के विस्तृत दृश्य प्रस्तुत किय गये हैं आज यह मन्दिर जीर्ण-शीर्ण एवं परिव्याक्त दशा में विगत समय को गौरवान्वित कर रहा है। 70 फुट ऊँचा पकी ईटों से निर्मित यह मन्दिर गुप्त काल के आरम्भ में वर्गाकार चबूतरों पर चौकोर मन्दिरों की परम्परा का निर्वाहक है।

गुप्तकालीन कला के रूप में अपनी पहचान बनाये हुए उत्तर-प्रदेश में बरेली के निकट अहिच्छन्ना नामक स्थान है, अहिच्छन्ना मृण्कला के परिचायक है, गुप्तकाल के मृण्मय कुछ फलक जो एक दिन अहिच्छन्ना के शिव मन्दिर में सुसज्जित थे। वह उस जगह उत्खनन द्वारा प्राप्त हुए हैं। कुछ विशिष्ट फलक जो आज राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में संग्रहीत हैं, जिसमें से कुछ शिवगण और त्रिशूल पुरुष, रथ पर सवार दो योद्धा, किन्नर मिथुन, गंगा-यमुना आदि। ये मन्दिर पूर्ण रूप से धर्म एवं संस्कृति से जुड़ा हुआ है, धर्म एवं संस्कृति के प्रचार के समस्त श्रेय पुराणों के साथ-साथ इन मन्दिरों को जाता है। ये मृण्मय मन्दिर आज भी शिल्पकारों

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हेतु प्रेरणा के स्त्रोत बने हुए हैं, जीर्ण-शीर्ण परिव्याक्त इन मंन्दिरों के ध्वन्सावशेषों में भी विगत समय की प्रतिष्ठा व गौरव की अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है। अत: मेरा उद्देश्य इस अवेहलित अनादृत भीतरगाँव मन्दिर की स्थापत्य कला पर प्रकाश डालना है।

*

TS & FA-50

मालविकाग्निमित्रम् में चौंसठ कलाएँ

डॉ. पुष्पा गुप्ता, दिल्ली

'मालविकाग्निमित्रम्' संस्कृत काव्य जगत् के सर्वश्रेष्ठ महाकवि कालिदास द्वारा रचित प्रथम नाटक है। कविमूर्धन्य शिरोमणि कालिदास के विषय में यह कहना शतश: सत्य है कि उनके काव्यों में अधिकाधिक जितना अवगाहन किया जाए उतने ही विविधवर्ण दीप्तियुक्त रुचित मौक्तिक प्राप्त होते हैं। मालविकाग्निमित्रम् नाटक भी इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

मालविकाग्निमित्रम् पर प्राय: सभी दृष्टियों से विश्लेषणात्मक और गवेष्णात्मक शोध कार्य किए जा चुके हैं परन्तु कला की दृष्टि से सम्भवत: अभी तक कोई कार्य नहीं हो पाया है। 'मालविकाग्निमित्रम् में चौंसठ कलाएँ' इस शोध-पत्र में कलाओं की दृष्टि से ही इस नाटक का अध्ययन किया गया है।

वस्तुत: 'कला' इस शब्द के अनेकानेक अर्थ किए गए हैं परन्तु उसमें से दो ही अर्थ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं:

(1) जो सुख और आनन्द प्रदान करे वह कला है कं सुखं लाति इति कला।

(2) किसी भी कार्य को विशिष्ट निपुणता अथवा कुशलता से करना उस कार्य को करने की कला है।

इन दो मुख्य अर्थों के अनुरूप ही मालविकाग्निमित्रम् में चौंसठ कलाओं का विवेचन यथाशक्ति किया गया है।

मालविकाग्निमित्रम् नाटक में महारानी धारिणी के भाई वीरसेन द्वारा विद्र्भराज को पराजित किए जाने का तथा महाराज अग्निमित्र के लिए उपहारस्वरूप अनमोल रत्न, हाथी, घोड़े इत्यादि भेजे जाने के साथ ही बहुत से कलाकार भेजे जाने का भी उल्लेख है–'दूतश्च तेन महासासाराणि रत्नानि वाहनानि शिल्पकारिकाभूयिष्ठं परिजनमुपायनीकृत्य भर्तु: सकाशं प्रेषित

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इति।' (कालिदास ग्रन्थावली, सीताराम चतुर्वेदी पृष्ठ 339) इससे सुस्पष्ट है कि उस समय अनेक प्रकार की कलाएँ प्रचलित रही होंगी और उसमें निष्णात कलाकार और शिल्पकार भी होंगे। इतना ही नहीं इन शिल्पकारों को समाज में आदर की दृष्टि से देखा भी जाता होगा। अन्यथा इन्हें अग्निमित्र सदृश महान राजा के लिए उपहारस्वरूप न भेजा जाता।

मुनि वात्स्यायन द्वारा निर्दिष्ट 64 कलाओं में से 43 का उल्लेख प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मालविकाग्निमित्रम् नाटक में है। इन कलाओं का विवेचन प्रस्तुत पत्र में कामसूत्र में दी गई सूची के क्रमानुसार ही किया गया है।

मालविकाग्निमित्रम् में प्राप्त होने वाली कलाएँ है–गीत, वाद्य, नृत्य, चित्रकला, विशेषकच्छेद्य, तण्डुलकुसुमबलिविकार, पुष्पास्तरण, दशनवसनाङ्गराग, शयनरचन, चित्रयोग, माल्यग्रथनविकल्प, नेपथ्यप्रयोग, गन्धयुक्ति, भूषणयोजन, हस्तलाघ्व, विचित्रशाकयूपभक्ष्यक्रिया, पानकरसरागासवयोजन, सूचीवानकर्म, सूत्रक्रीड़ा, पुस्तकवचान, नाटकाख्यायिकादर्शन, पट्टिकावेत्रवानविकल्प, तक्षकर्म, तक्षण, वास्तुविद्या, रूप्यरत्नपरीक्षा, धातुवाद, मणिरागाकज्ञान, वृक्षायुर्वेद, शरीर और सिर की मालिश, अक्षरमुष्टिकाकथन, म्लेच्छितविकल्प, निमित्तज्ञान, यन्त्रमातृका, सम्पाठ्य, मानसीकाव्यक्रिया, क्रियाकल्प, अभिधानकोष, छन्दोविज्ञान, छलितयोग, बालक्रीडनक, विनय सिखाने वाली विद्या तथा विजय दिलाने वाली विद्या।

इस प्रकार मालविकाग्निमित्रम् नाटक में 64 कलाओं का सुरुचिर, गहन, गम्भीर अध्ययन और सुन्दर सन्निवेशन कलाकोविद दीपशिखा कालिदास की अप्रतिम प्रतिभा का परिचयक है।

*

TS & FA-51

कौटिल्य कालीन कृषि व्यवस्था एवं आज के परिपेक्ष्य में उसकी उपादेयता

डॉ. अवधेश राय, पटना

कौटिल्य के अर्थशास्त्र का सार एवं महत्व समझने के लिए तथा मौर्य साम्राज्य की स्थापना का भारत के राजनीतिक जीवन पर पड़ने वाला व्यापक प्रभाव हृदयंगम करने के लिए विष्णु गुप्त कौटिल्य का व्यक्तित्व और उनकी सूक्ष्म दृष्टि का समझना आवश्यक है। भारतीय इतिहास में अनेक ऋषि और महर्षि हुए हैं, उनके सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित दृष्टिगोचर होते है। जैसा मनु, याज्ञवल्क्य और पाराशर आदि। विष्णु गुप्त कौटिल्य अपने चाणक्य नाम के साथ

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उनमें प्रमुख स्थान रखते हैं और चाणक्य नीति प्रायः सर्वाधिक व्यवहारिक नीति मानी जाती हैं। इसी प्रकार, भारत में अनेक गौरवशाली एवं महिमामाण्डित शास्त्रकार माने जाते हैं। परन्तु अर्थशास्त्र लिखकर कौटिल्य देश के सबसे बड़े शास्त्रकार बन गये हैं।

राजनीति के मान्य सिद्धान्तों के रूप में उन्होंने जो मापदण्ड स्थापित किये हैं आज लगभग 2500 वर्ष बाद भी संसार उन्हें ज्यों का त्यों मानता है तथा मानता रहेगा। जैसा कांटे से कांटा (कष्टकेनेव कष्टकम!) दुश्मन दोस्त (शत्रोः शर्त्रुगत्रग) दुश्मन का दोस्त दुश्मन (शत्रोंः शर्त्रुगत्रग) इत्यादि।

*

TS & FA-52

कामसूत्र के अध्ययन का औचित्त्य

डॉ. राकेश कुमार, मुजफ्फरपुर

काम पुरुषार्थ का अत्यंत विशिष्ट महत्त्व है। प्रेम और काम मानव जीवन की एक शाश्वत और महत्त्वपूर्ण समस्या है। यही मुख्यतः हमारे समाज और हमारे व्यक्तिगत क्रिया-कलापों का आधार है। इसकी प्रबल तथा प्रचण्ड शक्ति को देवता, मानव और दानव, सभी चेतन प्राणी सबों ने पूर्णतः स्वीकृत किया है। यह एक ऐसा प्रबल मनोवेग है जो मनुष्य की चेतना को कुण्डित कर देता है। काम भावना से अभिभूत मानव की मनोवृत्ति सामान्य मानव की मनोवृत्ति से भिन्न हो जाती है। कामी का मन विवेक-दुर्बल हो जाता है।

इसके आकर्षण से अपने को बचाना अत्यन्त कठिन है क्योंकि यह मानव की सहज तथा जन्मजात भावना है। इस काम का सामान्य अर्थ है–इच्छा-कामयते असौ। इस अर्थ में कर्म में धञ् प्रत्यय करने से बना हुआ काम शब्द इच्छा, वर, मनोरम, विष्णु, बलदेव, कामदेव आदि विधि अर्थों में प्रयुक्त होता है। कालिका पुराण में इसकी अभिलाष की रूप में या मन्मथ के भाव में उत्पति की विशद चर्चा है। इसके अनुसार 'प्रथमं शैशवो भावः कोमाराख्यो द्वितीयकः' यह वस्तुतः वर्णाश्रम के द्वितीय आश्रम–गृहस्थ आश्रम में ही मुख्यतः आसेव्य है। इसके प्रयोग में विवेक की मुख्य अपेक्षा है। यही विवेक वासनात्मक प्रेम और शुद्ध प्रेम के बीच अंतर बतलाया है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-53

नाट्यशास्त्र में निरूपित रंगशाला का गणितीय विधान

अरूण कुमार त्रिपाठी, इलाहाबाद

आचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्शास्त्रीय ज्ञान से जगत् को अभिभूत किया है। वे नाट्यमर्मज्ञ के साथ ही साथ एक अच्छे गणितज्ञ भी थे। उन्होंने नाट्यशास्त्र के द्वितीय अध्याय में रंगशाला के निरूपण में अपने गणितीय ज्ञान का परिचय दिया है उनके नाट्यविषयक विचारों को तो अनेक विद्वानों ने अपने-अपने तरह से व्याख्यात करके प्रतिष्ठित किया है। किन्तु उनके गणितीय ज्ञान पर विचार करने की आवश्यकता है, तथा उनके गणितीय ज्ञान यथा इकाइयों एवं मापकों को आधुनिक प्रयोग के अनुकूल बनाने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त 'मत्तवारणी' एवं 'रंगपीठ' जो कि नाट्शास्त्र के सबसे उलझे हुए विषय है, उनको भी सुलझाने की आवश्यकता है। प्रस्तुत शोध पत्र में भरतमुनि के नाट्यशास्त्र की उपर्युक्त अनसुलझी समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया गया है तथा भरतमुनि द्वारा बताये गये नाट्यमण्डपों को बनाने की विधि को आधुनिक समय में उपयोग के योग्य बनाया गया है। इसके अतिरिक्त सबसे प्रमुख कार्य भरतमुनि के गणितीय (अंकगणितीय एवं रेखागणितीय) ज्ञान को प्रकाश में लाना है। अद्यतन युग में प्राचीन नवीन के मध्य सामंजस्य बनाये रखने के लिए प्राचीन संस्कृत विद्वानों के गणितीय एवं वैज्ञानिक ज्ञान को उद्घाटित करने की आवश्यकता है।

*

TS & FA-54

महाकवि कालिदास के श्रव्य काव्यों में अपराध, दण्ड एवं न्याय : एक अध्ययन

प्रो. डॉ. महेश्वर प्रसाद सिंह, मुजफ्फरपुर

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के मर्धून्यकवि एवम् उच्चकोटि के नाटककार है। इनकी रचनाओं में काव्यत्म भूत रस सुस्पष्ट भावाभिव्यक्ति और भावानुरूप शोभन वागर्थ की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। स्वाभाविक अलङ्कार योजना और वर्ण्य-विषय के अनुकूल छन्दों के प्रयोग में सिद्धहस्त होने के कारण इन्हें कविकुल कलाधर की उपाधि से विभूषित किया गया है। अलङ्कारों में अनुप्रास, यमक और उपमा कालिदास को विशेषतया अभिमत हैं। जहाँ तक उपमा का प्रश्न है, वे तो "उपमा सम्राट्" हैं। कहा भी गया है–"उपमा कालिदास्य।"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मनुष्य सामाजिक प्राणी होता है। भाषा के माध्यम से जीवन की अभिव्यक्ति को साहित्य कहते हैं। चराचर जगत् साहित्यकार की दृष्टि का विषय होता है। साहित्यिक रचनाओं के गद्यपद्यात्मक द्विविधरूप हैं। इसके प्रभेदों से संस्कृत वाङ्मय परिपूर्ण है। साहित्यस्रष्टा प्रकृति का पारखी होता है। वह मानव के हृदयोद्गत भावों को सुन्दर शब्दार्थ युगल के सहारे अभिव्यक्त करता है। यहाँ तक कि पशु, पक्षी, पर्वत, नदी, उपवन, जनपद, साधन अरण्यादि भी उसकी दृष्टि से ओझल नहीं होते। वह इन सबों को अपनी कृति में स्थान देता है।

लोकवृत्त के बाद व्याकरण कोष, छन्द, चौंसठ प्रकार की कलाओं के प्रतिपादक ग्रन्थ, शालिहोत्रादिशास्त्र और चतुर्वर्ग के साधक धर्मशास्त्र, पुराणादि एवं कौटिल्यादि प्रणीत दण्डनीति के साथ-साथ पूर्ववर्त्ती काव्य रचनाओं से परिचय कविकर्म की कसौटी है।

*

TS & FA-55

कौटिलयकृत अर्थ शास्त्र का राजनीतिक विवेचन

डॉ. जीवानन्द झा, बिहार

हमारे धर्मशास्त्र के अन्तर्गत राजधर्म को सर्वाधिक महत्व दिया गया है, क्योंकि यह सभी धर्मों का सार है। शास्त्रों में शासनशास्त्र के लिए कई नामों का प्रयोग हुआ है। राजशास्त्र, नृपशास्त्र, दण्डनीति एवं अर्थशास्त्र आदि। यह नामकरण क्षत्रिन्यायात् है। सामान्यतया प्रत्येक ग्रन्थ का प्रतिपाद्य आचार, विचार, प्रायश्चित एवं राजधर्म है। किन्तु, कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र का नामकरण, अर्थशास्त्र इसलिए किया गया है कि उसमें अर्थ की प्रधानता सिद्ध करते हुए अर्थ प्राप्ति के उपायों का भी मार्ग निर्दिष्ट है। अर्थ सम्पूर्ण मानवों का जीवन या वृत्ति है। अर्थात् मानवों से भरी हुई पृथिवी अर्थ है। वह शास्त्र जो पृथिवी की प्राप्ति एवं संरक्षण का साधन है, अर्थशास्त्र है।

कौटिल्य के समस्त राजनीतिक ज्ञान का निदर्शन "सप्तांग राज्य" सिद्धान्त में परिलक्षित होता है। कौटिल्य की सम्मति में "स्वाम्यमात्यजनदुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः" अर्थात् राज्य के सात अंग हैं–स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड एवं मित्र। इनमें राजा सर्वोपरि तो था किन्तु उसका सुख एवं हित प्रजा के ही सुख एंव हित में था। प्रजा के संरक्षण एवं संवधन हेतु मंत्री एवं उसकी मंत्रणा का विशेष महत्व था क्योंकि "नैकं चक्रं परिभ्रमति"। जनपद् अर्थात् निश्चित भूभाग की रक्षा एवं उसका विस्तार चाणक्य के राजनीतिक दर्शन का अभिप्रेत था। राजा, राज्य एवं प्रजा की सुरक्षा हेतु चार प्रकार के दुर्ग यथा–औदक, पार्वत, धान्वन एवं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वन महत्वपूर्ण थे। चाणक्य के मत में–कोश के रिक्त होने पर राजा द्वारा जनता को मनमाने ढंग से चूस लिया जाता है। अतः राजा के लिए उनका यह सार्वकालिक महत्त्व का निर्देश है कि "राजा सर्वप्रथम कोश पर ध्यान दें"। उन्होंने छः प्रकार के दण्ड अर्थात् बल का उल्लेख किया है। तद्यथा-मौल, मृत, श्रेणी, मित्र, अमित्र एवं अटवी। इनमें प्रथम तीन शेष तीन से उत्तम माने गये है। मित्र एवं मित्रलाभ को शेष लाभों यथा भूमिलाभ एवं हिरण्यलाभ से श्रेयस्कर सिद्ध किया गया है इन सबका शोधपर्ण विवेचन विस्तार से प्रस्तूयमान शोधालेख में किया गया है।

*

TS & FA-56

मनुष्य की अद्वैत प्रकृति में प्राणायाम की सार्थकता

डॉ. रमेश सिंह, जम्मू

मनुष्य के अद्वैत प्रकृति में प्राणायाम की सार्थकता पर विचार करें तो यह सर्वविदित है कि प्रणायाम अध्यात्म-प्रधान भारतीय व्यायाम है, तत्ववेत्ता ऋषियों ने इसका आविष्कार कर लोगों का बड़ा उपकार किया है। वेद, उपनिषद, स्मृति और पुराणों में इसका विस्तृत वर्णन है। जैन और बौद्ध की साधनाओं में भी इसको महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

प्राणायाम से मनुष्य के शरीर में रक्त-संचार में गतिशीलता आ जाती है, आन्तरिक अवयवों को सक्रिय करता है। आक्सीजन ग्रहण करने की क्षमता में वृद्धि होती है, थकान और शिथिलता में कमी तथा मानसिक अवसाद नष्ट करता है। शक्ति एवं स्फूर्ति के साथ मनुष्य तेजस्वी बनता है। प्राणायाम मेधाशक्ति को बढ़ाता है बुद्धि को पैना करता है, उसकी सूक्ष्म ग्राहिता विधिवत करता है। वह प्रत्युत्पन्न गति को चेतना बनाता है वाणी को ओजस्वी एवं व्यक्तित्व को प्रभावी बनाता है। प्राणायाम के एकाकी प्रयोग से शारीरिक, मानसिक, स्वास्थ्य, संयम, शक्ति, प्रखर बुद्धि, प्रतिभा एवं उत्कृष्ट व्यक्तित्व प्राप्त होता है। इससे रोग और दुर्व्यसनों के निराकरण में सहायता मिलती है। इसकी साधना से आत्म विश्वास और आत्मबल बढ़ता है। सहिष्णुता एवं अधिक प्राणशक्ति की प्राप्ति का प्राणायाम जैसा सरल श्रेष्ठ और निरापद दूसरा साधन नहीं है। इग्लैण्ड के श्री जे.वी. मूलर ने अपनी पुस्तक "माई ब्रीरिक सिष्टम" नामक पुस्तक में इस बात पर बल दिया है कि शिक्षक संस्थाओं में प्राणायाम की सरल विधि यों का अभ्यास कराया जाना चाहिए।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-57

वेदों में पर्यावरण

रणजीत कुमार पाण्डेय, वाराणसी

मनुष्य एवं अन्य प्राणी जगत्, वृक्ष-वनस्पतियों के चारों ओर पञ्च महाभूतों की अवस्थिति ही पर्यावरण है। जब ये समृद्ध होते है तो हमें जीवन एवं निरोगता प्रदान करते हैं और जब ये दूषित हो जाते है तो हमारी चिन्ता का विषय बन जाते हैं। आज औद्योगिक युग में पर्यावरण का उपयोग अपने स्वार्थ के लिए मनुष्यों द्वारा किया जाता है, जिससे पर्यावरण प्रदूषण की समस्या पूरे विश्व में विकराल रूप ले चुकी है।

वैदिक काल में सृष्टि साम्यावस्था में थी ऋषियों ने प्रकृति की इस प्रकार से व्याख्या की है कि प्रदूषण की समस्या ही उत्पन्न न हो–'माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।' (अथर्ववेद 12. 1.12) अथर्ववेद में पूरा सूक्त ही पृथ्वी को समर्पित है। वृक्ष या वनस्पतियाँ पृथ्वी की उर्वरा शक्ति बढ़ाने तथा वर्षा में सहायक हैं। अतः वनस्पतियों को बढ़ाने की बात कही गयी है–'वनस्पति वन आस्था पयध्वम् (ऋग्वेद-10.101.11) वेदों में वनस्पतियों को शान्ति का कारण भी बताया गया है– 'वनस्पति शमितारम्।' (यजुर्वेद –28-10)।

वेदों में पर्यावरण के सभी घटकों तथा पर्यावरण प्रदूषण के निवारण की बात भी कहीं गयी है, पर्यावरण की शुद्धता के लिए यज्ञों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। वेद हमारे पथप्रदर्शक ही नहीं जीवन भाग्य विधाता है, उनमें ऋषियों-मुनियों ने जिस प्रकार से पर्यावरण की व्याख्या की है वह प्रादेशिक स्तर पर, राष्ट्रीय स्तर पर तथा वैश्विक स्तर पर आज भी प्रासंगिक है। वेद में पर्यावरण के समस्या के समाधान की ओर संकेत है–'यत् ते भूमिं विश्वनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।' (अथर्ववेद –12.1.37) मैं अपने शोध पत्र में वेदों में पर्यावरण के सभी पक्षों को प्रस्तुत करने का प्रयास करूंगा।

*

TS & FA-58

शुक्रनीति में न्याय ओर राज्य

श्रीमती नूतन वाला, बिहार

शुक्रनीति नीतिशास्त्र की एक भौतिक रचना है। इसके रचयिता शुक्राचार्य हैं। यह तो सर्वमान्य है कि शुक्रनीति एक अतीव प्राचीन एवं सर्वप्रशंसनीय ग्रन्थ है जिसकी प्रामाणिकता

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संस्कृत के नीति साहित्य में आश्रण्ण है। शुक्रनीति में राज्य के शासन की आधारशिला न्याय पर आधारित थी। वृहस्पति स्मृति में स्पष्ट वर्णन मिलता है कि अन्याय और अव्यवस्था को दूर करके शान्ति-व्यवस्था और न्याय की स्थापना के निमित्त व्यवहार और राज्य का उद्भव हुआ था। शुक्रनीति में इसी व्यवहार को निर्दिष्ट करने के लिए राजा की आवश्यकता बतलाते हुए कहा गया है कि यदि लोक में राजा उत्तम रीति से नेता यानि प्रजाओं को अपने अपने धर्म पर ले चलनेवाला नहीं तो समुद्र में बिना कर्णधर (पतवार पकड़ने वाले मल्लाह) नौका की भाँति प्रजा नष्ट हो जाती है। वृहस्पति की मान्यता थी कि राज्य और राजा के उद्भव से बहुत पहले आदि अथवा कृतयुग में लोग धर्मप्रधान थे। परस्पर सहायता करते थे और अहिंसक थे।

*

TS & FA-59

वैदिक वाङ्मय में कृषि-विज्ञान

डॉ. रत्नेश कुमार झा एवं डॉ रागिनी झा, बिहार

भारत वर्ष आदिकाल से ही कृषिप्रधान देश रहा हे और प्राचीन भारतीय आर्यों की आर्थिक सम्पन्नता में कृषि की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। वैदिक काल में कृषि एवं पशुपालन पूर्ण विकसित अवस्था में था और यह एक व्यवसाय के रूप में भी प्रतिष्ठित था। भूमि को उपयेाग के आधार पर कृष्य एवम् अकृष्य में विभाजित किया गया था। पुनः कृष्य भूमि को आर्तना, अप्नस्वती एवम् उर्वरा या क्षेत्र तथा अकृष्य भूमि को ऊसर भूमि, खिल्य एवं अरण्य में बाँटा गया था। चावल, जौ तिल, माष, चीना, कौनी, गेहूँ, मसूर, चना, कुलथी, मुग्द, नीवार एवं श्यामाक की खेती पूर्णतया वैज्ञानिक ढंए से की जाती थी। हल द्वारा खेत को बारम्बार जोत कर पाटा दिया जाता था और बीज को समान रूप से फैलाकर बुआई की जाती थी। खेतों में बीज की एक निश्चित मात्रा ही दी जाती थी एवं पौधों की एक निश्चित संख्या ही बरकरार रखी जाती थी। बीज के आकार का भी ध्यान रखा जाता था एवं यह कोशिश की जाती थी कि खड़ी फसल के आकार का समान हों। फसल को झाड़ने, सुखाने एवं भण्डारण आदि में हुए कुव्यवहार द्वारा नष्ट बीजों से भी अंकुरण की कामना की जाती थीं। हल में लोहे के फाल का प्रयोग किया जाता था और गहरी जुताई की जाती थी। गोबर की खाद का प्रयोग किया जाता था और सिंचाई की समुचित व्यवस्था की जाती थी तथा वर्षा के जल, कुएं के जल, पोखरे के जल, भूमिकत जल, समुद्र के जल, नदी-नालों में बहते जल, जलधारा आदि द्वारा सिंचाई की जाती थी। सिंचाई के लिए रहट या अश्मचक्र का प्रयोग किया जाता

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

था। प्रस्तुत शोध-पत्र में कृषि की समग्र तकनीकों को विस्तृत रूप में दर्शाने की कोशिश की गई है तथा कृषि की आधुनिकतम् पद्धति का झुकाव वैदिक कृषि पद्धति की ओर बताया गया है।

*

TS & FA-60

हृदयनारायणदेव का सङ्गीतशास्त्र-विषयक मौलिक योगदान

सुमन लता श्रीवास्तव, जबलपुर

सत्रहवीं शताब्दी में मध्यप्रदेश के गोंडराज्य के शासक महाराजा हृदयशाह (हिरदैसाहि अथवा हृदयेश) सङ्गीतजगत् में हृदयनारायण देव के नाम से सुश्रुत हैं। हृदयनारायण द्वारा प्रणीत दो लघु किन्तु महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'हृदयकौतुकम्' तथा 'हृदयप्रकाशः' वर्तमान शास्त्रीय सङ्गीत के आधार-ग्रन्थ कहे जा सकते हैं। हृदयनारायण का एक अन्य विलक्षण एवं क्रान्तिकारी कार्य वीणा के तार की लम्बाई पर स्वरों की अङ्कगणितीय स्थापना है, जिसका श्रेय पण्डित अहोबल को दिया जाता है, किन्तु अहोबल के ग्रन्थ 'सङ्गीतपारिजात' के सूक्ष्म एवं विस्तृत अध्ययन से ज्ञात हातो है कि यह रचना भी हृदयनारायणदेव की रचना से परवर्ती है। वीणावादनकुशल हृदयनारायण ने ही वीणा पर अचल थाट की सारिकाएँ स्थापित करने के उपक्रम में इस यांत्रिकी उपाय का आविष्कार किया।

हृदयनारायण देव ने दाक्षिणात्य सङ्गीतपद्धति में प्रचलित स्वरों को आत्मसात् करने की उदात्त भावना से त्रिश्रुति अथवा तीव्रतम गान्धार-मध्यम-निषाद के प्रयोग से नूतन राग 'हृदयरमा' और तदनुसार तेहरवें संस्थान 'हृदयरमा' की संरचना की। ग्रन्थद्वय में 92 युगीन रागों का वैज्ञानिक विवरण अनुकरणीय छन्दमय रूचिकर शैली में शास्त्रबद्ध किया। जयत्केदार, पूरियाकेदार और देवाभरण के अतिरिक्त अहीरनाट, श्यामनाट और के दारनाटा राग भी उन्हीं का कल्पना-विलास हैं। उन्होंने 'त्रिश्रुति म' और 'त्रिश्रुति नि' को 'मृदु प' और 'मृदु सा' अभिहित किया और स्वरों के श्रुतिपटल पर 'स्खलित' होने से 'कोमलत्व की प्राप्ति की दिशा निर्दिष्ट की। दक्षिण सङ्गीत में स्वर का शुद्ध रूप सबसे नीचे होता है। अंग्रेज शासकों द्वारा 'सदैव से असभ्य' और 'वन्य' समझी जाने वाली तथा भारत सरकार द्वारा अनुसूचित जनजाति में परिगण्य गोंडजाति में आविर्भूत विद्वान राजा सङ्गीताधिराज हृदयनारायण देव के साङ्गीतिक योगदान का उचित मूल्याङ्कन एवं इतिहासकारों की भ्रान्ति का परिमार्जन अपेक्षित है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-61

वामनावतरणम् का नायक

गोपीचन्द्र शर्मा

आधुनिक संस्कृत कवियों में अभिराज डॉ. राजेन्द्र मिश्र का प्रमुख स्थान है। वह विविध विधाओं में अनेक ग्रन्थों का प्रणयन कर संस्कृत भाषा की सतत् शोभा बढ़ा रहे है। संस्कृत तथा हिन्दी में अब तक इनकी नब्बे रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

अभिराज डॉ. राजेन्द्र मिश्र की प्रकाशित रचनाओं में दो महाकाव्य हैं–जानकीजीवनम् तथा वामनावतरणम्। इनका द्वितीय महाकाव्य सन् 1993 ई. में प्रकाशित हुआ। यह एक पौराणिक महाकाव्य है जिसकी कथावस्तु श्रीमद्भागवत पुराण के बलि–वामन प्रसंग से गृहीत की गई है। इसमें सत्तरह सर्ग हैं। महाकाव्य समस्त लक्षणों से मण्डित, सारगर्भित एवं भारतीय लोकतन्त्र का उद्घोषक है।

कवि ने वामन, इन्द्र, बलि, शुक्राचार्य, बृहस्पति, कश्यय एवं अदिति प्रभृति पात्रों का चरित्र कुशलता के साथ अंकित किया है। देवराज इन्द्र महाकाव्य के नायक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। वह धीरादात्त प्रकृति का नायक हैं। उनमें नायक के अनेक गुण विद्यमान हैं यद्यपि महाकाव्य में उनका अधिक उल्लेख नहीं हुआ हैं फिर भी महाकाव्य के समस्त उद्योग उनके ही उपकारार्थ किए जाते हैं यहाँ तक कि भगवान् विष्णु स्वयं उनकी सहायता के लिए उनके अनुज बनकर अवतरित होते हैं। इसके अतिरिक्त महाकाव्य के पुल (राज्यार्थ) का भोक्ता भी वही बनता है। अतः वामनावतरणम् महाकाव्य में देवराज इन्द्र का नायकत्व सिद्ध होता है।

*

TS & FA-62

उपनिषदों में स्वप्न

डॉ. रजनी, मुजफ्फरपुर

कठोपनिषद् में ऋषि कहते हैं कि स्वप्न के दृश्यों की और जाग्रत अवस्था के दृश्यों को मनुष्य जिस परब्रह्म परमेश्वर की शक्ति के कारण बार-बार देखता है। उस सर्वश्रेष्ठ सर्वव्यापी आत्मा को जानकर बुद्धिमान् मनुष्य किसी भी कारण से किञ्चमात्र भी शोक नहीं करता है। स्वप्न में ही प्रकारान्तर से चर्चा करते हुए ऋषि कहते हैं कि जो समस्त जीवों के सो जाने पर अपनी महिमा में नित्य जागता रहता है, वही परम विशुद्ध तत्व ब्रह्म है। एक

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

और दार्शनिक चर्चा कठोपनिषद् में स्वप्न से जुड़ी हुई है। जैसे दर्पण में वैसे ही शुद्ध अन्तःकरण में, जैसे स्वप्न में उसी प्रकार पितृलोक में परमेश्वर दिखता है। मालारहित दर्पण में उसके सामने आयी हुई वस्तु दर्पण से विलक्षण और सुस्पष्ट दिखाई देती है। जैसे स्वप्न में वस्तु समूह यथार्थ रूप में न दीखकर स्वप्नद्रष्टा मनुष्य की वासना और विविध संस्कारों के अनुसार कहीं की वस्तु कहीं विश्रृंखल भाव से अस्पष्ट दिखाई देती है। प्रस्तुत आलेख में उपनिषदों में स्वप्न विषयक मतों का विस्तृत रूप से विवेचन किया गया है।

*

TS & FA-63

गुप्तकालीन भारतीय शिल्पकला में अभिव्यंजित कण्ठाभूषण

डॉ. शिवा धमेजा

भारतीय विचारधारा में कण्ठाभूषण ईश्वरीय अनुकम्पा, सौभाग्य एवं श्री के प्रतीक हैं। कण्ठाभूषण मात्र श्रृंगारिक उपकरण नहीं वरन् युगों से कला, सौन्दर्य एवं भाव को संयुक्त रखने वाली कड़ी है। इसे भावनात्मक दृष्टि से ओतप्रोत व सत्परम्पराओं का अनुसरण करते हुए धारण किया जाता रहा है। इसे अमंगलहारी, सुरक्षाकवच व व्याधिनिवारक माना गया है। ईश्वरीय स्वरूपों व प्रतीक चिह्नों को धारण करने से आत्मबल व शक्ति प्राप्त होती है।

गुप्तकालीन शिल्प में अनेकानेक मानवाकृतियाँ, देव प्रतिमाएँ, विद्याधर, यक्ष-यक्षिणी मूर्तियाँ आभूषणों से सज्जित प्रदर्शित हैं। इनमें ओज व देदीप्यता विद्यमान है। गुप्तकालीन शिल्प क
सर्वाधिक उदाहरण साँची, सारनाथ, कौशाम्बी व मथुरा से प्राप्त हुए हैं। जिनमें रूपांकन, आकार-प्रकार व सज्जा की दृष्टि से विविध कण्ठाभूषण प्रदर्शित हैं।

*

TS & FA-64

'समराङ्गण सूत्रधार में देवप्रसाद निर्माण एवं भूमिचयन'

बोरडे गंजू, जम्मू

समराङ्गण सूत्रधार के भूमि परीक्षा नामक अष्टम अध्याय में पुरनिवेश एवं भवन निवेश हेतु भूमि चयन सम्बन्धी विभिन्न तत्त्वों का विस्तृत विवेचन हुआ है। इसमें सर्वप्रथम भूमि के तीन प्रकार के देश -जाङ्गल, अनूप एवं साधारण के नामोल्लेख के पश्चात् इन तीनों देशों में

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विविध प्रकार के लक्षणो से युक्त सोलह प्रकार की भूमियों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन हुआ है। अनन्तर जनपदों खेतों ग्रामों, नगरों, दुर्ग, पुर एवं ब्राह्मणादि वर्णों के लिए ग्रामादि निवेश करने हेतु प्रशस्त (उचित) एवं अप्रशस्त (अनुचित) भूमियों सम्बन्धी चर्चा की गई है। इसके साथ ही हल-कर्षण द्वारा भूमि से निकली हुई वस्तुओं से भूमि के शुभाशुभ होने की परीक्षा के निर्देश दिये हैं तथा भूमि या मृत्तिका की पाँच प्रकार की परीक्षा के ढंग बतलाये गए है। अध्याय के अन्त में कहा गया है कि यही भूमि देवप्रासाद निवेश हेतु भी उचित है।

परन्तु देवप्रासाद वास्तु की सम्यक् समीक्षा में एकमात्र भौतिक दृष्टि विवेचन वास्तविक दृष्टि से अपूर्ण ही है क्योंकि देवप्रासाद एक भवन विशेष ही नहीं अपितु प्रतीक भी है। यह स्वर्ग एवं मर्त्य की मिलन भूमि है, उन दोनों का गठबन्धन है। इस भूमि पर देवप्रतिष्ठा करनी है-देवावास बनाना है निराकार की साकार प्रतिमा के दिव्य दर्शन करने हैं। समस्त विश्व को एक चतुरस्त्रा मण्डल पर लाकर प्रतिष्ठापित करना है।

क्या यह मानव के बस की बात है? अतः देव सहाय्य के बिना इस देववासोचित भूमि का चयन निष्पन्न नहीं हो सकता। समराङ्गण सूत्रधार के अनुसार ही पृथु ने सर्वप्रथम इस भूमि को पुर एवं ग्रामों के निवेश योग्य बनाया तथा ऋग्वेदानुसार राजा पृथु का यह कार्य यम ने किया। अतः जंगल पृथ्वी यम की आज्ञा से स्थिर होकर प्रासाद प्रतिष्ठा के योग्य बनी, पुन वही भूमि देवप्रासाद का आधार तथा आधेय भी बनी।

इन संस्कारों में किसी भी संस्कार के नौवें, सातवें, पाँचवें अथवा तीसरे दिन पूर्व विभिन्न प्रकार के बीज चावल, दाल, सरसो आदि एक ताम्र पात्र में रखकर ओषधाश चन्द्रमा के सम्मुख रखे जाते हैं। जब बीज अंकुरित हो जाते है तो कुछ पनपने पर उनका गोओं, गोवत्सों, वृषभो को चराया जाता है फिर कर्षण उपरान्त भूमि को सन्तुलित कर स्वच्छ एवं सुपुष्ट होकर वह भूमि देवप्रासाद प्रतिष्ठा के योग्य बनती है। इस प्रकार देव प्रासाद निर्माण अथवा उसकी प्रतिष्ठा के पूर्व अंकुरार्पण की परम्परा एक प्रकार की प्रतीक कल्पना है, क्योंकि जिस देवप्रसाद कलेवर को गर्भ योनि गर्भगृह से विकास होता है वह पृथ्वी के तत्त्व को अपने में आत्मसात् करता है, उसकी आकृति भू-शक्ति से प्रादुर्भूत होती है और उसका ढांचा भी उसी का आनुषंगित रूप है।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-65

कालिदास की नाट्यभाषा

श्रीनिवास, मुजफ्फरपुर

कालिदास की नाट्यभाषा उनकी लोकविश्रुत नाट्यकला का सर्वाधिक आकर्षक पक्ष है। नाट्यभाषा के विषय में जिन तत्त्वों को प्राणभूत माना जाता है कालिदास तत्तद् तत्त्वों से अपनी नाट्यभाषा को समृद्ध बनाने में अन्य नाटककारों की अपेक्षा अधिक चेष्टावान् प्रतीत होते हैं। कालिदास का स्वीकीय नाट्य सिद्धान्त आचार्य भरत के नाट्यनियमों का अनुगामी है। भास की अपेक्षा नाट्यशास्त्रीय नियमों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता ने उनकी नाट्यभाषा को सर्वगुणोपेत बनाया है इसमें कोई सन्देह नहीं। नाट्य भाषा में अपेक्षित भावापन्नता हेतु कालिदास ने परम्परागत प्रयोगों के अतिरिक्त नवीन एवं मौलिक उद्भावनाओं को अधिक महत्त्व दिया है।

आचार्य भरत ने नाट्य भाषा में जिन तत्त्वों के प्रयोग को विशेष महत्त्व दिया है, उन्हें आत्मसात् करते हुए कालिदास ने अपने नाटकों में प्रयुक्त भाषा को अधिकाधिक प्रभावशाली बनाया है। भरत निर्दिष्ट नाट्य भाषा को सम्पुष्ट बनाने वाले विविध तत्त्वों का कालिदास ने अपनी सूक्ष्मेक्षिका द्वारा यथोचित संयोजन करते हुए अपनी नाट्य रचनाओं में प्रयुक्त भाषा को सर्वाङ्गपूर्ण बनाने की सफल चेष्टा की है। भरत ने नाट्यभाषा के अङ्गों में अभिनेय तत्त्वों की पाठ्य में जिन रूपों में सन्निविष्ट करने का निर्देश किया है कालिदास प्रथम नाटककार हैं जिन्होंने उक्त निर्देशों का आक्षरशः पालन किया है। भरत निर्दिष्ट नाट्य भाषा में क्रिया व्यापार सापेक्षता को देखते हुए इसे आवश्यक रूप से वागङ्गसत्त्वोपेत अर्थात् वाचिक, आङ्गिक और सात्त्विक अभिनय प्रकारों से परिपूर्ण रखा है।

नाट्यभाषा के अन्तर्गत अध्ययेय तत्त्वों में प्रायः वृत्ति, इतिवृत्त, सन्धि, सन्ध्यङ्ग, पाठ्य, प्रकार, पाठ्यगुण, पाठ्यालङ्कार, वृत्त, दृश्य तथा सूच्य कथांशों की योजना में प्रवेशक, विष्कम्भक, अङ्कावतार आदि के अतिरिक्त जनान्तिक, अपकारित आकाशभाषित, स्वगत, प्रकाश आदि नाट्योक्तियों को भी यथा स्थान प्रश्रय दिया है। पात्रों के संवादों में आवश्यक प्रभाव दिखाने हेतु भंगिमाओं और मुद्राओं पर बल देने हेतु अनेक प्रकार के रङ्गसंकेत अथवा नाट्यनिर्देश दिए हैं। पात्रों के मनोभावों की अभिव्यञ्जना जो नाटक में अभिनय द्वारा प्रदर्शित की जाती है, उसके लिए नाट्यनिर्देशों के प्रयोग के औचित्य तथा संतुलन को बनाए रखने मं कालिदास ने पूर्ण चेष्टा की है। आवश्यकतानुसार उनकी नाट्यभाषा में पात्रों के पारस्परिक वाव्यवहार में प्रमुख होने वाले सम्बोधन प्रकारों का निर्वहण भी नाट्यशास्त्रीय नियमों की दृष्टि से शलाध्य है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-66

वैदिक साहित्य में अर्थ पुरूषार्थ

डॉ. बाल कृष्ण शर्मा, मुजफ्फरपुर

'अर्थ शष्द 'ऋग्' द्यातु से निष्पन्न हैं, जिसका अभिप्राय है -गति। अर्थात् जिससे जीवन गतिमान होता है–त्रही 'अर्थ' है। जिसके द्वारा मानव के इहलोक एवं परलोक के समस्त प्रयोजन सिद्ध होते हैं– उसे ही 'अर्थ' की संज्ञा दी गई है। इहलोक की निष्पत्ति में 'अर्थ' की भूमिका प्रत्यक्ष है। यह लोक जिना सार्थक होगा, परलोक उतना ही सुसाध्य। यहाँ अर्थ को अभिष्टार्थ समन्वित जीवन-साधनों से है। किन्तु 'अर्थ' के 'पुरूषार्थ' होने में एक अनिवार्य शर्त भी है कि धर्मपूर्वक अर्जित धन (साधन) ही 'अर्थ' का अधिकारी हो सकता है। उसी से जीवन के वास्तविक उद्देश्यों की सिद्धि सम्भव मानी गई है। एवं उसी से मुक्ति मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

जीवन की इस चतुरंगिणी यात्रा में अर्थ की अग्रणी और अहं भूमिका है। शास्त्रकार जिस लोक के लिए शास्त्र का प्रणयन करता है उसकी गति और स्थिति की नियति का सूत्रध ार 'अर्थ' ही है–अर्थो हि मूलं सर्वस्य (चाणक्य;। 'अर्थ' के बिना लोकयात्रा का रथ रचल हो नहीं सकता-न विनाडप्यर्थलाभेन लोकयात्रा प्रवर्तते (महाभारत)। 'अर्थ' शब्द है ही गति का वाचक। लोक-यात्रा निर्वाह के लिए जो कुछ भी आहार्य और अपरिहार्य है, आदेय और उपादेय है, वह सभी कुछ 'अर्थ' का विद्येय और अभिद्येय है-यतः प्रयोजनसिद्धिः स अर्थः (नीतिवाक्यामृत)। वित्तादि तीनों एषणाओं के पादप को 'अर्थ' रूपी जी ही सिंचित कर पल्लवित करता है। अतः कहा जा सकता है कि जीवन की अभिलाषा, अर्थ में ही निहित हैं।

*

TS & FA-67

नवजात का प्रथम भक्ष्य (गृह्यसूत्रों के परिप्रेक्ष्य में)

शिशुपाल, चण्डीगढ़

गृह्यसूत्रों में बालक के भक्ष्य पर विधान किया गया है। बालक का जन्म होते ही जातकर्म-संस्कार किया जाता है। उस समय गृह्य सूत्रों में बालक को कुछ चटाने अथवा चखाने का विधान हमें प्राप्त होता हे। आश्वलायन गृह्यसूत्र' के अनुसार मधु व घृत जन्म के उपरान्त स्वर्ण-शलाका द्वारा बालक को चटाना चाहिए। शांखायन गृह्यसूत्र के अनुसार घृत-मधु-दधि पानी में लिमाकर बालक को दिया जाए। इसके अभाव में ब्राहि तथा यव को घिस कर चाटाया

CC-0. Kanskri Academy, Jammu. Digitized by S3 Foundation USA

जाए। पारस्कर गृह्यसूत्र जातक को सुवर्णहित अनामिका से मधु और घृत के प्राशन का विधान करता है। गोभिल गृह्यसूत्र ब्रीहि तथा यव का रस बालक की जीभ पर टपकाने का विधान करता है। **महर्षि दयानन्द जातक की जीभ पर स्वर्ण-शलाका से ॐ लिखने का विधान करते हैं।** कौषितक गृह्यसूत्र भी शांखायन गृह्यसूत्र की तरह घृत-मधु-देही जल के साथ मिलाकर चटाने की बात करता है। वहाँ इसे मधुपर्क कहा गया है कौषितक गृह्यसूत्र भी इसके अभाव में ब्रीहियव के रस का विधान है। मनुस्मृति में भी स्वर्ण शहद और घी अर्थात् स्वर्ण शलाका से शहद और घी प्राश्न की बात नवजात के लिए कही गई है।

*

TS & FA-68

महाभारत का युद्ध एवं आधुनिक रक्षा शस्त्र

राजीव कुमार त्रिपाठी, इलाहाबाद

प्रस्तुत शोध सारांश में तत्कालिक रक्षा शास्त्रों तथा एतत् कालिक रक्षा शास्त्रों की तुलना करना ही इसका धेय है। यदि हम महाभारत कालीन युद्ध सामाग्रियों को आधुनिक रक्षा शस्त्र से तुलना करें तो कौन सा रक्षा शस्त्र भारी पड़ेगा यह कहना थोड़ा कठिन सा प्रतीत होता है। यदि महाभारत काल में शब्दभेदी बाण थे तो आज लक्ष्य भेदी मिसाइलें है। जो अपने लक्ष्य का काफी दूर तक पीछा करती है। आधुनिक रक्षा शास्त्रों में पृथ्वी, त्रिशूल, पिनाक, निशान्त जैसे प्रक्षेपण अस्त्र हैं। पृथ्वी सतह से सतह पर मार करने वाला प्रक्षेपण अस्त्र है। अगर व्यक्तिगत रूप से इसकी तुलना महाभारत कालिक युद्ध से करें तो अनेक ऐसे बाण थे जिसका उपयोग उस समय के युद्ध में किया गया। जैये -अग्नि बाण, वर्षा बाण आदि। निशान्त युद्ध क्षेत्र के निरीक्षण हेतु दूरस्थ चालित यान है। अर्थात युद्ध का निरीक्षण कर दूर से ही उस जगह को अपना लख्य बना सकता है जहां कि सैनिक स्थिति कमजोर पड़ रही हो। इसी बात को यदि अन्य रूप में देखें तो दूर से ही किसी वस्तु पर निगाह रखना उस समय भी था कारण गीता जो कि भीष्म पर्व का अंश है उसके प्रथम श्लोक में ही "धर्म क्षेत्रे कुरुक्षेत्रे ....किम् कगुर्वत संजय:" दूरस्थ युद्ध का विवरण देता है। यदि आज छायनामाइड तथा बारूदी सुरंगें बनायी जा सकी हैं तो उस समय भी चक्रव्यूह जैसी जटिल रचना थी। यदि आज मेजर हर्षवध 'न सिंह राठौर निशानेवाली पर लोहा मनवा रहे हैं तो उस गाण्डीवधारी अर्जुन ने भी चिड़िया की आंख को लक्ष्य बना कर अपने निशाने से सबको अचम्भित कर दिया था।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-69

आयुर्वेद और स्वास्थ्य

जगदीश प्रसाद वैद्य, टाण्डा

महर्षि चरक ने कहा कि जो व्यक्ति अपनी प्रकृति तथा उसकाल की ऋतु के अनुकूल एवं सीमित मात्रा में भोजन करता है। ऋतु के अनुकूल वस्त्र धारण करता है। सभी कार्य विचार पूर्वक करता है। विषयों में आसक्त नहीं होता। पात्र व्यक्ति को ही दान देता हे। कभी उद्विग्न नहीं होता। जो मनसा वाचा एवं कर्मणा सत्य पर चलता है। जो सदा ज्ञानी व्यक्तियों की संगति में रहता तथा क्षमावान व्यक्ति सदा निरोग रहता है।

महर्षि वाग्भट ने लिखा है–

अहितकर खान पान ही रोगो का कारण है। भोजन सदा निश्चित समय पर ही करें तथा भोजन खूब चबा चर्बा कर करें। भूख से थोड़ा कम ही खायें।

आचार्य सुश्रुत ने लिखा है समदोष :–जिस व्यक्ति के बाल, पित, कफ दोष न बढ़े और न घटे हों, न प्रकुपित हो।

समाग्नि–अग्नि व्यापार अर्थात परिपोषक (Metabolic Function) सम हो

समधातु–रस-रक्त-मांस-मज्जा, भेद-अस्थि शुक्रादि धातुएँ न बढ़ी हों न घटी हों यानि विकार रहित हों

मलक्रिया–खेद, मूत्र पुरीष (stoll) आदि मल क्रिया सम हों

कर्मेंद्रियाँ आत्मा और मन प्रसन्न, उत्साह युक्त रागद्वेषादि रहित हों उसे पूर्ण स्वस्थ कहा जा सकता है।

*

TS & FA-70

भास्कराचार्य–एक संक्षिप्त अनुशीलन

विपिन कुमार, लखनऊ

सिद्धान्त ज्योतिष के इतिहास में भास्कराचार्य का अप्रतिम स्थान है। वैष्णवमतावलम्बी ज्योषि महामनीशी का जन्म सह्यपर्वत के पास विज्जडविड गाँव में 1036 शक में हुआ था

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एवं 36 वर्ष की अवस्था में सिद्धान्त ज्योतिष के कीर्तिमान हस्ताक्षर "सिद्धान्त शिरोमणि" की रचना की। इस ग्रन्थ के चार विभाग हैं (अ) लीलावती (अंकगणित) (ब) बीजगणित (स) ग्रह गणिताध्याय (द) ग्रह गोलाध्याय।

लीवावती में हमें पाटी-गणति अर्थात अंकगणित के क्षेत्र में भास्कराचार्य के वैदुष्य का अद्भुत प्रदर्शन देखने को मिलता है ग्रन्थ में 13 अध्याय एवं 278 पद्य हैं। जिसमें शून्य की परिभाषा और उसकी प्रयोगविधि संख्यात्मक कार्य (धनात्मक एवं ऋणात्मक संख्याएं) पाई का, मान गुणन एवं वर्ग का नियम, ब्याज एवं अभिलकल एवं 3, 5, 7, 9, 11 का नियम, व्याज एवं अभिलकलन का संगणन, अंकगणति एवं ज्यामितीय प्रक्रिया, सरल ज्यामिति, ठोस ज्यामिति कमचय एवं संचय अनिश्चयात्यक समीरकण अर्थात् कुट्टक छाया के अध्ययन का विधान भी विविक्त है।

बीजगणित में 12 अध्याय एवं 213 पद्य हैं विश्व की पहली कृति है जिसमें बताया गया कि प्रत्येक धनात्मक संख्या मे 2 वर्गमूल होते हैं धनात्मक एवं ऋणात्मक वर्गमूल। इसमें धनात्मक एवं ऋणात्मक संख्याएँ शून्य, अज्ञात मात्रा की निर्धारण विधि, कुट्टक, सरल समीकरण अज्ञात समीकरण के साथ सरल समीकरण चतुर्थाश अनिश्चित समीकरण द्वितीय तृतीय एव चतुर्थाश तक निश्चित समीकरण आदि की शोधपरक पुस्तक हैं। चक्रवलय विधि इसकी अद्भुत खोज है।

14 प्रकरणों में विभक्त ग्रहगोलाध्याय की ग्रन्थ संख्या 2100 हैं। सिद्धान्त शिरोमणि ग्रन्थ के ग्रह गोलाध्याय में ग्रहगोल, भूगोल, खगाल का अत्यन्त सरल रोचक एवं स्पष्ट वर्णन हुआ है। भास्कराचार्य ने अपने द्वितीय ग्रन्थ करणकुतहलम् की रचना 1105 शक (1183 ई.) में की।

*

TS & FA-71

संस्कृत रूपकों में स्वप्न

राहुल, वाराणसी

जब से मनुष्य इस भूमण्डल पर अवतरित हुआ है, तभी से अन्य क्रियाकलापों के अनुरूप उसका स्वप्न से भी घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। स्वप्न के विषय में चिन्तन करना भी साथ-साथ उदय हो गया। मानव जीवन की दो स्थितियाँ है-स्वप्न और जाग्रत। जब सभी कर्मेन्द्रियां मन से एकीभाव प्राप्त कर लेती है, तो मनुष्य निद्रा की अवस्था में होता है। निद्रावस्था

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

में सभी इन्द्रियां मन में विलीन हो जाती है किन्तु मन किसी में भी विलीन नहीं होता है तब मन ही मनुष्य को भूत, भविष्य एवं वर्तमान समस्त सत्य अथवा असत्य घटनाओं को दिखाता है। मन की यही क्रिया स्वप्न कहलाती हे।

मानव जीवन से सम्बन्धित होने के कारण इस स्वप्न एवं इसकी सत्ता, भारतीय संस्कृति के मध्स मुख्य एवं चिन्तनीय विषय रहा है। जिससे समस्त भारतीय साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में इसे विशिष्ट स्थान प्रदान किया है। ऋग्वेद में अनेकाने स्थालों में वर्णित इस प्राचीन विषय (स्वप्न) को लौकिक साहित्य के रूपककारों ने भी अनेकाने स्थलों पर वर्णित किया है। रूपकों में यह कथावस्तु की आवश्यकता के अनुरूप एवं शुभ और अशुथ के सूचक के रूप में प्राप्त होता है।

*

TS & FA-72

वेदों में प्रतिफलित मानवाधिकार

विजय शंकर द्विवेदी, इलाहाबाद

मानवाधिकार की सार्वभौम घोषणा संयुक्त राष्ट्संघ की महासभा में 10 दिस्मबर 1948 को अंगीकार किया जिसमें नागरिक, राजनैतिक, आर्थिक, समाजिक औश्र सांस्कृतिक अधिकारों का विस्तृत समावेश किया गया है। मानवधिकार की जड़े अति प्राचीन है। हमारे वेदों में ऋषियों ने धर्म ओर कर्तव्यों के पालन का निर्देश दिये हैं जिससे फलरूप में मानपव अधिकार स्वतः सुरक्षित हो जाते हैं।

ऋषियों ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के कण-कण में शान्ति की कलपना क है द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष शान्ति .....(यजु. 36/11) आदि मन्त्र में समस्त मानव / विद्वान एवं देवतागण शान्ति प्रदान करने वाले हों ऐसी प्रार्थना की गई है। जिससे प्रतिफलित मानवाधिकार सुरक्षित हो सके।

सत्य वृहदृमुग्रं-(अर्थवेद 12-1-1) आदि मन्त्र द्वारा मानवाधिकार हनन का निराकरा मानव के आन्तरिक गुणों सत्य, निष्ठा,.यथार्थ, बोध, तेज धर्म का पालन, दीक्षा दक्षता, त्याग, प्रेम आदि द्वारा ही सम्भव है।

संगच्छध्वं सं वदध्वं-(अर्थवेद 6-64-1) आदि मन्त्र में सभी मानव को अपने कर्तव्यों का पान करते हुए साथ मिलकर चलने, सामान्य रूप से विचार करने की आज्ञा है। जिससे फलरूप में मानवाधिकार स्वतः सुरक्षित हो जाते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यो नो द्वेषत पृथिवी–(अथर्ववेद 12-1-14) शत्रुता और द्वेष भावना से युकत जो लोग हमें परतन्त्रता के बन्धन में जकड़ना चाहते है ऐसे शत्रुओं का समूल विनाश करें-ऐसी प्रार्थना इस मन्त्र में की गई है। ता महान्ता सदस्पती–(ऋ. 1-21-5) में शोषण के विरुद्ध अधिकार की कामना की गई है। जहाँ अग्नि एवं इन्द्र से राक्षसों (दुष्ट समाज शोषक लोगों) को (राष्ट्र रूपी सभा गृह से) बाहर करने एवं सन्तानहीन करने की प्रार्थना की गई है–

जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं–(अथर्ववेद 12-1-45) आदि मन्त्र में भिन्न भाषा-भाषी एवं विभिन्न धर्म मानने वाले लोगों को पृथ्वी अपनी गोद में समेटकर गाय की भाँति एश्वर्यों का दोहन करने देती है।

*

TS & FA-73

गीता-गणित कसौटी पर

डॉ. ए.बी. चन्द्रमौलि, सहारनपुर

गणित की एक शाखा, सांख्यिकी जो अनिश्चितताओं की अवस्था में निर्णय लेने का एक विज्ञान है, को गीता के कर्मयोग पर अनुप्रयुक्त किया गया है। दो खिलाड़ियां द्वारा अपने-अपने सिक्के को उछालकर चित्त या पट की तुलना करने के खेल में किसी खिलाड़ी द्वारा (½, ½) की स्ट्रेटेजी अपनाने से किसी की जीत तो नहीं होती है, किन्तु किसी की हार भी नहीं होती है; इसे फेअर गेम कहते हैं। गीता की निष्काम कर्मयोग की तकनीक व्यक्ति को इष्टतम स्ट्रेटेजी उपलब्ध कराती है जो आत्मा को परमान्द की ओर ले जाती हे असके अतिरिक्त अन्य प्रत्येक स्ट्रेटेजी, शुद्ध या मिश्रित, शारीरिक, मानसिक-आत्मिक हानियों से युक्त होने से, रिस्की होती है।

*

TS & FA-74

अजीर्णोपचार

देवेन्द्रा कुमारी शर्मा, जम्मू

इस लेख में पाश्चात्य चिकित्साप्रणाती की एंटिवायटिक औषधियों के सेवनजन्य विभिन्न प्रकार के रोगों से बचाने की दृष्टि से कुछ प्रयोगों पर प्रकाश डाला गया है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यदि विवेकशील प्राणी इस लेख में वर्णित प्रयोगों को व्यवहारिक जीवन में अपनाने का प्रयास करेंगे तो एंटिवायटिक औषधि प्रयोगजन्य नाना प्रकार के रोगों से मुक्त रह कर दूसरों का कल्याण करने में सफल हो सकेगें।

*

TS & FA-75

सामाजिक परिवर्तन में धर्म की भूमिका

अजय प्रताप सिंह, लखनऊ

यदि एक सत्य है कि मनुष्य एक समाजिक प्राणी है, तो इसके साथ दूसरा सत्य यह भी है कि मनुष्य एक धार्मिक प्राणी है। सर्वप्रथम मनुष्य की उत्पत्ति हुई, मनुष्यों से मिलकर समाज का निर्माण हुआ तत्पश्चात् समाज में रहते हुए उत्तम जीवनयापन के लिए मानव ने धर्म को अपनाया।

नि:संदेह हम यह मान सकते हैं कि धर्म न केवल व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन के लिए उपयोगी है बल्कि समाजिक नैतिक, आध्यात्मिक जीवन के लिए भी आवश्यक है। ध र्म का अस्तित्व समाज में ही रह सकता है अत: प्रत्येक सामाजिक परिवर्तन धर्म को प्रभावित करते हैं साथ ही यह भी स्वीकार करना होगा कि धर्म मानना आत्मा से जुड़ा है। अस्तु ध र्मिक मान्यताएँ सामाजिक मान्यताओं को प्रभावित करती हैं।

*

TS & FA-76

भारतीय राजनैतिक दर्शन में रवीन्द्र नाथ टैगोर का योगदान

विजय प्रताप सिंह, लखनऊ

टैगोर राज्य और राजनीति को सीमित महत्व ही प्रदान करते थे। राज्य की शक्ति व कार्य क्षेत्र के निरन्तर विस्तार से वह उसी प्रकार सशंकित और व्यथित थे जिस प्रकार महात्मा गाँधी। टैगोर का विश्वास था कि मनुष्य का कल्याण राज्य जैसी वाह्य और अमूर्त संख्या से सम्भव नहीं, इस दायित्व का निर्वाहन तो सामाजिक व सांस्कृतिक संस्थायें ही कर सकती हैं। टैगोर शक्ति प्रतिस्पर्धा एवं उपयोगिता की राजनीति के कटु आलोचक थे। वह मार्क्स के वर्गवादी एवं क्रान्तिकारी दृष्टिकोण को मानवता के लिए हितकारी नहीं मानते थे। वे एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था के पैरोकार थे जो आत्मिक और नैतिक आदर्शों को चरितार्थ कर सके। इस प्रकार

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri S3 Foundation USA

टैगोर का राज दर्शन 20वीं शताब्दी की उन विचारधाराओं व अवधाराओं के विरुद्ध प्रतिक्रिया है जो महज राजनीतिक व आर्थिक कार्यक्रमों के आधार पर मनुष्य का सम्पूर्ण कल्याण करना चाहती है। यह स्पष्ट है कि टैगोर आधुनिक राज्य, राजनीति और विचारधाराओं के प्रस्थान बिन्दुओं को भ्रामक मानते हैं और सार्वभौमिक मानदण्डो की आवश्यकता को अनुरेखित करते है।

*

TS & FA-77

राज्यसृष्टि एवं राजनीतिक संस्थायें प्राचीन संदर्भ में

विपुर पचौरी, दिल्ली

शासन-कला एवं राज्य के अस्तित्व के प्राचीन प्रतिमानों की वस्तुस्थिति के ज्ञान से राजनीति जीवन एवं सामाजिक अवस्थाओं के विषय में मानवीय सफलता प्रयासों को समझा जा सकता है। मानव मनीषा ने सभ्यता के कर चरण में युक्त, साहस एवं धैर्य से सम्मुख उपस्थित समस्याओं का यथार्थ एवं व्यवहारिक समाधान अर्जित किया है। एकाकी व्यक्तित्व से वैशिवक राज्य संकल्पना पर्यन्त व्यवहार्य नियमों, उपबन्धों, अनुशासन एवं कर्तव्य के समीकरण संस्थापित किये गये। अतः राज्य एवं संस्थायें मानव के सामाजिक, राजनीतिक बोध से उत्पन्न व्यवस्थाओं का समुच्चय है। परिष्करण, परिवर्धन के तार्किक प्रावधानों से नवआयामित व्यवस्था भी स्वीकार्य रही है।

*

TS & FA-78

शुल्ब साहित्य में अङ्गुल प्रमाण-पत्र

डॉ. (श्रीमती) गीता त्रिपाठी, सुल्तानपुर

वैदिक यज्ञानुष्ठानों का सम्पादन निश्चित ज्यामितिक मापन व्यवस्थाओं में विनिर्मित यजनशाला और यज्ञवेदिकाओं में ही सम्भव रहा है। इसलिए आर्ष परम्परा में ज्यामिति विज्ञान का उन्नत स्वरूप उपस्थित है। वेदिकाओं आदि के दैर्घ्य, उच्चावच आकार प्रकार, गहराई गोलाई और चौड़ाई आदि के निर्माण में प्रयुक्त किये जाने वाले मापन के साधनों में जहाँ एक ओर अनेक यत्रों के उल्लेख हैं, वहीं दूसरी ओर मानव शरीर के विभिन्न अवयवों को भी आर्यमनीषियों ने अनवार्यता प्रयुक्त किया है। मानव अङ्गों को मापन के साधन के रूप में

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रयोग करने में सरलता, शुलभता और सहजता ही कारण रहा है, जो सार्वजनीन एवं सार्वकालिक भी है। जिससे कम से कम कृत्रिम साधन अपनाने पड़े। शरीर के जिन अङ्गों को मापन के साधन का माध्यम बनाया गया है उसमें पाद, अङ्गुल आदि प्रमुख हैं। इसमें भी अङ्गूल को सभी मापन की इकाई के रूप में ग्रहण किया गया है। अङ्गुल प्रमाण का निर्धारण कैसे किया जाए? इस सम्बन्ध में आर्यमनिषियां ने अपने-अपने चिन्तन उपन्यस्त किये हैं। प्रस्तुत शोध निबन्ध का मुख्य प्रतिपाद्य समग्र शुल्बसूत्र साहित्य में विवेचित अङ् गुल प्रमाण के मान के निर्धारण का परिशीलन करते हुए इसकी वर्तमान में उपादेयता का क्ष्यापन करना है। साथ ही यह भी कि ऋषिपरम्परा में मापन के सरलतम साधनों में अङ्गुल को प्रयोग कितना सार्थक रहा है। जो अनागत काल में भी बना रहेगा।

*

TS & FA-79

पर्यावरण संरक्षण एवं वाल्मीकि रामायण

डॉ. भारतेन्दु द्विवेदी, ज्ञानपुर

वैदिक काल से ही पर्यावरण के प्रति संचेतना दिखायी पड़ती है। वेदों में 'माताभूमि' पुत्रोऽहं पृथिव्याः' कहकर भूमि का माता के तुल्य संरक्षण करने का उपदेश दिया है।

वाल्मीकि लौकिक संस्कृत कवि हैं। उनकी रचना लौकिक संस्कृत का प्रथम ग्रन्थ है। रामायण में वाल्मीकि ने रामकथा को सात काण्डों में विभक्त किया है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में 'रामायण से भारतवर्श का परिचय प्राप्त होता है। इस रामायण के कथा से भारतवर्ष के बालक, वृद्ध, स्त्रियाँ आदि सबको केवल शिक्षा ही नहीं मिलती है, शिक्षा के साथ-साथ उन्हें आनन्द भी मिलता है।' रामायण में वाल्मीकि न पर्यावरण संरक्षण के प्रति भी सन्देश दिया है। रामायण के पात्र भी पर्यावरण के प्रति सचेष्ट रहते हुए संरक्षण का सन्देश देते हैं। वृक्षों में देवत्व की उद्भावना हमारी संस्कृति की बहुत बड़ी विशेशता रही है और विशेषरूप से महिलाओं ने इसे श्रद्धापूर्वक विकसित किया है। रामायण में भी अनेक स्थलों पर वनस्पतियों का सौन्दर्य और प्राचुर्य वर्णित है। वृक्षों और वनों का भी वर्णन है। वृक्ष पूजनीय और सौभाग्यदायक यप में वर्णित हैं। जो पर्यावरण के प्रति सजगता और जागरूकता का संकेत करते हैं। वाल्मीकि ने नदियों, सरोवरों के शुद्ध जलके लिए भी चेतनता जागृत की है। नदियों के प्रति श्रद्धा का भाव रखने, उन्हें प्रदूषण मुक्त रखने के लिए नदियासें के पूजन करने, प्रणाम कर आशीष मांगने का विवरण अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-80

यौगिक परम्परोक्त प्राणयाम एवं उसका चिकित्सकीय लाभ

अमर वाजपेयी, वाराणसी

प्राणरूय आयामः प्राणयामः। प्राणायाम् शब्द प्राण के आङ् उपसर्ग पूर्वक यम् (नियन्त्रणार्थक) धातु से धन् प्रत्यय लगान से निषपन्न होता है। प्राणायान का शाब्दिक अर्थ होता है प्राण का नियन्त्रण या निरोध। जैसे कि स्मृति में कहा गया है–

"प्र देहमतो वायुरायामस्तन्निबन्धानम्।"

पातंजल योगदर्शन में प्राणायाम को पांच सूत्रों में व्याख्यायित किया गया है, "तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणयामः" आसन सिद्ध हो जाने पर श्वास-प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम है। प्राणायाम वाह्यवृत्ति (रेचक) अन्नःवृत्ति (पूरक) और स्तम्भवृत्ति (कुम्भक) के भेद के तीन प्रकार का होता है। यह त्रिविध प्राणायाम देश, काल और संख्या से परीक्षित होता हुआ दीर्घ व सूख्म होता जाता है। वाह्य वृत्ति (रेचक) और अन्तरवृत्ति (पूरक) दोनों से रहित चौथा प्राणायान् हैं। अर्थात् जब प्राणयाम् में दीर्घता और सूक्ष्मता आ जाती है यानि रेचक और पूरक प्राणयाम सिद्ध हो जाते हैं तो इन दोनों की गतियों का पूर्ण निरोध ही चतुर्थ प्राणायाम या 'केवल कुम्भक' प्राणायाम है। याज्ञपल्क्य स्मृति में कहा गया है–

रेचकं पूरकं त्यक्त्या यत्सुखं वायुधारणम्।
प्राणायामोऽयमित्युक्तः स यै केवलकुम्भकः॥

प्राणायाम के अभ्यास से ज्ञान रूपी प्रकाश पर पड़ा हुआ आवरण नष्ट हो जाता है तथा मन की धारणाओं में योग्यता हो जाती है। अर्थात् मन धारणा के योग्य हो जाता है, प्राणायाम् के अभ्यास से। योगतंत्रादि परम्परा में प्राणयाम् को विशेष महत्त्व दिया गया है क्योंकि प्राण और मन में बहुत ही गहरा सम्बनध है जैसा कि हभ्योगप्रदीपिका में कहा गया है–

चले वाते चलं चित्तं विश्चले निश्चलं भवेत्।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्॥

अर्थात् प्राणवायुके चलायमान होने से चित्त भी चलायमान होता है और प्राणवायु के निश्चल होने पर चित्त भी निश्चल होता है और प्राणवायु तथा चित इन दोनों के निश्चल होने पर योगी स्थाणुरूपको प्राप्त होता है यानि स्थिर और दीर्घ काल तक जीता है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-81

जैन और वैदिक परंपरा में वनस्पतिविचार

(इन्द्रियों के संदर्भ में)

डॉ. कौमुदी बालदोटा, पुणे

जैन और वैदिक परंपराओं में दैनंदिन व्यवहार में वनस्पतियों का उपयोग तथा उनसे वर्तन-वयवहार के बारे में काफी अंतर दिखाई देता है। हरा धानिया, मिर्च आदि का उपयोग, कंद-मूल आदि का भक्षण, देवताओं को ताजे फूल, पत्ते या नारियल चढ़ाना, वृक्षों को पूजनीय मानना आदि कितने छोटी-मोटी बातों में दोनों परंपराओं में अलग-अलग मान्यताएँ पायी जातीं हैं। दोनों परंपराओं के तत्तवप्रधान तथा आचार्यप्रधान ग्रंथों में इसका रहस्य निहित है। इस शोध निबंध में वनस्पति की सजीवता तथा वनस्पति में इंन्द्रियों की उपस्थिती इन मुद्दो को ध्यान में रखकर छानबीन की गयी है। दोनों परंपराओं के यथोचित ग्रंथों से संदर्भ जुटाकर निरीक्षण प्रस्तुत किये हैं। जैनियों के अर्धमागधी और शौरसेनी भाषानिबद्ध ग्रंथों में इसकी सर्वाधिक चर्चा दिखायी देती है। महाभारत, सांख्यदर्शन, चरकसंहिता मनुस्मृति आदि संस्कृत ग्रंथ आधार के लिए स्वीकृत किये है।

इस निबंध को वैज्ञानिक मूल्य प्राप्त कराने हेतु विशेष प्रयास किये हैं। वनस्पतिशास्त्र के प्राध्यापकों से इस विषय की चर्चा की। बॉटनी तथा इकॉलॉजी के आधार भूत ग्रंथ निबंध के अंतिम भाग में निर्दिष्ट किये हैं। निबंध में निम्नलिखित मुद्दो की जैन, वैदिक, तथा वैज्ञानिक दृष्टि से चर्चा की गई है–

1. वनस्पति की उत्पति
2. वनस्पतियोनि
3. स्थान
4. जीवत्व
5. वेद (लिंग)
6. इन्द्रियाँ
7. वनस्पति का आहार में प्रयोग
8. औषधियों में प्रयोग

TS & FA-82

संदेश काव्यों में शिल्प विधान

बालकृष्ण प्रजापति, म.प्र.

श्रव्य काव्यों में संदेश काव्यां का अपना विशिष्ट स्थान है। मानवीय अन्त:करण और प्रकृति के दोनों ही रूपों का उदात विवेचन प्राप्त होता है। विप्रलम्भ श्रृंगार तथा विरल की

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठभूमि में संदेश काव्यों का प्रणयन किया गया है। आध्यात्मिक एवं श्रृंगारिक दोनों ही प्रकार के संदेश काव्य वर्तमान में उपलब्ध होते हैं। उपलब्ध संदेश काव्यों का शिल्पविधान विवेच्य विषय है। इसके अन्तर्गत संदेश कावय प्रेषण मार्ग वर्णन, प्रकृति वर्णन, संदेश स्थल, संदेश वाहक की प्रमाणिकता आदि बातों का विचार किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में इन्हीं सभी बिन्दुओं पर विस्तार से विवेचन किया गया है।

*

TS & FA-83

वेदों में आयुर्वेद

कु. राधा चतुर्वेदी, लखनऊ

मनुष्य के द्वारा प्राकृति वातावरण के दुरूपयोग के कारण उत्पन्न उसके स्वास्थ्य की समस्याओं का प्राकृतिक जड़ी बूटियों के द्वारा निदान ही आयुर्वेद है। वैदिक काल से ही मनुष्य अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक रहे हैं। अतः आयुर्वेदिक चिकित्सा की उत्पत्ति वैदिककाल से ही प्रारम्भ हो गयी थी।

ऋग्वेद में आयुर्वेद के आचार्यो का उल्लेख है, जिसमें 'दिवादास' और 'भरद्वाज' प्रमुख है, इनसे शल्य और काय चिकित्सा का प्रचार पृथ्वी पर हुआ (ऋग्वेद 1-8-11)। किन्तु इसका विस्तृत विवरण अथर्ववेद (10-2) में प्राप्त होता है। आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद भी कहा जाता है। इसमें आयुर्वेद के सभी अंगों का तथा प्रत्येक अंगों के द्वारा की जाने वाली चिकित्सा का वर्णन है। आज वर्तमान समय में देशी-विदेशी जितनी भी चिकित्सा पद्धतियां है, उनमें अपनी आयुर्वेदिक चिकित्सा ही सबसे महत्वपूर्ण, रोगों का पूर्ण रूपेण निदान करने वाली है।

*

TS & FA-84

प्राचीन एवं वर्तमान दण्ड व्यवस्था

डॉ. नीलम त्रिवेदी, कानपुर

प्राचीन दण्ड व्यवस्था में जनता धर्म को मानने वाली थी। जो भी राजा मंत्री आदि निर्णय करते थे जनता को मान्य था। प्रजा का ऐसा मान्ना था की अपराधी को दण्ड मिलेगा ही, यह सकारात्मक पक्ष था। हर व्यस्था में कुछ अपवाद समय के साथ-साथ आ ही जाते

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

है। नकारात्मक पक्ष यह है कि निरपराधियां को भी सजा मिल जाने की संभावना थी। उसके बचाव, अपील की कोई व्यवस्था नही थी। दस प्रतिशत सही तो दस प्रतिशत गलत निर्णय होते थे। वर्तमान न्याय प्रणाली में बचाव पक्ष के लिये इतने अवसर है कि प्रायः अपराधी येन केन प्रकारेण न्यायिक व्यवस्था के छिद्रो से बच निकलते हैं, उन्हें दण्ड नहीं मिल पाता अपराध बढ़ रहे है। 90 प्रतिशत निकल जाते है 10 प्रतिशत को ही दण्ड मिलता है।

पहले धर्म गुरुओं पर कोई प्रश्न चिन्ह नहीं उठाता था वर्तमान में शंकराचार्य प्रकरण जो सामने आया है शकराचार्य की विश्वसनीयता पर ही प्रश्न चिन्ह उठ गया है।

आज सुधारवाद का नारा लगाया जाता है। सुधार कहते हैं मानसिक परिवर्तन को। मानसिक ग्लानि पश्चातापजन्य होती है। पर आज के अपराधी तो निर्मिक होकर विचरते है। फिर सुधार कैसे सम्भव है।

यही इस शोध पत्र में विश्लेषण किया गया है।

*

TS & FA-85

संस्कृत लेखन एवं शिक्षण की आधुनिक समस्याऐं

डॉ. प्रभावती चौधरी, जोधपुर

आधुनिक काल में संक्रमण के दौर से गुजरती भारतीय शिक्षा व्यवस्था में संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेजी तीनों भाषाऐं उपेक्षित है। हिन्दी एवं अंग्रेजी की स्थिति तो फिर भी सुरक्षित है किन्तु संस्कृत की स्थिति अधिक विकट है न तो यह व्यवहार की भाष है एवं न ही राजभाषा हैं ऐसी स्थिति में संस्कृत का शिक्षक एवं विद्यार्थी दोनों ही विकट समस्या से ग्रस्त हैं।

ऐसी स्थिति में संस्कृत न केवल उपेक्षित है। अपितु इसको प्रचारित-प्रसारित करने हेतु वैज्ञानिक तकनीकि का सर्वथा अभाव है। कुछ विचारणीय बिन्दु प्रस्तुत है-

1. संस्कृत को भाषा के रूप में न सिखाकर केवल साहित्य के रूप में सिखाया जा रहा है इसके भाषा-वैज्ञानिक महत्त्व को नगण्य किया जा रहा है।
2. विद्यालयों में पाँच वर्ष तक अनिवार्य रूप से संस्कृत पढ़ने वाला विद्यार्थी संस्कृत के ज्ञान से सर्वथा अपरिचित ही रहता है केवल कुछ वाक्यों या श्लोकों को कण्ठस्थ करके संस्कृत के ज्ञान की इतिश्री समझी जाती है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

3. बच्चों को भाषा सिखाना अधिक आसान है किन्तु हमारे द्वारा संस्कृत पढ़ानें हेतु अपनाई गई तकनीक संस्कृत भाषा तो बच्चों को सिखा नहीं पाती बल्कि संस्कृत के प्रति बच्चों में विराग उत्पन्न करती है।

4. आज जब जगारोन्मुख शिक्षा को ही उपभोक्तावाद में बढ़ावा मिल रहा है तो संस्कृत को शिक्षण या लेखन को राजगार से जोड़ना आवश्यक है।

5. संस्कृत के अध्येताओं एवं संस्कृतानुरागियों के लिए चिन्तन का विषय है कि संस्कृत नौतिकता को साथ लेकर उपभौतावाद को कैसे नियन्त्रित करें।

किसी भी भाषा के दो रूप होते हैं - एक व्यवहार की भाषा एवं दूसरा - साहित्य की भाषा। संस्कृत चूँकि व्यवहार की भाषा नहीं रही ऐसी स्थिति हम केवल साहित्य पढ़ाने पर ही अधिक बल देते हैं एवं भाषा को गौण बना देते हैं संस्कृत को भाषा के रूप में शिक्षण करने से पूर्व हमें संस्कृत के सांस्कृतिक या धार्मिक महत्त्व से भी अधिक इसके वैज्ञानिक महत्त्व को समझता एवं समझाना आवश्यक है-

1. संस्कृत स्पीच धेरेपी के लिए एक आदर्श भाषा के रूप में अपनाई जा सकती है।

2. संस्कृत का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन अन्य भारतीय भाषाओं के ज्ञान एवं अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकती है।

3. संस्कृत भाषा का सम्यक् शिक्षण एवं अध्ययन मनोचिकित्सा के रूप में प्रभावी एवं व्यापक रूप से ग्रहण करने योग्य है।

4. संस्कृत को प्रतिष्ठित करने की हमें आवश्यकता नहीं है अपितु इसके प्रचार-प्रसार के पूर्व संस्कृत शिक्षण की तकनीक (Methology) में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है। संस्कृत तदुपरान्त स्वयं प्रतिष्ठित हो जाएगी।

5. संस्कृत हम इसलिए न पढ़ें कि यह हमारी भाषा है अपितु इसलिए पढ़ें कि इसे पढ़ना वैज्ञानिक है एवं इसके प्रभाव चमत्कारिक हैं।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-86

शेखावाटी के भित्तिचित्रों में जगदेव परमार : जीवन मूल्य के संदर्भ में

डॉ. पुष्पा दुल्लर, वनस्थली विद्यापीठ (राज०)

मानव की समूची संस्कृति कृति, निर्मिति, भणिति और अभिव्यक्ति के रूप में देखी जाती है। रूप सृजन का प्राण तत्त्व है, समग्रता, अखण्डता, लय, गति एवं संगति आदि रूप के विधान है। क्रम-व्यवस्था रूप का फल है। अतएव रूप का सम्बन्ध जीवन से है। इसीलिए सृजन की प्रवृत्ति जीवन की मौलिक प्रवृत्ति है। सृजन शक्ति ही मूल्य बोध के विकास एवं विस्तार को सतत् क्रियाशील बनाये रखती है। इसी कारण कला समय और सीमाओं को लांघने की सामर्थ्य रखती है और समाज उसे मरने नहीं देता। चूँकि भारतीय संस्कृति का चरम लक्ष्य सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् युक्त मानवीय विचारणा, चिन्तन का निचोड़ या परिणाम ही 'जीवन मूल्य' है। स्थानीय परिवेश की परिस्थितियाँ और अन्तः प्रदेश (हृदय) की मनः स्थितियाँ ही गन्तव्य के निर्धारण एवं मूल्यों के आविर्भाव और विकास में सहायक होती है। सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में मूल्य समाज को जागृत करने में सहायक है। जीवन में कलाओं के महत्त्व को भर्तृहरि ने अपने प्रसिद्ध श्लोक द्वारा इस प्रकार व्यक्त किया है-

"साहित्य, संगीत, कला विहीनः साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीनः।"

इस दृष्टि से कला में मूल्य बोधा को अस्तित्व ही उसे निरन्तर प्रवाहमान किये हुये हैं। राजस्थान में शेखावाटी के भित्तिचित्र भी इसी दिशा में जीवन मूल्यों का सृजन ही है। ऐतिहासिकता के अस्तित्व की धारा में मध्यकाल के 'जगदेव पंवार' ऐसा ही एक प्रमाण है जिसने शेखावाटी के भित्तिचित्रों में विशेष स्थान प्राप्त किया। लोक मानस इन्हें 'त्रिविध-वीर' के रूप में कथा, गाथा, ख्याल, अभिनय एवं चित्र आदि विभिन्न विधाओं के द्वारा वृहद् आदर्श के धरातल पर समग्रता के साथ लोकोन्मुखी बनाती है।

*

TS & FA-87

निसर्ग की विराट कला दीर्घा और ललित कलाएँ

डॉ. अन्नपुर्ण शुक्ला, वनस्थली विद्यापीठ (राज०)

निसर्ग की यह कलादीर्घा एक कला कार्यशाला भी है, जिसमें निरन्तर कलाकर्म और प्रयोग चलते रहते हैं और कृतियों का सृजन होता रहता है। कलाएँ अवश्य मानव की खोज

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri S3 Foundation USA

हो सकती है, परन्तु उसने सारी कलाएँ इसी विराट कला दीर्घ में पहचानी। वैदिक ऋषियों से लेकर, बाल्मीक, कालिदास, तुलसीदास, सूर, कबीर, निराला, अजन्ता के चितेरे, कोणार्क और खजुराहो के मूर्ति शिल्पी तक सभी ने इसी विराट कला दीर्घा की मात्र झलक पाली होगी, जिसका मुर्तन ही इनकी कृतियों में झलकता है।

पूरी सृष्टि ही सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की अद्‌भुत कलाकृति है क्योंकि अस्तित्व को बहुत पहले इसमें वास्तुकला के रूप में विशाल पर्वत श्रेणियाँ, कंदरायें, छोटी-बड़ी गुफायें, अनेक रंगों व आलेखनों वाली संगमरमर की खाने, विविध रंगों, आकारों और टेक्सचरों के नैसर्गिक संयोजन भरे पड़े हैं।

मूर्तिकला के रूप में नदियों के तीव्र प्रवाह द्वारा गढ़े विभिन्न मूर्त एवं अमूर्त आकारों के पत्थर, प्राकृति काष्ट के मूर्तिशिल्प, समुद्री आवेगों ज्वारभाटा द्वारा अर्पित शंख, साँप, घोंघे और अद्‌भुत आकार। चित्रकला के रूप में पेड़-पौधे, रंग-बिरंगे फूलों हरी-भरी धरती के संयोजन जिनकी अनुकृति चित्रकार करते हैं। पतझर में रेखा चित्रों जैसे दिखते पेड़-पौधे बसन्त के रंगीन लैण्डस्केप आदि।

*

TS & FA-88

नाथद्वारा शैली को कलात्मकता

किरन सरना, राजस्थान

वीर वसुन्धरा मेवाड़ की राजधानी उदयपुर से तीस मील दूर उत्तर दिशा में घने पहाड़ों के मध्य कला एवं संस्कृति का केन्द्र नाथद्वारा स्थित है। इस कस्बे के नाम से स्पष्ट हो जाता है कि इसमें प्रमुख आकर्षण के केन्द्र-बिन्दु श्री श्रीनाथजी का है। इनके भक्त आज भारत में ही नहीं वरन् विदेशों तक में फैले हुए हैं। यहाँ वर्षपर्यन्त हर समय हजारों यात्री दर्शनार्थ आते रहते हैं। किन्तु अन्नकूट और कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर विशेष रूप से भक्त लोग उपस्थित होते हैं। यहाँ की मीनाकला, प्रसाद, इत्र, कपड़ की छपाई, चन्दन का काम सबको पसन्द आता है। अपने आराध्य देव के दर्शन करने और यात्रा की स्मृति को चिरस्थायी रखने हेतु वे श्रीनाथजी के चित्र एवं अन्य तस्वीरें खरीद कर ले जाते हैं।

श्रीनाथजी की प्रतिमा अपनी भक्त मंडली एवं सेवकों सहित अनेक रजवाड़ों से होती हुई मेवाड़ में लाई गई तथा कुछ स्थान बदलने पर स्थायी रूप से नाथद्वाराके वर्तमान मन्दिर स्थापित की गई। ब्रजराज के साथ-साथ प्रस्थान करने वालों में कतिपय भक्त चित्रकार भी थे

CC-0. JM Samkrit Academy, Jammu. Digitized by eGangotri

जो यहाँ पहुँचने पर अपनी कला साधना में तत्परता से जुट गये। समय एवं परिस्थिति के प्रभाव से यहाँ की चित्र शैली दिन पर दिन पूर्णता की ओर अग्रसर होती रही। यहाँ की चित्रकला ने दर्शकों को ही नहीं वरन् आस-पास के चितेरों तक आकर्षित किया। जयपुर, जोधपुर एवं उदयपुर से जो लोग यहाँ पहुँचे उनमें जांगिड़ ब्राह्मण एवं गौड़ ब्राह्मण परिवार मुख्य थे। इन दोनों ने ही यहाँ की चित्रण विधि को पल्लवित एवं पुष्पित होने मे अपना अभूतपूर्व योगदान किया। नाथद्वारा शैली में अपभ्रंश मेवाड़, मारवाड़ एवं जयपुर की शैलियों का संगम हुआ है और आगे चलकर इनका अस्तित्व गौण हो गया किन्तु नाथद्वारा शैली उन्नत होती रही। तथा उसने अपना पृथक् एवं विशिष्ट स्थानि बनाया।

इस शैली में मानव मुखाकृतियों अन्य कलमों से भिन्न रूप में अंकित की जाती है। आँखें फड़कती मछली के अनुरूप, पर किशनगढ़ शैली की आँखों से कम वक्रता लिये हुए होती हैं। नाथद्वारा शैली के चित्रों में कपड़ों की सलवट साफ नजर आती हुई बनाई जाती है। कमल की विषय वस्तु यहाँ की निजी है। दृश्यचित्रों में प्राचीन, पाश्चात्य एवं अर्वाचीन प्रभाव लक्षित होता है। किन्तु ये तीनों मिलकर नाथद्वारा कमल के दृश्यचित्रों की श्रीवृद्धि करने सहायक हैं।

प्रकार नाथद्वारा की चित्रकला की और भारतीय चित्र परम्परा और स्थानीय विशेषताओं एवं मान्यताओं को ओझल नहीं होने दिया है।

*

TS & FA-89

नालन्दा कला का विकास पूर्व एवं वर्तमान परिपेक्ष्य में

डॉ. चन्द्र भूषण मिश्र एवं प्रतिमा मिश्र, नालन्दा

नालन्दा कला–जिस प्रकार सारनाथ कला, मथुरा कला और गान्धार कला किसी खास राजवंश की कला न थी, उसी प्रकार नालन्दा कला को पाल-कला कहना इतिहास तथा पुरातत्व के छात्र एवं प्राध्यापकों के साथ अन्याय होगा। 'नालन्दा कला' 'पाल-कला' न होकर नालन्दा कला थी इसकी झांकी हमें ''Bihar an enlightening experience'' के पृष्ट 48 पैराग्राफ चौथे का वर्णन इस प्रकार है–

''The Gupta dynasty rulers patronised these monastaries, built in the Kushan architectural style, in a row around a courtyard. Emperor Asoka and Harshvardhana were among the University's patrons who built temples and monastaries here.''

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उपरोक्त संदर्भ से यह स्पष्ट हो जाता है कि नालन्दा कला एक राजवंश की कला न होकर कई राजवंशों के सहयोग की विकसित कला है इसे एक राजवंश से सम्बन्धित करना न्याय संगत नहीं है। 'पाल-कला' को 'नालन्दा-कला' के रूप में प्रदर्शित करने और उसे नालन्दा-कला के रूप में विकसित करने के लिए डॉ. रवीन्द्र पंथ, निदेशक, नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा के पास कई योजनाएँ हैं जो भारतीय इतिहास, पुरातत्व एवं शोध-कार्य में एक नये आयाम को जन्म देगा।

*

TS & FA-90

Rational Scientific Explanation of Selected Sanskrit Words with a special reference to Kalidasa

Dr. Krishna Dass, Chhattisgarh

What is scientific Word?

To establish the meaning of words on the base of modern science through an etymological study. In Sanskrit language the naming of any article was mostly factful.

इंदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः
पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः (ऋग्वेद / 10 मंडल / 14-15)

This only ऋचा proves that the Risis (ऋषि) were in existence even prior to Rigvedic era. The word पथिकृत् may had been used for making vocabulary. The Risis having expert knowledge of science created meaningful words. The only word is enough to prove this. हृद्य word is a combination of 3 धातु रुप (Roots):--

1 हृ= हरण

2 दा = दान

3य (हण्) = अयन (गति)

हृद्य (hear) रक्तस्य आहरणं कृत्वा, देहस्य सर्वधातून् रक्तस्य प्रदानं कृत्वा, विकासात्मकं गतिं यच्छति

(1) Heart takes (हृ) The impurified blood of the whole body.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(2) Then heart gives (द) The blood to the lungs which is the storekeeper of purified blood.

(3) Then the blood is distributed to the whole body for the nutrition of ऊत्तक् and filling of Oxygen. This cycle or गति (य) continues till human's death.

The simply one word reveals a vast field of medical science.

The prehistoric wordmaker grammarians were alert to avoid निरर्थक alphabets एकमात्रा लाघवने पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणा:

TWO UNIQE EXAMPLES (In the field of physics, and metullurigical science)

(1) "**GO**" is very common word in english language. The Sanskrit word **गो** resembles this in meaning and pronunciation too:

गो- गच्छति इति (रघुवंशम्) The synonym of गो is पृथ्वी (earth), which indicates the चलनशीलता of earth. Earth moves on her axis on the speed of 1100km. per minute- it says modern science. यास्क said this in निरुक्त centuries back.

(2) पाणिनि is the father of all धातुपाठ, but लुह् root is absent लुह् अर्थे PULL लुह् धातुर्लो हे - रसेन्द्र चूड़ामणि - सोमदेव Aurum (gold) etc. many metals are pulled out of their original ore through processing. (Science of Metallurgy).

❋

TS & FA-91

Plant Morphology in Vrikshayurveda

Dr. Nirmal Trikha, Delhi

Vrikshayurvda of Parashara is a remarkable treatise on Plant Science. The manuscript of the work was discovered by late Vaidyashastri Jogendranath sircar. Vishagaratna. The text of the Vrikshayurveda has been edited by Shri N.N. Sirkar and his daughter Roma Sirkar. Dr. D.K. Kanjilal places it in all probablility in the 3rd-4th cen. A.D. It is work on ancient Indian Botany. It is divided in to six parts:

1. Bijotpattikanda 2. Vanaspatikanda. 3. Vanaspatyakanda

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

4. Gulmakshupakanda 5. Vrudhavallikanda 6. Cikitsakanda

The last part (Cikitsakanda) is not available in the present edition.

Parashara has given detailed information on Plant Morphology.

Vrikshangasutriyadhyaya, the fourth chapter of the Bijotpattikanda of Vrikshayurveda deals with the different parts of plants. viz Patra (Leaf), Pushpa (Flower), Phala (Fruit), Mula (Root), Twak (Bark), Kanda (Stem), Sara (The heartwood), Swarasa (Sap), Niryasa (Exudation) Sneha (Oil), Kantaka (Spine or Prickle), Bija (Seed) and Pararoha (Seedling).

तत्र वृक्षवल्लीगुल्मानां पत्रपुष्पफलमूलत्वक्काण्डसार-
स्वरसनिर्यासस्नेहकण्टकबीजप्ररोहश्चेत्यङ्गानिभवन्ति।

❋

TS & FA-92

The Yamyottaraturiya Yantra (Instrument for Meridinal Wall) of Indian Observatory

Prof. Brijesh Kumar Shukla, Lucknow

On the meridinal line, the **Yamyottara Turiya** instument is made by putting a perpendicular square wall. On the southern part of the wall a peg is fixed in Eastern and Western side of the instrument. From the centre of peg (**Shanku**) an arc is made by a big radius on the West face of the instrument and this arc is divided into 90^0 degrees. It is called **Yamyottaraturiya Yantra** of Indian observatory. When the shadow of peg is not seen on the eastern part of instrument, it means local noon time of this particular place, where the insturment situated. After the time of only two minuts, a long shadow of peg is seen on the western part of the instrument. It shadow indicates degrees marked on the same arc prepared as the **Natanshas** of midday sun. It means that **Natanshas** can be known at exact noon. At night, meridian-crossing of planets and stars occurs different times. So, their **Natanshas** can be known only at night. The Latitude of the desired place and the declination of planets and stars can be found from their **Natanshas** at their meridian pass time with the help of this instrument. All of these details have been described in this research paper.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-93

Mayamatam: A comprehensive Treatise on Housing, Architecture and Iconography

Dr. (Mrs.) Bidyut Lata Ray, Kantilo, Nayagarh

Mayamatam, a Sanskrit text deals with housing, architecture and iconography. It is a comprehensive text, comprising 36 chapters. It was written sometime between 11th and 12th century. The text is, obviously a deduction from existing practices and actual structures rather than an abstract theoretical treatise on architecture. Its contents are more systematic than those found in other comprehensive texts, such as, the *Manasollasa* or the *Samaranganasutradhara*. The latter two are encyclopaedic in nature but are not tightly structured. In contrast, *Mayamatam* is more definitive and coherent as it situates itself within the larger Saiva tradition and even more particularly, the Saivagama tradition and takes into account actual town and village layouts and temple construction. The text gives ample evidence of the author's full acquaintance with architectural plans, techniques of construction and the modular approach in regard to the number of storeys. The text assumes importance not only for its detailed descriptions of temples, but also for its detailed descriptions of houses for different categories of inhabitants in a village and a city, entrances, exits, ventilations and much else.

❋

TS & FA-94

In Quest of Antiquity of Leprosy : Early Indian Context

Dr. Sukla Das, Kolkata

The paper intends to trace the antiquity of leprosy in India underlining the changes that occurred in disease perception leading to the development of knowledge of diagnostics embodied in the Caraka-Suśruta Saṁhitās and its copying strategies. Curability of leprosy was never doubted in ancient India but a fear psychosis was being socially created by construction of the concepts of sin and divine retribution as a causal factor of this disease and several expiatory rites were innovated as a way to curing leprosy. Leprosy had also developed a strong cultural bias since it was believed to be highly contagious and hereditary. No other disease has created such

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

socio-psychological tensions as leprosy since remote antiquity and Kuṣṭha and Kuṣṭī had degenerated into much maligned words. In fact magic, myth, prejudice and prohibitions that had been transmitted, internalised and reconstituted over time had created a conceptual framework in early India within which a rational attitude to this health problem could not develop by exploding the myth of Pāparoga and articulating the fact that leprosy is like any other disease kind.

❋

TS & FA-95

An Approach to Arts in Narayaniyam

Kamal Anand, Delhi

Art is an effective medium for descipling and culturing human feelings and emotions senses and sensibilities and hence for the refinement of character and personality. In fact art colours the life and resonates it with music. Thus Art is Chandas, it is Raga, it is Rasa (रसौ वै सः). It is an incessant flow of life and a torrential spring of happiness and bliss. It is a vast platform for high spirituality and liberation thereby an unique experience of supreme bliss (ब्रह्मानन्द और ब्रह्मास्वाद).

Narayaniyam depicts this very art of supreme bliss in context of God's form, His activities and character, (Leelagana and Charitakhyana). One of the aims of art being the refinement of personality, it takes all the senses and sensibilities towards the supreme. Narayaniyam fulfills this aim of the art as it depicts the total surrender to the lord and dive deep in the Supreme bliss of becoming one with the lord. Though mainly a devotional treatise, it has ample material of various arts like Nepathya Prayoga, Geetam, Vadyam, Nrityam and Vastuvidya etc. a few amongst sixty four arts enumerated by Vatsyayana. Narayaniyam is a beautiful combination of literary arts, fine arts and useful arts, which are all but conterminous with life. Fine arts are the effective medium of the refinement of personality and character and useful arts are essential for the maintenance of human life.

Though a treatise on Bhakti, it abounds in references of Nepathya Prayoga with all the four types of alamkaras i.e. Avedhya (आवेध्य) Nibandhaniya (निबन्धनीय), Prakshepya (प्रक्षेप्य), Aropya (आरोप्य). Various sporting gestures, charming smiles, side glances, shy and sporting steps, deeds, physical beauty and charm, all are

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

woven in the texture of Bhakti. It is important to note that all these are described in context of supreme bliss (परमानन्द) where every sense and sensibility heads towards the supreme, to be one with Him. Art (कला) converts passion (काम) into beauty and serenity (सुन्दर and शिव). It is this aspect of art (कला) that is scattered all through Narayaniyam, everything pure and simple (निर्मल एवं सहज) everything rushing forward to be one with the Supreme (परमानन्दसमुत्सुक)

❋

TS & FA-96

Folk Culture and Festival in the Karpūramañjarī

Dr. Suchitra Roy Acharyya, Kolkata

Human life is a series of duties. So, man wants relaxation, amusement and happiness. The nature of the ancient Indian was no exceptin is known from the different ancient literatures of the different times. In the Karpūramañjarī, a saṭṭāka of tenth century, written by Rājaśekhara we find such scene where people are enjoying pleasure in the company of others. Here hero and heroine are the king Caṇḍapāla and the princess Karpūramañjarī respectively. Co-heroine is the queen Vibhramalekhā. It is a love story of a royal dynasty. Yet, we find that the Vata-sāvitrī festival was observed by the queen. During the festival special dances like carearī and challī were observed. Probably challī is a mode of rural dance. An attempt has been made in this paper to show such dress, decoration, customs of low-class and common people which were in vogue at that time and touched even the royal family.

❋

TS & FA-97

Concept of Gene in Ancient Sanskrit Literature

Prof. Ramnika Jalali, Jammu

The concept of 'Factor' was introduced by George G.Mendal. This factor-concept was converted into Gene (Genetics) by Johnson in 1906.

This theory was also available from Vedic times where it is understood that particular embryo having some particular type of qualities could be produced. This

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

theory depends on 'Koshika Siddhanta'. 'Koshika' -the Plasma. Plasma Membrane contains Protoplasm chemical. This chemical is of six types:- Mitocondria, Lysosomes, Neuceas, Endoplasmic Reticulum, Cheeroplat and Crologibody. Neucleas contains chromozome. Through this chemical only the hereditary characters are developed in a new born in the shape of DNA. Dr. Hargobind Khurana was honoured with Nobel prize for this theory.

Taitriya Aranyaka describes the above said theory by quoting 'Retasah Purusah'.... 'Sa va Esapurusannarasamayah'. According to which the embryo starts developing hereditary characters in the fourth month. This process continues upto the six month. Markandeya Purana describes two types of Virus--'Virupa' and 'Vikriti' which are harmful for mental set up of the child. 'Simantonayana Samskara' is prescribed for the rectification of this effect during the sixth or eighth month of pregnancy of a woman.

Rgveda (IV.32.4-5) verifies the conception of a lady from a particular person and confirms the proper time of delivery during the tenth month only. Samaveda-V refers the desire made for long life (Shatayu) Ashvalayana (I.14,3) describes the procedure beneficial for mental development of the embryo. Sushruta Samhita (III, 33,35) indicates that there are some mantras through which the level of intelligence of the child is achieved by chanting these during pregnancy. Paraskara Grihyasutra discusses the theory of fulfilling all the desires of a pregnant woman otherwise it effects the psychology of the child. The theory of imprinting is now proved by the scientists which refers to Mahabharata were Abhimanyu conceives idea of Chakravyuha in the womb of his mother.

Hence, the concept of Gene theory is not belonging to the modern times but it has sown its seeds from the times immemorial and was indicated through the Ancient Sanskrit literature.

*

TS & FA-98

The Spy-system in Kauṭilya's State Craft

Kalyani Dash, Balasore (Orissa)

Kautilya's emphasis on spying in different areas of the state constitutes an

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

important aspect of his Governmental system. The spy system is an important pillar of his system of administration.

Kauṭilya has described about the spy system in the 1st, 12th and 13th adhikaraṇa in his Arthaśāstra. His state craft was based on a well-organised spy system. He regarded spies as eyes and ears of the king.

Kauṭilya provided for women spies and spies who had to undertake very strenuous duties and obligations.

In his Arthaśāstra Kauṭilya mentions about nine types of spies like Kaptika-chhatra, udasthitha, Grihapatika, Vaidehaka etc which will be discussed in detail in this paper.

*

TS & FA-99

Polo and Horse Culture in Manipur

Dr. M. Kirti Singh, Imphal, Manipur

Polo or the game of stick and ball on horseback has been claimed as the game of Persia since the time of Darius, the persian king, a contemporary of Alexander the great. Chawgan was very popular among the Muslim rulers of India. According to Kangjeirol, an ancient treatise it originated during the reign of king Kangba who precedes Christ by many centuries. Horse has been mentioned as a domestic animal in the creation story and myths. It is attributed to God Marjing, one of the Presiding deities of directions. The game was played by 7 players each side.

In modern times Manipur gave the polo through the tea planters of Assam and Major General Sherer to the, world. Polo of which Manipur is the motherland and cavalry have been left to deterioration after 1891 (Anglo-Manipur War). Wisdom dawned on lovers of culture like-Savita Mehta, institutions like manipur Polo Association, All Manipur Polo and horse riding institutions, etc and animal husbandry dept for breeding, renovating polo ground and constructing grounds in different parts of the valley, arranging tournament from time to time at high cost since 1980. Manipur has been projected in the Guinness book of record as the origin of Polo.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-100

Sanskrit Matrimonial Terms, Their Adaptation in Bengali, Hindi and Oriya : A Study

Devaraj Panda, Puri (Orissa)

It is observed that out of fifty Sanskrit matrimonial terms, twenty seven terms in Bangali, twenty eight in Hindi and forty one in Oriya are adopted in the same form without any change. The percentage of such adaptation is more in Oriya than in Bengali or in Hindi. Finally it is concluded that Oriya is very close to Sanskrit than Bengali or Hindi.

1. Experiment :

The above listed terms are compared with the terms used in Bangali Hindi and Oriya, in the following table.

SINO	Sans	Hn	B.	O
1.	bibah)	byah)	bie	bibah)
2.	brahm)	brahm)	brahm)	brahm)
3.	Prajapaty)	prajapaty)	Prajapaty)	Prajapaty)
4.	ars)	ars)	ars)	ars)
5.	gandh)rb)	gandh)rb)	gandh)rb)	gandh)rb)
6.	rakhy)s)	rachas	rakhy)s)	rakhy)s
7.	d)ib)	d)ib)	d)ib)	d)ib)

*

TS & FA-101

Reservation in India : Why, for Whom, How Much and How Long?

Dr.Prasanta Kumar Mohanty, Orissa

Reservation policy has now become a populist measure for minorities appeasement. Undoubtabely, the political gains accruing from reservation has led to

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

every political party supporting it. Their focus is exclusively on vote bank politics. Reservation has become the so-called trump card of many political parties, which seems to crop up just before elections. But do our people's representatives realise the pros and cons of their actions and promises? The question is -reservation for whom? Who are the backwards? Generally, besides S.C. & S.T., some castes have been categorised as OBC as they have been identified as socially, educationally and economically backward. But how far is it logical to categorise the castes, not the individuals as educationally and economically backward? Once a S.C. or S.T. or OBC family is already educationally and financially uplifted, there is no logic behind giving the quota benefit again to that family for next generation. If it so happens, then all the benefits in the name of S.C., S.T. and OBC will be swallowed and enjoyed by the creamy layers of the respective category. The general mass of these sections of society will remain underdeveloped as before. That is why even after 50 years of reservation and expenditure of crores and crores of rupees from government exchequer, social equality could not be established. Hence, the backward classes should be first educated, brought into social and cultural mainstream, and provided with all types of facilities to continue education. But the merit and talent should not be compromised. If merit is sacrificed, then it will be a national loss. Perhaps, India is the only nation where reservation gets priority and caste prevails over merit. Reservation, if introduced, will strike a death blow to meritocracy. We cannot allow inefficiencies to creep into the system by demolishing talent, skill and education, say experts. This is a backward step and will stem the country's progress. No nation till today has become developed on the basis of reservation.

*

TS & FA-102

Hypertension (Uchraktachap) and its treatment in ayurveda

Dr. Nishu Raina, Jammu

Rasad Raktam..... Prajaytay//

(Charak, sushrut sutra, 14/10)
Chavakchikitsa, 15/16

According to ayurveda, Rakta is obtained from RAS. About 5 litres of blood is pushed into the arteries specially in those people where heart beats 75/min.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

In this way a sort of pressure is created in the arteries, as a result of which arteries dilate and constrict. To maintain this pressure, blood pressure plays a keen role, but in case blood pressure crosses its limits then the condition of HYPER TENSION arouses. 120/80 mm Hg is considered the normal value of blood pressure. IN case blood pressure crosses a level of 140/90 mm Hg then it is considered as HYPER TENSIVE case. There are the three methods of B>P measurement-1. palpatory 2. oscillatory, 3. ausculatory.

Oscillatory method is considered the best among the above three methods. Here the SBP (systolic blood pressure) and DBP (Diasytolic blood pressure) depends upon the appearance and disappearance of sound. B.P is measured by an instrument called ''SPHYGOMANOMETER''. Factors responsible for causeing ''HYPERTENSION'' are:-

H- hereditary
Y- youth habits
P- pschyological trauma
R- reaction
T- tension
E- excess work load
N- non veg.
S- smoking
I- irregularity
O- over eating
N- negative thinking

❋

TS & FA-103

Some Essential Meterials for Construction Works in Ancient India

Dr. Nandita Bhattacharjee Goswami, Assam

The literary works of the Vedic period carry testimony to the art of architecture. Frequent references to theworld pura indicative of fort or fortification

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

1, hundred walled forts, hundreds of stone houses, great forts and others along with door, pillar, beam show that construction of strong built structures were not at all unknown to the Vedic people apart from the ordinary houses as we have a pen picture of the same in the Atharvaveda. The Gṛhyasūtras of the later Vedic period contain details account of the spacious houses with fire room, assembly hall, kitchen, retiring room, wife's apartment, latrine, water point and others. Constructions of yūpa, sacrificial alter, burial mounds also exhibited some form of art of architecture prevailed. Evidences of constructions of bridge, road, cross roads, temples also formed the culture of the age.

❋

TS & FA-104

Forty Images of Mango-Blossoms in Kālidāsa

Prof. Sushma Kulshreshtha, Delhi

Dr. Abha Kulshreshtha, Delhi

साकूतमधुरकोकिलविलासिनीकण्ठकूजितप्राये।
शिक्षासमयेऽपि मुदे रतलीलाकालिदासोक्ती॥

Dīpaśikhā Kālidāsa, a peerless poet par excellence, was acquainted with the affluent in various systems of Philosophy, several schools of religious beliefs, Politics, Economics, Dramaturgy, Erotology, Music and Fine Arts and Plant-Science too. Just as the works of Kālidāsa abound in numerous references to Philosophy, Musicology, Erotics etc., in the same way multiple references to more than 120 plants and trees adorn his works. In *Kumārasambhava* and *Raghuvaṁśa* only, there are references to more than 50 and 80 plants and trees respectively.

Kavikulaguru Kālidāsa has referred to all the aforementioned 120 plants and trees at a number of places in his works in the course of his narratives and descriptions as well as in the usage of similes, metaphors and *utprekṣās*. At places, the poet has referred to these plants and trees drawing references to some other Śāstra or Science viz., *Āyurveda* (science of medicine), *Saṅgītaśāstra* (Musicology) and *Kāmaśāstra* (Erotics or Erotology) also. The blend of plant science or *Vṛkṣāyurveda* with that of musicology and erotology and other Śāstras too has lent additional charm to many of these references.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

In the present paper, an attempt is made to bring forth the expertise of Kālidāsa in plant science or *Vṛkṣāyurveda* discussing at length only one tree *Āmra*--mango, his most favourite one. Here, forty images (out of 45 images) of the mango-blossom or mango-tree found in the works of Kālidāsa are presented for the enjoyment of the connoisseurs.

❀

TS & FA-105

Ecology in *Meghadūtam*

Dr. Rabiprasad Mishra, Puri

An intimate study of Kālidāsa's *Meghadūtam* shows the poet's basic business to elaborate the relationship between Nature and man, Prakṛti and Puruṣa, the creation and the creator. The *Kāvya* is a demonstration of contemporary scientific knowledge on ecology and the ecological balance that is necessary for preserving the creation of God. The *Kāvya* establishes Kālidāsa as a modern poet bearing scientific curiosity, comprehensibility and wisdom to justify the role of Nature in moulding the genuine human spirit by her message of divine love and sacrifice.

Kālidāsa is a great worshipper of Nature. He gives a picturesque view of the elements of Nature. He specializes in observing both the internal and external Nature. In *Meghadūtam*, he can be seen as a seer, a writer, a philoṣopher, a yogin and above all, as an ecologist. The simple analysis of this *Kāvya* points to our poet's complete knowledge of Nature and of human unity including those of beasts and birds.

Nature is tinged everywhere with the feelings of the Yakṣa. His mind is reflected in every part of Nature. As the naturally beautiful body of the cloud is reflected in the painting like thin and transparent waters of the river *Nirvindhyā*, likewise the mind of the Yakṣa is reflected in the interior of Nature.

Purvamegha 29 : **vīcikṣobha..... priyeṣu //**

30 : **veṇībhūta..... papādyaḥ //**

Here and in many more passages of the *Kāvya*, ecology is displayed skillfully by our Nature-poet, Kālidāsa.

❀

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-106

Bāṇabhaṭṭa on Animal Life

Dr. Rajendra Kumar Sharma, Hoshiarpur

In Sanskrit prose Bāṇabhaṭṭa is undoubtedly regarded as highly learned poet. The scholarship and wisdom of Bāna to produce something unique in high class Prose with perfection has no parallel in the history of Sanskrit Literature. In both the prose works i.e. Harshacarita and Kadambari, Bāṇabhaṭṭa gives elaborate description of various subjects and account of Nature. Bāṇa's descriptions of Nature and Natural phenomena are wonderful and extra-ordinary. He has decorated every scene and aspect of Nature with wonderful imagination and emotional appeal. As in Science, Natural history deals with the life and behavior of animals in their natural surroundings, Sanskrit literature too has a lot of informatin about the Animal life and behavior. Bāṇabhaṭṭa has also given vivid description of the Natural History of a number of Animals, Birds and insects etc. in his prose works. He reveals a sharp insight into the world of Animals, their outward features, their habits, actions, senses of smell, taste and colour etc. accurately for which he may be called a good Zoologist as well. Within the group of Nature Poets. Bāṇabhaṭṭa can be ranked next to Kalidasa.

The present research paper is an attempt to highlight Bāṇa's knowledge and mastery over the animal life and its importance from literary and Zoological point of view. It is also discussed in the paper whether Bāṇa's description of Animal life and behavior is mere conventional or matches with present Zoology.

*

TS & FA-107

The evolution and integration of 'Type' (During industrial revolution)

Ankan Garg, Jaipur

Type has been with us for more than five hundred years and that the idea of a typeface family was only invented around the turn of the century. At first, typefaces were identified only by their sizes - which was all anybody really needed. Originally fonts were not purchased as products, but manufactured by te individual

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

printers who used them. The Industrial Revolution was the major technological, socioeconomic and cultural change in late 18th and early 19th century that began in Britain and spread throughout the world during that time, and with it came mass produced products-- prudcts to be sold. Selling products meant advertising, and advertising, then as now, required new and special typefaces. The demand for new typefaces and the invention of the pantographic punch-cutting machine created a virtual explosion of new typeface designs.

All those new typefaces were certainly confusing to printers of the day, but also and more importantly in the history of type. To solve this 'business' problem more than twenty individual type foundries merged in 1892 to form a new company called American Type Founders. One of the goals of ATF merger was to eliminate duplication of type development, marketing, and sales efforts -- and the duplication of typefaces within the libraries of the member companies. In taking on this endeavor, however, ATF encountered another problem : making sense and a system out of all the typefaces inherited from the separate companies. The man who got the job of solving the problem was Morrish Fuller Benton. Benton's original idea has been mo0dified and expanded on several time since the late 1800's. Type families have become larger, more diverse and better through-out.

Some typeface families are made of different subfamilies. ITC Stone is a perfect example, its subgroups are Stone Serif, Stone Sans, and Stone Informal. Each design has roman and italic versions in three weights, for a total of eighteen individual typefaces. Recently, technology has also helped to expand the idea of typeface families. Multiple Master Technology from Adobe Systems Inc. enables a graphic designer to do some thing. A type designer creates master designs at each and of a design axis - such as 'light' and 'bold' or 'expanded' and condensed'.

*

TS & FA-108

Environmental Education for sustainable Development

Purnima, Patna

Environmental Problem have no national, regional boundaries rather it is a global problem facing the entire humarity. It is imperetive to understand the causes

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

and efforts of these problem and advise ways and measures for their solution and prevention based on humanity as an integral part of environment. In general, environmental education and sustatinable development are the three pillars on which humans can sustain their life on the earth. Sustainable development is simply impossible if environmental degradation is allowed to continue. The nuclearisatin of world perhaps crystallizes the ultimate in short sightedness.

Therefore, apart from governments, people's organization including NGOs, cooperatives Self Help group (SHGs), Mass Media and local institutions should be involved to promote environmental ameliorations by using environmental impact assessment (EIA) and participatory rural appraisal (PRA) techniques.

Last but not the least I can only say that the right path is ecological path of sustainable development.

❋

TS & FA-109

Relevance of Kautilya's Arthshastra in Modern Age

Km. Manjulika Singh, Allahabad

It is well known principle of human life that nobody on the earth can servive with dignity sans wealth and property.

Kautilya's Arthshastra is extremely relevant and worth mentioning on the issue. The central point underlying the Kautilya's Arthshastra rests on means of the subsistence of the men or Arth i.e. Earth Besides, it is regarded by a number of dignified thinkers (Such as Devenbhatt, P.V. Kane, Dr. Jolly, Saunak, Myne, Shamsastri, R.C. Kangle) as science of politics, jurisprudence and practical life.

His work is normally traced back to the 3rd century AD during regime of Chandragupta Maurya. Being a civilized Brahmin of high clan inbibing laudable culture, he devoted his time all through his life for prescribing marvellous ideals and norms for good governance, Welfare State King loving and law abiding dutiful subject and so on.

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तस्मान्नित्योत्थितो राजा कर्यादर्शानुशासनम्। (1.19.34)।

In order to promote these goals, he also made it compulsory that law violators should be punished without any fear or favour so that victims faith in King's art of ruling the State remains intact. Not only this but he also advocated for settled Law of Procedure and Law of Evidence for imparting justice whenever needs require so. Rules relating to remedies for tort (civil wrong) for making contract and remedial measures upon its breach are also fixed by Kautilya's Arthshastra. He further sets conditions when a person other than aggreived person could bring an action in the court of law. Speedy and moderate Justice was one of the focal areas of his work.

If we go minutely through Kautilya's Arthshastra we find that his views are proximately relevant for administrative set up of a Government in modern age in India. Further, they are also highly relevant to modern Judicial set up and substantive law e.g. Constitutional Law, Law of Contract, Law of Crimes, Law of Tort, Law of Marriage, Maintenance etc. law of Procedure and law of Evidence.

अपत्यदारं मातापितरौ भातृनप्राप्तव्यवहारान् भगिनीः
कन्या विध्वाश्च विभ्रतः शक्तिमतो द्वादशपाणो दण्डः

अन्यत्र पतितेभ्यः, अन्यत्र मातु **(2.1.28)**

Therefore, my submission is that if a Democratic Government is set up and its powers, privilages and functions are regulated also on the basis of Kautilya's Arthshastra, the Government is bound to live long infusing evergreen and everlasting sense of pleasure and prosperity in minds of the people of the State.

❋

TS & FA-110

AIDS --Ayurvedic Aspect

Vaidya R.P. Bhide, Maharastra

It is very difficult to diagnose AIDS. At first the patient is found +ve to elisa text, then he is confirmed by western blot text. The quantitative test is CD4 count. These all tests are expensive. A question is still unanswered that at what values of CD4, te patient is said to be as AIDS. A question is still to name elisa+ve and western blot -ve patient. Such patient is said to be diseased or healthy or in window

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

period? HIV+ve patients are seen to be converted to AIDS after some period. So the patients are treated without repeating tests. The money is utilized in actual useful intake of medicines.

The symptoms present in HIV+ve condition are not sufficient to diagnose as ojakshay (ओजक्षय). But the advanced stages being ojakshay the patients are treated on ojakshay basis. With remaining stuck up to this treatment symptomatic additions are done accordingly. The case of AIDS, and its symptoms, sign, actiology treatment and result has been described by the Ayurvedic Method.

*

TS & FA-111

Eco-Religious Awareness Through Pilgrimage Literature
(A study into *Śrī Nārāyaṇa Bhaṭṭa's Vrajabhaktivilāsa*- A Rare Treatise on Vanayātrā)

Dr. Krishna Murari Sharma, Hoshiarpur

Sanskrit has contributed a good number of works devoted to pilgrimage i.e. an inseparabel feature of any religion. The works on Māhātmya, Parikrama and Tīrthāṭana have their own history in ancient and medieval ages. ***Tristhalīsetu*** and such other works deal with manual of pilgrimage to three big shrines as Gayā, Kāśi and Prayāga. The ***Mathurāmāhātmya*** is a purāṇic treatise by Rūpa Gosvāmī of Caitanya Cult. The portions of various purāṇas ***viz. Skandapurāṇa, Padmapurāṇa, Varāhapurāṇa, Mahābhārata*** etc. Contain substantial material on geographical, religious and socio-historical aspects of holy places well-known for their public importance. These works on pilgrimage possess ecological and religious fervour at large. They provide sense of honour for motherlands natural resources and teach not only to keep them in tact but to develop their inspiring character. Eco-religious appeal of pilgrimage is very much obvious.

This country has eco-diversity. Its vast expansion- the big and dense forests, high snowy peaks of mountains, vast sea-shores and the endless waters of sea, the flowing lifelines of national rivers like Gaṅgā, Sindhu, Narmadā, Kāverī, Krishnā *etc.*, the sandy deserts and beautiful flora and fauna generate the deep sense of gratitude and love for nature and its Creator. This religious feeling inspires one

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

towards spiritual unity caused by pilgrimage which is a powerful device to awaken a sense of integrity, patriotism and social harmony.

This present attempt to highlight the sense of eco-religious relationship with environment is based on a rare treatise entitled ***Vrajabhaktivilāsa*** authored by Caitanyite Vaiṣṇava Ācārya Śrī Nārāyaṇa Bhaṭṭa from South. This work was completed at Rādhākunda in 1553 as in the ***Mathurā Memoirs***, FH Growse mentions. Raghurāja Singh in ***Rāmarasikāvalī***, Kṛṣṇadāsakavirāja in ***Caitanyacaritāmṛta*** and Priyadasa in his versified commentary on ***Bhaktamāla*** also provide some information about the author of ***Vrajabhaktivilāsa***. ***Vrajabhaktivilaṣa*** is divided into thirteen chapters. The first three chapters may be called as introductory ones. There are twelve in each category of forest such as ***vana, upavana, prativana*** and ***adhivana***. The each of them has its presiding deity and specific ***mantra*** related to it. These forests are identified with organs and limbs of Lord Kṛṣṇa.

*

TS & FA-112

Some Aspects of Vedic Aeronautics

Ms. Paramba Shree Yogamaya, Orissa

The western scholars are of the view that Veda is an ancient song of ordinary pre-historic people. The theory of evolution insisted them to view like this. But by this we are misevaluating our great Vedic civilization. Question arises about the relevancy of the hymns today. Spiritually the power of the hymns are eternal. But technically and practically they are also meaningful and preserve the root of latter deeloped technical sciences like ***yantrasarvasva or samarāṅgaṇasūtradhāra*** etc.

One instance of material science is taken here for discussin. Modern aeronautics has made te travelling more easy, quicker and comfortable. Here the question arises 'is there any direct or indirect reference to aeronautics in the Vedas'? Though this type of question goes against the age-old tradition since then in this 21st Century society demands something different. It is not that we are giving stress references rather we find exact references in the Vedas to various types of highly

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

developed different *rathas* (chariots) without horses to travel on road, air and water also.

❋

TS & FA-113

Pustak Vachana Kala in Sanskrit Literature

Dr. Deepak Kalia, Delhi

The word ''Kala'' stands for on art, which is described as ''Kam Sukham Lati iti Kala'' (कं सुखं लाति इति कला) meaning happiness and enjoyment. An art of work is one, which is done with practical skill to productin of beauty.

In Sanskrit literature, there is a mention of many types of Kala and there is indication of various Kala like sangeet, Nritya Kavitra, Asvarohan Dyuta etc. during the ''Saman mahotsava' in vedic period. The ''Samjja'' of Mahabharata is the same type of ''Saman''. But these Kalas are described systematically only in ''Kamasutra'', ''Lalitvistra'', ''Samavayanasutra'', ''Aupapatikasutra'', kalpasutra and kalkikapurana. There are different views about the numbers of Kala like sixty-four in Kamasutra, eightynine in silpasandarsan of lalitvistar, seventy-two in Samavayangasutra Aupapalikasutra and Prabandha Kosa.

In these Kalās, one of the Kalā (art) is ''Pustakvāchankalā (पुस्तक वाचक कला) Vāchana means the art of vocal reading. The Kala is only mentioned in Shivtatvaratnakar, Jayamangaltikā and Kamasutra. ''Shiksha'' is one the seventy-two arts mentioned in Prabandhakośa, which is similar to vachanakalā, because in Shikshavedanga pronunciation is the most important and main aspect. The meaning of Pustaka vāchana is the vocal reading of book, ''Pustaka'' means hand written script. The Vachana is generally used for vocal reading. Hence the clear and impressive reading of written matter is known as the ''Pustakvachankala''. Since every human being is associated with this Kalā is the entegral part of hum an life.

The main element of Vāchankalā is ''Pronunciation'' Shiksha Vedanga always stresses upon good and correct pronunciation for thefruitful reading.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-114

Military use of plants and animals as depicted in Kautilya's *Arthaśāstra*

Dr. (Mrs.) Mukta Biswas, Gauhati

War and weapons have become directly or indirectly an integral part of human life since the primitive stage of civilization. In ancient literatures like the Vedas, the Purāṇas, the Rāmāyaṇa, the Mahābhārata and in other Sanskrit literatures we find many references connected with war features. The *Arthaśāstra* of Kautilya, a work on statecraft, dealt with all the branches of governance including civil administration, finance, military organizations etc. of a well organized ancient society that settled mainly in the Indo-Gangetic plain.

In Kautilya's *Arthaśāstra* we also find various references of war feature and different uses of weapons. The nature of weapons changed with the progress of science and technology. A host of weapons made of different parts of plants and animals were referred to in the *Arthaśāstra*. The aim of the present paper is to put forth the activities and destructive powers of the weapons made of plants and animals as depicted in Kautilya's *Arthaśāstra*.

❋

TS & FA-115

The Elements of Greek Tragedy in Viswanatha's Plays

Dr. Namudri Janaki, Delhi

'Kavisamrāt' ,' Kalārapūrṇa' ,the recipient of prestigious Jñanapīṭh Award and 'Padmabhūsan' Dr. Viswanātha Satyanārāyaṇa fondly called as 'Viswanātha' by his admirers (1895-1976) advocated the Indian philosophical doctrines and stood as a champion for preserving the cultural heritage through his poetic works in Telugu language. Every piece of his literary work, tiny or big speaks volumes of the values of the great Indian Tradition and Culture imbibing the philosophical concepts. He faught for the cause of spiritual and cultural renaissance through his works, in spite of the intense opposition influenced by the Western culture. He has thousands of disciples who follow his school of thought till date. Being a prolific writer, he has 118 works to his credit in Telugu and Sanskrit with 10 division. His

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

''Golden nib'' penned almost all the genres of literature like short story, Novel, lyric, Drama and verse etc. Being a staunch supporter of Indian Tradition, it is really interesting to note that he wrote 4 tragic plays viz., Anarkali (1922-24) 'Nartanasala', Venaraju' (1926) and 'Trisulam' (1933-34) based on the Indian mythological and historical plots with the elements of Greek Tragedy. All the above four plays were put on boards and broadcast by All India Radio.

'Nartanasala' is based on the mythological theme from Mahabharata consisting the eposode of Kicakavadha by Bhimasena while the rest are of historical base well known to the people having a taste in history.

*

TS & FA-116

The Impact of the Indian classics on Telugu Drama and Theatre

Dr. Ramavarapu Saratbau, Visakhapnam

The Ramayana, the Mahabharata and the Bhagavatapurana are considered as the chief three epics throughout the length and breadth of India. This trinity of the epics reflects the Indian culture. The numerous stories contained in this trinity are popular to all the Indians irrespective of caste, creed, religion, educational, social and financial status. Even illiterates and beggars know the outline of the stories though they do not have the knowledge of the niceties. Several episodes of this trinity became the themes for various art forms, performing and non-performing and they used to educate and motivate the masses to great extent towards values of life, providing instant pleasure.

In Andharpradesh, the dramatic forms imbibed the recitation of the verse in the verse in a musical form from the very beginning and plays like 'Padukapattabhiseka' 'Gayopakhyana' and 'Bhakta Prahlada' were very popular based on the themes of the Ramayana, the Mahabharata and the Bhagavata respectively. These Telugu plays along with other like 'Mairavana' , Pandavodyoga vijyalu, Kamasavadha, stormed not only the Andhra Pradesh but other parts of the country also. For example Telugu plays are being put on boards even today in Tamilnadu where the audience as well as the actors are Tamilians. They use to

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

perform at Melattur, a village near Tanjavur. Till fifties of the 20th century, people patronized the Padyanataka, which is a very special characteristic of Telugu theatre which can not be found in any other part of the country. People used to watch them with enthusiasm throughout the night and enjoyed to a great extent with exuberant applause.

*

TS & FA-117

Family Planning in Ancient India

Depika Bhattacharya, Calcutta

In ancient India, there were many rules and regulation in planning the family. Random or reckless sexual intercourse even between husband and wife was strictly disallowed.

Manu said having a son is the sole purpose of marriage. According to the interpreters of Manu, only one son was sufficient to carry on family lineage and fulfill the purpose of marriage. So it was not necessary to have a second son.

The natural family planning norms, that was followed during that time were as follows;

Counting from the first day of menstruation, till sixteen days are called the period of ovulation of women. Among these days, the first four days were avoided. Out of the remaining days, the parvan days (the inauspicious days for sexual intercourse) were the eleventh, thirteenth, fourteenth, full moon day. New moon day saṃkranti day and others. Couples were not permitted to go for conjugal union on these days, because it was believed that children with sound bodies and minds would be born if couples avoided parvan days for conjugal union. Out of the very few remaining days of the month, only even days were preferred for sexual inter course because according to the Dharma-Śāstrakāras, sexual inter course on even days resulted in the birth of son. Thus the days for having sex, were so limited, that the birth rate was obviously very low.

Most of the royal families like surya-dynasty, chandra dynasty etc., found in Epics and Purāṇas had one son only.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Thus, we see people in ancient India were aware of planed family system.

*

TS & FA-118

Conservation of Environment in Puranas

Dr. M. V. Praphulla, Bangalore

The Siva Purana provides the benefits drawn by the person for plating trees in forest. Animals in forest normally enjoy the flowers and fruits; the shade provide by them will become a shelter for travelers. Thus trees and men benefactors from other beings. The benefit of planting trees in padmapurana is also placed below.

He who installs (plants)a tree would also live in heaven. The trees alone make a soul of the person to have a son. They offer libations etc to plants at places. Plants like asvattha are grown with great effort. If alone will give you a son, and by planting an asvattha a man becomes wealthy. By planting the Ashoka tree, one can destroy grief.

Construction of wells and Tanks; Benefit

Vysa has said listen to qualities acquired by constructing lakes. One who constructs lake will revise honor in all the 3 world. Other are the following benefits for the people, for constructing the tanks or wells.

तटगानां च वक्ष्यामि कृतानां ये गुणाः स्मृताः।
त्रिषृलोकेषु सर्वत्र पुजीतो यसतटागर्वा॥

Cimes in society.

Vishu smruthi enlist the following act by an human being as crimes against the ecological factors. A person commiting a crime of hurting or killing an animal is punished by penalty or by punishment and penalty. It depends n the nature of offence. Some of them are given below.

Killing birds , amphibious animals and aquatic animals. such as fish, and worms or insects, is fined with penalty of one karshapana.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-119

Importance of Traditional and indigenous knowledge for health care in the era of IPR under WTO in India.

Dr. Raj Kumar Sen, Kolkata

Since 1995, when India became the member of the WTO (world Trade Organisation), the rules of the IPR (Intellectual Property Rights) have became operative in our country. It has now became extremely urgent to strengthen Indian patenting system without which the MNCS (multinational Corporations) will bring under control many indigenous products and services as observed in the case of controversies on neem, haldi, basmati, rice, etc. This paper argues that it is hightime when India should prepare a detailed and exhaustive inventory of the well-known items of traditional and indigenous knowledge as far as possible specially relevant to health care as under the WTO regime the prices of the conventional allopathic medicines are soaring pushing the helpless poor to clutches of quacks for recovery often leading to disasters. The alternative traditional Indian medical system like Ayurveda, Yoga, Siddhi, Unani etc. and the various indigenous tribal curative practices, if properly patented through the IPR route, can provide a viable way to bypass the onslaught of the MNCS as observed in recent times. This can also improve the health of the poor and consequently their income and capabilities. The emphasis on these alternative medicines can generate not only employment but also may be an important source of export, considering the fact that India is a mega bio-diversity zone of the world, her potential in the proposed line is immense which will also be quite helpful to protect her heritage and environment by restoring her nearly forgotten knowledge to its proper use and importance.

*

TS & FA-120

Status of Women in the society of Arthaśāstra

Rekha R., Kerala

Arthaśāstra, historical literary works provides the subtle elements which existed in weaving a society. Every piece of information regarding from this is of great value of understanding the changing position of women from the free,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

emancipated and respectable life as reflected in the samhitas of Rk and Atharva to the orthodox life determined by many rules and customs of the post-vedic period, through the Dharaśāstra and Arthaśāstra literature, for eg. The institution of marriage was in transition the modern rigidity. A well disciplined system of education to the whole society based on ethical values provides intellectual freedom. This intellectual freedom can make the present inferior position of women as a history and mobilize the society to lead a perfect man-woman realtionship.

*

TS & FA-121

Embryology Depicted in Garuda Purna

Dr. V.K.Hampiholi, Kumta, Karnatka

The *Garuda Purana* is one of the important puranas in Indian religious literature. It is a *Vaishnava purana* and it doals with many subjects like other Puranas. The 32nd adhyaya of *Pretakhanda* narrates the matters relating to the embryology. According to the *Garuda Purana* the combination of semen and egg (शोणित) will from an embryo .GP. opines that semen contains many santient sperms. The sperm enters the womb. On the first day it is called Kalilam and it takes the form of foam (बुद्बद) within five days. After a for night it will take the shape of a heap of meat. It transforms into the shape of human body at the end of a month. During second month skin will be ready.

Bones fingures, hair will appear in the third and fourth month. At the fifth month ears, nose and chest will appear. The throat, the stomach, the anus and other limbs will appear during sixth and seventh months. All the limbs will take full shape in the eighth month. At the ninth month the embryo develops fully it starts to move in the womb. It contains *Panchendriyas, dashanadis, dashapranas and panchagunas of panchabhutas.* The GP. Further gives the description of the relation of mother and the child. It describes the formation of mind and intelligence and how they are influenced by the activities of mother. Further it deals with the memory power of feius of its previous birth. Thus the paper discusses all the matters relating to the embryology depicted in the *Garuda Purana.*

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

TS & FA-122

Socio-Economic status of medicinal plants in Atharvaveda

Smitha Sabu, Kerala

The Atharvaveda reflects a medical tradition flourished in India, which is considered to be the source of later developments in the traditional Indian medicine. Atharvaveda describes about many medicinal plants and furnishes some data on their medicinal properties. In Atharvaveda there are some reference that the medicinal plants had a high position in the social and economic status of period. In Atharvaveda there are evidences that the medicinal plants were used as the medium of transaction. More over Atharvaveda states about a custom of giving medicinal plants as a gift during the occasion of marriage. Above the high economic status, the medicinal plants had a high position in the social and cultural life of Atharvavedic people. The state administration possessed a high interest in the propagation and preservation of the science medicinal plants. There is a hymn in Atharvaveda in the form of an oath taken by the king at the time of coronation, for the protection of this science of medicinal use of plants. Above all the Atharvaveda attributes divinity to medicinal plants. From these evidences one can conclude that, the medicinal plants were the part and parcel of Atharvavedic though. When going through the Atharvavedic hymns, one could experience the gone golden relationship with man and nature, a lost treasure of this modern age. We can hear an esteemed oath of a king for protecting medicinal plants that may open our blind eyes, which are concentrated only on the destructing nature for making profit.

❋

TS & FA-123

स्वस्तिक - An ancient mystic - auspitious en

Dr. Hari Shankar Pandey, Varanasi

स्वस्तिक (卐) is a very attractive aspicious mark and lucky symbol of Indian tradition as well total humanity, which is recognised by all savants and scholars. Laxicographere accept it isn varied meanings as them--lucky aspicious object., a kind of mystic cross or mark made on persons and things to denote gool luck. The majority of scholars regard it as a solar symbol, that is as representing a curtailed

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

rorm of the wheel of the solar Visnu, consisting of four spoks . Crossing each other at right angles with short fragments of the periphery of the circly of the end of each spoke turning round in one direction to denote the course of the sun. A reputed volume of Indian science architecture Mānasāra ecognized it in various meanings, i.e. a class of storyed building, a class of village, a kind of joinery a kind of wind. a closs of halls, a kind of octagonel building etc. Jaina tradition apphends at the first place among the eight chief auspicious marks of their faith; as the emblem of teh Seventh Tirthankara and the figure of Siddha. The Buddhist doctrines also identify mostly ressemble those of Jainas.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 14

SOUTH EAST ASIAN STUDIES

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

SEAS-1

Shaivism in South East Asia

Aditii Bajpai, Lucknow

The religion that we now call Hinduism begins to take recognizable shape in this period and is patronized by the powerful regional kingdoms that rise up in the wake of Gupta power. Hindu temples dominate the physical and cultural landscape of dynamic urban centers, patronized by powerful kings and managed by Brahman priests. Buddhist and Jain centers also thrive. Islam enters the South Asian cultural and religious landscape with the arrival of traders and later, invaders from the west. The research paper describes about Shaivism in South East Asia 500 CA to CA 1200.

❋

SEAS-2

Sanskrit Studies in South-East Asia

Dr. Amar Singh, Kurukshetra

Today, the study of Sanskrit and Indology and the subjects related thereto is mainly covered under the banner of South Asian Studies Department in countries like America, England, Australia, France, Italy, Japan, Indonesia, Thailand, Mexico, Canada and other countries. Since the beginning of the first century A.D., Indian Culture and civilization have found their firm roots in countries which are now known as Indonesia, Malaysia, Cambodia and Thailand. The inscriptions discovered from all over the place bear a testimony to this fact. The impact of the Ramayana, the Mahabharata and Buddhism on the life in general here can be easily perceived. The Hindu rulers ruled Indonesia till the middle of the 15th Century A.D. The edicts of these rulers are invariably found inscribed in Sanskrit language.

We can easily confront the Sanskrit roots in the words pertaining to Thai language. Here in this country, colleges are known as Vidyalaya and the Universities are called Mahavidyalaya. The nomenclatures of those in authority in the University and also those of the degrees are derived from Sanskrit. The spread of Sanskrit in Thailand owes chiefly to the Chakri dynasty. Princess Mahachakri Sirindhorn herself is an M.A. in Sanskrit and is constantly in hot pursuit of the popularization of

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Sanskrit. Indian culture has had its deep impact on China as well-a country that shares its borders with India. A number of Chinese travelers came to India in the Middle Ages and carried back with them numerous scriptures written in manuscripts. The study of Sanskrit is being pursued only in two Institutions viz. the department of oriental studies of Beijing University and the Institute of Asia and pacific studies of the Chinese Academia of Social Science.

There are two renowned scholars of Indology in China. Professor Dr. Ji Xianlin mastered in Sanskrit by his stay in Germany. He rendered into Chinese the scriptures like Ramayana, the Panchatantra, Shakuntalam and Dashkumarcharit. Besides, he made a comparative study on the various aspects of India and China. Another scholar of Indology, Professor Jin Kemu, studied Sanskrit thoroughly by staying in Varanasi. He penned into Chinese language history of Sanskrit literature and introduction to Panini's Grammar. These are the scholars who can speak in Sanskrit with a lot of fluency. A special study is being undertaken in China to know the Indian impact on Chinese language, literature, Medicine, old Chinese scriptures, astrology, astronomy etc. There are various Buddhist scriptures laying safe from the ravages of time and written in Tibetan and Chinese languages.

After independence, the Indian Govt. has done a lot for the spread of Sanskrit and has set up a number of Sanskrit universities for the growth and spread of Sanskrit language. Today in almost all the universities of India there is an independent Sanskrit department, where the study of Sanskrit and research is undertaken vigorously. The opening up of gurukulas under the influence of Arya Samaj can be attributed to the spirit of revival of ancient gurukul traditions. In these gurukulas, the study of Sanskrit was given precedence over all other subjects.

In spite of the full support of the Central Govt. as well as that of various organizations, the plight of Indology in and outside India is rather pathetic today. Its neglect in India in particular is directly attributable to westernization and shrinking employment possibilities. No attention is being paid to manuscripts and Tibetan sources of literature. Today in the era of techonology the number of students opting for Sanskrit as a subject in schools and universities is continously dwindling.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 15

WEST ASIAN STUDIES

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

WAS-1

Arab Political Societies in 19th and early 20th Centuries

Dr. Faiyazul Haqq, Allahabad

Turkistan, which we at present prefer as Western or Russian Turkistan, was conquered by the Muslims in the 8th Century of the Christian era. The Turks were soon converted to Islam and were found by the Muslim rulers and governors as very useful solidiers and bodyguards. The wer recruited as such in large numbers and in course of time they became so numerous and powerful that they began to dominate their own masters and becoming so powerful that they would raise caliphs to the throne or pull them down as they chose. When Baghdad, the capital of Abbasid caliphate, fell before the Mongol's onslaught in 1258, the Turkish power seemed to have received a fatal blow, but however, the Turks continued to dominate the Muslim World.

Soon after the destruction of Baghdad by the Mangols under Hulagu, a new Turkish power, that of the Ottomans appeared in Anatolia, which not only gradually occupied the whole of that country but soon crossing over into Europe conquered the Balkan Peninsula and captured Constantinople in 1453. As for Asia and Africa they conquered all the Arab lands in these continents with the exception of Central Arabia and eastern coasts of that peninsula, while in Africa they conquered Egypt, modern Libya, Tunisia and Algeria, only Morocco and Sudan escaped falling under their power.

The Ottomans thus became a world power, respected and feared for and wide, but gradually as the result of the French Revolution and the spread of modern education, nationalism began to strike roots among the conquered nations. At first the movement for freedom remained confined to Christian population e.g. among the Arabs it was the Christian who mooted the idea of independence, but soon the western educated Muslims also joined their ranks and began the struggle for shaking off the Turkish yoke. No imperial nation easily lets its subject races to become independent and thus lose its empire. The Turks too were in no mood to liquidate

CC-0. JK Sanskrit Açademy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

their empire by granting the Arabs independence. The Arabs were not able to carry on their struggle for freedom openly hence they took to establishing at first secret societies for popularising the idea of independence, and then as they gained some experience and courage they demanded home rule, agreeing to live as member nations of the multi-national Turkish empier. But as the Turks relentlessly pursued the Arab protagonists of independence, while some societies which only had moderate demands worked in open, the others either due to lack of courage or motive of expediency preferred to carry on their movement in secrecy.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 16

MODERN SANSKRIT

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-1

पावकप्रभा—परिचयः

डॉ. सी. ललिता राणी, तिरुपति [आं.प्र.]

संस्कृतसाहित्ये काव्यानामस्ति विशिष्टस्थानम्। सद्यः परनिर्वृर्तिजनकभूतानि काव्यानि विलसन्ति बहूनि। तेषु खण्डकाव्यम् अन्यतमम्। खण्डकाव्येषु आधुनिक कविना श्रीपन्नालराधाकृष्ण शर्मण विरचितं 'पावकप्रभा' नामकं विद्योतते।

अस्मिन् खण्डकाव्ये आन्ध्रप्रदेशस्य गुण्टूरुमण्डल मण्डनायमान जिल्लेल्लमूडि नामक ग्रामे मातृ श्री पदलाञ्छना श्रीमत्या अनसूयादेव्या चरित्रं, वात्सल्यं सुमधुरशैल्या अभिवर्णितम्। एकमुदाहरण यथा—

''अव्याज भूरिकरुणाऽमृत पूर्यमाण प्रेमार्द्रनेत्र युगलेन समायतेन।
लोकोत्कारं च सचराचरमापिबंती लोकैकमातरमपश्यदयं कृतार्थः॥''

शोधप्रबन्धेस्मिन् पन्नालराधाकृष्ण शर्मणः देशकालादिकं निरूप्य पावकप्रभायां वैशिट्यं कीदृशमिति निरूपयितुं प्रयन्तः क्रियते।

*

MS-2

कविमार्गजुषां नवीनं दिग्दर्शनम्—''गङ्गाजलं दूषितम्''

डॉ. बुद्धेश्वरषडङ्गी, तिरुपति (आं०प्र०)

''गङ्गाजलं दुषित''मिदं खण्डकाव्यं विंशतिशतकोत्तरकालिकनवीनकवीनां कृते उत्साहप्रदमुदाहरणं भवत्येव। काव्यस्यास्य निर्मातारः कविकुलशेखराः उत्कलीयाः **हरेकृष्णशतपथीमहोदयाः** साम्प्रतिकसमस्यामाधारी कृत्य स्वलेखनं प्राचोदयन्। **''असी-मसी-द्वयोर्मध्ये मसी एव गरीयसीति''** प्रमाणयितुमपि एतैः काव्येऽस्मिन् प्रयासः कृतः। विद्वज्जनमोदितां प्राचीनपरम्परां सादरं स्वीकृत्य नवीनया रीत्या परिवेशसुरक्षार्थं जनाऽन्दोलनं मानसिकपरिवर्तनं च सुरगिरा समुपास्थापयन्। एतैरत्र काव्ये पञ्चमहाभूतनिर्मितमिदं शरीरं स्वच्छमहाभूतैः परिपुष्टं भवतीति सर्वसिद्धं वचः प्रमाणितम्। किन्तु इदानीं पञ्चमहाभूतानि प्रदूषितानि अतः सुस्थशरीरं मानावानां कृते दुर्लभमिति तैः मुक्तकण्ठमुद्घोषितम्—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

''बन्ध्या चेत् पृथिवी जलं कलुषितं वायुश्च चेद् दुषितः।
तेजो व्योम तथा भवेत् यदि तदा जीवः कथं धार्य्यते''

(गङ्गाजलं दूषितम् 55)

काव्यमिदं षट्पञ्चाशच्छ्लोककुसुमैः परिवृंहितं शार्दूलविक्रीडितछन्दोभिः सुललितम् अर्थान्तरन्यासानुप्रासाद्यर्थशब्दालङ्कारभूषितं प्रसादगुणगुम्फितं सत् आधुनिककविराणां मार्गदर्शकं भवितेति निश्चप्रचं वचः। अलं पल्लवितेन।

*

MS-3

आधुनिकसंस्कृतोपन्यासक्षेत्रे नूतनं दिग्दर्शनम्
''तथापि वन्द्या मम मातृभूमिः''

डॉ. अजय कुमार नंदा, तिरुपति

संस्कृतसाहित्यस्य स्वतन्त्रः विभागः गद्यविभागः। प्रायशः संस्कृतपद्यसाहित्ये यथा आधुनिकसारस्वतसाधकाः सुलभाः, न तथा गद्यसाहित्ये। द्वित्राः पञ्चषा वा गद्यकवयः आधुनिकसंस्कृतसारस्वतसाधनाक्षेत्रे प्राप्यन्ते। आधुनिकसमस्यामाधारीकृत्य सहृदयहृदयमोदकं गद्यकाव्यं प्रायशः नावलोक्यते। यदि वा केचन लब्धप्रतिष्ठाः विद्वांसः गद्यसाहित्यं लिखन्ति तेषां रचना तु नारिकेलपाकसमा विदूषां चित्तविनोदनायेवेति निश्चप्रचं वचः। अतः आधुनिकसामाजिकाः संस्कृतगद्यसाहित्यं प्रति स्वीयामरुचिं प्रदर्शयन्ति। अस्याः समस्यायाः उपरि सूक्ष्मेक्षिकया विचारं कृत्वा सरलसुरगिरा आधुनिकसमसयामुद्घाटयितुं सहृदयपाठकानां मनसि चानन्दं जनयितुमुत्कलमातुः क्रोडमण्डनं कुर्वाणाः **डॉ. बुद्धेश्वरषडङ्गी** महोदयाः **''तथापि वन्द्या मम मातृभूमिः''** इत्याख्यं संस्कृतोपन्यासमरचयन्।

अलङ्कारशास्त्रदृष्ट्या कथाकाव्यस्य परम्परा अत्र सुरक्षिता। सर्वजनबोध्यमिदं कथाकाव्यं जनानां मनस्सु स्थितां नगरवासात्मिकां दुर्वासनां प्रति चपेटाघातं करोति। कृषिमाध्यमेन स्वकीयामार्थिकस्थितिं वर्द्धयितुं प्रोत्साहना चात्र प्रदत्ता। उपन्यासेऽस्मिन् मातृभूमिप्रीतिजागरणाय महान् प्रयासोऽपि कृतः। घटनाप्रवाहस्य सम्यगुपस्थापनं कादम्बरीवासवदत्तादशकुमारचरितशैलीं च प्रौढान् सहृदयान् यथा मोदयति तथा साधारणपाठकेभ्यः अपि सद्यःपरनिर्वृत्तिं प्रयछति। एतेषां कविवराणाम् ऋषिबोधमिति दृश्यकाव्यम्, तथा च अप्रकाशितानि कलिका - चकास्ति योग्येन हि योग्य सङ्गम - ओ३म् शान्ति इत्यादिनि काव्यानि अपि सहृदयानन्दकारिणी भवन्ति इति शम्।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-4

जननीकाव्यनिर्माता प्रोफेसर हरेकृष्ण शतपथी

अशोक कुमार होता, वरगटम, (ओडिशा)

काव्यं सर्वदा भावमयम्। यदा भावोच्छ्वासः अत्यधिकः भवति तदा कविः तं भावं काव्यरूपेण समुपस्थापयति। तेन हृदयम् आश्वस्तं भवति, मनःशान्तं भवति, चिन्तनं लोकलोचनं समायाति च। तादृशेषु भावतरलेषु लघुकाव्येषु सुविख्यातसंस्कृतकवि, प्रोफेसर हरेकृष्ण-शतपथि विरचितं **जननी**काव्यं प्राथम्यं भजते साम्प्रतिककाले। काव्यस्यास्य भावाभिव्यञ्जनो मधुमयी, भाषायोजना छन्दोमयी, विचारसरणिःलालित्यमयी च प्रतीयते। यद्यपि कविः स्वकीयजनन्याः, वियोगयन्त्रणाजर्जरितचित्तः सन् काव्यमिदं व्यरचयत् तथापि सा जननी सर्वेषां जननीव प्रतीयते काव्यलालित्येन। मधुरवाङ्मयभरितस्य अस्य काव्यस्य मनोहारिणी सुषमा प्रबन्धेनानेन प्रदर्शयिष्यते इति दिक्।

❋

MS-5

आचार्य मनुदेव भट्टाचार्यस्य अप्रतिमा काव्यवैशारदी

डॉ. मनुलता शर्मा, वाराणसी

चतुर्णां महाकाव्यानाम्, अष्टानां खण्डकाव्यानां, त्रयाणां रूपकाणां, चतुर्व्याकरणशास्त्रोद्भावकाव्यानां निर्मातारः, पारेशतमभिनन्दनपत्राणां स्रष्टारः, पारेसहस्रं स्फुटश्लोकानां रचयितारः, समस्यापूर्तिपरकाणां श्लोकानां सपद्येव पूरयितारः, सद्योरचितसंस्कृतपद्यप्रस्तोतारः, विद्वद्विनोदं विधातारः, मारुतिशतकं महाकाव्यम् अञ्जनाञ्जनटीकयाऽलङ्कर्तारः, हिन्दी-संस्कृत-बङ्ग भाषासु परश्शतं निबन्धानां प्रणेतारः, प्राची-शाब्दी-निगमज्योति, शिवज्योति-भारतमनीषा-परमार्थसुधा-नियमानन्द, गाण्डीव-सन्मार्गादिविधानां पत्रिकाणां सम्पादयितारः समासु-आध्यक्ष्य-वक्तृत्व-मुख्यातिथित्व-निर्णायकत्वसञ्चालकत्वसंयोजकत्वाद्युत्तरदायित्वानां निष्पादनकर्तारः, इत्थं सारस्वतीसुषमायाः माङ्गल्यं मण्डयितारः, शैलात् सरन्तीं, गभीरगर्जनां कुर्वन्तीं निर्झरिणीमिव झणत्कारं विधात्रीं काव्यधारां प्रवाहयितारः, अभिनवबाणभट्टोपाधिप्रथितयशः प्रकाशयितारः, काशीस्थे सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालये व्याकरणविभागोपाचार्यपदं विभूषयितारः आचार्याः पण्डितमनुदेवभट्टाचार्याः शारदीयां सुषमां सहस्रगुणगुम्फितां कुर्वाणाः शाब्दिककविशेमुषीमप्रतिभां काव्यवैशारदीं दधानाः सुरसरस्वतीशास्त्रज्ञसमवाये शोभन्तेतराम्।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-6

आख्यायिकाक्षेत्रे म०म० बालकृष्णमिश्रस्यावदानम्

डॉ. लक्ष्मीनाथ झा, दरभंगा बिहार

संस्कृत वाङ्मये म०म० बालकृष्णमिश्रविरचितलक्ष्मीश्वरीचरितस्यातीव वैशिष्ट्यं वरीवर्ति। आख्यायिकेयं विविधविरुदावलीविराजमान-मानोन्नत-मिथिलामहीमहाराजलक्ष्मीश्वरसिंह (बहादुर जी०सी०आई०ई०) देवदेवानां द्वितीयधर्मपत्न्या महाराज्ञ्यास्तस्याः श्री 5 लक्ष्मीश्वरी देव्याः कुलयुगलचरितैरुपस्कृता। लक्ष्मीश्वरीदेव्याः पतिकुले मिथिलाराज्योपार्जकस्य म०म० महेश ठक्कुरादारभ्यापरभगीरथमहाराजाधिराजरमेश्वरसिंहपर्यन्तम् एवं पितृकुले काव्यप्रदीपकारस्य म०म० गोविन्द ठक्कुरादीनां प्राञ्जलभाषया वर्णनमुपन्यस्तमस्ति। उक्तेच चरित्रे क्वचित् शृङ्गारस्य, क्वचित् वीरस्य क्वचित् करुणस्य, क्वचित् शान्तस्य व्यञ्जकतया रसपदेन भावस्यापि ग्रहणादन्ततस्तद्व्यञ्जकत्वेन सरसत्वोपपत्याऽऽख्यायिकालक्षणावयव सङ्गतिः।

लक्ष्मीश्वरीचरिते नव्यन्यायशैलीमनुसृत्यानुप्रासादयः साहित्यशास्त्रस्य परिभाषिकाः शब्दाः परिष्कृताः विराजन्ते। तद्यथा—

वृत्त्यनुप्रासत्वञ्च वर्णविशिष्टवर्णत्वं, वै० स्ववृत्तिव्यञ्जनत्व विशिष्टजातिमत्वस्वाव्यवहित-पूर्ववर्तितावच्छेदकनिरुक्त जातिमद्वर्णाव्यवहितोत्तरत्वस्वाव्यवहितपूर्वस्वरसजातीयस्वराव्यवहितोत्तर-त्वसमानाधिकरणस्वाव्यवहितोत्तरस्वरसजातीयस्वराव्यवहित-पूर्वत्वसंसर्गावच्छिन्न-स्वनिष्ठावच्छेदकताक-प्रतियोगिताक भेदवत्वसस्वविशिष्टवर्णविशिष्टत्वैतत्सम्बन्धचतुष्टयावच्छिन्नस्वनिष्ठप्रकारतानिरूपित-प्रमीयविशेष्यतावत्त्वस्वविशिष्टभेदवत्त्वान्यतर सम्बन्धेन।

*

MS-7

अकबरी कालिदास-गोविन्दभट्टस्य काव्यानुशीलनम्

डॉ. कैलाश नाथ द्विवेदी, अजीतमल (औरैया) उ०प्र०

सुसमृद्धं संस्कृतसाहित्यं पुरातनकालत एव महाकाव्यगीतिकाव्य गद्यकाव्यनाटककथाऽऽख्यायिका-चम्प्वादिविविधविधानामुत्कृष्टकालजयिकृतिभिर्विलसति। माधव उरव्यभानुदत्तपद्मनाभमिश्रप्रभृतिमध्ययुगीन-यशस्विकविषु परमगौरवशाली श्रीगोविन्दभट्टः स्वाप्रतिमप्रतिमया काव्यनैपुण्येन चाऽकबरीकालिदासोपनाम्ना साहित्यजगति सुविज्ञात एवाऽस्ति।

स्व० डॉ. श्रीधरभास्करवर्णेकरप्रभृतिविद्वांसोऽस्य कवेः प्रादुर्भावमन्तर्बाह्यप्रमाणैः खिस्तषोडश-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शताब्द्यामेव स्वीकुर्वन्ति। 'श्रीरामचन्द्रयशः प्रबन्धः' श्रीगोविन्दभट्टस्य प्रतिनिधिकाव्यरचना प्राप्यते। अस्मिन् कविना स्वकीयोपनाम्न एवमुल्लेखः कृतोऽस्ति—

''इत्यकबरीकालिदासकविश्रीगोविन्दभट्टविरचितः श्रीमहाराजरामचन्द्रयशः प्रबन्धः समाप्तः।''

श्रीगोविन्दभट्टः पूर्ववर्तिपरमप्रेष्ठेन कविकुलगुरुकालिदासेन प्रभूतं प्रभावितः प्रतीयते। अस्य ललितपद्येषु प्रतिच्छाया कालिदासस्यैव पद्यानां परिलक्ष्यते। अतएव महाराजाकबरेण स्वराज-सभायामकबरीकालिदासोपनाम्नोऽयं सभाजित आसीत्।

श्रेष्ठस्तोत्रकाव्यरचनादृष्ट्या कविना श्रीगणेशशिवपार्वतीविष्णुकृष्णादि उपास्यदेवानां स्तुतिरचनाभिः परमप्रावीण्यं प्रदर्शितमस्ति। ऐतिहासिकमहत्त्वदृष्ट्या सम्राट् अकबरप्रशंसा, रामचन्द्रप्रशंसा, दलपतिगृहिणी दुर्गावती प्रशंसा चात्यन्तमुल्लेखनीया एव। कामदेवविजययात्रामलयानिलविरहिणीवेदनांश्चवर्णनाऽऽत्मप्रशंसा विषयक-काव्यरचना साहित्यिकसौष्ठवदृष्ट्या परमोत्कृष्टाः सन्ति।

पूर्ववर्तिप्रथितमहाकविश्रीहर्षादीनामिव कविरयमपिं स्वकाव्ये यद् गर्वोक्तिं प्रकटयति स्वकाव्योत्कर्ष-स्थापनार्थं तद्विचारणीयैव काव्यतत्त्वविद्भिः—

'अनाराध्य कालीमनास्वाद्य गौडीमृते मंत्रतंत्राद् विना शब्दचौर्यात्।
प्रबन्धं प्रगल्भं प्रकर्तुं प्रवक्तुं विरञ्चिप्रपंचे मदन्यः कविः कः॥' (पद्य० 59)

संक्षेपे, कथयितुमिदं शक्यते, यत् मध्यकालिक विस्मृतप्रायाऽकबरी कालिदासश्रीगोविन्द-भट्टस्योत्कृष्टकाव्ययशः शरीरं संरक्षितुमस्य काव्यरचनानामनुसन्धानात्मकमध्ययनमावश्यकमस्त्येव। इति शम्।

*

MS-8

त्रिपाठिशर्मणः संस्कृतकृतीनां विभिन्नदृष्ट्या मूल्यायनम्

5.1 आलंकारिकदृष्ट्या - (लावन्यवती)

पण्डितमहोदयः आलंकारिकदृष्ट्या अप्रतिद्वन्दी आसीत्। तस्य चरिताध्ययनेन वः खलु ''अलंकार शास्त्र गुरुः आसीत्'' इति निश्चयेन अनुमीयते। सुदर्शन आचार्य-महोदयस्य मतानुसारम्—

''वस्तुतः पण्डितमहोदयस्य अलंकारशास्त्रेषु अगाधपाण्डित्यं आसीत्।'' अलंकारशास्त्रं तस्य जीवनमासीत्। प्रत्येकेषां अलंकाराणां चमत्कारिताप्रतिपादनं आलंकारिकाणां वैदुष्यम्। अतः सः अलंकारान् सम्यक् हृद्बोध्य स्व अलंकारचन्द्रिकायां स्थानमददात्। सः विभिन्नान् अलंकारग्रन्थान् समालोच्य, शतान्

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अलंकारान् निर्वाचनं कृतवान्। अपि च तेषां भेद-उपभेदप्रदर्शनपूर्वकं लक्षणनिर्देश पूर्वकं च उदाहरण माध्यमेन निर्देशितवान्। अलंकाराणां सूक्ष्मातिसूक्ष्मप्रभेदनिर्द्धारणपूर्वकं ओडिआसाहित्यतः उदाहरणं विरच्य अलंकारस्य चमत्कारितां प्रदर्शयितुं चेष्टां करोमि स्म।

काव्यालंकार विश्लेषण क्षेत्रे स्वरचित ''अलंकार चन्द्रिका'' अद्यावधि ओडिआ साहित्यस्य एकः अनतिक्रान्तः ग्रन्थः। पण्डितमहोदयस्य ध्वनिशास्त्रोपरि महत् पाण्डित्यमासीत्। अतः सः ''ध्वनिचन्द्रिकाः'', ''साहित्यचन्द्रिका'' च इति ग्रन्थद्वयं रचयितुं प्रयासमकरोत्। परन्तु बहुमुखीकर्ममयजीवनस्य व्यस्ततायां इमौ ग्रन्थौ संपूर्णौ ना भवताम्। अतः तस्य प्रत्येकग्रन्थस्य अनुशीलनेन अलंकार शास्त्रस्य झलकं द्रष्टूं मिलिष्यति। इति निश्चप्रचम्। तद्रचितलावण्यवती अलंकारदृष्ट्या एका अमूल्यकृतिः इति नास्ति सन्देहस्यावकाशः।

*

MS-9

संस्कृतप्रचारस्य अनावश्यकता

गणेश थिटे, पुणे

(1) प्रचारशब्दस्य आधुनिकः अर्थः मूलतः संस्कृतभाषायां नास्ति। (2) संस्कृतप्रचारस्य आवश्यकता नास्ति। तत्पूर्वमेव भारतदेशे विदेशेषु च प्रचरितं, धर्मभाषात्वेन भारते प्राचीनभाषात्वेन विदेशेषु च संस्कृतस्य स्थानं निश्चितमस्ति। संस्कृतप्रचारकैः संस्कृतप्रचारः न कृतः किन्तु यत् पूर्वमेव प्रचरितं संस्कृतं तत् स्वार्थं वर्तितम्। (3) संस्कृतं संगणकः च इति द्वौ अपि विषयौ परस्परं निरपेक्षौ। संस्कृतज्ञाः संगणकं न जानन्ति, संगणकज्ञाश्च संस्कृतम्। (4) संस्कृतसाहित्ये पर्यावरणविषयिणी चेतना नास्ति, प्रदूषणाभावात्। अभिजातसंस्कृते 'नेचर्' इति अर्थे शब्दः नास्ति। (5) संस्कृतस्य विज्ञानदृष्ट्या उपयोगः नास्ति। ''विज्ञानम्'' इति विषयः संस्कृतग्रन्थेषु शूद्राणां कृते आरक्षितः। संस्कृतज्ञाः ब्राह्मणाः व्याकरणं, दर्शनानि साहित्यं वा पठन्ति स्म। (6) संस्कृतप्रचारकैः संस्कृतभाषायाः प्रदूषणं क्रियते। सर्वेषां शब्दानां नपुंसकीकरणम्, आङ्ग्ली-हिन्दी-प्रादेशिक-भाषाणां संस्कृते संकरः क्रियते। वा-शब्दस्य प्रश्नार्थकमुपयोग कृत्वा (यथा ''गच्छसि किम्?'' इत्यस्य स्थाने ''गच्छसि वा?'') ''वान्तं'' संस्कृतं प्रयुज्यते प्रचारकैः। (7) संस्कृतस्य प्रचारः अनावश्यकः अशक्यः च। अल्पसंख्यैः एव जनैः संस्कृताध्ययनं कर्तुम् इष्टं शक्यं च।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-10

लोकभाषा संस्कृतम्

जयप्रकाश, इलाहाबाद

संस्कृतभाषाऽन्याभ्यः सर्वाभ्योऽपि भाषाभ्यः प्रकारे विस्तारे विचारपवित्रतायां चान्यूना विद्यते। भाषैषा उत्तरभारतीयभाषाणां जननी दक्षिणभारतीयभाषाणां च प्रभायित्रि। सर्वास्वपि आर्य-द्रविण-परिवारभाषासु संस्कृत शब्दानां बाहुल्यमवलोक्यते यथा बङ्गालीभाषायां - 46.86%, मलयालमभाषायां - 45.06%, ओडियाभाषायां- 44.02%, तमिलभाषायां - 15.52%, तेलगूभाषायां - 36.36%, हिन्दीभाषायां - 46.75% शब्दाः संस्कृतस्येव प्राप्यते। न केवलं भारते अपितु मोहम्मदीयदेशेषु पारसीकदेशेषु, तुरुष्कदेशेषु, ख्रिस्तानदेशेष्वपि संस्कृतस्याध्यापनं साम्प्रतं शोभनतया प्रचलति स्म। उदीच्येषु त्रिविष्टपचीन-जयप्राण-कोरियादीन, अप्राच्येषु-लङ्काद्वीपम्, प्राच्येषु-मलयप्रायोद्वीपम्, प्रशान्तमहासागर दविष्णानि द्वीपान्तराणि च, प्राच्येषु-अफगानिस्तान, तुहष्कस्थानेष्वपि संस्कृतस्य प्रभावः दरीदृश्यते।

आधुनिकसंगणकस्यकृतेऽपि संस्कृतमेव सर्वोपयोगिनी भाषाऽस्ति यतो हि संस्कृते भाषासम्बन्धी नियमाः सूत्रबद्धाः सन्ति, तान् गणितीय प्रणाल्या ग्राहयितुं शक्यते। फोम्बर्स पत्रिका (1987) अनुसारं संगणक मृदुतन्त्रस्य कृते संस्कृतम् सर्वाधिकतया उपयोगित्वम् सिद्धमस्ति।

संस्कृतभाषा आन्तर्जालपत्रिका अपि (Internet Edition) बसन्तगाडगिलस्य नियन्त्रणे सम्प्रेष्यमाणमस्ति—w.w.w.c.sharada इत्यत्र द्रष्टुं शक्यते। अपूर्ववाणी अमेरिकातः प्रासार्यमाणा अन्तर्जालपत्रिका 2003 तमे वर्षे लोकाय अर्पिता। आकाशवाणी दूरदर्शनक्षेत्रेऽपि नास्ति संस्कृतस्य अभावः।

*

MS-11

'भारतजनताहम्' इत्यस्य एकं समीक्षणम्

डॉ. कृष्णमोहनपाण्डेय, जौनपुर

महाकविरमाकान्तमहोदयेन प्रणीतम् उत्तरप्रदेशसंस्कृताकादम्याः कालिदासपुरस्कारेण पुरस्कृतमिदं भारतजनताहम्। भारतीयसंस्कृतेः भारतीयजनतायाश्च वैशिष्ट्यमत्रोद्घाटितम्।

भारतभूमेरुत्पन्नेषु प्राणिषु प्रायः एतादृशाः संकाराः भवन्त्येव यत्ते वीरान्नमन्ति श्रेष्ठान्पूजयन्ति बालानुपदिशन्ति विश्वबन्धुत्वमपेक्षन्ति च। एवमेव भारतीयजनतायाः कीदृशश्चिन्तनं कीदृग्व्यवहारः

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इत्यादिविषयाणां साक्षाद्दर्शनमस्मिन् कर्तुं शक्यते। चत्वारिंशत्सु विभिन्नशीर्षककवितासु भारतस्य सम्पूर्णं चित्रं महाकविना चित्रितम्। यथा सुरभारतीविजयते, रौति ते भारतम्, भारतजनताहम्, लोकतन्त्रेऽस्मिन् इत्यादिशीर्षककविताः प्रमुखास्सन्ति। भारतजनताहम् शीर्षकमधिकृत्य यल्लिखितं तत्सत्यम्। कीदृशी जनता? अभिमानधनाविनयोपेताशीलीनाकुलिशादपिकठिनाकुसुमादपिसुकुमाराविज्ञानधनाज्ञानधना-साहित्यकलासंगीतपराऽध्यात्मसुधातटिनीस्नानैः परिपूतोत्सवप्रियासाहसजिजीविषाकर्मठतापुत्तलिका-विषपानपरापि स्मितवदना च भारतजनता। एवमेव सकलभारतजनतायाः सम्यग्गुणगानं प्रस्तुवन् महाकविः यत्र विश्वं भवत्येकनीडमिति वैदिकवचनं पुनः पुनः स्मारयति। तेषां कौटुम्बिककल्पनेदानीं स्मर्यते-

कुटुम्बकमेकं जगद्विधातुं जनाः सदा ये प्रयत्नशीलाः।
प्रहृष्य तेषां महात्मनां त्वं मदीयकविते। कुरुष्व गानम्॥

भारतदेशे विभिन्नाः संस्कृतयः विचाराः पद्धतयः परम्पराश्च विद्यमानाः सन्ति। अत्र विराजमानां सर्वाषां संस्कृतीनामेकमेदोद्देश्यमखण्डं भारतं पूज्यं भारतं विश्वगुरुपदलब्धं भारतम्।

❋

MS-12

कथासरित्सागरे दोहददुर्गतिः

ड.जयश्री चट्टोपाध्याय, कलिकातातः

हरमुखाम्भोजनिः सृता हरलीलेद विस्मयावहा गुणादयस्य 'बृहत्कथा' यावलुप्तापि क्षेमेन्द्रैर्बृहत्कथामञ्जर्यां सोमदेवभट्टस्य कथासरित्सागरे दोहदमुपाश्रित्य बहुविचित्रोदयनकथा सन्दृश्यते। 'दोहदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात्', अतः खलु धर्मशास्त्रे गर्भिण्या दोहददानमावश्यिकं कृतम्। परं दोहदस्तु गर्भिण्या जीवनं कुतश्चिद् दुर्विषहं जनयति।

रामायणे दोहदव्याजेन सीता निर्वासिता। इतोऽपि उदयनमातुर्महिष्या मृगावत्या दोहदेन फलितस्तिलोत्तमायाः शापः-राज्ञो महामहिमशालिनः सहस्रानीकस्य प्रियविप्रयोगः। दोहदाभिलाषेण राज्ञी मृगावती राज्ञा विरहिता चतुर्दशवर्षं यावत् सपुत्रा दुःखदुःखेन ततापः। निमज्जनमुपेत्य कामपि रुधिरपूर्णलीलावापीमस्या दोहदप्रार्थनमासीत्। परं लाक्षाजलपरिस्नाताम् इमाम् आमिषं मत्वा गरुडान्वयः कश्चिदतिकायः पक्षी नीत्वा बहुदूरे तत्याज। एवं दोहदेनात्र मृगावत्याः स्वसुखोत्पाटनपदीयसी दुर्गतिश्चित्रिताकथासरित्सागरे।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-13

डॉ० रामकुमारशर्म्मविरचितस्य भरतचरितमहाकाव्यस्य समीक्षा

डॉ. सनन्दनकुमारत्रिपाठी, कांगड़ा

डॉ. रामकुमारशर्म्मणा विरचितमभिनवं नवसर्गं श्रीमद्भागवतपञ्चमकस्कन्धवर्णितभरतकथाश्रयं भरतनायकं शान्तरसप्रधानं विविधकल्पनाप्रसूतेतिवृत्तसनाथं क्वचित् क्वचित् सूचिताऽऽधुनिकघटनं भरतचरितं महाकाव्यं देहलीपस्थ-नागप्रकाशनत: 1997-तमे खृष्टाब्दे प्रथमसंस्करणत्वेन प्रकाशितम्। अस्य कथाया मूलं यद्यपि श्रीमद्भागवतं तथापि क्वचित् क्वचित् काव्योपयोगितया परिवर्त्तनं विलोक्यते यथा भरतस्य शैशवस्य प्रभात-संध्या-चक्रवतीनदी-प्रभृतीनां च वर्णनम्। यद्यपीह शान्तरस: प्रधानं तथा प्यङ्गतया शृङ्गारादीनामप्यभिव्यक्ति:। विविधानां शाब्दार्थालङ्काराणां ध्वनीनां च प्रयोगश्चमत्कारमावहति। तत्राऽर्थालङ्काराणामुपमारूपकोत्प्रेक्षादीनां बाहुल्यमपृथग्यत्नविर्वर्त्यत्वञ्च। अद्वैतदर्शनस्य तत्त्वममन्दबुद्ध्यैक-गम्यम्। उपजातिश्लोक-द्रुतविलम्बित-वंशस्थ-वियोगिनी-प्रभृतीनां वृत्तानां विनियोग: स्वाभाविक:। यद्यपीदं महाकाव्यं प्राचीनकथाश्रयं तथापि क्वचित्-क्वचिदाधुनिकसामाजिकदशायाश्चित्रणं नवतामावहति। यथा ग्रीष्मवर्णने ईराकोपरि अमेरिकादेश-तत्सहयोगिराष्ट्राणाञ्चाक्रमणस्य चित्रणम्

दवाग्नयोर्कोपलजन्यवह्नयो
रविप्रचण्डश्च तथाऽनुगामिन:।
देहुर्यथेराकभुवं भुवं भृश-
ममेरिकापुच्छगराष्ट्रसैनिका:॥

एवं कुप्रशासने शिक्षाऽभावस्य सोवियतसङ्घविनाशे अमेरिका-प्रभावस्य नेतृणां प्रतारणस्य बालकाश्रयेण प्रवर्त्तमानस्यातङ्कवादस्य च चित्रणं ग्रीष्मादिवर्णनप्रसङ्गे द्रष्टुं शक्यते। महाकाव्यमिदं प्राचीनाऽर्बाचीनदशावर्णनपरत्वेन नृसिंहायते।

प्रस्तुतमिदं शोधपत्रं भरतचरितमहाकाव्ये लभ्यमानानामुक्ततत्त्वानां प्रकाशनाय लघीयान् प्रयास:।

*

MS-14

आधुनिकसंस्कृतकविताया वैश्विकी जागरूकता

डॉ. जनार्दन प्रसाद पाण्डेय मणि, इलाहाबाद

आधुनिकसंस्कृतकविता वैश्विकीं जागरूकतां बिभर्ति साम्प्रतमिति स्वीकरोति निश्चप्रचं समग्रोऽपि विश्वप्रपञ्च:। नियमितेषु वर्षेषु देशे देशे समायोजितं समायोज्यमानञ्च विश्वसंस्कृतसम्मेलनं किं वा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कविसम्मेलनं तथ्यमिदं सुष्ठु प्रमाणयति। आचार्यरामकरणशर्म-श्रीनिवासरथ-रेवाप्रसादद्विवेदि-कमलेशदत्तत्रिपाठि-हरिरामाचार्य-जगन्नाथपाठक-रमाकान्तशुक्ल, भास्कराचार्यत्रिपाठी-राजेन्द्रमिश्र-पुष्पादीक्षित-शघावल्लभत्रिपाठि-हरिदत्तशर्म-प्रशस्यमित्रशास्त्रि-विन्ध्येश्वरीप्रसादमिश्रविनय-इच्छारामद्विवेदि-जनार्दनपाण्डेयमणि-हर्षदेवमाधव-केशवचन्द्रदाश-मनुलताशर्म-कौशलेन्द्रपाण्डेय-शेषनारायणत्रिपाठि प्रभृतयो वर्तन्ते विश्वस्तरीया वैश्विकाः संस्कृतकवयो येषां सारस्वते विजृम्भणे वैश्विकी जागरूकता प्रतिपदमभिभासतेतराम। भवेन्नाम सा वैश्विकी घटना कारगिलयुद्धम्, भवेन्नाम सा वैश्विकी घटनाऽटलमुसर्रफवार्ता, भवेन्नाम सा वैश्विकी घटना अमेरिका-ईराकयोर्मध्ये युद्धं, अमेरिकाया विशालासु अट्टालिकासु परमाणुविस्फोटः।

*

MS-15

महाकविः दामोदरस्यवैशिष्ट्यम्

डॉ. रामचन्द्र शास्त्री, जम्मू

कविः दामोदरः अष्टादशशताब्दपूर्व भागे (1755) इस्वीये काले स्वजन्मना दक्षिणदेशमलञ्चस्कार। कविना प्रत्येकं सर्गान्ते स्वपितरौ नामोच्चारण विहितमस्ति। यथा-

यन्माता यगुनाधरी कृतसती व्राता चरित्रैः पिता।
सत्कीर्तिः द्विजदेवपूजनपरः श्रीविश्वनाथस्तथा।
तेन श्रीनृसिंह चिन्तनफले दामोदरेणीदिते,
काव्ये श्रीभगवत्प्रसादचरिते सर्गस्तु आद्योगतः॥

अनेन ज्ञायते तस्य माता यमुनाधरी, पिता च विश्वनाथ आसीत्त्। काव्यस्य विंशतितमे सर्गे कविना अभिमन्योः विवाहकाले खादयानस्य यद्वर्णन कृतमस्ति, अनेन तु कविः दक्षिणात्यी प्रतीयते॥ तथा।

रम्भापत्रे शाल्योदनं वृताङ्क निम्बुकः, आर्द्रकं,
शिंवीफले, जातिशः, सिङ्गूत्थ, कारवक्षु कूश्माण्ड
कोशात्मकं, हिङ्गु मारिचमेथी सूरनादीनां
प्रयोगो बाहुल्येन दाक्षिण्णत्य एव भवति।

ग्रन्थवैशिष्ट्यम्:- प्रत्येकं ग्रन्थस्य स्वकीयं वैशिष्ट्यम् भवति। अस्यापि काव्यस्य निजं वैशिष्ट्यम् वर्त्तते। यद्यपि एतद् महाकाव्यं महाभारतमुपजीव्य रचितमस्ति तथापि कविना स्वकौशलेन मूलकथायां

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

किंचित् परिवर्तं विहितमस्ति। यथा- कालनेमिराक्षस्य प्रयोगः धृतराष्ट्रस्य पूर्वं शकुनेः आलोचना तदनन्तर विदुरपरामर्शः। दुश्शासनस्य पूर्वं दुर्योधनस्य आलोचना स्ववंशस्य विनाशश्च कीर्तितः। पश्चात् ज्येष्ठ भ्रातुरादेशपालनाय द्रौपदयाः वस्त्राहरणं चकार। एवमेव भीमस्य युधिष्ठिरं प्रति परामर्शः यत् द्यूतक्रीड़ा हानिकरी भवति तथा महात्माविदुरस्य धृराष्ट्रं प्रति समानव्यवहारस्य उपदेशः प्रमुख रूपेण विद्यते।

❋

MS-16

साम्प्रतिकशिक्षापद्धतौ प्राचीनभारतीयशिक्षाव्यवस्थायाः आवश्यकता

डॉ. सनतकुमाररथः, प. बंगाल

अथ सा विद्या या विमुक्तये इति खलु ऋषिसमयः, पराऽपरेति संक्षितेयं शिक्षा विमुक्तिमन्तरा आन्वीक्षकी, तर्या, वार्ता, दण्डनीतिः इत्याद्यपि अन्तर्भाव्य विराजते। भारतवर्षे स्वातन्त्यं भजमानेयं शिक्षा ऋषिभिः नानासम्प्रदायश्रितैः बहुपरिवर्द्धिता आस्तिकनास्तिकभेदेन विविधदर्शनपरम्परया समागते। लोकालोकयोः विश्वासमयी शिक्षेयं वेदकेन्द्रितां तदरक्षणपरम्परा तदाश्रिता च विकासं प्राप्नुयात्। शिक्षा मानजीवनं सरलीकरोति, परन्तु इदानीं भारतवर्षे शिक्षा महती समस्या वर्तने। केचन शिक्षाविदः संस्कृतीकरणमिति विचिन्त्य मूल्ययुक्तशिक्षां त्यक्त्वा भौतिकवादं स्वीकुर्वन्ति यत् असत्यम्। यत् सत्यं ग्रहणीयं च तत् ऋषिभिरूक्तं बहुपूर्वम्।

❋

MS-17

'वत्सराजकृत 'रुक्मिणी-हरणे' वैदर्भी

डॉ. रामजियावन पाण्डेयः, टाँडा, अम्बेडकरनगर (उ०प्र०)

स्वादारैर्गुणैरब्धिसदृशान्धीरसिकरसिकान्वाल्मीकि-कालिदास-श्रीहर्षादिश्रेष्ठकवीनुत्तरलीकारयन्ती सकलकवीन्नपि समाकर्षयन्ती पाञ्चाल्याद्यन्यरीतीनां सर्वस्वभूताा रसादीनामुपकर्त्री चन्द्रिकेवेयं वैदर्भी काव्यस्यात्मापि भूत्वा स्वमाधुर्येण रसिकानावर्जयन्ती हर्षातिरेकान्वितरतितराम्—विशिष्टपदरचनारूपा माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैः प्रियतमा रीतिर्वैदर्भी 'स्-न्-य्-व्-र्-ल्-त्-म्-ब्-क्-थ् प्रभृतिमसृणवर्णैर्विभूषिते नाट्य-निपुणरूपककारवत्सराजस्य 'रुक्मिणीहरणे' हामृगस्य तृतीयाङ्कस्य षोडशे श्लोके शिशुपाल-कथने। यथाप्रसङ्गं सर्वत्र सुलभानि सन्ति विश्वस्यैकमात्रशास्त्रीयेहामृगेऽप्रचलित- रूपककारस्य कालञ्जर-नरेशपरमर्द्दिदेवत्रैलोक्यवर्मदेवामात्यस्य वत्सराजस्य 'रुक्मिणी हरणे।'

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-18

श्रीहर्षप्रभावितः कविसम्राट् उपेन्द्रभञ्जः

डॉ. सत्यनारायण आचार्यः, पुरी

पुण्यभूमौ भारतवर्षे ये केचन कविपण्डिताः स्वजनुषा संस्कृतसाहित्यभाण्डागारस्य श्रीसमृद्धिं साधितवन्तः, तेषु महान् प्रतिभावान् महाकविः श्रीहर्षः विद्वन्मूर्द्धन्यश्चेत्यभिनन्द्यते। अयं महाकविः संस्कृतभाषा- शास्त्रस्य महान् साधकः इति। प्रतीयते। संपूर्णेऽपि नैषधीयचरिते तदीयं वैदुष्यं सुव्यक्तम्। महाभारतस्य कथामाश्रित्य रचितेऽस्मिन् महाकाव्ये नलदमयन्त्याः पूतं चरित्रं वर्णितमस्ति। श्रीहर्षस्य एवंभूतकाव्यकौशलेन भारतीयाः कवयोऽपि प्रभाविताः सन्ति।

संस्कृते नलोपख्यानमवलम्ब्य वामनभट्टबाणस्य नलाभ्युदयम्, केरलकवेः वासुदेवस्य नलोदयम्, त्रिविक्रमभट्टस्य नलचम्पूः, कृष्णानन्दस्य सहृदयानन्दादीनि प्रधानकाव्यानि सन्ति। एवं च गुजुराटी-मराठी-हिन्दी-ओडिआसाहित्येषु नलदमयन्तीकथा कविभिः वर्णिता। ओडिआभाषायां नैषधीयचरितस्य पद्यानुवादोऽपि दृश्यते। किन्तु श्रीहर्षपरिवर्तिनः ओडिआकवयः नैषधीयचरितद्वारा बहुधा प्रभाविताः दृश्यन्ते। तेषु कविसम्राट् उपेन्द्रभञ्जः अन्यतमः। भारतीयसाहित्येऽयमेक एव सुप्रसिद्धः कविः, यः कविसम्राट् इति विरुदमवाप। प्रसिद्धरामतारकमन्त्रेण सिद्धिं प्राप्य उत्कलभाषया विपुलं साहित्यं च विरच्य रीतियुगप्रवर्त्तकरूपेण सहृदयसमाजे प्रख्यातोऽस्ति। उत्कलराज्ये घुमुसरराजवंशे कविवरोऽयं जन्मग्रहणमकरोत्। अस्य पितामहः धनञ्जयभञ्जः संस्कृतसाहित्यकलाप्रियः विद्वदभिमानी राजा कविश्चासीत्। उपेन्द्रभञ्जस्य पिता नीलकण्ठोऽपि कविरिति ज्ञायते। अतः बाल्यकालत एव उपेन्द्रभञ्जस्य कविप्रतिभा परामुत्कर्षतां प्राप। एतस्य बहुविधासु रचनासु लावण्यवतीति महाकाव्यं नैषधीयचरितस्य वर्णनाकौशलेन प्रभावितं प्रतिभाति। उपेन्द्रभञ्जः तदीयकाव्यकदम्बे नैषधीयचरितमादर्शरूपेणाङ्गीकरोतीति स्पष्टं वर्णयति कोटीब्रह्माण्डसुन्दरीकाव्ये।

*

MS-19

श्रीगौरकृष्णोदयकाव्यसमीक्षा

श्रीनृसिंहनाथगुरुः, पुरी (ओडिशा)

देवभूमिरूपत्वेन प्रसिद्धमस्माकं भारतवर्षम्। अत्रैव काले काले अनेके महापुरुषाः दिव्यात्मानाः आविर्भूय प्रकाशयन्ति ज्ञानलोकेन संपूर्णं जगदिदं प्रेमप्रवाहेण प्लावयन्ति च। कदाचित् स्वयं भगवानपि दुष्टाचारविनाशाय शिष्टचाररक्षणाय च विविधं स्वरूपमङ्गीकुर्वन् स्वावतारेण जगदुद्धरति। एतेष्वेव

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दिव्यप्रकाशेषु अन्यतमः ''श्रीगौराङ्गदेवः श्रीगौरकृष्णः श्रीचैतन्यदेवः श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभुर्वा'' पञ्चदशशताब्द्यां बङ्गप्रदेशे नवद्वीपे अवतीर्य संपूर्णं जगदेव नामसंकीर्त्तनरसेन निमज्जयामास। यथोक्तम्—

स्त्रीपुत्रादिकथां जहुर्विषयिणः शास्त्रप्रवादं बुधा।
योगीन्द्रा विजहुर्मरून्नियमजक्लेशं तपस्तापसाः॥

ज्ञानभ्यासविधिं जहुश्च यतयश्चैतन्यचन्द्र परा।
माविष्कुर्वति भक्तियोगपदवीं नैवान्य आसीद्रसः॥ इति॥ (चैतन्यचन्द्रामृते)

एतस्य गोराङ्गदेवस्य जीवनचरित्रमाश्रित्य यथा बङ्गभाषायां सन्ति अनेके ग्रन्थास्तथैव संस्कृतेऽपि तदविषयकं साहित्यं प्रचुरतरमुपलभ्यते। तत्र कविकर्णपूरस्य ''श्रीचैतन्यचन्द्रोदय'' नाटकं, ''श्रीकृष्णचैतन्य-चरितामामृतमहाकाव्यं'' च सुप्रसिद्धमेव। अयम् गोविन्दकविः उल्कलप्रदेशे श्रीवक्रेश्वरपण्डितस्य परिवारे जन्म लब्धवान्। असौ अष्टादशसर्गविशिष्टं सालङ्कारं विविधच्छन्दोभिरलङ्कृतं ''श्रीगौरकृष्णोदयः'' इति नामधेयं महाकाव्यं बङ्गलिप्यां 1680 तमे शकाब्दे अश्विनकृष्णद्वितीयातिथौ विरचितवान्। यत्र भगवतः गौराङ्गमहाप्रभोः लीलाविलासः वर्णितः दृश्यते।

❋

MS-20

स्वातन्त्र्यसंभव-महाकाव्ये कश्मीर-वर्णनम्

डॉ. भारतेन्द्र पाण्डेयः, मेरठ

'स्वातन्त्र्यसंभवम्' नाम सनातनोपाह्वमहाकविना आचार्येण श्रीमता रेवाप्रसादद्विवेदिना प्रणीता त्रयस्त्रिंशत्सर्गमयी महती महाकाव्यकृतिर्विद्यते। महाकाव्यस्यास्य सप्तमोऽष्टमः पञ्चविंशश्चेति त्रयः सर्गाः कश्मीरवर्णनपरा दृश्यन्ते (प्रथमौ द्वौ साक्षात् कश्मीर-निष्ठौ-वैष्णवीमुपासीनः शक्तिलाभनामकश्चरमश्च जम्बूक्षेत्रवर्णनपर इति कथयितुं शक्यते) वर्णन मेतदेव हि प्रकृते काञ्चिदावहति विचारणाम्।

इह सप्तमसर्गस्य नाम कश्मीरगतोत्पलाद्रिवर्णनम्, इति स्वयं ग्रन्थकृता कृतं वर्तते। महाकाव्यस्य प्रकृतस्य प्रकृतेऽस्मिन् सर्गे कश्मीर वर्णन-प्रसंगस्याधारः इत्थं प्रतिपादितो भवति, यदि यतो जवाहरनिवासभूभूते प्रयागराजे ग्रीष्मसमये तिग्नरश्मिः सूर्यः प्रखरतरो जायतेस्म, अतो जवाहरलालः उष्णदिवसांस्तान् कश्मीर-गतोत्पलाद्रौ यापयति स्म। परं तत्रैवापरर्तुवर्णनेन स्वयमुक्तोऽप्यमाधारः कविना खण्डितः प्रतिभाति। एवमेव एतादृशामपि केषाञ्चिद् वस्तूनां तत्र (कश्मीरवर्णने) उपनिबन्धो दृष्टिपथमवरति, यः कश्मीरेण सह संवादं नैवावहति।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-21

'रत्नमाला व्याकरणम्' एकं पर्यालोचनम्

श्रीनारायण चन्द्र शर्मा (बामुन्दी), असम

प्रबन्धेऽस्मिन् प्रथमतः विष्णोरूपासनायाः कारणं फलञ्च सविस्तरं दर्शितमस्ति। रत्नमाला व्याकरणे अष्ट प्रकरणानि सन्ति। सूत्र संख्या द्विसहस्राधिक अष्टशतपरिमित द्विर्रशीति इति। संज्ञा प्रकरणमारभ्य कृत् प्रकरणपर्यन्तं प्रणालीबद्धभावेन लिखितमस्ति व्याकरणमिदम्। व्याकरणस्य उद्देश्यं अध्ययनोपयोगिता सूत्राणां कारिका समन्विता विस्तृतं उदाहरणञ्च रत्नमालाव्याकरणे वर्णितमस्ति। विशिष्टग्रन्थात् उदाहरणमत्र सन्निविष्टं भवति। विशिष्ट सूत्राणां उल्लेखोऽत्रास्ति। पञ्चविधनिरुक्तस्य विवरणं ग्रन्थकारेण सोदाहरणं वर्ण्यते तथा ''अपि'' उपसर्गस्य पञ्च विपर्य्ययाश्च अत्र आलोचिताः वर्त्तन्ते। तेषां उदाहरणञ्च विस्तृततया दीयते। प्रस्तूयमानेऽस्मिन् प्रबन्धे रत्नमालाव्याकरणस्य पाणिन्यादिव्याकरणात् अल्पायासेन संस्कृतशिक्षाप्रसक्तानां छात्राणां कृते महौषधम् इति प्रतिपाद्यते। अस्य व्याकरणस्योपयोगित्वं दर्शयितुमत्र प्रयत्नः क्रियते। सुख-साध्यत्वेऽपि अत्र कठिन शब्दप्रयोगोऽपि स्थाने स्थाने कृतो वर्तते--तदपि दर्शयितुं यत्नः क्रियते इति।

*

MS-22

संस्कृत-पत्रिकासु ''सम्भाषण-सन्देश'' मासिकपत्रिका समालोचनात्मकम् अध्ययनम्

डॉ. बृहस्पति मिश्रः, विलासपुर (हि०प्र०)

समाजस्य मार्गदर्शकाः विद्वान्सः भवन्ति। विदुषां विचाराः आधुनिकसमाजे पुस्तकेषु संकलिता भवन्ति। किन्तु तान् पठितुं जनाः उत्साहिताः न भवन्ति। अतः रुचिपूर्वकं शीघ्रमेव विद्वत्विचारान् समाजे प्रेषयितुम् एकं साधनं पत्रिका। एतच्च पुस्तकाकारं पत्रमिव पत्रालयद्वारा जनद्वारा वा निर्दिष्टसंकेते गृहं गृहं गच्छति अतः पत्रम् अथवा पत्रिका इति। अन्यभाषा इव संस्कृतभाषायाः अपि बह्वयः पत्रिकाः सन्ति। तासु संस्कृतप्रचारमाश्रित्य संस्कृतपाठकानां विचारप्रेरणार्थं व्यक्तित्वविकासार्थं एका बहुविश्रुता ''सम्भाषण-सन्देश'' नामिका मासिकी संस्कृतपत्रिका बैङ्गलूरुतः (कर्नाटकप्रदेशे) प्रकाशिता भवति। अस्याः उद्देश्यं संस्कृतस्य सार्वभौमत्वं, सर्वकालत्वम्, सर्वविज्ञानमत्वं विविधैप्रकारैः प्रकाशनीयमित्येव प्रतीयते। अस्यां सरलेन शुद्धेन संस्कृतेन कथा धारावाहिनी, बालकथा, हास्यकणिका, संस्कृतसमाचारः कविता, लेखः इत्यादिविषयाः निरन्तरूपेण प्रकाशिताः भवन्ति।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-22A

नाट्यरसविवेचने रसवसुमूर्त्तिकारस्य पाण्डित्यप्रगल्भः

डॉ. शशिकान्त द्विवेदी, कोलकाता

महागुरोः प्रो. चन्द्रमौतिद्विवेदिमहाशयस्य यशः रसरश्मिभूता इयं कृतिः संस्कृत-जगति तनोति। सम्प्रति ते काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसंकायस्य शिखरभूतसाहित्यविभागे विभागाध्यक्षरूपे कार्यरताः सन्ति। रसवसुमूर्त्तिग्रन्थस्य नाट्यरसविवेचनप्रकरणे प्रायः इतः पूर्वं या खलु समस्या पाठकानां वा सहृदयानां हृदि उत्पन्ना आसीत् तां सर्वा समाधातुं तथा च परिवर्तनशीलप्रवाहेऽस्मिन् संसारे यत्किञ्चिदत्र ग्रन्थे उपस्थापितं तत्तु न प्राचीनविलक्षणं किन्तु प्राचीनगह्वरान्तःनिपातास्फुटितार्थाधुनिक-समीक्षकाणां बुद्धानवभासितमिवावश्यं प्रतिभाति। यथा—नाट्यरसः इत्यत्र विग्रहः नाट्यस्य रसः वा नाट्याद्रसः ? किं रसः सर्वेषां नाट्यार्थानां प्रवर्तकः उताहो सर्वोऽपि नाट्यार्थो रसानां प्रवर्तकः ? रससूत्रे विभावः रामादि अथवा रामादेरनुकर्ता नटः ? विभावः कारणं वा लिङ्गम् ? कस्य कारणं स्थायिनो वा रसस्य ? उभयोर्वा ? लिङ्गत्वे सति कस्य लिङ्गम ? लिङ्गत्वेऽपि सत्यतया वाऽसत्यतया। लिङ्गस्यासत्यत्वे कथं लिङ्गिनो रत्यादेः सत्यतः सुखात्मकत्वम् ? विभावस्य काव्यानुसन्धानं वा नेति ? अनुकारः विभावे घटते वा न ? अनुकारोऽपि वेषस्य वा वस्तुवृत्तस्य ? रसेभ्यो भावानामभिनिर्वृत्तिरुताहो भावेभ्यो रसानामिति ? रसः प्रमेयः अप्रमेयः वा ? तथा च भावादिविषयेऽपि समेषामाचार्याणां मतानि निर्मथ्य किमपि प्रस्तुतं तत्तु नवीनमिवि भाति। एतत् सर्वमङ्गीकृत्य यथाकालं मया विवेचितम्।

❋

MS-23

स्तोत्रकाव्येषु दयाशतकस्य स्थानम्

डॉ. चक्रवर्ति रङ्गनाथन्, तिरुपतिः

दयाशतकम्-प्रणेता

श्रीमन्निगमान्तमहादेशिकचरणाः आश्रितवात्सल्यजलधिं निरस्समाभ्याधिकसम्भावनं श्री वैकुण्ठ-निकेतनं श्रियः पतिं श्रीमन्नारायण द्वात्रिंशत् स्तोत्रपुष्पैः समार्चयन्निति। तेषु स्तोत्रपुष्पेषु दयाशतकमन्यतमरूपेण भासते। 'कलौ वेङ्कटनायकः' इति सुप्रथितस्य सप्ताचलनायकस्य अञ्जनगिरिनाथस्य श्रीवेङ्कटेशस्य पट्टमहिषीरूपेण विराजमानां दयादेवीम् अष्टोत्तरशतश्लोककुसुमैः अपूजयन् आचार्याः। भगवतः श्रीश्रीनिवासस्य अनुपमाः अनेके गुणाः विद्योतन्ते। तेषु दया इति एको गुणः या च अनुकम्पा, करुणा इत्यादिरूपेण प्रथिता वद्योतते। तमेव गुणसार्वभौमं श्रीनिवासस्य महिषी सम्भाव्य श्रीवैष्णवसम्प्रदायानुसारं श्रीद्वारा श्रियःपतिः प्राप्तिगति तत्त्वं प्रकाशयन् एतत् स्तोत्ररत्नं श्रियः पतौ समार्पितवन्तः।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-24

तौषी शतकम् पर गङ्गालहरी का प्रभावः

डॉ. दुर्गा जोशी, अमरेली

तौषीशतकम्' का कर्ता केदारनाथ शास्त्री है। गङ्गालहरी का कर्ता जगन्नाथ है। तौषीशतकम् में 101 श्लोक हैं गङ्गालहरी में 52 श्लोक हैं। दोनों ग्रन्थकार नदी माता की याचना और भक्ति प्रदर्शित करना चाहते हैं। दोनों ग्रन्थकर्ता ने नदी की उत्पत्ति, स्वरूप, जल, जलप्रवाह, तट, तटप्रदेश की पवित्रता का वर्णन किया है। तदुपरांत केदारनाथ जी ने राजकीय, सामाजिक, भौगोलिक वर्णन भी किया है। यह इस ग्रन्थ की विशेषता है। तौषीशतक के सभी पद्य एक ही छन्द शिखरिणी में होने से गीयमान है वह अन्य विशेषता कही जा सकती है। अन्य विषये इस प्रकार है—तौषी-गङ्गा का जन्मदाता, जम्बुविषयक किंवदन्ती, तौषीमाताके दो स्वरूप, तटप्रदेश की विशेषता, प्रभाव, चन्द्रभागा और तौषी की तुलना और तौषी का अधिक महत्व, तौषी के तटीप्रदेश में पकने वाले अन्न की स्वादिष्टता, तौषी-गङ्गाके अवतरण प्रयोजन, जम्बू से तौषी के तट तक पहुँचने के लिए चार मार्ग का वर्णन, तौषी स्नान से होने वाला लाभ तथा महत्व, तटसेवन का महत्व आदि विषय वर्णित है। सदानीश तौषी जम्बूप्रदेश वासियों के लिए रक्तवाहिनी समान है जिनसे यह प्रदेश मङ्गलमय है।

जगन्नाथ के गङ्गास्तोत्र के साथ तुलना करने से केदारनाथ जी की काव्यसुषमा का सुन्दर परिचय मिलता है।

*

MS-25

सारङ्गारण्यस्य संस्कृत विदुषां योगदानम्

दीनबंधु मांझी, छपरा

भारतस्य मानचित्रे गंगा-सरयू-नारायणी नदीभिः त्रिभुजरूपेण आवृत्तस्य सारङ्गारण्यस्य ''सारण'' इति प्रसिद्ध प्रमण्डलस्य इतिहासः संस्कृतपरम्परा दृष्ट्या महत्वपूर्णः वर्तते। सारङ्गारण्यस्य पवित्र भूमौ गौतमस्य स्थानं दधीचि तपःस्थलं राज्ञः सुरथस्य वैश्य समाधेश्च सिद्धि क्षेत्रम्, अम्बिकायाः मृण्मय मूर्ति पीठं, गजग्राह्य मुक्तिधाम, हरिहरनाथ महादेवस्य सिद्धं प्रसिद्धं हरिहर क्षेत्रं च सर्वथा प्रशंसनीयानि क्षेत्राणि च सन्ति। इदमेव कारणम् अस्ति यत् अत्र अनेके सिद्धा महात्मानः विद्वानसः अजायन्त। संस्कृताचार्येषु आचार्य रामावतार शर्म भारतमिश्र, भुवनेश्वरप्रसाद, कपिलदेव शर्म, रामयत्नौझा, चण्डीप्रसाद शुक्ल, त्रिगुणानन्द शुक्ल, आद्याचरण झा प्रभृतयः प्रसिद्धः सन्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रस्तुत शोधपत्रे सारङ्गारण्यस्य प्रसिद्धः संस्कृत पंडितानाम् योगदानस्य चर्चा भविष्यति।

*

MS-26

वर्त्तमानसमये संस्कृतमाध्यमेन संस्कृताध्यापनस्य औचित्यम्

डॉ. बैद्यनाथ मिश्रः, छपरा (बिहारः)

प्रस्तुतशोधपत्रे वर्त्तमानकालिकसन्दर्भे संस्कृतभाषायाः भाषात्वसंरक्षणाय गुणवत्तासंरक्षणाय च संस्कृतभाषायाः साहित्यादिविषयाणां संस्कृतमाध्यमेन अध्यायपनस्य औचित्यं विचारयितुं प्रयासं विधास्यते।

सम्प्रति भारतवर्षे प्रायः विद्यालयमहाविद्यालय-विश्वविद्यालयेषु संस्कृताध्यापनं संस्कृतमाध्यमेन नैव क्रियते। तत्र सामान्यतः अनुवादविधिना मूलतत्त्वस्य अर्थः क्रियते पुनश्च आंग्ल-हिन्दीप्रभृतिक्षेत्रीयभाषा-द्वारा व्याख्यादिकं सम्पाद्यते। अस्य विधेः परिणामः अयं वर्तते यत् यदा कस्यापि मूलांशस्य व्याख्या संस्कृतेन करणीया भवति तदा छात्रः स्वमातामहीं स्मरति तथा च शिक्षकोऽपि येनकेन प्रकारेण शिरसि अंगुल्या स्वबुद्धिं प्रेरयन् स्मारयन् च कामपि कार्यसाधिकां व्याख्यां लेखयति। मम समीपे एतादृशानि बहूनि साक्ष्याणि सन्ति यैः संस्कृतस्य भाषात्वं प्रदूषितं भवति। एतत्पृष्ठभूमौ अनेकानि कारणानि सन्ति। किन्तु मम विचारे संस्कृतमाध्यमेन संस्कृताध्यापनस्य अभावे एवंविधं तथ्यं समागच्छति। अतः विस्तृत शोधपत्रे एतत्सम्बद्धविविधपक्षान् समीक्ष्य संस्कृतमाध्यमेन संस्कृताध्यापनस्य औचित्यं प्रतिपादयितुं यथातथ्यं प्रयत्नाः करिष्यन्ते। इतिशम्॥

*

MS-27

डॉ. राजेन्द्र प्रसादस्य गीता गुरु पण्डित भरत मिश्रः

ज्ञानप्रकाश पाण्डेय, छपरा

संस्कृतस्य परम्परायां सारङ्गारण्यस्य महती भूमिका दृश्यते। अस्मिन् एव प्रसंगे पण्डित भरत मिश्रस्य नाम सादरं वक्तुं शक्यते। पूज्य पण्डित भरत मिश्रः भारतीय स्वतंत्रता संग्रामस्य अग्रगण्यः स्वयं सेवकः महायोद्धा आसीत्। सः संस्कृत व्याकरणस्य मर्मज्ञः आसीत्। सामाजिक-राजनीतिक सन्दर्भेषु संस्कृतस्य अध्यात्मस्य च प्रयोगं करोतिस्म। अस्मिन् एव क्रमे तस्य सम्बन्धः देशरत्नेन डॉ. राजेन्द्र प्रसादेन सह संजातः आसीत्। यदा डॉ. राजेन्द्र प्रसादः भारतस्य महामहिमः राष्ट्रपतिः अभवत् तद् अवकाशेषु कुत्रापि गच्छतिस्म तदा गीताम् अध्येतुं परिशीलयितुं पण्डित श्री भरतमिश्रम् आहूय

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संगे स्थापयति स्म। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद महोदयस्य पण्डित वर्ये या श्रद्धा आसीत् तस्या संकेतः वाल्मीकि चौधुरी महोदयस्य डॉ. राजेन्द्र प्रसादस्य वैयक्तिक सचिवस्य उद्गारेण प्रतीयते। यथोक्तम्—मुझे इनके सम्पर्क में आने का तब अवसर मिला जब भारत के प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मुझसे कहा कि अब उनकी इच्छा भागवत् उपनिषद् और गीता आदि शास्त्रों के अध्ययन एवं भजन करने की हो रही है—इसके लिए पण्डित भरत मिश्र श्री को राष्ट्रपति भवन आने के लिए लिखना चाहिए। ---- पण्डित जी जब राष्ट्रपति भवन आये तब राजेन्द्र बाबू स्वयं इसके रहने तथा अन्य सुविधाओं की देख-रेख करते थे।------

एवं गुण-गण विशिष्टस्य पण्डित भरतमिश्रस्य व्यक्तित्वं कृतित्वं च प्रस्तुत शोध पत्रे विचारयिष्येते। साक्षात्कारं कृतवान् आसीत्। फलतः तस्मात् गीताम् अन्याध्यात्मिक पुस्तकानि च पठति स्म।

*

MS-28

संस्कृताध्ययन का कीर्ति-ग्रन्थ-संस्कृतशतकम्

मस्तेता देवराज, शिमला

प्रो. राजेन्द्र मिश्रा ने अनेक काव्यविधा की रचना की है जिसमें महाकाव्य खण्डकाव्य, नाट्यसंग्रह, काव्यसंग्रह, कथासंग्रह इत्यादि प्रमुख हैं।

प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र बीसवीं तथा इक्कीसवीं शती के एकमात्र ऐसे समर्थ कवि हैं जिन्होंने काव्य, नाट्य, कथा एवं समीक्षा- चारों ही क्षेत्रों में विपुल रचना की है। प्रो. मिश्र की समस्त कृतियाँ जितनी ही मौलिक हैं उतनी ही अभिनव प्रस्थानात्मक, भाषा-दृष्ट्या शुद्ध एवं प्रासंगिक भी हैं। उनकी कहानियों, एकांकियों तथा गीतों में आज का भारत सागोंपांगतया चित्रित है। कवि ने समीक्षात्मक कृतियाँ भी लिखी हैं जिसमें गहन चिन्तन विद्यमान है। इनमें से **संस्कृतशतकम्** भी प्रो. अभिराज राजेन्द्रमिश्र की प्रमुख कृति है जिसमें उन्होंने संस्कृत की उपयोगिता को चित्रित किया है। अभिराज राजेन्द्रमिश्र संस्कृत की उपयोगिता बतलाते हुए कहते हैं कि यदि हमें अपने देश भारत को असभ्य और असंस्कृत होने से बचाना है तो हमें संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य रूप से करना होगा।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-29

प्रो. हरिदत्त शर्मा की कविता में छन्दोविधान

डॉ. विनोद कुमार गुप्त, नई टिहरी (टि॰ग॰)

छन्द आरोह अवरोह का वह तत्त्व है, जिसके माध्यम से कवि अपने भावों को तदनुकूल लालित्य के साथ नियत अक्षरों वाला स्वरूप प्रदान करता है। छन्द एक विज्ञान है और काव्य एक कला। यदि काव्य (कविता) कला छन्द की अनुगामिनी हो जाए तो कवि के भावों का आच्छादन कृत्रिमता का रूप ले लेता है और जब छन्द काव्यकला का अनुगामी होता है, तब कवि अपने भावों को सहज रूप से विविध छन्दमाला में पिरोता है, जो कवि की कवित्व शक्ति में उत्कर्ष लाती है। प्रो. शर्मा की काव्यकला छन्दः विज्ञान पर अधिकारप्राप्ता है। 'छन्दासि छादनात्' आचार्य यास्क की प्रकृत उक्ति यह प्रतिपादित करती है कि कवि अपनी संवेदना को एक निश्चित अक्षरों में आच्छादित करता है। अक्षरों में मात्रा एवं वर्ण दो घटकों का ग्रहण होता है। इन्हीं वर्णों एवं मात्राओं की संख्या के न्यूनाधिक होने से छन्दों के स्वरूप परिवर्तित हो जाते हैं।

प्रो. शर्मा की कविताओं में प्रयुक्त छन्द, पारम्परिक एवं लोकगीत के छन्द यथा-होलीगीत, व्रज के रसिया गीत, गजल आदि हैं। उन्होंने अपनी कविताकामिनी को स्वयं उद्भावित छन्दःसक् से भी सुसज्जित किया है। कवि का स्वोदभावित छन्द कभी-कभी अत्यन्त अद्भुद् स्वरूप प्राप्त करता है। प्रो. शर्मा की कविताओं में प्रयुक्त उक्त सभी प्रकार की छन्दोविध ान की प्रवृत्तियों पर प्रकृत शोध-निबन्ध में यथाशक्य सविस्तार प्रकाश डाला गया है।

*

MS-30

धीरोदात्त नायक महात्मा गान्धी

डॉ. कमल किशोर, जम्मू

महात्मा गान्धी भारत राष्ट्र निर्माता होने के साथ-साथ गान्धिविषयक सभी महाकाव्यों के नायक भी हैं। उन्हें निर्विवाद रूप से नायक मानने का मुख्य कारण यह है कि उनमें नायक के समस्त लक्षण पूर्ण रूप से घटित होते हैं। काव्यशास्त्र में निर्देश है कि महाकाव्य का नायक धीरोदात्त होना चाहिए। धीरोदात्त नायक को आत्मप्रशंसक नहीं होना चाहिए, उनमें क्षमा करने का गुण होना चाहिए, उसमें गाम्भीर्य और विषम परिस्थितियों में समभाव बनाए रखने की सामर्थ्य

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

होनी चाहिए अर्थात् हर्ष और शोक दोनों ही स्थितियां उसें विचलित न कर पाएं, वह कार्य को सफलता तक उसके प्रति प्रयत्नशील रहे।

महात्मा गांधी पर आधारित महाकाव्यों के अध्ययन से स्पष्टत: परिलक्षित होता है कि वह धीरोदात्त नायक हैं। वह उदात्त गुणों से मण्डित हैं। श्रीसाधुशरण मिश्र द्वारा रचित 'श्रीगान्धि चरितम्'' के प्रस्तुत गद्यों में गांधी चरित्र की झांकी मिलती है :–

सत्यव्रतं सत्यमभूद यदीयं सर्वेष्वहिंसात्मकमेकरूपम्।
यज्ज्ञानराशिः सवितेव लोकप्रकाशाकोऽसो जयतान्महात्मा।

न यस्य शत्रुनं च मित्रमेव सर्वत्र विशुद्धबुद्धे।
लोकोपकार व्रतिनो न तस्यततोऽतिरिक्तं किमपि स्वमिष्टम्॥

(श्री गान्धिचरितम्, 1/6-7)

स्पष्ट है कि उनमें धीरोदात्त नायक होने के समस्त गुण विद्यमान हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में उनकी इन्हीं चारित्रिक विशेषताओं पर महात्मा गांधीपरक महाकाव्यों के आधार पर विस्तार पूर्वक विवेचन किया जाएगा।

*

MS-31

'नेहरूमहाकाव्यम्' पर एक काव्यशास्त्रीय एवं सौन्दर्यपरक दृष्टि

आचार्य डॉ.महेशचन्द्र शर्मा, भिलाईछत्तीसगढ़

छत्तीसगढ़ के संस्कृत महाकवि प्रो. राजाराम त्रिपाठी एक विशिष्ट संस्कृत काव्यकर्त्ता के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। 1982 में उन्होंने 'नेहरूमहाकाव्यम्' का प्रणयन किया। भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री स्व. पंडित जवाहरलाल नेहरू के जीवनचरित परर केन्द्रित यह सरल और सरस संस्कृत महाकाव्य कुल 16सर्ग और 1215 श्लोकों में निबद्ध है। दण्डी आदि काव्यशास्त्रियों द्वारा निर्धारित अधिकांश महाकाव्य लक्षण इस पर घटित होते हैं। मंगलाचरण से इसका शुभारम्भ बड़ा ही समसामयिक है। वह सर्वधर्म समादर की भावना लिए हुए है। महाकाव्य का प्रथम् पद्य दृष्टव्य है–

यं गोंडरूपेण नमन्ति केचित्, केचित् खुदात्वेन सदा नमन्ति।
बुद्धादिरूपेण नमन्ति केचित्, तमेकमीशं शरणं प्रपद्ये॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कवि अपनी उस महती महाकाव्य परम्परा का पूरी श्रद्धा का निर्वाह प्रतीत होते हैं, जिसमें कहा गया है कि–ग्रन्थ के आदि, मध्य और अन्त में, उसकी निर्विघ्न सम्पूर्णता के लिए मंगलाचरण करना चाहिए। ईशवन्दना भी ऐसी है कि जो नायक की विचारधारा के साथ ही आगामी कथानक का संक्षिप्त संकेत करती है। मुख्यकथा के साथ अन्य कई कथाएं भी हैं। ऋतुदर्शन, नौकाविहार कश्मीर तथा बस्तर (छत्तीसगढ़) के सुन्दर प्राकृतिक वर्णन हैं। अपनी विनम्रता, लघुता और अहंकारहीनता व्यक्त की है–

नाहं कविर्नापि व काव्यशक्तिर्नमेऽनुभूतिः कविता कुतो मे।
स्वातन्त्र्यसंघर्षरतेन देशे जवाहरेण समीरितोऽस्मि॥

नायक के पूर्वजों का वर्णन, उनका कश्मीर से दिल्ली आगमन, नायक का जन्म एवं उनकी शिक्षा-दीक्षा तथा अंग्रेजों की रंगभेद नीति के बड़े प्रभावशाली वर्णन पं. राजाराम जी त्रिपाठी ने किए हैं। पं. जवाहरलाल जी के साथ-साथ स्वातन्त्र्य समर के अन्य महानायकों में दामोदर चापेकर, मदनलाल धींगरा, लाला लाजपतराय, पं. बालगंगाधर तिलक, महात्मागांधी, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, चन्द्रशेखर आजाद, आचार्य विनोबा भावे, महारानी लक्ष्मीबाई, तात्याटोपे एवं मंगलपाण्डेय आदि पूर्ववर्तियों का भी ससम्मान वर्णन किया है। आजादी की जंग की मुख्य घटनाओं, गान्धी सत्याग्रह, नरमदल-गरमदल, रॉलेट एक्अ एवं जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड आदि के भी बड़े रोमांचक वर्णन पं. त्रिपाठी जी ने इस महाकाव्य में किए हैं। इन विषयों के ही अनुरूप रोचक संस्कृत काव्य छटा देखते ही बनती है।

कवि के सुरुचिपूर्ण वैदग्ध्ययुक्त वर्णनों में काव्यसौन्दर्य, प्रकृतिसौन्दर्य एवं मानवीयसौन्दर्य पदे-पदे दर्शनीय हैं। सर्वत्र कवि की सुरुचिपूर्ण सुदक्षता दृष्टव्य है। इस सन्दर्भ में 'पंचम सर्ग' का 'कश्मीरवर्णनम्' एवम् 'चतुर्दशसर्ग' का 'बस्तरदर्शनम्' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कश्मीर वर्णन प्रसंग में कश्मीर यात्रा, सहभोज, वन-पर्वत दृश्य, वनस्पति, हिमक्रीड़ा, श्रीवेष्णवदेवीदर्शनम् एवं डलझील का नौका विहार अत्यन्त ही मार्मिक है अतः दर्शनीय अर्थात पठनीय है।

*

MS-32

आधुनिक संस्कृत साहित्य-यात्रा वृत्तान्त के विशेष सन्दर्भ में

डॉ. शीतलचन्द्र शर्मा, छत्तीसगढ़

'भ्रमन् सम्पूज्यते राजा भ्रमन् सम्पूज्यते द्विजः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भ्रमन् सम्पूज्यते योगी भ्रमन्ती स्त्री तु नश्यति॥

(चाणक्यनीति 6.4)

राजा योगी और ब्राह्मण घूमते हुए ही अच्छे लगते हैं। यात्रा का अर्थ है ''गमन करना''। यात्रा का शब्दार्थ यह व्यंजित करता है कि यायावरी प्रवृत्ति मानव की ऐसी विशेषता है जो सामान्यतः सभी व्यक्तियों में न्यूनाधिक यात्रा में पाई जाती है। आदिम युग में मानव की भ्रमणवृत्ति साभिप्राय थी। लेकिन कालान्तर में जीवन और जगत के विस्तृत वैचित्र्य वैभिन्नय आदि का आकर्षण मनुष्य के कौतूहल का कारण बन गया है।

और इसी से उनकी यायावरी वृत्ति बल पकड़ती गई। मानव जब इसी नैसर्गिक प्रवृत्ति के वैक्तिक उल्लासपूर्ण अनुभवों को उन्मुक्त भाव से साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान करता है तो उसे 'यात्रा वृत्तान्त' की संज्ञा दी जाती है। संस्कृत साहित्य की ज्ञानगंगा समकालीन साहित्य की विविध विधाओं में प्रस्तुति करता है यथा-नाटक, एकांकी प्रहसन, यात्रा वृत्तान्त, गीति काव्य, कथा साहित्य आदि।

यदि हम संस्कृत साहित्य की पूर्व पीठिका पर दृष्टि डालें तो वाल्मीकि, व्यास, महाकवि कालिदास और उनका मेघ-वर्णन, यायावरी कवि राजशेखर सभी अपने समय के महान् यात्रा एवं यात्रानुभवों से समृद्ध रहे हैं। जिसका प्रभाव उनके साहित्य में भी देखा जा सकता है। आचार्य दण्डी कृत ''दशकुमार चरितम्'' तो शुद्ध रूप से यात्रा साहित्य ही कहा जाएगा। दसों राजकुमार आपस में आप बीतियों का आदान-प्रदान करते हैं। कालान्तर में यदि हम इस विधा की दृष्टि से संस्कृत साहित्य का अनुशीलन करें तो ज्ञात होगा यात्रा वृत्तान्त की पर्याप्त समृद्ध पृष्ठभूमि प्राप्त होती है।

इसमें मुख्य रूप से 1. प्रो. डॉ. सत्यव्रत शास्त्री शर्मण्यदेशों सुतरांविभाति, पत्रकाव्यम थायीदेश विलासम् 2. आचार्य रमाकान्त शुक्ल-भांति में भारतम् 3. विश्वास का अमेरिका प्रवासानुभव-अपश्चिम पश्चिमे, 4. अभिराज डा. राजेन्द्र मिश्रकृत-मृगाङ्कदूतम, विमानयात्राशतकम्, गुर्जरशतकम्, उज्जयिनीशतकम वैशालीशतम् 5. डॉ. प्रभाकर नारायण कवठेकर का भूलोक विलोकनम् तथा 6. डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेयकृत रसप्रियापेरिस राजधानी इत्यादि। इन प्रमुख रचनाकारों ने यथा समय अपने यात्रानुभवों को सूचीबद्ध करके उसे साहित्यिक रूप प्रदान किया। तथा संस्कृत में यात्रा वृत्तान्त की भी वृद्धि की।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-33

आचार्य महावीर प्रसादशर्माकृत ऋतंवदा-काव्य में जीवन-मूल्य

डॉ. आर. आर. मलिङ्ग, हरियाणा

ऋतंवदा-काव्य में आचार्य महावीर प्रसाद शर्मा ने जीवन के विविध पक्षों को उजागर करते हुए मूल्य-परक जीवन की स्थापना की है। सन्तोष ही परम सुख है- का उद्घोष करते हुए आचार्य शर्मा ने कहा है कि लोभी पुरुष साम्राज्य को पाकर भी लोभ को नहीं छोड़ पाता है किन्तु सन्तोषी व्यक्ति एक रोटी से भी संतुष्ट हो जाता है जैसा कि उन्होंने कहा भी है–

"नैव लब्ध्वापि साम्राज्यं लुब्धो लोभान्निवर्तते।
एक रोटिकया तुष्टः सन्तुष्टो न विचाल्यते॥" (ऋतंवदा, 2.14)

आचार्य शर्मा के उपर्युक्त वचन से त्यागपूर्वक उपभोग करने की प्रेरणा मिलती है। छीना झपटी से ऊपर उठकर निर्लोभ-पूर्वक भाव से मानव-जीवन में रहना ही जीवन-मूल्य का वास्तविक अर्थ है। ईशोपनिषद् में भी 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः, मा गृधः कस्यस्विब्दनम्' द्वारा उक्त भाव को ही पुष्ट किया गया है। आचार्य शर्मा ने यह भी स्पष्ट किया है कि लाभ कि संतुष्टि क्षणिक होती है एवं असंतुष्ट व्यक्ति को उसमें भी सुख की अनुभूति होती है किन्तु संतुष्ट व्यक्ति को स्थायी सुख की अनुभूति होती है जैसा कि आचार्य शर्मा ने कहा भी है–

"असंतुष्टस्य लाभेऽपि यत् सुखं क्षणिकं हितत्।
सर्वोत्तम सुखं तन्तु संतुष्टस्यैव जायते॥" (ऋतंवदा, 2.33)

इस प्रकार जीवन-मूल्य परक विविध रूपों का दर्शन इस मुक्तक काव्य ऋतंवदा में होता है। जो व्यक्ति इस ऋतंवदा का जीवन मूल्य-परक अनमोल वचन को जीवन में उतारने का सफल प्रयास करेगा, उसका जीवन निश्चय ही उन्नत होगा।

*

MS-34

प्रो. अशोक कुमार कालिया कृत "सुधा भोजनम्" में अलङ्कार

डॉ. शालिनी मिश्रा, लखनऊ

भरतमुनि ने अनुभविता को प्रभावित करने वाले तत्त्वों के रूप में लक्षण और अलङ्कारों के नाम से पुकारी जाने वाली कुछ विशेषताओं की खोज की। इन विशेषताओं में अलङ्कारों

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

को अधिक महत्त्व दिया गया। अलङ्कारविहीन काव्य की कल्पना वैसी ही है जैसे उष्णताविहीन अग्नि की कल्पना। 'चन्द्रलोक' के रचयिता जयदेव ने काव्यप्रकाशकार के काव्यलक्षण में आए -अनलङ्कृती पुनः क्वापि' इस अंश पर कटाक्ष करते हुए लिखा है–

''अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दर्थावनलङ्कृती।''
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलङ्कृती॥''

प्रो. आशोक कुमार कालिया कृत ''सुधा भोजनम्'' नामक रूपक में दो अङ्क हैं। यह एक नृत्य नाटिका है जिसमें देवराज शक्र की चार कन्याओं में सर्वश्रेष्ठता का निर्णय करने के लिए महर्षि कौशिक द्वारा 'सुधा भोजनम्' के लिए सुपात्र ही का चयन किया गया। प्रस्तुत नाटिका में अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलङ्कारों का सुन्दर चित्रण किया गया है, जिनमें अनुप्रास का प्रयोग सर्वत्र ही दृष्टिगोचर होता है जैसे–

(1) धरिति. . . चिदचिदखिल . . . रङ्गे रङ्गनाथों यथेच्छम्॥

(2) सति . . . दिशि दिशि दिश . . . नः॥

(3) जगति . . . सत्त्वेऽसत्त्वे . . . सर्व दुःखं सर्वदृःखम्, . . . माम्॥

(4) अत्र . . . सरसिजनयताः सरसिजवदनाः सरसिजतनूद्रततयः॥

उपमा, रूपक आदि अलङ्कारों का चित्रण भी यत्र-तत्र किया गया है जैसे–

अलौकिकी या प्रतिमेव राजते . . . महनीयकौशिक॥ प्रस्तुत शोध पत्र में इन अलङ्कारों का विशद विवेचन किया गया है।

MS-35

उद्दाम लेखनी का शब्दचित्र–'भाति ते भारतम्'

डॉ. उमेश दत्त भट्ट, इलाहाबाद

आधुनिक संस्कृत साहित्य को अपनी अप्रतिम सर्जना शक्ति के बल पर वैश्वीकरण के पटल पर स्थापित करने में अदम्य साहसी कवि डॉ. हर्षदेव माधव की उर्वर सोच हर पल कुछ नवा और विलक्षण ही आकार गढ़कर रसज्ञों के समक्ष आ खड़ी होती है। भावानिल के वेग से प्रेरित उफनाती नदी कब कौन-सी दिशा को मुंह कर लेगी कल्पनातीत है। कहा नहीं जा सकता। यह कभी हाइकू, कभी सीज़ो और फिर कभी इन सब की शैली से बिल्कुल ही अलग हट कर स्वाक्षरी छन्दों में सजी कृति 'भाति ते भारतम्' के रूप में रसज्ञों से खेलती

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammu. Digitized by eGangotri Foundation, USA

मिलती है। धर्म निरपेक्ष हमारे देश के जनगण जिसमें बालक, वृद्ध, युवा, नर, नारी सभी आते हैं, में शुचित नाम की कोई वस्तु अब बड़ी मुश्किल में मिलती है। शयद रह नहीं गई है इसलिए। न मनकी, न कर्म की, न कुल की, न शरीर की, न वाक् की। और इन सब से ऊपर अधिष्ठित न हृदि शौच। हृदय की शुचिता की डगमगाहट के साथ सारा का सारा पर्यावरण ही शोचनीय हो गया है। छन्दोबद्ध कृति 'भाति ते भारतम्' में इन्हीं बिन्दुओं की विशद विवेचना है।

*

MS-36

आधुनिक संस्कृत की विविध काव्य विधाएँ

डॉ. लालाशंकर गयावाल, राजस्थान

प्राचीन परम्परा काव्यं नाम दृश्यं श्रव्यं च तत् भवेत् के रूप में काव्य के मुख्य हो भेद स्वीकार करती है। उसमें भी दृश्य काव्य के रूपक एवं उपरूपक के रूप में तथा श्रव्य काव्य के गद्य-पद्य-चच्पू के रूप में प्रभेद तथा श्रव्यों के ही अवान्तर भेद माने जाते हैं–जैसे गद्य के कथा एवं आख्यायिका, पद्य के पुनः महाकाव्य, मुक्तक काव्य एवं खण्डकाव्य महाकाव्य को भी चरितमहाकाव्य एवं ऐतिकासिक महाकाव्य, खण्डकाव्य के गीतिकाव्य, स्तोत्रकाव्य, दूतकाव्य भेद किए जाते हैं।

आधुनिक संस्कृत साहित्य में काव्य की उपर्युक्त विधाओं के अतिरिक्त अनेक नवीन विधाएँ आविर्भूत हुई हैं जो आधुनिक संस्कृत कवियों के कविकर्मव्यापार को उद्भावित करता है इन विविध नूतन विधाओं में कुछ हैं जैसे–बालकाव्य, गौरवकाव्य, पुराणकाव्य, प्रेमकाव्य, लहरीकाव्य, भक्तिकाव्य, लघुकाव्य, रागकाव्य, विरतकाव्य, विलाप काव्य, शोक काव्य, व्यंग्य काव्य, स्तुति कांव्य, कथाकाव्य, पत्रकाव्य, यात्रावर्णन काव्य, अनुकाव्य, श्लिष्ट काव्य, ललित काव्य आदि। आज का कवि समवाय इन नितनूतन विधाओं में रचना करता है इनमें प्रकाशित सामग्री भी नितनूतन एवं सामयिक है। इस दृष्टि से श्री के. एन. दामोदर शर्मा का बालकाव्य ''कृष्णचरितम्'' श्री दिगम्बर महादेव कुलकर्णी का गौरव काव्य 'धारा-यशोधरा'' श्री रमेश चन्द्र शुक्ल का पुराण काव्य' नवभारत पुराणम्' श्री रघुनाथ दास गोस्वामी का प्रेम काव्य 'दानकेलिचिन्तामणि' प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी का लहरी काव्य 'लहरीदशकम्' एवं रागकाव्य 'गीतधीवरम्' श्री द्विजेन्द्र लाल शर्मा का विरहकाव्य 'द्वैतंकाव्यम्' श्री रघुपतिशास्त्री का विलाप काव्य 'दुःखनिर्झर' श्री

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

राजेशभारद्वाज का शोक काव्य 'त्वांकथं विस्मरामि' क्षमाराव का कथाकाव्य 'ग्रामज्योति' आदि अपना विशेष महत्त्व रखता है।

*

MS-37

राजस्थानीय संस्कृत कथाओं में सामाजिक समस्याओं का समाधान

सुश्री अर्चना मंगल, भरतपुर, राजस्थान

आधुनिक संस्कृत कथाओं की सामाजिक समस्याओं के समाधान में अहम् भूमिका रही है। वर्तमान कथाएँ केवल हास्य मनोरञ्जन व नीति का माध्यम नहीं हैं, अपितु प्रेरक रूप हैं जो समाज को एक दिशा प्रदान करती हैं, सही दिशा में आगे बढ़ने की। अपनी सरसता व रोचकता के कारण कथा उद्देश्य के सम्प्रेषण में अधिक प्रभावशाली होती है। यह समाज पर अपना अमिट व गहरा प्रभाव छोड़ती हैं। समकालीन संस्कृत कथाओं में तात्कालिक महत्त्व की कथाएं बड़ी संख्या में सामने आ रही हैं। नए वातावरण तथा नई विषयवस्तु पर संस्कृत में प्रचुर कथाएँ प्राप्त होती हैं। इन कथाओं में आज के युग की वास्तविकता का चित्रण हुआ है। समाज की समस्याओं को यहां छुआ गया है। आधुनिक संस्कृत कथाओं द्वारा सामाजिक समस्याओं का समाधान सुझाया गया है, जनता में जागरूकता लाने का प्रयास किया गया है।

समाज को परिमार्जित करने वाली कथाओं में डॉ. नन्दकिशोर गौतम प्रणीत वरानुदानम्, कंटकशोधनम्, नष्टदेवस्य भ्रष्टपूजा, देवर्षिकलाथनाथ शास्त्री प्रणीत आवाहनम्, पं. दीनानाथ त्रिवेदी प्रणीत आदर्श-संस्कारः, डॉ. शालिनी सक्सेना प्रणीत यौतुक-प्रतिकारः, पं. गणेशराम शर्मा प्रणीत भ्रातृ-स्नेहः इत्यादि ऐसी ही कथाएं हैं जिनमें दहेज-प्रथा, छुआछूत, अन्धविश्वास, भेदभाव जैसी समस्याओं को न केवल उजागर किया है अपितु इन समस्याओं के प्रति जनजागरुकता पैदा करते हुए समाधान के उपाय भी सुझाए हैं।

*

MS-38

बीसवीं शताब्दी के संस्कृत काव्यों में समाकालीन चेतना

डॉ. शान्ति जैन, आरा

बीसवीं शताब्दी के संस्कृत साहित्य में काव्य की अनेक विधाएँ प्रकाश में आईं। वर्तमान युग विज्ञान के उत्कर्ष और भौतिकतावाद से युक्त है, जिसमें प्राचीन मान्यताएँ एवं आदर्श विलुप्त

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्राय हो रहे हैं, किन्तु इन्हीं के बीच मानविकी में कुछ नए आयाम भी जुड़ रहे हैं। संस्कृत कविता में भी समकालीन सामाजिक सांस्कृतिक चेतना के स्वर मुखर हो रहे हैं। इनमें अनेक नए संदर्भों, प्रतीकों, वादों और विधाओं का समावेश हो रहा है। संस्कृत कविता के क्षेत्र में मुक्त शब्द शैली का प्रवर्तन, गजल, हाइकू आदि की रचनाएँ समकालीन संस्कृत साहित्य के लिए एक उल्लेखनीय परिवर्तन है।

स्वतंत्रता के बाद संस्कृत साहित्य में ऐसी अनेक कृतियां आई हैं, जो आधुनिक समाज की समस्याओं से हमारा सामना कराती हैं। इस तरह के कवियों में डॉ. रामकरण शर्मा, अभिराज राजेन्द्र मिश्रा, रेवा प्रसाद द्विवेदी, श्रीनिवास रथ, राधावल्लभ त्रिपाठी, वनमाली दास एवं डॉ. जगन्नाथ पाठक आदि के नाम अग्रणी हैं। आधुनिक संस्कृत काव्य में पाकिस्तान बांग्ला देश का युद्ध, खाड़ी युद्ध, कारगिल युद्ध, इमरजेंसी, आतंकवाद, कश्मीर समस्या, भूकम्प, हवाला काण्ड, विश्वकप क्रिकेट, संसद पर आतंकवादी आक्रमण को भी विषय बनाया गया है क्योंकि समय के साथ संस्कृत कवि भी समसामयिक भावबोध के प्रति आकृष्ट हुए हैं। ये प्राचीन परम्पराओं की रक्षा करते हुए राष्ट्र के बदलते स्वरूप को यथार्थ अनुभूति के आधार पर अपना स्वर प्रदान कर रहे हैं।

अभिराज राजेन्द्र मिश्र के नवगीत संस्कृत साहित्य के लिए एक सारस्वत उपहार हैं तो डॉ. रामकरण शर्मा ने अपनी काव्य रचना 'मनीषामानवी' में मानव में मानवता का होना अनिवार्य माना है। आचार्य द्विजेन्द्रनाथ ने 'स्वराज विजयम्' नामक महाकाव्य में भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन को अपना विषय बनाया तो आचार्य दिगम्बर महापात्र ने 'सुवर्ण वङ्गम्' नामक अपने काव्य में बांग्ला देश की स्वतंत्रता का उल्लेख किया प्रो. श्रीनिवास रथ ने 'तदेव गगनं सैव धरा' नामक गीतिकाव्य का प्रणयन किया तो डॉ. जगन्नाथ पाठक ने गालिब की रचनाओं का संस्कृतीकरण करने के साथ 'विच्छित्तिवातायनी' जैसे मुत्तकों की रचना की।

*

MS-39

राजस्थानीय संस्कृत उपन्यास साहित्य

सुश्री सपना, भरतपुर, राजस्थान

संस्कृत वाङ्मय का गद्य साहित्य गरिमा और मधुरिमा की अगाध निधि है जिसमें उपन्यास की अति प्राचीन परम्परा रही है। उपन्यास शब्द संस्कृत साहित्य में प्राचीन काल से प्रयुक्त होता रहा है परन्तु यह उपन्यास विधा के रूप में नहीं अपितु भरतमुनि रचित नाट्यशास्त्र

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

के एक उपभेद के रूप में मिलता है जिसे–

''उपन्यासः प्रसादनम्'' या

''उपपत्तिकृतोह्यर्थ : प्रकीर्तितः''

रूप में परिभाषित किया गया है।

उप+नि उपसर्ग अस् धातु से घञ् प्रत्यय करके उपन्यास शब्द बना है। आधुनिक युग में उपन्यास शब्द का प्रचलन आंग्ल भाषा के नॉविल (Novel) के पर्याय के रूप में हुआ है, गुजराती भाषा में शब्द साम्य के आधार पर 'नवल कथा' तथा मराठील भाषा में इसे भारतीय परम्परा से जोड़ते हुए 'कादम्बरी' कहा गया है। मराठी में उपन्यास को कादम्बरी नाम से जानने की प्रथा इस बात का प्रमाण है कि यह विधा भारत में आयातित नहीं है। संस्कृत साहित्य में सजृनात्मक गद्य की इस विधा को उपन्यास नाम दिया गया है।

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' उक्ति को सार्थक करने वाले, संस्कृत गद्य साहित्य को मूर्त रूप देनेवाले, राजस्थानीय संस्कृत उपन्यासकारों ने संस्कृत उपन्यासों के सृजन द्वारा संस्कृत गद्य साहित्य में अभूतपूर्व श्रीवृद्धि की है जिनमें राजस्थानीय संस्कृत उपन्यासकार पं. अम्बिकादत्त व्यास कृत 'शिवराजविय' (1900) आधुनिक युग का सर्वप्रथम संस्कृत उपन्यास है, तथा भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री कृत 'आदर्शरमणी' (1906), श्री निवास शास्त्री कृत 'चन्द्रमहीपतिः' (1960), 'सूर्यप्रभा' 1968), श्री गणेश राम शर्मा कृत 'जीवतोऽपिप्रेत-भोजनम्' (1970), श्री जगदीश चन्द्र आचार्य कृत 'मकरन्दिका' (1984), श्री शंकरलाल शर्मा कृत 'शशिप्रभा' (1985), श्री उमेश शास्त्री 'मधु' कृत 'बिम्वमंगलम्' 1986), पं. मोहनलाल पाण्डेय कृत 'रसकपूरम्' (1991), पद्मिनी (1999) देवर्षि कलानाथ शास्त्री कृत 'जीवनस्य पाथेयम्' (2002), पं. वृद्धिचन्द्र शास्त्री कृत 'आदर्श दम्पत्ति' आदि उपन्यास प्रशंसनीय हैं।

*

MS-40

डॉ. बनमाली बिश्वाल की समसामयिक कविताएँ

श्रीमती कविता गयावाला, भरतपुर, राजस्थान

संगमेनाभिरामा (1996) व्यथा (1997) ऋतुपर्णा (1999) प्रियतमा (1999) वेलेन्टाइन-डे-सन्देशः (2000) दारुब्रह्म (2001) एवं यात्रा (2002) जैसे कवितासंग्रह ग्रन्थों के रचयिता डॉ. बनमाली बिश्वाल समसामयिक कविता के धनी कवि हैं। दैनन्दिन परिवेश

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri

में घटित घटनाओं से द्रवीभूत कवि की वेदना स्वतः प्रस्फुटित हो कविता का रूप ले लेती है। इस दृष्टि से उपर्युक्त संग्रहों में से बालश्रमिकः, पोखरन्-मृत्तिका, कारगिल संघर्षः, विश्वचषकम्, अन्तिमः प्रणामः, अन्तिमं पत्रम्, अतिचक्रवातः, संस्कृतवर्णम् आतङ्कवादः, एवं साम्प्रदायिकता, अन्धविश्वास एवं राष्ट्रीय भावना एवं सामाजिक समस्याओं पर रचित इनकी कविताओं में समसामयिकता का मार्मिक चित्रण दृष्टिगत होता है। श्री शिवकुमार मिश्र के अनुसार विश्व के विराट फलकपर युगयथार्थ के प्रति गहरी संसक्ति, पङ्गुपरम्पराओं और विकुण्ठित विचारों का विखण्डन युगों से उपेक्षित, तिरस्कृत, तुच्छ और विरूप वस्तुओं में नव-नव सौन्दर्य के दर्शन और उनका हृदयस्पर्शी रूपांकण डॉ. विश्वाल के कविकर्म व्यापार कहे जा सकते हैं।

समसामयिक विषयों को आधारीकृत कर अपने वेबाक अभिव्यक्ति के लिए डॉ. बिश्वाल की कविताएँ प्रसिद्ध हैं। डॉ. बिश्वाल के काव्य रचना के परिप्रेक्ष्य में समसामयिक विषयों पर लिखी कविताओं का समग्ररूप से मूल्यांकन करना प्रस्तुत शोध-पत्र का मुख्य प्रतिपाद्य होगा।

*

MS-41

जीवन दर्शन और लोक संवेदना–डॉ. बनमाली बिश्वाल की कथाओं में

अर्चना तिवारी, फतेहपुर

आधुनिक साहित्य के रेखांकित हस्ताक्षर डॉ. बनमाली बिश्वाल के अब तक चार कथासंग्रह (एक प्रकाशनार्थ तैयार) हैं–नीरवस्वना (1998), बुभुक्षा (2001), जगन्नाथचरितम् (2003), और जिजीविषा (अप्रकाशित)। इन संग्रहों में वर्तमान समाज के सहज, सुलभ दृश्यों का यथार्थ परक, जीवन्त और स्वाभाविक चित्रण करने वाली आधुनिक लघुकथा की समस्त विशेषताओं से युक्त, संस्कृत-लघुकथा-साहित्य को विकासोन्मुखी यात्रा में प्रकाश स्तम्भ सी अनेकों कहानियां हैं। संक्षिप्त कलेवर और समर्थ विधान वाली इन कथाओं की शिल्प, शैली, भाषा, भावबोध आदि रश्मियाँ साहित्य-पथ को आलोकित कर रहीं हैं।। अपने समय के यथार्थ को सामने लाने का प्रयत्न करती ये कथाएं अपने जीवन-दर्शन में सामान्य जन-जीवन के व्यवहारवादी, मानवतावादी दृष्टिकोण के साथ समकालीन जीवन के जटिल और क्रूर यथार्थ के आर-पार जाने की क्षमता से युक्त है तथा द्वन्द्व और अन्तर्विरोध की चेतना को रेखांकित करती हैं। आधुनिक विधाओं में अपनी प्राचीन परम्पराओं को तोड़कर लोकसंवेदना के साथ

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जुड़ने वाली सशक्ततम विधा कथा ही है। लोक के अन्तर्गत सम्पूर्ण जन-जीवन जिसमें उनका रहन-सहन, आचार-विचार, उत्सव-आयोजन, आस्था-श्रद्धा, हर्ष-शोक, विश्वास-अन्धविश्वास, स्वार्थ-परस्वार्थ यहाँ तक कि सहज बातचीत और स्वाभाविक हाव-भाव भी आ जाते हैं। डॉ. बिश्वाल की कथाओं में वही मूल संस्कार है जो समाज की रगों में प्रवाहित है। इसकी अनुभूति परक अभिव्यक्ति करती इन कथाओं में यथार्थ लोक संवेदना का प्रकाशन है।

*

MS-42

डॉ. रामजीठाकुर का कृतित्व परिचय

आचार्य सुनीला झा, उजान, दरभंगा

मिथिला के उदयान (उजान) में अनेक कवियों ने अपनी कविताओं से चिरकाल से सुरभित करने का गौरव प्राप्त किया है जिनमें आचार्य प्रवर प्रो. डॉ. रामजी ठाकुर श्रेष्ठतमों में एक हैं।

संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य विद्वान कवि डॉ. रामजी ठाकुर की अनेक रचनाएं भारतवर्ष के अनेकों अभिनन्दन ग्रन्थों, निबन्ध संग्रहों तथा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। आकाशवाणी दरभंगा से स्थापना काल से अदयपर्यन्त इनकी संस्कृत रचनाएं प्रसारित होती आ रही हैं। विभिन्न विश्वविद्यालयों के विभिन्न विद्वत गोष्ठी में इनकी प्रतिभा का समुचित आदर किया जाता रहा है।

इनकी अनेक प्रकाशित तथा कुछ अप्रकाशित रचनाएँ हैं। प्रकाशित ग्रन्थों में–

1. वैदेही पदाङ्कम् (खण्ड काव्यम्), 2. राधाविरहम् (खण्ड काव्यम्), 3. वाणेश्वरी चरितम् (खण्ड काव्यम्), 4. प्रेमरहस्यम्, 5. गोविन्द चरितामृतम् (काव्यम्)

अप्रकाशित ग्रन्थों में–

1. गीतिकुसुभाञ्जलि, 2. नाट्यगीतयः (अ) पार्वतीतपस्या (आ) देवीदर्शनम्, (3) जानकी-धराप्रवेशः इत्यादि।

शोध निबन्ध में डॉ. ठाकुर की रचनाओं का मूल्यांकन करने का सत्प्रयास यथावसर किया गया है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-43

आधुनिक संस्कृत कविता के शिल्प के बदलते आयाम

डॉ. हर्षदेव माधव, अहमदाबाद

प्रस्तुत शोध-प्रत्र में आधुनिक संस्कृत कविता में विधाओं, अकंकारविन्यास, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि-आदि सर्व सिद्धान्तों के प्ररिप्रेक्ष्य में जो परिवर्तन आए हैं उनकी विशद चर्चा है। कविता का संपूर्ण तरह बदल जाना अलंकारशास्त्र को भी बदलने के लिए विवश कर रहा है। संस्कृत कविता में वैदिक, आधुनिक विधकविता की गतिविधियों का प्रतिबिम्ब रीतिनादिन्य, वक्रोक्ति प्रावीण्य और लाधव से उसकी ताज़गी की अनुभूति असाधारण घटना है। इस सन्दर्भ में नया कविता का विवेचन भी एक क्रान्तिकारी घटना होगा।

*

MS-44

''सीमा'' में परस्परतन्त्रता एवं हृरदयपरिवर्तन के स्वर

श्रीमती डॉ. पर्णम शर्मा, बिहार

आधुनिक संस्कृत साहित्य के पुरीधा 'डॉ. रामकरण शर्मा द्वारा रचित ''सीमा'' नामक संस्कृत उपन्यास का संस्कृत साहित्य में अपुपम स्थान है।

''सीमा'' शब्द व्याकरण की दृष्टि से औणादिक सूत्र द्वारा बन्धनार्थ ''पीड़ा'' धातु में निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है–बांधना। यह शब्द नित्य स्त्रीलिंग प्रातिपादिक है।

''डाबुभाम्यामन्यतरस्याम्'' से हलन्त् ''सीमन्'' शब्द से ''डाप्'' करने पर ''सीमा'' शब्द की निष्पत्ति होती है। मनुस्मृति में सीमा शब्द की व्युत्पत्ति ''बध्यते भूमि प्रदेशः येन तत् सीमा इति कथ्यते''।

संक्षेप में सीमा शब्द का अर्थ एक प्रकार से अवधि है। वस्तुतः ''सीमा'' नामक उपन्यास में ''ममैवेद'' की भावना चित्रित की गई है और यहीं से सीमा का अभ्युदय होता है। इस पुस्तक में सम्भ्रान्त राजपरिवार का वर्णन है तथा राजाओं का विलास एवं रहन-सहन का भी सामायिक चित्रण प्रस्तुत है।

सीमा के माध्यम से कवि ने ''परस्परतन्त्रता'' एवं हृदयपरिवर्तन को बड़े ही पारस्परिक ढंग से दर्शाया है। सीमा से बाहर होने पर व्यक्ति उच्छृखंल हो जाता है जो सारे विवादों की

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जड़ है, और ठीक इसके विपरीत सीमा के अन्दर रहना सारी समस्याओं का हल। कवि का कहना है कि स्वतत्रंता और परतंत्रता इन दोनों के बीच एक कड़ी ''परस्परत्रता'' है। व्यक्ति स्वतंत्रता चाहता है, पर पूर्णरूप से स्वतंत्रता मिल नहीं पाती। पिता-पुत्र सम्बन्ध, राजा-प्रजा सम्बन्ध, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध इन सारे सम्बन्धों की कड़ी है जो एक सीमा से दूसरे सीमा तक जोड़ने की कड़ी परस्परतन्त्रता कहलाती है। ''कर्मणऽहं चौर:'' यह वाक्य हृदय परिवर्तन का द्योतक है। व्यक्ति कर्म से चोर होता है। चोर प्रवृत्ति कर्म से हुई है, जन्म से नहीं। उपर्युक्त वाक्य हृदय परिवर्तन का द्योतक है अर्थात् पश्चाताप के बाद हृदय से निकलने वाले स्वर ''हृदयपरिवर्तन'' कहलाता है। राष्ट्र रक्षा कवि का सर्वोच्च धर्म है। पुरुष के समान स्त्री की प्रधानता को स्वीकार करते हुए कवि ने इस उपन्यास के माध्यम से सामाजिक न्याय को घर-घर तक पहुँचाने का अथक प्रयास किया है राजा प्रसाद और पर्णकुटी इन दोनों के बीच यदि सम्बन्ध स्थापित हो जाए तो वह राष्ट्र भी शक्तिशाली हो जाता है और विश्व में मैत्री और शान्ति की भावना का प्रसार होता है। प्रस्तुत शोध निबन्ध में उपर्युक्त बिन्दुओं पर विस्तृत विचार किया गया है।

*

MS-45

कतमेन दिग्तिभागेन गत: सजाल्भ:

डॉ. रूधूबेन एम. पटेल, पालमपुर, बी.के.

उर्वशी का अपहरण करके केशी दानव कौन सी दिशा में गया? यह प्रश्न पुरुरवा ने चित्रलेखा को किया। और चित्रलेखा ने उत्तर दिया पूर्वो-तरस्याम दिशि-पूवोत्तर दिशा में केशीदानव क्यों गए? वहीं जाने से उसका हाल क्या हो सकता हो और ऐसा हाल क्यों हुआ? यह प्रस्तुत लेख में बताया गया है।

*

MS-46

बकुलभूषणकृत संयुक्ता का सिंहपाल वृत्तांत और शाकुन्तला का धनमित्र प्रसंग एक तुलना

पटेल वैशाली जे., पालमपुर, बी.के.

शाकुन्तल में अनपत्य धनमित्र का निर्धन होने पर उसकी संयक्ति का वायान कोई न होने से उसकी संपत्ति राजगामी हो सकती थी। परन्तु राजा दुष्यन्त ने 'ननु गर्भ: चित्र्यम्रित्थम्

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्हनि।' कहकर उसकी सगर्भा पत्नी की प्रसूति होने तक प्रतीक्षा करने का निर्णय किया। और स्वयं अनयत्य होने से शकुन्तला की याद में शोकमग्न हो गया। कवि श्री बटुक्तभूषण की 'संकुक्ता' नाम की नाट्यकृति में पृथ्वीराज की उनुपस्थिति में वसंतक को युवराज बनाया गया था। अमात्य नैद्रक वसंतक की कार्यवाही से त्रस्त होकर छुट्टी पर चला गया। इसी वक्त एक श्रोस्त्री ने नगर में सिंहपाल नामका वणिक मृत्युवश हो गए। उसकी अनपत्यता के कारण वसंतक के पास निर्णय करने के लिए आया। वसंतक की मूर्खताभरी चेष्टाएं उसकी अभिज्ञता और मूर्खता के कारणवश संयुक्ता में करुणामिश्रित हास्य निष्पन्न होता है। और शाकुन्तल में ध नमित्र प्रसंग से विप्रलंभशृंगार परिपुष्ट होता हैं। दोनों प्रसंग का कथासाम्य और परिणाम वैभिन्य इस लेख में प्रस्तुत किया गया है।

*

MS-47

स्वरूपपरिचयोयोगः

डॉ. सतीरमण झा, बिहार

प्रस्तुत सूत्र योगदर्शन के एक प्रतिष्ठित प्रौढ़ विद्वानों में अग्रगण्य आचार्य योगदत्त शर्मा का सूत्रग्रन्थ 'अमृतोपदेश' से प्रस्तुत किया गया है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मिथिला के उद्यान (उजान) ग्राम में करमहासंतरूवनी कुलदिवाकर श्रोत्रियवर पं. रामेश शर्मा के सुपुत्र मीमांसकवरयोगिराज योगदत्त शर्मा ने योगदर्शन के दो प्रसिद्ध ग्रन्थों का प्रणयन किया। प्रथम-गीतात्रयप्रकाशिका और द्वितीय अमृतोपदेशः।

गीतात्रयप्रकाशिका में यथा नाम तीन गीता का सार सभाष्य निरूपण कर गीता का ज्ञानयोग का योगजनितवेदान्त विज्ञान जिज्ञासुजनमनस्तोषाय प्रस्तुत किया है। जिसके प्रारम्भ में ही योगिराज योगदत्त ने स्वयं उल्लेख किया है यथा–

"भारतान्तर्गतापूर्वा तथा चैवानुपूर्विका।
ब्रह्माण्डाख्य पुराणान्तर्वर्तिन्युत्तरपूर्विका।।

प्रधानं तत्र गीताया उत्तरायाश्च वर्णनम्।
अन्ययोस्तु प्रसंगेन तात्पर्यस्य निरूपणम्।।"

अमृतोपदेश योगदर्शन का सूत्रग्रन्थ है जिसे तीन अध्यायों में छिहत्तर अधिकरणों तथा एक सौ बाइस सूत्रों से सुसज्जित कर विभक्त किया गया हैं। सूत्रों के माध्यम से सांख्य एवं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

योग का तात्विक विवेचन सर्वथा प्रशंसनीय है श्रीमान् पतञ्जलि ने ''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'' कहा है जबकि आचर्य योगदत्त शर्मा ने ''स्वरूपपरिचयोयोगः'' कहकर योग की परिभाषा की परिष्कृत कर दिया है।

*

MS-48

कुमाऊँनी कवि गुमानी विरचित 'रामभक्तिमहिमा' (शतक काव्य) : एक अध्ययन

डॉ. लज्जा भट्ट, नैनीताल

कुमाऊँ क्षेत्र के पिथौड़ागढ़ जिले के उप्राड़ा ग्राम के मूल निवासी कविवर गुमानी उन्नीसवीं शताब्दी के कवि हैं। संस्कृत साहित्य को रामभक्तिमहिमा, गंगार्या, भक्तज्ञिप्तिसारः, हितोपदेशशतकम् आदि शतक काव्य, देवता स्तोत्राणि, विज्ञप्तिसार, रामाष्टपदी, जगन्नाथाष्टकस्तोत्रम्, रामनामपंचाशिका आदि स्तोत्र काव्य, श्रीराम सहस्रगणदण्डकः, गद्यराजः आदि गद्यकाव्य, अंगरेजराज्यवर्णनम्, लाटद्वयप्रकरणम्, दुर्जनदूषणम्, दशनेफलाफलम, ज्ञानभैषज्यमंजरी, सद्रंजाष्टकम् आदि अनेक स्फुट पद्यों की रचना करने वाले उत्तरांचल की पवित्र धरती को अपने जन्म से धन्य करने वाले कुमाऊँनी कवि 'लोकरत्न पन्त' उपनाम गुमानी से कुमाऊँ के ही नहीं अपितु भारतवर्ष के सहृदय संस्कृतनुरागी विद्वज्जन सुपरिचित है। गुमानी मात्र संस्कृत के ही विद्वान कवि नहीं थे अपितु हिन्दी, कुमाऊँनी, नेपाली में भी उनके द्वारा विरचित काव्य उनकी विद्वत्ता का परिचय देते हैं। कविवर गुमानी प्रणीत 'रामभक्तिमहिमा' नामक शतक काव्य काव्यशस्त्रीय मानदण्डों की कसौटी पर खरा उतरने वाला अनुपम शतक काव्य है। 127 श्लोकों में निबद्ध इस शतक काव्य में कवि ने मर्यादा पुरूषोत्तम राम को अपने आराध्य देव के रूप में प्रस्तुत करते हुए सभी सांसारिक बाधाओं के उन्मूलन का मार्ग रामभक्ति को ही बताया है।

इस काय में कवि ने राम को भगवान विष्णु के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए उनके दशावतारों (यथा–मत्स्यावतार, कूर्मावतार, रामावतार, नृसिंहावतार, वामनावतार, कृष्णावतार, बलरामावतार, बुद्धावतार, परशुरामावतार तथा कल्कि अवतार) का वर्णन किया है। कवि गुमानी सम्पूर्ण जगत् को राममय मानते हैं। राम सांसारिक भय को दूर कर भय का विराम हैं। सभी प्रकार का सुख, कल्याण आदि को प्रदान करने में भगवान राम ही समर्थ हैं।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-49

जम्मू नरेश रणवीर सिंह द्वारा संस्कृत का अभ्युत्थान

डॉ. रमा शर्मा, जम्मू

सन् 1856 में संस्कृत-साहित्य के उद्धारार्थ एक आन्दोलन ने जन्म लिया, जिसके प्रवर्तक महाराजा रणवीरसिंह थे। संस्कृत-भाषा के प्रति यह उनका प्रबल अनुराग ही था कि राज्यसिंहासन पर आरूढ़ होते ही महाराजा ने संस्कृत-प्रचार कार्य के लिए एक निश्चित् तथा अभूतपूर्व योजना बनाकर उसे कार्यरूप दिया।

इसी दृष्टि से महाराजा रणवीरसिंह ने 1858 ई. में अपने पिता द्वारा प्रारम्भ किए गए श्री रघुनाथ मन्दिर जम्मू के अभिन्न भाग के रूप में एक महाविद्यालय बनवाया जहाँ छात्रों के लिए निःशुल्क शिक्षाप्राप्ति का प्रवाधान था तथा जो छात्र जम्मू के बाहर से आते थे, उनको मन्दिर में आवास, भोजन तथा वस्त्र आदि की सुविधाएँ निःशुल्क उपलब्ध करवाई जाती थी। इतना ही नहीं भारत के विभिन्न प्रान्तों से विद्वानों तथा विद्यार्थियों को संस्कृत के गहन अध्ययन तथा विद्वत्त-प्राप्ति हेतु इस संस्था में आने के लिए सादर आमंत्रित किया जाता था और इसको महाराजा द्वारा दान और पारितोषिक भी प्रदान किये जाते थे। "श्री रघुनाथ संस्कृत विद्यालय में महाराजा ने सर्वप्रथम वैदिक शिक्षा के लिए मन्दिर के अभ्यंतर कक्ष, शालिग्राम अहातों में ही चारों वेदों का सस्वर स्वाध्याय प्रचलित किया तथा अहातों के नाम भी क्रमशः ऋग्वेद अहाता, यजुर्वेद अहाता, सामवेद अहाता और अथर्ववेद अहाता रखे गए।

*

MS-50

ऋतुपर्णा की कविताओं की प्रसंगिकता आज के परिप्रेक्ष्य में

किशोरी लाल सिंह, इलाहाबाद

आधुनिक समय की प्रासंगिकता के प्रत्यक्ष गवाह बन चुके डॉ. बनमाली बिश्वाल के अब तक संस्कृत में सात काव्यसंग्रह, तीन कथा संग्रह और एक लघूपन्यास प्रकरशित है। उनकी सभी रचनाएँ अधोलिखित है– व्यथा, संगमेनाभिरामा, ऋतुपर्णा, वेलेण्टाइन डे- सन्देशः, यात्रा, दारूब्रह्म, प्रियतमा, नीरवस्वनः, बुभुक्षा, जिजीविषा, जगन्नाथचरितम् आदि।

कवि की उपर्युक्त सभी रचनाएँ सतत् किसी न किसी नूतन तथ्य को उद्घाटित करती हैं। साथ ही प्रस्तुत रचनाकार डॉ. बिश्वाल की रचनाएँ ऐसे रोचक एवं नूतन शीर्षकों से युक्त

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

होती हे कि शीर्षक देखते ही पढ़ने की लालसा बढ़ जाती है। पाठक की लिप्सा इतनी तीव्र हो जाती है कि वह उसे पढ़े बिना नहीं रह सकता। अथवा यूँ कहे डॉ. बिश्वाल के लेखन में सन्निहित इन्द्रजाल पाठकों के ऊपर ऐसा जादू चलता है कि कृतियों को पढ़ते समय पाठक सम्मोहित से हो जाते है, इन रचनाओं में छुपी विशिष्टता कहीं-कहीं तो पाठकों को चौका देती है और पाठक हतप्रभ से रह जाते है।

*

MS-51

संस्कृत-साहित्य में नारी अधिकारों की समीक्षा

डॉ. राजेश कुमारी मिश्रा (राजश्री), शिमला

अपने उद्भव-बिन्दु से ही संस्कृत-साहित्य नारी के स्वाभिमान, स्वातंत्र्य एवं अधिकारों का समर्थक रहा है। वैदिक मंत्रों में एक ओर जहाँ अपाला, घोषा, गार्गी, आत्रेयी, काक्षीवती एवं मैत्रेयी-सरीखी ब्रहमवदिनो नारियों की भव्य गाथायें मिलती हैं, उनके अगाध शास्त्रज्ञान एवं शास्त्र का परिचय मिलता है, वहीं सूर्या-सोम विवाह-सूक्त के मंत्रों में नारी के वधूरूप का अत्यन्त उदात्त चित्रण भी प्राप्त होता है। वधू का पाणिग्रहण करते हुए वर कहता है—गृभ्णमि ते हस्तं सौभगत्वाय अर्थात्-अपनी सौभाग्यशालिता के लिये तुम्हारा पाणि-ग्रहण कर रहा हूँ।

इस मंत्र का आशय सर्वथा सुस्पष्ट है कि पुरुष के जीवन में सारा अभ्युदय, सारी खुशियाँ उन्नतियाँ एवं सम्पत्तियाँ वधू के आगमन से ही संभव हो पाती हैं। मार्कण्डेय पुराण में तो यहाँ तक कहा गया है कि—

पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम्।
तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम्॥

यह नन्हा सा श्लोक भारतीय नारी के आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक, तीनों ही महात्म्यों को स्पष्ट करता है। आधिभौतिक स्तर पर जहाँ नारी-पुरुष का अर्धाङ्ग है। सन्ततिपरम्परा की आधारशीला है, वहीं आधिदैविक स्तर पर वह यज्ञ की सहचरी भी है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-52

उपन्यास विधा के अन्तर्गत 'रयीशः'–सह समीक्षा

कौशल कुमार तिवारी, कोटा

संस्कृत गद्य-साहित्य में बांग्ला-उपन्यासों के प्रभाव से 19 वीं शती में पं. अम्बिकादत्त व्यास ने 'शिवराजविजय' नामक कृति की रचना की। इस कृति के माध्यम से ही संस्कृत गद्य-साहित्य में एक नवीन विधा-'उपन्यास-विधा' का सूत्रपात हुआ। तदनन्तर संस्कृत-कवियों द्वारा भिन्न-भिन्न विषयों को आधार बनाकर प्रभूत मात्र में उपन्यास-विधा के अन्तर्गत लेखन-कार्य हुआ है।

आधुनिक संस्कृत में अपनी लेखनी के माध्यम से विशिष्ट पहचान बनाने वाले डॉ. रामकरण शर्मा के व्यक्तित्व में विद्या एवं विनय का उद्‌भुत मणिकाञ्चन संयोग स्पष्टतया परिलक्षित होता है। इनकी कृतियां में 'सीमा' एवं 'रयीशः' नामक दो उपन्यास उल्लेखनीय है। 'रयीशः' नामक उपन्यास 1994 में प्रतिभा-प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। यह 12 खण्डों में विभक्त है, जिसका संख्याङ्कन मात्र किया गा है, नामकरण नहीं।

कवि ने 'रयीश' पद को वैदिक साहित्य के 'रयि' (धन के पर्याय) तथा लौकिक-वैदिक भाषा के 'ईश' पदों से निष्पन्न बताया है, जिसका अर्थ है–धन का स्वामी। कवि कहता है कि प्राचीनकला में ऐसे ही 'रयीश' थे, जिनका सर्वस्व समाज के लिए ही था। लेखक ने अपनी कल्पना से पाटलिपुत्र के प्राचीन परिवेश 'सुमनःपुर' के सन्दर्भ में ऐसी परिस्थितियों का चित्रण किया है, जिसमें 'रयीश' व्यक्ति छल, प्रपञ्च अपराधादि से दूर होकर गाँवों एवं कस्बों में शान्तिपूर्वक रहते है। वस्तुतः इस कृति के माध्यम से कवि की आकांक्षा है कि हमारे देश के 'रयीश' भी देश के विकास एवं देशवासियों के हित में मन, वचन, कर्म से सहयोग करें; ताकि हमारा देश एक आदर्श देश बन सके।

❋

MS-53

डॉ. 'मणि' के गीत साहित्य का सामाजशास्त्रीय पक्ष

डॉ. मार्कण्डये प्रसाद पाण्डेय, उत्तरप्रदेश

डॉ. मणि के गीत साहित्य में जहाँ अन्तराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय समस्याएँ एक औपचारिकता के क्रम में बौद्धिक जागरूकता के परिप्रेक्ष्य में दर्शायी गयी है। वहीं भाविहवल विकल एवं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विसंगत समाज के अनेक विधस्पन्दन समाज शास्त्रीय सूझ के साथ उपस्थापित हुए है। समाज तो कुछ मूलभूत नियमों के सपेक्ष होकर ही विकसित होता है। नियमों की निरपेक्षता सामाजिक विघटन एवं वैमनस्य को जन्म देती है अपने प्रथम गीति काव्य निस्थन्दिनी में सामाजिक संरचना के प्रमुख उपादान वर्णाश्रम-जाति-धर्म के विखण्डन पर जब कवि दुःखी हुआ तो गीता में उसकी मार्मिक प्रतिध्वनियाँ मुखरित हुई है सामाजिक एकता के नाम पर समाज को परसे जा रहे अलगावाद के स्वर तथा सम्भावित अकाण्ड ताण्डव को रोकने हेतु सामाजिक समरस्ता के भाव उद्दीप्त करने के उपाय डॉ मणि की दूसरी कृति "रागिणी" में स्पस्ट हुए हैं अर्याजन की पैशची वृत्ति स्त्री पुरुष के बिगड़ते सम्बन्ध आस्था के दहते मूल्य इस युग की समाप्त होती जा रही समाजशास्त्रीय पद्धति को चुनौती देते हुए गीतों में उभार गये है।

*

MS-54

मणि जी की कृतियों में भगवद्भक्ति के स्वर

इन्दिरा पाण्डेय, इलाहाबाद

"जनार्दनमणि" जी आधुनिक संस्कृतसाहित्य के उत्कृष्ट रचनाकार हैं। आपके अब तक के प्रकाशित ग्रन्थों निस्यन्दिनी, नीराजना एवं रागिणी में भगवद्भक्ति के स्वर पर्याप्त मात्रा में उभरे हैं। निस्यन्दिनी में कवि स्वतन्त्र रूप से भागवती वाग्देवी की स्तुति करता है तो स्थान स्थान पर जीवन एवं राष्ट्र की विसंगति को समाप्त करने के लिए अन्य सन्दर्भितगीतों में भी भगवती से निवेदन करता है। अपने दुरितों को नवट करने के लिए 'निस्यन्दिनी' में कवि की श्रीकृष्ण से की हुई प्रार्थना भी अभिव्यक्त हुई है। 'नीरजना' तो पूरा का पूरा भक्तिकाव्य ही है। पूर्वार्ध के सारे श्लोक शिवपरक हैं तो उत्तरार्ध के सारे श्लोक विष्णुपरक है। विष्णुपरक श्लोकों में दशावतारवर्णन की छवि भी दृष्टिगोचर होती है। आभ्यन्तर एवं बाह्य समग्र द्वन्द्वों का निदान भगवच्चरणों में ही सम्भव है।

*

MS-55

जनार्दन 'मणि' विरचित 'नीराजना' का युगीन परिदृष्य

डॉ. शेषनारायण त्रिपाठी, उत्तरांचल

नीराजना का पूर्व भाग तो स्पष्ट तौर से युग का सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब है। शिव को लक्ष्य

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करके कवि ने आज के युग में प्रतिबिम्बित धर्म निरपेक्षता की आन्दोलित राजनीति, भ्रष्टाचार की विभीषिका, माता-पिता की उपेक्षा, वृत्ति का अभाव, रात-दिन धन का संचय, नियुक्तियों में अन्याय, प्रतिभा का अपमान, घोर स्वार्थ वृत्ति का उद्भव, आस्था रूपी लता का उच्छेपन तथा प्रकृति की विश्षता आदि अनैसर्गिक स्थितियों को समाप्त करने हेतु अपने इष्ट से प्रार्थना व्यक्त है। उत्तर भाग में विष्णु को लक्ष्य करके भौतिकता की आपा-धापी में भाग रहे युग को सही दिशा देने क़ा सदाग्रह अभिव्यक्त है। स्वार्थन्धों तथा चाटुकारों से घिरे हुये राजाओं वाले इस देश में धर्म एवं न्याय का आक्रन्दन सिर्फ देवी शक्तियाँ ही सुन सकती हैं। उन्हें इस देश की एंव समग्र प्राणिलोक को बचाना है, कल्याण हेतु प्रेरित करना है, सद्बुद्धि देनी है। यह पूरी नीराजना में कवि के श्लोकों में मुखरित हुई है। युग का कोई भी पक्ष नीराजना में अछूता नहीं है। डॉ. 'मणि' की सर्वतोमुखी जागरूकता एवं मानवारक्षिणी दृष्टि नीराजना के कलेवर को एक विराट फलक देने में समर्थ हुई है। युगीन परिदृश्य के भावचित्रां से नीराजना काव्य पूरी तरह भरा पड़ा है।

*

MS-56

आधुनिक काव्यशास्त्र तथा रीति-निरूपण परम्परा (सत्रहवीं अठारहवीं शताब्दी)

प्रतिमा त्रिपाठी, लखनऊ

प्राय: सभी विद्वान् पण्डितराज जगन्नाथ को ही संस्कृत काव्यशास्त्र का अन्तिम मूर्धन्य आचार्य स्वीकार करते है। परन्तु पण्डितराज के पश्चात् काल अपनी प्रवृत्तियों के कारण आधुनिक काव्यशास्त्र सज्ज्ञाभिहित किया जाता है। आधुनिक काव्यशास्त्र लगभग 300 वर्ष का है जिसमें अत्यन्त प्रसिद्ध तथा टीकाकार हुए है। आधुनिक काव्यशास्त्र सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्यशास्त्र के मध्य संयोजन तथा आधुनिक काव्यशास्त्रीय प्रवृत्तियों के उद्भावक तथा निर्माता के रूप में हैं। काव्यशास्त्र के तत्त्वों, जिसमें रीति तत्त्व को प्रारम्भ से ही महत्त्वपूर्ण काव्याङ्ग मानकर रीति सम्प्रदाय तक की प्रतिष्ठा की गयी है। इसी रीति तत्त्व को आधुनिक काल में आचार्यो द्वारा रसोपकारक गुणग्रहाक तत्त्व के रूप में वर्णित किया गया है, परन्तु यह निरूपण अपनी पूर्ववर्ती परम्परा से कितना ग्रहण करता है और कितना स्वयं में मौलिक है, प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध इन्हीं तथ्यों पर आधारित है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-57

पुरन्ध्रीपञ्चकम् में नायिकामेनकावात्सल्यम् रूपक के विशेष सन्दर्भ में

गीतिका शर्मा, जम्मू

अर्न्तराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त प्रो. वेद कुमारी घई द्वारा विरचित "पुरन्ध्रीपञ्चकम्।" रूपक संग्रह में नारियों का विशिष्ट चरित्र प्रस्तुत किया गया है जो प्राचीन संस्कृत साहित्य से लेकर आधुनिक संस्कृत साहित्य में चित्रित है। पुरन्ध्रीपञ्चकम् पाँच रूपकों का संग्रह है। पुरन्ध ीपञ्चकम् के प्रथम रूपक 'मेनकावात्सलम्' को प्रस्तुत शोध पत्र का आधार बनाया गया है। "पुरन्ध्रीपञ्चकम्" रूपक संग्रह के प्रथम रूपक "मेनकावात्सल्यम्" में निर्मम प्रेमी द्वारा छोड़ दी गई नारी के दृढ़ संकल्प का चित्रण है। इस रूपक की नायिका अभिज्ञानशाकुन्तलम् की नायिका शकुन्तला की माँ मेनका है जो संस्कृत लक्षण ग्रन्थों के अनुसार गन्धर्वशीला, वानरशीला, नर्तकी, मुग्धा, मध्यमा, प्रोषितभर्तृका तथा विरहोतकण्ठिता नायिकाओं के गुणों से युक्त नायिका कही जा सकती है। इस रूपक में मेनका में वात्सल्यमयी माँ की अवतारणा की गई है साथ ही मेनका के रूप में हमें आधुनिक युग की अविवाहिता माँ की छाया भी दिखाई देती है जो अपनी बच्ची को समाज में पनपी कुप्रथाओं का शिकार नहीं होने देना चाहती, अपितु उसे सुशिक्षित कर अच्छी गृहिणी बनाना चाहती है ताकि वह समाज में सम्मानित जीवन जी सके। इस रूपक में हमें यह सन्देश मिलता है कि नारी किसी भी दशा में पुरुष से कम शक्तिशाली नहीं है, अपितु पुरुष से भी बढ़कर दुर्गम से दुर्गम कार्यों को अकेली पूर्ण करने में सक्षम है विशषकर तब जब वह एक माँ के रूप में उठ खड़ी होती है। भारत की नारी ने जीवन की कठोरतम परिस्थितियों में भी अपने जिस साहस एवं शौर्य का परिचय समय-समय पर दिया है उसे भारत का इतिहास कभी नहीं भुला सकता।

❋

MS-58

राजस्थनीय संस्कृत ध्वनिरूपक परम्परा एवं प्रो. हरिराम आचार्य कृत 'पूर्वशाकुन्तलम्'

डॉ. (श्रीमती) सरिता भार्गव, कोटा

राजस्थान में संस्कृत ध्वनि रूपक प्रस्तुतिकरण की विधा आकाशवाणी जयपुर की स्थापना के साथ-साथ सन् 1958 से ही प्रचलित रही है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी, आशुकवि, विद्वान, गीतकार एवं रंगमंचीय अनेकों नाटकों के प्रस्तुतकर्ता प्रो. हरिराम आचार्य द्वारा प्रणीत 'पूर्वशाकुन्तलम्' नामक कृति में सात ध्वनि रूपकों का संग्रह है। ये ध्वनि रूपक स्वयं आचार्य जी के निर्देशन में आकाशवाणी जयपुर से सन् 1958 ई. से लेकर 1962 ई. के अन्तराल में तथा बाद में पुनः प्रसारित होकर ख्याति अर्जित कर चुके हैं।

कृति का नामकरण प्रथम ध्वनि रूपक 'पूर्वशाकुन्तलम्' के आधार पर किया गया है गंगा लहरी, नहि भोजसमो नृपः, आषाढस्य प्रथमदिवसे, सत्यमेव जयते, वेताल-कथा, नेत्रदानम् नामक सात रूपकों की कथा वस्तु रामायण, पुराण, साहित्य एवं दर्शन से अंकुरण को प्राप्त कर कवि की प्रतिभा को प्राप्त कर पल्लवित व पुष्पित हुई है।

यद्यपि रूपकों की कथावस्तु सुविख्यात है तथापि इसे संचार माध्‌ आकाशवाणी द्वारा सहज, सरल, अकृत्रिम संस्कृत भषा के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने का प्रो. आचार्य ने मौलिक एवं प्रशंसनीय कार्य किया है। इसमें वे सफल रहे हैं।

*

MS-59

आधुनिक संस्कृत नाटकों में स्वयंवर विवाह

परवीन बाला, जम्मू

'स्वयंवर' एक प्राचीन विवाह-प्रथा रही है। स्वयंवर शब्द का अर्थ और परिभाषा विभिन्न प्राचीन, अर्वाचीन और नवीन कोषों में प्रायः मिलते-जुलते ही दृष्टिगोचर होते हैं, केवल प्रतिपादन में भेद है, तात्पर्य में भेद प्रतीत नहीं होता है। प्राचीन काल में कन्या अपने वर को स्वयं चुन लेती थी इसी को स्वयंवर कहते हैं। 'वाचस्पत्यम्' कोष के अनुसार-स्वयमात्मना वरो वरणम्। "कन्ययात्मनैव स्व पत्युर्वनरणे सदसि स्वयंवरः। अर्थात् कन्याः द्वारा अपने आप ही राज सभा में अपने पति का वरण करना स्वयंवर ह। 'वाचस्पत्यम्' ने इस परिभाषा में श्री हर्ष के 'नैधीयचरितम्' को उद्धृत किया है। "स्वयं व्रजुते पतिम्"। वाङ्मयार्णव कोश में स्वयंवर की परिभाषा इस प्रकार दी गई है।-स्वयं वरण करने के कर्म को स्वयंवर कहते हैं। 'स्वयवंर' एक पुल्लिंग शब्द है नारी अपना पति स्वयं चुनती है उसको स्वयंवरा कहते है।

स्वयंवरः प्रमानुक्तः स्वयंवरकर्मणि।
पतिंवरायां तुस्त्रीत्वे कीर्तितैषा स्वयंवर।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आधुनिक संस्कृत नाटकों में स्वयंवर-विवाहों के अनेक विवरण प्राप्त होते हैं। इन स्वयंवर-विवाहों का बीज रूप में प्रलचन कब से हुआ और कौन-कौन से स्वयंवर किस-किस काल में हुए, कहाँ-कहाँ पर सम्पन्न हुए इस सब का विस्तृत वर्णन संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होता है। प्रस्तुत संदर्भ में तो कतिपय प्रसिद्ध विवाहों का संक्षिप्त विवरण उपलब्ध करना ही हमारा प्रमुख ध्येय है यथा सीता स्वयंवर, संयोगिता स्वयंवर आदि।

*

MS-60

"तवी" नदी का भौगोलिक चित्रण "तौषशितकम्" मुक्तक काव्य के विशेष सन्दर्भ में

मधुबाला, जम्मू

"तौषीशतकम्" में तवी नदी का भौगोलिक चित्रण करते हुए "केदारनाथ शास्त्री" ने तवी नदी को 'तौषी नाम से पुकारा है, क्योंकि पुराणों में इसका नाम "तौषी" नाम मिलता है। कालिकुण्ड से जब तौषी का उद्‌गम होता है, तब सब से पहले तौषी के दक्षिण की तरफ "डाबर" स्थान आता है। इसके अंनतर बौलडर्स, दुन्दवारां, कटलासघाटियाँ, पत्तनगढ़, चनैनी, उधमपुर, शुद्धमहादेव, रामनगर, जगानू, नगरकोटा, ऐथम, जन्द्राह, जम्मू आदि प्रधान गाँव तथा कस्बे आते हैं। लेखक ने "तौषी" के उद्‌गम के सम्बंध में परिपूर्ण संकेत नहीं दिए है।

उन्होंने इसें "ग्राडावानीड़ाङ्कजे" "नगाधिराजतनये" आदि नामों से पुकारा है। परंतु ये सभी विशेषण "तौषी" के उद्‌गम के प्रश्न का समाधान नहीं करते, तौषी शंकरमहादेव के तीर्थ स्थान शुद्धहादेव से नीचे उतरकर पर्वत कंदराओं में नर्तन करती हुई चनैनी नामक कस्बे में पहुँचती है। नीलमतपुराण में इसे "तौषीभास्करा" नाम से अभिहीत किया गया है। तवी तो इसका आधुनिक नाम है। कालीकुण्ड से कटलास लगभग कालीकुण्ड से पश्चिम की तरफ 15 कि. मी. की दूरी पर स्थित है। इसी गाँव में तौषी का 'तवी' नाम लिखा हुआ मिलता है और इसी का अपभ्रंश "तौह" है। डुग्गर के वृद्धजन अभी भी इसे "तौह" नाम से पुकारते हैं। कालिकुण्ड से लेकर जम्मू नगर तक "तौषी" नदी की कुल लम्बाई 140 कि.मी. है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-61

डुग्गर स्तुति महाकाव्य में अलंकार योजना

रेणूका सम्बयाल, जम्मू

"डुग्गर स्तुति" महाकाव्य जम्मू में 20वीं शताब्दी के मूर्धन्य संस्कृत विद्वान् पं. शकुदेव शास्त्री जी की संस्कृत भाषा में रचित अनुपम कृति है। इसमें 13 सर्ग एवं 626 श्लोक हैं, जिसमें शास्त्री जी ने डुग्गर देश की महिमा का गान किया है। अन्य समस्त नाट्यशास्त्रीय तत्त्वों के निर्वहण के साथ ही इस कृति की अलंकार योजना भी दर्शनीय है। शास्त्री जी ने इस महाकाव्य में दोनों ही प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है यथा– शब्दालंकार एवं अर्थालंकार। शब्दालंकारों के अन्तर्गत कवि ने जहाँ चार मं से दो अलंकारों यथा–अनुप्रास एवं यमक का प्रयोग किया है, वहीं अर्थालंकारों में से उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिश्योक्ति, अर्थान्तरन्यास, स्मरण, विरोधाभास, परिकर, व्यतिरेक, सन्देह इत्यादि अलंकारां को बड़ी ही सुरुचिपूर्ण शैली में प्रयुक्त किया है।

*

MS-62

भारतीय संस्कृति में सुख का स्थान

हरि नारायण उपाध्याय, लखनऊ

समान्यत: यह देखने में आता है कि मनुष्य के सुख की कल्पना एकांगी होती है। वह समझता है कि शरीर सुख ही सम्पूर्ण सुख है वह इस भौतिक जगत के सुखों की ही अधिकाधिक प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। सेगमुक्त शरी, भरपूर पैसा, प्रियवादिनी प्रिय स्त्री, वश में सन्तान, विद्या आदि वास्तविक सुख है। संक्षेप में कहा जाए तो विविध भागों की पूर्ति को सुख मानने का मनुष्य का स्वभाव बन गया है, जैसा कि कहा गया है कि :–

अर्थागमो निम्यमरोगिता च,
प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या,
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन

परन्तु मनुष्य के सुख का पात्र कभी परिपूर्ण नहीं होता। ज्यों-ज्यों वह पूर्ण होता जाता है मनुष्य का कल्पना रूपी पात्र त्यों-त्यों बड़ा होता है इसके विपरीत, जिसके पास अधिक

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धन-सम्पति है, वे लोग सुखी और सन्तुष्ट रहते हैं, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य किस प्रकार सुख और सन्तोष प्राप्त हो इस विषय में गौतम बुद्ध का कहना है: "वासनाओं का क्षय करो"।

वासनाओं का क्षय करना सामान्य व्यक्ति के लिए असम्भव है क्योंकि शरीर की न्यूनतम आवश्यकताएँ तो सदैव बनी ही रहती है। अर्थात् वासना-क्षय मार्ग पर विचार करने पर भी मूल प्रश्न बना ही रहता है।

समन्वय का मार्ग:

वासनाओं का पूर्ण उपभोग और वासनाओं का पूर्ण क्षय दोनों ही असम्भव है तथापि भारतीय संस्कृति ने सुख प्राप्ति का समन्वित मार्ग दिखाया है। चार पुरुषार्थ में अर्थ और काम दोनें का समन्वय कर भौतिक सुखों का मानवीय जीवन में जो स्थान है और उनकी जो महत्वपूर्ण उपलब्धि है उसको हमारी संस्कृति में स्वीकार किया गया है।

शरीर-सुख बनाम मन का सुख:

केवल शरीर-सुख ही सुख-सर्वस्व नहीं है। मानव शरीर के साथ मन भी है। इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होने वाले सुख की अनुभूति मानव मन के द्वारा ही करता है, किन्तु मन का भी अपना सुख-दुख हुआ करता है। दूरगामी सीमा प्रदेश में गश्त लगाने वाले सैनिक का मन अपने घर से पत्र प्राप्ति के उपरान्त ही गद्‌गद् हो जाता है, क्यों? अच्छा काम करने पर कोई शबाशी देते हुए हमारी पीठ थपथपाता है और प्रशंसा के चार शब्द कहता है, तो कितना अच्छा लगता है। क्या यह सुख शारीरिक या इन्द्रियजन्य सुख है? मधुर संगीत से मिलने वाला सुख और उपर्युक्त प्रकार का सुख क्या एक ही प्रकार के सुख है? उसी प्रकार दु:ख और क्रोध के भी उदाहरण हैं। कई बार ऐसा भी देखने में आता है कि सुखोपभोग के सब साधन सामने रहने पर भी मन उनमें लिप्त नहीं लगता क्यों? अत: सुख केवल शरीर का न होकर मन का भी हाता है।

बुद्धि का सुख:

मानव-सुख की दिशा में विचार करने पर केवल शरीर और मन के सुख पर विचार करने से काम नहीं चल सकता। मन के साथ बुद्धि भी होती है। जिस प्रकार शरीर और मन का सुख होता है उसी प्रकार बुद्धि का भी सुख होता है। पढ़ते समय उपस्थित होने वाले अनेक प्रश्न जैसे गणित की समस्याएँ सुलझाने के लिए मनुष्य प्रत्यन करता है। यदि उस समय प्रश्न और भी उलझने लगे, तो खीझ उठती हे। किन्तु कभी सहसा उसे अपने कठिन प्रश्न का

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उत्तर प्राप्त हो जाता है तो वह बड़ा आनन्दित होता है। उसका मुखमण्डल खिल उठता है। यह बुद्धि-सुख है।

आत्म-सुखः

बुद्धि के सुख से भी एक अन्य श्रेष्ठतर सुख है आत्म-सुख। आत्मा क्या है? इस विषय में गीता में कहा गया है कि आत्मा का सुख बुद्धि से भी परे है।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परबुद्धिर्योबुद्धेः परतस्तु सः॥ (वही, 3/4)

मानव मात्र के कल्याण की भावना किसी स्वार्थ भावना का परिणाम नहीं है। वह आत्मनुभूति की इच्छा और बोध का परिणाम है। मनुष्य अज्ञानवश उस आत्म-शक्ति को संकुचित करने का प्रयास करता है। शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के सुख क्रमशः निर्वाह के साधन, शान्ति ज्ञान तथा तादात्म्य भव के सहारे प्राप्त होते है।

*

MS-63

पण्डित रामजी ठाकुर की रचनाओं की समीक्षा-सारांश

सत्येन्द्र नाथ झा, मुजफ्फरपुर

प्रो. डॉ. रामजी ठाकुर आधुनिक संस्कृत विद्वानों एवं कवियों मे अग्रणी रहे। संस्कृति की पारम्परिक शिक्षा प्राण्त कर वे एम. ए. की परीक्षा के उत्तीर्ण हुए। विभिन्न संस्कृत महाविद्ययालयों में अध्यापन के पश्चात् मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा की स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग के आचार्य पद से प्राप्तावकाश हुए। अवकाश प्राप्ति के पश्चात् भी उन्होंने सरस्वती की सेवा में तत्परतादिखाई, संस्कृत में आशु कवि के रूप में वे आज भी समाज में प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने अनेक स्फुट पद्य रचनायें की जो आकाश वाणी से प्रसारित होती रही है। इनके अतिरिक्त उन्होने पाँच पद्य ग्रन्थों की रचनायें की जिनमें राधाविरहम् (खण्डकाव्यम्) वैदेही पदाङ्कम् (खण्डकाव्यम) प्रेमरहस्यम् (खण्डकाव्यम्) बाणेश्वरी चरितम् (खण्डकाव्यम्) गोविन्द चरिता मृतम् अन्यतम है। राधाविरहम् वंगीय कवि मधुसूदन के व्रजाङ्गना काव्य का संस्कृत रूपान्तर है। वैदेही पदाङ्कम् जनश्रुति पर आधिारित एक काव्य है। प्रेमरहस्यम् नामक खण्डकाव्य वृक्ष और मानवो की मैत्री कथा पर आश्रित है। बाणेश्वरी चरितम् प्रसिद्ध बाणेश्वरी भगवती पर आश्रित है। गोविन्दचरितामृतम् प्रसिद्ध काण्य प्रकाश की 'प्रदीप' टीका लिखने वाले म. म.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गोविद ठाकुर के जीवन चरित पर आधारित है। इस प्रकार इस शोधलेख में डा. रामजी ठाकुर की इन्हीं रचनाओं की समीक्षा की गयी है।

*

MS-64

पण्डित मथुराप्रसाद दीक्षित के नाटकों में राष्ट्रीय भावना

शशी प्रभा, जम्मू

महामहोपाध्याय पण्डित मथुराप्रयसउ दीक्षित जी आधुनिक युग के गणमान्य नाटककारों में से है। उन्हांने सात वीररस प्रधान नाटक लिखे है। नाटकों की रचना उन्होंने उस समय की जब देश परतन्त्र था। स्वतन्त्रता की चिंगारी उनके हृदय में सुलग रही थी परन्तु अंग्रेजों के शासन में सार्वजनिक रूप से स्वतन्त्रता की बात करना अपराध माना जाता था। स्वतन्त्र भारत का सपना इन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से ही साकार किया। भारत विजय तथा गांधी विजय नाटकों में भारत माँ को सजीव पात्र के रूप में प्रस्तुत किया, स्वतन्त्रता से कई वर्ष पूर्व ही अंहिसावादी ढंग से आजादी का सपना दिखना और भविष्य में ऐसा ही होना, उनकी दूरदर्शिता अथवा भविष्यद्रष्टा का परिचायक हे।

प्रस्तुत शोध-पत्र में इनके नाटकों में अङ्कित राष्ट्रीय भावना को उभारा जायेगा।

*

MS-65

उजान गाँव की सारस्वत सेवा

पिंकी कुमारी झा, मुजफ्फरपुर

मिथिला का प्रसिद्ध गाँव उद्यान जो इस समय उजान के नाम से प्रसिद्ध है। भगवती सरस्वती की सेवा में प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध है। प. रामेश्वर उपाध्याय,प. मोदनाथ झा, प. हर्षनाथ झा, प. नीलाम्बर झा, प. दुर्गा झा, प. ऋद्धिनाथ झा जहाँ संस्कृत शास्त्र के प्रसिद्ध विद्धान थे वही आचार्य रामानाथ झा. प्रो. तन्त्रनाथ झा, वैज्ञानिक शयीनाथ झा (अमेरिका के नागरिक) संस्कृत, शास्त्र के अतिरिक्त साहित्य की विभिन्न विधाओं के अग्रणी विद्वान थे। प्रकृत शोध आलेख में उन्हीं दिंवगत विद्वानों के व्यक्तित्व एवं कर्तव्य पर प्रकाश डाला गया है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-66

'भीष्मचरितम्' महाकाव्य में 'देवव्रत भीष्म'

डॉ. पूर्णिमा आचार्या, वाराणसी

महाभारत की कथा को उपजीव्य बनाकर 'प्रो. हरिनारायण दीक्षित' ने 'भीष्म चरितम्' महाकाव्य का सृजन किया है। यह महाकाव्य बीस सर्गो में निबद्ध है। इसके नायक देवव्रत 'भीष्म' हैं इसके बीस सर्गों की धीरोदात्तता, विनयशीलता, गुरुभक्ति, त्यागशीलता, दृढ़-प्रतिज्ञ आदि गुणों का अत्युत्तम चित्रण प्रस्तुत किया गया है। पितृभक्त देवव्रत अपने उत्कर्ष का कारण पिता का पुण्यबल मानते है–

'यतः पितुः पुण्यबलं बिना सुतः श्रम विधायपि न वर्धते क्वचित।'

तथा पुत्र का कर्त्तव्य जन्मदाता माता-पिता के सुख की रक्षा करना है–

संसारेऽस्मिन् निजतनुसुखापेक्षया जन्मदात्रोः।
मातापित्रोः सुखमतितरा रक्षणीयं सुतेन॥

फलतः निषादकन्या पर आसक्त पिता हेतु देवव्रत अपना युवराज पद त्याग कर आजीवन ब्रह्मचार्य का पालन करने जैसा कठौर व्रत–पालन करने की प्रतिज्ञा करते हैं–

'सर्दोध्वरेता इह जीवने वयन वंतं चरिष्यामि विख्यानसो भवन्।'

बाद में माता सत्यवती द्वारा यह कहने पर कि मैं तुम्हें प्रतिज्ञा से मुक्त करती हूँ, तुम ही राजा बनों, भीष्म ने माता के इस कथन को स्वीकार नहीं किया और कहा–

'निशाकरो नाम दिवाकरायतां दिवाकरो नाम निशाकरायताम्।
जगद्विपर्यासमवाप्नुयाद् वरं न में प्रतिज्ञा ह्यनृता भविष्यति॥

इतना ही नहीं, न चाहते हुए भी पिता को दिए वचन का पालन करने हेतु ही महाभारत युद्ध में वे दुर्योधन का साथ देते हैं।

भीष्म महान गुरु भक्त, सत्यवादी तथा अजेय योद्धा थे। भारत युद्ध में शरशय्या पर पड़ना पराजय नही अर्जुन को 'वियजी भव' कर दिया गया आशीर्वाद था। वृद्ध होने पर भी उनमें युवाओं जैस अद्‌भत पराक्रम तथा उत्साह था। भीष्म धार्मिक तथा धर्मज्ञ थे। धर्मारक्षा हेतु ही उन्होंने अपनी मृत्यु का रहस्य पाण्डवों को बताया, रणभूमि में इच्छित मृत्यु स्वीकार कर ली। वे चारों आश्रमों में रहने वाले लोगों के धर्म, कुल, राष्ट्र, देश, काल, चल और अचल

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धर्मो तथा नीति के ज्ञाता के रूप में चित्रित हैं। आज राष्ट्र के भ्रष्टाचार, चरित्रहीनता, विवेक शून्यता तथा न्यायशीलता, त्यागशीलता तथा दृढ़ता, कर्तव्यनिष्ठा का अभाव होता जा रहा है। ऐसे में भीष्म का चरित्र नागरिकों में दृढ़ निश्चयी, वचनबद्धता, विवेकशीलता, गुरुजनों के सम्मान पी सामाजिक मूल्यों की स्थापना करने में सक्षम है।

*

MS-67

अभिनव नाटक सेतुबन्ध में राष्ट्रभावना

डॉ. अरुणा शर्मा, कुरुक्षेत्र

काव्यरचना का प्रयोजन केवल यशः प्राप्ति और अर्थोपार्जन ही नहीं होता, अपितु सत्काव्य की रचना के द्वारा समाज में राष्ट्रभावना को जागरित करना भी कवि का दायित्व है। अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम अपनी संस्कृति के प्रति सम्मान तथा अपनी मातृभूमि के प्रति गौरव की भावना के आधार पर ही मानव के जीवन की उदात्तता का मूल्याङ्क होता है। केवल अपने लिए तो पशु भी जीवनयापन करते हैं। जिस राष्ट्र के नारिकों में अपने राष्ट्र के प्रति सम्मान नहीं होता, देशप्रेम नहीं होता, मातृभूमि के गौरव की रक्षा का अदम्य भाव नहीं होता, वह राष्ट्र शीघ्र ही परतन्त्रता के पाश में आबद्ध हो जाता है। पराधीन राष्ट्र के नागरिक मान-सम्मान से च्युत होकर आक्रान्ताओं के शोषण का शिकार होते हैं। अतः मानवजीवन में राष्ट्रिय भावना का महत्त्व स्पष्ट ही है। इस महत्त्व को समझते हुए संस्कृत के प्राचीन और अर्वाचीन सभी साहित्यकारों ने अपनी कृतियों के माध्यम से सुधी अध्येताओं के मनोमस्तिष्क में राष्ट्र भावना को उद्दीप्त करने का यथा सम्भव प्रयास किया ह।

राष्ट्रभावनाओं से परिपूर्ण काव्यरचनाओं की परम्परा में गोस्वामी बलभद्र प्रसाद द्वारा प्रणीत, दस अङ्कों में निबद्ध अभिनव नाटक सेतुबन्ध एक प्रशस्य नाट्यकृति है। इसमें रामकथा को वर्तमान परिदृश्य से जोड़कर समाज में व्याप्त आर्थिक सामाजिक, राजनीतिक बुराइयों को उभार कर उन्हें दूर करने के लिए कवि ने प्रेरित किया है। रामकथा पर आधारित इस नाटक की रचना का मुख्य उद्देश्य राष्ट्र में विद्यमान विभिन्न धर्म और संस्कृतियों के मध्य समन्वय का 'सेतुनिर्माण' ही है। कवि विश्व के ऊपर मँडरा रही युद्ध की विभीषिका की ओर सङ्केत करके विश्वबन्धुत्व की भावना और मानवता के अस्तित्व की रक्षा के लिए समस्त राष्ट्र का उद्बोधन करता है। कवि का कथन है कि संस्कृति के एक पुष्प स्तबक में गूंथे हुए अनेक धर्मपुष्प अधिक शोभित होते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सेतुबन्ध नाटक में प्रतिबिम्बित राष्ट्रभावना को उद्घाटित करना ही प्रस्तुत शोधपत्र का प्रतिपाद्य है।

*

MS-68

गढ़वाल के संस्कृत कविः और उनके काव्य

प्रो. जे. के. गोदियाल, उत्तरांचल

विश्व-साहित्य में अपनी निर्विवाद प्राचीनता, महत्ता तथा समृद्ध साहित्यिक-परम्परा के लिए संस्कृत-वाङ्मय सम्पूर्ण विश्व में सुप्रसिद्ध व सर्वोत्तम है। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में जो नवीनतम शोधकार्य व अन्वेषण हुए हैं उने अध्ययन से स्पष्ट है कि संसार की समस्त भाषाओं की उत्पत्ति संस्कृत भाषा से ही हुई है।

भारतवर्ष के समस्त प्रान्तों में संस्कृत-भाषा के अध्ययन-अध्यापन की परम्परा नितान्त प्राचीन है। इस भाषा ने भारतीय जन-जीवन एवं उसके साहित्य को प्राचीन काल से ही अनुप्राणित किया, जिसका गहन प्रभाव भारतीय-मानसिकता पर आज भी परिलक्षित होता है। संस्कृत-लेखन की परम्परा को सृष्टि-रचना से जोड़ना कोई अतिश्योक्ति न होगी। सहस्त्रों वर्षों के उत्थान और पतन की ऐतिहासिक गाथाओं के सूक्ष्म विश्लेषण से यह सुस्पष्ट है कि प्राचीनकाल में समस्त आर्यावर्त की बोलचाल की भाषा संस्कृत थी। इसी कारण भारतीय-जीवन पर इसकी अमिट छाप दृष्टिगोचर होती है। यदि हम भारतीय जन शुद्ध, सात्विक अन्त करण से अपने आचार-विचर, धर्म-दर्शन, संस्कृति-सभ्यता, कला इतिहास तथा वैयक्तिक जीवन का आत्मनिरीक्षण करते हुए उस पर चिन्तन-मनन करें, तो, हमें निःसन्देह यह अनुभूति होती है और की जा सकती है कि समस्त भारतीय लोगों का जीवन संस्कृत और है।

भारतीय जीवन को प्रतिबम्बित करने वाली संस्कृत काव्य-धारा आर्योवर्त में सदैव सर्वत्र समान रूप से प्रवाहित होकर भारतीय जन-जीवन तथा उसके अनुपम साहित्य को सिंचित, पल्लवित एवं पुष्पित करती रही है। उत्तुङ्ग हिमालय के शिखरों से प्रवहणशील अगाध जलध ारा वाली भगवती भागीरथी जिस प्रकार, अनादि काल से, अपने अमृतमय रस से भारत-भूमि को सस्य-सम्पन्न एवं समृद्धिशाली बनाती आयी है उसी प्रकार गढ़वाल में जिसे केदारखण्ड-देवभूमि आदि अनेक नामां से जाना जाता है, काव्य-स्त्रोतस्विनी वैदिक-काल से ही प्रवाहित होती रही है और उसने संस्कृत-वाङ्मय को सदैव समुन्नत किया है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वैदिक काल से लेकर महाभारत काल तक इस प्रदेश में धार्मिक तथा आध्यात्मिक चेतना के अनेक ऐसे प्रेरणादायी केन्द्रों, मठों, विद्यापीठों व आश्रमों का उल्लेख मिलता है जिसमें संस्कृत शिक्षण की व्यवस्था थी।। इन आश्रमों में कई वैदिक एवं पौराणिक ऋषि-मुनियों व तपस्वियों ने साहित्य-साधना करते हुए परम-पुरुषार्थ को प्राप्त किया। उत्तवर्ती काल में इसी परम्परा में भारतीय संस्कृति के आदर्श स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द आदि महात्माओं ने देवभूमि गढ़वाल को साधना केन्द्र के रूप में अपनाया और उनमें कुछ सन्त काव्य-रचना करते हुए पञ्चतत्त्व में यहीं विलीन हो गये। इन आराधकों द्वारा विरचित अधि कांश साहित्य यद्यपि संरक्षण सुविधाओं के अभाव में विनष्ट होता गया, फिर भी, गढ़वाल में संस्कृत-बाङमय की विविध विधाओं पर लिखे गये असंख्य काव्य तथा शस्त्रादि प्रकाशित रूप में आज भी उपलब्ध हैं, जो यहाँ (हिमालय) की सांस्कृतिक, सामाजिक, दार्शनिक, धार्मिक, आध्याम्तिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, साहित्यिक तथा कलात्मक विशेषताओं एवं दीर्घकालीन अमोघ परम्पराओं को प्रकाशित करने की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण तथा उपादेय है। इन महत्त्वपूर्ण किन्तु अप्रसिद्ध ग्रन्थों के अध्ययन से कई ऐसे ऐतिहासिक तथ्य सामने आ सकते हैं जो आज तक अस्पष्ट है और संपूर्ण विश्व में विद्वानों के चर्चा के विषय बने हुए है। आर्यों के मूल स्थान के विषय में जहाँ विश्व भर के विद्वानों में आज भी वैमत्य है वही एक शताब्दी पूर्व गढ़वाल में लिखे गये 'कनकवंश महाकाव्य' में कवि ने ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर इस प्रदेश को आर्यो का मूल स्थान माना है।

गढ़वाल में संस्कृत-वाङ्मय की जो अभिवृद्धि हुई उनमें काव्य, नाटक, ज्योतिष, ध र्मशास्त्र, तन्त्रविद्या, कर्मकाण्ड, आयुर्वेद, स्तोत्र, निबन्ध तथा कोशग्रन्थ प्रमुख है। इन समस्त काव्यों, शास्त्रीय ग्रन्थों एवं उनके रचयिताओं का विस्तृत विवरण देना प्रस्तुत प्रसंग में संभव नहीं है, किन्तु, गढ़वाल में विद्यमान संस्कृत लेखन की परम्परा एवं उसके कतिपय प्रमुख कवियों का संक्षिप्त प्रस्तुत करना ही इस शोधपत्र का मुख्य विषय है।

*

MS-69

डॉ. रामकिशोर मिश्र प्रणीत खण्ड काव्य बालचरितम : एक अवलोकन

डॉ. देवेन्द्र सिंह सोलंकी, मेरठ

श्री रामकिशोर मिश्र द्वारा रचित प्रकृत आत्मपरक खण्डकाव्य 232 छन्दों में प्रणीत हैं जिससे कवि ने अपने पुत्र टीटू की बाल लीलाओं का मनोहारी चित्र उपास्थित किया है। विषय

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वस्तु खण्डकाव्यत्व, भाव पक्ष एवं कलापक्ष के आधार पर खण्डकाव्य वालचरितम एक सिद्ध खण्डकाव्य प्रतीत होता है।

प्रकृत खण्डकाव्य की विषय वस्तु कोई नवीन नहीं है। कवि का जानुपाणी बालक टीटू अपनी विभिन्न बाललीलाओं के द्वारा अपने माता-पिता को प्रमुदित करता है। कवि तथा कविपन्ति के संवाद से काव्य का प्रारम्भ होता है। टीटू की बाललीलाओं को देख-देख कर उसके माता-पिता अतीव प्रफुल्लित होते हैं उपका घुटनों के बस चलना, हंसना, खेलना, माता-पिता की रिझाना सभी को अच्छा लगता हैं बचा ननिहाल में भी रहा है। वहाँ नानी को उसने अपनी बाललीलाओं को प्रभावित किया उसके चरित को देखकर मामा एवं मामी सहित सभी लोग मुग्ध हो जाते हैं। कवि उसे संस्कृतज्ञ बनाना चाहता है। माता उसे बड़ी कठिनाई से सुला पाती है। बच्चे को मच्छर या खटमल के काटने पर माता की चिन्ता हो जाती है।

शिशु अपनी मनोहारी क्रीड़ओं द्वारा अपने पितृत्य फूल सहाय एवं चन्द्रसहाय को भी प्रभावित करता है एवं सन्तुष्ट भी। वह बड़ा होकर विविध प्रकार के खेल करता है जिन्हें देखकर माता-पिता एवं अन्य परिजन अतीव प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। बड़ा होकर बालक टीटू पिता के समान को उठाकर इधर-उधर रखने में सहायता करता ह। मंजीरा आदि वाद्ययन्त्रों को बजाता है। विभिन्न व्यञ्जनों का रसास्वादन करता है। इस प्रकार उसकी अन्यान्य बाललीलाओं का प्रकृत काव्य में समीचीन चित्रण है।

*

MS-70

शूद्रक कालीन राजनीतिक स्थितियाँ

नरेश प्रसाद सिंह, पटना

शूद्रक काल में देश छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था। ज्यादातर राजा स्वेच्छाचारी थे। कहा जाता है कि सुव्यवस्थित राज्य वही होता है जिसका प्रमुख बहुत सुलझा हुआ है और अपनी जनता का सुख शान्ति का ख्याल रखता हो। ऐसा राज्य जिसमें सभी राजदरवारी अपनी-अपनी चलाते है और एक दूसरे की न सुनते हो वह कभी सुसंयत नहीं हो सकता है।

सर्वे यत्र विनेतारः सर्वे पण्डितमानिनः।
सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति तद्वृन्दमवसीदति॥ (प्रकीर्ण)

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्राचीन काल में राज्यों की स्थिति भी ऐसी ही रही है। कभी शासन सूत्र किसी एक सुयोग्य व्यक्ति के हाथ से चलता रहा ठीक रहा। कभी छोटा राज्य भी किसी अयोग्य व्यक्ति के हाथों पड़ गया तो उसमें भी अशान्ति ही रही। यही कारण है कि प्राचीन इतिहास में सम्राटों की शासन व्यवस्था प्रसिद्ध रही है और इसके विपरीत छोटे-छोटे राज्यों के शासक प्रायः असफल रहे हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि मृच्छकटिक काल में राज्य छोटे-छोटे प्रेदशों में विभाजित था। इन प्रदेशों के राजा शासन के सम्बन्ध में पूर्ण स्वतंत्र थे और इसलिए स्वेच्छाचारी होते थे। इसी से देश की राजनीतिक दशा बड़ी डांवाडोल थी। आर्यक ने पालक की हत्या की सम्भवतः इस समय देश में सार्वभौम सम्राट नहीं था। अनेक राजा थे और वे भी शक्तिहीन थे। छोटी-छोटी बातें पर झगड़ते रहते थे शासन प्रबन्ध अच्छा नहीं था। प्रत्येक राज्यकर्मचारी स्वाभिमानी था और अपने-अपने पद का गर्व करता था। वह जब चाहता था अपना कार्य छोड़ कर चल भी देता था। वीरक और चन्दनक के कार्यकलापों से राज्यकर्मचारियों की अवस्था पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

*

MS-71

उन्नीस्वीं शताब्दी से पचाद्वर्ती काल के संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्यस्वरूप

पवन कुमार, इलाहाबाद

उन्नीसवीं शताब्दी से बाद के काल में अनेक संस्कृत काव्यशास्त्रीय-लक्षण-ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है। उनमें प्रतिपादित काव्य लक्षणों में जहाँ एक ओर परम्परा का प्रभाव परिलक्षित होता है, वहीं दूसरी ओर अनेक नये विचारों का उन्मेष भी दिखाई पड़ता है। कतिपय उल्लेखनीय विशेषताये अग्रलिखित है–

19वीं शताब्दी से बाद के काव्यशास्त्रीय आचार्यें के काव्यस्वरूप विषय विचारों से 19 वीं शताब्दी से पश्रचाद्वर्ती संस्कृतकाव्यशास्त्र की अनेक प्रवृत्तियाँ स्पष्ट हो जाती हैं। हरिदास सिद्धान्त 'वागीश' छज्जूराम शास्त्री 'विद्यासागर' ब्रह्मानन्द शर्मा, शिवाजी उपाध्याय, सीताराम चतुर्वेदी, शङ्करदेव 'अवतरे,' राधावल्लभ त्रिपाठी तथा राजेन्द्र मिश्र शब्दार्थ के सहभाव को काव्य-स्वरूप में स्वीकार करते हैं ओर इस प्रकार भामह के 'शब्दार्थो सहितौ काव्यम्' का अनुसरण करने वाली वामन, रुद्रट, कुन्तक, मम्मट, नरसिंह कवि व श्रीकृष्ण शर्मन् आदि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammu. Digitized by S3 Foundation USA

आचार्यों की परम्परा वाले वर्ग में आते हैं। रमाशङ्कर तिवारी ने यद्यपि शब्द को काव्य (शब्दैर्निबद्धा) कहा है, किन्तु वे काव्य में शब्द अथवा वाक्य (अर्थ) में से किसी एक की प्रधानता को मानने के विवाद में नहीं पड़ना चाहते। डॉ. राजेन्द्र मिश्र भी ऐसे किसी विवाद को निस्सार मानते हैं। इस प्रकार आधुनिक युग के ये दो आचार्य प्रकट रूप से शब्द अथवा अर्थ की प्रधानता के विवाद को निस्सार मानकर निरत करते हैं। इसी प्रसङ्ग में इस युग के आचार्यों द्वारा कुछ अभिनव विचारोन्मेष भी हुए हैं, यथा-रेवा प्रसाद ने अर्थज्ञान (अर्थसंवित्ति) को काव्य कहा है। संस्कृतकाव्यशास्त्र की पुरानी परम्परा में विद्वान प्राय 'शब्द' अथवा 'शब्द और अर्थ दोनों को सद्भाव' -इन दो मतवादों के मध्य ही विभाजित रहे हैं। यद्यपि रेवाप्रसाद जी का विचार इटली में सौन्दर्यशास्त्री वेनिडिटो क्रोचे के 'एक्सप्रेशनिज्म' से समानता रखता है, फिर भी परम्परागसंस्कृतकाव्यशास्त्रीय सिद्धातों एवं शब्दावलियों के ठेठ शास्त्रीय प्रसङ्ग में विशुद्धशास्त्रीय ढंग से, इसका अविष्कार श्लाघनीय है। उल्लेखनीय है कि क्रोचे ने भी कला हो सहजानुभूति या सहजज्ञान (INTUTION) माना है।

*

MS-72

पार्थचरितामृतम् में "कर्मयोग" भगवद्गीता के विशेष संदर्भ में

लक्ष्मीकान्त ओझा, दिल्ली

भारतीय विचारधारा प्रारम्भ से ही कर्मवाद की प्रबल समर्थक रही है। सर्वप्रथम ऋग्वेद में हम ऋत का वर्णन पाते हैं ऋत इस जगत् में पाई जाने वाली नैतिक व्यवस्था का नाम है। इस नैतिक व्यवस्था का अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति कर्म करने के लिए स्वतंत्र है। उसे अपने कर्मों के अनुरूप ही फल प्राप्त होता है। वह जैसा बोता है वैस ही काटता है। पं. बह्मदत्तवाग्मी रचित पार्थचरितामृतम् महाकाव्य में कवि ने भागवद्गीता में प्रोक्त कर्मयोग के चिरन्तन तथा पुरातन सिद्धान्त को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में सर्वजन ग्राह्य बनाने हेतु उसे आधुकि भाषिक प्रवृत्तियों जैसे लोकोक्ति, मुहावरा आदि के माध्यम से व्यक्त किया है जिससे वह अत्यधिक स्पृहणीय तथा शीघ्र संवेद्य हो गया है।

पार्थचरितामृतकार भगवत् प्रोक्त चिन्तन-सत्य को उपस्थापित करते हुए अपने महाकाव्य के द्वारा एक नया आयाम प्रस्तुत करते हैं। इसमें सिद्धान्तों की आधुनिक रीति से स्पष्टीकरण के साथ-साथ इसे सरल भाषा तथा प्रमाणों के प्राचुर्य से सुग्राह्य बनाने को भरसक प्रयास किया गया है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सिद्धान्तगत विषयों की अभिवृद्धि महाकवि ने

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यद्यपि नहीं की हो, तथापि इस सनातन सत्य का नितान्त नवीन ढंग से प्रस्तुतीकरण तो निश्चित रूप से इसकी अत्यन्त स्पृहणीय विशेषता है जो वस्तुतः किसी मौलिकता से कर्म नहीं है।

*

MS-73

प्रो. सुषमा कुलश्रेष्ठ-संस्कृत साहित्य को योगदान

डॉ. पुष्पा गुप्ता, दिल्ली

अपने माता-पिता, कुल परिवार के गौरव और सम्मान की अभिवृद्धि करने वाली, बाल्यावस्था से ही संभावित महोदय की सूचित करने वाली, प्रियजनों को साथ लेकर चलने वाली, 'ज्ञाने मौनं, महाजनस्य संसर्गः कस्य नौन्नतिकारकः, बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति, विद्वाँसोऽविकत्थाना भवन्ति' को यथार्थ करने वाली, संस्कृत की सतत सेवा करते हुए सर्वाधिक प्रतिष्ठित, दुष्प्राप्य, सर्वोच्च राष्ट्रपति प्रदत्त 'Certificate of Honour' से सम्मानित, Limca Book of Records में चार बार स्थान प्राप्त करने वाली, अनेकानेक सम्मान अलङ्करण, प्रशस्तिपत्र, पुरस्कारों से मण्डित, Kalidasa Academy of Music and Fine Arts की निदेशिका, परमविदुषी प्रो. सुषमा कुलश्रेष्ठ के विषय में यह कहना कदापि अत्युक्ति नहीं है।

प्रो. सुषमा का जन्म 13 मार्च 1945 को खुर्जा जिले के बुलन्दशहर नगर में हुआ। इन्होंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से B.A. किया, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन से M.A. किया तो D.Phil. की उपाधि इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्राप्त की। Pali Language and Literature में Diploma दिल्ली विश्वविद्यालय से किया। पुराणेतिहासाचार्य की उपाधि सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से प्राप्त की तो D. Litt. की राँची विश्वविद्यालय से। सङ्गीत की Vocal एवं Instrumental दोनों विधाओं में तथा नृत्य में भी सुषमा जी परम प्रवीण हैं।

21 वर्ष की आयु में ही दिल्ली विश्वविद्यालयके दौलत राम महाविद्यालय में प्राध्यापिका के रूप में नियुक्त हुईं। 24 वर्ष की आयु में D.Phil. की उपाधि प्राप्त की तथा 25 वर्ष की आयु में Ph.D. की उपाधि प्राप्त कर चुकी हैं।

संस्कृत साहित्य, कालिदास, कामशास्त्र एवं सङ्गीतशास्त्र में इनकी योग्यता है। राष्ट्रिय और अन्ताराष्ट्रिय संगोष्ठियों में लगभग 200 लेख प्रस्तुत कर चुकीं। लगभग 151 सत्रों की अध्यक्षता भी कर चुकी हैं। सन् 1976 को All India Oriental Conference की कार्यकारिणी में हैं। गत सात वर्षों से अनेक विभागों की Sectional President का पद भी सुशोभित कर

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चुकीं। प्रो. सुषमा कुलश्रेष्ठ के लगभग 75 ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। इतने अधिक ग्रन्थ आज तक किसी भी अन्य विद्वान् अथवा विदुषी द्वारा नहीं लिखे गए हैं। कुछ तो 300 से 700 पृष्ठ तक रहे विशालकाय ग्रन्थ हैं। सुषमा जी के तत्त्वावधान में Kalidasa Academy of Music and Fine Arts की तीन शृङ्खलाओं के अन्तर्गत अनेकानेक ग्रन्थों का प्रकाशन कर रही हे। प्रथम शृङ्खला Erotics in Kalidasa के अन्तर्गत 'नायकनायिकागुणालङ्कार' एवं कामदशारतिभेद यह दो खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। इस शृङ्खला में 10 खण्डों को प्रकाशित करने की भीष्म प्रतिज्ञा सुषमा जी द्वारा की गई है।'

दूसरी शृङ्खलाम्तवजपबं प्दकपं के नाम से है। इसके भी दो खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। कामशास्त्र के एक-एक, दो-दो शब्दों का विश्लेषण करना ही इस शृङ्खला का मुख्य उद्देश्य है।

तीसरी शृङ्खला के अन्तर्गत 13 स्मृति और अभिनन्दन ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा चुका है। गतवर्ष 'Gems of Law and Literature' (श्रीरङ्गनाथश्री:) नामक ग्रन्थ भारत दो के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्रीरङ्गनाथमिश्र जी के 80 वें जन्मोत्सव के शुभावसर पर प्रकाशित किया गया। सुषमा जी के सम्मान में इसके गुरुजी प्रो. जोनी और पद्मश्री सुमति मुटाटकर द्वारा रचित 'सुषमाकलाश्री:' अनुपम अभिनन्दन ग्रन्थ है।

सुषमा जी द्वारा सम्मादित प्रत्येक ग्रन्थ किसी एक ऐसे विशेष विषय से सम्बद्ध है जिस पर पहले संसार के किसी भी कोने में कार्य नहीं किया गया। ग्रन्थ में वर्णित विषय के अनुरूप ही उस ग्रन्थ का नामकरण हिन्दी और आँग्ल दोनों ही भाषाओं में किया गया है। 'श्री' तथा 'Gems' ये दो सुषमा जी के प्रिय पद हैं।

समस्त परिवार सहित सुख समृद्धि स्वास्थ्य एवं ऐश्वर्य सम्पन्न सुषमा जी शतायु प्राप्त करें उनकी साधना निर्झरी अप्रतिहत, अनवतर, अबाधगति से निरन्तर प्रवाहित होती रहे, उनकी यश: पताका चहुँ दिशा में लहराती रहे, परमपिता परमेश्वर से यह प्रार्थना है।

*

MS-74

पण्डित 'निरंकुश' का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व समीक्षण सारांश

श्रीमती प्रभा झा, मुजफ्फरपुर

संस्कृत भारती की सेवा मं मिथिलास्थ विद्वानों में स्व. आद्यानाथ झा 'निरंकुश' का नाम आदर के साथ स्मरणीय है। मैथिली भाषा के प्रसिद्ध कवि पण्डित 'निरकुश' संस्कृत के अनेक

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्फुटश्लोकों के रचयिता हैं, किन्तु चण्डिका चरितम् उनकी प्रकाशित अनुपम कृति है, जिसमें मुंगेर के चण्डी स्थान में प्रसिद्ध भगवती चण्डिका के चरित का विशद विवरण प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत लेख में कवि की उसी रचना की समीक्षा की गई है।

*

MS-75

साहित्य वारिधि प्रो. कैलाशनाथ द्विवेदी का संस्कृत गद्य साहित्य -एक समीक्षा

गीताराम शर्मा, राजस्थान

प्रस्तुत शोध पत्र में साहित्य वारिधि प्रो. कैलाशनाथ द्विवेदी के गद्य साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। शोध पत्र के प्रथम खण्ड में डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी का पारिवारिक परिचय शैक्षिक योग्यताओं की चर्चा की गई है। 11 जनवरी 1942 को उत्तर प्रदेश के कानपूर देहात जिले के वैना गांव में पण्डित-सुदर्शन लाल द्विवेदी तथा श्रीमती सुखरानी देवी के द्वितयी पुत्र के रूप में जन्में डॉ. द्विवेदी ने पीएच.डी., डी. लिट्. के साथ-साथ साहित्याचार्य साहित्यरन्त जैसी उपाधियाँ प्राप्त की हें द्वितीय खण्ड के अन्तर्गत डॉ. द्विवेदी के समस्त कृतित्व का परिचय दिया गया है। जिससे ज्ञात होता है कि इनकी लगभग तीस कृतियाँ अध्यावद्य प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी संस्कृत काव्य कृतियों में शाकुन्तलीयम, गुरूमहात्मशतकम्, देवकलीदर्शनम्, काव्यमाला प्रमुख हैं। नाटकों का संग्रह नाट्यामृत तथा संस्कृत कथा साहित्य में जिन कथाओं की चर्चा हुई है उनमें महुर्तम, जीवनम् अपराजितम्, वादिनाहितम्, निर्लोभी, भौतिकतायासीमा प्रमुख हैं। लद्यु कथाओं में तत्वदर्शी, "नेता वा अभिनेता वा उल्लेखनीय हैं। समीक्षात्मक ग्रन्थों में अब्दुलरहीमखानखाना पुरस्कार प्राप्त कृति लेखान्जलि, कालिदासीयम, अभिनवचिन्तम् तथा मृच्छकटिक परिशीलनम् प्रमुख हैं।

आपके गद्य साहित्य में भारत वर्ष की ऋतम्भरा प्रज्ञा के योग से भारतीयों की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक तथा पर्यावरणीय चेतना को आन्दोलनात्मक विमर्श के साथ सार्थक तथ आस्थामयी अभिव्यक्ति मिली है।

अधिकाशं गद्य का मूल स्त्रोत प्राच्य विद्या विषयक ग्रन्थ ही हैं फिर भी उन्हें नवीनतम तथा उपयोगी संदर्भों के सापेष उपयोग करने की प्रवृत्ति ज्ञान को सामायिक बनाने की लेखकीय प्रतिबद्धता की ध्योतक है। गहरी शोध दृष्टि, विराट, भावभूमि, शैली का निजीपन, मिथ्या ध रणाओं का खण्डन आपके गद्य में विशेष रूप से उभरा है। शैली की दृष्टि से भाषा में शब्द

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लाघव, छोटे वाक्य, अल्पसमास, शास्त्रीयता के अधिक बन्धन से मुक्ति जैसी प्रमुख विशेषताएँ हैं।

*

MS-76

कालिदास के रूपकों का शिल्प विधानः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

आदित्य नाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर

कालिदास के रूपकों का शिल्प-विधान : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन एक द्विषयक शोध-प्रबन्ध के विषय-वस्तु पर कालिदास के नाट्य-सहित्य का अभिनव दृष्टि से समीक्षण प्रस्तुत किया गया है प्रबन्ध में नाट्य-शिल्प के रूप में नाट्य की जो विशषताएँ परिलक्षित हुई है? उन्हें आकलित करने का प्रयास हुआ है। नाट्य-शिल्पों के इस विशालता के परिप्रेक्ष्य में शोध-प्रबन्ध का विवेच्य विषय कालिदास के रूपकों का शिल्प विधान है। कालिदास के ग्रन्थों के गंभीर पर्यवेक्षण से सह निष्कर्ष निकलता है कि वे अपने काल के युग-पुरुष थे। उनकी रचनाओं में तत्कालीन युग-चेतना मूर्त्त-रूप में अवतरित हुई है। कालिदास की कृतियाँ निश्चय ही कालजयी कृतियाँ है, क्योंकि इसमें उन्होंने जीवन के विविध पक्षों का इतना सूक्ष्म एवं मर्मस्पर्शी विवेचन किया है; जो अन्यत्र दुर्लभ है। इसके नाटक के सन्दर्भ में यह उक्ति आज भी विदग्धों की वाणी से निःसृत होती रहती है।

"काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला"।

इस प्रबन्ध में प्रथमत इनके जीवन वृत्त से अवगत कराते हुए इनके जन्मस्थान को ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों के आधारों पर विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। तत्पश्चात् संस्कृत रूपकों का शिल्प-विधान एवं कालिदास के रूपकों का शिल्प विधान को विवेचित किया गया है। अन्त में नाटक के कथा-वस्तु तथा अन्य विषयों पर विहंगम दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कालिदास के रूपक आज भी उतनी ही प्रासङ्गिक हैं जितनी प्राचीन समय में थी। अत एव इनका नाटक परवर्त्ती कवियों के लिए उपजीव्य के रूप में हैं।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-77

रघुकुल कथा वल्ली महाकाव्य का वस्तु वैभव

ज्योत्सना त्रिपाठी, सुल्तानपुर

डॉ. कृपाराम त्रिपाठी अभिरा रचित सस्कृत महाकाव्य रघुकुल कथा वल्ली की वस्तु अत्यन्त नवीन, मौलिकता तथा ऐतिहासिकता का माणिकाञ्चन संयोग एवं ललित है। रघुवंशीय महाराज अज की पत्नी इन्दूमती के आकस्मिक निधन के पश्चात बालक दशरथ की मातृहीनता के परिमार्जनार्थ कवि प्रतिभप्रसूत इन्दुमती की अनुजा धीमती महाराज की पत्नी बनकर बालक दशरथ का पालन करती है और इस अवधि में राजारानी दश वर्ष तक ब्रह्मचार्य का पालन करने के बाद अवधूत महाराज दत्तात्रेय के आशीर्वाद से दूसरा पुत्र रत्न 'द्युरथ' प्राप्त करते है जो दक्षिण कोसल में नासिक को अपनी राजधानी बनाकर दक्षिण कोसल को सुख समृद्धि तथा अपने प्रशासनिक गुणों से सम्पन्न करते हैं। महाराज घर से राजसभा में प्रजाकार्य करते हुए अचानक पञ्चत्व को प्राप्त हो जाते हैं। उस समय उनके पुत्र सुधर्मा गुरु आश्रम में अध्ययनरत बालक थे। इसलिए माता रानी पद्मा शासन की धुरी अपने हाथों में सम्भालती है। उनकी अराजक तत्वों द्वारा हत्या हो जाने के कारण दक्षिण कोसल अनाथ हो जाता है। बालक सुधर्मा तपस्या करने वन चले जाते हैं जो बाद में राजर्षि माण्डकर्णि (शतकर्णि -रघुवंश) होते हैं श्रीराम बनवास से लौटते है तब उनको दर्शन देकर अप्सराओं के बन्धन से मुक्त करते हैं।

*

MS-78

रघुकुल कथावल्ली महाकाव्य में स्त्री प्रशासन का ऐतिहासिक विश्लेषण

दीप्ति त्रिपाठी, वाराणसी

इस महाकाव्य में रचनाकार ने रघुवंश की कथा का उपयोग तो किया है किन्तु इसमें एक लम्बी कथावस्तु नये सिरे से जोड़ी है जिसका उल्लेख अन्पत्र नहीं मिलता। महाराज अज के एक पुत्र दशरथ की कथा लोकविदित है कि उनके दूसरे पुत्र घुरथ का कहीं वर्णन नहीं मिलता है जबकि इस संस्कृत महाकावव्य में पन्द्रह सर्गो में उनकी ही कथा का वर्णन किया गया है। इसमें कवि ने लिखा है कि महाराज घुरथ दक्षिण कोसल के राजा थे तथा उनके

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आकस्मिक निधान के बाद उनकी रानी महारानी पद्मा ने कई वर्षों तक शासन किया और राज्य को समृद्ध तथा सुरक्षित रखा। अन्त में उनकी असयम में हत्या हुई तथा दक्षिण कोसल में अराजकता व्याप्त हो गयी। इसी अराजकता की स्थिति में राम को वनवास हुआ और राम ने दक्षिण कौसल मे शान्ति व्यवथा तथा न्याय की स्थापना की। यह समस्या कथावस्तु ऐतिहासिक दृष्टि से परीक्षणीय लगता है।

*

MS-79

वाल्मीकि आश्रम की सीता

निर्मला त्रिपाठी, बलरामपुर

रघुकुल कथावल्ली संस्कृत महाकाव्य के अन्तिम इक्कीसवें सर्ग में महर्षि वाल्मीकि के आश्रम का जो वर्णन किया गया है वह अनेक दृष्टियों से विशिष्ट हृदयावर्जक तथा मौलिक एवं नवीन है। सीता के वनवास की कथा को जो नवता इस महाकाव्य में प्रदान की गई है वह अपने आप में एक नई सृष्टि है। "यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते" की चरितार्थता अत्यन्तमनोरम बन पड़ी है कृपाराम त्रिपाठी "अभिराम" की कल्पना ने कल्पलता का रूप प्राप्त कर लिया है तथा नूतन सृष्टि का एक नया लोक ही बना डाला है।

तामाश्रमे समुपलभ्य निजेमहर्षि
वाल्मीकिरात्म कविताभिव विस्मितोऽभूत
प्रीत्यादरेण च मुद्रा च स गौरवेण,
श्रद्धान्वितोऽपि समुपास्त पितेव देवीम्॥ रघुकुलकथावल्ली 21-49

*

MS-80

डॉ. राम किशोर मिश्र प्रणीत संस्कृत रूपकों में नारी –एक अध्ययन

डॉ. रुचि गुप्ता, बड़ौत

श्री मिश्र जी प्रणीत सत्रह संस्कृत रूपकों मं 32 नारी पात्र हैं। मिश्र जी ने नारी-पात्रों के विभिन्न पक्षों का गहन व सूक्ष्म चित्रण किया है। इन रूपकों में नारी को महनीय पद प्रदान

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

किया गया है। भारतीय परिवेश में नारी के प्राय तीन रूप देखने को मिलते है–पुत्री, पत्नी तथा माता। नारी के ये तीनों ही रूप अति उदात्त रूप में हमारे समक्ष आते हैं। शर्मिष्ठा, विद्योत्तमा, माधवी, भगवती आदि सभी आदर्श पुत्री-पत्नियाँ हैं।

नारी के इन तीन रूपों के अतिरिक्त उनके अन्य रूपों का भी सुन्दर दिग्दर्शन दृष्टिगोचन होता है। मिश्र जी ने ऐतिहासिक रूपकों में उन्हें स्वतन्त्रता सेनानी के रूप में दिखाया गया है योगेश्वरी, कनकलता, धतूरी देवी आदि नारियाँ भारत माता को स्वतन्त्र कराने के लिये अपने प्राण न्योछावर करती है।

मिश्र जी के वर्तमान समाज को आधार बनाकर रचे गये रूपकों में नारी की वर्तमान दशा को चित्रित किया गया है। इस प्रकार मिश्र जी के रूपकों में नारी का सूक्ष्म चित्रण मिलता है।

*

MS-81

राजस्थान के संस्कृत काव्यशास्त्रीय आचार्यो का समान्य परिचय

गोयल नूतन, राजस्थान

ऐश्वर्य के साथ पाण्डित से विभूषित राजस्थान प्रदेश के प्रत्येक नगर में अनेक विद्वान और महाकवियों की रचनाओं में न केवल महान ही उद्भत हुयें वरन् काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ रूपीरत्न भी प्रकाशित हुयें हैं। राजस्थान के काव्यशास्त्रीय आचार्य निम्न हैं।

1. आचार्य विद्याराम (कोटा)-रसदीर्धिका
2. मौनी कृष्ण भट्ट (जयपुर)-वृत्तिदीपिका
3. भीमसेन दीक्षित (जयपुर) –अलंकारस्थितिः
4. सीतारामभट्ट पर्वणीकार (जयपुर)–कावयप्रकाशसारः, काव्यतत्वप्राशः, साहित्यसारः आदि
5. मुरारि दान चरण (जोधपुर) –यशवन्तयशोभूषणम्
6. गिरिधारलाल व्यास (उदयपुर)–अभिनवकाव्यप्रकाशः, काव्यसुधाकरः (चन्द्रालोकवृत्तिरूप)

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

7. अम्बिकादत्त व्यास (जयपुर)–साहित्यनलिनी

8. हरिनारायण शास्त्री दाधीच (जयपुर–अलंकारकौतुकम्, अलंकारलीला

9. भट्ट् श्री मथुरानाथ शास्त्री (जयपुर)–काव्यकलारहस्यः

10. श्री ब्रह्मानन्द शर्मा (श्रीगंगानगर)–वस्वलंकारदर्शनम्, तत्वशतकम्, रसालोचनम्, अभिनवरसमीमांसा, काव्यसत्यालोकः

11. नारायणभट्ट पर्वणीकर (जयपुर)–काव्यभूषणतकम्

12. नारायण शास्त्री (उदयपुर) –काव्यमीमांसा विमर्शः

13. लक्ष्मी नारायण पुरोहित (उदयपुर)–अलंकार सुधानिधिः

14. सुधाकर महाशब्दे (जयपुर)–साहित्यसार संग्रहः

15. रामेश्वर पौण्डरीक (जयपुर)– रससिन्धुः

उक्त कावयशास्त्र मर्मज्ञों ने काव्यशास्त्रकारों ने केवल अपने जन्म से अपितु अपने कार्यक्षेत्र से राजस्थान की भूमि को अलंकृत किया। राजस्थान में काव्यशास्त्रकारों ने भले ही जन्म न लिया हो लेकिन उन्होंने अपने कार्यक्षेत्र से अथवा अपनी रचनाओं का प्रकाशन, सम्पादन आदि राजस्थान राज्य में ही किया हैं।

*

MS-82

डॉक्टर हरिनारायणदीक्षितविरचित 'राधाचरितम्'' एक समीक्षत्मक दृष्टि

डॉ, किरन टण्डन, नैनीताल

डॉक्टर दीक्षित द्वारा रचित 'राधाचरितम्' महाकाव्य का कथानक भगवान् श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति श्री राधाजी के प्रेरक एवं कर्मठ जीवन पर आधारित है; भारतीयकावयशास्त्रीय मन्दण्डों के निष्कर्ष पर परखे जाने पर अत्युत्कृष्ट कोटि के महाकाव्य की श्रेणी में आता है; इसकी कथावस्तु 2349 पद्यों एवं बाईस सर्गो में निबद्ध है; इसका शुभारम्भ श्रीकृष्ण एवं राध ाजी के नामोल्लेख सहित वस्तुनिर्देशपूर्वक हुआ है; इसका कथानक मुख्यरूप से महर्षि वेदव्याप्रणीत ब्रह्मवैदर्तपुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड एवं गर्गाचार्यप्रणीत गर्गसंहिता में वर्णित राधाकृष्ण से सम्बद्ध

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वृत्तान्तों पर आधारित है; इसमें धर्म, अर्थ, एवं मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि का वर्णन है; इसके नायक धर्मसंस्थापनार्थ अवतार लेने वाले भगवान श्रीकृष्ण हैं इसकी नायिका व्रजमण्डल के जनमानस में निवास करने वाली श्रीराधाजी है; इसमें व्रजमण्डल द्वारका, समस्त–पंचक, यमुना, गोवर्धनपर्वत, समुद्र, तीर्थयात्रा, वसन्तऋतु आदि का वर्णन है; वियोग शृंगार, वत्सल, अद्‌भुत, शान्तादिरसों के परिपाक से परिपुष्ट हुआ भक्तिरय इसका अंगीरस है; इसमें पंचसन्धियों का निर्वाह भी किया गया है; इसमें नियमानुसार अनुष्टुप्, आर्या, उपजाति, वंशस्थ, द्रुतलिम्बित, मन्दाक्रान्ता आदि प्रचलित छन्द प्रयुक्त हुए हैं; इसको अनुप्रास, यमक, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, परिसंख्या, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यासादि अलंकारो से सजाया गया है; काव्य के माध्यम से कर्महीनों और आलसियों की निन्दा की गई है, कर्मयोग, सदाचार धर्म के प्रति आस्था, स्त्री–पुरुष में समानता, प्रजाजनों एवं कनिष्ठों के प्रति वत्सलता, ईश्वर–भक्ति, अवतारवाद, आदि शिक्षाप्रद बातें प्रस्तुत हुई हैं। इसमें वर्णित भारतीय संस्कृति, भारतीय सभ्यता की रक्षा–सुरक्षा के साथ–साथ देशभक्ति की शिक्षा भी हम सब भारतवासियों को प्रेरणा देने वाली है।

*

MS-83

मेघदूत में पर्यावरण की वैज्ञानिकता

साधना मिश्रा, लखनऊ

इसी प्रकार से महाकवि कालिदास ने मेघदूत खण्डकाव्य में विन्ध्य पर्वत से लेकर कैलाश और मानसरोवर के ऊपर स्थित अलका पुरी पर्यन्त पृथ्वी मण्डल का यथातथ्य चित्रण प्रस्तुत किया है। इस मार्ग में पड़ने वाले सुन्दर स्थानों जैसे–नदियों विस्तृत भू–भागों पर्वतों तथा वनों आदि का सांगोंपांग चित्रण मिलता है। विन्ध्य पर्वत माला के विविध क्षेत्रों का वर्णन अत्यन्त वैज्ञानिक है। इस खण्ड काव्य में विभिन्न स्थानों कवि के अत्यन्त मनोहारी चित्रों का वर्णन प्रस्तुत किया है। प्रकृति के विभिन्न पदार्थों का स्वरूप कल्पना से निखर उठा है अलका तथा यक्ष पत्नी ये दोनों कल्पना की रश्मियों से भास्वर हो उठी हैं इस खण्डन काव्य में कवि ने प्रकृति और पर्यावरण का बहुत ही सुन्दर दृश्य अंकित कर दिया है।

मेघदूत में उपमानों का प्रयोग काव्यात्माकता की दृष्टि से है तथापि उपमानों के माध्यमों से वैज्ञानिकता पूर्वक मेघ के मार्ग स्थालों का पर्यावरण परक सुन्दर समायोजन किया गया है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-84

सतीप्रथा का साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्य

डॉ. संजय कुमार, अरविन्द कमार, पटना

भारतीय सामाजिक इतिहास में सती प्रथा एक महत्वपूर्ण अध्याय है। विधवाओं का सती अर्थात् पति की चिता पर जलकर भस्म होना, मानव समाज की पुरातन चिंतन एवं अंध विश्वासयुक्त कृत्यों की साक्षी रही है। सती प्रथा से संबंधित साहित्य एवं पुरातात्विक स्त्रोत तो कुछ मिलते है लेकिन ऐसा लगता है कि समाज में यह अनिर्दय कभी नही रहा था। खासकर यह देश काल और पात्र से प्रभावित रहा है। संगोपांग अध्ययन करने पर भी स्पष्ट होता है कि समाज के पितृसत्तात्मक होने के कारण महिलाओं को प्रताड़ित किया जाता रहा है। जहाँ एक ओर उसे जननजी बताया जाता है, देवियों की श्रेणी में रखा जाता है और न मालूम किन किताबी और सैद्धांतिक भाषाओं से अभिभूषित किया जाता है। किन्तु युग-युगिन समाज में नारी प्रताड़ित ही होती रही है। ऐसा नहीं होता तो यह प्रथा पुरूषों में भी लागू होते किन्तु समाज एक पक्षीय निर्णय लेती रही है। धीरे-धीरे उसमें बदलाव हो रहा है। महिलाएँ शिक्षित हो रही है और यह प्रथा समाप्त हो रही है।

*

MS-85

मृगया: आधुनिकता की आम्रमञ्जरी

प्रो. डॉ. सी. बी. बालस, गुजरात

डॉ. हर्षदेव माधव ऐसी ही आधुनिकता के रंगो से रंगे हुए कवि है। उनकी कीर्तिकौमुदी गुजरात की सीमाओं को लांघकर पूरे भारत में फैल रही है। 'मृगया' काव्यसंग्रह के लिए उनको कोलकत्ता से 'कल्पवल्ली' नामक प्रतिष्ठित पुरस्कार प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत शोधपत्र में मैंने 'मृगया' काव्यसंग्रह की कविताओं में दिखाई देनेवाली 'आधुनिकता' को स्पष्ट करने का नम्र प्रयास किया है।

'मृगया' संस्कृत साहित्य की तरोताजा कृति है जिसकी प्रत्येक कविता में आधुनिकता का स्वर गूंजता है। इसलिए मैंने इस शोधपत्र में 'मृगया' की कविताओं को 'आधुनिकता की आम्रमञ्जरी' का रूपक दिया है। जिस प्रकार आम्रमञ्जरी अपने अभिनव रूप एवं मादक खुश्बू से सब को प्रसन्नता से भर देती है ठीक उसी प्रकार 'मृगया' की कविताओं ने भी संस्कृत

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पाठक, भावक, विद्वान एवं विवेचक सभी को प्रभाविक करके प्रसन्न कर दिया है। 'मृगया' में कवि का दृष्टिकोण प्रतीकात्मक है। यहाँ 'मृग' एक डरपोक-बेबस-खिन्न-हताश-मजबूर 'मानव' का प्रतीक है, और मृगया की क्रिया आतंकवाद, प्रदूषण, युद्ध एवं यांत्रिक जीवन का प्रतीक है। प्रसिद्ध विवेचक डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, डॉ. जगन्नाथ पाठक, डॉ. वासुदेव पाठक आदि अपने विवेचन ग्रंथों में हर्षदेव की कविताओं का उदाहरण देकर 'संस्कृत कविता में आधुनिकता' समझाते है इस से बड़ी बात ओर क्या हो सकती है।

*

MS-86

कन्नड से हिन्दी में अनुदित काव्यः एक अनुशीलन

डॉ. भारती हिरेमठ

'श्री रामायणदर्शनम्' कुवेंपु की श्रेष्ठ रचना है। कुवेंपु को कई पुरस्कार 'श्री रामायणदर्शनम्' से प्राप्त हैं। 'केंन्द्रीय साहित्य अकादमी' का पुरस्कार, 'भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार' तथा कर्नाटक सरकार के द्वारा संस्थापित 'पंप पुरस्कार' इनसे सम्मानित होने को सौभाय कुवेंतु जी को मिला है। 'श्री रामायण दर्शनम्' का इसका अनुवाद प्रधान गुरुदत्त जी ने किया है। इसके लिए उन्हें भी 50 हजार का पुरस्कार केंद्रीय हिंदी निदेशालय से प्राप्त है। 'महाकाव्य की रचना का युग समाप्त हो गया' यह धारणा जब बलवती हो रही थी, ऐसे समय में 'श्रीरामायणदर्शनम्' की रचना ने सबको चौंका दिया। पारंपरिक विचारधारा के साथ समकालीन विचारों एवं मनोधर्म के मेल को 'श्री रामायणदर्शनम्' में देख सकते हं, इसमें नये दर्शन को आत्मसात किया गया है।

*

MS-87

महाभारत में वर्णित कथावस्तु के आलोक में वेणीसंहार की कथावस्तु कानाटकीय दृष्टि से मूल्यांकन

डॉ. श्रीमती मीना शुक्ला, राँची

भट्टनाराण कृत वेणीसंहार रूपक का प्रथम भेद 'नाटक' है, अतः इसकी मूल कथा की आत्मा में कवि परिवर्तन नहीं कर सकते हैं, किन्तु उन्होंने जो परिवर्तन किए हैं उनके

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कारण कथा में मौलिकता भी बनी रहती है और साथ ही साथ कृति में नाटकीयता भी बढ़ जाती है। कवि ने वस्तु नेता और रस तीनों ही दृष्टियों से अपेक्षितं परिवर्तन किया है, किन्तु कथा-वस्तु के रूप में जो उन्होंने अपन वैशिष्ठय का प्रदश्नन किया है वह कथानक को अत्यधिक रोचक और ग्रह बना डालता है। दृष्टान्त के रूप में दुर्योधन के द्वारा द्रौपदी को अपनी जँघा पर बैठने का प्रस्ताव से बौखलाए हुए भी का कालान्तर में उसकी जँघा को तोड़ने की जो प्रतिज्ञा महाभार में है उसमें सामान्य परिवर्तन करते हुए नाटककार ने यह दिखाया है कि भीम ने दुर्योधन की जँघा को तोड़कर उसके खून से द्रोपदी की चोटी को सँवारने की प्रतिज्ञा की है। इस कथानक के चलते नाटक की नाटकीयता वर्धित हुई है। ऐसे ही परिवर्तनों का नाटकीय मूल्यांकन प्रस्तुत शोध-पत्र में किया गया है।

*

MS-88

संस्कृत महाकाव्यों में रामकथा

डॉ. ओरंगजी दुबे, पटना

संस्कृत साहित्य में रामकथा का सर्वप्रथम बीजारोपण आदिकवि बाल्मीकि ने अपने रामायाण में ही किया है। राम जैसे सर्वश्रेष्ठ राजा के जीवन वृतान्त का वर्णन करके उन्होंने परवर्ती ग्रन्थकारों को पूँजी दे डाली है। जिस पूँजी का सदुपयोग करके विभिन्न उद्भद विद्वानों ने अनेक ग्रन्थ की रचना की है। सभी रामायणों एवं ग्रन्थों के समय एवं स्थिति के अनुसार इसके कथानकों में परिवर्तन करके अनेक क्षेपक छोड़ दिये गये जिसके फल स्वरूप अनेक ग्रन्थों का निर्माण सम्भव हो सका।

रामकता सम्बन्धी प्राचीन महाकाव्यों के कथानकों में कोई विशेष परिवर्तन प्राप्त नहीं होता है किन्तु वाल्मीकि रामायण की अपेक्षा कहीं-कहीं शृंगार को अधिक स्थान स्थान दिया गया है। प्रारम्भ में रामकथा सम्बन्धी महाकाव्योंका अभाव था लेकिन रामकथा की लोकप्रियता बढ़ने के कारण अनेक महाकाव्यों नाटकों आदि को निर्माण होने लगा।

कविकुलशिरोमणि के काव्यों में वाल्मीकि शैली का उत्कर्ष मिलता है जिसके आधार पर कविरसराज से बढ़कर रामचरण का भक्त शायद ही कोई दुसरा कवि मिले।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-88A

स्व. डॉ.ग.बा.पलसुढेजी का संस्कृत साहित्य को योगदान

आशा गुरजार, पुणे

स्व. डॉ. गजानन बालकृष्ण पकसुलजी पूना के जानेमाने वैयाकरणों मे एक अनोखे विद्वान थे जिनका आधुनिक भाषाशास्त्र का गहरा अध्ययन उनकी संशोधन वृत्री को एक नया परिणाम देती थी। प्राय: संस्कृत के प्रचारक प्रेमी संस्कृत ललित वाङ्मय तो लिखते है लेकिन संशोधन से अध्ययन से दूर रहते हैं। संशोधन होते हुए भी उच्च कोटीके संस्कृत लेखक रहे हैं डॉ. पकसुते जी। कावय लिखने वाले प्राय: नाटकदि विधाओं का प्रणयन करते नहीं दिखाई देते। लेकिन अनुवाद काव्य, अनूदित नाट, स्वतंत्र, नाटक, स्वतंत्र महाकाव्य, चरित्र ग्रंथ सब विधाओं में आपने लेखकन किया है। 'भारताणी के पाक्षिकके संपादकके नाते आपने संपादीय से लेकर विज्ञापनों के अनुवादक विविध विधाओं में लेखन किया।

*

MS-89

गजल संविधान पर 'मत्तवारणीं

डॉ. रामविनय सिंह, देहरादून 738

सन्देह नहीं कि गजल का अन्तर्मसृण तत्त्व संस्कृत के कवियों को भी अपनी ओर आकृष्ट करने में सफल हुआ। परिणामत: गजल के शिल्प संविधान में युगधर्म का अंकन कर संस्कृत के मनीषियों ने एक अभिनव कार्य किया पं. गोपाल उपासनी पं. पञ्चानन तकरत्न ने इस विद्या में प्राथमिक प्रयोग किये जिसे भट्टमयुरानाम शास्त्री 'मञ्जुनाथ' ने अत्यन्त सलीके से सँवारा और कलान्तर में आचायं जानकी वल्लभ शास्त्री, आचार्य बच्चूलाल अवस्थी, डॉ. जगन्नाथ पाठक, डॉ. राजेन्द्र मश्रि, डॉ. इच्छाराम द्विवदी 'प्रणव' डॉ. जसादेनप्रसाद पाण्डेय मणि डॉ. विध्येश्वरी प्रसाद मिश्र प्रभृति सुकवियों ने अपनी कव्य प्रतिभा से सज्जित किया।

अवांचीन युग में गजल लेखन में प्रो. राजेन्द्र मिश्र का स्थान महनीय है। उन्होंनें इस विद्या में अपनी रचनात्मक उर्वरा शक्ति से नितनूतन अभिव्यक्ति द्वारा संस्कृत वाङ्मय को समृद्ध किया है। प्रो. मिश्र की 'मत्तवारणी' इस विद्या की हृद्य कृति है, जो मेरे शोधपत्र का विवेच्य विषय है। मैंने अपने शोधपत्र में गजल के उन समस्त मानकों के आधार पर इस कृति को करने का प्रयास किया जो गजल के लिए अपेक्षित है। विशेष विवेचना शोध पत्र में होगी।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-89A

संस्कृत साहित्य में वर्णित दुर्योधन-एक व्यक्तित्त्व

अनुराधा सिंह, वाराणसी

'दुर्योधन' के व्यक्तित्व से सम्बन्धित संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों में मुख्य रूप से 'महाभारत' को ही प्रमुखता प्रदान किया जाता है, चुँकि संस्कृत-साहित्य में प्राप्त सारे ग्रन्थ महाभारत के ही उपजीव्य रूप है परन्तु फिर भी भास कृत 'पंचरात्र' उरूभड़म् 'दूतवाक्य' भारवि कृत 'किरातार्जुनीयम्' भट्टनारायण कृत 'वेणीसंहार' आदि नाटकों में इसके चरित्र को उत्कर्ष दिखाया गया है।

'दुर्योधन' इस शब्द को सुनते ही सामान्य जन के मन में नाना प्रकार की भ्रान्तियाँ उत्पन्न होती है, और वें उसके जीवन के केवल एक पक्ष को ही उसका सम्पूर्ण जीवन मान उसके चरित्र को तिरस्कार भरी दृष्टि से देखते हैं परन्तु प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में सबल एवं दुर्बल दोनों ही पक्ष होते हैं। अतः दुर्योधन के चरित्र में भी निम्न विशेषतायें प्राप्त होती हैं।

1. महाभारत में प्राप्त दुर्योधन का चारित्रिक स्वरूपः

1. दुर्धष एवं निर्भिक योद्धा 2. उत्तम मित्र 3. भातृ एवं बन्धु प्रेमी 4. उत्कृष्ट क्षत्रियोंचित तेज 5. कुशल राजनीतिज्ञ 6. साहसी 7. दृढ़निश्चयी 9. लक्ष्मीवान 10. सैन्य सवंचालन का प्रखर क्षमता 11. चक्रवर्ती सम्राट 11. गदायुद्ध का विशेष ज्ञाता 12. पत्नी के प्रति श्रद्धावान 13. अपने अंत पर संतोष, आदि। 2. महाभारताश्रित ग्रन्थों से प्राप्त दुर्योधन का चारित्रिक स्वरूप– 'पचरात्र' एवं 'उरूभङू' में दुर्योधन का चित्रण एक सत्यसंध उदात्त नायक के रूप में हुआ है जो अपनी जिहता को अतीत की काथा मानता है। -वेणीसंहार' में स्वाभिमानी क्षत्रिय, बन्धुप्रेमी, कुश्ल राजनीज्ञि, शास्त्र ज्ञाता, उत्तम पिता, मातृभक्त, आदि 'किरातार्जुनीयम्' में भी वनेचर ने चक्रवर्ती सम्राट आदि अनेक रूपों का वर्णन किया है।

*

MS-90

चम्पूरामायण में कलात्मक सौन्दर्य

श्रीमती नीलिमा चौधरी, कानपुर

रामकथा की अत्यन्त प्राचीन और परिपुष्टतम् काव्य परम्परा देखने को मिलती है। इस परम्परा में भोजराज सार्वभौम तथा लक्ष्मणसूरि की संयुक्त रचना 'चम्पूरामायणम्' एक महत्त्वपूर्ण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृति है। 'चम्पू' शब्द गद्य औ पद्य की मिली जुली रचना के लिए प्रयोग किया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि भोजराज सार्वभौम तथा लक्ष्मणसूरि के संयुक्त प्रयास से महर्षि वाल्मीकि द्वारा प्रणीत् आदिकाव्य 'रमायण' की कथा ही यहाँ पर काव्य का विषय है। जहाँ वाल्मीकि की रामायण को समीक्षको ने स्वाभाविक रूप से काव्य के रूप में रूप में घटित रचना (सिरस) स्वीकार किया, वहीं बाद में कवियों ने काव्यात्मक कलाओं को दृष्टि में रखते हुए अपने ग्रन्थों की रचना की आलोच्य काव्य ग्रन्थ 'चम्पूरामाणम्' भी इसी प्रकार की कलात्मक रचना के रूप में निर्मित ग्रन्थ है। गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते।-साहित्यदर्पण -6/336 इसके अनुसार गद्य और पद्य दोनों प्रकार की रचना होने पर चम्पूसंज्ञक काव्यकला को पूर्णता प्राप्त होती है। परन्तु इस संक्षिप्त परिभाषा से चम्पू के सम्पूर्ण कलात्मक वैभव को बोध नहीं होता। वस्तुतः इसके पूर्व में साहित्य दर्पणकार ने रूपकों के अतिरिक्त पद्यकाव्य के सभी भेदों तथा गद्य काव्यों का भी परिचय कराया है। अतः चम्पू की कलात्मक विशेषताओं को समझने के लिए उन सभी कलात्मक प्रस्तुतियों के कलिपय प्रभावी अंश यहाँ उपयोगी हैं।

*

MS-91

संस्कृत वाङ्मय में मूल्यशिक्षण

डॉ. शुचिता दलाल, नागपुर

संस्कृत वाङ्मय अपने दार्शनिक विचारों तथा श्रृंगारिक वर्णनों के लिए प्रसिद्ध होते हुए भी इस वाङ्मय ने अपने मूल्यशिक्षण के कारण ही विश्व में प्रसिद्धी पायी है। बायबल के बाद पञ्चतन्त्र का सर्वाधिक प्रसार होने का कारण ही छोटी-छोटी कथाओं के द्वारा मूल्यों की शिक्षा देना यही है। अर्थात् संस्कृत साहित्य की निर्मिती मूल्याधिष्ठित है। इसलिए प्राचीन शिक्षणव्यवस्था में 'मूल्यशिक्षण' या 'Value Education' नामक स्वतंत्र विषय की आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि गुरुकुलों तथा शिक्षण संस्थाओं में संस्कृत साहित्य का अध्ययन नियमित रूप से होता आ रहा है। परिणामतः छात्रों का जीवन उत्कृष्ट बनाने में यह शिक्षा साहाय्यक रही है। क्योंकि सहजरूप से तथा सरलता से छात्रों में सभी मूल्यों की वृद्धि होती रहती थी।

रामायण-महाभारतादि आर्ष महाकाव्य, भारवीकालिदास-भवभूति-भास जैसे महाकवियों की कृतियाँ हों, चाहे भगवद्गीता, पुराण जैसा साहित्य हो। इस साहित्य के द्वारा धार्मिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक मूल्यों की शिक्षा ही एक प्रकार से दी जाती थी। क्षेमेन्द्र को बृहत्कथामंजिरी, सोमदेव का कथासरित्सागर, हितोपदेश आदि ग्रन्थ तो नैतिक मूल्यग्रन्थ ही है। भर्तृहरि ने तो मानो

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

'नीतिशतकम्' की रचना करके सर्वाधिक महत्त्व मूल्यों को ही दिया है।

संस्कृत साहित्य का यही वैशिष्ट्य है कि युगों-युगों तक इसकी महत्ता वैसी ही चली आ रही है। काल के परिवेश में नष्ट नहीं हुई। अतः आज भी स्कूलों में Value Education नामक स्वतंत्र विषय के अध्यापन में रामायण-महाभारतादि कथाओं के द्वारा ही मूल्यशिक्षण पढ़ाया (?) जा रहा है। प्राचीन आश्रम-गुरुकुल, तक्षशिला, विक्रमशिला, वल्लभी, जैनों के मंदिर इन सभी में संस्कृत साहित्य का शिक्षण नियमित रूप से परंपरागत चलता रहा है। इन केन्द्रों में पुराण-जातक परंपरागत चलता रहा है। इन केन्द्रों में पुराण-जातक तथा अवदान साहित्य से ब्राह्मण-जैन-बौद्धों के उपदेशों द्वारा मूल्यों को विकास छात्रों में बिंबित किया जाता था।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में चरित्रात्मक ग्रन्थों को निर्मिति हुई है। संतो तथा महान विभूतियों पर आधारित यह साहित्य राष्ट्रीय मूल्यवृद्धों में साहाय्यक साबित हुए हैं। उसी प्रकार संस्कृत सुभाषित रचना का उद्देश्य मधुरता तथा कोमलता से मूल्यों को प्रतिष्ठापित करना। यही है।

इस प्रकार 'मूल्यशिक्षण द्वारा मूल्यवृद्धि' यही संस्कृत साहित्य की आत्मा है। इसी का विवेचन प्रस्तुत शोधनिबंध में किया जा रहा है।

*

MS-92

आधुनिक संस्कृत साहित्य में नियतकालिक साहित्य

कु. रुपालीनथमल चौधरी, अकोला (महाराष्ट्र)

पाश्चात्य संस्कृति के संपर्क से भारतीयों के सांस्कृतिक जीवन में नूतन युग अवतरित हुआ। पाश्चात्यों ने प्रवर्तित की हुई जीवनप्रणाली नवशिक्षित भारतीयों ने बड़े ही सम्मान के साथ स्वीकृत की। उससे प्राचीन ऋषी-मुनियों ने प्रवर्तित की हुई शिष्टाचार पद्धति और सनातननीति धीरे-धीरे शिथिल होने लगी। इस प्रकार सांस्कृतिक संक्रमण देखकर प्राचीन संस्कृति का अभियान तथा प्राचीन शास्त्रों में निष्णात होने वाले बड़े-बड़े संस्कृत पंडित प्राचीन परंपरा का अभियान जनता में जागृत करने के लिये और अपने विचार समान के समक्ष चिल्लाकर कहने के लिये सिद्ध हुये। पाश्चात्य संस्कृति ने दी हुई वैचारिक संघर्ष व प्रचार का प्रखर साधन जो वृत्तपत्र है। उनका आश्रम संस्कृतज्ञों ने लिया संस्कृत में भिन्न-भिन्न वृत्तपत्र किस प्रकार और उन्होंने कितने विविध स्वरूप का वाङ्मय संस्कृत में निर्माण किया है इसका

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विवरण हम आगे देखेंगे। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आग्ल नियतकालो का प्रभाव और समाज जागृति के कार्य के लिये उसका उपयोग देखकर, भारत के बड़े-बड़े कार्यकर्ताओं ने भिन्न-भिन्न प्रान्तों में वृत्तपत्र और मासिक शुरु किये ऐसा दिखाई देता है। इस काल के संस्कृत पंडित भी इस स्पर्धा में पीछे नहीं रहे और उन्होंने भी संस्कृत भाषा के उद्धार तथा संरक्षण के लिये जगह-जगह संस्कृत नियतकालिक शुरु किये। जिनके यहां सवितरण जानकारी न देते हुए कुछ नाम ही दिये जा रहे हैं। विद्योदय, मञ्जुभाषिणी, सहृदया, संस्कृतचंद्रिका, सूनृतवादिनी, चित्रवाणी, शारदा, मित्रगोष्ठी, संस्कृत भारती, संस्कृतप्रचारक, मनोरमा, अमृतोदयः, प्रतिभा, सुप्रभातम्, वल्लरी, पण्डितपत्रिका, पद्यवाणी संस्कृतसाहित्य परिषद पत्रिका, पद्यवाणी, आर्य सिद्धांतः, श्रृतप्रकाशिका, सुरभारती, कौमुदी, श्रीचित्रम्, संस्कृत-जीवनम् इस प्रकार अनेकों नियतकालिक प्रकाशित होने लगे।

इस प्रकार संस्कृत नियत कालिकों के कारण भाषा में तथा शैली में जो परिवर्तन आये। उससे कुल मिलाकर संस्कृत साहित्य में एक प्रकार की अभूतपूर्व क्रान्ति आ गई। इस क्रान्ति का सर्वोत्कृष्ट भाग याने प्राचीन संस्कृत लेखन की जटिलता, क्लिष्टता और अत्यंत अलंकारिता लगभग विलीन होने लगी। संस्कृत भाषा में किसी भी प्रकार के आधुनिक विचार सुबोधना से अभिव्यक्त करने का सामर्थ्य है यह भी नवीन भाषाशैली द्वारा सिद्ध हुआ तथा इसलिये संस्कृत भारत की राष्ट्रभाषा है और वही राष्ट्रभाषा होनी चाहिये ऐसा विचार संस्कृतज्ञ बड़े आवेश से प्रतिपादन करने लगे। संस्कृत भाषा का राष्ट्र भाषा च सिद्ध करने वाले सैकड़ों लेख संस्कृत वृत्तपत्रों में ही नहीं तो सभी भाषा के वृत्तपत्रों में लिखे जाने लगे। यह तेजस्वी विचार संस्कृत में लिखे जाने लगे। यह तेजस्वी विचार संस्कृत में नियतकालिकोन प्रसुन कि अभिनव, सुबोध , धारावाही लेखन-शैली उदयोन्मुख नहीं होती तो कभी हमारे समक्ष नहीं आई होती।

*

MS-93

जनार्दन मणिप्रणीत-अबलासामर्थ्यम् नाटक में नारी-चेतना

रोशनी असवाल (उ०प्र०)

'अबलासामर्थ्यम्' युवासंस्कृत कवि डॉ. जनार्दन प्रसाद पाण्डेय 'मणि' की नवीनतम नाट्य-कृति है, इसके शीर्षक से स्पष्ट है कि यह अबला कही जाने वाली नारी के सामर्थ्य को अभिव्यक्त करती है। अबलासामर्थ्यम् नामक इस नाट्य कृति में नारी की स्वावलम्बन शक्ति तथा सम्पूर्ण पुरुष जाति को दी हुई चुनौती पग-पग पर अभिव्यञ्जित हुई है। नाटक की नायिका

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रागिणी जिसे उसका इंजीनियर पति सर्वेश बड़ी निष्ठुरता के साथ मारपीट कर तिरस्कृत करता है, वह अपनी प्रतिभा एवं क्षमता के बल पर डॉक्टर बनती है उसकी इस विकास यात्रा के दौरान स्त्रियों का एक बहुत बड़ा समुदाय महिला जागरण मंच की स्थापना करता है। नाटक का नायक सर्वेश अधिक मदिरा पीने एवं दूसरी स्त्री से विवाह करने की प्रक्रिया में नौकरी से निकाल दिया जाता है। न्यायालय में महिलाओं द्वारा ही उसके खिलाफ याचिका दायर की जाती है, जब उसके हृदय की धड़कन बढ़ जाती है वह बीमार हालात में उसी डॉ. रागिणी के द्वारा स्वस्थ किया जाता है जिसका वह पूर्व में अपना करके परित्याग कर दिया था, बाद में महिला वकील के चलते उसे दण्ड मिलता है तथा महिला पुलिस ही उसे कारागार में बन्द कर देती है।

इस नाटक में सम्पूर्ण परिदृश्य नारी के अपरिमित शौर्य, पराक्रम एवं स्वावलम्बन की दुहाई देता है क्योंकि वर्तमान युग में पुरुष प्रधान समाज नारी की समर्पण भावना लज्जा एवं सेवा को उचित सम्मान न देकर दहेज को अपनी औकात का आधार बनाकर नारी की भर्त्सना कर रहा है; प्रस्तुत नाटक इसी युगीन निरर्गल आचरण को समाप्त करने हेतु नारी-चेतना का संदेश लेकर उपस्थित हुआ है।

*

MS-94

शुकसन्देश में प्रकृति चित्रण

अनु खुल्लर, पटियाला

सृष्टि में चतुर्दिक् व्याप्त मानव कृत वस्तुओं से व्यतिरिक्त जो दृश्य पदार्थ हैं, उन्हें प्रकृति की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। प्रकृति शबद 'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से क्तिन् प्रत्यय लगने से बना है, जिसका अर्थ है - किसी वस्तु की नैसर्गिक स्थिति, माया, जड़-जगत्, स्वाभाविक रूप। अतः यह स्पष्ट है कि जो वस्तुएं मानव निर्मित नहीं है और जो निसर्ग प्राप्त हैं तथा जड़-चेतन के रूप में दृश्यमान है, उन सबके लिए 'प्रकृति' शब्द का प्रयोग किया गया है।

काव्य में प्रकृति विभिन्न रूपों में से प्रमुख रूप

1. **आलम्बन रूप में प्रकृति**–आलम्बन रूप में प्रकृति तब होती है, जब प्रकृति के प्रकृत स्वरूप को प्रधानतया कवि वर्ण्य-विषय बनाता है। यहां पर प्रकृति कवि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

का साधन न होकर साध्य होती है। आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण में कवि की सूक्ष्म प्रकृति-पर्यवेक्षण शक्ति का परिचय मिलता है।

2. **उद्दीपन रूप में प्रकृति**–उद्दीपन का अर्थ है उद्दीप्त करना, बढ़ाना, जागृत करना या अभिवृद्धि करना है। अतः काव्य में आश्रयगत भावों को तीव्रता प्रदान करने वाले उपादानों के उद्दीपन कहा जाता है।

3. **उपमान रूप में प्रकृति**–मानवीय भावों के साथ प्रकृति का सादृश्य देखकर कवि के मन में सादृश्य-मूलकता की प्रवृत्ति जगती है। इसी प्रवृत्ति से प्रभावित होकर कवि अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति से भिन्न-भिन्न उपमान ग्रहण करता है। यह उपमान उसके भावों को और भी अधिक परिमार्जित रूप में प्रकाशित करने में सक्षम होते हैं।

4. **मानवीकरण रूप में प्रकृति**–दृश्यमान प्रकृति में मानव जीवन में प्राप्त होने वाली प्रवृत्तियों या व्यवहार को दिखाना मानवीकरण कहलाता है। यहाँ पर प्रकृति जड़ न रहकर मानव की तरह चेतन हो जाती है।

❋

MS-95

Ashadhasya Prathamadivase : A Critical Appraisal

Dr. Pramod Bharatiya, Mussoorie

The modern Sanskrit short stories have been represented by various writers like Abhiraj Rajendra Mishra, Kalanath Shastri, Radhavallabh Tripathi, Keshab Chandra Dash, Krishna Lal, Durgadatt Shastri, Banamali Biswal, Pramod Bharatiya, Narayan Dash, Rabindra Kumar Panda, Pramod Kumar Nayak, Veenapani Patni, Ichchharam Dwivedi and many others.

Prashasyamitra Shastri is also one of the leading names in this connection. Dr. Shastri's latest collection of Sanskrit short stories ***Ashadhasya Prathamadivase*** (2001) too contains the stories based on contemporary social problems. He has been writing the stories in a very simple language. The readers don't have any difficulty in reaching the theme and message of the stories. His last collection ***Anaghratam Pushpam*** (1994) too drew much attention of the readers and the critics.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Hopefully Dr. Prashasyamitra Shastri's Ashadhasya Prathamadivase would fill the mind and heart of the readers with colours.

❋

MS-96

Prabhananda's contribution to World Religion

Dr. Chandramouli S. Naikar, Dharwad

Pandit Prabhananda hails from Raichur districts in Karnataka. He was named as Siddharamayga in his childhood. In his early age, he attained the poetic gift. He learnt Vedanta, Sahitya, Grammar etc at Kashi. In course of time, he practiced Rajayoga leading to the self-realisation and supreme Bless. Later on, he identified himself with the Highest Energy and renamed himself as Prabhananda. In the light of his experience, he composed many works. His "**Muktidarshana**" a work on philosophy in Sanskrit along with Kannada translation is a remarkable contribution to world religion. Religion is an inevitable part of our life. One notices three important points, namely-knowledge (belief), moral (value) and feeling (sensitively) in every dharma. Ishwara is omnipresent and devotion to Him itself is world religion. Prabhananda upheld the principle of social equality, smashed the system of caste, sect, family and gotra etc.

❋

MS-97

Sentiment of love as reflected in Banamali Biswal's Sanskrit poem

Radha Raman Pandey, Allahabad

Dr. Banamali Biswal has contributed at least seven poetry books to the literary world of sanskrit. In addition to that, Dr. Biswal has 3 research oriented books and 60 research articles published in various journals to his credit. Dr. Biswal's poems well prove himself as a poet of love. Two anthologies of Dr. Biswal are mainly based on the theme of love. They are : Priyatamā and Veleṇṭāiṇḍe-Sandeśa. In the first one 230 mono-image poetic compositions are incorporated under a single title, meaning sweet heart or rather dearest one. As the title suggests,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri Foundation USA

almost all the poems of this collection, are addressed to a single character called Priyatamā. Whereas the second anthology collectively contains hundred of free style poems on a delicate theme of love in different shades and colours which can be directly used as message of love in sanskrit by the lovers. Dr. Biswal often addresses to his beloved, the unknown lady by whom he is inspired. However, he has not left any clue in his poems through which his unknown sweet-heart can be known. He leaves it to his readers to guess.

*

MS-98

Shrooyate Na Tu Drisryate / Kandhe par betha tha shap

Dr. Meera Kant, New Delhi

Innumerable are the plays based on the events and anecdotes of the distinguished personality of Sanskrit Literature, Kalidasa, but one wonders why have the playhouse curtains remain drawn on his demise. Meera Kant's play *Shrooyate Na Tu Drishyate / Kandhe par betha tha shap* or ''Heard But Never Seen'' seeks to raise the curtain on this episode. The unfortunate decease of Kalidasa deprived Sanskrit literature of two contemporary poets : one Kalidasa of *Raghuvamsham* and the other Kumaradasa of *Jaanakiharanam.*

According to the word doing the rounds then, the first line of the shloka *Shrooyate Na Tu Drishyate*. Certainly belonged to Kumaradasa but the last line will ever be known as the last literary line of the Poet Laureate Kalidasa. This affair unfolding the tragic end of Kalidasa came about not in Aryàvarta but in Singhaladweep (Sri Lanka). A specific *bhikshu-vihaara* of Sri Lanka also opines that the eternal resting place of Kalidasa lies in the southern part of Sri Lanka at a place called Maatar near the confluence of the river Kirindi and the ocean. The last words of Kalidasa were also addressed to the Singhalese sovereign, Kumaradasa.

The basis of four characters-kalidasa, Kumaradasa, Kamini, and Vidyottama-is the folklore, while the other characters, including Rajamma, are imaginary. Rajamma is perhaps one of the main characters of this play that is possibly less individualistic, representing the sum-total of the socio-human inconsistencies.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-99

Madhava-Yashh-Sarojam

(A Historical Poem Written by Devidatta Kavi- An interpretation)

Dr. Subhash Sharma, Jaipur

Madhava-Yashh-Sarojam is a historic poem written by Devidatta kavi of the Shekhawati region of Rajasthan. Born in the Vikram era 1927 at Lakshamangarh, Sikar, Rajasthan, Devidatta Kavi was a poet laureate in the court of Rao-Raja Madhava Singh - the erstwhile king of Sikar. Besides **Madhava-Yashh-Sarojam**, his other poetic works are **Gangamrit-tarangika, Gopalastakam and Usha-Champukavyam**.

Divided in seven parts, known as Kalikas, **Madhava-Yashh-Sarojam** portrays the life of Rao-Raja Madhava Singh whose courtship wa accepted by Devidatta Kavi. After the invocation of various gods and goddesses in the first Kalika of the poem, the poet proceeds to delineate the geographical and historical picture of the Shekhawati region. Shekhawati is the land of scholars and erudite. It is a land blessed by gods and has the magnetic power of attraction for scholars from all over the country.

The third kalika contains the description of the family tree of Madhava Singh. The poet depicts the historical details from king Udayakaran of Amer to king Madhava Singh of sikar. Madhava Singh was coroneted in the Vikram era 1923. He was a noble and benevolent king who took every care of his subjects. The poet eleborately described the borders of the region reigned by Madhava Singh that extended from northern Ramgarh to Southern Ramgarh.

In the fourth kalika there is a very beautiful description of the eminent scholars and persons of the time. The poet specifically mentioned names of Sanskrit scholars who were conferred upon special honors by king Madhava Singh. Prominent among such recipeints of honor included SuryaMalla, a renowned poet of the time.

The fifth kalika consists of ethical and beautiful romantic descriptions. In the sixth Kalika there are some sweet lyrical songs. In the seventh and the concluding Kalika the poet has attempted to experiment with both Sanskrit and Hindi languages in his verse, there by adding innovation to his poetry. In the end the poet introduces himself and his ancestors.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

The poem enables us to peep into the history of the shekhawati region. It plays a very important role as it serves to be acurtain raiser to the historical and geographical past of Shekhawati. This paper aims at presenting the historical and geographical facts as narrated by Devidatta kavi so as to bring to light such a rare detail of the history of Shekhawati.

*

MS-100

Imagery in Ratnakantha's Ratnasataka

Prof. Ved Kumari Ghai, Jammu

Rajanaka Ratnakantha who is known more as copyist of many valuable Sanskrit works of Kashmir written in Sarada script and as commentator of Jagaddhara's Stutikusumanjali and various other works, was also a poet of no less merit. His work Ratnasataka also called Suryasataka consisting of one hundred and one beautiful verses in praise of sun god is a proof of his poetic genious. There have been written many Suryasatakas, the most famous being Suryasataka of Mayur of 7th Cent. A.D, but this Sataka of Ratnakantha of 17th Cent. A.D. Proves that Sanskrit poetry was being written in Kashmir through all these centuries though Persian had become the official language.

The imagery of this work expressed through various figures of speech is very impressive. Images are mostly derived from common family life and the natural surrounding like the mountains, the rivers, the sun, the moon, the sky, the stars, the darkness, the sunshine, the rain, the sea and the waters. Some images from Pauranic stories are also taken. The poet's imagination has turned them all into lively figures. Let us taken just two examples here. It is a natural phenomenon that rays of the morning sun spread light everywhere. The earth becomes reddish with dewdrops on the grass shining with rays. The poet describes the situation through a romantic image of a lover and his beloved. The sun as a lover touches the beloved earth with his hands (rays) and the earth with her body bent with bashfulness gets perspiration in the form of dew drops and the hair on her body are raised in the form of raised grass (v.14). In another verse the sun is depicted as a small child with soft reddish hands wide open going into the lap of the foster mother sky who is calling it

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

through singing of birds. The child sun is walking slowly in the courtyard in the form of Udaya mountain and is being looked at by smiling lotuses (v.95). We can easily feel the effect of these images in creating sentiments of Srngara and Vatsalya respectively.

*

MS-101

Poetology of Brahma-Vaivatra-Purāṇa

Arun Ranjan Mishra, Orissa

It is a common notion that baring Agnipurāṇa and Viṣṇudharmottara-purāṇa, no other puranic text is expressive of the norms of poetics. No doubt, the Vedas happen to be the fountain- heads of Indian poetics and aesthetics. Rāmāyaṇa and Mahābhārata carried forward, though implicitly, the normative ideas of Indian poetics and aesthetics, But a closer study of all the major purāṇas [whatever their dates may be] would strike a factual note that they constituted the popular foundations of the norms of poetry. What is more important, they preserved the ancient ideas on the core concept of poet, which may help in building up the edifices for the study of Ancient Indian Poetology -an aspect which is rarely touched by the Indian poeticians except for some texts or references on kaviśikṣā.That the Puranas are replete with the guidance to any poetic activity is also evident from the fact that classical Sanskrit poets have made profuse references to the Puranic episodes and to the knowledge stored in those texts. Theyhave also utilised the puranic expressive very widely. This is because, these texts poetically codify the Indian life-style, etiquettes and the highest goals of life. Not only that, the puranas along with Rāmāyaṇa and Mahābhārata, are also the chief source of poetic justice.

In the present endeavour, we wish to illustrate the aforesaid puranic foundations of Indian poetology by taking Brahma-vaivarta-purāṇa as a specimen. We, thereby, intened to show the concept of poet as preserved in this purāṇa and to reck up a new possibility for the study of Puranic poetology over and above the study of puranic poetics and aesthetics.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-101

The Ślokamālā of Pt. Bhabadev Bhagavati

Gokulendra Narayan Deva Goswami,Guwahati Assam

The Ślokamālā is a metrical composition in Sanskrit by Pt. Bhabadev Bhagavati (1902-1988) on various aspects. The work though a simple in nature and a very piece in genre, consists different Sanskrit meters. Besides thisone, the author is credited to have the composion of Satī Jayamatī (a lyrical work) , Kathā Kusuman (in two parts) in Sanskrit; Petar kathā Kusum, Sukhar Sapon, Bheko Bhāona in Assamese. For his eludition in Sanskrit the author was awarded by the president of India with the CERTIFICATE OF HONOUR.

In this paper, a humble attempt has been made to throw a light on the Ślokamālā by the poet.

*

MS-103

Treatment of Ramakatha in Sri Sankardev's Nata

Dr. Junu Mahanta, Chabua, Assam

The Ramayana exerts a profound influence on the lives of the men and women not only in India but also in abroad for near about two thousand years. Its glorious tradition can be left in elite and folk literature, art, religious writings, sculptures, songs, dances and dramas. In other words it becomes embedded in every aspect of the life of the people transcending the perimeters of racial, religious and geographical and communal boundaries.

People of Assam like other parts of India were acquainted with the stories of the Ramayana even before it had been reduced to writing in Assam verses by Madhava Kandali, one of the greatest writer of the Neo-Vaisnavite movement of Assam. But eariler to the versification of the original Sanskrit Ramayana in to Assamese Padas, the stories of the epic was found in oral tradition in floating stage. In the form of popular saying, folk, song, lullaby, tales etc. Various episodes of the Ramayana was current among the masses. But written tradition of the Ramayana started with the Assamese translation of the Valmiki Ramayana by madhava Kandali,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

who claimed to be the first composer of the epic in modern Indian language and it was done in the fourteenth century. It was with this translation that a strong tradition of the Ramayanai Sahitya started in Assam.

*

MS-104

Kalidas in Oriya Folk- play and Kalidas's possible Orissan Origin Synopsis

Prof. Dr. Prahlad Charan Mohanty, Gopalagan, Balasore

The scholars of India put forth various arguments regarding the date and place of birth of Kalidas, a renouned Sanskrit poet of India. These arguments add more to confusion than to solution. Orissian Scholars, those who claim that Kalidas belong to Orissa, put emphasis on his writings. This article is devoted on another aspect of Kalidas's akinness with the soil of Orissa and with its social customs and his influence on literary and folk traditions of Orissa. There are a number of folk-tales, riddles, proverb, folk-plays pertaining to life-style, foolishness, inteligence, instinctive poetic quality of Kalidas.

One such Oriya folk- play, under the title ''KALIDAS TAMASA''/ ''KALIDAS RAHASYA'' /SASEMIRA BIVARANI'' has been written and staged by Kavi Krushnakanta Das (1838-1903 A.D.) of an erst-while estate/killa of Mangalpur in the district of Balasore, Orissa. The theme of the episode has been described in lyrical verse in Oriya language and in different cantos. The theme of this folk-play is based on a popular folk-tale about Kalidas, as to how Kalidas cured the son of king, who was uttering always ôSasemira'' which was written on his tongue by the bear who protected his life from the tiger but was betrayed by the prince and how Kalidas did this healing by reciting four Sanskrit Slokass (cantos), each Sloka starting with the sylable of ''sa'' ''se'' ômi''and ''ra'' respectively. Kalidas was rewarded by the king for his minraculous treatment and unique talent. Rest part of episode has been dealt with in detail in the article. In conclusion it has been pointed out that, besides other supporting arguments, this folk- play along with other folk- tales of Orissa about Kalidas, prove his affinity more with Orissa than with other places of India.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-105

Lord Jagannath in modern Sanskrit Literature

Dr. Chandra Bhushan Jha, Delhi

There is a great deal of devotional poetry composed in Sanskrit language, both in ancient and modern times.

A few anthologies of ancient Stotras are available, like the Stotaracanavali and the Stotraratnakarah etc. Anthologies like the 'brhatstatraratnakarah are more compositions by relatively modern writers as well. But there is a lake of any concrete efforts to compile all new devotional poetry whose quantum is by no means negligible or small.

Almost every Hindu God has been offered stotras by devotee Sanskrit poets. Inevitably

Lord Jagannath has also been extolled by prominent devotees including, Adi Sankaracarya, Sri Vallabhacarya, Sri Ramanujacharya, Sri Caitnya Mahaprabhu, Guru Nanak Deva and kabira Dasa.

Many contemoporary Sanskrit poets have also composed devotional poems on Lord Jagannath,

By the sweet compassion of Lord Jagannath I have been able to go through the devotional poetry composed on God Jagannath by nine modern Sanskrit poets. The poets include Sri S. Sundarrajan, Sri Bhagirathi nand Sharma, Dr. Pramod Chandra Mishra, Prof. Satya vrat Shastri and Dr. Banmali Biswal etc.

*

MS-106

Translation of Sanskrti Kavyas into Telgu : The problems with vacabulary

Prof. D.C. Reddy, Tirupati

Sanskrit is the source for classical literature in Indian Language. The literature in the regional languages of India, except Tamil, began with the translation of Sanskrit Kavyas. The reasons are many to look Sanskrit alone as the source literature.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri, USA

Diring such period, the literacy rate would have been very less. In fact, majority of the literates were scholars. Even the southern Indian scholars were giving more importance to the scholarship in Sanskrit language and literature than their regional language, which is their mother tongue. They speak the spoken regional language in their day to day activities. Even if it is more close to the common people, they use a different style when it comes to the poetry and criticism. Because of the non-availability of equivalent vocabulary in the regional languages, translators of Indian languages were not dare enough to transform the entire text into the target language.

The Saiva poets were free in selecting the story, and the vocabulary to be used in their kavyas. The content, culture, language use, etc. reflect the life of common people of the region. But, the majority of the contemporary scholars did not treat such writings as good literature. Though, Srinatha, a Telugu poet of 15th Century, who is basically a saiva poet, translated vaishvava kavyas also, such as 'sRngaara naiSadham', wherein he freely borrowed not only the words but also the phrasal compounds from 'harSa niSadham' of Sanskrit.

❋

MS-107

शेक्सपीयरशतकम् : An appraisal

Prof. C.V. Mehta, Petlad

It is the modern Śataka written by the modern poet of Gujarat [Navsari] on the works-thought and life of the English dramatist Shakespear. The writer of this poem has written many Padya and Gadyakāvyas as well as Redio Rupakas in Sanskrit. Now he is retired as the Head of the Sanskrit form Garda College, Navsari. I shall analyze the work and evaluate it. For notice, the poet is ST born one [Ādivāsī Ḍhoḍiya Patel.] He is Prof. Dr. R.K. Patel-शतकम् :

'नाट्यानि शेक्सपियरस्य रसान्वितानि
पीत्वा भवामि परिपुष्टमनाः प्रकामम्।
पीयूषतुल्यवचनहृतधी र्हि तेन
वागीश्वराय रचयामि प्रसूनमालाम्॥3॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रसिककवि is also one of the best poets of Gujarat with हर्षदेवमाधव. He is the चन्द्रशेखर of South Gujrat. He is a modern poet.

*

MS-108

Brahmānanda Svāmi Śivayogi's Concept of Women Education

Jayanisha K, Kerala

I is said that Indian tradition and culture ascribe great value and status to women. Manu, from the Vedic period there were highly educated women in India. Women like Maitreyī, Gārgī, Lopāmudrā, Vadhrimatī... etc were in the Vedic and Upaniṣadic periods and many Princess and high-castes women in the latter period. Vijjikā, Śilābhaṭṭārikā, Avanitisundarī, Gangādevī... etc were the great poetesses in the Classical period. Their authentic poems were seen in *Subhaṣitāvalī, Śārṅgadhara Paddhati*... Their famous verses were included in the poetic texts like *Kāvyaprakāśa Sarasvatīkaṇḍābharaṇa*... Kāmasūtra of Vātsyāyana and *Kāvyamīmāmsa* of Rājaśekara stated about the educated women as:

Through this one can understand that education is allowed only to princess, daughters of ministers and celestial nymphs. These circumastances continued to 19th century. Till that time universal education was inaccessible to layman.

In Kerala also education was not allowed to all irrespective of caste, creed, sex... Even though there were many educated women, who were from the royal families. It was this time that Brahmānanda Svāmi Śivayogi proclaimed the necessity and advantage of women education. He was a sincere reformer who earnestly wished to remove immoral customs from Kerala. He was a man argued for women education even before SriNarayana Guru. In 1899 Śivayogi published a book entitled *Strīvidyāpoṣiṇi*. It was to make the society aware of the need of educating women and to point out the misfortunes that may occur due to the lack of education.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-109

Admirations of Hanumantadas

Dr. Girish D. Akamanchi

Bhagavat states nine Bhakti. Among nine Bhakti Dasya Bhakti is one. This is followed by many das's like Purandardas, Kanakadas etc. Among one of them is Hanumantdas. He is from Mannur in South India. After Gurupadesh he was titled as Mannurdas. He was the great Avatarapurush, many exciting events happened by him. Hence he was prooved as one of the great tapaswi. Some incidents are as follows.

By the order of his Guru Nilalgi Narayanachar ''he went to Badarikashram and, to do the Pindpraadan when he was fullfilling his Guru Narayanachar wishes in Gaya it was the 12th day of his guru's death. He got idol of Badarayana with mud in Alakananda. Once Lord Venkateshwar ordered to him to worship Badarayana puja in Tirupati Appuraya's house. Appraya also get same dream. This pooja was performed in great yawning. After fifty years he opened idol box he saw a fresh Tulasi and Chandana. This incident was published in the all New papers and recorded in madras government also. It was proved as Avatarapurusha. Once Hanumantdas was perfoming Purandardas punyathithi at manthralaya with their disciples. Raghavendra Swami appeared in Ramacharya's dream who was Archak of Raghevendra math and said to give idol of Tandavakrhshna to Hanumantadas. Therefore das was got a benedication by Raghavendra Swami directly. He did the Anustan in tumbul teerth by eating two dry dates each day Lord Venkateswara appeared before him as a Sheshashayi.

*

MS-110

Marriage Principles of Maithila Brahmaṇas : A Scientific Analysis

Dr. Kalika Dutta Jha, Dar

The Varṇāśrama Vyavastha-a Hindu classification of society and life in four divesions/orders--Constitute the core of the Aryan way of life. Among these the gārhasthya Āśramas as their very existence depends upon it. Hence the Vivāha-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Saṅskār is the most important, one among the sixteen sanskaras enunciated in the Dharmaśastras. The Āryas had evolved and laid down certain scientific and rational principles for marriage as found in Grihyasūtras and Smṛti Granthas encompassing religious obligations and biological propieties. The Maithila Brāhmaṇas, being nearse to the Aryan tradition, are having those valued ancient principles of marriage in their original form fully in practice at least from the fourteenth century onwards.

*

MS-111

Contribution of Kerala to Stotra Literature in Sanskrit - A Brief Survey

Dr. S.Remadevi Amma, Kerala

In the vast realm of Sanskrit literature, Stotras have an important place. The word Stotra is derived from the root stun by adding the suffix stran. It means a piece of prose or verse meant fro eulogizing favorite deity. Rgveda consists mostly of songs sung in praise of the forces of nature. These efforts in hymnology in course of time paved the way for devotional poetry in Sanskrit. The gods and their characteristics described in the Rgveda underwent transformation in keeping with the development of thought and mind of the devotee. Prayer is the path of purification of mind and it helps in developing in the individual worshiper the consciousness of being one with god. The devotional poetry gradually grew in the magnificent branch of literature. Compared to other branches of Sanskrit literature, it is the Stotra literature that Kerala has contributed profusely. More tan 500 Stotras have been produced in Kerala. Many of them have been composed in praising deities of the different temples of Kerala. Most of the Sanskrit poets of Kerala such as Sankara, ChattambiSwamikal, NarayanaBhatta, Sri Narayana Guru and others have contributed their share to the Stotra literature. Many of the Kerala writers seem to have felt it necessary to compose Stotras. Most of them are almost imitations of the early ones, but there are many other deserve to be studied seriously. Many of the Stotras of Sankara, Kulasekhra Alwar, Sri Narayana Guru, Narayana Bhatta are some of them. Hence a brief study of them is attempted in this paper.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 17

MANUSCRIPTOLOGY

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MSS-1

आन्ध्रप्रदेशीय संस्कृताभिलेखवाङ्मयविमर्शः

धूळिपाळ रामकृष्णः, विजयवाड़ा

सातवाहन, इक्ष्वाकु, आद्यपल्लव, विष्णुकुण्डि, चालुक्य, काकतीय, रेड्डिराज इत्यादि राजवंश्याः, राजानः क्रीस्तोः पूर्वकालादारभ्य दानादिकं स्ववंशप्रशस्त्यादिपूर्वकं शासनबद्धमकार्षुः। सर्वत्रैषा विहिता रीतिः। परमन्यादृशं विषयमेकं काकतीयराज्ञः गणपति देवस्य क्रीस्तोः अर्वाक्कालिकस्य एकषष्ट्युत्तर द्वादशशताब्दे उट्टंकितं मल्कापुरशासनस्थं प्रस्तावमर्हति। यदत्र गुरुर्गणपतिदेवस्य विश्वेश्वरशिवदेशिकाख्यः महीसुरो महाशैवः, राज्ञा प्रदत्तं ग्रामादिना सम्पादितं स्वीयमायं सम्यग्विभज्य साम्प्रतमान्ध्रदेशस्थ गुण्टूरुमण्डले स्थितस्य मन्दडाख्यग्रामे विश्वजनाग्रहारं न तु विप्रजनाग्रहारंप्रकल्प्य, प्रसूतिशालां, आरोग्यशालां, ब्राह्मणादिचण्डाल- पर्यन्तानामनिवारितानां सर्वेषां जनानामन्नसन्तर्पणाय सत्रं, पुत्रहीनस्त्रीणां कर्मकारयितृत्वं, छात्रादीनां अन्नवस्त्रादिप्रकल्पनादिव्यवस्थां च कृतवानिति प्रकाशितः।

*

MSS-2

सादृश्यता के आधार पर शारदा एवं गुरुमुखी लिपि का अध्ययन

डॉ. संगीता शर्मा, जम्मू

भारतवर्ष की वाङ्मयी विभूति की सुविकसित समृद्धि का बहुत सा श्रेय कश्मीर-मण्डल को प्राप्त होता है। कश्मीर के हस्त-लिखित ग्रन्थों में शारदा लिपि का प्रयोग बहुत अधिक मिलता है। शारदा कश्मीर मण्डल की प्रधान देवी है अतः कश्मीर देश को शारदा देश भी कहा जाता है इस लिपि को इसीलिए शारदा लिपि कहा जाता रहा। कश्मीर में यह लिपि 'कश्मीर अछर' इस नाम से भी जानी जाती है।

अलबेरुनी ने अपने ग्रन्थ (1030 ई०) में लिखा है कि कश्मीर और वाराणसी में सिद्धमातृका लिपि का प्रयोग होता था। काशी तथा कश्मीर दोनों संस्कृत विद्या के केन्द्र थे। प्रतीत होता है कि दोनों स्थानों पर एक लिपि का प्रयोग होता था जिसे अलबेरुनी ने सिद्धमातृका कहा है। इसी सिद्धमातृका लिपि से शारदा लिपि का विकास हुआ। बाली द्वीप में इस लिपि को अब भी ''सिद्धम् लिपि'' कहते हैं। इस लिपि का प्रचार जापान के बौद्ध तांत्रिक साधकों में भी पर्याप्त मात्रा में रहा है। यद्यपि शारदा लिपि का जन्म मूलतः ब्राह्मी लिपि से हुआ है। इसी लिपि से उत्तर भारत की अन्य भारतीय लिपियों की भी उत्पत्ति हुई है। गुरुमुखी तो शारदा का ही एक विशेष रूपान्तर है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शारदा-लिपि के साथ गुरुमुखी वर्णों की इतनी समानता है कि विज्ञ व्यक्ति भी शारदा में लिखे गए पुस्तक, पत्र या लेखादि को दूर से देखकर गुरुमुखी समझता है। गुरुमुखी लिपि शारदा लिपि की ''ज्येष्ठ पुत्री'' की तरह है, इसको सभी भाषा एवं लिपि विशारदों ने निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है। माना जाता है कि गुरुमुखी लिपि को शारदा लिपि से थोड़ा परिवर्तित कर एक नई लिपि का रूप देने में कश्मीरी पण्डितों का विशेष कर त्राल (कश्मीर के अवन्तीपुर के समीप का प्रसिद्ध स्थान) के ब्राह्मणों का योगदान रहा है। इन ब्राह्मणों ने शारदा का कुछ स्वरूप परिवर्तन कर के गुरुमुखी लिपि की रचना की थी।

*

MSS-3

प्राचीन-दुर्लभ पाण्डुलिपि-एक अध्ययन ''राजगृहनिर्माणप्रकार''

पुरोहित प्रफुल्ल एम-, गुजरात

राजगृहनिर्माण प्रकार नाम्नी हस्तलिखित प्राचीन पाण्डुलिपिप्राच्यविद्यामंदिर एम.एस. यूनिवर्सिटी वरोडा ग्रंथालय से प्राप्त हुई। राजगृहनिर्माणप्रकार नाम्नी हस्तलिखित पाण्डुलिपि वास्तुनिर्दोषप्रकार के साथ संलग्न है। हस्तलिखित पाण्डुलिपि का क्रमांक 11075 है। हस्तप्रत का प्रारंभ-श्रीः अथातः श्री जयोकतानि राजगेहानिचक्ष्महे। इति

*

MSS-4

Development of Bengali Script according to manuscript

Dr. Debi Mondal, Calcatta

The birth of the Bengali script is not so old. In this way we can mention that a lot of Indian Languages are originated from Sanskrit language such as Hindi, Malayalam, Kanari, Tamil, Telegu, Bengali etc. Devanagari came from Nagara Script and Kutila is the source of various scripts such as Maithili, Asamiya, Nepali, Bengali, Oriya etc. But G. Buhlar stated that the Nagari script of ancient India is the mother of Bengali script. We find that the Bengali script appeared in different types of inscriptions. But in later period the writing of Bengali scripts,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

on palm leaf or on country made paper are of scroll figure. As example of the oldest Bengali script we can mention the name a few manuscripts entitled : ''Guhyavali Vivrti'' (1198 AD), ''Yogaratnamala'' (1200 AD), ''Apahasiddhi'' (call No. G-4711, on 1200 AD) etc. In fact we can say that the origin of the Bengali script could not take shape within a certain time, rather it is as per the human choice and through different stages.

*

MSS-5

Preservation and Conservation of Palm-leaf Manuscripts in orissa

Dr. Medha Kumari, Puri, Orissa

In ancient days there were many materials used for writing and the most common materials was the leaves of various trees. But among leaves the most common, favorite and long lasting were the PALM-LEAVES. The leaves being thick were cut in the required sizes and pointed Iron stylus was employed for incising the characters. In Orissa, this was the most ancient practice for expressin of thoughts in writing till paper was substituted. In modern days a volume of Palm-Leaf manuscript may be treated as insignificant on its first sight. But a wiseman going deep into the matter can understand its importance and take it as a valuable record for preservation. Apart from the indigenous methods of preservaiton, it may now be considered how best the palm leaf manuscripts be preserves scientifically. The principal enemies of the manuscripts are time, fire, water, heat, light, humidity, dust, fungi, vermin and above all the mishandling of man. Certain precaution should be taken against such eventualities. For the rest i.e. heat, light, humidity, dust fungi, vermin; modern scientific research has succeeded in devising means to neutralize their effects. Vacuum fumigation should be done periodically and utmost care in up keeping storage should be done. The whole repository should be air conditioned. Fire preventive measures should be taken. Repellents should be used. Proper provisions foe cleaning encasing, repair of manuscripts and laminatin them should be done. All these measures would help us in proper conservation of our cultural property by which the purpose of the National Mission for Manuscripts will be fulfilled.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MSS-6

Develpment of manuscripts on Colophon and post Colophon

Dr. Balaram Mondal, Kolkata

Undoubtedly we can say that the significance of the manuscripts is mentionable in relation to the cultural improvement of our country. We find interesting things in the colophon and post colophon of the anciant manuscripts. But in later times we get much information about the scribe of the manuscripts. Besides this we get some other information about Historical, Geographical and Economic conditions of the proper time, as for example :

इति अंगदेर रायवार संपूर्ण॥ सन ३२५६ साल तारिख ३ चैत्री रोज मंगलवार वेला चारदणुर समय समाप्त हइल। लिखितं श्री---चन्द्रदास वसु सां नाडिच्या परगणे विष्णुपुर जेला मल्लभूम राजा श्रीलयुक्त गोपालसिंह महाराजाधिराज प्रवलप्रतापेषु---।

The script and language of the M.S. is Bengali where a lot of grammatical mistake is noted.

From this post colophon of the manuscript we come to know that Rājā of Mallabhuma was Gopal Singha who had Jurisdiction over the scribes of own village of Niḍicā. It is also known from the Bishnupur Rāja, that this Gopal Singha was on the throne in 1860 AD and the ruling prince upto 1879 AD. So many manuscripts with interesting informations are eagerly waiting for coming out for the benefit of the scholars.

*

MSS-7

K.T. Pandurangi's Collection Of Some Vedic Manuscripts : A Short Survey

Nabanarayan Bandyopadhyay, Kolkata, W.B.

School of Vedic Studies, Rabindra Bharati University, Kolkata has endeavoured to set up a Vedic Museum, first of its kind in the eastern region of India. Attempt is being made to collect and preserve some Vedic manuscripts from different sources for the museum. It is a matter of great pleasure that Prof. K.T. Pandurangi of Bangalore has kindly donated some manuscripts relating to the Vedas,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri

Vedāṅgas and Vedalakṣaṇas under his collection to this museum. Two and four of them concern the Saṃhitāpāṭha and the Padapāṭha of the Ṛgveda Saṃhitā of Śākala recension respectively. There are two texts belonging to the Vedāṅga literature viz. Vedāṅga-Nighaṇṭu and Āśvalāyana-Gṛhyasūtra-Vṛtti by Nārāyaṇa. Paribhāṣā-Sarvānukramaṇikā, Ṛgveda-Kramadīpikā with Sobodhinī by Narahari, Sūktapratīka in Jagannātha's Anukramaṇikā-Vivaraṇa, Paribhāṣā- Chandodarpaṇa, (all Ṛgvedic), Navaparabhāṣya (Yajurvedic), Sarvasammmata-Śikṣābhāṣya by Mañcibhaṭṭa, are all Vedalakṣaṇa Granthas. A Proyoga text entitled Pākayajñanirṇaya by Candracūda is also worthy to be mentined. A short survey of these manuscripts and special features along with importance of them will be presented in the proposed paper.

*

MSS-8

Indigenous Methods & materials for Preservation of Manuscripts

Pradhan Dhirendor Ray, Puri

India is a country of grate tradition of Arts and cultural heritage. It is quite different for it's healthy spiritulism, glorious pasts. The manuscripts are store knowledge of Art, Culture, Science, Industry, Aurvijnan, Tantras, Mantras, Yantras, Religion and total essence of the society which are worshipped by us since our ancestors. The word manuscript is defined as : ''Manus'' (Hand) scriptum (to write) it means those things written by the hands are manuscripts. Now a days manuscripts are neglected by the modern society due to the scientific invention of manufacture of papers and printing machines. The manuscripts which are the sources of knowledge are the Hidden treasures for the modern human society requires to be traced, preserved scientifically and published periodically. So that the society would be benefited and more interested to know the things contained in the manuscripts.

Categories of Preservation of Manuscripts:

(i) Preventive Preservation.

(ii) Curative Preservation.

The preventive Preservation is done by the all general people but the curative

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

preservation done by the conservators only. Preventive preservation by the indigenous techniques application of preservation prepared from the following natural sources, such as: a Turmeric (Haldi) b. Sweet flag (Ghoda butch, it is also otherwise known as (Ugragandha), c. Cauhor (Karpura), d. Dhau Ranga Chheli, e. Good apple gum (Kaintha gum), f. Begunia Leaf, g. Neem Leaf (in a dry shape), h. simba Leaf, i. Black piper (Golamarich), Clove (Labanga)., j. Triphala (Harida, Bahada, Aonala), k. Kala Jira, Pippali, 1. Tulsai, Pudina. m. Dry Ginger (Sunthi), n. Orange-Lemon Leaf, o. The selfs to store the Manuscripts made out of Debadaru wood and rapped in red clothes.

Above indegenous things have very insecticidal values to preservate the manuscripts.

*

MSS-9

Cataloguing of Manuscripts

Pooja Sood, Punjab

Cataloguing is the most important part of the Manuscriptology. Cataloguing of manuscript is the basic requirement of any institution if they are engaged in the work of manuscripts. Ethmologically the word Catalogue has been derived from the Greek Phrase ''Katalogos''. There 'Kata' means according to or 'logos' having so many meanings. Normally logos means 'word', therefore term catalogue has explained as work, where in the contents are arranged in a 'reasonable' way or in a particular 'order' or according to a set plan. Catalogue functions as an instrument of communication and it supplies information to the readers. Manuscript. Cataloguing is descriptive nature and we have to give maximum information about the manuscript to the student for their research purpose. So the cataloguer must be well versed in Manuscriptology.

Card Index, Tabuler Catalogue (Accession Register), Triennial Catalogue will give minimum information about the manuscripts and Descriptive catalogue as its name suggest, which gives a description of each manuscripts. The ordinary catalogue informs the existence of a copy and a descriptive catalogue furnishes all possible details. Descriptive catalogue deals even physical description, catalogue

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

description & publication details. The process of mss cataloguing is quite different from printed books. We will get so many general principles for cataloguing of printed books. In printed books, it is very much easy to know about the author, subject, year, place, publication etc. and there will be uniformity in each copy. But if we are considering mss cataloguing, it is descriptive nature. We have to give maximum information about the mss to the students for their research purpose.

The ancient manuscripts are a link between the past and the present. The ancient documents have revealed striking information in all the intellectual areas such as astronomy, mathematics, science of erotic etc. A team of scholars-Sanksrit as well as scientists should work together to study the ancient Sansrkrit work in the light of modern discoveries. So we have to take the steps to create such awareness amont the people about the important of manuscripts.

*

MSS-10

Prayogaklṛpti of Śivaśroṇa

Prof. Braj Bihari Chaubey, Hoshiarpur

Prayogaklṛpti of Achārya Śivaśroṇa a Prayoga-grantha, is an important text of the Vādhūlas. A reference to this text has been made in the *Vādhūlagṛhyāgama-vṛttirahasya* of Nārāyaṇa Miśra. The text forms a part of composite MSS deposited at (i) Government Oriental Manuscript Library Madras under No. R2978 (p 377, line 4 to p 498, line 10), (ii) Adyar MSS Library, Madras under No. TR 361 (p. 772, line 8 to p. 979, line 12), (iii) Oriental Institute,, (M.S. University of Baroda) under acc No. 12110 (p. 292 to p. 313), and (iv) Oriental Research Institute and MSS Library, University of Kerala, Trivandrum under No. T 1083 (Sl. No. 19270). The MSS give three titles of the text as *Prayogaklṛpti, Prayogàkalpanā* and *prayogasandarbha*. Actually these different nomenclatures are of the one and the same text. I have prepared a critical edition of this text with Introduction and various Indices. I may point out, in brief, some salient feature of the text as follow.

1. *Prayogaklṛpti* of Acharya Śivaśroṇa is a *Prayogagrantha* based on the Vādhūla Śrautasūtra.
2. It consists of Seven Prapathakas dealing with (i) Agnyadhāna, (ii) Pauroḍāśi

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(Darśapurnamāseṣti), (iii) Yājumanam, (iv) Cāturmāsya, (v) Paśubandha, (vi) Jyotiṣṭoma-I, (vii) Jyotiṣṭoma-II.

3. The author of this text refers to the views of Vādhūla at various places by calling him Ācārya, and the views of other Acaryas by using the pharse-इत्येके, इत्यन्ने, इत्यपरे, इति केचित् etc.

4. In treatment of the topics the text follows the order of the *Vādhūla-Śrautasūtra.*

5. Śivaśroṇa gives at places explanation of ritualistic technical terms used in the Vādhūla Śrautasūtra, such as--Upavasatha (1.1.3), Upavyādharaṇam (1.1.4), Paroptapunarādhānam (1.4.1), abhivānyā (3.4.1), Bhaktāśi (3.6.1) etc.

6. At the opening of the Cāturmāsya-Prapāṭhak the scribe gives the following verse in the praise of Acārya Śivaśroṇa :--
शोभनश्रुतिशरीरशिल्पवित्कल्पसूत्रकृदनल्पबन्धवे।
श्रोत्रियाय शिवशब्दसमुदितनामपरिशोभिने नमः॥

7. Besides, there are many other peculiarities of the text which will be discussed in the paper.

*

MSS-11

Preventive Conservation of Manuscripts

A.R. Krishnakumar, Hoshiarpur

Preservation refers to teh totality of process and operation involved in the stablization and protection of documents against damage or destruction and in the treatment of damaged or deteriorated documents. The processes of preservation-conservation-restoration are applied to safe guard documents from further decay and deterioration. Preservation is two types. One is **preventive conservation** and another is **curative conservation**. Any action or step taken to prevent or delay the process of deterioration without chemically treating them is called preventive conservation. Preventive conservation includes all forms of indirect action comprises all the medhods of good house keeping, care taking of documents, dusting, periodical supervision and prevention of any possibility of damage by physical, chemical and

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

biological and other facts. **Curative conservation** : Any action taken to treat the objects with the intention of correcting any alterations that have come about in due course time. This may involve use of scientific methods and chemicals. The curative conservation consist of all forms of direct action aimed at increasing the life expectancy of damaged or under damaged elements of documents. It included repairing, minding, fumigation, de-acidification, lamination and other job, which are required to considering the physical condition of the documents.

There is some indirect cause we have to face in preservation of manuscript. Four major problems we can say in this group. They are **Finance, Technical, Administrative, and Non-cooperation**. If we consider the direct cause of deterioration, then they are 1. Bio-deterioration 2. Light 3. Temperature 4. Humidity 5. Acidity 6. Use of Substandard materials like thread, Inks leather etc. 7. Improper handling and carelessness. 8. Fire and flead 7. Dust and stains etc.

❋

MSS-12

A note on Cataloguing Problems of Manuscripts

Dr. Ramesh Chander, Hoshiarpur

The word manuscript is derived from latin words manu and scriptus which mean written by the hand on any materials viz; paper, birch-hark, palm-leaf, cloth etc. In ancient times all the hand written documents were in the form of manuscripts. We find the glimpses of our cultural heritage through these manuscripts.

The importance of Cataloguing work in the field of manuscript is quiet evident as they are the benchmark of our culture and civilization to the readers about the thought content recorded in it.

Though there are many general principles of cataloguing for printed books which are also applied in cataloguing of the manuscripts as well. The fundamental difference in both the cataloging processes viz; book Cataloguing and manuscript cataloguing is that the manuscript cataloguing is of descriptive nature and supplies the maximum information about the manuscripts to the readers and researchers engaged in the selective field of research.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

In nutshell it can be said that manuscript Cataloguing is a practical science of arranging documents on the basis of its thought contents which we got through experience and it is also necessary for a catalogur to have acquaintance with the different field of knowledge, such as art, architecture, literature, religion etc. Thus consquently we can say that the work of cataloguing has the same place in manuscriptology as diagnosis in the medical field.

*

MSS-13

Problems in Editing Malyalam Manuscripts

Dr. P. Visalakshyy, Kerala

The manuscripts now available to us in India irrespective of the language to which they belong are of different periods, copied by different scribes and also belonging to different regions. Such extant manuscripts of any work require editing before its publication. When there are sufficient numbers of manuscripts of a work, Manuscriptologists insist for critical edition. In the case of Codex Unicus and also in the case of a work for which there exist different copies but the editor gets accessibility only to a single manuscript Critical Edition is not possible. But in such cases also editing is required. Most of the problems encountering in the edition of a manuscript in any Indian language are not particular to that language only but are pan Indian in nature. The problems in editing Malayalam manuscripts are viewed from this perspective. As in other languages, the editor of Malayalam manuscripts has to encounter the problems caused by the inherent nature of the script, general pattern of writing manuscripts, scribal errors etc. Malayalam manuscripts are written mainly in two different scripts i.e. Vattezhuttu and Malayalam.

*

MSS-14

A brief study of Skanda Swamini's 'Rkveda Bhasya' Manuscripts

H. Sadanandan Potti, Kerala

This paper aims at the study of 'Rkveda Samhita Bhasya' written by Skanda Swamini found in the Palm-leaf Manuscripts at the ORI & Mss Library. There are vast possibilities for both Comparative study and Research work.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

The 'Rkveda Bhasya' of Sayanacarya was written much afterwards the Skanda Swamini's Bhasya was written. That is skanda claims antiquity and was written during the 7th century A.D. The author Skanda Swamin hails from the place called 'Valapattinam in the middle of Kerala state. Skanda Swami Bhasya was published upto the 3rd chapter of 1st Ashtaka. This has been published as 3 books by Travancore sansrkit Series Publication of the Manuscripts Library of the University of Kerala. These works include the Rkveda interpretation by Venkata Madhava. But the publication is not complete i.e. the complete works have not been published till date. The palm-leaves also do not contain complete subject matter.

The antiquity of these palm-leaves and the peculiarity of the scripts used are also worthy to be explained. A special schedule containing the list of palm-leaves which include the works on Rkveda has also been included.

In the end, there will be a comparative study on Rudrasukta Bhasya by Skanda Swamin and Sayanacarya.

*

MSS-15

A Study of Temple related Copper Plate records in late Medieval South Kerala

Deepu J.S., Kerala

During the late Medieval period South Kerala witnessed the emergence of temple centred political power spots. The formation of so called *Swarupamas* (local chieftaincies) and the emergence of organized Brahmin supremacy over the temples and their properties, i.e., the process shift in the ownership of land from *Devadanam* to *Brahmadeyam* etc. are highlighted in this study. Copper plate inscriptions belonging to the late medieval period in South Kerala temples are mainly found in Navaikulam Temple in Chirainkil Taluk of Thiruvananthapuram District and Velinallur Temple in Kottarakkara Taluk of Kollam District. So the present study mainly concentrates on significant copper plate records of these two temples. These South Kerala temple complexes have been identified earlier as historically notable places in the annals of ancient and medieval Kerala History.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MSS-16

The Pictorial Manuscripts in the ORI & Mss. Library Karyavottom

H.S. Potti, Trivandrum

Evolution of pictorial Scripts and the places in which these pictorial scripts are found and its importance in the field of literature with example.

About the rare & precious collection of pictorial Manuscripts in the ORI & Mss Library & a comparative study of the total No. of works with pictorial works. The main theme found in these works-connected with puranas or epics.

Citraramayana, considered as the most illustrated and illuminated work in the library. The peculiarities of the pictrues and the importance of line-drawing found in the Mss. is also dealt with in detail.

About Rupaprasna a paper manuscript & its special features. Then on two works titled the same but palm-leaf ones & its specialities & a comparative study of the pictures on these two works.

Two Indonesian manuscripts found in the library which clearly depict Indonesian culture. About the graphical figures in different angles and sizes in a Skt Manuscript in Telugue script based on trial & obtained from A.P.

About the art works carvings and pointings even on the wooden planks & ivory pieces used to protect the palm-leaf Manuscripts.

The connection of drugs, mantras and yantras found in the Manuscripts used for treantment, where yantras form the pictorial representation. About the Tantra Samgrahas and Astronomical Manuscripts, which contain geometrical formation & signs.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 18

EPICS AND PURANAS

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-1

रामायणकाले शिक्षायाः अवधारणा

श्री हरीशचन्द्र गुरुरानी, हरिद्वार (उत्तराञ्चल)

शिक्ष विद्योपादाने इत्यनेन धातुना सिद्ध्यति। शिक्षा एका विकासप्रक्रिया ,भवति यया खलु मानवः आध्यात्मिकं सामाजिकं च विकासं कर्तुं प्रभवति। शिक्षा दर्पणमिवास्माकं कार्यं सम्पादयति यथा दर्पणमवलोक्य मानवः स्वीयं वास्तविकं स्वरूपं वेत्ति तथैव शिक्षया मानवः स्वास्तित्वबोधं कर्तुं प्रभवति। शिक्षयैवात्मज्ञानं भवति नान्यथा। मानवज़ीवने शिक्षायाः महत्त्वं वयं जानीम एव। प्राचीनकाले शिक्षाविषये अवधारणा आसीत् यत् सा विद्या या विमुक्तये इति।

रामायणकालेऽपि शिक्षायाः सैव धारणा दरीदृश्यते। तदा शिक्षोद्देश्यं जनकल्याणं आत्मकल्याण-मेमवासीत्। तत्र विश्वामित्रेण राममप्रत्युक्तं यत् भवान् लोककल्याणाय बलामतिबलां विद्यां गृह्णातु इति तत् यथा—

बलामतिबलां चैव पठतस्तात राघव!।
ग्रहाण सर्वलोकस्य गुप्तये रघुनन्दनः!॥ (बा० 22/18)

एवं त्वमखिललोककल्याणाय द्वयोः विद्ययोः ग्रहणं कुरु। एवम्प्रकारेण आदिकाव्ये लोककल्याणकारिण्या आत्मज्ञानप्रदायिन्या पारिवारिकसामाजिक आध्यात्मिकशिक्षायाः वर्णनं दृष्टिपथमुपैति। यस्य वर्णनं शोधपत्रेऽस्मिन् भविष्यतीति।

*

EP-2

रामायणे राष्ट्रियभावना

श्री प्रकाशचन्द्र जोशी, हरिद्वार (उत्तराञ्चल)

''राष्ट्रियः'' स भवति यस्य स्वकीये राष्ट्रे, तस्याचारविचार-धर्म-संस्कृतिपरम्पराषु तस्याङ्गभूतभौगोलिक— पर्वतनदीत्यादिभूभागेषु दृढानुरागः। राष्ट्रियता न केवलं भौगोलिकी अपितु सांस्कृतिकी अपि भवति। आहिमालयात् लवणसमुद्रं यावत् प्रसृतं भारतमेकमेवासीदिति प्राचीनाचार्याणां मतम्। आदिकवेः बाल्मीकेः आदिकाव्ये रामायणे सर्वप्रथमस्याखण्डराष्ट्रस्य दर्शनं भवति। तत्रादिकविः किष्किन्धाकाण्डे एकतासूत्रे आबद्धस्य भारतस्य वर्णनं, प्रस्तौति। यथा—

मार्गध्वं गिरिदुर्गेषु वनेषु च नदीषु च।
नदीं भागीरथीं रम्यां सरयूं कौशिकीं तथा॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ब्रह्ममालान् विदेहांश्च मालवान् काशिकोशलान्।
मागधांश्च महाग्रामान् पुण्ड्रांस्त्वङ्गांस्तथैव च॥ (बा०रा०कि० 4, 19-2)

हिमालयात् समुद्रगतायाः भागीरथ्याः वर्णनेन कोशलानां राज्यस्य वर्णनं प्रस्तौति कविः समुद्रपत्तनस्यापि तेन स्मरणं कृतमस्ति। एवं रामायणे यथास्थानं राष्ट्रियतायाः वर्णनं शोधपत्रेऽस्मिन् मया करिष्यते।

*

EP-3

अध्यात्मरामायणस्य दार्शनिकतत्वम्

पं. सीताराम दास शास्त्री, उडीसा

आत्मनि इति अध्यात्मम् अव्ययीभावसमासः। यत् तत्वम् आत्मविषयकं तदेवाध्यात्ममुच्यते। अध्यात्मज्ञानेन परिपूर्णं यत् रामायणमधिकृत्य कृतं पुराणमिति अध्यात्मरामायणमिति कथ्यते। पुनश्च अध्यात्मज्ञानेन परिपूर्णं रामायणम् अर्थात् श्रीरामचरित विषयककथा आध्यात्मिकी इति—

गीतावचनानुसारं 'अक्षरब्रह्मपरमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते। जीवरूपचेतन पराप्रकृतिरूपात्मतत्व रूपेण यस्मिन् रामायणे वर्ण्यते तत् अध्यात्मरामायणमिति ज्ञायते। श्रीराम जीवरूपेण लीलां कुर्वन् अपि परमार्थतः परमात्मा इति दार्शनिकतत्वस्य आख्यानोपाख्यानमाध्यमेन पुराणशैल्या अत्र वर्णनं दृश्यते। ग्रन्थेस्मिन् श्रीरामः परात्मा श्रीसीताप्रकृतिरिति रूपेण सर्वत्र दार्शनिकतत्वस्य माध्यमेन वर्णितम्। अत्र दर्शनशास्त्रस्य मार्गेण अध्यात्मज्ञानं कुर्वन् भक्तिमार्गेण मुक्तिसाधनस्योपायः वर्णितः। अध्यात्मभक्तेश्च संगमो भारतीयदर्शनमतिरिच्य अन्यदर्शनेषु प्रायतो न दृश्यते। यद्यपि अस्यग्रन्थस्य मुख्यविषयः अध्यात्मतत्वमस्ति तथापि भक्तिज्ञान धर्मादिविषयान् दार्शनिकतत्वात् पृथक् कर्तुं न शक्यते। अत एव अध्यात्मरामायणमनुस्मरन् अत्र यथासाध्य तत् दर्शनत्वानां समावेशः कृतः। पाश्चात्यदर्शनमिव भारतीयदर्शनं न केवलं मानसिकचिन्तनमिव अपितु अस्योद्देश्यं मोक्षप्राप्तिरेवास्ति।

*

EP-4

स्त्रीधनम्

डॉ. सुनीता महान्ति, पुरी

धर्मशास्त्रेषु यद्यपि बहवः विषयाः पर्यालोचिताः परिशीलिताश्च दृश्यन्ते तेषु सर्वेषु विषयेषु दायभागः प्रमुखं स्थानं भजते। अयं च दायभागः न केवलं धर्मशास्त्रे अपि तु भारतीयजनजीवने

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अतिनिवीडभावेन निबध्यते। तत्रापि स्त्रीधनस्य अतीव महनीयमतत्वं किं च प्रयोजनीयमपि विद्यते। धर्मशास्त्रे व्यवहारभागे अष्टादशविवादपदानि मन्वादयः स्मृतिकाराः विचारयन्ति। तेषु अष्टादशविवादपदेषु विभागपदम् अन्यतमम्। यत्र पितृधनस्य विभागप्रकारः विभागकालः तथा च पुत्रस्य कन्यायाः, पत्न्या धनग्रहणप्रकारः धनग्रहणे केषामधिकारः इत्यादयो विषयाः समाकलिताः सन्ति।

दायस्तावत् द्विविधो भवति। अप्रतिबन्धः सप्रतिबन्धश्चेति पितृधनं तावत् अप्रतिबन्ध दायः, अथवा रिक्थमिति। यस्य पितृद्रव्यस्य प्राप्तये न कश्चन प्रतिबन्धो भवति स तावत् दायः अप्रतिबन्धदायः। यस्य धनस्य प्राप्तये प्रतिबन्धो विद्यते स च दायः स प्रतिबन्धदायः। यथा पितृव्यादिधनम्। दायस्यास्य विभागकालविषये सर्वादौ भगवता मनुना प्रतिपादितम्। यथा—

ऊर्ध्वं पितृश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः समम्।
भजेरन् पैतृकं रिक्थमनीशास्ते हि जीवतुः॥

❋

EP-5

श्रीविष्णुसहस्रनामान्तर्गते दशप्रमुखनाम्नां व्युत्पत्ति-विवेचनम्

(शाङ्करभाष्यस्य-आलोके)

कुमारी शिवानी, कुरुक्षेत्रम् (हरियाणा)

अस्मिन् शोधपत्रे मया दशसु नामसु पुँल्लिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग-नपुंसकलिङ्गवर्तिषु, तेषां व्युत्पत्ति-चिन्तनं कृतम्। शङ्कराचार्यस्य व्युत्पत्तिम् आधारभूतां स्वीकृत्य अन्येषाम् आचार्याणां व्युत्पत्ति-विश्लेषणमपि मया दर्शितम्। यथा—कृतिः, अस्य शब्दस्य लक्षणं शङ्कराचार्येण इत्थं कृतम्—पुरुषप्रयत्नः कृतिः क्रिया वा, सर्वात्मकत्वात्तदाधारतया वा लक्ष्यते कृत्येति वा कृतिः। तदनुसारं कृधातोः भावेक्ति न् प्रत्यये सति स्त्रीलिङ्गे, एकवचने कृतिशब्दो निष्पद्यते। अस्य पर्यालोचने इत्थं दर्शितम्—कृत्यालक्ष्यत इति कृतिः, कृतेः कर्त्ता इत्यर्थः। अत एव कृतिरिति नाम्ना कर्त्ता नारायण एव बोध्यते, यद्वा कृतिः प्रयत्नस्तद्रूपो भगवान् नारायणस्तन्नाम्नो-पास्यते। सत्यभाष्यकारः 'डुकृञ् करणे तनादिकः', तस्माद् भावे क्तिन् प्रत्यये सति शब्दस्य सिद्धिं करोति। वैदिक-कोशे कृत् धातोः क्तिन् प्रत्ययः, कर्तनयन्त्रम् अर्थात् कृपाणः, क्रियाकौशलं कर्त्तव्यम् इत्यादयः अर्थाः गृहीताः। द्वितीयः अर्थः यशः, अन्नम् इति। (i) यशः—द्वेषीजनानां मर्म कष्टं वा कर्तयति अर्थात् यशोहि द्विषां मर्माणि कृन्तति। (ii) एवमेव सम्यक् रूपेण उपयोगं न कुर्वद् अन्नमपि आयुः क्षीणं करोति अर्थात् अन्नमपि असम्यक् आयुः एव कृन्तति। आंग्लभाषायाः Corn (कार्न) शब्दः कृत् धातोः निष्पद्यते।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-6

महाभारतस्य तिथिः

डॉ. कृष्ण नारायण पाण्डेय, 'भरद्वाज'

महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास रचित महाभारत महाकाव्ये विश्वस्य प्रथम युद्ध सम्वाददाता संजयः यथा नयन दृष्टम् युद्धम् वर्णयति तथैव स्वपौत्राणाम् कौरव पाण्डवानाम् वर्णनम् प्रस्तुतम्। यथा श्रीकृष्ण जयंती जन्माष्टमी श्रीराम जयंती रामनवमी जन्मोत्सवरूपे समायोज्यते प्रतिवर्षम् तथैव गीता जयंती मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी दिने आयोज्यते अतः इयमेव तिथिः महाभारत युद्धस्य परम्परया विद्यते। 1030 ई० समये प्रथम पाश्चात्य भारतविद्याविद अलबेरुनी ग्रन्थानुसारम् शकारिविक्रमादित्यस्य 57 ई०पू० शालिवाहनस्य 78 ई० सम्वत्सर द्वयसदृशम् कलियुग सम्वत् प्रारम्भः 3102 ई०पू० समये इति प्रस्तुतम्।

*

EP-7

प्राचीनविवाहसंस्कारस्य वैज्ञानिकत्वम्

विक्रमकुमारराउत, पुणे

इह खलु संसारे जायमानः मनुष्यः त्रिभिः ऋणैः जायते। देवार्चनेन देवऋणस्य विद्याध्ययनेन ऋष्यृणस्य श्राद्धदानेन पितृणस्यापाकरणं भवति। गृहस्थाश्रमस्य प्रवेशाय विवाहो भवति माध्यमः। विवाहद्वारा मनुष्यः गृहस्थाश्रमे प्रविशति। गृहस्थाश्रमस्य धर्मान् पालयितुं शमर्थो भवति। विशेषतः अस्मिन्नाश्रमे स्थित्वा मनुष्यः पितृणस्यापाकर्म निमित्तं श्राद्धादिकर्मकरणाय योग्यो भवति।

सर्वेषामाश्रमिणामन्नदानाय समर्थो भवति। तस्मात् अयमाश्रमः ज्येष्ठाश्रम इति भवति। अत एव विवाहं विना गृहस्थाश्रमप्रवेशः न सम्भवति। यद्यपि अयं विवाहः उद्वाह-पाणिग्रहणं पाणिपीडनं शुभपरिणयाद्यर्थे व्यवहृतो भवति, तथापि विवाहस्यास्य महत्त्वं सामाजिकदृष्ट्या पारमार्थिकदृष्ट्या आध्यात्मिकदृष्ट्या चाधिक्यमस्ति। विवाहस्यास्य भेदाः अष्टप्रकाराः दृश्यन्ते, यथा—ब्राह्म-दैवार्ष-प्राजापत्य-गान्धर्व-राक्षसासुर-पैशाचश्च। अत्राद्याश्चत्वारः विवाहः धर्म्यः अन्ये चाधर्मरहिताः भवन्ति। विवाहस्योद्देश्यं भवति पितृणापाकरणम्, यागाद्यनुष्ठानाय पत्न्या आवश्यकता पुत्रोत्पति-द्वारानन्तलोकप्राप्तिः तथा च प्राकृतिकसुखानुभवः।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-8

दत्तकपुत्रग्रहणविधिः

श्रीजगमोहनमिश्रः, पुणे

विवाहस्य बहुप्रयोजनीयतासु पुत्रोत्पादनं स्वकुलस्य विवर्द्धनं चरमं परमञ्च लक्ष्यं भवति। विवाहे कृतेऽपि यदि पुत्रोत्पत्तिर्न भवति तदा दत्तकपुत्रस्य ग्रहणं भवति। अर्थात् यः अपुत्रः मृतपुत्रोवा पुत्रप्राप्तिर्निमित्तं स्वकुलेषु स्वगोत्रेषु सपिण्डेषु वा पुत्रं याचेत्। याचनायाः विधिरपि विद्यते। यस्तावत् पुत्रवान् स्वज्येष्ठपुत्रं विना मध्यमादिपुत्रं दातुं शक्नुयात्। यः पुत्रदानं करोति स दाता यञ्च गृह्णति स प्रतिग्रहीता भवति। दत्तकपुत्रस्य सर्वप्रथमं लक्षणं मनुस्मृतौ (9/168) प्राप्यते। यथा—

माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि।
सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमो सूतः॥

दत्तकपुत्रस्य धर्मशास्त्रेषु यः ग्रहणप्रकारः स मयाऽत्र उपस्थाप्यते। वा शब्दान्मात्रभावे पित्रैव दद्यात्, पित्रभावे मातैवोभयसत्त्वे तूभावपीति मदनः। आपद्ग्रहणादनापदि न देयः। अयं निषेधो दातुरेव पुरुषार्थो न क्रत्वर्थ इति विज्ञानेश्वरः। तन्न अस्य वाक्याददृष्टार्थतया क्रत्वर्थत्वावगमात्। कथंचिद्दृष्टार्थत्वेऽपि वा नियमादृष्टस्य आवश्यकत्वान्न तदतिक्रमे कार्यविशेषप्रयोजकादृष्टसिद्धिः। केचित्वापच्छब्दस्य स्वार्थत्यागादि आपत्तेरनापत्परि-संख्यापकत्वाभावेन न निषेधार्थकत्वं किंत्वापदो निमित्तमात्रबोधकत्वमेव। न च नैमित्तिकत्व आपदि पुत्राऽदाने प्रत्यवायापत्तिः।

*

EP-9

धर्मस्य निर्णयो ज्ञेयोमिथिला व्यवहारतः — सारांशः

डॉ. इन्द्र नाथ झा, मुजफ्फरपुर

धर्मविषयकं चिन्तनं प्राचीनकालादेव मिथिलायां परम्पराप्रसिद्धमस्ति। गौतम याज्ञवल्भ्य प्रभृतिधर्म-शास्त्रिणां परम्परायां बहबो धर्मशास्त्रसम्बद्धनिबन्ध ग्रन्था अत्रलिखिताः। अस्याः पुराण प्रसिद्धमिथिलायाः धर्मसम्बन्धिचिन्तनमवलोक्यैव वृद्धयाज्ञवल्भ्यस्य भविष्यपुराणस्य च 'धर्मस्यनिर्णयो ज्ञेयो मिथिलाव्यवहारतः' इति वाक्यं लोके प्रसिद्धं प्रचलितं चावलोभ्यते।

कमलाकर भट्टेनापि मैथिलमतं श्रद्धया स्वीकृतमवलोभ्यते च प्रसिद्धनिर्णय सिन्धु ग्रन्थे 'इति मैथिलः' इति रूपेण। धर्मविषयिकाजिज्ञासा विद्यतेऽत्रत्या विशेषता। अद्यापि अस्मिन् विषये सामाजिकैः संस्कृतपण्डिताः पृच्छ्यन्ते। उत्तरं प्रदानञ्च सर्वथा वाञ्छितम्भवति। उक्त सूक्तिविषये दृढतयाकथयितुं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शक्यते यत् वाक्यनिर्माणे न कोऽपि पक्षपातः कृतोऽस्ति। क्षेत्रीय पक्षपाताशङ्का न काचित् शङ्कनीया। प्रकृतशोधनिबन्धे पूर्वोक्त शीर्षक-माश्रित्यैव विवेचनं कृतमिति।

*

EP-10

दुर्गासप्तशत्यां ज्योतिषतत्त्वम्

आचार्य गोविन्दराम शास्त्री, जम्मू

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धास्त्रभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
विभ्रातामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रं भजे॥

अद्य ''वैज्ञानिकेयुगे, कलियुगे शत्तया: प्राधान्यं वर्तन्ते यतोहि षट्शास्त्रेषु ज्योतिषशास्त्रं प्रत्यक्षशास्त्रं स्वीकृतं कृतमस्ति।'' दुर्गासप्तशत्यां दुर्गास्तुत्यर्थं वर्णितपंक्त्यां ''विद्युत्'' शब्देन दुर्गाया प्रत्यक्षं ज्योतिस्वरूपमेव ज्योतिषतत्त्वम्। एवं हि—

भौमावास्यानिशामग्रे चन्द्रे शतभिषां गते।
विलिख्य प्रपठेत् स्तोत्रं स भवेत् सम्पदां पदम्॥

अत्र वार, तिथि, नक्षत्र, पक्ष चन्द्रादि वर्णनमेव ज्योतिषतत्त्वं मया स्वीकृतमस्ति। अत्र पंचांगानि एव ज्योतिषशास्त्रस्य अंगानि सन्ति। एव हि—

नमोदेव्यै महादैव्यै शिवाये सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्मताम्॥

अत्र जम्बुकाश्मीर प्रान्ते जम्बु देशान्तरगत वैष्णवीस्थानं एवं हि काश्मीरदेशे शिवधान्यं हि प्रकृत्योः शिव, शिवा विष्णुः वैष्णवी रूपद्वयं वर्तेते।

दैहिक, दैविक, भौतिक जगते एवं हि पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रश्च स्थिति वशात् प्रभावं हि ज्योतिषतत्त्वं, वयं आगम निगम कार्येषु, शक्तियां अनुमानं अनेन अनुभयन्ते। एवं हि—

''सृष्टिस्थितविनाशानां शक्तिभूतसनातनी अलम्''

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-11

धर्मशास्त्रे मीमांसान्यायानां सञ्चारः

डॉ. खगेश्वरमिश्रः, पुरी

वेद एव सर्वशास्त्राणामाकररूपः, वेदानुमापकत्वेनैव धर्मशास्त्रस्य प्रामाण्यम्। 'धर्माख्यं विषयं वक्तुं मीमांसायाः प्रयोजनम्' इति कुमारिलभट्टोक्तिः सर्वथा सङ्गच्छते। अनयोर्द्वयोः शास्त्रयोर्मध्ये महान् सम्बन्धः। विचारशास्त्रमन्तरा धर्मशास्त्राध्ययनं निरर्थकम्। धर्मशास्त्रेऽस्मिन् दुरूहेषु स्थलेषु व्यवस्थापयितुं शब्दतः केषाञ्चन न्यायानां समुद्धारः धर्मविद्भिः क्रियते, स्थलविशेषेषु अर्थतोऽपि केचन न्याया आपतन्ति। यथा व्यवहारविचारदशायाम्—नृपस्य प्रजापालनं धर्मः प्रजापालनं च दुष्टनिग्रहपूर्वकं साधुसुसंरक्षणरूपम्। तच्च दुष्टादुष्टपरिज्ञानेन भवति। दुष्टादुष्टपरिज्ञानं व्यवहारदर्शनादेव भवतीति तदर्थं व्यवहारदर्शनं प्रत्यहं कर्त्तव्यतया—''व्यवहारान् नृपः पश्येत् सभ्यैः परिवृत्तोऽन्वहम्'' इति विहितम्। अत्र अन्वहं पश्येत् इति नित्यतया सन्ध्यादिवद्विधानात् प्रत्यवायपरिहारफलकत्वं स्वर्गादिफलकत्वं च व्यवहारदर्शनस्य 'दध्नेन्द्रियकामस्य जुहुयादि'त्यादिवत् संयोगपृथकत्वन्यायेन स्वीक्रियते। एकस्योभयत्वे तु संयोगपृथक्त्वम्। तत्र दध्ना जुहोतीति वाक्यान्तरेण नित्यसंयोगस्यापि विहितत्वात्।

❋

EP-12

वैदिकयुगेधर्मस्य स्वरूपम्

गुणीता माड़वा, वाराणसी

वैदिकयुगे धर्म शब्दोऽयम् न सम्प्रदायभुक्तः, मानवजन्मस्य साफल्यमेवहि मुख्यलक्ष्यम्। तत् संसाधनार्थम् यत्किमपि क्रियते तत्तु धर्मः शब्देन प्रबुध्यते। मानवदेहस्तु पृथिव्यप्तेजवायुराकाशपञ्चतत्त्वस्य समन्वयः। अतः पञ्चतत्त्वानाम् सम्यक् आराधनमेव प्रथमोः कर्त्तव्यः। पञ्चतत्वानि तु परमेश्वरस्य दानम् अतएव परमेश्वरः एव सर्वाधिपतिः। कथयन्ति उपनिषद्मन्त्राः—

''ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चिद्जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मागृधः कस्यस्विद्धनम्॥''

अयमेव धर्मः। वैदिक ऋचासु सज्जीवनाय स्तुतयः दृश्यन्ते। सुन्दरजीवनयापनमेव हि मानवानाम् धर्मः। एतदर्थम् देवप्रार्थना क्रियते। सद्गुणानाम् सम्यक्विचाराणाम् सम्यक्दृष्टेः प्राप्त्यर्थम् ऋचाः गायन्ति, ''आरे देवा द्वेषो अस्मद् युयोतनोरू णः शर्म यच्छता स्वस्तये॥''

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA (ऋक् 10/63/12)

वर्तमान समये मानवः स्वधर्मतः परिस्खलितः दृश्यते, श्रीमद्भगवद्गीतायाः ''स्वधर्मे निधनं श्रेयो परधर्मो भयावहः'' श्लोकोऽयम् प्रत्यक्षीभूयते सर्वत्र। आधुनिक समये मानवमात्रस्य जागरणाय विश्वशान्तये च वैदिक वाङ्मयस्य प्रचारप्रसारस्यात्यन्तावश्यकता प्रतीयते।

*

EP-13

स्त्रीणाम् आपद्धर्मः

शशिनाथठाकुरः, वाराणसी (उ०प्र०)

आपद्धर्मस्तु सामान्यरूपेण बहुशः श्रुयते। किन्तु किमस्य लक्षणम्? कः सीमा? कस्यां परिस्थितौ प्रवर्तत इति न सामान्यैः जनैः अवधार्यते। विशेषतो स्त्रीणाङ्कृते एतद्विषयः अस्पष्टत्वात् यथारुचि प्रवर्तयते। किन्तु धर्मशास्त्रेषु सर्वमेतत् परिभाषितं व्याख्यायितञ्चेति। विशेषतो वर्तमानकाले इयं धर्मशास्त्रस्य औदार्यपूर्णा व्यवस्था सर्वजनसुलभा करणीया वर्तते। शोधलेखोऽयं संक्षेपेण इमां धर्मशास्त्रीणां व्यवस्थाम् उपस्थापयति।

*

EP-14

आदिकाव्य कथानकम्

तिवारी माध्वी, वाराणसी

तत्र कलियुगस्य वर्णनेन सहैव कलौ मनुष्याणामुद्धारस्यानेके उपाया वर्णिताः सन्ति। अस्मिन्नेव प्रसंगे रामायणस्य पाठस्तथा तन्महिमाविजयेऽपि चर्या समायातास्ति। पाठस्य कृतेऽपि उत्तमकालस्य निर्देशोविहितोऽस्ति। द्वितीये च प्रधानतया नारदसनत्कुमारयोः संशयो वर्णितोऽस्ति। पुनश्च सोमदत्तब्राह्मणस्य राक्षसत्वं तदुद्धारोऽपि रामायण श्रवणेन समुपवर्णितो जातः। अतः परं माघमासे रामायण श्रवणस्य फलं निर्दिष्टयस्ति।

*

EP-15

वर्तमान समय में नैतिक मूल्यों का क्षरण

डॉ. गीता शुक्ला, प्रतापगढ़ (उ०प्र०)

प्राचीन भारतीय जीवन की पृष्ठभूमि पर भारतीय ऋषियों ने अपनी चिंतन सलिला में जिन प्राचीन मूल्यों की आधार शिला रखी थी वह 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' में समाहित थी। अर्थात् जो समस्त

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्राणि मात्र के कल्याणकारी भावना से ओत-प्रोत थीं। जहाँ षोडश संस्कारों के माध्यम से जीव को परिष्कृत एवं परिमार्जित किया जाता था तब कहीं जाकर वह देवता की श्रेणी में रक्खा जाता था। वास्तव में नैतिक मूल्य मानव व्यवहार को नियंत्रित एवं निर्देशित करते हैं।

परन्तु आज हमारा सबसे बड़ा दुर्भाग्य है कि हम उन प्राचीन मूल्यों को भूल चुके हैं। आज यदि अभाव है तो केवल सदगुणों एवं चरित्र का और बिना चरित्र निर्माण के हम ऐसे रेत पर खड़े हैं जहाँ से हमारा समस्त युवा वर्ग पतन के गर्त में जा रहा है। मानव-मानव न रहकर पशु हो गया है ऐसे में मूल्य शिक्षा एक विचारणीय प्रश्न बनकर हमारे सम्मुख खड़ी है और हमारे विचार से इस समस्या का उचित समाधान हमारे शिक्षा शास्त्रियों के पास ही है।

*

EP-16

रामायणकालीन अर्थव्यवस्था की आधुनिक सन्दर्भों में उपयोगिता

डॉ. श्रीमती मनोरमा गुप्ता, कानपुर

भारतीय जनमानस को सच्चे अर्थों में भारतीयता से अनुप्राणित करने वाले आलोकपुंज का नाम है—'रामायण'। 'वित्तशास्त्र' को प्राचीन भारत में ''वार्त्ता'' की संज्ञा दी जाती थी। वार्ता का प्रयोग वैश्यों के तीन धन्धों कृषि, गोचारण और व्यापार के लिये किया जाता था। रामायण काल में वार्त्ताशास्त्र का इतना महत्व बढ़ गया था कि उसे ''तिस्रः विद्या'' के अन्तर्गत स्थान दिया गया। रामायण काल में ''बलिषड्भाग'' राजा की आमदनी का प्रमुख स्रोत था। राजकीय आय प्रायः यज्ञादिक धार्मिक कृत्यों के सम्पादन में, ब्राह्मणों और अभ्यागतों के आतिथ्य में, परिवार और मित्रों के संरक्षण में तथा सेना को सुदृढ़ बनाने में व्यय होती थी। अयोध्या की आर्थिक समृद्धि का आभास इन प्रश्नों से होता है जो चित्रकूट में राम ने भरत से पूछे थे—अनेक देवस्थान, पौशाले, तालाब जिस अयोध्या की शोभा बढ़ाते हैं, जहाँ खेती के लिये वर्षा के जल पर निर्भर नहीं रहना पड़ता, जहाँ किसी प्रकार का भय नहीं है, जिसकी भली प्रकार रक्षा होती है, यह कोसल देश धनधान्य से सम्पन्न और सुखी तो है। ''आयस्ते विपुलः कश्चिदल्पतरो व्ययः'' अर्थात क्या तुम्हारी आमदनी बढ़ी हुई और खर्चे घटे हुये हैं। राजा को कर की वसूली में उदार और नरमनीति अपनानी चाहिये।

रामराज्य की उपरोक्त समस्त आर्थिक संरचना आधुनिक सन्दर्भों में अत्यन्त लाभकारी है। रामायणकाल से चली आ रही हमारी श्रेष्ठ परम्परा के बहुत से सूत्र आज के शासन में समाहित हैं। रामायणकाल में घूसखोरी, भ्रष्टाचार, नौकरशाही, स्वार्थलिप्सा, भाईभतीजावाद, धनलोलुपता के दर्शन तक नहीं होते। आज हरितक्रान्ति, श्वेतक्रान्ति, संचारक्रान्ति और मीडियाक्रान्ति हो रही है -

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लेकिन सर्वाधिक आवश्यकता है - विचारक्रान्ति की, सद् आचरण की, नैतिकमूल्यों की, रामराज्य के आर्थिक सूत्रों को अपनाने की।

*

EP-17

पौराणिक साहित्य एवं आधुनिक भारत

डॉ. सुरेन्द्र प्रसाद यादव, कटिहार (बिहार)

भारतीय वाङ्मय में पुराणों की व्यापकता एवं महत्ता असंदिग्ध है, और वे भारत के अतीतकालिक हिन्दू संस्कृति के मूर्तमान गौरव के प्रतीक हैं। आज के वैज्ञानिक युग की आन्तरिक सभ्यता भी पुराणों के प्रभाव एवं उनके महत्त्व को जरा भी कम नहीं कर पायी है। आज भी इनके प्रति वही श्रद्धा और सम्मान है, जो प्राचीन काल में था।

पुराणों के विषय में कहा जाता है कि जो व्यक्ति चारों वेदों और उपनिषदों को साङ्गोपाङ्ग जानता है, पर पुराण को नहीं जानता वह विद्वान् की गिनती में नहीं आता। कोष, दर्शन, व्याकरण, छंद, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा, कला, आयुर्वेद, गान्धर्ववेद, स्थापत्यवेद, राजनीति, समाज नीति, योगतंत्र आदि शास्त्रों का परिज्ञान हमें इनसे प्राप्त होता है। आध्यात्मिक एवं आधिदैविक विषयों के अतिरिक्त आधिभौतिकवाद की भी प्रचुर सामाग्री पुराणों में पायी जाती है। पुराणों से ही अनुशक्ति का ज्ञान प्राप्त कर वैशेषिक दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कणाद ने आकाश में निश्चेष्ट परमाणु के परस्पर सम्मिश्रण से सात पदार्थों की उत्पत्ति का सिद्धान्त स्वीकारा है।

*

EP-18

पुराणों में योग

डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा, जम्मू

प्रस्तुत शोधपत्र में मैने पंचांग के समस्त अंगों की चर्चा न करते हुए केवल 'योग' पर ही विशेष बल दिया है। प्राय: देखा जाता है प्रथम तिथि को लोग व्रतादि में विशेष महत्त्व देते हैं। 'वार' का भी महत्त्व व्रतादि यात्रादि में होता है। नक्षत्र भी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपना महत्त्व दिखाते हैं यथा जातक के जन्मकाल में अमुक नक्षत्र का अमुक चरण है तो उससे जातक के जन्मकाल की राशि का निर्णय किया जाता है और उससे शुभाशुभ फल का प्रतिपादन किया जाता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

परन्तु योग की ओर जनसाधारण का ध्यान नहीं जाता और न ही उस (योग) के शुभाशुभ विवेचन प्रचलित ज्योतिष ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

*

EP-19

धर्मशास्त्र में विधवा का पुनर्विवाह

डॉ. शुकदेव भोइ, वाराणसी

मुख्यतः वेद, वेदाङ्ग, स्मृति, रामायण, महाभारत एवं पुराणों को धर्मशास्त्र के रूप में माना जाता है। किन्तु व्यवहार में मानव समाज में कर्तव्याकर्तव्य का निर्धारण करने वाले शास्त्र को ही धर्मशास्त्र कहा गया है। इसके अन्तर्गत वर्ण, आश्रम और उनके कर्त्तव्य दायित्व तथा विशेषाधिकार, संस्कार, क्षत्रिय और राजाओं के धर्म, व्यवहार, आपद्धर्म, प्रायश्चित, शान्ति और कर्मविपाक आदि अनेक विषयों का समावेश किया गया है। धर्म किसी एक व्यक्ति एवं वर्ग की वस्तु नहीं है। सम्पूर्ण मानवता के कर्मों एवं कृत्यों को व्यवस्थित करना ही इसका विषय है। व्यक्ति और समाज को उत्तरोत्तर उन्नत्ति की ओर ले जाना ही इसका उद्देश्य है।

समाज में बहुत समस्यायें दृष्टिगोचर होती हैं, जिनमें ''विधवा का पुनर्विवाह'' अन्यतम है। विधवा का विवाह करके उसको नूतन जीवन प्रदान करना, एक पवित्र कार्य माना जाता है। यह निर्देश वैदिक युग से लेकर आजतक पाठ्यपुस्तकों में भी पाया जाता रहा है। विशेष करके धर्मशास्त्रों में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। वैदिक भारत में विधवा पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित थी। ऋग्वेद के ''अन्त्येष्टि सूक्त'' (10-18-8), एवं अन्य स्थान पर (10-40-2) भी ऐसे संदर्भ देखने को मिलते हैं, जिनमें विधवा द्वारा देवर के साथ विवाह करने का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। यह विधवा विवाह वस्तुतः नियोग का ही एक रूप था। बौधायन धर्मसूत्र (2-2-3-27), वशिष्ठ धर्म सूत्र (27-74) एवं याज्ञवल्क्य स्मृति (1-137) में भी पुनर्विवाह का उल्लेख देखने को मिलता है।

*

EP-20

याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार प्रायश्चित्त व्यवस्था

डॉ. ममता शर्मा, जम्मू

प्रायश्चित्त शब्द रूढ़ रूप से उस कार्य का द्योतक है जिसे नैमित्तिक कहा जाता है अर्थात् इसका प्रयोग तभी होता है जबकि उसके लिए कोई अवसर आता है। प्रायश्चित्त पाप नाश के लिए

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रयुक्त होता है इसलिए यह काम्य भी है। याज्ञवल्क्य मतानुसार प्रायश्चित्त व्यवस्था या दण्ड देते समय यह ध्यान देना पड़ता है कि जिस विषय पर विचार किया जा रहा है वह निश्चित रूप से वही होना चाहिए जैसे दोष जाने में हुआ है या अनजाने में तथा दोष करते समय स्थान, आयु, जाति, काल, विद्या, धन की स्थिति क्या थी? इन सभी की जानकारी को प्राप्त करके ही अपराधियों को दण्ड देना चाहिए।

याज्ञवल्क्य ने प्रायश्चित्त करने वालों के पाप कर्मों का वर्णन किया है—पाप कर्मों में निरत रहने वाले मनुष्य प्रायश्चित्त न करने पर अर्थात् पश्चाताप न करने पर अत्यन्त भयंकर तथा कष्टमय नरकों में जाते हैं। याज्ञवल्क्य ने बहुत से प्रायश्चित्तों के विषय में बताया है। जैसे—अतिकृच्छ्र प्रायश्चित्त, अर्द्धकृच्छ्र प्रायश्चित्त, कृच्छ्रातिकृच्छ्र प्रायश्चित्त, चान्द्रायण प्रायश्चित्त, तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त, पराकव्रतं प्रायश्चित्त, पादकृच्छ्र प्रायश्चित्त, पर्णकृच्छ्र प्रायश्चित्त, सौम्यकृच्छ्र प्रायश्चित्त तथा तुला-पुरुष-व्रत प्रायश्चित्त। इस प्रकार जो व्यक्ति धर्म की इच्छा से यह सभी प्रायश्चित्त करता है वो व्यक्ति उसी प्रकार यश की प्राप्ति करता है जिस प्रकार बड़े यज्ञों आदि का कर्त्ता अर्थात् करने वाला उनके फलों को प्राप्त करता है। प्रायश्चित्त के द्वारा मनुष्य के मन में शान्ति होती है।

*

EP-21

वाल्मीकीय रामायण में अन्तर्हित अन्तरेन्द्रिय बिम्ब

डॉ. गीता अग्रवाल, पूर्णिया (बिहार)

मनुष्य की समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ बाह्य स्तर पर एक-दूसरे से पृथक् मालूम पड़ती हैं तथा आन्तरिक स्तर पर संवेदन-सूत्र के द्वारा परस्पर अनुस्यूत रहती हैं परन्तु जब किसी इन्द्रिय को संवेग का भार काफी अधिक प्रभावित करता है तो वैसी स्थिति में अमुक इन्द्रिय के द्वारा अपने कार्य से विरत होकर अन्य इन्द्रिय के कार्य का संपादन करना ही अन्तरेन्द्रिय है और इससे उद्भूत बिम्ब ही अन्तरेन्द्रिय बिम्ब है।

वाल्मीकीय रामायण में यह बिम्ब स्वल्प ही उपलब्ध है परन्तु जो कुछ है वह पूर्णता में है। रामायण के अन्तर्गत हर्षातिरेक की अवस्था में नेत्रेन्द्रिय, रसेनेन्द्रिय एवं स्वरेन्द्रिय का कार्य कर रही है तो कर्णेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय आदि भी अपने कार्य से विरत होकर अन्य इन्द्रिय का कार्य बखूबी निभाती प्रतीत होती है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-22

श्रीमद् भागवत और प्रणवभागवतम् तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. कल्पना द्विवेदी

भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यास ने द्वापर युग में अल्पधी मानव को अति सरल विधि से पुरुषार्थ चतुष्ट्य की सिद्धि प्राप्ति योग्य बनाने के उद्देश्य से चतुर्लक्षकोटि पुराण संहिता को अष्टादश पुराणों में आबद्ध किया। इन अष्टादश पुराणों में समेरु रूप श्रीमद् भागवत महापुराण है। जो अपने विषय में वैशिष्ट्य, मनोहरी शैली, आख्यानों की दार्शनिक प्रस्तुति, छन्द, अलंकार शब्द विज्ञान इत्यादि कारणों से अद्वितीय है।

श्रीमद् भागवत महापुराण में तीन वक्ता हैं—

(1) सूत (2) शुक (3) उद्धव। सूत शौनिक संवाद, शुक राजा परीक्षित संवाद, मैत्रेय उद्धव संवाद अत्यन्त प्रसिद्ध है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अतिविख्यात महाकवि डॉ. इच्छाराम द्विवेदी प्रणव जी ने श्रीमद् भागवत महापुराण का आलोडन कर 'प्रणवभागवतम्' की रचना की। इस ग्रन्थ का उपजीव्य श्रीमद् भागवत् ही है। श्री प्रणव जी ने इस ग्रन्थ को त्रयोदश अध्यायों में आबद्ध किया है। इस ग्रन्थ में श्रीमद् भागवत् की कथाओं, आख्यानों को दार्शनिक रूप से रूपायित किया गया है।

*

EP-23

रामायण में ध्वन्यात्मकता

डॉ. अर्चना कुमारी दुबे, राजस्थान

रामायण के प्रसङ्ग एवं वर्णन हमारी चेतना में बस गए है इसका मुख्य कारण वाल्मीकि के शब्दों की ध्वन्यात्मकता है। रामायण में पग-पग पर ध्वनि-तत्त्व की प्रधानता देखने को मिलती है। आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि की व्याख्या करते हुए कहा है कि जहाँ अर्थ अपने आपको तथा शब्द अपने अर्थ को गौण बनाकर प्रतीयमान अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं, उस काव्यविशेष को विद्वानों ने ध्वनि काव्य कहा है।

यथार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथिताः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रविसंक्रान्तसौभाग्यस्तुषारावृतमण्डलः।
निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते॥

निःश्वास से अन्धे बने दर्पण के समान (इस हेमन्त ऋतु में) चन्द्रमा चमक नहीं पाता। आनन्दवर्धन के अनुसार यहाँ अन्ध शब्द में अर्थान्तर-संक्रमित-अविवक्षित वाच्य ध्वनि है। दर्पण अन्धा नहीं हो सकता, अतः अन्ध-शब्द दर्पण के अर्थ में बाधित होकर अतिशय धूमिल या धुंधलेपन की अधिकता को व्यंजित करता है। इस पद्य की ध्वन्यात्मकता और भी गूढ़ एवं चमत्कारजनक है।

कविता में ध्वनितत्त्व की असीम सामर्थ्य तथा उसके प्रसार की गहराई को अनन्त सम्भावनाओं के साथ वाल्मीकि दिखला सके हैं। रामायण में पग-पग पर ध्वनि-तत्त्व दृष्टिगोचर होता है। शब्दों की ध्वन्यात्मकता से ही मानो रामायण के सभी प्रसङ्ग एवं घटनाएँ हमारे समक्ष मूर्त्त रूप धारण कर अन्तःमन का स्पर्श करती हुई आज भी भारतीय संस्कृति का आकाश-दीप एवं गौरवशिखर बना हुआ है। अतः मानवता के आदर्शों की मनरेरम मञ्जूषा रामायण की कथा आज भी जगत् प्रसिद्ध है। अतः महर्षि वाल्मीकि ने सत्य ही कहा है—

यावद् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥

*

EP-24

वाल्मीकि रामायण में राजतन्त्र

डॉ. गीता परिहार, मुरादाबाद

वाल्मीकि रामायण विश्वसाहित्य में कीर्तिलब्ध एक अनुपम ग्रन्थ है। कलात्मक अभिव्यंजना के साथ ही वैचारिक दृष्टि से समृद्ध इस ग्रन्थ में सांस्कृतिक-चिन्तन पर आधारित जीवन मूल्यों की व्यवस्था अत्यन्त व्यापक, विशिष्ट तथा तर्कपुष्ट है। राजनीतिक आचार-विचार तो प्रस्तुत ग्रन्थ में एक आदर्श स्थिति में विराजमान हैं। आज की लोकतान्त्रिक व्यवस्था में भी राजतन्त्रात्मक रामराज्य के आदर्श को स्थापित करने की बात कही जाती है।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार पृथ्वी पर राजा का अवतरण जनता की माँग पर ब्रह्मा जी द्वारा पंच दिग्पालों के तेजों को संयुक्त करने पर हुआ था यथोक्तम्—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पञ्चरूपाणि राजानो धारयन्त्यमितौजसः।
अग्नेरिन्द्रयस्य सोमस्य यमस्य वरुणस्य च॥

औष्ण्यं तथा विक्रमं च सौम्यं दण्डं प्रसन्नताम्।
धारयन्ति महात्मनो राजानः क्षणदाचरः॥ (अरण्य० 40/12-13)

प्रथम राजा वाल्मीकि रामायण में ब्रह्मनिर्मित वर्णित है किन्तु आगे चलकर सम्पूर्ण राज्यव्यवस्था में राजा का पुत्र ही राजा का उत्तराधिकारी होता था, ऐसा वर्णन प्राप्त होता है। राजा अपने शासन काल में ही अपना उत्तराधिकारी मन्त्रियों तथा प्रजाजनों की सम्पति से घोषित कर देता था। विशेष परिस्थितियों में केवल जनता द्वारा राजा के वंशज को राज्याधिकारी बनाया जाता था। जैसे—सुदेव के पुत्र 'श्वेत' इसका उदाहरण है।

बाली तथा रावण आदि के उदाहरण भी इसके अन्तर्गत आते हैं। इसके अतिरिक्त राजा के लिए कुछ गुण अपेक्षित माने जाते थे जैसे—उसी राजवंश का ज्येष्ठ पुत्र होना आदि इसके अतिरिक्त कुछ चारित्रिक गुण आवश्यक माने जाते थे जैसे—शान्तचित्त, पराक्रमी, निष्पक्षता, अहंकार-शून्यता, जितेन्द्रियता, न्यायप्रियता, दयालुता, शास्त्र व शास्त्रवेत्ता, शरणागतवत्सलता तथा सत्यवादिता आदि।

*

EP-25

वाल्मीकि रामायण में शकुन-अपशकुन

डॉ. दिनेश कुमार शर्मा,
डॉ. (श्रीमती) सोमवती शर्मा, एटा, उ०प्र०

भारतीय लोक विश्वास में शकुन तथा अपशकुन का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। लोक में इनके अनेक रूप तथा इनसे सम्बन्धित अनेक प्रकार के विश्वास प्रचलित हैं। वाल्मीकि रामायण के प्रणेता आदिकवि महर्षि वाल्मीकि भी इनसे अछूते नहीं रहे हैं। वे बड़ी ही निकटता से आबद्ध हैं, लोक जीवन को उन्होंने बहुत निकटता से परखा है और अपने लोक जीवन को उन्होंने शकुन और अपशकुनों के अनुभव को रामायण में विभिन्न तर्कसंगत सन्दर्भों के रूप में अंकित किया है।

रामायण के बालकाण्ड में जब राम आदि चारों भाइयों के विवाह संस्कार सम्पन्न हो जाते हैं तो देवताओं के नगाड़े बजने लगते हैं और आकाश से पुष्पवर्षा होने लगती है। दिव्य-दुन्दिभियों की गम्भीर ध्वनि, मांगलिक गीतों के मनोहारी शब्द और दिव्य-वाद्यों के मधुर घोष के साथ झुण्ड की झुण्ड अप्सराएँ नृत्य करने लगीं और गन्धर्व मधुर, मांगलिक, शुभ शकुनीय गीत गाने लगे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इसके पश्चात् महर्षि विश्वामित्र जब अपने आश्रम को प्रस्थान करते हैं, राजा जनक अपनी कन्याओं को भारी दहेज देकर राजा दशरथ आदि को विदा करते हैं तो महाराज दशरथ को कुछ शकुन दिखतें हैं कि एक ओर तो भयंकर पक्षी घोर शब्द उत्पन्न कर रहे हैं वहीं दूसरी ओर मृग उन्हें दाहिनी ओर करके जा रहे हैं जिसे देखकर राजा दशरथ का हृदय कम्पित होता है और मन विषादग्रस्त हो जाता है। इस सम्बन्ध में वे अपने आचार्य वशिष्ठ से पृच्छा करते हैं कि ये कैसे शुभाशुभ शकुन हैं। इस पर गुरु वशिष्ठ शकुन-फल बताते हुए कहते हैं कि पक्षियों के कर्कश कलरव से ध्वनित होता है कि कोई भयंकर भय आने वाला है किन्तु ये मृग उस भय को भगा रहे हैं। इसी प्रकार अपशकुनों का विशिष्ट वर्णन रामायण में वर्णित मिलता है।

*

EP-26

भुशुण्डि रामायण में वर्णित श्री राम की रास लीलाएँ

डॉ. चन्द्रप्रभा गंगवार, बरेली (उ०प्र०)

सम्पूर्ण रामायण साहित्य श्री राम के मर्यादा पुरुषोत्तम स्वरूप की झाँकी प्रस्तुत करता है, परन्तु इस परम्परा को तोड़ते हुए रसिक काव्यधारा के साहित्यकारों ने मर्यादापुरुषोत्तम श्री राम को एक नूतन स्वरूप प्रदान करते हुए उनके शृङ्गारिक रूप की उपासना की है, और उनकी रास लीलाओं को अपने काव्य का आधार बनाया।

रसिक काव्य परम्परा के रामकथा साहित्य में श्री भगवती प्रसाद सिंह द्वारा सम्पादित ''भुशुण्डि रामायण'' का प्रमुख स्थान है। यह ग्रन्थ श्री राम के रसिक स्वरूप व गोपियों के साथ उनकी रास लीलाओं को प्रस्तुत करता है। साहित्य मर्मज्ञों के लिए श्री राम की रास लीलाएँ सर्वथा नूतन विषय हैं। इस विषय में ज्ञान पिपासुओं की ज्ञान पिपासा को शान्त करना ही मेरे शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य है।

भुशुण्डि रामायण में श्री राम अपना बाल्यकाल सरयू पार सुखित गोप के घर बिताते हैं, वहीं पर नाना प्रकार की लीलाएँ कर वे रास लीलाएँ रचाते हैं। उनकी रासलीलाएँ मुक्ति का माध्यम है, और गोपियाँ 18 हजार दण्डकारण्यवासी ऋषियों का अवतार हैं। श्री राम की रास लीलाएँ जिज्ञासा का पुँज है, और इस जिज्ञासा को शोधपत्र में शान्त करने का प्रयास किया गया है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-27

सुन्दरकाण्ड की उपजीव्यता

डॉ. सिद्धार्थ शंकर सिंह, छपरा

वाल्मीकीय प्रतिपादित आर्षकाव्य रामायण भारतीय सांस्कृतिक तथा साहित्यिक गगन का वह सूर्य है जिससे अनुप्रेरित होकर भारत एवं विदेशों में राम-कथा के हजारों ग्रन्थ विकसित हुए। इस उपजीव्य आदिकाव्य में 'मधुमय भणिति' के रूप में काव्य-शैली की अद्भुत परम्परा प्रवर्तित हुई। विषय एवं प्रस्तुति की दृष्टि से रामायण के सातों काण्डों में सुन्दरकाण्ड अत्यधिक आकर्षक है। 'सुन्दर' शब्द भारतीय संस्कृति में मङ्गल का वाचक है एवं इस शब्द ने हनुमान के चरित्र के विभिन्न पक्षों को उद्भाषित किया है।

सुन्दरे सुन्दरो रामः सुन्दरे सुन्दरः कपिः।
सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे किं न सुन्दरम्॥

सागर के वाष्पित बुन्दों से मेघ नव-नव वृष्टि करते हैं उसी प्रकार इस उपजीव्य सागर से कथानक ग्रहण कर कवियों ने विभिन्न काव्यों, नाटकों एवं अन्य रचनाओं में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। प्रस्तुत शोध निबन्ध में प्रमुख नाटकों एवं अन्य रचनाओं में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। प्रस्तुत शोध-निबन्ध में प्रमुख नाटकों तथा काव्यों की सुन्दरकाण्डगत विषयवस्तु को प्रस्तुति की समीक्षा का प्रयास है।

*

EP-28

हिन्दू नीतिशास्त्र में अन्तर्निहित धर्माधर्म की संकल्पना, एक अवलोकन

घनश्याम भट्टः, दिल्ली

हिन्दू नीति शास्त्रों में धर्म शब्द का प्रयोग बहुधा देखा सुना गया है जो कि अनेक अर्थों में प्रयुक्त है। कहीं धर्म शब्द साधारण धर्म वर्णाश्रम धर्म, व कहीं-कहीं पुरुषार्थ के अर्थ में प्रयुक्त हुआ मालूम पड़ता है। किन्तु यदि हम विचार करें तो सामान्य रूप से धर्म शब्द उन विषयों और सिद्धान्तों को इंगित करता है, जिसके द्वारा समाज व व्यक्ति नियमित व व्यवस्थित रहता है। जिसके परिपालन से समाज में सुख शान्ति समृद्धि व कल्याण की स्थापना होती है। जबसे मानव सभ्यता का विकास हुआ तब से ही धर्म की अवधारणा रही है। धर्म के दश लक्षणों को बताते हुए भगवान् मनु ने मनुस्मृति में कहा है—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धृतिः क्षमा दमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
श्रीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

नीतिशास्त्र में आचरण के अर्थ में धर्म शब्द का प्रयोग हुआ है। जो वेद स्मृति आदि के अनुकूल हो वह धर्म है। जो प्रतिकूल हो वह अधर्म है। यथा—**आचारः परमो धर्मः, श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।** इस प्रकार विभिन्न ग्रन्थों में वर्णित धर्म का विवेचन इस शोधपत्र में किया जाएगा।

*

EP-29

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण और आधुनिक युद्ध के सिद्धान्त

मानस शरण तिवारी, इलाहाबाद (उ०प्र०)

युद्ध के सिद्धान्तों का पालन करने से जीत की सम्भावना अधिक रहती है। यदि इन नियमों / सिद्धान्तों की अवहेलना की जाय तो देश संकट में पड़ सकता है।

प्रायः युद्ध के सभी नियम पाश्चात्य विद्वानों द्वारा ही प्रतिपादित किये गये हैं। रूसी सैन्य साहित्य में भी इसके विषय में लिखा गया है किन्तु भारतीय आधुनिक साहित्य में इसका अभाव सा दीखता है। जहाँ तक युद्ध और उसके सिद्धान्तों की बात है तो श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण की उपादेयता कम नहीं है। आवश्यकता उसके आधुनिक दृष्टिकोण से परिशीलन करने की है। आज हम युद्ध के जिन सिद्धान्तों की बात करते हैं वही सिद्धान्त रामायण में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। प्रस्तुत लेख में उन्हीं कतिपय सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में रामायण की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट कराने का लघु प्रयास किया गया है।

*

EP-30

पुराणों में त्रिविध उत्पात विवेचन

पारस राम, जम्मू

भू-मण्डल पर तीन प्रकार के उत्पात घटित होते हैं दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम। ग्रह और नक्षत्रों से उत्पन्न विकारों के द्वारा जो शुभाशुभ आकस्मिक घटनायें घटित होती हैं उन्हें दिव्य उत्पात कहते हैं, आकाश में उत्पन्न विकारों के द्वारा जो घटनायें घटित होती हैं उन्हें आन्तरिक उत्पात कहते हैं और भूमि पर उत्पन्न विकारों के द्वारा जो घटनायें घटित होती हैं उन्हें भौम उत्पात कहते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इन त्रिविध उत्पातों का विवेचन अग्नि पुराण, ब्रह्म पुराण, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, गरुड पुराण, नारद पुराण, मत्स्य पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण में दिया हुआ है। इन उपर्युक्त पुराणों में त्रिविध उत्पातों के भिन्न-2 भेद, लक्षण, उत्पात घटित होने के कारण, स्थान, समय, शुभाशुभ फल, उत्पात का फलीभूत होना या निष्फली होना, उत्पात घटित होने से किस प्रकार की हानि हो सकती है और उत्पात के शमन होने का विधान भी विस्तार से दिया हुआ है।

इन उत्पातों के घटित होने के कारण एवं इन उत्पातों के अनेक शान्ति विधानों का ज्ञान हम इन पुराणों के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं जिससे हमें भविष्य में होने वाले अनिष्ट का पूर्व में ही पता चल सकता है और होने वाले अनर्थ से बचने का प्रयास कर सकते हैं। दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम तीनों उत्पातों के अनेक भेद हैं। दिव्य उत्पात को सबसे अधिक बली माना गया है और इसकी शान्ति कराने पर भी शान्त नहीं होता है। आन्तरिक्ष और भौम उत्पात शान्ति कराने पर शान्त हो जाते हैं। पुराणों के अतिरिक्त वैदिक साहित्य, ज्योतिष शास्त्र, महाभारत, वाल्मीकि रामायण आदि में भी उत्पात का विवेचन विस्तार से दिया हुआ है।

*

EP-31

रामायण कालीन नारी की अवस्थिति—एक अनुशीलन दृष्टि

अवनीश कुमार, जम्मू

वैदिक काल में नारी की स्थिति पुरुषों के लगभग समतुल्य ही थी। उस समय की अनेक विदुषी स्त्रियों के नामों का उल्लेख मिलता है, जिससे यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में नारियों को भी पुरुषों के समान ही शिक्षा-दीक्षा प्रदान की जाती रही होगी।

किन्तु उत्तर वैदिक काल से लेकर पुराण व स्मृतियों का काल आते-आते नारी की स्वतन्त्रता का उत्तरोत्तर ह्रास होता गया और यह स्थिति आ गयी कि उसे बाल्यकाल में पिता, युवावस्था में पति व वृद्धावस्था में पुत्र द्वारा रक्षणीय माना जाने लगा। महर्षि वाल्मीकि द्वारा विरचित व लौकिक संस्कृत साहित्य का आदि महाकाव्य रामायण में नारी की स्थिति का अध्ययन करने पर हमें ज्ञात होता है कि उस समय नारी को पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त थी। रामायण की नायिका सीता का जन्म काफी पूजा-अर्चना के बाद ही सम्भव हुआ।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-32

धर्म की परिभाषा व स्वरूप

वेदवती द्विवेदी, कानपुर

विश्वशांति की पुनः स्थापना के लिए आज धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझने की महती आवश्यकता है। प्रस्तुत लेख में वैदिक काल, स्मृतिकाल, रामायण-महाभारतकाल में धर्म के सम्बन्ध मं उपलब्ध चिन्तन को समाविष्ट करने का अल्पप्रयास किया गया है। साथ ही समानान्तर धर्मों के उद्‌भव विकास व सिद्धान्तों का तुलनात्मक विवेचन करके सनातन धर्म की सहिष्णुता, सह अस्तित्व व सार्वभौम स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है जिसने विश्व के दार्शनिक चिन्तन को प्रभावित किया है तथा विश्व को सदैव आकर्षित करता रहा है। धर्म की परिभाषाओं, उपादानों व धर्म के स्वरूप को प्रस्तुत लेख की सीमाओं में समाहित करना सम्भव नहीं है।

*

EP-33

वाल्मीकि रामायण में कूटनीति

श्वेता गुप्ता, हरिद्वार

दशरथ, राम, भरत, विभीषण, सुग्रीव, बालि, मन्थरा आदि पात्रों का समीक्षात्मक विश्लेषण किया जाए तो ज्ञात होता है कि इनका राजनीतिक एवं कूटनीतिक ज्ञान केवल सैद्धान्तिक ही नहीं था, अपितु उन्होंने यथावसर उसका व्यावहारिक प्रयोग भी किया। वाल्मीकि रामायण में कूटनीति का प्रमुख केन्द्र अयोध्या का राजपरिवार है, जिसको राम के राज्याभिषेक तथा वनगमन की घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट किया जा सकता है। भरत की अनुपस्थिति में कैकय नरेश को सूचित किये बिना राम के राज्याभिषेक की योजना में राजा दशरथ की कूटनीतिक योजना का आभास होता है। इसी प्रकार मन्थरा की राम को वनवास व भरत के राज्याभिषेक की योजना भी उसकी कूटनीतिक योग्यता का प्रमाण है। राम के तुरन्त वनगमन की स्वीकृति भी राजनैतिक कूटनीति से प्रेरित प्रतीत होती है। राम-सुग्रीव मित्रता तो पूर्णरूपेण एक कूटनीतिक सन्धि है, जिसमें राम ने सुग्रीव के लिए बालि-वध तथा सुग्रीव ने राम के लिए सीता की खोज रूपी समझौता किया। स्पष्ट है कि रामायणीय लोक कूटनीतिक आचार-विचारों से अनभिज्ञ नहीं थे। उस युग में भी आज की भाँति आवश्यकता पड़ने पर इनका व्यावहारिक प्रयोग किया जाता था; जिनको युक्तियुक्त प्रमाणों के आधार पर शोध-पत्र में स्पष्ट करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-34

वर्तमान में चार्वाक के नीति शास्त्रीय सिद्धांत की प्रासंगिकता

श्रीमती सीनी मुण्डा, राँची (झारखण्ड)

वर्त्तमान समय में मनुष्य का जीवन व्यस्तमय हो गया है। इस भाग दौड़ की जिन्दगी में मनुष्य को अपने बारे में सोचने का भी वक्त नहीं मिलता है। ऐसे समय में मनुष्य के पास आध्यात्मिक चिंतन-मनन का वक्त कहाँ? ऐसे व्यस्तमय जिंदगी में चार्वाक के नीति शास्त्रीय सिद्धांत की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाती है, क्योंकि चार्वाक दर्शन भौतिकवादी है। पृथ्वी, जल, तेज और वायु आदि तत्वों की सत्ता स्वीकार्य होने के कारण इसे जड़वादी भी कहा जाता है। चार्वाक का शाब्दिक अर्थ चारू (सुन्दर) और वाक (वचन) मीठा वचन। चार्वाक दर्शन के अनुसार यथार्थ ज्ञान (प्रभा) का साधन केवल 'प्रत्यक्ष' ही एक मात्र प्रमाण है। प्रत्यक्ष ज्ञान का अर्थ इन्द्रियजन्य ज्ञान, जो पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्रमाणित है। चार्वाक भौतिकवादी नैतिकता का समर्थन करते हैं। जीवन के चमर लक्ष्य की व्याख्या करना ही नीति विज्ञान का मूल उद्देश्य है। नैतिक नियम ही आचार के आदर्श कहलाते हैं। ये आदर्श पुरुष मात्र के प्रयोजन ही पुरुषार्थ कहलाता है। ये पुरुषार्थ चार हैं— धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन चार में से अर्थ और काम को ही चार्वाक पुरुष का प्रयोजन मानते हैं। इन दोनों की प्राप्ति के लिए ही कोई कार्य किया जाता है। अर्थात् सांसारिक जीवन को सुखी बनाना ही मनुष्य का लक्ष्य है। अतः चार्वाक का यह सिद्धांत सुखवादी है।

*

EP-35

रामायण में वर्णित नारी के संवैधानिक स्थान की प्रासङ्गिकता

डॉ. सन्ध्या, जम्मू

साहित्यकार सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर देश, काल के अनुसार जीवित चित्र प्रस्तुत करता है। आदि महाकाव्य रामायण में ''महर्षि वाल्मीकि'' ने भारतीय संस्कृति के मूल में नारी के संवैधानिक स्वरूप को स्थापित करने वाले नारी के अनेक रूपों को प्रस्तुत किया है।

वाल्मीकि रामायण का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि उस समय कन्याओं को माङ्गलिक और उनकी उपस्थिति को शुभ शकुन माना जाता था। विवाह के पश्चात् कन्या वधू रूप में पतिगृह में प्रवेश करती थी, जहाँ उसे पति का प्रगाढ़ प्रेम और सास-ससुर का हार्दिक स्नेह प्रचुर भाव में प्राप्त होता था। नारी का अप्रतिम सौन्दर्य और एकनिष्ठ पातिव्रत्य ही रामायण के अनुसार आदर्श पत्नी का मापदण्ड है—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

न पिता नात्मजो वात्मा न मातान सखीजनः।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा॥ (2/27/6)

नारी के पत्नीत्व की सफलता उसके मातृत्त्व में थी। माता का अपने पुत्रों के प्रति निश्चल समत्व था और पुत्र भी उसका असीम आदर करते थे। उस काल में स्त्रियों को पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त थी उत्सवों में, राज्याभिषेक में, यज्ञों में, सामूहिक भोजों में, श्राद्धकर्म में, अन्त्येष्टि क्रिया में स्त्रियाँ सम्मिलित होती थीं। अपने पति की वे 'क्रीडासाहाय' थी।

अतः प्रस्तुत शोध-पत्र में रामायण में वर्णित नारी के कन्या, पत्नी एवं माँ के रूप में विशद् चर्चा की जायेगी।

*

EP-36

महाभारत में धर्म के लक्षण : स्वरूप और महत्त्व

डॉ. प्रीति सागर, अल्मोड़ा, उत्तराञ्चल

महाभारत में धर्म शब्द का व्यवहार धारणकर्त्ता के रूप में किया गया है। कर्णपर्व में कहा गया है कि, 'धारण करने के कारण धर्म को धर्म कहा जाता है। धर्म ही समाज को धारण करता है। जो धारण युक्त है, वही निश्चित रूप से धर्म है।' महाभारत में धर्म को मानव-जीवन साधना का सर्वाधिक रहस्यमय, सूक्ष्म और महाविशिष्ट तत्त्व कहा गया है। मानव के सभी शुद्धाचार धर्म के अन्तर्गत माने जाते हैं। इसलिए महाभारत में कर्त्तव्यपालन, ईर्ष्या, द्वेष, मात्सर्य एवं भेद का व्यवहार, आद्रोह, सत्कर्मों का पालन, सत्य, जितेन्द्रिय, कोमल स्वभाव आदि को धर्म के रूप में प्रयोग किया गया है।

महाभारत में द्यूतसभा में दुःशासन द्वारा चीरहरण के समय द्रौपदी कौरव सभा में वृद्धों से धर्म के संबंध में पूछती है। उस समय भीष्म धर्म की सूक्ष्मता के कारण द्रौपदी के प्रश्नों का विवेचन करने में असमर्थता व्यक्त करते हैं। भीष्म के कथन से स्पष्ट है कि धर्म का स्वरूप निश्चय ही सूक्ष्म और कठिन है तथा व्यवहार में उसका निर्णय अत्यन्त कठिन है।

सम्भवतः इसीलिए धर्मशास्त्रों में धर्म के लक्षण और उनका स्वरूप विवेचित किया गया है। मनुस्मृति में मनु ने धर्म के दस लक्षणों का उल्लेख किया है। याज्ञवल्क्य ने धर्म के लक्षणों का उल्लेख करते हुए धर्म के साधन की संज्ञा दी है। महाभारत में भी धर्म के लक्षणों का विवरण मिलता है। यद्यपि महाभारत में धर्म के लक्षणों की कोई निश्चित संख्या प्राप्त नहीं होती है तथापि ये लक्षण

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri Foundation, USA

सबके लिए मान्य हैं। महाभारत में उल्लिखित कतिपय धर्म के लक्षण हैं—अहिंसा, धृति, अक्रोध, क्षमा, शौच, समत्व, दान आदि।

*

EP-37

रामायण में जीव विज्ञान

डॉ. कनक लता दुबे, इलाहाबाद

महर्षि वाल्मीकि की रचना रामायण में जीव-विज्ञान की सत्ता व्याप्त हैं। इसके वर्णन से यह ग्रन्थ सजीव हो गया है। जीव-विज्ञान का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। अतः इसे प्रमुख रूप से दो उपशाखाओं में विभक्त किया गया है—(1) पादप या वनस्पति विज्ञान (2) जन्तु विज्ञान। जन्तु विज्ञान को आधुनिक वैज्ञानिकों ने कई उपखण्डों में विभाजित किया है—

पारिस्थितिकी या जीवपारिस्थितिकी, आकारिणी, कपाल विज्ञान, तन्त्रिका विज्ञान, पेशी विज्ञान, रुधिर विज्ञान, अस्थि विज्ञान, वाहिका विज्ञान, दन्त विज्ञान, अङ्ग विज्ञान, अन्तःस्राव विज्ञान, शरीर क्रिया विज्ञान, संरचना, आचार शास्त्र, वर्गीकरण विज्ञान, आनुवंशिकी विज्ञान, पोषण विज्ञान, वायुजीव विज्ञान, सरो विज्ञान, प्रोटोजोआ विज्ञान, कीट विज्ञान, मत्स्य विज्ञान, पक्षी विज्ञान, स्तनी विज्ञान, जीव विज्ञान, जीव भौतिक विज्ञान, मनोजीव एवं सूक्ष्म जैविकी आदि। जन्तु विज्ञान के इस विस्तृत क्षेत्र को रामायणीय दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न किया गया है। रामायण में जलचर, थलचर, नभचर एवं उभयचर सभी प्रकार के जन्तुओं का वर्णन, उनका स्वरूप, उनका स्वभाव और राम काज में उनकी सहभागिता का वर्णन प्राप्त होता है। ये जन्तु मानव के पूरक हैं। यदि इन्हें इस ग्रन्थ से पृथक कर दिया जाये तो यह ग्रन्थ हृदय विहीन प्राणिवत् हो जायेगा। प्रस्तुत शोध पत्र में रामायण के जन्तुओं के विषय में वर्णन किया गया है।

*

EP-38

प्राचीन साहित्य में पुराणों का माहात्म्य

सुशान्त गौरव, भागलपुर (बिहार)

भारतीय संस्कृति के स्वरूप की जानकारी हेतु पुराण के अध्ययन की महती आवश्यकता है। पुराण भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड है। वह आधार पीठ है, जिसपर आधुनिक भारतीय समाज

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अपने नियमन को प्रतिष्ठित करता है। छान्दोग्य नियमन को प्रतिष्ठित करता है। छान्दोग्य उपनिषद् और बौद्ध -ग्रन्थों में पुराण को पञ्चम वेद कहा गया है। बहुत से भारतीय विद्वानों के द्वारा भी इसे पञ्चम वेद के रूप में सम्मानित किया गया है। पुराण शब्द अथर्ववेद एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में सृष्टि-मीमांसा के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। महाभारत में भी इसका प्रयोग प्राचीन उपाख्यानों में ज्ञान के अर्थ में हुआ है।

अत: अथर्ववेद, ब्राह्मण-ग्रन्थों और महाभारत में पुराण की प्राचीनता स्पष्ट होती है।

*

EP-39

जीवन में संस्कारों की आवश्यकता क्यों ?

सुरेन्द्र कुमार, जम्मू

सामान्यतया जो कार्य व्यक्ति को सुसंस्कृत अथवा सभ्य बनाता है, उसे 'संस्कार' कहते हैं। संस्कार का अर्थ है—शुद्धता या परिमार्जन। संस्कार दैनिक जीवन की वह प्रक्रिया है, जिसे अपना कर मनुष्य अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल होता है। जीवन-मूल्यों के आधार पर धर्म के दस लक्षण बताये गये हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शोचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

संस्कार-प्रक्रिया का आरम्भ गर्भावस्था से पाँच वर्ष तक माता-पिता द्वारा घर पर ही लालन-पालन द्वारा, फिर विद्यालय में शिक्षक द्वारा, अनुशासन के द्वारा और फिर आजीवन स्वाध्याय प्रक्रिया के साथ अध्ययन, चिन्तन एवं अनुसन्धान के द्वारा होता है। बालक के माता-पिता ही उसके प्रथम गुरु हैं। परिवार ही संस्कार तीर्थ है। कुछ अन्य पारिवारिक परिवेश भी बच्चों को संस्कारित करने मुं सहायह सिद्ध हो सकते हैं, जैसे—

(क) सूर्योदय के पूर्व जागरण का अभ्यास।

(ख) नित्य क्रिया के पश्चात् भगवान् की प्रार्थना, ध्यान तथा महापुरुषों के चित्रों को नमन करना आदि। जिस परिवारों में आपसी प्रेम, सहनशीलता, अनुशासन, विनयशीलता एवं कर्त्तव्य-बोध का वातावरण होता है, वहाँ बच्चे भी सहज ही पूर्ण संस्कारित हो जाते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

*

EP-40

अग्नि पुराण में दान का विधान

सीता राम शर्मा, जम्मू

उचित स्थान पर किया हुआ दान तथा देश एवं काल में किया हुआ दान तथा अच्छे पात्र को दिया हुआ दान करोड़ों गुणा अधिक फलदायक होता है।

दान का विधान

शुभ मासों में तथा उत्तरायण में दान करने से भी अच्छे फल की प्राप्ति होती है। गङ्गा आदि तीर्थ स्थान में दान करना अधिक शुभ होता है। दान करने वाले का मुख पूर्व की ओर होना चाहिए पूर्व मुख करने से दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

दान की विधि

विष्णु एवं शिव सभी के देवता हैं। इन से अलग कोई भी जड़ एवं चेतन वस्तु नहीं है। दान देते समय द्रव्य का दान एवं व्रती का नाम लेना चाहिए। प्रति ग्रह धर्म तथा कल्याण कारक और मुक्ति-मुक्ति को देने वाला हुआ करता है। सतयुग में लोग ब्राह्मणों को अपने घर पर बुलाकर दान दिया करते थे।

पृथ्वी दान

अब अग्नि देव जी मेरुदान के उपरान्त पृथ्वी दान का विधान इस प्रकार से करते हैं कि सौ करोड़ों योजनों में पृथ्वी, सातों द्वीपों और सागर भी आ जाते हैं। उन में जम्बूद्वीप तक सीमित पृथ्वी उत्तम पृथ्वी मानी गयी है। दान देने के लिए उत्तम पृथ्वी को पाँच भार स्वर्ण से बनाना चाहिए। पृथ्वी दान करने वाला बुद्धिमान पितरों के साथ चिरकाल तक ब्रह्म लोक में आनन्द प्राप्त करता है।

❋

EP-41

वीर महाकाव्यों में सूर्य का स्वरूप

अखिलेश्वर प्रसाद सिंह, जमशेदपुर

वीर काव्यों में वाल्मीकि रामायण और महाभारत परिगणित किये जाते हैं। इन दोनों काव्यों में सूर्य के स्वरूप पर विशद चर्चा की गयी है। रामायण हमारा राष्ट्रीय आदिकाव्य है। इस रामायण

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri Foundation USA

के बालकाण्ड के सर्ग 70 श्लोक संख्या 19 से 42 तक में देवाधिदेव सूर्य के वंश-विस्तार एवं युद्धकाण्ड सर्ग 105 श्लोक संख्या 16 से 31 तक संग्राम में विजय-प्रदायक आदित्य हृदय स्तोत्र का वर्णन किया गया है। यह स्तोत्र रणभूमि में विजयश्री प्रदान करने वाला है। यह स्तोत्र चिन्ता और शोक को मिटाने वाला, आयु को बढ़ाने वाला, सभी पापों का नाश करने वाला तथा सम्पूर्ण मंगलों का भी मंगल है। वे नित्य उदय होने वाले, देवता और असुरों से नमस्कृत, विवस्वान् नाम से प्रसिद्ध, प्रभा का विस्तार करने वाले अर्थात् भाष्कर हैं। सम्पूर्ण देवता इन्हीं के स्वरूप हैं।

*

EP-42

वैदिक यज्ञ और वाल्मीकि रामायण

डॉ. वत्सला उपाध्याय, राजस्थान

वैदिक यज्ञ दो प्रकार के हैं—श्रौत और स्मार्त। श्रुति प्रतिपादित यज्ञों को श्रौतयज्ञ और स्मृति प्रतिपादित यज्ञों को स्मार्त यज्ञ कहते हैं। वैदिक युग में श्रौतयागों की बहुलता थीं। स्मार्तयज्ञों का प्रचलन वैदिक साहित्य के बहुत बाद हुआ। वेदों में अनेक प्रकार के यज्ञ मिलते हैं किन्तु उनमें निम्नलिखित पाँच प्रकार के यज्ञ ही प्रधान माने जाते हैं—स एषः यज्ञः पञ्चविधः—अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ, चातुर्मास्यानि, पशुः, सोमः (ऐतरेय ब्राह्मण)। ये श्रौतयाग प्रायः समाप्त हो गये हैं। वैदिक युग में प्रचलित इन यज्ञों की गवेषणा हम वाल्मीकि रामायण में करते हैं तो हम देखते हैं कि रामायण के सारे यज्ञिय विधिविधान वेदों का प्रतिश्रुत है। कालिका पुराण में लिखा है कि 'सर्वं यज्ञमयं जगत्' तथैव 'सर्वं रामायणं यज्ञमयं' कहे तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

रामायण के बालकाण्ड, अरण्यकाण्ड, अयोध्याकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड में वैदिक यज्ञों का वर्णन मिलता है। राजा दशरथ द्वारा 'अश्वमेधयज्ञ' तथा 'पुत्रेष्टियज्ञ' करने का साङ्गोपाङ्ग विवरण बालकाण्ड में मिलता है। राजा सगर द्वारा यज्ञानुष्ठान करने का तथा नृप त्रिशंकु द्वारा सशरीर स्वर्गगमन करने हेतु यज्ञ करने का उल्लेख बालकाण्ड में मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण, आश्वलायन श्रौतसूत्र में उपलब्ध पुरुष मेधयज्ञ से सम्बद्ध शुनःशेप आख्यान रामायण में प्रकारान्तर से उपलब्ध होता है। रामायण उत्तरकाण्ड में अश्वमेधयज्ञ के अनुष्ठान से इन्द्र का ब्रह्महत्या से मुक्त होना तथा इसी यज्ञ के अनुष्ठान से इला को पुरुषत्व की प्राप्ति का वर्णन प्राप्त होता है। प्रभु श्री रामचन्द्र द्वारा अश्वमेधयज्ञ करने का पूर्णाङ्ग विवरण उत्तरकाण्ड के 91-92वें सर्ग में उपलब्ध होता है।

रामायणयुगीन यज्ञों के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि ये सारे यज्ञिय अनुष्ठान वैदिक विधि-विधान द्वारा ही निष्पादित किए गए हैं। एतदर्थ निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि वैदिक यज्ञ

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संस्था विश्व में अपने ढंग की अकेली व्यवस्था है जिसकी प्रतीकात्मकता, अर्थवत्ता, आनुष्ठानिक जटिलता, जीवन और जगत् में उपादेयता तथा प्रासंगिकता को अक्षुण्ण बनाये रखना हर भारतीय का कर्त्तव्य है।

*

EP-43

पुराणों में सूर्य का रहस्य एवं महत्त्व

विद्यावती सिंह, जमशेदपुर (झारखण्ड)

पुराणों में सूर्य की पाँच पत्नियों का वर्णन मिलता है—प्रभा, संज्ञा, रात्रि, वडवा और छाया। यदि साधारण अर्थ को छोड़कर इस पौराणिक कथा का प्रतीकात्मक अर्थ का अवधारण किया जाय, तो इसका आशय होता है कि सूर्य मण्डल के चारों ओर सदा-सर्वदा प्रभा परिव्याप्त रहती है जिससे प्रातःकाल होता है। सूर्य के प्रचण्ड तेज को सहन न करने के कारण संज्ञा ने अपने ही समान छाया नामक स्त्री को जन्म दिया। रात्रि से सूर्य का अटूट सम्बन्ध है।

भगवान् भास्कर चराचर के आत्मा, सम्पूर्ण लोकों के ईश्वर, देवताओं के देवता, तीनों लोकों की जड़, प्रजापति और परम देवता हैं। सूर्य से वृष्टि, वृष्टि से अन्न, अन्न से प्रजा अपना जीवन-निर्वाह करती है। पुराणों में सूर्य की महिमा विशद् रूप में वर्णित है।

*

EP-44

पौराणिक सन्दर्भ के आलोक में हर्षचरितम्

ब्रह्मानन्द साहु, राँची

महाकवि ने जिन पौराणिक कथाओं का सर्वाधिक रूप से उल्लेख किया है, उनमें निम्नलिखित प्रमुख है—द्विजों के राजा चन्द्रमा का गुरुपत्नी तारा के साथ समागम, पुरुरवा का ब्राह्मण के धन के प्रति लोलुप होना, राजा नहुष, मान्धाता, सुषुम्न, ययाति, सोमक, पृथु, नल, दशरथ, पाण्डु, युधिष्ठिर, त्रिशंकु आदि की कथा प्रमुख है। इनकी कथाओं का सम्बन्ध किसी न किसी पौराणिक ग्रन्थों से है। ये सभी पौराणिक कथाएँ विभिन्न दृष्टियों से प्रभावपूर्ण होने के कारण जन-जीवन में सर्वाधिक लोकप्रिय और व्याप्त हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बाण ने इन पौराणिक कथाओं का प्रयोग अपने साहित्यिक उद्देश्यों को सिद्ध करने के लिए किया है। उन्होंने 'हर्षचरितम्' के विभिन्न पात्रों के चरित्र को चारुता की दृष्टि से चरमोत्कर्ष पर प्रतिष्ठित किया है। इन पौराणिक कथाओं के द्वारा मूलकथा को न केवल विस्तृत किया है बल्कि इसके द्वारा रमणीयता का भी आधान किया है। ऐतिहासिक कथावस्तु में पौराणिक सन्दर्भों का प्रयोग कर पाठकों की अभिरुचि में वृद्धि की है। इन पौराणिक कथाओं का उल्लेख कर बाणभट्ट ने अपने परवर्ती कवियों का मार्ग प्रशस्त किया है। इन कथाओं के द्वारा भारतीय सभ्यता और संस्कृति को भी स्पष्ट करने का सफल एवं श्लाघनीय प्रयास किया है। ये सम्पूर्ण कथाएँ सूत्रात्मक शैली में संकलित की गयीं हैं।

*

EP-45

वाल्मीकि रामायण में शकुन

बबिता मलाथिया, जम्मू

''शक्नोति शुभाशुभं विज्ञातुं अनेन इति शकुनम्'' अर्थात् शुभाशुभ द्योतक चिन्ह या लक्षण। किसी कार्य के समय दिखाई देने वाले लक्षण एवं चिन्ह जो उस कार्य के सम्बन्ध में शुभ या अशुभ की सूचना देते हैं उन्हें शकुन कहा जाता है। निमित्त (दुर्निमित्त) शब्द को भी शकुन का पर्याय माना है। शुभाशुभ के पूर्व संकेत प्राप्ति के अनेक माध्यम वाल्मीकि रामायण में दृष्टिगत होते हैं, जैसे—

1. पक्षियों से प्राप्त शकुन
2. पशुओं से प्राप्त शकुन
3. मानव से प्राप्त शकुन
4. शारीरिक लक्षणों से प्राप्त शकुन
5. स्वप्नों से प्राप्त शकुन
6. वनस्पतियों से प्राप्त शकुन तथा
7. अद्भुत घटनाओं से प्राप्त शकुन

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-46

विष्णुपुराण और भागवत के स्तोत्रों का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. रवीन्द्र पटेल, गुजरात

भारतीय पुराण साहित्य में भक्त और भगवान का अटूट सम्बन्ध पाने का जो कोई अमोघ शस्त्र हैं, तो वह हैं स्तुतियाँ। स्तुतियों के द्वारा भक्त अपने भाव परमात्मा के पास पहुँचाता है।

भागवतादि पुराणों में अधिकांश स्तुतियाँ ऐसी है, जो समान स्थिति में, एक समान पात्रों द्वारा समान देवताओं की रची हुई हैं। विष्णुपुराण का अधिकांश प्रभाव भागवत में अनेक स्थल पर दिखाई पड़ता है। दोनों की स्तुतियों का तुलनात्मक अध्ययन मैंने इस आलेख में प्रस्तुत किया है। भागवत और वि०पु० की स्तुतियों में भागवतीय स्तुतियाँ अधिक काव्यसौंदर्य, भावसंपत्ति, आत्मोद्धार, गेयता, अलंकार, उपमा, छंद आदि में उच्चतम है। वि०पु० की स्तुतियाँ अधिकतर नामावली प्रकार की हैं। भागवतीय स्तुतियों में दार्शनिक विचारों का गूंथन किया गया है, किन्तु वि०पु० की अभिव्यक्ति में स्थूलता हैं। सांख्य सिद्धान्त के आधार पर दोनों ही पुराणकारों ने सृष्टि-सर्जन की प्रक्रिया में परमात्मा का स्थान निर्धारित किया है।

भागवतकार एक ही सर्वनाम की सातो विभक्तियों के रूपों को दर्शाकर चमत्कार सर्जता है, वैसा वि०पु० में नहीं मिलता। भागवत की स्तुतियों ने औपनिषदिक विचारों का काव्य-स्वरूप धारण किया है।

भागवत की स्तुति में अनेक गुण वाली अपनी माया नामक शक्ति से महत्तत्व आदि यह समग्र जगत को उत्पन्न करके इसमें अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करके अरणी में अग्नि की तरह अनेक रूप में दिखाई पड़ते हैं, ऐसा कहा है। वि०पु० और भागवत की समान स्तुतियों का तुलनीय वर्गीकरण करके दोनों पुराणों की स्तुतियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। जिसमें विष्णुपुराण की स्तुतियों से उच्चकोटि की स्तुतियाँ भागवत में पायी जाती हैं, उसमें स्तुतियों के सारे लक्षण मौजूद हैं।

इस प्रकार भाग० और विष्णु० की स्तुतियों का तुलनात्मक अध्ययन करके उपरोक्त तथ्यों का विवरण मिलता है। तथा अन्त में मैंने विद्वानों का मत और निष्कर्ष निकाला है। मेरा यह प्रयास विद्वानों को ग्राह्य रहेगा।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-47

अग्निपुराण के अनुसार दान का महत्त्व

डॉ. सुदेश कुमार शर्मा, जम्मू

हमारे मनीषियों ने कहा है कि अभी हमें जो सम्पत्ति और सुख के साधन मिले हैं वे प्रायः दान धर्म के कारण ही प्राप्त हुए हैं। जो देता है वह पाता है, जो बीज बोता है, उसे ही फल मिलता है। दान से पुण्य होता है, पुण्य से वैभव और साधन सुविधाएं मिलती है। पद्म पुराण में कहा गया है—

सुदानात् प्राप्यते भोगा, सुदानात् प्राप्यते यशः।
सुदानात् ज्ञायते कीर्ति, सुदानात् प्राप्यते सुखम्॥

अर्थात् अच्छे दान देने से भोग प्राप्त होता है। यशः कीर्ति और सुख मिलता है। गरुड़ पुराण में भी कहा गया है—

सुपात्रदानाच्च भवेद् धनाढ्यो, धनप्रभावेण करोति पुण्यम्।
पुण्यप्रभावात् सुरलोक वासी, पुनर्धनाढयः पुनरेव भोगी॥

अर्थात् सुपात्र को दान देने से मनुष्य धनाढ्य होता है। उस धन का सदुपयोग करके पुण्य उपार्जन करता है। पुण्य से देवगति मिलती है, वहाँ से वह मनुष्य जन्म पाकर समृद्धि प्राप्त करता है। मनुस्मृति में भी निरन्तर दान देने की प्रेरणा देते हुए लिखा है—

दानेन भोगाः सुलभा भवन्ति, दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।
दानेन भूतानि वशी भवन्ति, तस्माद्धि दानं सततं प्रदेयम्॥

*

EP-47A

महर्षि वाल्मीकि की मनोवैज्ञानिक अवधारणा

शुकदेव शर्मा, होशियारपुर, (पञ्जाब)

संस्कृत काव्यशास्त्र के क्षेत्र में काव्याध्ययन के प्रमुख प्रयोजन को सुस्थापित करने वाले आचार्य विश्वनाथ के—"रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न रावणादिवत्"—मन्तव्य के रूप में, आर्षकाव्य 'रामायण' ने, इस धरा पर असंख्य मानवीय अन्तःकरणों को अपने मार्मिक उपदेशों, स्वनिष्ठित जीवनमूल्यों, अन्तःपरिस्यूत उदात्तताओं द्वारा नितान्त प्रभावित किया है। सहज शैली में उपनिबद्ध यह

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आदि महाकाव्य मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के चरित-माध्यम से एक अद्वितीय मानव-समाज की परिपूर्ण प्रस्तुति है जो भौतिक वाद-विवादों, विविध विसङ्गतियों से उभर कर आध्यात्मिकता की ओर प्रवृत्ति तथा मानवीय परम लक्ष्य (मोक्ष) की संसाधिका भी है।

'रामायण' महाकाव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि महर्षि प्राचेतस् मानवीय मनोभावों की गहराई में प्रवेश तथा उन्हें तद्रूपेण मार्मिक ढंग से अभिव्यक्ति प्रदान करने में पूर्णतया सशक्त प्रतीत होते हैं। किसी भी मनोवेग का चित्र उपस्थित करते समय उनका प्रमुख लक्ष्य—उस गूढ़ से गूढ़ सूक्ष्मभाव की द्योतक शब्दावलि द्वारा—साक्षात् अभिव्यक्ति है। शब्द-अर्थालंकारों से चमत्कृत कर उस भावसौन्दर्य को अनावश्यक आडम्बर की अपेक्षा हद्दत सीधे भावों को चित्रण सीधे-सादे शब्दों द्वारा ही उन्हें अभिप्रेत प्रतीत होता है। महर्षि ने 'रामायण' में आधिभौतिक शरीर में अन्तःकरण तथा उसकी विविध वृत्तियों का विश्लेषण करते हुए अपने द्विशताधिक (दिव्य-अदिव्य, नर-राक्षस, पशु-पक्षी) पात्रों की मनःस्थिति का विभिन्न परिस्थितियों में सावधानी से सजीव चरित्र-चित्रण करते हुए अपनी मानव-हृदय के क्रिया-कलाप के प्रति असाधारण अन्तर्दृष्टि का ज्ञान प्रदर्शित किया है।

*

EP-48

वाल्मीकि-रामायण में यज्ञ विधान

नरेन्द्र कुमार, कादीपुर, सुलतानपुर

वाल्मीकि रामायण भारतीयता का पर्याय तथा ज्ञान-विज्ञान का अपूर्व कोश है। यज्ञ विधान वैदिक संस्कृति का महत्वपूर्ण अङ्ग है। यज्ञ सकाम तथा निष्काम दोनों प्रकार के होते हैं। सकाम यज्ञ कामना-पूरक होते हैं और निष्काम यज्ञ यश प्रदायक। वाल्मीकि-रामायण का यज्ञ विधान सुसमृद्ध तथा सुविस्तृत है। दशरथ ने यज्ञ के माध्यम से सन्तान प्राप्त की। सगर को प्रतिष्ठा मिली। अम्बरीष ने देवराज इन्द्र की कृपा से यज्ञ का उत्तम फल पाया। इन्द्र वैष्णव यज्ञ कर गौतम के शाप से मुक्त हुआ। इल (जो एक मास स्त्री तथा एक मास पुरुष रहता था) यज्ञ के माध्यम से पुरुषत्व की पुनः प्राप्ति हुई। राम ने यज्ञ कर स्वयं कीर्ति पायी तथा जगत् का कल्याण किया।

वाल्मीकि रामायण में सोम यज्ञ, हर्वियज्ञ तथा पाकयज्ञ के अनेक सूत्र विद्यमान हैं। दशरथ के अश्वमेघ यज्ञ के प्रकरण में प्रवर्ग्य, उपसद, अतिदेशकर्म, सोम-सेवन, अग्निचयन तथा वेदिका निर्माण आदि यज्ञ विधान के परिचायक हैं। मेघनाद के यज्ञ प्रकरण में अग्निष्टोम, गोसव सहित दुस्तर यज्ञों का वर्णन उपलब्ध होता है। उल्लेखनीय है कि अनेक यज्ञ प्रकरणों में यज्ञ के विविध विधि-विधानों की विस्तृत व्यवस्थायें दी गयी हैं। यज्ञ में वरणीय ब्राह्मणों की योग्यता, यजमान द्वारा दीक्षा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

का लिया जाना, यूप निर्माण, शास्त्रार्थ, यज्ञ में दक्षिणा कपा दिया जाना तथा यज्ञ-भोज आदि विधानों का वर्णन किया गया है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वाल्मीकि-रामायण में यज्ञ-विधान भारतीय जीवन-मूल्यों का परिचायक तथा वैदिक संस्कृति का उन्नायक है।

*

EP-49

महाभारत के उपाख्यानों का सांस्कृतिक परिशीलन

धनञ्जय सिंह, सुलतानपुर (उ०प्र०)

भगवान वेदव्यास महाभारत को आख्यान कहते हैं। उनका स्पष्ट कथन है कि महाभारत-आख्यान को जाने बिना कोई वेद-उपनिषदों का ज्ञाता हो सकता है परन्तु विचक्षण नहीं कहा जा सकता। महाभारतीय उपाख्यान सुनने के पश्चात और कुछ सुनना अच्छा नहीं लगता। महाभारतकार का यह कथन सर्वथा सत्य है।

भारतीय सांस्कृतिक चेतना के अनेक आयामों का सुन्दर एवं मनोहारी वर्णनों से महाभारतीय उपाख्यान सुसमृद्ध है। अतिथि सत्कार भारतीय सांस्कृतिक चेतना का आधार है। शकुन्तलोपाख्यान में शकुन्तला द्वारा राजा दुष्यन्त का अतिथि सत्कार प्रकरण अत्यन्त मनोरम है। तपस्या से मानव की बाह्य तथा आन्तरिक शुद्धि होती है। ययाति उपाख्यान के अन्तर्गत महाराज ययाति की तपस्या हमारी सांस्कृतिक धरोहर है। नलोपाख्यान में दमयन्ती, सावित्री उपाख्यान में सावित्री तथा रामोपाख्यान में सीता का चरित्र भारतीय संस्कृति में निरूपित नारी आचरण का प्रत्यक्ष प्रमाण है। ये देवियाँ हमारी राष्ट्रीय चेतना की प्रतिनिधि हैं।

संयम (इन्द्रिय निग्रह) भारतीय संस्कृति का अमृतोपम उपहार है। ऋष्यशृङ्ग को इन्द्रिय संयम का जो उपेदश देते हैं वह मानव मेधा के महत्तम विकास का परिचायक है। शरणागत की रक्षा भारतीय संस्कृति का उदात्त अध्याय है। महाराज उशीनर ने अपने शरीर का मांस देकर कपोत की रक्षा की थी। ये उपाख्यान हमें प्रेरित करते हैं कि मानवता का चरमोत्कर्ष मानवीय संवेदनाओं से परिपुष्ट होता है जो भारतीय मनीषा का माहात्म्य है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-50

विष्णुपुराण का साहित्यिक परिशीलन

ज्ञानप्रकाश दूबे, कादीपुर, सुलतानपुर

अष्टादश महापुराणों में विष्णुपुराण का विशिष्ट महत्व है। इसमें भूगोल, ज्योतिष, कर्मकाण्ड, राजवंश, तथा श्रीकृष्ण के चरित्र-वर्णन भक्ति और ज्ञान आदि विषय महत्वपूर्ण हैं। साथ ही विष्णुपुराण का साहित्यिक पक्ष भी प्रबल है। यह पुराणअनेक काव्यालङ्कारों से सुशोभित है। इसकी उपमायें हृदयग्राही, मनोवैज्ञानिक तथा कथ्य के पूर्ण प्रस्तुतीकरण में सर्वथा सहायक हैं। रूपक, उल्लेख, दीपक तथा अतिशयोक्ति आदि का समुचित सन्निवेश है। आलोच्य पुराण का रस विधान जीवन्त एवं जागृह है। भक्ति रस की मन्दाकिनी की अजस्र धारा का सौन्दर्य पाठक को भक्ति भावित करने में सर्वथा सुसमर्थ है। पुराणकार ने अन्य रसों शृङ्गार, वीर, रौद्र तथा अद्भुत आदि का यथा प्रसङ्ग मनोवैज्ञानिक रीति से मनोयोग पूर्वक वर्णन किया है। विष्णुपुराण गुण विधान के निकष पर भी खरा उतरता है। यद्यपि इस पुराण में प्रसाद गुण की बहुलता है तथापि अन्य गुणों माधुर्य, तथा ओज की न्यूनता पाठक को खटकती नहीं है। रीति विधान की दृष्टि से इस पुराण में वैदर्भी रीति की ही प्रधानता कही जायेगी। फिर भी गौड़ी तथा पाञ्चाली रीतियों को यथोचित स्थान मिला है। ध्वनि, वक्रोक्ति, औचित्य आदि काव्यशास्त्रीय मानकों के परिप्रेक्ष्य में विष्णुपुराण खरा उतरता है। भाषा शैली सहज प्रवाहमयी तथा प्रभावी है। विष्णुपुराण के गद्यांशों में भी वर्णगत, पदगत तथा भागवत लालित्य-सौन्दर्य एवं माधुर्य की प्रचुरता है। विष्णुपुराण का साहित्यिक दृष्टि से परिशीलन हृदयग्राही एवं आनन्ददायी है।

*

EP-51

हरिवंशपुराण का सांस्कृतिक परिशीलन : एक सामासिक विवेचन

वन्दना मिश्रा, कादीपुर, सुलतानपुर

भारतीय वाङ्मय की महत्वपूर्ण निधि के रूप में पुराण प्रसिद्ध हैं। पुराण भारत की अन्तरात्मा का प्रत्यक्ष विग्रह है। मानव मात्र के हित तथा कल्याण के साधन के रूप में पुराणों का विशिष्ट महत्व है। ये पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति में प्रबल सहायक हैं। पुराणों में वर्णित सांस्कृतिक चेतना के अनेक ऐसे पक्ष हैं जो आज भी अशान्त मानवता को मानसिक शान्ति, शारीरिक स्वास्थ्य, भौतिक समृद्धि तथा आध्यात्मिक उन्नति प्रदान करने हेतु सुसमर्थ हैं। हरिवंशपुराण के सांस्कृतिक परिशीलन के सन्दर्भ में जो तत्व प्रमुख हैं उनमें विद्याध्ययन को प्रथमत: गिना जा सकता है। विष्णुपर्व में कृष्ण तथा बलराम के श्रम निष्ठा, समर्पण एवं भक्तिपूर्वक विद्याध्ययन का वर्णन किया गया है। श्रीकृष्ण

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ने गुरुदक्षिणा में अपने विद्यागुरु सन्दीपनि के मृत पुत्र को यमराज के पास से लाकर गुरु को समर्पित कर दिया। इस तथ्य से विद्या तथा गुरुदक्षिणा की महत्ता प्रमाणित होती है। भारतीय सांस्कृति चेतना में यज्ञ का विशिष्ट स्थान है। हरिवंशपुराण में वर्णित गिरियज्ञ, राजसूय यज्ञ तथा अश्वमेघ यज्ञ वैदिक संस्कृति के उद्घोषक हैं। देवस्तुति पौराणिक, सांस्कृतिक जीवन शैली का अविभाज्य अङ्ग है। आलोच्य पुराण में चन्द्रमा की स्तुति, आर्या की स्तुति, श्री कृष्ण की स्तुति तथा भगवान शङ्कर की स्तुतियों सहित अनेक स्तुतियाँ हैं जिनमें देववाद की प्रतिष्ठा तथा भक्ति रस का समुचित सन्निवेश है। तपस्या मानव जीवन को सात्विकता सदाशयता सहयोगिता तथा सहिष्णुता की ओर प्रेरित करती है। हरिवंशपुराण में देवों तक को तपस्या में निरत दिखाया गया है। विष्णु, श्रीकृष्ण आदि की तपस्या सुप्रसिद्ध है। व्रत मानव की आन्तरिक विमलता के प्रमुख कारक हैं यही कारण है कि आलोच्य पुराण ने व्रतों की उपयोगिता तथा महिमा पर विस्तार से प्रकाश डाला है। वैदिक संस्कृति की महत्ता से मण्डित हरिवंशपुराण की सांस्कृतिक चेतना ज्ञान-विज्ञान का अक्षय भण्डार तथा मानवीय सुप्रवृत्तियों का अक्षय कोश है।

❋

EP-52

वाल्मीकि रामायण में वर्णित राजधर्म

राजभूषण, जम्मू

भारतीय साहित्य के इतिहास में वह शुभ दिन चिरस्मरणीय रहेगा जब तमसा के तट पर महर्षि वाल्मीकि के कण्ठ में यह करुणामयी वाग्धारा फूट पड़ी थी।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौञ्च मिथुनादेकम वधीः काममोहितम्॥

भारतीय संस्कृति का जैसा समुज्जवल सुन्दर एवं स्वाभाविक चित्र इस महाकाव्य में अंकित हुआ है वैसा संसार के किसी अन्य देश के महाकाव्य में वहाँ की संस्कृति का चित्र शायद ही उतरा हो। मनुष्य के चूडान्त आदर्श की स्थापना के लिए ही महर्षि वाल्मीकि ने इस महाकाव्य की रचना की है। इस ''रामायण'' की कथा से भारत के जन साधारण बाल-वृद्ध-वनिता केवल शिक्षण ही नहीं पाते आनन्द भी पाते हैं। केवल उसे शिरोधार्य ही नहीं करते हृदय में भी रखते हैं, यह उनका धर्मशास्त्र ही नहीं काव्य भी है।

महर्षि वाल्मीकि ने पूर्व राजनीति शास्त्रज्ञों का अनुसरण करते हुए राज्य के सात अंगों का रामायण में वर्णन किया है। यथा—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(1) स्वामी (राजा)

(2) आमात्य (मंत्री)

(3) जनपद (राष्ट्र)

(4) दुर्ग

(5) कोष

(6) दण्ड (सेना)

(7) मित्र

किष्किन्धा काण्ड में कहा गया है कि जिस राजा का कोष दण्ड मित्र और अपना शरीर—यह सबके सब सामान रूप में उनके वश में रहते हैं वह विशाल राज्य का पालन एवं उपभोग करते हैं।

*

EP-53

स्मृतियों में पुत्र का महत्त्व तथा प्रकार

मीरा ठाकुर, होशियारपुर

स्मृतियों में कहा है कि पुत्रहीन व्यक्ति स्वर्ग प्राप्त नहीं कर सकता है। विष्ण तथा मनुस्मृति में कहा है कि पुत्र पिता को नरक से बचाता है। विष्णु, वसिष्ठ तथा अत्रि स्मृति में कहा गया है कि पुत्र के पैदा होने से पिता पितरों के ऋण से मुक्त हो जाता है। वसिष्ठ, विष्णु, बौधायन तथा मनुस्मृति के अनुसार मनुष्य पुत्र से सब लोकों को प्राप्त करता है, पौत्र से बहुत काल तक स्वर्ग में रहता है और प्रपौत्र से सूर्यलोक में जाता है। वसिष्ठ तथा मनुस्मृति ने 12 प्रकार के पुत्र माने हैं। उनमें पहले 6 दायाद (धन पाने के अधिकारी) हैं और अन्तिम 6 बान्धव (धन में भाग पाने के अधिकारी नहीं) हैं। ये पुत्र निम्नलिखित हैं।

1. **औरस पुत्र**—जिस पुत्र को पति विधिपूर्वक विवाहित स्त्री से पैदा करता है। उसे औरस पुत्र कहते हैं, यही मुख्य पुत्र है।

2. **क्षेत्रज पुत्र**—जो पुत्र मरे हुए, नपुंसक, असाध्य रोगी पुरुष की स्त्री से नियोग के द्वारा अन्य पुरुष पैदा करे उसे क्षेत्रज पुत्र कहते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

3. **दत्तक पुत्र**—माता-पिता आपत्तिकाल में प्रीतिपूर्वक जल का संकल्प करके अपने पुत्र को दे देता है, वह दत्तक पुत्र कहलाता है।

4. **कृत्रिम पुत्र**—जब कोई मनुष्य गुण-दोष का विचार करके किसी चतुर या गुण युक्त को अपना पुत्र माने तो उसे कृत्रिम पुत्र कहते हैं।

5. **गूढत पुत्र**—विवाहित पुरुष के घर जो गूढरूप से उत्पन्न हो उसे गूढज पुत्र कहते हैं।

6. **अपविद्ध पुत्र**—जब असली माँ-बाप पुत्र को त्याग दें तथा दूसरी दम्पत्ती उसे पुत्र मान ले तो वह अपविद्ध पुत्र कहलाता है।

7. **कानीन पुत्र**—कुमारी कन्या जिस पुत्र को गुप्तरूप से पैदा करती है वह कानीन पुत्र है।

8. **सद्वोठ पुत्र**—विवाह के समय जो गर्भ में रहता है उसे सद्वोठज पुत्र कहते हैं।

9. **क्रीत पुत्र**—माता-पिता को मूल्य देकर जो पुत्र खरीदा जाता है उसे क्रीत पुत्र कहते हैं।

10. **पौनर्भव पुत्र**—पति के छोड़ देने या मृत्यु पर अपनी इच्छा से अन्य पुरुष की भार्या बनकर जो पुत्र उत्पन्न करे, उसे पौनर्भव पुत्र कहते हैं।

11. **स्वयंदत्त पुत्र**—माता-पिता द्वारा छोड़ा पुत्र स्वयं किसी का पुत्र बन जाए उसे स्वयंदत्त पुत्र कहते हैं।

12. **पाराशव पुत्र**—जिस पुत्र को ब्राह्मण कामवश होकर शूद्रा भार्या से उत्पन्न करे उसे पाराशव पुत्र कहते हैं।

*

EP-54

''न्याय-व्यवस्था में साक्षी की भूमिका मनु स्मृति के सन्दर्भ में''

इन्दुप्रकाश रैणा, जम्मू

साक्षी शब्द 'श्वेताश्वतरोपनिषद'' में दृष्टिगोचर होता है, जहाँ यह अखिल विश्व के एक मात्र द्रष्टा के लिए प्रयुक्त हुआ है। पाणिनि के अनुसार इसका अर्थ है 'वह जिसने साक्षात् देखा है।' इस

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

साक्षी की न्याय व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। मनु का कथन है कि साधारणतः किसी मुकदमे में कम-से-कम तीन साक्षी होने चाहिए। साक्ष्य देने वाले साक्षियों में कुलीनता, वंशपरम्परा में देशवासी होना, सन्तानयुक्त गृहस्थ होना, धनी होना, चरित्रवान होना, विश्वासपात्र होना, धर्मज्ञता, लोभहीनता तथा दोनों दलों द्वारा स्वीकार किया जाना आदि प्रमुख विशेषताएँ होनी चाहिए। मेधातिथि ने लिखा है कि जब वादी एवं प्रतिवादी दोनों पुरुष हों तो स्त्रियाँ साक्षी के उपयुक्त नहीं होती, किन्तु यहाँ विवाद किसी पुरुष एवं स्त्री में अथवा केवल स्त्रियों के बीच में हो तो स्त्री योग्य साक्षी होती हैं।

साक्ष्य देने के पूर्व साक्षी को जूते एवं पगड़ी उतारकर दाहिना हाथ उठाकर तथा, सोना गोबर या कुशा छुकर सत्य बोलने की शपथ लेनी पड़ती है। मनु का मत है कि साक्षियों के सत्य भाषण की जाँच उनके कथन के ढंग, कांति-परिवर्तन, आँखों, हाव-भाव आदि से करनी चाहिए।

प्रस्तुत शोध-पत्र में न्याय व्यवस्था में साक्षी की भूमिका पर मनु स्मृति के सन्दर्भ में विस्तृत रूप से विचार किया जायेगा।

❋

EP-55

मत्स्यपुराणोक्त भवन-निर्माण हेतु भूमि-चयन विधि

प्रवीण कुमारी, होशियारपुर

वैदिक काल से लेकर वर्तमान समय तक सामान्य जन तथा विद्वानों का वास्तु के प्रति विशेष आकर्षण रहा है। इसलिए वास्तु की उपयोगिता को देखते हुए यह लेख लिखा गया है। यद्यपि वास्तुशास्त्र के अनेक ग्रन्थों में भूमि-चयन, भूमि-परीक्षण तथा भूमि-शोधन (शल्य-शोधन) का उल्लेख मिलता है तथापि इस शोध-पत्र में सभी ग्रन्थों की मान्यताओं को न लेते हुए केवल पुराणों विशेषतः मत्स्य, अग्नि, गरुड़ व नारद पुराण से ही भूमि-चयन के विषय में लिखा गया है।

वास्तु के लिए मूल आधार भूमि है फिर चाहे वह मन्दिर हो, चाहे राज-दरबार, चाहे भवन हो या झोपड़ी। इन सभी के लिए भूमि का होना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि भूमि ही प्रधान है। इसलिए भूमि-चयन के समय मनुष्य अत्यधिक सावधानी बरते।

मत्स्य-पुराण में भूमि-चयन, भूमि-परीक्षण तथा शल्य-शोधन प्रक्रिया इत्यादि का विशेष विवेचन किया गया है।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-56

आध्यात्मिक जीवन का मर्म एवं समाज निर्माण में अध्यात्म का योगदान

डॉ. सुशील कुमारी वर्मा, कानपुर

सामाजिक सुव्यवस्था में अर्थबल और अध्यात्म बल की भूमिका होती है, प्रथम भौतिकवाद का प्रतिनिधित्व करता है और दूसरा अध्यात्मवाद का। अध्यात्म की मान्यता यह है कि हर व्यक्ति को अपने शरीर और मन को इतना सशक्त बना लेना चाहिए कि वह जिस क्षेत्र में भी जाए, सराहनीय उपलब्धि प्राप्त करे। सामाजिक प्राणी को आत्मिक तत्व को अनुभव करने के लिए एक सूक्ष्म दृष्टि चाहिए जिसका समावेश वस्तुतः आध्यात्मिक दृष्टि में है। जिस दिन हम सम्पूर्ण समग्रता में अपने चैतन्य को जान लेते हैं, उसी दिन यह जगत् ब्रह्ममय हो जाता है। 'परिष्कृत अध्यात्म' आज युग की आवश्यकता है। आवश्यकता है उन रणबांकुरों की, जो वैज्ञानिकों की भाँति अपनी सारी जिन्दगी होम करने के लिए तैयार हों। संत कबीर, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द जैसे अध्यात्म के शिखर पुरुषों ने आध्यात्मिक चेतना के अनुसंधान के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दी, यही कारण है कि अध्यात्म आज भी जीवित है।

*

EP-57

पुराणों में भुवनकोश की स्थिति

अनिल कुमार पोरवाल, लखनऊ (उ०प्र०)

मानव स्वभाव से अन्वेषक प्राणी है, इसीलिए वह सृष्टि की प्रत्येक वस्तु के साथ अपने जीवन का तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करता रहा है, अपनी इसी प्रवृत्ति ने पृथ्वी एवं इसको प्रभावित करने वाले समस्त तत्त्वों के सम्बन्धों से सम्बन्धित जिज्ञासा को प्रज्वलित किया। जैसा कि पूर्वविदित है, कि पृथ्वी पर उपस्थित समस्त जैविक एवं अजैविक तत्त्वों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहा है, जो कि समस्त प्राणियों को प्रभावित करने का मुख्य कारण है। इसका सम्पूर्ण अध्ययन वैदिक साहित्य में भुवनकोश के अन्तर्गत किया जाता है, इस सृष्टि विद्या (विश्वोत्पत्ति) का अधिकतम विवेचन भारतीय संस्कृति चेतना के प्राण-स्वरूप गौरव ग्रन्थों पुराणों में वर्णित है। जिस प्रकार प्राचीन आख्यान एवं आख्यायिका का सूचक भाग इतिहास है, उसी प्रकार पञ्चलक्षणात्मक पुराणों (पुरा नवं भवति) में सर्ग लक्षण के अन्तर्गत सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन उपलब्ध है। इसलिए कहा गया है "पुराणों का भूगोल, इतिहास के भूगोल से प्राचीन है।"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(क) पुराणों में भुवनकोश से सम्बन्धित तथ्य (स्थलाकृतियाँ आदि)

(ख) चतुर्द्वीपा वसुमती

(ग) सप्तद्वीपा वसुमती

(घ) जम्बुद्वीप के वर्ष

(ङ) पुराणों की दृष्टि में ब्रह्माण्ड

(च) पौराणिक भौगोलिक विषयों का आधुनिक भूगोल के साथ तादात्म्य।

''भूमेः पिण्डः शंशाक्षकविरविकुजेज्यार्किनक्षत्र कक्षा,
वृत्तैर्वृतोः वृत्तः सन् मृदनिलसलिलव्योमतेजोमयोऽयम्॥

❋

EP-58

वाल्मीकि रामायण में वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था

श्री प्रकाश पाण्डये, राजस्थान

आदिकवि वाल्मीकि ने वेदों को आधार मानकर वर्णाश्रम व्यवस्था को व्यवस्थित किया। रामायणकालीन वर्ण व्यवस्था व्यवस्थित थी। वाल्मीकि ने चारों वर्णों का स्पष्ट उल्लेख किया है—

चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मेण नित्यमेवाभिपालयन्। (मनुस्मृति 4/4/6)

सार्वजनिक उत्सवों में प्रत्येक वर्ण के व्यक्ति के साथ तदनुरूप व्यवहार किया जाता था।

सर्वे वर्णा यथापूजां प्राप्नुवन्ति सुसत्कृताः।

(मनुस्मृति, 1/12/24)

रामायण काल में वर्णव्यवस्था को राजकीय स्वीकृति प्राप्त थी, अतः उसका पालन करना प्रजा के लिए अनिवार्य था। राम स्वयं चारों वर्णों के रक्षक थे तथा सामाजिक मर्यादाओं का पालन करते थे। अतः यह सिद्ध होता है कि रामायणकालीन समाज वर्ण-व्यवस्था में विभाजित होने के साथ-साथ पूर्ण रूप मर्यादित था।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रामायणकालीन समाज वर्णाश्रम की भित्ति पर अवलम्बित था। वर्ण चार थे—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। चारों वर्णों में जरा सा भी वर्ण-विद्वेष नहीं था, इनके सम्बन्ध सद्भावपूर्ण थे। सभी वर्ण स्वकर्मनिरत थे। वर्ण-व्यवस्था के साथ ही साथ आश्रम व्यवस्था का सिद्धान्त भी प्रत्येक व्यक्ति को उसके जीवन के आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर अग्रसर होने में सहायता प्रदान करता था। अतः भारतीय संस्कृति के सुदृढ़ आधार स्तम्भ भारतीय जीवन की वैज्ञानिक व्यवस्था वर्णाश्रम व्यवस्था है।

*

EP-59

अग्नि पुराण में व्यवहार शास्त्र एवं व्यवहार

डॉ. आशा शर्मा, भिण्ड (म०प्र०)

धर्म, व्यवहार, चरित्र और राजशासन—ये व्यवहार-दर्शन के चार-चरण हैं। इनमें उत्तरोत्तर पाद पूर्व-पूर्व पाद के साधक हैं। इन सबमें 'धर्म' का आधार सत्य है, 'व्यवहार' का आधार साक्षी (गवाह) है। 'चरित' पुरुषों के संग्रह पर आधारित है और 'शासन' राजा की आज्ञा पर अवलम्बित है। साम, दान, दण्ड और भेद—इन चार उपायों से साध्य होने के कारण वह 'चार साधनों वाला' है। चारों आश्रमों की रक्षा करने से वह 'चतुर्व्यापी' है। अभियोक्ता, साक्षी, सभासद और राजा—इनमें एक-एक चरण से उसकी स्थिति है, इसलिये उसे 'चतुर्व्यापी' माना गया है। वह धर्म, अर्थ, यश और लोकप्रियता—इन चारों की वृद्धि करने वाला होने से 'चतुष्कारी' कहा जाता है राजपुरुष, सभासद, शास्त्र, गणक, लेखक, सुवर्ण, अग्नि और जल-इन आठ अङ्गों से युक्त होने के कारण वह 'अष्टाङ्ग' है। काम, क्रोध और लोभ—इन तीन कारणो सं मनुष्य की इसमें प्रवृत्ति होती है, इसीलिये व्यवहार को 'त्रियोनि' कहा जाता है; क्योंकि ये तीनों ही विवाद कराने वाले हैं। अभियोग के दो भेद हैं—(1) शङ्काभियोग और (2) तत्त्वाभियोग। इसी दृष्टि से वह दो अभियोग वाला है। 'शङ्क' असत् पुरुषों के संसर्ग से होती है और 'तत्त्वाभियोग' होढा (चिह्न या प्रमाण) देखने से होता है। यह दो पक्षों से सम्बन्धित होने के कारण 'दो द्वारों वाला' कहा जाता है। इनमें पूर्ववाद 'पक्ष' और उत्तरवाद 'प्रतिपक्ष' कहलाता है। 'भूत' और 'छल' इनका अनुसरण करने से दो गतियों से युक्त माना जाता है। कैसा ऋण देय है, कैसा ऋण अदेय-कौन है, किस समय दे, किस प्रकार से दे, ऋण देने की विधि पद्धति क्या है तथा उसे लेने या वसूल करने का विधान क्या है? इन सब बातों का विचार 'ऋणादान' कहा गया है। ऋणादान के सात प्रकार हैं।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-60

रामायण में ध्वन्यात्मकता

डॉ. अर्चना कुमारी दुबे, राजस्थान

रामायण के प्रसङ्ग एवं वर्णन हमारी चेतना में बस गई है इसका मुख्य कारण वाल्मीकि के शब्दों की ध्वन्यात्मकता है। रामायण में पग-पग पर ध्वनि-तत्त्व की प्रधानता देखने को मिलती है। आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि की व्याख्या करते हुए कहा है कि जहाँ अर्थ अपने आपको तथा शब्द अपने अर्थ को गौण बनाकर प्रतीयमान अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं, उस काव्यविशेष को विद्वानों ने ध्वनि काव्य कहा है।

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः॥

रविसंक्रान्तसौभाग्यस्तुषारावृतमण्डलः।
निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते॥

निःश्वास से अन्धे बने दर्पण के समान (इस हेमन्त ऋतु में) चन्द्रमा चमक नहीं पाता। आनन्दवर्धन के अनुसार यहाँ अन्ध शब्द में अर्थान्तर-संक्रमित-अविवक्षित वाच्य ध्वनि है। दर्पण अन्धा नहीं हो सकता, अतः अन्ध-शब्द दर्पण के अर्थ में बाधित होकर अतिशय धूमिल या धूंधलेपन की अधिकता को व्यंजित करता है। इस पद्य की ध्वन्यात्मकता और भी गूढ़ एवं चमत्कारजनक है। सूर्य में अपना सौभाग्य संक्रान्त कर चुके तुषार से घिरे चन्द्रमा का यहाँ चित्रोपम वर्णन है, पर यह विरही राम की उक्ति है, और पूर्वा पर प्रसंग को देखते हुए यहाँ सौभाग्य का संक्रमण, चन्द्रमण्डल का तुषार से घिर जाना, निःश्वास से अन्धा हो चुका दर्पण ये सब वक्ता का संशय तथा मोह से आच्छन्न मनोदशा को व्यंजित करते हैं। आदर्श शब्द का दर्पण अर्थ में प्रयोग अपने आप में साभिप्राय है। निःश्वासों से अंधे हो चुके दर्पण में जिस प्रकार प्रतिबिम्ब साफ-साफ दिखाई नहीं पड़ता, वैसे ही दुःख के अतिरेक, सौभाग्य के संक्रमण तथा इतिकर्त्तव्यता का निर्धारण न कर पाने के कारण जीवन का आदर्श वरेण्य मार्ग धुंधला हो गया है। राम सीता की स्थिति तथा उसके अन्वेषण के उपाय के विषय में एकदम अन्धकार में हैं, अतः कवि ने उनकी विखरी हुई मनःस्थिति को प्रकट करने के लिए उसी के अनुरूप व्यङ्ग्यगर्भ पदावली का सटीक प्रयोग किया है।

कविता में ध्वनितत्त्व की असीम सामर्थ्य तथा उसके प्रसार की गहराई को अनन्त सम्भावनाओं के साथ वाल्मीकि दिखला सके है। रामायण में पग-पग पर ध्वनि-तत्त्व दृष्टिगोचर होता है। शब्दों की ध्वन्यात्मकता से ही मानो रामायण के सभी प्रसङ्ग एवं घटनाएँ हमारे समक्ष मूर्त्त रूप

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धारण कर अन्तःमन का स्पर्श करती हुई आज भी भारतीय संस्कृति का आकाश-दीप एवं गौरवशिखर बना हुआ है। अतः मानवता के आदर्शों की मनोरम मञ्जूषा रामायण की कथा आज भी जगत् प्रसिद्ध है। अतः महर्षि वाल्मीकि ने सत्य ही कहा है—

यावद् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥

*

EP-61

रामायण में शक्तितत्व-निरूपण

सच्चिदानन्द पाठक, बेगूसराय (बिहार)

'श्वेताश्वतर उपनिषद्' में कहा गया है कि--

''परास्य शक्तिर्विविधैवश्रूयते।''

इस प्रकार शक्ति का स्वरूप विविधरूपों में सुख्यात है। वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में सतरहवें सर्ग में उत्पत्तिपरिपूता आयोनिजा सीता देवी के शक्ति रूप का वर्णन मार्मिक ढंग से किया गया है। ''योगवाशिष्ठ रामायण'' में सीता के कालरात्रिरूप का विशद वर्णन मिलता है। शक्तिस्वरूपा सीता को जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता, सिद्धा, रक्ता, अम्बिका, उमा, गायत्री आदि नामों से विभिन्न रामायण में सम्बोधित किया गया है। आध्यात्म रामायण में श्री राम को विष्णु एवं सीता को आधाशक्ति के रूप में माना गया है। रावण का मंत्री शुक भी सीताराम की अशेष सामर्थ्य का वर्णन करते हुए रावण से कहता है—

''रामो न मानुषः साक्षादादिनारायणः परः
सीता साक्षाज्जगद्धेतुश्चिच्छक्तिर्जगदात्मिका।''

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, कूर्म पुराण भी आध्यात्म रामायण के इस तथ्य से सर्वथा सहमत है कि असली सीता का हरण रावण द्वारा नहीं किया गया बल्कि माया-स्वरूपा सीता का हरण हुआ—

''सीतयाराधितो वह्निश्छाया सीतामजीजनत्।''

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी 'रामचरितमानस' में लिखा है—

सुनहुँ प्रियाव्रत रुचिर सुशीला।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मै कछु करब ललित नरलीला॥

तुमह पावक महुँ करहु निवास।
जौं लगि करहुँ निशाचर नासा॥

शक्ति में अप्रतिम सामर्थ्य को स्वीकारते हुए भी श्री राम ने पुनः शक्तिरूप दुर्गा की अर्चना स्वयमेव की। जिसका वर्णन वाल्मीकीय रामायण, आध्यात्म रामायण, योगवाशिष्ठ, अद्भुत रामायण में प्राप्त होता है।

महाशक्ति प्रत्येक समय दैत्यदलन हेतु अपना प्रभाव दिखाती रही हैं। सुन्दर काण्ड के 5वें अध्याय में हनुमान जी रावण से कहते हैं—

''यां सीता इति जानाति सेयं तिष्ठति ते वशे।
कालरात्रीति तां विद्धि सर्वलंकाविनाशिनीम्॥''

महर्षि विश्वामित्र ने राम को बला एवं अतिबला नामक तंत्रोक्त मंत्रद्वय प्रदान किया था। मुनिवर अगस्त्य द्वारा राम को प्रदत्त महास्त्र में महाशक्ति थी। भगवान अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा थी विद्या एवं शक्ति की निष्णाता साधिका थी। बंगला के अद्भुत रामायण में सीता द्वारा काली के विकराल रूप धारण करने का विशद वर्णन है।

❋

EP-62

मर्यादा पुरुषोत्तम राम से सम्बन्धित अनुत्तरित प्रश्न

डॉ. सम्पूर्णानन्द उपाध्याय, फैजाबाद (उ०प्र०)

वाल्मीकि रामायण, रामचरितमानस एवं उत्तररामचरित जैसे ग्रंथों के अध्ययन से विदित होता है कि दशरथपुत्र राम के जीवन में अनेकों ऐसे अनुचरित प्रश्न रह गये हैं, जिनका समाधान आज भी विद्वानों के गले की फाँस बना है। सर्वप्रथम राम की उत्पत्ति हव्य से मानने में जहाँ विद्वानों में मतैक्य दिखलायी पड़ता है, वहीं अंशावतार राम को सोलह कला सम्पन्न क्यों नही माना गया, बाद में भले ही परशुराम एवं रावण के संदर्भों में उन्हें सोलह कला सम्पन्न घोषित किया गया। छत्रिय होते हुए राम ने ताड़का का वध क्यों किया? राजा होते हुए उन्होंने शम्बूक का वध क्यों किया? खर-दूषण युद्ध के समय वह युद्धभूमि में दो पग पीछे क्यों हटे? एवं बालि का वध छिपकर क्यों किया? गर्भिणी अवस्था में जब कि गर्भिणी को अंन्न खिलाने में या दोहद पूर्ति में लोग पुण्यप्राप्ति मानते हैं, एवं सर्वतोभावेन गर्भिणी की रक्षा करना सभी गृहस्थों का कर्त्तव्य एवं धर्म बनता है, तब

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

राम ने सीता को ऐसी अवस्था में घर से निर्वासित क्यों किया? क्या यह सब करने में राम विवश थे, या उन्होंने जान-बूझकर किया, इत्यादि प्रश्नों का पूर्ण समाधान करने की चेष्टा प्रस्तुत शोधपत्र में की गयी है।

*

EP-63

भारतीय चिन्तन परम्परा में नीति निर्धारक तत्व : एक सर्वेक्षण

डॉ. बी.एन. ओझा, पटना

भारतीय चिन्तन परम्परा में नैतिकता का विचार एक विशाल विचार-प्रवाह है जो वेदों से चलकर आधुनिक तक अनवरत रूप से प्रवाहित हो रहा है और अपनी अनन्त यात्रा में आगे बढ़ने के लिए सतत् प्रयत्नशील है। यही कारण है कि नीतिशास्त्र के अनेक ग्रन्थ-वेद, उपनिषद्, स्मृतियाँ, रामायण, महाभारत, गीता-पुराण, दर्शन ग्रन्थ, नीति ग्रन्थ अनेक संतों एवं महापुरुषों के वाणियों के संकलन इस सतत् बौद्धिक प्रयास के परिणाम हैं। मध्यकालीन महापुरुषों के वचन धर्म-नीतियों के अलावा और कुछ नहीं हैं। 19वीं शताब्दी में राजा राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, गुरु रवीन्द्र नाथ ठाकुर, अरविन्द, महात्मा गाँधी और आचार्य विनोबा आदि ने हिन्दुस्तान की सोयी हुई नैतिक आत्मा को अपने बौद्धिक चिन्तन प्रयासों से जगाने का काम किया हैं तथा बहुत हद तक सफलता भी प्राप्त की है। हम नैतिकता के अर्थ एवं परिभाषा को परिभाषित करते हुए वेदों की नैतिकता से लेकर भारतीय दर्शन के सभी विचारधाराओं को नैतिकता का संक्षिप्त विवेचन करेंगे तथा पुनः हम भारतीय दर्शन के नैतिक प्रत्ययों की समीक्षा भी करेंगे, जहाँ वर्ण-व्यवस्था नैतिकता का सामाजिक पहलू है, वहीं आश्रम-व्यवस्था नैतिक विकास का वैयक्तिक पक्ष है, जिनके गुणों को वैयक्तिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं चारित्रिक दृष्टि से अस्वीकार नहीं किया जा सकता। वरन् कुछ संशोधन किये जा सकते हैं। अन्त में पुरुषार्थ विवेचन के द्वारा हम चार पुरुषार्थों 'धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष' की विवेचना करेंगे।

*

EP-64

शिवपुराण का दार्शनिक महत्व

डॉ. कमला कुमारी उपाध्याय, औरंगाबाद (बिहार)

प्राचीन भारतीय साहित्य में पुराणों का उल्लेखनीय महत्व है। वैदिक धर्म को सर्वजन सुलभ

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बनाने के लिए महर्षि वेदव्यास ने पुराणों की रचना की। भारतीय मनीषा, कला, संस्कृति, धर्म, दर्शन आदि का संरक्षण पुराणों के माध्यम से ही सम्भव हुआ है। शिव पुराण को सभी पुराणों का सिरमौर माना जाता है।

वेदान्त और विज्ञान से परिपूर्ण यह पुराण जहाँ एक ओर कल्पवृक्ष के समान मानव के इहलौकिक सभी मनोरथों को पूर्ण करता है, वहीं दूसरी ओर पारलौकिक कल्याण की दिशा में जीवन में शिवोऽहम् की भावना जगाकर उसे शिव बनाने में सहयोग करता है। सृष्टि की रचना से लेकर जीव, जगत, माया, प्रकृति, योग, ध्यान बन्धन, मोक्ष आदि सभी दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विषयों का विवेचन शिवपुराण में किया गया है।

वैदिक साहित्य में वर्णित रुद्रदेव ही पौराणिक युग में शिव के रूप में प्रतिष्ठित हैं। सम्पूर्ण सृष्टि में एक ही परम तत्त्व है जिसे परब्रह्म कहते हैं। शिवपुराण के अनुसार वह तत्व शिव हैं। वे ही परात्पर ब्रह्म हैं जो निमित्त भेद से ब्रह्मा, विष्णु, शिव के रूप में सृष्टि की रचना, पालन और संहार करते हैं। शिव पुराण की वायवीय संहिता में वायुदेव का कथन है—

'एक एव तदा रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन।
संसृज्य विश्व भुवनं गोप्तान्ते संचुकोच यः॥'

शि० पु० वा० सं० पू० खं० अ० 6 श्लो० 14

अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में एक ही रुद्रदेव विद्यमान रहते हैं, दूसरा कोई नहीं। वे ही इस जगत् की सृष्टि करके इसकी रक्षा करते हैं और अन्त में इसका संहार भी कर डालते हैं।

शिवपुराण में चौबीस हजार श्लोक और सात संहिताएँ हैं—(1) विद्येश्वर संहिता (2) रुद्र संहिता (3) शतरुद्र संहिता (4) कोटि रुद्र संहिता (5) उमा संहिता (6) कैलाश संहिता और (7) वायवीय संहिता। सप्त संहिताओं वाले इस शिव पुराण में शिव के शुद्ध-बुद्ध सर्वव्यापक स्वरूप एवं उनकी प्रणवरूपता का प्रतिपादन किया गया है।

शिव पद की प्राप्ति साध्य है और शिव पुराण का श्रवण, मनन, कीर्तन साधन। यह मानव मात्र की चित्तशुद्धि आत्माज्ञान एवं आत्मोद्धार का सर्वोत्तम साधन है।

नमो रुद्राम शान्ताय ब्रह्मणे परमात्मने।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-65

पं० विश्वेश्वरनाथ रेऊ कृत विश्वेश्वरस्मृति - आधुनिकतम स्मृति ग्रन्थ

श्वेता सिंह, दयालबाग (आगरा)

प्राचीन संस्कृति का आधार हिन्दू धर्मशास्त्र को माना जाता है। मनु का कथन है कि "**श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्र तु वैः स्मृति**" अर्थात श्रुति वेद हैं और स्मृतियाँ धर्मशास्त्र हैं। प्रायः स्मृतियों का काल निर्धारण 200 ई० से 800 ई० तक माना जाता है। पं० विश्वेश्वर नाथ रेऊ कृत विश्वेश्वरस्मृति 20वीं शताब्दी का आधुनिकतम स्मृति ग्रन्थ है। जोधपुर निवासी पं० विश्वेश्वरनाथ रेऊ राजा उम्मेद सिंह जी के सभारत्न थे। प्राचीन काल में मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य, पराशर, देवल आदि अनेक स्मृतियाँ विद्यमान थीं जो समयानुरूप होती थीं किन्तु आधुनिक युग में समय एवं परिस्थिति के परिवर्तित होने के कारण उपरोक्त स्मृतियों का उपयोगी होना दुष्कर प्रतीत होता है। इसलिये ही वर्तमान परिवर्तित नैतिक जीवन मूल्यों के दृष्टिकोण से पं० रेऊ ने युगानुरूप विश्वेश्वरस्मृति नामक नवीन स्मृति ग्रन्थ की रचना की है तथा इसका नवीनीकरण प्रस्तुत करने के लिये ही इस स्मृति को पं० रेऊ जी ने अपने नाम के साथ सम्बद्ध किया है। इस स्मृति की नवीनता का प्रमाण इसके अन्त में लिखे एक पद्य से प्राप्त होता है जिसमें लिखा गया है कि सन्1996 में लोगों की इच्छा से ही इस स्मृति की रचना की गयी है। विश्वेश्वरस्मृति का उपजीव्य मनुस्मृति को माना जा सकता है तथा इस स्मृति को मनुस्मृति का युगानुरूप नवीनीकरण भी कहा जा सकता है। पं० रेऊ के अनुसार मनुस्मृति में विधानों का प्रतिपादन तो किया गया है यथा [**न लंघयेत्वत्सतन्त्री** (अध्याय 4/38)] किन्तु उसमें निहित जिज्ञासा को शान्त नहीं किया गया है। इसलिये ही युवा पीढ़ी इन स्मृति ग्रन्थों के प्रति कोई रुचि प्रकट नहीं कर रही है। इसी अरुचि एवं अश्रद्धा को समाप्त करने के उद्देश्य से ही पं० रेऊ ने युगानुरूप नवीन स्मृति का निर्माण किया है। पं० रेऊ ने मनुकृत संस्कारों के निश्चित काल निर्धारण (वि०स्मृति 2/24), विवाह (वि०स्मृति 2/33), अशौचाचार (वि०स्मृति 5/50-51) आदि विभिन्न विधानों के प्रति मनुष्यों की जिज्ञासा को शान्त करते हुए युगानुरूप नवीन वैज्ञानिक मत प्रस्तुत किये हैं।

यद्यपि आधुनिक युग सूचना प्रौद्योगिकी का युग है किन्तु प्रत्येक युग में स्मृति प्रतिपादित जीवन मूल्यों की महत्ता को नकारा नहीं जा सकता है। प्राचीन स्मृतियों में जिज्ञासा की शान्ति न होने के कारण आधुनिक युग के जिज्ञासु मनुष्यों में स्मृति प्रतिपादित धर्म के पालन में अरुचि ही नहीं बढ़ी है अपितु पश्चिमी संस्कारों से दीक्षित पुरुषों की तो इन विषयों में अश्रद्धा भी बढ़ गयी है। युवाओं में इसी अश्रद्धा और अरुचि को समाप्त करती हुई 20वीं शताब्दी की यह स्मृति जहाँ मनुष्य के आध्यात्मिक पथ को ज्ञान का पाथेय प्रदान करती है वहीं उसके जीवन को प्रकाशित करने वाला दीपस्तम्भ भी है। आज पश्चिम से आयातित सभ्यता की आँधी से ढहते स्थाई मूल्यों,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विच्छिन्न होती हुई संस्कृति, मानव की अस्मिता पर घने बादल की तरह मंडरा रही है। ऐसे में दिग्भ्रमित मानवजाति को विश्वेश्वर स्मृति का आलोक दिशा प्रदान करने में सक्षम है।

*

EP-66

महाभारत में नैतिक मूल्यों की अवधारणा

डॉ. इन्दु तिवारी, उन्नाव

महाभारत जीवन-यापन की सर्वोत्तम पद्धति और नैतिक मूल्यों की दृष्टि से एक महान ग्रन्थ है। महाभारत में नैतिक मूल्यों के अन्वेषण से पूर्व नीति, नैतिक और नैतिक मूल्यों के स्वरूप पर एक संक्षिप्त दृष्टि डालनी आवश्यक है।

कोशों, नीति ग्रन्थों एवं काव्य ग्रन्थों के आधार पर विविध जीवन-विधा से सम्बन्धित उचित व्यवहार को नीति की संज्ञा से अभिहित किया गया है। नीति से युक्त तत्व ही नैतिक कहलाते हैं और नैतिकता सम्बन्धी सिद्धान्त ही नैतिक मूल्य है। नीति, नैतिक एवं नैतिकता को विभिन्न युगों एवं समाजों के निकष पर परखने से प्रतीत होता है कि कुछ नैतिक मूल्य युगानुसार परिवर्तनशील हैं, कुछ शाश्वत मूल्य हैं।

महाभारत में प्रतिपादित नैतिक मूल्यों पर वर्गीकरण और विश्लेषण करने से यह स्पष्ट होता है कि ये नैतिक मूल्य तीन प्रकार के हैं—व्यक्तिनिष्ठ, समाजनिष्ठ तथा राष्ट्रनिष्ठ। व्यक्तिनिष्ठ नैतिक मूल्य मानवता के उदान्त गुणों के प्रतीक हैं—

शमोदमस्तपो दानं सत्यं शौचमथार्जवम्।
यज्ञो घृतिश्च धर्मश्च नित्यमार्षो विधिः स्मृतः॥ (शांतिपर्व 12.16)

*

EP-67

'पार्श्वनाथ चरित' महाकाव्य में अभिव्यक्त सांस्कृतिक परिवेश

डॉ. हरि किशोर प्र० सिंह, मुजफ्फरपुर (बिहार)

महाकवि पद्मकीर्ति रचित 'पार्श्वनाथ चरिऊ' में सांस्कृतिक तथ्य भी प्रचुर परिमाण में उपलब्ध हैं। इसमें कवि ने आत्मा और व्यक्तित्व को सुसंस्कृत करने के लिए आध्यात्मिक एवं व्यवहारिक

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA.

संस्कारों की नियोजना की है। भोजन-पान, वेश-भूषा, आभूषण, मनोरंजन, वाद्य संगीत, नृत्य एवं विभिन्न क्रीड़ाओं तथा प्रसाधन-सामग्री आदि का निरूपण किया है। साथ ही कवि ने मानव-जीवन को उन्नत बनाने हेतु आचार-विचार एवं शिक्षा का सम्यक प्ररूपण किया है। जनसामान्य के जीवन स्तर से परिचित कराने हेतु भोजन-पान वस्त्र, आभूषण, जन्मोत्सव, राज्याभिषेक, दीक्षोत्सव आदि का भी निर्देश किया है।

*

EP-68

पुराणों में सोमनाथ - प्रभास क्षेत्र की महिमा

डॉ. सुनील निलाबर, राजकोट (गुजराज)

पुराणों में 18 पुराण मुख्य हैं, और भी प्रकाश में न आये हुए पुराभीथी अनगिनत है। भारत में ज्योर्तिलिंग 12 माने जाते हैं। और भी अनेक शैवमंदिर भी ज्योर्तिलिंग की गुणवता पाये हुए हैं, बारह ज्योर्तिलिंग में .....

इस श्लोक से फलित होता है कि सोमनाथ प्रभास का ज्योर्तिलिंग में प्रथम है। का प्रवासन क्षेत्र में, ऐतिहासिक क्षेत्र में, पौराणिक क्षेत्र में बहुत महत्व है। इस शैव क्षेत्र का प्राचीन समय से बहुत महत्व है। लगभग सभी पुराणों ने इस क्षेत्र के गुण गाये हैं। स्कंदपुराण में तो प्रभास वी महिमा वर्णन करता हुआ पुरा प्रभास-खंड का विवरण मिलता है।

इस भूमि में भगवान श्रीकृष्ण भी अपना निर्वाण पाने के लिए योग्य मानते थे। भालका तीर्थ क्षेत्र में भगवान श्रीकृष्ण की निर्वाण भूमि की गाथा आज भी है और कृष्ण की तीर लगने से सोये हुए हैं ऐसी मूर्ति भी रखी हुई है।

सोमनाथ महादेव का यह तीर्थ सूर्यवंशी, अग्निवंशी, चंद्रवंशी सभा के वंशज अपना मानते हैं। इसलिए इस क्षेत्र को भास्करतीर्थ, सूर्यतीर्थ, अग्नितीर्थ के नाम से भी जाना जाता है।

महाभारत के पाण्डव भी यहीं पर अज्ञातवास करने के लिए रुके थें। चांद्रवर्ष के 358 दिन (एक वर्ष) यहाँ रुके हुए थे। वेद, महाभारत में भी उनका उल्लेख है।

महाभारत की कथा अनुसार चन्द्र की पत्नी रोहिणी के साथ ही चन्द्र ज्यादा समय रहता था। दक्ष की और 26 पुत्रियों के साथ नहीं रहता था। तब दक्ष ने यक्ष को चन्द्र को ग्रहित करने के लिए भेजा चन्द्र क्षीण होने से दक्ष ने उपाय कहा कि सभी के साथ उसे समदृष्टि रखनी चाहिये और क्षय दूर करने के लिए सोमनाथ महादेव की पूजा करके सरस्वती-संगम स्थान में स्नान करने

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

से उसकी रोग से मुक्ति होगी परंतु, अर्ध भाग में प्रकाशित और अर्ध भाग में अप्रकाशित रहेगा ऐसे बहुत सी बातों से सोमनाथ का यह क्षेत्र प्रचलित है।

*

EP-69

महाभारतान्तर्गत विष्णुसहस्त्रनाम — एक अनुशीलन

सार-समीक्षा

डॉ. दिवांशु कुमार, छपरा (बिहार)

श्रीविष्णुसहस्त्रनाम महाभारत के अनुशासनपर्व का 149वां अध्याय है। महाभारत युद्ध हो जाने के अनन्तर धर्मराज युधिष्ठिर को परम वैराग्य हुआ। वे किसी प्रकार भी राज्य करने को उद्यत नहीं हुए, तब भगवान् श्रीकृष्ण सब भाईयों के सहित उन्हें भीष्मपितामह के समीप उपदेश कराने के निमित्त ले गये। धर्मराज ने राजधर्म, दानधर्म, वर्णाश्रमधर्म, स्त्रीधर्म आदि के जो-जो प्रश्न किये पितामह ने सबका यथावत् उत्तर दिया। भीष्मपितामह से अशेष धर्मोपदेश ग्रहण के पश्चात् युधिष्ठिर के "को धर्मः सर्वधर्माणाम् भवतः परमो मतः?" इस प्रश्न के उत्तर के क्रम में भीष्मपितामह के श्रीमुख से विष्णुसहस्त्रनामरूपी जगत्पावनी ज्ञानगंगा का प्रबल प्रवाह प्रवाहित हुआ जो लोकवेद सर्वत्र विख्यात ही नहीं हुआ अपितु अवगाहन कर अनेक ऋषि-मुनियों ने अपनी-अपनी अभीप्सित सिद्धि प्राप्त कर अपना जीवन कृतार्थ किया। इसमें 144 श्लोक हैं। इनमें आरम्भ के 15 श्लोक तो उपोद्घात के हैं। जिन श्लोकों में भागवत् के सहस्त्रनाम हैं, वे श्लोक 107 हैं। और अन्त में 22 श्लोक उपसंहार के हैं। महाभारतरूपी महासागर से (1) श्रीमद्भगवद्गीता, (2) विष्णुसहस्त्रनाम, (3) भीष्मस्तवराज, (4) अनुस्मृति और (5) गजेन्द्रमोक्षस्तुति, ये जो देदीप्यमान पाँच रत्न निकले, उनमें विष्णुसहस्त्रनाम केवल नामरूप रसवत्ता के कारण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। विष्णुसहस्त्रनाम के श्लोक ऐसे फल हैं, जिनमें न छिलका है, न गुठली, केवल जमा हुआ रस ही रस है, कि मुँह में डाला और गल गया। श्रीविष्णुसहस्त्रनाम में भगवान् नारायण की स्तुति में दिव्य एक हजार नामों का कीर्त्तन है। ये नाम उस परमसत्ता के वाचक हैं जिसे दुनिया ईश्वर, God, अल्लाह आदि कहती है। ये दिव्य नाम उस व्यापक सत्ता की अनुभूति कराते हैं, जिसे तर्कशील वैज्ञानिक लोग "शक्ति" कहते हैं। यह ध्यातव्य है कि श्रीविष्णुसहस्त्रनाम में जिन एक हजार नामों का प्रयोग किया गया है वे एक-एक नाम भावातीत ध्यान में सहायक है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-70

रामायणीय आख्यानों के परिप्रेक्ष्य में स्त्री सम्मान

डॉ. रेणु बाला

भारतीय समाज में आख्यानों का इतिहास बहुत प्राचीन है। वैदिक साहित्य में पर्याप्त मात्रा में आख्यान उपलब्ध होते हैं। कुछ आख्यानों के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि यह श्रवण परम्परा में पूर्व वैदिक काल में भी रहे हैं। ऋग्वेद में उर्वशी अपनी शर्तें पूरी न होने पर जाने की बात तो करती है, किन्तु वह शर्तें क्या थी इसका उल्लेख वहाँ नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि ऋग्वेद काल में यह आख्यान किसी और स्रोत में विद्यमान था। जहाँ से इसे वैदिक साहित्य में उद्धृत किया गया है।

आख्यानों का विषय—सृष्टि विज्ञान, प्राचीन वीरों, देवी-देवताओं, जनता की आलौकिक एवं अद्‌भुत परम्पराओं तथा किसी देश के धार्मिक विश्वास आदि का वर्णन करना रहा है। इन आख्यानों में समाजोपयोगी अन्तर्निहित सन्देश विद्यमान रहता है। सूर्य-सरण्यू संबंधी आख्यान का उपदेश स्पष्ट संकेत देता है कि पति के क्रोधी स्वभाव के रहते पत्नी का वहाँ रहना कठिन हो जाता है। कालदहन आख्यान में शिव जी का तृतीय नेत्र खुल जाने पर काम का भस्म हो जाना स्पष्ट करता है कि मनुष्य का ज्ञानचक्षु जब खुल जाता है तो सब काम-विकार नष्ट हो जाते हैं।

लौकिक साहित्य के आदि ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण में पर्याप्त मात्रा में आख्यान उपलब्ध होते हैं। इनमें कुछ आख्यान यही सन्देश देते हैं कि स्त्री का समाज में पूर्ण सम्मान हो, उसकी सुरक्षा हो, उसके साथ कोई दुर्व्यवहार न हो, उसके साथ बलात्कार आदि जैसी निन्दनीय घटनाएँ न हों, क्योंकि ऐसी घटनाओं के परिणामस्वरूप समाज का विनाश अवश्यम्भावी है। दण्ड का राज्य अरजा बलात्कार के कारण ध्वस्त हो गया।

अहिल्या से छलपूर्वक संभोग करने के कारण इन्द्र को निर्वृषण होना पड़ा। रावण के द्वारा वेदवती से किया गया दुर्व्यवहार उसके विनाश का कारण बनना, रावण को रम्भा के साथ बलात संभोग करने के परिणामस्वरूप नलकुबेर द्वारा दिया गया शाप आदि आख्यान स्त्री सम्मान के द्योतक हैं।

रम्भा रावण को कहती है कि मैं आपकी पुत्रवधू के तुल्य हूँ, अतः आप मेरे साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिए, किन्तु यदि मैं आपकी वधू के तुल्य नहीं तो भी आपके द्वारा मेरे साथ ऐसा व्यवहार करने की कल्पना भी नहीं की जा सकती, बल्कि यदि कोई अन्य पुरुष भी भी मेरे साथ ऐसा व्यवहार करे तो उससे भी आपको मेरी रक्षा करनी चाहिए—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अन्येभ्योऽपि त्वया रक्ष्या प्राप्नुयां घर्षणं यदि।
तद्धर्मतः स्नुषा तेऽहं तत्त्वमेतद् ब्रवीमि ते॥

आर० 26/29

राम द्वारा अहल्या को पुनः स्त्री रूप में लाना समाज द्वारा तिरस्कृत एक औरत का सम्मान पुनः स्थापित करना है।

*

EP-71

श्रीमद्भगवद्गीता में धर्मतत्त्व

डॉ. नलिनी शुक्ला, लखनऊ

इस विशाल विश्व के विभिन्न अवयवों को एकसूत्र में बाँधने वाला सार्वभौम तत्व है 'धर्म'। धर्म के बिना मनुष्य मात्र का अस्तित्व असम्भव है, इसी कारण साक्षात् परमेश्वर के मुखारविन्द से निःसृत श्रीमद्भगवद्गीत् में धर्म को व्यापकता से प्रतिष्ठित किया गया है, अर्जुन को उपदेश देते हुए भगवान् मनुष्य मात्र का धर्म कर्म करना बताते हैं, कर्म को यहाँ 'धर्ममय अमृत' कह कर सम्बोधित किया गया है।

गीता के अनुसार धर्म ही मनुष्य को स्वार्थ, अभिमान त्याग करके दूसरों का हित सिखाने वाला तत्व है, धर्म ही प्राणिमात्र को मर्यादित करता है तथा उसे उच्छृंखल नहीं होने देता, धर्म ही मनुष्य में मनुष्यता लाता है, यदि मनुष्य धर्म को त्याग दे तो वह पशुओं से भी पतित हो जायेगा, इसलिए मनुष्य को किसी भी प्रकार से धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए, हाँ यह अवश्य है कि धर्मों का आश्रय शरीर न होकर ईश्वर प्राप्ति ही होना चाहिए, तात्पर्य यह है कि धर्म का पालन निष्काम भाव से ईश्वर का आश्रय लेकर करना चाहिए।

श्रीमद्भगवद्गीता को परमपिता परमात्मा स्वयम् साक्षात् धर्ममय बताते हुए कहते हैं—

"अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति में मतिः॥"

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-72

पुराणों में ऐतिहासिक तथ्य

नीरू रानी, चण्डीगढ़

पुराण भारतीय साहित्य के अतीत को वर्तमान के साथ जोड़ने वाली स्वर्णिम शृंखला हैं। प्रतीकवाद, परोक्षवाद और रहस्यवाद से अनुप्राणित सभी पुराण हमारे राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवन के दर्पण हैं। भारतीय मान्यता के अनुसार पुराणों को वेदों की प्रतिच्छाया एवं पंचम् वेद स्वीकार किया जाता है। पुराणों की महत्ता का वर्णन स्वयं पुराण ही करते हैं (पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणां स्मृतं, अनंतरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गता: अर्थात् पुराण सभी शास्त्रों से पूर्व थे। उसके पश्चात् ब्रह्मा के मुख से वेद निकले)।

इसी प्रकार पौराणिक सूतों के कथनानुसार पुराण-तत्त्वज्ञ भगवान् वेदव्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा, कल्पशुद्धि के साथ पुराण संहिताओं की भी रचना की। पुराण अनेक विद्याओं से सम्पन्न होने के साथ-साथ इतिहास विद्या को भी अपने भीतर समाहित किए हुए हैं। अनेक ऐसी घटनाएँ इनमें वर्णित हैं जो हमारे प्राचीन इतिहास को वर्तमान में भी प्रकट करती हैं। अनेक इतिहास-प्रसिद्ध वंश, जिनका वर्तमान में अस्तित्व लभ्य नहीं होता, उनका ज्ञान पुराणों के माध्यम से होता है।

*

EP-73

उपनिषदों का सन्देश और वर्तमान युग

सुशील कुमार, चण्डीगढ़

उपनिषदें भारतीय तत्व-चिन्तन की चूड़ामणि है। यह एक भ्रामक दृष्टिकोण है कि उपनिषदें लोक जीवन का निषेध करती है। आत्मतत्व ही उपनिषदों का मूल और मुख्य सन्देश है। आत्मा जीवन और जगत का शाश्वत आधार है, अत: उपनिषदों का संदेश सनातन है। वर्तमान युग वैज्ञानिक तथा बौद्धिक है। आत्म-तत्व अनुभव का अन्तस्तम मर्म है। वह इन्द्रियों तथा बुद्धि से अतीत एवं आग्रह्य है। अनुभव में उसका आभास हो सकता है।

वर्तमान युग बौद्धिकता, विज्ञान और भौतिकता का युग है। वर्तमान युग का आरम्भ धार्मिक रूढ़िवाद के विरुद्ध बौद्धिक क्रान्ति से हुआ। यह विविध विज्ञानों में प्रतिफलित हुई। विज्ञान के विस्तार से सभ्यता का विकास हुआ जीवन में विषयवाद अधिक बढ़ने पर अनात्मिकता बढ़ती है। विषयों

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

का मोह संग्रह को प्रेरित करता है। उपनिषद मनुष्य को अध्यात्म की और ले जाते हैं। इसलिए उपनिषदों का आधुनिक युग में बहुत महत्व है।

*

EP-74

पापाराधवृत्ति तथा गीता

शाम सुन्दर, चण्डीगढ़

वर्तमान में वर्धमान पापाराधवृत्ति को देखते हुए प्रस्तुत विषय का चयन किया गया। गीता क्योंकि हमारी संस्कृति एवं धर्म का मूल है और यह ग्रन्थ किसी भी समस्या के समाधान का मार्गदर्शन करने में अछूता नहीं है, अत: बढ़ती पापाराधवृत्ति का निदान गीता में ढूँढ़ने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत विषय को तीन मुख्य भागों में बाँटा गया है।

1. दिन प्रतिदिन वर्धमान पाप-अपराध
2. अतिरजस्तमोगुणात्मतक बुद्धि ही पापाराधवृत्ति का कारण
3. गीता द्वारा उक्त समस्या का समाधान

विज्ञान ने जहाँ मानव को सुख-सुविधाओं से ओतप्रोत किया है वहीं उसकी मृत्यु, चिन्ताओं और दुराचारों का सामान भी जुटाया है। सन्तोष, सुसंस्कारों एवं ज्ञान का अभाव तथा बढ़ती तृष्णाओं ने मानव के मन मस्तिष्क पर पर्दा डाल दिया है।

अनेकों प्रयास किये जाने पर भी बढ़ती ये पापाचार की वृत्ति समाप्त होना तो दूर, कम होने का नाम भी नहीं ले रही है। बढ़ती रजस्तमोगुणी प्रवृत्ति के कारण मानव इसके दूरगामी परिणामों का तनिक भी विचार नहीं कर रहा है।

इन पापापराधवृत्तियों का निवास मानव के स्थूल शरीर में न होकर सूक्ष्म शरीर में निहित है। गीता मानव के सूक्ष्म शरीर को उद्वेलित करने वाला एवं ज्ञान चेतना को जागृत करने वाला ग्रंथ है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-75

'विष्णु पुराण' में मायामोह का प्रसंग

आर.के. श्रीवास्तव, रायपुर (छत्तीसगढ़)

पराशर मुनि विरचित 'विष्णु पुराण' को अष्टादश पुराणों में उच्च स्थान प्राप्त है। विष्णु भक्तिपरक इस पुराण में भूगोल, खगोल, ज्योतिष, कर्मकाण्ड, विभिन्न राजवंशों तथा श्रीकृष्ण चरित्र आदि प्रसंगों का अनोखा एवं पर्याप्त रूप में वर्णन किया गया है। साथ ही भक्ति एवं ज्ञान की अविच्छिन्न धारा सम्पूर्ण ग्रन्थ में प्रवाहित हुई है।

इस पुराण में निहित प्रकरणों के विभागों को 'अंश' तथा अवान्तर प्रकरणों को 'अध्याय' नाम दिया गया है। इस पुराण का उपोद्घात पराशर मुनि और मैत्रेय के मध्य प्रश्नोत्तर के रूप में हुआ है।

विष्णु पुराण के अनेकानेक प्रकरणों में से तृतीयांशांतर्गत अध्याय 17 एवं 18 में 'मायामोह' का प्रसंग व्यंग्यात्मक एवं रोचक प्रतीत होता है। भगवान् विष्णु 'मायामोह' को देवताओं को सौंपते हुये कहते हैं कि—

''मायामोहोऽयमखिलान्दैत्यांतस्तान्मोहयिष्यति।
ततो वध्या भविष्यन्ति वेदमार्ग बहिष्कृताः॥''

(वि०पु० 03/17/42)

दैत्यों को वेदत्रयी से पराङ्गमुख एवं मोहित करते हुए जिस मार्ग का अनुसरण करने हेतु मायामोह द्वारा उपदिष्ट किया जाता है वह उनके पतन का कारण बनता है, अर्थात् देवताओं से दैत्यों की पराजय होती है।

'मायामोह' द्वारा दैत्यों को जिस मार्ग का अनुसरण करने बताया गया है उसके लक्षण जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म में परिलक्षित होते हैं। इसकी विस्तृत चर्चा इस प्रलेख में आगे की जायेगी।

*

EP-75-A.

स्मृति साहित्य में प्रतिपादित ब्रह्मचर्याश्रम की प्रासंगिकता

डॉ. अतिया दानिश, सहारनपुर

स्मृति साहित्य में प्रतिपादित चारों आश्रमों में ब्रह्मचर्याश्रम प्रथम एवं सबका आधारभूत है। यह सामान्य रूप से विद्या ग्रहण का काल है किन्तु वास्तव में वह उससे कुछ अधिक ही है। मनुष्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का भोगों के प्रति जो स्वाभाविक आकर्षण है वहीं असमय तथा सीमा से अधिक होने पर पतन का कारण बन जाता है। ब्रह्मचर्य उसी पतन से रक्षा का मार्ग दिखाता है।

बाल्यावस्था जीवन के निर्माण की अवस्था है। इस काल में बालक को जैसी शिक्षा दी जाती है, वैसा ही संस्कार वह ग्रहण करता है। इसीलिए मनुष्य के जीवन की प्रारम्भिक अवस्था गुरुकुल में बिताने का विधान था जिससे बाल्यकाल से ही वह धर्म के सही स्वरूप को समझ सके। विद्यार्थी भोगमय स्वभाव को त्याग कर सही अर्थों में मानव बन सके, ब्रह्मचर्याश्रम सीखने का काल है, इसमें विद्यार्थी सीखता है, शक्ति संचय करता है जो भावी जीवन में उपादेय सिद्ध होता है।

ब्रह्चारी के लिए निर्धारित वेशभूषा का अपना विशिष्ट उद्देश्य होता है। जटाओं और मृगचर्म को धारण करना इस बात का सूचक है कि वे संसार के भोग-विलास से दूर रहे। इसके अतिरिक्त सबके लिए एक समान वेशभूषा से धनी-निर्धन का भेद स्वतः दूर हो जाता था और वह सभी को सरलता से प्राप्त था।

धर्मशास्त्रकारों ने ब्रह्मचारी के कर्तव्य अन्य समस्त आश्रमवासियों से भिन्न बताए हैं। ब्रह्मचारी के लिए विद्योपार्जन, गुरुसेवा, भिक्षाचर्या आदि कर्तव्य हैं (मनु० 2/96, याज्ञवल्क्य 1/26), इसके अतिरिक्त ब्रह्मचारी को विद्वेष, चुगली, हिंसा, नृत्य, मिथ्या, उन्माद, निन्दा, अलंकार आदि की सज्जा, अंजन, उबटन, दर्पण देखना, पुष्पाहार, चन्दन आदि सुगन्धित लेपन, स्त्रीभाषण, व्यर्थ घूमना, असन्तोष आदि का पूर्णतः त्याग करना आवश्यक है। (व्यास 1/26-28)

ब्रह्मचारी विद्या निःशुल्क रूप से प्राप्त करते थे। वेदाध्ययन के लिये कोई शुल्क नहीं था। विद्या प्राप्त कर ब्रह्मचारी स्वइच्छानुसार गुरु को गुरुदक्षिणा देता था। विद्या दान का कोई मूल्य नहीं था। तत्कालीन गुरु दक्षिणा कृतज्ञता तथा श्रद्धा का प्रतीक था। शिष्य के शोषण का तो कथमपि प्रश्न ही नहीं उठता था। विद्या समाप्त कर लेने पर स्नातक आचार्य की अनुमति से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के उद्देश्य से घर लौटते थे। उस समय समावर्तन संस्कार सम्पन्न किया जाता था जो इस बात का प्रतीक है कि अब व्यक्ति की शिक्षा समाप्त हो चुकी है और वह गृहस्थाश्रम के दायित्वों का निर्वाह करने के योग्य हो गया है।

स्मृति-साहित्य में प्रतिपादित ब्रह्मचर्य आश्रम जितना वैज्ञानिक है, उतना ही उपयोगी भी। अपनी निर्धारित आयु के उपरान्त उपनयन संस्कार सम्पन्न होने पर बालक अपने परिवार से बाहर आकर गुरुकुल का ही वासी होता था। यह समय उसकी साधना का काल होता था। साधना भावी जीवन को सफल सार्थक करने के लिए और सर्वोपरि मानव-जन्म को धन्य करने के लिए। गुरुकुलीय शिक्षा जहाँ विद्यार्थी को एक सफल गृहस्थ, अपना तथा अपने परिवार का भार वहन करने के योग्य बनाती, वहीं उसे देश का एक सम्मानित नागरिक भी बनाने में सहायक होती अर्थात् व्यष्टि के माध्यम

CC-0.JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

से समष्टि के लिए भी उसकी आवश्यकता थी। समाज की भित्ति-उसकी नींव ही गुरुकुल तथा ब्रह्मचर्य आश्रम को माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त वहीं पर उसे अपनी पहचान भी मिलती- न केवल सांसारिक अपितु आध्यात्मिक भी।

*

EP-76

पुराणों में भौतिक भूगोल (ब्रह्म-वैवर्तपुराण के विशेष संदर्भ में)

डॉ. प्रणव देव, झालावाड़ (राज०)

भौतिक भूगोल की अवधारणा में पृथ्वी का अध्ययन मूलवद्ध है। पुराणों में पृथ्वी की उत्पत्ति से सम्बन्धित एक आख्यान प्राप्त होता है। जिसके अनुसार इसकी उत्पत्ति दो राक्षसों से हुई है। उक्त आख्यान से दो तथ्यों की सहज उपलब्धि होती है। प्रथम पृथ्वी की उत्पत्ति के समय विराट, का अण्डाकार या डिम्प रूप में होना, द्वितीय राक्षसों के मेद द्वारा उसका निर्माण किया जाना। अण्ड से भू उत्पत्ति विषयक विवरण हमें अनियंत्रक भी मिलता है। पुनश्च: जीन्स तथा जौफरे नामक पाश्चात्य विद्वानों का भू-उत्पत्ति विषयक मत पुराणों से पर्याप्त साम्य रखता है। पृथ्वी की आयु लगभग दो अरब पुराणानुसार हो सकती है। पुराणों में द्वीप क्षेत्रों, नदियों, पर्वतों, सात समुंद्रों वन एवं पर्यावरण सहित सभी भौतिक दशाओं का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

जिस प्रकार आधुनिक भौतिक भूगोलविद, भूगोल और खगोल के नाम से क्रमश: भू-मण्डल एवं ऊपरी लोकों का वर्णन करते हैं, तथापि पृथ्वी की सतह पर स्थित पदार्थों के ज्ञान के साथ-साथ खगोलीय गृहों की स्थिति एवं गति का ज्ञान लेते हैं, पृथ्वी, द्वीप, पर्वत, वनादि के अतिरिक्त वायु मण्डल के साथ एवं नक्षत्रादि, मण्डलादि अनेक अध्ययन क्षेत्र की सामग्री बनाते हैं, उसी प्रकार पुराणकारों ने भी प्राय: सभी उपर्युक्त भौगोलिक उपादानों पर विचार किया है। पुराणकारों द्वारा वर्णित विभिन्न भौगोलिक तथ्यों से संकेत मिलता है कि पुराणों में परिस्थितिकीय संतुलन एवं पर्यावरण चेतना को बनाये रखने का सतत प्रयास किया गया था। शायद इसीलिए विभिन्न पुराणों के नामकरण में भी स्थलचर, जलचर, नभचरों को प्रतिनिधित्व दिया गया। समासत: पुराण प्रतिपादित भौतिक भूगोल, वर्तमान भौतिक भूगोल की शब्दावली तथा भौतिक दशाओं में सर्वथा भिन्न है, लेकिन तत्वत: आधुनिक भौतिक भूगोल से भिन्न या पृथक नहीं है। जिन समस्याओं का समाधान पौराणिकविद नहीं कर सके वे आज भी चुनौतियां बनी हुई हैं।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-77

संस्कृत साहित्य में धर्म मीमांसा

डॉ. राजकृष्ण, यमुना नगर (हरियाणा)

धर्म सम्पूर्ण संसार की प्रतिष्ठा है और धर्म पर ही सम्पूर्ण संसार टिका है। धर्मात्मा सभी का आश्रय होता है। धर्म के आचरण से पाप नष्ट होता है। इसीलिये धर्मज्ञ मनीषी धर्म को ही सर्वोपरि मानता है इसीलिये नारायणोपनिषद् में कहा है—धर्मोविश्वस्यजगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठप्रजा उपसर्पन्ति। धर्मेणपापम-पनुदनित, धर्मे सर्वं पतिष्ठितम्। तस्माद्धर्मं परमं वदन्ति। धर्मपालक का रक्षक स्वयं धर्म होता है जो धर्म का तिरस्कार करता है, वह अधोगति को प्राप्त होता है—

धर्मएव हतोहन्ति धर्मोरक्षतिरक्षितः।
तस्माद्धर्मोन हन्तव्योमानो धर्मो हतोवधीत्॥

धर्मशब्द धृञ्-धारणे धातु से अर्तिस्तुसु इत्यादि उणादि सूत्र से मनिन् प्रत्यय लगने पर निष्पन्न होता है। इसके अन्य समानार्थक शब्द हैं पुण्य, न्याय और आचार आदि। धर्म-पुण्येयमेन्यायेस्वभावाचारयोः कृतौ। अमरकोषों में भी यही कहा है। धर्म शब्द की व्याख्या है—"धरति लोकान" जो लोकों को धारण करता है। 'ध्रियते पुण्यात्मभि इति' वा जो पुण्यात्माओं द्वारा धारण किया जाता है वह धर्म है। महर्षि कणाद प्रणीत वैशेषिक दर्शन में कहा है कि—यतोऽभ्युदयनिः क्षेत्रससिद्धिः स धर्मः। आश्वलायन गृह्यसूत्र में धर्म के विषय में कहा है कि—'धारणात् श्रेय आदधाति इति धर्मः।' जिसके अनुसार चलने पर मनुष्य का श्रेय होता है। यश, उन्नति एवं मोक्ष मिलता है, उसे धर्म कहते हैं। महर्षि जैमिनि पूर्वमीमांसा में धर्म के विषय में कहते हैं कि—चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म। अर्थात् उपदेश, आज्ञा और विधि से ज्ञात होने वाला श्रेयस्कर अर्थ धर्म है। व्यक्ति और समाज की ऐहिक एवं पारमार्थिक उन्नति के लिये प्राचीन महान् ऋषि-मुनियों की आज्ञा ही धर्म है।

*

EP-78

व्रतोपवास की जीवनोपयोगिता

डॉ. शिव शङ्कर, लखनऊ

आधुनिक समाज में व्रत सम्बन्धी जो अवधारणा है। उसकी समझ और सोच में मूलभूत अन्तर है। आज समाज व्रतों को मात्र भूखे रहने तक ही उपयुक्त और उचित समझता है। व्रत उनकी मूल भावना से हट चुका है। जबकि व्रत शब्द का अभिप्राय नियम, निष्ठा, संयम, संकल्प

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

व्रतों को तो उपहास पूर्ण मानता है। उसे इसमें जीवन की जीवन्तता की प्रतीति ही नहीं होती है। **व्रतोपवास की परम्परा खगोल विज्ञान, प्रकृति के ऋतु विधान और आयुर्वेद विज्ञान पद्धति से जुड़ी है।** जड़-जंगम पर प्रभाव डालने वाले ग्रहों, तिथियों, नक्षत्रों के आधार पर व्रतोपवासों का निरूपण हुआ है।

भारतीय परम्परा में व्रतोपवास शब्द 'पर्व' के साथ सम्बद्ध हुआ है। **काल के विभाजक ग्रहों की स्थिति को 'पर्व' कहा जाता है**—अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति, अयनारम्भ, अष्टमी, नवमी, एकादशी, द्वादशी, चतुर्दशी आदि तिथियाँ पर्व कही जाती है जो व्रतोपवास के लिए प्रशस्त हैं।

*

EP-79

चित्रकूट में राम-द्वारा अनुज भरत का राजधर्मोद्‌बोधन

श्रीमती दुर्गादेवी पाण्डेय, टाँडा, अम्बेडकरनगर (उ०प्र०)

''भरतहिं होई न राजमद, विधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरहिं, क्षीर-सिन्धु बिलगाइ॥''

'रामचरितमानस' की इस भरत-चरित्रात्मक उक्ति के अनुसार यद्यपि निर्मल, निर्मद, निश्छल और सुसंस्कारित मन परम सुशील सुविज्ञ राजकुमार भरत से त्रुटि या स्खलन की आकाङ्क्षा कदापि नहीं, तथापि 'गच्छतस्स्खनं क्वापि भवत्येवाप्रमादतः' तथा त्रुटि तो मानव का अभिज्ञान, लक्षण या स्वभाव है (''to err is a human-टु अर इज ए ह्यूमन'') इत्यादि लोक-विश्रुतियों से प्रमाणित है त्रुटियाँ तो भरत ही नहीं किसी भी मनुष्य के लिए सहज है, इसी दृष्टि से उनके अग्रज राम अपनी अनुभववृद्धता को अभिप्रमाणित करते हुए इस ''न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः। वृद्धाः न ते ये न वदन्ति धर्मम्॥'' महाभारतीय उक्ति को चरितार्थ कर जिस सर्वग्राह्य राजधर्म का उपदेश या उद्‌बोधन किया था, वह आज भी सम्पूर्ण विश्व-मानव का मङ्गलमय मार्ग-दर्शक रिक्थ (उत्तराधिकार / निक्षेप) ही नहीं, प्रत्युत स्पृहणीय जिज्ञास्य परम प्रासङ्गिक और नितान्त उपादेय अतएव रेखाङ्कनीय ज्ञान-विज्ञान-निधि है।

आज तो वह निर्वास्यमान राज-परिवार के राजकुमारों एवं युवराजों की अपेक्षा सामान्यजन के लिए अधिक ज्ञेय और आचरणीय हो गया है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-80

गरुड़ पुराण में पुरुषार्थ - चतुष्ट्य

डॉ. अल्पना शर्मा, टोंक बनस्थली (राजस्थान)

इन अठारह पुराणों में गरुड़ पुराण का स्थान सात्विक पुराणों के अन्तर्गत है। यह पुराण पूर्व खण्ड एवं उत्तर खण्ड में विभक्त है और इसमें 18000 श्लोक हैं।

गरुड़-पुराण आदर्श जीवन यात्रा के चार मार्ग—धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का विवेचन व्यवस्थित जीवन के लिए करता है—धर्मश्चार्थश्च कामश्च कथयन्ति तै॥

इन विभिन्न मार्गों अथवा चतुर्वर्ग के साधनों का क्रमशः वर्णन भी गरुड़ पुराण में उपलब्ध होता है—

गरुड़ पुराण के अनुसार—संयमित, सुसंस्कृत एवं सभ्य जीवन-निर्वाह के लिए तत्कालीन समाज में व्यक्ति को त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ एवं काम) का विशिष्ट ज्ञान दिया जाता था।

मानव अस्तित्व के निर्धारक चार पुरुषार्थों में से प्रमुख धर्म है। ध्रियते लोकाऽनेन, धरति लोकं वा धर्मः। अर्थात् सम्पूर्ण संसार के द्वारा जिसे धारण किया जाता है वह धर्म है।

गरुड़ पुराण के अनुसार अपवर्ग अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति का साधन धर्म है। इसलिए धर्म का पालन करना अनिवार्य है। इस धर्म की प्राप्ति श्रद्धा से होती है। मनुष्य को संसार से मुक्ति के लिए धर्म का मार्ग अपनाना चाहिए क्योंकि धर्म से ही सुख और ज्ञान की प्राप्ति होती है तथा ज्ञान ही मोक्ष का कारण है।

*

EP-81

वाल्मीकि रामायण की सूक्तियों का समीक्षात्मक अध्ययन

उमाकान्त राय, वाराणसी

रामायण की सूक्तियों का भारतीय वाङ्मय में क्या विशिष्ट स्थान है? सूक्तियाँ किसी भी साहितय का सारांश हुआ करती हैं, सूक्तियों में ही उस समय के समाज, जनरीतियाँ, प्रथा, रूढ़ि, परम्परा और लोकाचार का स्वरूप परिलक्षित होता है, सूक्तियाँ ऐतिहासिकता के पालने में पले हुये भविष्य की सूचक होती है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ऋषियों का नाश करने, उन्हें सतानें वाले खर-दूषण आदि अनेकों राक्षसों का वध करने वाले श्रीराम को आज के राक्षसों को भी सीख देनी होगी।

अयोध्याकाण्ड के चतु:षष्टितमः सर्ग में वर्णित मुनिकुमार का वध करने वाले राजन् के द्वारा उनके माता-पिता के सामने अपने किये गये पापों का प्रायश्चित कर लेने मात्र से राजन् का शाप कम होना। यह रामायण में वर्णित सूक्तियों की ही प्रेरणा है कि आज के समाज में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक क्षेत्र में सफेदपोश अपराधियों, भ्रष्टाचारियों, व्यभिचारियों को सीख है कि गलतियां मनुष्य से ही होती है अतः उसका प्रायश्चित 'राजन्' की तरह कर लेना चाहिए।

रामायण में वर्णित सूक्ष्म सूक्तियों से तात्पर्य वैचारिकी, शिक्षा, समाज, परिवार से जुड़ी हुई सूक्तियों से है। जिसकी समाज पर प्रभावशालिता ई०पू० 500 से लेकर आजतक ये प्रासङ्गिक बनी हुई है। जैसे बालकाण्ड के षड्विंश सर्ग में श्रीराम के द्वारा कही गयी यह उक्ति कि अयोध्या में मेरे पिता महामना महराज दशरथ ने अन्य गुरुजनों के बीच मुझे यह उपदेश दिया था कि बेटा! तुम पिता के कहने से पिता के बचनों का गौरव रखने के लिए कुशिकनन्दन विश्वामित्र की आज्ञा का निःशङ्क होकर पालन करना। कभी भी उनकी बात की अवहेलना न करना।

आज के सन्दर्भ में वाल्मीकि रामायण की सूक्तियों के समीक्षात्मक अध्ययन की उपयोगिता है। आज रामायण में सन्निहित भावों की अंगीकार कर ही समाज कल्याण सम्भव है। रामायण की सूक्तियों का समीक्षात्मक अध्ययन का महत्त्व यही है कि उसमें समाज के सभी अङ्ग तथा व्यक्ति के स्वभाव के विविध पक्षों को औचित्य विचार पूर्वक प्रस्तुत किया गया है। पिता-पुत्र, भाई-भाई, स्वामी-स्त्री आदि में जो धर्म बन्धन है, प्रीति-भक्ति का जो सम्बन्ध है उसको रामायण ने सूक्ष्मता के साथ उपस्थापित किया है। अतः सहज ही लोग उसकी तरफ प्रेरित होते हैं।

*

EP-82

पुराण साहित्य को कश्मीर का योगदान

मुशर्रफ शफी, श्रीनगर

कश्मीर प्राचीन काल से ही संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्य के सृजन का महत्त्वपूर्ण स्थल रहा है। कश्मीर के संस्कृत कवियों ने गुण और परिणाम इन दोनों दृष्टियों से संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया। प्राचीन संस्कृत साहित्य में पुराण साहित्य को विशेष स्थान प्राप्त था। पुराण शब्द का अर्थ है—पूर्वकाल सम्बन्धी अर्थात् प्राचीन काल में जो जीवित था। पुराणों में प्राचीन समय के

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वर्णाश्रम धर्म, संस्कार, व्रत, योग, पूजा, दान, तीर्थ आदि अनेक विषयों के धर्म व नियम वर्णित थे, और पुराणों के अनुसार ही समाज को धार्मिक तथा सामाजिक प्रथाओं को मान्यता प्राप्त थी।

परम्परा में महापुराणों की संख्या अठारह (18) मानी गई है तथा उप-पुराणों की भी अठारह ही कही गयी है। जम्मू-कश्मीर प्रदेश में भी पुराण साहित्य की रचना हुई। जम्मू-कश्मीर के तीन उप-पुराण हैं। 1. विष्णुधमोत्तर पुराण। 2. नीलमत पुराण। 3. वासुकि पुराण।

*

EP-83

हरिविलास महाकाव्य में रस

रत्नेश्वर मणि त्रिपाठी, लखनऊ

आनन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा मानते हुए भी रस ध्वनि को सर्वोत्कृष्ट माना है। महिमभट्ट की भी रसात्मवादी है। किन्तु वे रस को व्यंग्य न मानकर अनुमेय मानते हैं। राजशेखर ने काव्य की आत्मा रस माना है। उन्होंने सर्वप्रथम रस को प्रतीयमान एवं अलौकिक स्वीकार किया है। महाकवि लोलिम्बराज द्वारा विरचित हरिविलास महाकाव्य में अनेक रसों का समावेश हुआ है। उसमें भी विशेषत: वीर और श्रृंगार रस में से एक को प्रमुख स्थान देने का निर्देश किया गया है परन्तु यहाँ भक्ति रस का प्रधान्य होने के कारण उक्त दोनों रस इसके अंग हो गये हैं। श्री मधुसूदन सरस्वती के मतानुसार ईश्वर के चिन्तन से चित्त के निरन्तर द्रवीभूत होने के कारण उसके प्रति जो मनोभाव उत्पन्न होते हैं उनके समूह को भक्ति कहते हैं। भक्ति रस के अतिरिक्त हरिविलास महाकाव्य में विप्रलम्भ श्रृंगार रस, वीर रस, करुण रस, अद्‌भुत रस, हास्य रस, शान्त रस इत्यादि रसों का समावेश बड़ी ही निपुणता से महाकवि लोलिम्बराज ने किया है।

*

EP-84

राजनीतिक अवधारणाओं में मन्त्रणा और सेनापति-निरूपण

विभा कुमारी झा, पटना

मन्त्रणा

मन्त्रणा के सम्बन्ध में विद्वानों ने अनेक विधि-विधानों और उसकी सुरक्षा के लिए सतर्कता बरतने की अपेक्षा बतायी है। इस सम्बन्ध में मनु का आदेश है कि पर्तत की चोटी पर या एकान्त

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

राजभवन अथवा जंगल में, जहाँ किसी प्रकार से मन्त्र-भेद की आशंका न हो, वहाँ गुप्त मन्त्रणा करनी चाहिए—

गिरिपृष्ठं समारुध्य प्रासादं वा राहेगत।
अरण्ये निश्शलाके वा मन्त्रयेद् भूरिभावितः॥

किन्तु महाभारत में इसका विरोध किया गया है। महाभारत के अनुसार रात्रि में मन्त्रणा कभी नहीं करनी चाहिए।

मन्त्रणा के समय किन लोगों की अनुपस्थिति हितकर होगी इसका निर्देश मनु ने किया है। उनका कहना है कि मुर्ख, गुंगा, अन्ध, बहरा, पक्षी, वृक्ष, स्त्री, म्लेच्छ, रोगी और अंगहीन—इन सभी को मन्त्रणा के समय हटा देना चाहिए। क्योंकि वे लोग अपमानित होने पर मन्त्र-भेद कर देते हैं। पक्षियों से तात्पर्य तोता और मैना से है। विशेषतः स्त्रियाँ गुप्त मन्त्र को प्रकट कर देती हैं। अतः राजा को चाहिए कि इन सबों को मन्त्रणा स्थान से दूर रखें।

*

EP-85

विश्वशिवशिल्पिनी 'औपनिषद् संस्कृति'

डॉ. जितेन्द्र शर्मा, चित्रकूट, सतना (म०प्र०)

विश्व संस्कृति की इस संत्रास वेला में शाश्वत औपनिषद् संस्कृति डूबते विश्व को बचाने की नौका है। इसके महनीय मूल्य विश्व समुदाय के लिये क्षेमकर और ऊर्जास्पद हैं। जिन भौतिक मूल्यों के द्वारा औपनिषद् संस्कृति सरिता से विश्वकल्याण की अजस्र धारा प्रवाहित हो रही है, उनमें से प्रमुख बिन्दुओं का विश्लेषण इस आलेख के लघुकलेवर में अवलोकनीय है—

भोग्य पदार्थों का उत्कृष्टतम और अधिकतम मात्रा में अर्जन सम्प्रति विकास का मापदण्ड बन चुका है। वस्तुतः यही सोच, यही जीवन दर्शन सारी समस्याओं की मूल है। पाश्चात्य भोगवाद से विरासत में मिली पूँजीवादी व्यवस्था और अधिकाधिक अर्थसंचय की प्रवृत्ति में एक तरह जहाँ मानवीय आवश्यकताओं को असीमित कर दिया है वहीं उपभोग के दावानल को और हवा प्रदान की है। परन्तु अर्थपिपासु मानव को यह पता ही नहीं है कि उपभोग की पिपासा और भौतिकता की अंधी दौड़ अंत ही नहीं है क्योंकि कामनाओं के उपभोग से कामनायें शान्त नहीं होती हैं बल्कि वे उसी तरह से और वृद्धिंगत होती जाती हैं जैसे अग्नि में घी डालने से अग्नि ज्वाला और प्रदीप्त हो जाती है। औपनिषद् नीतिशास्त्र आवश्यकताओं को बढ़ाने और उनकी पूर्ति के साधनों की तलाश

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

में ही पर्यवसित नहीं होता है। यमराज द्वारा सहज ही दिये जा रहे सम्पूर्ण स्वर्गिक सुख को नचिकेता ने लोष्ठवत ठुकरा दिया।

*

EP-86

पौराणिक साहित्य एवं आधुनिक भारत

डॉ. सुरेन्द्र कुमार यादव, कटिहार (बिहार)

भारतीय वाङ्मय में पुराणों की व्यापकता एवं महत्ता असंदिग्ध है, और वे भारत के अतीतकालिक हिन्दू संस्कृति के मूर्तमान गौरव के प्रतीक हैं। आज के वैज्ञानिक युग की आन्तरिक सभ्यता भी पुराणों के प्रभाव एवं उनके महत्त्व को जरा भी कम नहीं कर पायी है। आज भी इनके प्रति वही श्रद्धा और सम्मान है, जो प्राचीन काल में था।

प्राचीन काल का मानव केवल इसलिए असभ्य था कि उसके पास भौतिक साधनों की कमी थी। मनुष्य के पास भौतिक पदार्थ जैसे-जैसे बढ़ते गये सभ्यता में भी वृद्धि होती गयी। आज हम सभ्यता के सर्वोच्च शिखर पर हैं, इसलिए नहीं कि हमारे विचार और विश्वास बहुत ऊँचे हैं, बल्कि इसलिए कि हमे आज अगणित भौतिक साधन उपलब्ध हैं। विभिन्न समाजों का अंतर भी आज भौतिक संस्कृति की भिन्नता के आधार पर ही किया जाता है। जिस समाज के पास भौतिक पदार्थ जितने अधिक हैं, हम उसे उतना ही प्रगतिशील और सभ्य समाज कहते हैं। जैसे-जैसे व्यक्तियों की रुचि, योग्यता और परिस्थितियों में परिवर्तन होता जाता है, भौतिक संस्कृति के रूप में भी परिवर्तन देखने को मिलता है। यही कारण है कि परम्परागत समाजों में भी व्यक्तियों के विश्वास और विचार तो स्थिर रहते हैं लेकिन संस्कृति का भौतिक पक्ष कभी स्थिर नही रहता।

*

EP-87

वाल्मीकीय रामायण में अन्तर्हित अन्तरेन्द्रिय बिम्ब

डॉ. गीता अग्रवाल, पूर्णिया (बिहार)

मनुष्य की समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ बाह्य स्तर पर एक-दूसरे से पृथक् मालूम पड़ती हैं तथा आन्तरिक स्तर पर संवेदन-सूत्र के द्वारा परस्पर अनुस्यूत रहती हैं परन्तु जब किसी इन्द्रिय को संवेग का भार काफी अधिक प्रभावित करता है तो वैसी स्थिति में अमुक इन्द्रि के द्वारा अपने कार्य से

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विरत होकर अन्य इन्द्रिय के कार्य का संपादन करना ही अन्तरेन्द्रिय है और इससे उद्‌भूत बिम्ब ही अन्तरेन्द्रिय बिम्ब है।

वाल्मीकीय रामायण में यह बिम्ब स्वल्प ही उपलब्ध है परन्तु जो कुछ है वह पूर्णता में है। रामायण के अन्तर्गत हर्षातिरेक की अवस्था में नेत्रेन्द्रिय रसनेन्द्रिय एवं स्वरेन्द्रिय का कार्य कर रही है तो कर्णेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय आदि भी अपने कार्य से विरत होकर अन्य इन्द्रिय का कार्य बखूबी निभाती प्रतीत होती है।

*

EP-88

रामायणकालीन अर्थव्यवस्था की आधुनिक सन्दर्भों में उपयोगिता

डॉ. श्रीमती मनोरमा गुप्ता, स्वरूपनगर कानपुर

भारतीय जनमानस को सच्चे अर्थों में भारतीयता से अनुप्राणित करने वाले आलोकपुंज का नाम है—'रामायण'। 'वित्तशास्त्र' को प्राचीन भारत में ''वार्त्ता'' की संज्ञा दी जाती थी। वार्ता का प्रयोग वैश्यों के तीन धन्धों कृषि, गोचारण और व्यापार के लिये किया जाता था। रामायण काल में वार्त्ताशास्त्र का इतना महत्व बढ़ गया था कि उसे ''तिस्रः विद्या'' के अन्तर्गत स्थान दिया गया।

रामायण काल में ''बलिषड्‌भाग'' राजा की आमदनी का प्रमुख स्रोत था। राजकीय आय प्रायः यज्ञादिक धार्मिक कृत्यों के सम्पादन में, ब्राह्मणों और अभ्यागतो के आतिथ्य में, परिवार और मित्रों के सुरक्षण में तथा सेना को सुदृढ़ बनाने के व्यय होती थी अयोध्या की आर्थिक सामृद्धि का आभास इन प्रश्नों से होता है जो चित्रकूट में राम ने भरत से पूछे थे—अनेक देवस्थान, पौशाले, तालाब जिस अयोध्या की शोभा बढ़ाते हैं, जहाँ खेती के लिये वर्षा के जल पर निर्भर नहीं रहना पड़ता, जहाँ किसी प्रकार का भय नहीं है, जिसकी भली प्रकार रक्षा होती है, वह कोसल देश धनधान्य से सम्पन्न और सुखी तो है।

''आयस्ते विपुलः कश्चिदल्पतरो व्ययः''

अर्थात् क्या तुम्हारी आमदनी बढ़ी हुई और खर्चे घटे हुये हैं। राजा को कर की वसूली में उदार और नरमनीति अपनानी चाहिये।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-89

महाभारत के वनपर्व में वर्णित आख्यानों में प्रतिपादित राजनैतिक स्थिति

डॉ. कु. मञ्जुल माथुर

महर्षि वेदव्यास विरचित महाभारत ग्रन्थ आकार की विशालता की दृष्टि से नहीं, विषय के महत्त्व की दृष्टि से भ अनुपमेय है। धार्मिक, नैतिक, व्यावहारिक, राजनैतिक, दार्शनिक, सामाजिक सभी विषय इसमें समाविष्ट हैं। महाभारत के विभिन्न पर्वों में वनपर्व अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें वर्णित आख्यानों के समीक्षात्मक विवेचन से स्पष्ट होता है कि महाभारतकार की व्यापक दृष्टि ने जीवन के विविध पक्षों का स्पर्श किया है। आध्यात्मिकता से ओतप्रोत ऋषियों के तपःपूत जीवन से लेकर राजाओं के भोग-विलास तक का सर्वाङ्गीण चित्रण हुआ है। राजनीति के विभिन्न तत्त्वों का स्फुटीकरण इन आख्यानों में किया गया है। प्रस्तुत आख्यानों में आध्यात्मिक वातावरण की प्रधानता होने पर भी राजनीतिक परिवेश का चित्रण सम्यक् प्रकार से हुआ है। क्योंकि इन आख्यानों के पात्र जहाँ एक ओर अनेक दैवी-देवता और ऋषिगण हैं, वहीं दूसरी ओर अनेक क्षत्रिय राजा भी हैं। उनके विविध पक्षीय वर्णन से राज्याभिषेक, राजा के कर्त्तव्य, राज्य प्रबन्ध आदि अनेक बातों का ज्ञान होता है। राज्याभिषेक वंश-परम्परा के आधार पर किये जाने का वर्णन है। राजा का सबसे बड़ा पुत्र राज्य का अधिकारी माना गया है। पुत्र पर राज्य का भार सौंपकर राजाओं के तपस्या एवं अन्य कार्यों के लिए वन गमन का वर्णन प्राप्त होता है। राजा लोग मंत्रियों पर भी राज्यभार छोड़कर वन को चले जाते हैं। प्रजा-पालन राजा का प्रथम कर्त्तव्य माना गया है। चारों वर्णों की रक्षा करना भी राजा का धर्म बताया गया है। प्रजा को दुष्कर्म से रोककर सत्कर्म की ओर प्रेरित करना और अपराधियों को दण्ड देना भी राजा का कर्त्तव्य है। सम्पूर्ण पृथ्वी की रक्षा का भार राजाओं पर ही माना गया है। शरणागत की रक्षा भी राजा का परम धर्म माना गया है।

*

EP-90

वाल्मीकि द्वारा निरूपित सीता चरित्र

डॉ. अभिमन्यु सिंह, लखनऊ

विश्व का वैभव प्राप्त करने वाली सीता जीवन में अनेक परीक्षाओं से गुजरती हैं। सर्वप्रथम धर्नुयज्ञ की समस्या कि कौन राजा धनुष तोड़े और उसके साथ सीता का विवाह कर दिया जाय। यह समस्या कुछ समय की थी क्योंकि धनुष इक्ष्वाकु वंशी राम ने तोड़ा और सीता को मनोनुकूल

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पति मिल गया। राजकुल की वधु से रानी बनने का समय आया और उसी समय कैकेयी की इच्छानुसार पति के साथ वन जाने की समस्या आ गई। समस्या का अन्त ही नहीं हो रहा क्योंकि वन में रहते हुए श्रीराम का राक्षसी व्यक्तियों से बैर हो गया। राक्षसराज रावण सीता का अपहरण कर अपनी राजधानी लंका ले गया। श्रीराम ने रावण का समूल नाश किया, परन्तु सीता को पति के पास लौटने के लिए अग्नि परीक्षा देनी पड़ी। सीता श्रीराम की पटरानी के रूप में अयोध्या के राज प्रासाद में सुखी रह पाती उसके पहले ही लोक अपवाद से डरे हुए उनके पति और अयोध्या के महाराजा ने उन्हें अकेले वन भेजने का निर्णय ले लिया। त्रैलोक्य विजयी महाराजा राम की पत्नी वाल्मीकि आश्रम में सामान्य तपस्विनी की भाँति रही। इक्ष्वाकु वंश के भावी कर्णधारों कुश और लव की माता बनी। जब सीता के दोनों पुत्र पढ़-लिखकर कुशल योद्धा के रूप में प्रशिक्षण पा रहे थे उस समय सीता को एक और समस्या का सामना करना पड़ा। उन्हें अपेन पुत्रों की उपस्थिति में श्रीराम की सभा में शपथ लेकर अपने चरित्रवान होने का प्रमाण देना पड़ा। सीता का शपथ करना इतना दिव्य और चारित्रिक उत्कर्ष को प्रमाणित करने वाला है कि उनकी विशिष्टता के कारण ही उन्हें स्त्रियों में आज तक आदर्श की पराकाष्ठा पर देखा जाता है।

*

EP-91

भट्ट लक्ष्मीधर विरचित ''चक्रपाणिविजय'' महाकाव्य में प्रकृति वर्णन

अनुराधा जायसवाल, लखनऊ

संस्कृत साहित्य प्रकृति के विषयों से ओत-प्रोत है। कवि प्रकृति की गोद में रहता हुआ अपने हृदय को खोलकर उस आनन्द का रसास्वादन करता है, जिसे प्रकृति प्रदान करती है। प्रकृति की मनोरता तथा सहजता से संस्कृत साहित्य भरा पड़ता है। संस्कृत में वेदों से लेकर वर्तमान सभी महाकाव्यों में प्रकृति चित्रण तथा ऋतु वर्णन उपस्थित है। अतएव इसी परिपाटी का निर्वहण करते हुए ग्यारहवीं शताब्दी के कवि भट्ट लक्ष्मीधर ने अपने महाकाव्य ''चक्रपाणिविजय'' में प्रकृति के सहज सुन्दर स्वरूप का वर्णन किया है। यह बीस सर्गों का महाकाव्य है। महाकव्य का मुख्य कथानक ''बाणासुरवध'' की कथा पर आधारित होने के कारण इसका उपजीव्य ''श्रीमद्भागवद् पुराण'' है। इसके अतिरिक्त भगवान् श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध तथा बाणासुर की पुत्री ऊषा की प्रणयकथा का भी वर्णन है। प्रकृति वर्णन के लिए कवि ने महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में भगवान् शिव के निवास स्थान हिमालय का सञ्सूचनात्मक वर्णन किया है। पञ्चम सर्ग के प्रारम्भ में बसन्त ऋतु का वर्णन है तथा इसी सर्ग में सूर्यास्त तथा चन्द्रोदय का वर्णन भी प्राप्त होता है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-92

The Bhagavat-Gītā---A New Scientific Approach

Dr. Parvati Banerjee, Varanasi

The Gītā as the epitome of all philosophical science and knowledge has unveiled the ultimate truth. The Gītā can fill-in the gap found out in the erealm of scientific investigation. In describing God, as the creator of this Universe, the Gītā has revealed the mistries of God's creation as a sample of his lila.

In order to give true identity of God, we should rely upon the Gītā on Godhood and the mistries of His creation with its critical examination with reference to the light of modern scientific discoveries.

The Gītā is the chief source of inspiration and guidance for scientific investigations and formulation of various theories of modern scientists.

*

EP-93

The Tragedy of Kunti

Dr. Hemlata Bittharia, Gwalior

The tragedy of Kunti is the worst ever compared to tragedies of Sita or Damyanti or Draupadi or other known to history.

Born to king Kuntibhoj, as a very beautiful and intelligent daughter, Kunti was full of all feminine graces. When Durvasa known for short temper and cursing came to Kuntibhoj, she was given full charge of his hospitality. Thanks God, the Rishi was very happy and gave her a Mantra by the chanting of which any God she wanted would appear before her for any boon.

She chanted Surya Mantra and God Sun appeared in all splendor. She was bewildered: God Sun granted her invincible Karna who became chief cause of her tragedies.

For fear of public -- scandal, Karna was thrown into the Ganga 'उत्ससर्ज कुमार तं जले कुन्तीमहाबलम्', picked up and brought up by Adhirath. Thus the boon turned into a curse. Karna born with Kavach & Kundals became main cause of the

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Mahabharata. Married to Pandu, under a curse, was the second immediate tragedy.

She was conscious of the wickedness of Dhritrashtra & his sons and Karna's joining them enhanced her tragedy.

She had a very brief period of an oasis, in the burning desert of her life long tragedies. This was Yudhisthir's Rajsuya Yagna: Indian & foreign princes paying tribute, Lord Krishna Chief Guest. But this was just **'a nine days' wonder'**.

Soon Duryodhana with Karna plotting against Pandavas: the death trap Lakshagriha sporting palace & Pandava's escape by Vidur's hint.

Last but not the least, game of dice in which Yudhisthir staked kingdom and Draupadi; Lost both, followed by 12 years Vanvas, with one year in Agyatvas and if discovered earlier, another fresh 12 years in forest and one year in Agyatvas and so on. Can we imagine Kunti's tragedy! - All wandering as fugitive.

The tragedy is heightened when Krishna's pleading for peace and Pandavas' offer for mere five villages, and yet Duryodhana's reply **not a needle point land to pandavas**.

Could even a Vyas describe the tragedy of a mother with five brave sons moving as fugitives?

The tragedy was worst heightened with sure fear of Karn's Pranghatini Shakti husbanded for Arjuna.

The ever horrible was yet to come when at the brink of victory, Aswathama brutally butchered all the five sons of Pandavas 'द्रौपदेयानभिद्रुत्य खड्गेन व्धमदबली, victory turned into mourning beyond words to describe.

*

EP-94

Valmiki--Re-interpreted

Dr. P. Laila, Trivandrum

Balamani Amma, a great woman poet of Malayalam, analyses the inner spirit of Valmiki, the first known poet of India, the author and a character of

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Ramayana in her poem 'Valmiki'. He is caught in a critical situation when he has mounted the topmost position of sagehood and have a confession of his past life.

The situation is the emotional outburst of a curse that he has showered on the hunter who has shot down one of the flirting birds with a sharp arrow. The livingbird's pathetic cry and other expressions caused by the separation of its dead lover shook the mind of the sage. All on a sudden his past and present reflected before his inner eye. He saw his hungry wife in the bird suffering from pangs of separation and his own past life of killing and robbery in the nearby hunter. He felt his curse on the hunter retaliated on him.

So Valmiki, the deserted of his family and the realiser of truth suspects how he will be got redeemed from his sin of a curse on the unrefined and innocent hunter who follows his duty (dharma) of hunting for his livelihood. Confessing himself an enemy of his race, Valmiki becomes a representative of his predecessors who curse their successors evaded from the right path. Remorse tempt Valmiki to discriminate between the hunter's duty (dharma) of killing and the sage's view of adharma in killing. Himsa is not forbidden to the hunter. The poet puts the sage for a self search on his curse upon the hunter who has only repeated the same sin that had been done by the sage in his former stage of life. Valmiki of the poem remembers that he was not dissuaded from the path of robbery and killing by the seven sages by curse but by kindness.

The law of nature makes the Himsa of the hunter for looking after his family and the Ahimsa of the benevolent sage as the different faces of one and the same dharma. The saviour who had forgotten his duties has no right to punish the saved unrightious ones. Knowledge of the self of the preceptors is surely mixed with fault, that is why they punish and curse their innocent disciples. Several suggestive meanings and warnings make 'Valmiki' of Balamani Amma a unique poem, the sage hero a great symbol of mercy and the interpretation quite significant. While Valmiki relates the quest of dharma by Rama (rāmasya ayana), Balamani Amma interprets the inner soul of sage Valmiki.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-95

Sapta Mātṛkā-s: Fictions and Facts

Dr. Madhusudan Mishra

In almost all civilizatins of the world which genuinely claim antiquity, the worship of the female-principle was prevalent in some form or other. This is also true to Indian civilization, particularly to traditional Hindu religious thoght in it. A number of female powers, named Mātṛkā-s, have occupied an important and leading position in the cult of the mother-goddess. Though their number is not specified in ancient texts, it has been often limited to either eight or eighteen. There has also been much dispute and debate with regard to their nature. While some texts describe them as baby-blood-thirsty demonic spirits, some illustrate them as protecting powers. Because of such divergent opinions, is becomes truly difficult to get a distinct idea about them. An attempt has been made in this paper to dive into some such issues like their origin, development, number, nature, iconographic peculiarities so as to arrive at an acceptable conclusion regarding the Mātṛkā-s. Besides, this paper proposed to discuss the cult of the Sapta-Mātṛkās in Orissa with a view to highlighting the vibrant tradition of these female spirits in this part of India.

*

EP-96

Humānism in the Mahābhārata

Shiuli Ghose, Birbhum (W.B)

The Mahābhārata has occupied a very important place in Indian Literature. During this age of turmoil of lofty ideals, Mahābhārata may be conceived as the resources for elevating the modern way of life. The war between the Kurus and the Pandavas which occurred apparently mainly for material gain prolonged for 18 days. This has been conceived as the ''Dharma Yuddha'', its object being the annihilation of adharma and establishment of dharma.

How to explain then the conception of dharma as conceived by Vyāsa? Even to a casual reader, it may appear that the Mahābhārata war was but futile, for the immediate object was though, to gain the lost kingdom of the Pandavas, but it was not all. After having gained the throne back, the Pandavas went to the

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Mahāprasthāna renouncing the kingdom and all the material gains. Even their dearest Draupadī was left behind.

The paper aims at unfolding the different meaning of dharma as revealed in the Mahābhārata and to show the world consciousness of Vyāsa in his interpretations of dharma.

*

EP-97

Disc of Kṛṣṇa in the Great Bhārata War

Dr. Gopal Krishna Dash, Bhubaneswar, Orissa

Kṛṣṇa's disc of trick played major role in the Great Bhārata war. Kṛṣṇa is Bhagavat in the eyes of devotees Kṛṣṇa as a legendary figure plays a different role. The question arises why he took interest to involve himself in the Bhārata war. The general idea is that for his special affection for the Pāṇḍavas and Kṛṣṇā he took the side of Pāṇḍavas to support Dharma. It may be interpreted in a different way.

The genealogy of Kṛṣṇa gives ample scope for rethinking. He is the descendant of Yadu, the eldest son of Devayānī and Yayāti. Yadu was deprived of his right over the royal throne. Pūru, the youngest son of Śarmiṣṭā and Yayāti was chosen to ascend the throne for rendering selfless service to his father. His descendants known as the Pauravas enjoyed the kingdom and royal dignity. The Hereditary anger and anguish might have been burning in the minds of the Yadus and which ultimately succeeded and got materialized through Kṛṣṇa's active participation in dethroning the Pauravas. It is a matter of study. The following points will be highlighted to establish the theme of the paper.

The following points will focus the hereditary animosity and justify Kṛṣṇa's involvement in the great Bhārata war.

* Background of the Yādavas and Pauravas with genealogy
* Probable cause of natural rivalry
* Kṛṣṇa finds the scope to fulfill the long chrished desire-through his relation with Kuntī and Subhadrā

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

* Failure of Bhīṣma to protect the Pauravas
* Establishment of the kingdom of the Yadus in the form of succession of Janamejaya.

Present study will throw new light on the role fo Kṛṣṇa, the legendary hero.

❋

EP-98

Contribution of Maharishi Bharadwaj in World-wide Aviation Development

Dr. Pranav Sharma, Pilibhit (U.P.)

All the direct and indirect movemnts of Physics and Natural Science. They have so many branches in Vedic Period. There are so many scientific inspiration as- AGNIMANTHAN, ANNA & KHADHYA, PATRA BHAND & UPKARAN, ASHWA & RATHA, DHAWANI-VIGYAN, SWAR & VADHYA.

The starting of numbers ASTHI NIROOPAN, MATHEMATICS, NEORO LOGIST etc. Today when we read The Yantra Srvaswa, of Maharishi Bharadwaj, One part of this epic "VAIMANIC PRAKARAN" which represents scientific aviation. We surprise having dedication feature of Scientific in Ancient India. Ancient Artist of old aviation Lahaur Mistri to Brahma Engineer have been clarified and their works in this epic.

If aviation is searched in Sanskrit Literature, Pushpak Viman is found in Valmiki's Ramayana. Such as King Bhoj has introduced plane flown by Fans in his book "SAMARANGAN SUTRADHARA". The greatest poet Kalidas also has written about AKASH CHARI RATH in ABHGYAN SHANKUNTALAM. Besides this, plane and so many flying Rathas are found in Vedas, ancient and Sanskrit Epic.

All of this shows that aviation has been ancient art of Aryans and Indian Art.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-99

The Spiritual Position of Women in the Manusmrti -A genral Survey

Dr. Mrs. V. Suparna, Madurai

The Smrtis like the Code of Manu offer boundless avenues to the framing of a full fledged spiritual personality of woman, in their analysis of the position of women, their capabilities, duties, relationships and finally their enlightenment, which is the culmination of feminine merit or equity. Thus the Manusmrti on the one hand, is the torch bearer to the winding dark tunnel of woman's emancipation and real empowerment when it focuses on the darker side of the truth of the woman by saying 'na strī svātantryam arhati', and on the other, is the resplendent galaxy in thefirmament of the spiritual vistas reachable by woman by saying 'yatra nāryastu pūjyante ramante tatra devatāh'.

From her birth onwards, pasing through the ordeal of marriage, the multifaceted role that woman has to play is the pivot on which rests in palace of Dharma or equity of the society she creates, and maintains. This is evident from all the angles in which the spiritual position has been depicted in the Manu Smrti, which with its commentaries, is an indispensable guide to all seekers of Strī-dharma or woman's path of equity.

*

EP-100

Rama the Ideal Idol of Valmiki

Pandit Padmanav Tripathy, Cuttack

The whole subject of Valmiki Ramayana is based on a genuine quest of an ideal human character. The very beginning chapter opens with a scene where two saints discuss with each other. Amongst the two, one was the divine saint Narada and the other was Valmiki, the prestine poet. Valmiki was in quest of a character that could collect all the good qualities of man. So he enquired about it and asked Narada-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ko'nvasmin sāṃprataṃ loke guṇavān kaśca vīryavān/
dharmajñaśca kṛtajñaśca satyavākya dṛḍhavrataḥ//
cāritreṇa ca ko yuktaḥ sarvabhūteṣu ko hitaḥ/
vidvānkaḥ kaḥ samarthaśca kaścaika priyadarśanaḥ//
ātmavānko jitakrodho dhṛtimānko naūyakaḥ/
kasya vibhyati devāśca jātaroṣasya saṃyuge//

While Valmiki wanted to discover 16 qualities clustered in a single character, Narada established 64 exaustive characteristics combined in a single character of Sri Rama, the son of king Dasaratha of Ayodhya.

❋

EP-101

Smārttaprāyaśccittasamgraha -An Analysis

Dr. K.V.VAsudevan, Guruvayoor

The Namboodiri Brahmins in Kerala have done immense contribution to *Dharmasāstra* literature. There are so many texts in this field written by them. Some of them deal with selected topics like *āśauca*, religious rites etc. of *dharmaśāstra*. *Smārtaprāyaścittavimarśini* of *Mazhamaṅgalam* Narayanan Namboodiri, *Bahvṛcaprāyacitta* of *Erkara* Brahman Namboodiri, *Smārtavaitānikaprāyaścitta* of *Cerumukkil* Mandhatr Namboodiri, *Smārtaprāyaścitta* of *Putumana* Somayaji, an anonimous *Smārtaprāyaścittasamgraha* etc. are some of them. godavarma tampuran (Bhattan) of Kodungallor has composed commentary on *Smārtaprāyascittavimarśinī*. *Āśaucadīpakā* of *Mazhamangalam*, it's *Candrikā* commentary and *Vivecana* written by Vidvan IlayaTampuran of Kodungallor, *Āśaucacintāmaṇi*, another *Āśaucacitāmaṇi* of *Nilayankoṭṭu* Nilakanthan Namboodiri, *Asaucakerali* and *Ṣodaśakriyākārika* by *Kirāngāṭṭu* Jayanthan Namboodiri are some major works. Tradition says that *Melpputhur* Narayana Bhaṭṭa himself has a composition viz. *Āśvalāyanakriyākrama* in his credit. *Prayogasāra, Rajasvalāpancadaśaka, Vacanamāla. Jaiminiyagṛhyamantravritti, Bodhāyanadarsapurṇānusṭhāna, Āśvalāyanagṛhyaprayogavṛtti* by Damodara, *Āśvalāyanagṛhyaprayogadarpaṇa* of Raman etc. are also to be mentioned in this respect. There are so many Malayalam books which review meticulously the *smriti* topic. Among these collection of books *Smārtaprāyaścitta* of *Taikkaṭu* Yogiyar

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(Yogīśvara) is a notable compilation. His actual name is Nilakantha. He was born in one of the well known *vaidika* families of Kerala. He became a sanyasin in his later life and came to be known as *Taikkaṭṭu Yogiyār*. There are many legends, which are familiar to the keralites reveal the greatness and scholarship of Yogīśvara. According to the tradition the date of Yogīśvara was 1512 A.D. There is a story prevalent in Kerala that Lord Dakṣināmūrthi, in disguise as a boy, himself came before Yogīśvara and give him an idol for worshipping. Another legend relating to his scholarship in vedic rites is that he was an invited guest not only in Kerala but also in other countries.

❋

EP-102

Bhartrihari's Renunciation

SVR Murthy, Puri

Renunciation is one of the four prescribed '*ashramas*' for 'Dwijas' or twice born people. It is the penultimate (third) 'asrama' in the line along with the other '*asramas*' of human life in which one has to pass through stages of 'bachelor', 'house-holder', renouncing worldly pleasures' and 'becoming an ascetic'. They are in Sanskrit called 'Brahmacharya' ''*Gruhastha*', 'Vanaprastha' and 'Sanyasa'. eople followed these '*asramas*' very deligently in the ancient times.' The paradigm has been shifted along with the change of the time. But, still the traditions are etched deeply in the roots of Indian heritage and culture.

In the past, the kings used to retire into woods by handing over the baton to the next in the line, preparing themselves to embrace asceticism to lead their rest of life as a hermit in tranquility. King Bhartrihari is a great king and a great Sanskrit scholar too. It is too difficult to trace his line age and to fix his reign into a certain time frame. Sri M. Krishnamachariyar in his ''History of Classical Sanskrit Literature'', mentioned that ''Bhartrhari is by tradition known to be the son of a Brahmin, Candragupta, by his Sudra wife Sindhumati''. Vikramarka and Bhatti were mentioned to be his brother.Bhatti is said to be the Practised form of Bhartr and they have been sometimes considered to be identical. Their proficiency in Sanskrit grammar may be the other cause of the identity. Bhartrihari's grammatical treatise 'Vakyapadiya' is a famous one. His other works like ''Shrungara Sataka'', ''Neeti Satka'' and

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

''Vairagya Sataka'' are equally famous. Using says that Bhartrihari after his renunciation became an ascetic and passed away in 600 AD, though it is probable he lived earlier. The reviewers have called him differently as a Buddhist and a Saivite etc. However, this contention can easily be dismissed in the absence of definite recorded history. Some say that Bhartrihari was a historical ruler of Ujjain and a brother of Vikramaditya born to *Samudragupta*. Critics say that Bhartrihari renounced his kingdom to tread on the path of 'Shanti'.

MM Hariharopadhyaya wrote the play called, ''Bhartrihari Nirvedam'', depicting in the drama how Bhartrihari transformed from a king to an ascetic through renunciation with the help of Gorakshantha Baba, believed to be the incarnation of Lord Shiva. The time and period of this dramatist's origin is still controversial and obscure. However the available sources identify him as the son of Raghava Jha and Lkshmi of Behat branch of Karamaha family of the Mithila region in the present state of Bihar. It is written in five Acts with full of alliteration and wordplay. The metres like 'Anustubh', 'Arya', 'Salini', 'Sikharini', and 'Vasantatilaka', are used besides the dominating metre 'Sardulavikriditam', according to Prof. Jayadev Jani.

*

EP-103

Human Values in Kathopaniṣad

Managayatri Rath, Bhubaneswar

Philosophy is the only one subject, which signifies the proper way to the human being for seeing or realizing truth. There are different branches of philosophy viz, *Nyāya, Vaiśeṣika, Sāṁkhya, Yoga, Mīmāṁsa, Vedānta, Cārvāka, Jaina* and *Buddha*. These philosophers accept various ways and means to realize the truth. Though the paths are many but the aim is one. The *Upaniṣad* show the path of liberation from thebondage of birth and death. So they have given importance to proper knowledge i.e. *Brahma-Jñāna*. In this article the human values in *Kanoupniṣad* have been discussed which human values do help to change our daily life. Broadly the human values are:-

* Respect for elders

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

* Hospitality
* Quest for knowledge
* Evaluation of values
* Immortality of soul
* Control of sense organs
* Responsibility towards others
* Eternal truth
* Common good
* Humanism
* Self respect
* Duty
* Tolerance
* Affection
* Peace
* Mokṣa

❋

EP-104

Environmental Awareness in the Rāmāyaṇa

Dr. Sarat Chandra Prida, Orissa

Individuals live, grow, multiply and die and the species continues to exist and evolve. The interrelations among individuals and of species among themselves and with their environment are the core of ecological studies in the text of Rāmāyaṇa. In the Yudhakāṇḍa of the text we find such delineation of Lanka with its guarded city gates and troops. When the life of wild animals is at a stake today, the abundance of horses, elephants, crocodiles, and fishes in the kingdom of Rāvaṇa speak of a rich environmental heritage.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

On the eve of starting the expedition to Lanka Rama states that the star Uttara Phālguni reigns that day and the star Hastā would join the moon the next day and thus dscribes the auspicious signs to be noticed everywhere. During the age of Rāmāyaṇa there were no Landmarks or compasses and at times there were no roads or road signs. So most of the times man had to resort to astronomy for practical purposes which is obvious from foregoing passages. Astronomy plays a vital role in bringing about an attitudinal change in human mind. Though the ancient Rishis probably did not see the need to knit together the knowledge acquired into a well defined and formulated whole or theory having general validity, they did recognize the importance of factual knowledge and of the establishment of cause and effect relationships for the understanding of the phenomenological world. They based their understanding on observation, logical deducation and experimentation.

At the advent of expendition to Lanka Rama and his troop were welcomed by bloomed flowers like Ketaki, Kunda, Madhuka, Vakula, Naga, Arjuna, Asoka, Champaka, Kadamva and Nila. The vanaras were greatly delighted at their sights. The hills on the way had beautiful lakes which were visited by ducks, swans and the Chakravakas and were full of sweet fragrance of lotuses. Deer were roaming about hither and thither. The importance given to flowers vanaras, birds and beasts and consequently to forests is obvious. These verses show that flora and fauna were studied carefully in the age of the Rāmāyaṇa.

*

EP-105

Culture During the Period of the Epics

Dr. Usha Galay, Agra

The Ramayan and Mahabharat are not just Epics they are priceless literary treasures in which Indian culture is reflected. They contain precious source material for the study of the social, cultural and political condition and institutions of the period.

Society was arranged into classes not on the basis of birth, but on merit and deed. Women possessed freedom but still their position was deteriorating. Duty and courage, rather than destiny were relied upon Character and morality were cherished.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Education was imparted in the Gurukuls. During this period agriculture, animal-husbandry and craftsmanship were the chief means of livelihood Cattle were an important part of property. Among the crafts, textile business was particularly developed.

In the political sphere, heredity kingship was prevalent. High ideals were emphasized for the King and his power was held in check by the 'Sabha' and Council of Elders. The money obtained from taxes was expanded in equal proportion on the poor and the wealthy. A strong army was maintained comprising of elephants, chariots, cavalry and infantry, besides other essential and auxiliary wings like transport, navy and espionage.

*

EP-106

Karna As a Hero

Dr. N. Kumary Lekha, Tiruvananthapuram

Almost all characters of our day to day life have been met within Mahabharata. Among its numerous enchanting characters, Karna stands supreme by his extraordinary valour and magnanimity. Born as Kauntheya, Karna was brought up as Radheya. As the son of a charioteer, Karna had to suffer a lot of insult and contempt everywhere. It was Duryodhana who recognized Karna as a valorous and competent rival to Arjuna. So he appointed him as the king of Angarajya. Karna carried his deep sense of loyalty towards Duryodhana throughout his life. Duryodhana also found a loyal and trustworthy friend in Karna forever. Though a great warrior, Karna turned to be a tragic hero due to the foul play of destiny. However Karna appears as a fascinating charater by means of his brilliance and heroism.

Karna was highly liberal in magnanimity. He simply gives away even the Kavaca and Kundala, the very protective measures of his body at the request of Indra in disguise as a Brahmin.

Karna though abandoned by his mother has great affection towards Kunti. When she reveals the secret of his birth he extends her a patient hearing. He assures her that he will not kill any of the Pandavas other than Arjuna. He kept his word throughout the battle. Even though he was haunted by the words of his mother,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Karna had overcome it by his self-confidence. In order to get weapon training, Karna like Ekalavya had to suffer a lot. He was forced to conceal his identity before Parasurama. When the preceptor cursed him, Karna stood unmoved. This curse turned to be a fatal blow in the life of Karna and it reduced him to a tragic hero. Above all Karna was honest, enthusiastic, self-confident, courageous and highly pleasing with simplicity and magnanimity. Karna, the great warrior in Mahabharata was sinned against than sinning.

*

EP-107

The Ramayana -An Ethical Code for Indian Society

Prof. D. Narasimha Reddy, Tirupati

In Sanskrit Literature Ramayana is considered as Adikavya and the author Valmiki is regarded as Adikavi. Ramayana literary the history of Rama is the immortal poem of Valmiki. Ramayana has become a portrait of living human society and exemplifies the ethical code concerning the customs as well as Social and Political situation of the contemporary period. Such precepts of ethical values are discussed in this study under the board categories, King, People, Administration, Family Structures and Social Relations. Literary is means a collection of moral laws or professional standards of conduct, denoting propriety and not advertised to general public.

*

EP-108

Keralaite Sanskrit Commentaries on Bhāgavata

Vijay Kumar M., Kalady

Three literary works, which influenced the literature of India and the day-to-day life of the people, are the two Epics and a Purāṇa. Rāmāyaṇa and Mahābhārata. the two epics, constituted a lot in producing several later works in Sanskrit and in other Indian and foreign languages. The third one, which has gone deep into the hearts of the people, is Bhāgavata in which the Childhood deeds of *Kṛṣṇa* are mainly described elaborately. Like the epics, Bhāgavata, which is the storehouse of

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

a large number of stories, also has influenced the literature of later period in Sanskrit as well as other Indian languages. The popularity of this work is proved by several commentaries written on it also. There are about eighty-one Sanskrit commentaries written on Bhāgavata. If we take the commentaries in regional and other languages it would surpass thousand. It is amazing that a work that consists of about 18000 verses had such popularity among the readers. It is also notable that no other major work in Sanskrit literature had such large number of commentaries.

In Kerala also the work seems to be very popular among the scholars who wrote exclusive commentaries on it in Sanskrit as well as in Malayalam, the regional language of Kerala. There are six commentaries on it in Sanskrit itself. Among them the *Kṛṣṇapadī* commentary of *Rāghavānanda* is the only commentary on the entire text. The *Artharatnamāla* and *Sadarthaprakāśika* of *Cīrakkuzi Bhavadāsan Nampūtiri* and *Kochu Śankaran Mūssat* are written to the 11th Skandha only.

*

EP-109

Bhāgavata Traditions in Kerala Theatre

Damodharan. P.M., Kerala

Bhāgavata is a part of our great cultural spiritual heritage, which help us to realise the eternity of life. It has been said that the divine enters through the eyes and through the ears of the devotees. Kṛṣṇa enters the heart of every one though the ears when we listen to Bhāgavata and through eyes when we see, the image of the lord or percieve Him in our minds.

Bhāgavata' is considered as a 'Puraṇa' according to Puraṇalakshana', and a Kāvya with reference to Kāvyalakshana'. All the great works of literature help mankind to distinguish between good and evil and thus to attain salvation. These types of numerous works are found in various realms as Kāvya, Nāṭaka, Sastra etc. There are so many translations and transformations, on the basis of these texts that are available. The case is the same with regard to Bhāgavata tradition also. In this way, Kṛṣṇa stories of Bhāgavata are found in Kerala's theatre also like those in Kūṭiyaṭṭam, Nangiarkūthu, Krishnanattam and Kathakali. Also the local art forms like Tullal, Teyyam, Chakyarkuthu etc. of Kerala also contain Bhāgavata tradition.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

What follows is a brief description of Kūṭiyāṭṭam, Nangiar Kūthu, Krishnanattam and Kathakali, the theatre forms of Kerala based on Bhagavata tradition.

❋

EP-110

Traditional Wisdom of Environmental Protection in the Rāmāyana

Prof. Ramesh C. Sharma, Srinagar

Industrialization, technological expansion, exponedtial growth in human population, excessive deforestation and insatiable desire for over exploitation of natural resources have caused several environmental problems including air pollution, water pollution, global warming, ozone layer depletion, wildlife depletion and erosion of genetic diversity resulting the planet Earth as inhospitable for the sustenance of life. There is a cross-cultural and international debate that the solution of these environmental problems lies with the revival of concepts and principles of ecocentrism/cosmocentrism.

The Sanskrit literature has enormous intellectual wealth which has the answers for all the global environmental problems. The present contribution seeks to present a panoramic view of traditional wisdom of the great Rishi Mahrshi Vālmīki for the protection and sustainability of the natural environment to which he was an integral part. The Panchavati forests in the Rāmāyana conjure up a vivid picture of the forest abode of Ram in exile. Vālmīki has emphasized that the survival of the planet depends on the existence of environmental components such as sea, mountains and forest cover. Various natural resources (water, forest, wildlife, etc.) and their protection have been discussed in the light of the reference available in Rāmāyana. The relationship between men and wildlife was friendly and based on the principle of co-existence. Ram was the focal point of this relationship with Hanumān and Sugrīv (monkeys), Nal-Nīl (bear) and Jatāayu (vulture). Ecosystem approach for the management of natural environment was the key during epic period.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-111

Pancamahāpātaka-s as seen in the Prāyaścittasamuccaya of Trilocanaśivacārya

Dr. R. Sathyanarayanan, Pondicherry

The prāyaścittasamuccaya of Trilocanaśivācārya is a summary of the prescribed rules concerning self-punishment and purification, drawn from various Saiddhāntika sources, both scriptural and non-scriptural. The treatment of the mahāpātakā-s, are of particular interest. In Indian tradition of expiation, the five [*brahmahatyā, surāpāna, svarṇasteya, gurudāragamana and tatsahacāra*] sins are treated as great sins. The text prescribes different maṇḍalas for each *mahāpātaka* namely *dhenumaṇḍala* for *brahmahatā, śivālayamaṇḍala* for *surāpāna, smaśānamaṇḍala* for *svarṇasteya, agnihotramaṇḍala* for *tatsahacāra.*

Apart from the mahāpātakā-s, the author elaborately deals with the impurity incurred by birth and death. The auther also deals in detail with other such general (nonśaiva) themes as impurity occasioned by menstruation. Finally the author gives definition for many religious practices such as *cāndrāyaṇa, parāka, taptakrcchra* etc.

This paper will reveal how the treatments of the great sins are of this text (Prāyaścittasamuccaya) different from other *smṛti* texts, its functioning and its expiation procedures.

❋

EP-112

Draupadi Re-Created

M.N. Shylaja, Bangalore

Our epic Mahabharata has been rewritten in many forms over Centuries in all Indian languages. Kannada literature is no excepption to this. Pampa, Ranna, Kumara Vyasa have glorified Kannada literature with works based on Vyasa. Written in Verse forms, they are being sung in cities and villages alike by people. Modern contemporary kannada literature became richer in the year 1979 when Dr. S.L. Bhyrappa presented his novel 'Parva' to the world. The fact that Parva has

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

been translated into 7 languages including English and that it has generated infinite discussions and insight makes its study important.

Parva reminds one of Iravati Karvey's Yuganta indepicting the turmoil of its lady characters. But parva generates mammoth astonishment as all the chacarters are recreated here. The factors sex and death predominate the novel. Poly-andry thrust upon Draupadi, the joys and sorrows of such relationship, its fullness and emptiness are intricately woven into various incidents.

*

EP-113

Administrative Set-up as Depicted in Vālmiki Ramayanā

Kunal Mehta, Jalandhar

I have described various elements of Administrative setup, their role in Administration, during Ramayana. Such as parishad, the ministers, Sabha, Paura-janpada, Janpada, Cabinet Mantrins, Mantri Parishad, Amatyas, The Tirthas etc.

During Epic period kingdom was known by various names such as Desa, Janapada, Visaya & Rastra. All these words in the epic were used as synonyms. In Ramayana age kingdom was divided into two main divisions, namely paura and Janapada, Paura being the seat of Government was fortified and, therefore known as Durga also.

IN the Ramayan it is said that the officers should be appointed according to thier ability after qualifying the proper tests. According to epic, the best should be employed in high jobs, the average in lower jobs and the ordinary in the lowest jobs, beside this, Amatyas who have a tradition of Royal service should be engaged for high jobs.

Besides the information regarding Administration, we come to know little more information about the palace & military Administration from the epic. The palace complex where the king and his family lived was a called as Rajakula. The Administration of the palace was under two officers namely DVARADHYAKSA & STRYADHYAKSA. The army has been reffered to in the Ramayana as caturangini which means having four organs, namely. Chariots, Elephants, Horses

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

& Foot Soldiers. Besides these foru, fifth organ navy was also existed. The wide range of arms described in Ramayana.

❋

EP-114

Prakṛti in the Purāṇas : A Study

Dr. Hiran Sarma, Assam

Prakṛti is an important topic found in different system of Indian thought and also in other branches of Sanskrit literature. The word *Prakṛti* has different meanings. We find the references about *Prakṛti* in the Upaniṣads viz. Śvetāśvatara, Maitrāyaṇī, Katha, etc. References of *Prakṛti* are found in the *Bhagabadgita* also. Here *Prakṛti* is called *Mahad-Brahma. Prakṛti* is described as being the female part which God charges with its energy for the creation of the universe.

The word *Prakṛti* is used in *Gītā* not less than twenty three times. *Prakṛti* is treated mainly in *Sāṁkhya* system the creation of the universe is explained by means of two realities viz. the *Prakṛti* (matter) and the *Puruṣa* (spirit). The *Prakṛti* is the only active principle while the *Prakṛti* is regarded as the passive spectator. *Prakṛti* is the root cause out of which the world wvolves. In *Mahābhārata* too *Prakṛti* is mentioned. *Ahirbudhnya Saṁhitā, Carak Saṁhiā* and *Buddha Carita* also contain descritpion of *Prakṛti*.

In the Puranas, *Prakṛti* is accepted as the material cause with the help of which God creates the world. The Purāṇas make statements everywhere regarding *Prakṛti* and three of the most important are found in the Puranic Encyclopaedia. (i) '*Pra*' means 'principal' and 'Kṛti' means 'creation'.

Therefore the word is meant to convey the meaning 'one that is the principal factor of creation', '*Pra*' means 'sattvic', '*Kṛ*' means rajastic' and '*ta*' means tamasic' and the word '*Prakṛti*' thus conveys the power of the three gunas', '*Pra*' means 'before' and '*kṛti*' means creation and so Prakṛti means that which existed before creation. The present paper is an attempt to discuss about *Prakṛti* as foundin the Purāṇas.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-116

Persian Poetry in India and Germany

Zulfikar Ali, JNU

Persian poetry has not lost its glory and significance in the modern world. Iqbal (1877-1938) however, is the last genius in the long line of poets of Persian in the subcontinent. He outshone others by introducing the west to the East and upheld the easten spiritual values. He enriched Persian and Urdu poetry and brought Germany, Iran and India together by means of his philosophical and poetic thoughts. In 1923, Muhammad Iqbal published a collection of Persian poems called the *Payam-i-Mashriq* (The Massage of the East) as a rejoinder to Goethe's *West Ostlicher Divan*. Goeteh in the *West Ostlicher Divan* answered Hafiz's and sometimes Saadi's verses in German poetry and captured different moods of the poets. His readers are led through various spheres of poetical thoughts which reflect many images and themes of classical Persian literature. The German poet in his work tried to taste the flavour of Persian poetry. Iqbal developed the dimensions of Persian poetry and supplemented the *West Ostilicher Divan*. However, Iqbal regarded Rumi and Goethe as more than poets and discerned a living tradition and poetic heritage of Iran and teh West in both of them. It is interesting to note that Goethe & Iqbal were great thinkers of their times. Both believed in the dynamics of eternal life and persuaded man to remain forever active. Iqbal who is looked upon as a poet of action preaches that action signifies life and even the ardent pilgrim continues his search of God in heaven. He has beautifully put the idea in these words : ''Heaven is no holiday''.

*

EP-117

Humānism in the Mahābhārata

Shiuli Ghosh, Birbhum

The Mahābhārata has occupied a very important place in Indian Literature. During this age of turmoil of lifty ideals, Mahābhārata may be conceived as the resources for elevating the modern way of life. The was between the Kurus and teh Pandavas which occurred apparently mainly for material gain prolonged for 18 days. This has been conceived as the ''Dharma Yuddha'', its object being the

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

annihilation of adharma and establishment of dharma. Dharma is a relative term, its antithesis being adharma. In Indian culture, the meaning of dharma is deep and far-reaching--''dhriyate iti dharma'', So Dr. S. Rādhākrishan said, ''Dharma is the norm which sustain the Universe''. Every creature has its own dharma by which it is marked. Thus dharma has multiple meaning and, in general, dharma ends at teh welfare of humanity and beyond.

*

EP-118

Culture During the Period of the Epics

Dr. Usha Galav, U.P.

The Ramayan and Mahabharat are not just Epics, they are priceless leterary treasures in which Indian culture is reflected. They contain precious source material for the study of the social, cultural and political condition and institutions of the period.

Society was arranged into classes not on the basis of birth, but on merit and deed. Women possessed freedom but still their positon was deteriorating. Duty and courage, rather than destiny were relied upon. Character and morality were cherished. Education was imported in the Gurukuls.

During this period agriculture, animal-husbandry and craftsmanship were the chief means of livelihood. Cattle were an important part of property. Among the crafts, textile business was particularly developed.

In the religious field, the pre-eminence of the Trinity of Brahma, Vishnu and Mahesh was established. Divinity was bestowed even on heroic men. The Bhagwats and Pushupats also became prominent and the order of sun worshippers also gained strength. The period also saw the rise of Devis or famale goddesses like Laxmi and Parwati. More than rituals and sacrifices, fulfilling one's duties and responsibilities were emphasized upon. Progress was also made in astrology, medicine, zoology, art of warfare, archery and architecture. Undoubtly, the Ramayan and Mahabharat are the very foundation of the lives of countless people of this country.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 19

SANSKRIT AND COMPUTERS

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

SC-1

संस्कृतपरम्परायां कम्प्यूटरविज्ञाने च स्मरणशक्तिः

डॉ. खगेन्द्र पात्रः, राउरकेला (ओडिया)

मनुष्यमस्तिष्के या स्मरणव्यवस्था विद्यते तस्या अयमेव अद्भुतप्रभावः। किन्त्वेतादृश्या स्मरणशक्त्या हीनः धनिकपुत्रोऽपि सम्यक्तयाध्ययनं कर्त्तुमसमर्थो भवति। एतेन समस्या समुत्पद्यते। अस्यां समस्यामयपरिस्थित्यां यदि कश्चिद् विद्ययात्मनो लक्ष्यमधिगन्तुमिच्छेत्, तर्हि तेन स्मरणशक्तिमभिबर्द्धयितुं यत्नः करणीयः। एतदर्थं स्मरणशक्तिविषये सम्यग् ज्ञानमावश्यकम्।

स्मरणशक्तिः मानवमस्तिष्कस्यामूल्यसम्पत्। ज्ञानस्य विकाशक्षेत्रेऽस्याश्शक्त्याः मूल्यमुपयोगिताञ्चावगम्य कम्प्युटरवैज्ञानिकैः कम्प्युटरयन्त्रे स्मरणशक्तेः कृत्रिमयन्त्रांशः संयोजितः यस्तु 'हार्डडिस्क' इति नाम्नाभिधीयते। मनुष्यमस्तिष्कस्थमनस्यनुष्ठीयमाणा स्मरणप्रक्रिया कम्प्युटरयन्त्रस्यानेन यन्त्रांशेन सम्पद्यते। यन्त्रांशोऽयं स्मृतिगत- तथ्यानां सञ्चयप्रकोष्ठ इव आचरति। असिन्नेव सञ्चयप्रकोष्ठेऽभिलषिततथ्यानि (desired data) संगृह्यन्ते। अपि च प्रकोष्ठोऽयम् आवश्यककाले निर्देशानुसारं संगृहीततथ्यानि प्रदर्शनफलकेन (Monitor for display) प्रदर्शयति। कम्प्युटर यन्त्र इव मानवमस्तिष्कस्थमनसि स्मरणप्रक्रियानुष्ठीयते। सम्प्रति जिज्ञासा समुदेति— "का नाम स्मृतिः?"

स्मृतिरेका शृङ्खलाबद्धमानसिकप्रक्रिया यया अभिलषितज्ञानस्य तथ्यानां संग्रहः सञ्चयः पुनःप्रदर्शनञ्च क्रियते। स्मरणशक्तिः व्यक्तेः व्यक्त्यन्तरं भिन्ना भवति। कस्यचिद्व्यक्तेः मनसि अभिलषितविषयाः तथ्यानि वा श्रवणमात्रेणैव संगृह्यन्ते दीर्घकालञ्च यावदुपनिबद्ध्यन्ते। किन्त्वपरे दुर्बलस्मरणशक्तिवशाद् पुनः पुनः पठनात् परमपि अभिलषितविषयान् मनसि संग्रहीतुमसमर्थाः भवन्ति। जिज्ञासुव्यक्तिः स्मरणशक्तिविषयकज्ञानेन इमां दुर्बलताम् अपनयेत्।

❋

SC-2

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के संसार में संस्कृत की उपादेयता

डॉ. इन्द्रारानी, फिरोजाबाद (उ०प्र)

प्राकृतिक भाषाओं के निश्चित स्वरूप तैयार करने तथा उन्हें कंप्यूटर प्रोसेसिंग के अनुकूल बनाने के लिए विद्वान् बीस वर्षों से लगातार प्रयासरत हैं, ताकि इन भाषाओं के सम्बन्धों का वाक्यरचना तथा सीमेटिक्स के साथ ज्ञान हो जाये, जो स्वयं के कार्यों में अस्पष्ट है। यह माना गया है कि प्राकृतिक भाषायें विचारों को उतनी गुणवत्ता के साथ प्रेषित नहीं कर सकतीं, जितनी की कृत्रिम भाषाएँ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कृत्रिम बुद्धिमत्ता अथवा 'आर्टिफिशियल इंटेलीजेन्स' का अर्थ है, कंप्यूटर प्रोग्राम द्वारा मशीनों को ऐसे कार्य हेतु सक्षम बनाना जो कृत्रिम बुद्धिमत्ता के विकास में सहायक हों, जिसे मनुष्य और कंप्यूटर दोनों ही समझ सकें। संस्कृत भाषा अत्यन्त प्राचीन भाषा है जिसका एक गौरवपूर्ण विपुल साहित्य है, जो 1000 वर्ष तक बोली गयी और आज भी इसका अस्तित्व है। आवश्यकता है कि संस्कृत की विस्तृत व्याख्या करने के तरीके की जो कृत्रिम बुद्धिमत्ता के आधुनिक कार्य की आकृति के समान हो। संस्कृत का अर्थ—सभ्य अथवा संस्कार की गयी है, यह देवभाषा है जिसमें संपूर्ण वैदिक साहित्य तथा लौकिक साहित्य के ग्रंथों की रचना हुई है। यह विज्ञान की बीज भी है। संस्कृत व कंप्यूटर एक दूसरे के पूरक हैं इस भाषा की प्रेरणा व स्पष्टता ही क्रियात्मक निर्माण हेतु सक्षम है। संस्कृत व कंप्यूटर मानव में उच्च मानसिक शक्ति को जाग्रत कर देंगे जो विश्व को बदल देगी। यह भाषा ज्यामिट्री की तरह तर्क पर आधारित है, नासा के शोधार्थी ने पाणिनि के व्याकरणीय ढाँचों को कंप्यूटर द्वारा प्रयुक्त भाषाओं के विकास में उपयोगी माना है। डॉ. रामनुजन ने कंप्यूटर भाषा के विकास पर एक केन्द्र बनाया है तथा एक सॉफ्टवेयर सिद्धगंगा मूट, कर्नाटक में विकसित किया जा रहा है।

*

SC-3

कंप्यूटर पर देवनागरी लिपि में कार्य करने की समस्या

डॉ. शिवदेव सिंह मन्हास, जम्मू

इक्कीसवीं सदी के इस प्रारम्भिक काल में जब कि भारत को सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अग्रणी माना जा रहा है। वहीं इसकी अपनी भाषा हिन्दी की स्थिति पर यदि विचार किया जाए तो हमें कहीं-कहीं निराशा होती है। मिसाल के तौर पर कंप्यूटर पर हिन्दी में कार्य करने को ही लें। आज सैकड़ों किस्म के फोंट उपलब्ध होने के बावजूद कोई भी फोंट ऐसा नहीं है, जो कि सर्वमान्य एवं सर्वत्र उपयोग के लिए उपलब्ध हो।

शोधकर्ता ने प्रस्तुत पत्र में कंप्यूटर पर कार्य करने में फोंट आदि की इन्हीं समस्याओं पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में देवनागरी लिपि से जुड़ी समस्याओं पर विचार करते हुए, संस्कृत लेखन की समस्या पर भी प्रकारान्तर से विचार प्रस्तुत किया जाएगा।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

SC-4

अनुवृत्ति-एक संगणकीय पद्धति

योगेश्वर शुक्ल, भोपाल

महर्षि पाणिनि की प्राकृतिक बुद्धि द्वारा विरचित विश्व भाषा के इतिहास का सर्वाधिक उपयुक्त व्याकरण अष्टाध्यायी है। पाणिनि ने प्रस्तुत व्याकरण के निर्माण में सुदीर्घ परम्पराओं का समन्वय करते हुए, 'अष्टाध्यायी' को एक सार्वकालिक व्याकरण की संज्ञा प्रदान किया। अष्टाध्यायी में वर्णित अनेक पद्धतियों में अनुवृत्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। अनुवृत्ति के द्वारा अष्टाध्यायी के सूत्र विशिष्ट क्रम में सुव्यवस्थित रहते हैं।

अनुवृत्ति के कारण ही सूत्र अपने अर्थ गौरव को नहीं छोड़ते। अनुवृत्ति का परिचालन संगणकवत् होता है। अनुवृत्ति पाणिनि की प्राकृतिक बुद्धि का कृत्रिम भाषिक संसाधन है, जिसके द्वारा सूत्र-सम्बन्ध कभी भी स्खलित नहीं होता। अनुवृत्ति के दो प्रमुख उद्देश्य हैं-1. अष्टाध्यायी की रक्षा 2. अष्टाध्यायी का सूत्रार्थ। पाणिनि की दृष्टि में, अनुवृत्ति एक संगणकीय पद्धति है, क्योंकि जिस तरह संगणक क्रमबद्ध होकर आकड़ों का सम्यक् गुम्फन कर क्रियान्वित होता है, उसी प्रकार अष्टाध्यायी की अनुवृत्ति-पद्धति सूत्रों को क्रमबद्ध करके विधिसूत्रों द्वारा शब्द सिद्धि में संसाधित होती है।

*

SC-5

संस्कृत की उपयोगिता : सङ्गणक की दृष्टि से

प्रज्ञा यादव, लखनऊ

प्रस्तुत शोधपत्र संस्कृत भाषा के सन्दर्भ में इसकी विशेषताओं, जैसे इसकी गणितीय क्षमता, स्पष्टता, शब्दकोष की निर्भरता, सूत्रबद्ध शैली, अत्यन्त नियमित और अत्यन्त लचीली वाक्य संरचना आदि को सङ्गणक की दृष्टि से उपयोगी सिद्ध करने के विषय में विभिन्न दृष्टिकोण प्रकट करता है। सङ्गणक की दृष्टि से अन्य भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत भाषा की उपयोगिता को अधिक प्रभावशाली रूप से सिद्ध करने का एक प्रबल प्रमाण वैदिक गणित में उपस्थित है। प्रस्तुत शोधपत्र तीन खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में सङ्गणक की दृष्टि से संस्कृत के विकास की चर्चा की गयी है, द्वितीय खण्ड में सङ्गणक की दृष्टि से संस्कृत की उपयोगिता के विषय में विभिन्न विद्वानों की उक्तियों को उद्धृत किया गया है और तृतीय खण्ड में सङ्गणक की दृष्टि से संस्कृत की

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उपयोगिकता पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है, जो इस शोधपत्र का प्रमुख प्रतिपाद्य है। इस खण्ड में बताने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार वैदिक गणित के कतिपय सूत्रों के माध्यम से आधुनिक गणित की अत्यन्त जटिल प्रक्रिया को सर्वथा सरल प्रक्रिया बनाया जा सकता है और इसी के माध्यम से संगणक की कार्यप्रणाली को और अधिक कार्यदक्ष, अत्यल्प, अधिक निश्चित तथा अधिक त्रुटिहीन बनाया जा सकता है।

❋

SC-6

Sanskrit suits best to the computer : A retrospect and prospect

Banamali Biswal, Allahabad

Not only the Sanskritists but today's computer scientists accept the challenging fact that Sanskrit suits best to the computer so far as the Natural Language Process (NLP) is concerned. Before underlining the reasons thereof, it will be interesting to see how and when this fact came to light. The efforts made and the progress achieved so far in this context, are also to be assessed. Is it that this concept appears strong only on the paper or it is supported with sufficient grounds, are the points to be thought over.

As many of us know : on 7th May 1985 a news was published in all the leading news-papers that Sanskrit is the best languae for computer based on the statement made by Nani Plkiwala (a renowned lawyer of India) in an inaugural speech of a lecture series on Hindu धर्मशास्त्र conducted in the memory of Prof. Kane at Mumbai.

Though sounds surprising, it is true that Sanskrit can be an ideal language for computer programming, say the scientists of USA during a conference. They have tested many modern languages of the world including English, French, German etc. to reach this conclusion. On the contrary, they found Sanskrit as highly logical and free from all sorts of ambiguity. Thus, it suits best to the computer. By this news the Sanskritists got inspired and the anti-Sanskritists started taking interest in it.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Later in the same year an article titled ''knowledge Representation in Sanskrit and artificial Intelligince'' by prof. Rick Briggs (a computer software scientists of RIACS and NASA from california) was published in ''The artificial Intelligence'' from Pune. In this article prof. Briggs tried to establish that grammarian's शाब्दबोध -technique has unbelievable similarity with computer programming. After examining the शाब्दबोध -principle of न्याय, व्याकरण as well as मीमांसा he concluded that grammarian's व्यापारमुख्यविशेष्यक-शाब्दबोध is closer to the computer programming and thus, has all qualities to become computer's natural language. Prof Briggs also felt that the phonology, morphology and syntax (syntactic description) etc. can be interpreted on the light of पाणिनि's अष्टाध्यायी. In this paper an attempt is made to cast a light on the issues : how Sanskrit language can be computer-friendly and how computer can become Sanskrit-friendly. The system of machine translation (अनुसारक), hyper text, uses of corpus, Text-tagging etc. are the other thrust area of the proposed paper. The Institute such as International Institute of Informatin Technology, Hyderabad, Rashtriya Sanskrit Vidyapeetha, Tirupati, Centre for Development of Advanced Computing (C-DAC), Bangalore, Ahobila Mutt Sanskrit College, Madhurantakam, Tamil Nadu, Poorna Prajna Samshodhana Mandiram, Bangalore, CHinmaya International Foundation, Kerala, Academy of Sanskrit Research, Melkote, Department of Sanskrit, University of Sagar, French Institute of Indology, Pondicherry and many scholars working in this area like Prof. Rajeev Sangal, Prof. Vineeth Chaitanya, Smt. Amba P.Kulakarni, Prof. Saroja Bhate, Prof. Radhavallabh Tripathi, prof. Keshab Chandra Dash and Dr. Achyutananda Dash etc., will get a due place in this paper along with their valuable contributions. The questions like : how computers are useful for the upliftment of Sanskrit language and how Sanskrit language can help computer to find a Natural Language, may get a possible answer from this paper.

*

SC-7

Concept of Memory power in Sanskrit Tradition and Computer Science - A Study

Dr. Khagendra Patra, Rourkela, Orissa

Memory power plays a significant role in transforming a poor fellow / ordinary student into a completely brilliant scholar or creative writer like Kalidasa

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

and others. One of the best examples in this respect is Swami Vivekananda. With the help of his sharp memory power, he could memorize the entire text of a book at the movement of reading just like a scanner of Computer Scince. This is the magical effect of memory system in human mind. Thus, considering the value and importance of memory power for developed human life any aspirant individual may be interested to know about it in detail.

Memory power is a systematized mental activity of collecting, storing and recollecting any desired data-may be of knowledge or informatin about any branch of learning. In fact, human mind is the storehouse of memory where only significant incidents / data are recorded and remembered for a long time on selection basis. But insignificant incidents, though come in contact with mind, are wiped out from the memory in short time. In this way, mind has two types of memory called as Long Term Memory (LTM) and Short Term Memory (STM), which may be compared with RAM and ROM of Computer Science respectively.

❋

SC-8

Vedas and Computers

Narottam Mishra, Darbhanga, Bihar

Libraries have always been the objects of ire for vandals. The Vedas have survived because they ae Shrutis, something passed on orally and surviving in memory, Vedas contain many secrets which have not all been unraveled yet...

Vedas must be recited in such a way that teh words are textually perfect, their intonations are flawless and even the body movements during recitation must follow a set pattern. Prfection is achieved only after years of practice.

Changing patterns and values of life should make us think of something other than the mortal human agency for preserving our heritage. We can think of using the computer for preserving the vedas.

Mastering a Veda entails remembering the 1. Text, the 2. Rhythm and the Pitch of the voice together with specified 3. Movements of the body. These can be preserved by the use of Digtization with Audio Video.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Mastering a Veda entails remembering the 1. Text, the 2. Rhythm and the Pitch of the voice together with specified 3. Movements of the body. These can be preserved by the use of Digitization with Audio Video.

Text : teh Veda could be computerized in such a manner that whenever we require to retrieve any specific word it is easily recalled. **Intonation** : Scholars from all over India would have to drafted. The voice and pictures of their body movements could captured in a Audio Video unit and with the help of voice reorganization device. This device would record the range of frequencis after capturing the audio of at laest three to four vedics. **Body Language** and body movements : the computer would have to check each movement of the scholar from every angle. The use of Artificial Intelligence as used in the Robots comes to mind. Softwares would have to be developed for analyzing a learner's performance.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 20

INDIAN AESTHETICS AND POETICS

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IA & P-1

काव्ये हास्यरसस्यावस्थितिः

सन्तोष कुमार पाण्डेय, उत्तराञ्चल

विद्वत्सु रसस्यास्य अष्ट भेदाः प्रसिद्धाः—

शृंगारहास्य करुणरौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ काव्ये रसाः स्मृताः॥

सर्वेप्येते रसाः रस्यन्ते अर्थात् रसाः हृदये ब्रह्मानन्दसहोदरवत् आनन्दस्य संचारं कुर्वन्ति। इदानीं हास्य रसस्य विषये विदुषामभिमतं विवेचयिष्यामः। हास्यरसं परिभाषयन् कथितम् अस्ति—

विकृताकारवाग्वेष चेष्टादेः कुहकाद् भवेत्।
हास्यो हासस्थायिभावः श्वेतः प्रमथदैवतः॥

अर्थात् हास्यरसस्य स्थायिभावः हासः अस्ति। अयं विकृताकारेण, वचसा, चेष्टया कुहकात् च उद्भूतः भवति। अस्य वर्णः श्वेतः देवता च प्रमथः मन्यते। नाट्ये हास्यरसस्य उपस्थितिः प्रायशः विदूषकस्य माध्यमेन क्रियते यस्य लक्षणं इत्थमुक्तम्—

खलतिः पिङ्गलाक्षश्च हास्यानूकविभूषितः
पिङ्गकेशो हरिश्मश्रुर्नर्तकश्च विदूषकः।
तथा त्वप्रतिभो नर्मश्चतुर्भेदप्रयोगवित्
वेदविन्नर्मवेदी च यो नेतुः स्यात् स विदूषकः॥ — शारदातनय

विदूषकः सर्वदा औदरिकः भवति। तस्य उक्तयः अपि भोजनम् परितः एव सञ्चरन्ति। तस्य दृष्ट्या स्वच्छाकाशे उदितः चन्द्रमा नीलमणेः पात्रे स्थितं नवनीतमिव एवं समासेन वक्तुं शक्यते यत् यो हि हासः रसनीयताम् एति, हृदयस्य विकासं करोति स्वयं च व्यज्यते, न त्वभिधीयते लक्ष्यते वा असावेव हासः हास्यरसस्य विषयः भवितुम् अर्हति। आधुनिक हिन्दीभाषायाः प्रख्यात कथालेखकस्य हरिशंकर परसाई महोदयस्य कथाः उक्तदृष्ट्या हास्यरसस्य उदाहरणरूपेण द्रष्टुं शक्यन्ते।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IA & P-2

रसकल्पद्रुमे शान्तरसः

डॉ. (श्रीमती) कादम्बिनी दाशः, भुवनेश्वरः

शान्तरसस्य स्वीकारविषये स्थायिभावविषये च मतभेदो दृश्यते। भरतमनुसृत्य उद्भटादयः 'शमं' स्थायित्वेन कल्पयन्ति। रुद्रटः 'सम्यग्ज्ञानम्', आनन्दवर्धनस्यानुगामिनः 'तृष्णाक्षयसुखम्', हेमचन्द्रः 'तृष्णाक्षयरूपं शमं', केचित् 'सर्वचित्तवृत्तिप्रशमं', मम्मटश्च 'निर्वेदं' स्थायिरूपेण निर्दिशन्ति। अभिनवभारत्यां 'तत्त्वज्ञानजो निर्वेदः' स्थायीति गृह्यते। अभिनवः अन्ततो गत्वा 'शमः' स्थायिभाव इति मानयति। स्थायीति स्वीकरोति। पण्डितराज जगन्नाथः 'विषयविरागाख्यं निर्वेदं' स्थायीति निरूपयति।

अष्टादशशताब्दयाः उत्कलीयालंकारिकः जगन्नाथमिश्रः 'रसकल्पद्रुमे' शान्तस्य लक्षणमित्थं दर्शयति।

शान्तः शमस्थायिभाव उत्तमप्रकृतिर्मतः।
कुन्देन्दुसुन्दरच्छायः श्रीनारायणदैवतः॥ रसकल्पद्रुमे, X.1.1

*

IA & P-3

आचार्योद्भटप्रतिपादितं काव्यदोषविवेचनम्

डॉ. (श्रीमती) प्रीति सिनहा, लखनऊ

भामहविवरणस्येदानीमेकमेव संस्करणमुपलभ्यते। संस्करणमिदं इटलीदेशीयस्य रोमनगरस्य UISMEO (Istituto Italiano Per IL Medio Ed Estremo Oriente) इतिसंस्थया द्वाषष्ठ्युत्तरैकोनविंशतितमे वर्षे प्रो. आर. नेउलीमहोदयेन रोमनलिप्यां प्रकाशितम्। संस्करणस्यास्यैव देवनागरीलिप्यन्तरणं चतुर्नवत्युत्तरैकोनविंशतितमे वर्षे डॉ. रमणकुमारशर्मणा सम्पादितस्य भामहकृतकाव्यालङ्कारस्य पञ्चमपरिशिष्टत्वेनापि 198 पृष्ठतः 239 पृष्ठानि यावत् प्रकाशितम्।

काव्यदोषविषयाः पञ्चाशताः कारिका उपलभ्यन्ते भामहविरचिते षट्परिच्छेदोपेते नवनवत्यधिक-त्रिशतीकारिकासमन्विते काव्यालङ्कारे। भामहविवरणनाम्नीटीकायाः विश्लेषणात्मकप्रवत्तित्वादिदं प्रतीयते यदुद्भटेन सर्वा अप्येताः दोषविषयकाः कारिकाः व्याख्याता आसन् किन्तु मातृकायाः जीर्णत्वात् खण्डित्वाच्च संस्करणे टीकायाः सर्वेअंशाः नैवोपलभ्यन्ते। खण्डत्रये विभक्तेऽस्मिन् शोधपत्रे आदौ तावत् उद्भटीयः काव्यदोषसिद्धान्तः प्रस्तोष्यते। भामहविवरणे परिभाषादृष्ट्या तु काव्यदोषलक्षणं कुत्रापि नैवोल्लिखितम् किन्तु काव्यसमीक्षादृष्ट्या अत्र दोषाणां हेयता, नित्यता, अनित्यता, भेदप्रभेदाश्च विस्तृतं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विवेचिताः। भामहविवरणानुसारं काव्ये दोषः परित्याज्यः। एकोऽपि दोषः काव्यं तथैव विनाशयति यथा कुपुत्र वंशं। तस्येदमपि कथनमस्ति यत् काव्यदोषस्तु कवये साक्षात् मृत्युरूपः।

शोधपत्रस्य द्वितीयखण्डे उद्भटानुसारं शब्दार्थव्याकरणछन्दोविरोधन्यायादयः विविधाः काव्यदोषाः भेदप्रभेदपूर्वकं विवेचयिष्यन्ते भामहविवरणटीकायामुपलब्धैरुदाहरणैरेतेषां पुष्टिः करिष्यते च। चरमे च खण्डे शोधपत्रस्यास्य उद्भटीयायाः काव्यदोषमान्यतायाः मूल्याङ्कनं करिष्यते।

❋

IA & P-4

लोकभाषा संस्कृतम्

भारतीयसंस्कृतेरविरलप्रवाहधारिणी सर्वभाषाप्रसूतिका अपि च भारतीयदर्शनस्य पोषिका संस्कृतभाषा। ब्रह्मणा सम्बद्धत्वात् ब्राह्मी भाषाभिधेया प्रौढा प्राञ्जला ज्ञायते नाम्नैवैषा भाषा। इयं संस्कृतभाषाऽन्याभ्यः सर्वेभ्योऽपि भाषायाः प्रकारे विस्तारे विचारपवित्रतायां चान्यूना विद्यते। भाषैषा उत्तरभारतीयभाषाणां जननी दक्षिणभारतीयभाषाणं च प्रभायित्री। सर्वास्वपि आर्य-द्रविड-परिवारभाषासु संस्कृत शब्दानां बाहुल्यमवलोक्यते। आधुनिकसंगणकस्ये- कृतेऽपि संस्कतमेव सर्वोपयोगिनी भाषाऽस्ति यतो हि संस्कृते भाषासम्बन्धी नियमाः सूत्रबद्धाः सन्ति, तान् गणितीय प्रणाल्या ग्राहयितुं शक्यते। संस्कृतभाषायाप्रभावं फिल्मजगति (चलचित्रे) दरीदृश्यते 1983 वर्षस्य सर्वश्रेष्ठ फिल्मं "आदिशंकराचार्यः" नाम संस्कृत फिल्ममुद्घोषितम्। सम्प्रति अपि नास्ति देशस्य कोऽपिभागो यत्र संस्कृतपत्रिका न प्रकाश्यते, नाधीयते, नावगम्यते न श्रूयते च नाद्रियते। अद्यत्वेऽपि बहवः दैनिक साप्ताहिकपाक्षिक-मासिक-त्रैमासिक-षण्मासिक-वार्षिक पत्रपत्रिकाः प्रकाश्यन्ते तद्यथा—संस्कृतम्, गाण्डीवम्, विश्वज्योति, भारती, शारदा, अर्वाचीन संस्कृतम्, विश्वभाषा, गौर्वाणी, हिमज्योतिः, पारिजातम्, सत्वगन्धा, बालसंस्कृतम्, चन्दामामा, भारतोदयः, संगमनी, सामरिका विश्वसंस्कृतम् इत्यादयः सन्ति।

❋

IA & P-5

रसस्य प्रत्येयता-प्रतिपादकस्थले काव्यप्रकाशस्याधुनिक-व्याख्यातृणां प्रमादः

डॉ. विजयपालशास्त्री, जयपुर (राजस्थान)

काव्यप्रकाश-चतुर्थोल्लासे रसस्वरूप-निरूपण-प्रकरणे भरतसूत्र-विवरणपरम् अभिनवगुप्तमतं स्वीयया संक्षेपवत्या शैल्या प्रस्तुवन्नाचार्यमम्मटस्तत्राभिनवगुप्तेन रसस्यालौकिकतामित्थं प्रतिपादयति—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

'स च न कार्यो विभावादिविनाशेऽपि तस्य सम्भवप्रसङ्गात्। नापि ज्ञाप्यः सिद्धस्य तस्यासम्भवात्, अपितु विभावादिभिर्व्यञ्जितश्चर्वणीयः। कारकज्ञापकाभ्यामन्यत् क्व दृष्टमिति चेत् न क्वचिद् दृष्टमित्यलौकिकत्व-सिद्धेर्भूषणमेतन्न दूषणम्।

चर्वणानिष्पत्त्या तस्य निष्पत्तिरुपचरितेति कार्योऽप्युच्यताम्। लौकिकप्रत्यक्षादिप्रमाणताटस्थ्याव-बोधशालिमितयोगिज्ञानवेद्यान्तरसंस्पर्शरहितस्वात्ममात्रपर्यवसितपरिमितेतरयोगिसंवेदनविलक्षण-स्वसंवेदनगोचर इति प्रत्येयोऽप्यभिधीयताम्'

अत्र प्रत्येयोऽप्यभिधीयतामिति रसस्य प्रत्येयत्वप्रतिपादिका पङ्क्तिर्नवीनैर्व्याख्याकारैरन्यथैव व्याख्यायते। अत्राभिनवभारतीमूलको मम्मटस्याभिप्रायस्त्वित्थमस्तिलौकिकप्रत्यक्षादिप्रमाणेभ्यो विलक्षणम्, ताटस्थ्यावबोध-शालिमितयोगिज्ञानाद् विलक्षणम्, वेद्यसंस्पर्शरहितस्वात्ममात्रपर्यवसितपरिमितेतर-योगिसंवेदनाच्च विलक्षणं रसस्य यल्लोकोत्तरं स्वसंवेदनं तस्य गोचर इति स प्रत्येयोऽप्यभिधीयतामिति।

परन्तु प्रायेण सर्व आधुनिका व्याख्यातारः 'लौकिकप्रत्यक्षादि' इत्यस्थाने छेदं कृत्वा प्रमाणपदं चाग्रिमेण योजयित्वा मूलग्रन्थाभिप्रायविरुद्धमित्थं व्याख्यान्तिलौकिकप्रत्यक्षादिविलक्षणं प्रमाणताटस्थ्यावबोधशालिमित- योगिज्ञानविलक्षणम्.....इत्यादि।

व्याख्यानमिदमभिनवभारतीविरुद्धं काव्यप्रकाशाभिप्रायविपरीतं चास्तीति अत्रोद्धियमाणाया अभिनवभारत्या आलोके स्वयमेवावलोकयन्तु विद्वांसः—

'न च सा चर्वण प्राङ्मानान्तरात् येनाधुना स्मृतिः स्यात्। न चात्र लौकिकप्रत्यक्षादिप्रमाणव्यापारः। सा च प्रत्यक्षानुमानागमोपमानादिलौकिकप्रमाणजनितरत्याद्यवबोधतः तथा योगिप्रत्यक्षजनिततटस्थपर-संवित्तिज्ञानात् सकलवैषयिकोपरागशून्यशुद्धपरयोगिगतस्वात्मानन्दैकघनानुभवाच्च विशिष्यते। एतेषां यथायोगमर्जनादिविघ्नान्तरोदयात् ताटस्थ्यास्फुटत्वं विषयावेशवैवश्येन च सौन्दर्यविरहात्।'

'अत्र तु स्वात्मैकगतत्वनियमासम्भवात् न विषयावेशवैवश्यम्। स्वात्मानुप्रवेशात् परगत्वनियमा-भावात् न ताटस्थ्यास्फुटत्वम्। तद्विभावादिसाधारण्यवशसम्प्रबुद्धोचितरत्यादिवासनावेशवशाच्च न विघ्नान्तरादीनां सम्भवः इत्यवोचाम बहुशः। अत एव विभावादयो न निष्पत्तिहेतवो रसस्य, तद्बोधापगमेऽपि रससम्भवप्रसङ्गात्' (अभिनवभारती, नाट्यशास्त्रम् - अध्यायः 6)।

पूर्वनिर्दिष्टायाः काव्यप्रकाश-पङ्क्तेरुपजीव्यभूतामिमामभिनवभारतीमदृष्ट्वा वा गजनिमीलिकयावधीर्य वा कृतमुपरिनिर्दिष्टमाधुनिकव्याख्यातृणां व्याख्यानं सम्प्रति प्रायेण सर्वत्र पठनपाठने प्रचलितं दृश्यते।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IA & P-6

॥ काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात् ॥

डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी, वाराणसी

काव्यं नाम कवेः लोकोत्तरवर्णनानिपुणं कर्म। अस्मिन् विषये आचार्यवामनस्य मतमनुसन्धाय मया निवेद्यतेऽस्मिन् शोधपत्रे।

काव्यं भवत्युपादेयमलङ्कारेण संयुतम्।
काव्यं सहृदयैर्ग्राह्यमलङ्कारोपयोगतः॥

शब्दार्थौ हि भवेत्काव्यं गुणालङ्कारसंस्कृतौ।
अलङ्कारोऽस्ति सौन्दर्यं गुणास्तु रसहेतवः॥

न कश्चित्सेवते काव्यं रसहीनमसुन्दरम्।
अतः काव्यं तथा कर्तुं यतन्ते कवितलज्जाः॥

बहुधाऽऽलोच्य काव्यानि महाकविकृतानि वै।
प्रणीतास्तत्र सिद्धान्ता आचार्यैः काव्यवेतृभिः॥

आचार्यवामनेनेदं सूत्रं यद्धि विनिर्मितम्।
समादाय मया किञ्चित्तस्य तत्त्वं समीक्ष्यते॥

*

IA & P-7

उत्कर्षहेतवः प्रोक्ता गुणालङ्काररीतयः—आलोचनमेकम्

डॉ. खगेन्द्रनाथ देव शर्मा, बरपेटा (असम)

विश्वनाथकविराजः तस्य साहित्यदर्पणस्य प्रथमपरिच्छेदे काव्यस्वरूपवर्णनप्रसङ्गे रसात्मकस्य काव्यस्योत्कर्षहेतोः गुणादीनां प्रयोजनमिति स्पष्टं वर्णयति—

"उत्कर्षहेतवः प्रोक्ता गुणालङ्काररीतयः" इति।

अत्र गुणाः शौर्यादिवत्। शौर्यो नामात्मगतः शन्तुविजयादिरूपोद्योगः ज्ञानविशेषो वो चेतनस्यैवात्मनः धर्मः नाचेतनस्य शरीरस्य। माधुर्यमोजःप्रसादेति त्रिधाविभक्ताः एते गुणाः। काव्यप्रकाशेऽप्युक्तमस्ति—

ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उत्कर्षहेतवः ते स्युरचलस्थितयो गुणाः॥

का: प्र: VIII/1

अतः गुणाः काव्यात्मनः रसस्य उत्कर्षहेतवः प्रोक्ताः।

अलंकरोतीति हि अलंवनरशब्दस्य व्युत्पत्तिः। येन प्रकारेण अनंकृताः जनाः अतिसौन्दर्यमयाः भवन्ति तेन प्रकारेणालंकारैः समन्वितानि काव्यान्यपि समुत्कृष्टानि मन्यन्ते। शब्दालंकारार्थलंकारौ इति द्वौ भेदौ स्तः अलंकारस्य। येऽलंकाराः शब्दपरिवर्तनकृतेऽपि पूर्ववदेव तिष्ठन्ति तेऽर्थालंकाराः कथ्यन्ते। ये शब्दपरिवर्तनं न सहन्ते ते हि शब्दालंकाराः भवन्ति। साहित्यदर्पपकारेण विश्वनाथकविराजेनोक्तम्—

शब्दार्थयोरस्थिराः ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत्॥

सा०द० X/1

❋

IA & P-8

काव्ये रसस्य शाब्दवोधविषयताविमर्शः

मृदुला राय, शान्तिनिकेतनम्, (बंगाल)

वस्त्वलंकाररसभेदात्त्रिविधा खलु काव्यजन्या अनुभूतिः। वस्तुपदेन विधिनिषेधादिरूपस्य लौकिकार्थस्य ग्रहणम्। काव्ये वाच्यलक्ष्यप्रतीयमानरूपेणार्थस्यास्योपस्थितिः। अनुप्रासोपमाद्यलंकाराः काव्ये वैचित्र्यसृजनेन सहृदयचित्तमाकर्षयन्ति। अभिधावृत्त्या वस्तुनोऽलंकारस्य वा शाब्दबोधविषयत्वम्। रसस्य शाब्दबोधविषयत्वे संशयो जायते यतः यैः शब्दैः रसात्मकानुभूतिर्भवति तस्याः रसरूपेऽर्थे संकेतग्रहो न सम्भवति। अतएव रसः कदापि संकेतग्रहविषयको नेति भूयसा प्रतिपादितमानन्दवर्धनादिभिरालंकारिकैः।

❋

IA & P-9

संस्कृतकाव्यशास्त्रेषु गुणतत्त्वविमर्शः

श्रीयुक्त गिरिजाशंकर पतिः, मयूरभञ्जः

दूरदिगन्तविस्तृतसंस्कृतसाहित्यनभोमण्डले उज्ज्वलतारकासदृशाः ये ये विशिष्टालंकारिकाः काव्यं विरचितवन्तः ते सर्वगुणस्य सर्वमान्यतां स्वीकृतवन्तः। शब्दार्थमयत्वरूपकाव्ये कः गुणः किं तस्य

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्वरूपमित्यादि विषये आचार्याणां विभिन्नानि मतानि दरीदृश्यतन्ते। तेषु नाट्यकर्मकुशलः भरतमुनिः काव्ये गुणस्य किं स्वरूपम् इति विषये नाट्यशास्त्रे बहुधा आलोचितवान्। तद् यथा "दोषविपर्ययं गुणः"। अर्थात् यत्र दोषस्य विनाशः भवति तत्र गुणस्य उदयः भवति। भरतमुनेः विचारे यथा लोके शौर्यवीर्यप्रभृतयः गुणाः आत्मानं बर्द्धयन्ति तथैव आत्मभूतरसस्य माधुर्यप्रभृतयः गुणाः काव्यस्य शोभां बर्द्धयन्ति।

काव्ये शोभाधायकेषु विभिन्नेषु तत्त्वेषु गुणतत्त्वं संस्कृतसाहित्यजगति नितरां प्राधान्यं लभतेतराम्। यद्यपि गुणः काव्ये एकमेव तत्त्वं तथापि अस्य विभाजनं विचारे आचार्याणं वैमत्यं परिलक्ष्यते। आलंकारिकेषु भरतमुनि-दण्डी-वाग्भटादयः विद्वांसः दशसंख्यकान् गुणान् स्वीकृतवन्तः। भोज-वामनादयः दशशब्दगुणः दश-अर्थगुणत्वेन विंशति संख्यकान् गुणान् स्वीकृतवन्तः। अपरपक्षे आनन्दबर्द्धन-मम्मट-विश्वनाथादयः आलंकारिकाः गुणत्रयं स्वीकृतवन्तः। एतेषाम् आलंकारिकाणां मतेन गुणत्रये भरतमुनि-दण्डी-वामनादिभिः स्वीकृताः सर्वे गुणाः अन्तर्भवन्ति।

मम मते गुण एव काव्यस्य जीवनधायकत्वं भवति। चमत्कारिशब्दार्थाभ्यां गुणस्य आवश्यकता सर्वालंकारिकैः स्वीकृता वर्त्तते। गुणं विना काव्यं रसान्वितम् अलंकारयुक्तमपि न भवति। गुणविभाजनप्रसङ्गे सूक्ष्मातिसूक्ष्मं तारतम्यं लक्षीकृत्य केचन आलंकारिकाः तस्य विभाजनं बहुधा कृतम्। परन्तु तेषां गुणत्रयशान्तभावविचारः ज्यायात् भवेदिति अहं विचारयामि। तत्र सहृदयः प्रमाणम् इति दिक्॥

*

IA & P-10

काव्यशास्त्रीयलोकचिन्तनम्

डॉ. बालकृष्णशर्मा, ग्वालियर

लोकानुशासनाय भवति शास्त्राणां प्रवृत्तिः तथापि शास्त्रानुशासने लोकः एव आदर्शत्वेन उपादीयते। तात्पर्यमिदं यत् लोकः आदर्शरूपोऽपि भवति अनुशासनायापि च भवति। अतः सर्वेषु शास्त्रेषु लोकस्य उभयोः रूपयोः दर्शनं भवति। अनया दृष्ट्या यदा काव्यशास्त्रस्य परिशीलनं क्रियते तदा तथ्यमिदं सहजतया स्फुटीभवति यत् काव्यशास्त्रीयानुशासने लोकः पूर्णसम्पृक्तोऽस्ति। सर्वे काव्यशास्त्रिणः स्व-स्वकाव्यशास्त्रीयनिबन्धेषु लोकचिन्तनमाध्यमेनैव शास्त्रीयगूढविषयान् विशदीकृतवन्तः। भवतु नाम काव्यस्वरूपनिरूपणस्य प्रसङ्ग काव्यभेदनिरूपणस्य प्रसङ्गः गुणालङ्काररसादिनिरूपणस्य प्रसङ्गः वा सर्वत्र आचार्याः लोकतः एव निदर्शनानि सङ्गृह्य प्रस्तुतीकृतवन्तः। तद्यथा काव्यशास्त्रीयग्रन्थेषु सर्वत्र सङ्करसंसृष्टिचर्चा विद्यते। परन्तु सङ्करस्य संसृष्टेर्वा ज्ञानं यथा नीरक्षीरन्यायेन तिलतण्डुलन्यायेन वा भवति सहजतया तथा नास्त्यन्यः कोऽप्यपरोपायः। अयं नीरक्षीरन्यायः तिलतण्डुलन्यायः वा सर्वथा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लौकिको विषयः लोके एव चावगमनीयः। एवमेव 'घण्टानादः' 'अनुस्वानः' 'अनुरणनम्वा' असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनेः विशदीकरणाय-प्रयुज्यते। अथवा 'शतशतपत्रछेदनन्यायोऽत्रोपयुज्यते। इत्थमेव गुणस्वरूपनिरूपणे शौर्यादीनां गुणानां तथालङ्कारस्वरूपनिरूपण- प्रसङ्गे हाराद्यलङ्काराणाम् उपयोगो भवति। एते सर्वे लौकिकप्रयोगाः शास्त्रीयगूढविषयाणां विशदीकरणे यथा सक्षमाः सन्ति तथा नास्त्यन्यः कोऽप्युपायः। अतएव काव्यशास्त्रिणः लोकचिन्तनसाहाय्येन शास्त्रीयविषयान् विशदीकृतवन्तः। इदमेव कारणमस्ति यत् काव्यशास्त्रे पदे पदे लोकचिन्तनं समाहितम्प्रतिभाति। इदं चिन्तनं काव्यशास्त्रीयलोकचिन्तनमित्यभिधीयते।

*

IA & P-11

गुणसङ्घटनासम्बन्धविमर्शः

डॉ. श्रीनिवास ओझा, वाराणसी

काव्यमार्गे ध्वनितत्त्वस्यास्तित्वं प्राधान्यं च दर्शयितुम् आनन्दवर्धनेन विहितो युक्त्युपन्यासो ध्वन्यालोकाख्यग्रन्थरूपेण परिणतः। काव्यस्वरूपनिर्णये विहितप्रयत्नानां पूर्वेषामाचार्याणां सिद्धान्ता असम्बद्धा उपेक्षिता वा न स्युरिति तैर्निर्दिष्टानि तत्त्वानि स्वनिर्दिष्टयुक्तिषु सङ्गमितान्यानन्दवर्धनेन। काव्याङ्गभूतेषु काव्यालङ्करणसाधनभूतेषु वा तत्त्वेषु गुणसङ्घटनेऽपि द्वे तत्त्वे स्तः। ध्वन्यालोके तयोरपि स्वरूपमुपादेयत्वं च निर्णीतम्। रसध्वनिदृष्ट्या तत्र गुणसङ्घटनयोर्व्यतिरेकः सङ्घटनायाश्च गुणपारतन्त्र्यं निर्धारितम्। गुणाः रसधर्माः, सङ्घटना च गुणानां व्यञ्जिकेत्यानन्दवर्धनस्य मतम्। परं ये काव्ये रसस्य प्राधान्यं न स्वीकुर्वन्ति, अपितु शब्दार्थयोरेव प्राधान्यं स्वीकुर्वन्ति तेषां भामहोद्भटवामनादीनां दृष्ट्या दौ पक्षौ निर्धारितौ। गुणसङ्घटन-योरैक्यमित्येकः पक्षः, सङ्घटनाश्रया गुणा इति द्वितीयः पक्षः। अनयोर्द्वयोः पक्षयोरपि वक्तृवाच्यौचित्यनिबन्धनं रसव्यञ्जकत्वं सङ्घटनाया अस्तीति प्रदर्शितमानन्दवर्धनेन।

*

IA & P-12

भारतीयपाश्चात्त्ययोः काव्यसिद्धान्तेषु साम्यवैषम्यञ्च

अरुणेश्वर झा, कपिस्थल

''काव्यलक्षणमधिकृत्य क्रियतेऽध्ययनं येषां सिद्धान्तानां ते 'काव्यसिद्धान्तः' इत्युच्यते। 'यथा भारतीयालङ्कारिकैः काव्यसिद्धान्तः प्रतिपादितः तथैव पाश्चात्यालङ्कारिकैः प्रतिपादितो वा?' इत्यनेन प्रश्नेन सह अत्र विमर्शः क्रियते। तत्र सर्वप्रथमः टामस-स्टर्न्स-एलियटेन कृतं मूर्तविधानं तस्य च

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भारतीयरससिद्धान्तस्य विभावनव्यापारेण सह विवेचनम्। ततः रिचार्ड्स महोदयेन द्विविधा काव्यभाषाऽङ्गीकृता, तस्य साम्यं भामहेनाङ्गीकृतद्विविधाकाव्यभाषया सह विवेचनम्। एलियटस्य मुख्यकाव्यप्रयोजनम् 'आनन्दप्राप्तिरेव' इत्यनेन सह मम्मटप्रतिपादितकाव्यप्रयोजनमानन्दमिति विवेचनम्। पश्चाद्वेनदेत्तोक्रोचेप्रतिपादित 'इन्ट्यूशन' इत्यनेन सह महर्षि-अरविन्दस्य 'अन्तःप्रज्ञा', तस्य चाभिव्यञ्जना कुन्तकस्य वक्रोक्तेः सह विवेचनम्। कार्लाइलस्य मतं तु शौद्धोदन्याः मतेन सह विवेचनम्। एम्ब्रेन्सेन कविकर्मविषये यथोक्तम्। तस्यानन्दवर्धनमतेन सह विवेचनम्। विलयमवर्ड्सवर्थस्यं मतेन सह वाल्मीकिमतविवेचनम्। अरस्तूमहोदयेन 'अनुकरणं त्रिविधम्' यत् प्रतिपादितम् तस्यं मुनिभरंतमतेन सह विवेचनम्। तस्य च काव्यदोषेण सह आनन्दवर्धनमतविवेचनम्। पुनः कविविषयेऽपि तन्मतेन सह मम्मटाभिमतविवेचनम्। इत्यलम् विस्तरेण।''

❋

IA & P-13

चमत्कारतत्त्वं चमत्कारसम्प्रदायश्च

प्रो. रामप्रतापः पूर्वाचार्यः, जम्मू

चमत्कारतत्त्वम् :

चमत्कारत्वरूपजातिविशिष्टं चमत्कारतत्त्वमेकं लोकोत्तरं तत्त्वं विद्यते यथोक्तं पण्डितराजजगन्नाथेन स्वीये रसगङ्गाधरग्रन्थे—लोकोत्तरत्वञ्चाह्लादगतश्चमत्कारत्वापरपर्यायोऽनुभवसाक्षिको जातिविशेषः (प्रथमानने काव्यलक्षणप्रसङ्गः)। इदं हि चमत्कारतत्त्वं सर्वविधेषु काव्येषु नाट्येषु च मणिसूत्रन्यायेनावतिष्ठते। अस्य लक्षणं हेतुश्चाधस्तात् प्रोच्येते—

चमत्करोति यः काव्ये चमत्कारः स उच्यते।
चमतोऽपरपर्यायश्चाकचक्यं निगद्यते॥ 1॥

चमत्कारात्तु काव्ये यच्चाकचक्यं प्रजायते।
भवन्ति तेन दीप्तानि चेतांसि वासनावताम्॥ 2॥

चितिरूपश्चमत्कारः सत्त्वोद्रेकसमन्वितः।
चित्तं दीपयति क्षिप्रं कृष्णमेघं तडिद् यथा॥ 3॥

विस्मयोऽसौ चमत्कारश्चमत्कारोऽद्भुतो रसः।
चमत्काराच्चमत्कारी चमत्कारः स जायते॥ 4॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रसादीनां विभावादिः कारणं प्रोच्यते बुधैः।
रसादिगतमौचित्यं हेतुरुक्तं चमत्कृतेः॥ 5॥

चमत्कारसम्प्रदायः

वस्तुतस्तु चमत्कार एव एतादृशं विशिष्टं तत्त्वं सर्वेष्वलङ्कारादिषु येनावच्छिन्नं शब्दार्थोभयशरीरभूतं काव्यं काव्यं जायते। चमत्काराभावे तु काव्यस्य काव्यत्वमेव नास्ति यथोक्तं क्षेमेन्द्रेण—न हि चमत्कारविरहितस्य कवेः कवित्वं काव्यस्य वा काव्यत्वम् (कविकण्ठाभरणम् 3, 1 वृत्तिः)। चमत्कारसम्प्रदायविषये परिकरश्लोकभूता इमाः कारिका अत्रोपस्थाप्यन्ते—

औचित्यजचमत्कारः काव्यात्मा यः प्रकीर्तितः।
काव्ये तस्य निवेशस्तु कर्म प्रोक्तं महाकवेः॥ 6॥

चमत्कारात्मके काव्ये तदङ्गानि रसादयः।
अङ्गीभूयोपकुर्वन्ति पुष्णन्ति तं च सर्वदा॥ 7॥

रसे सारश्चमत्कारो रीतौ सारश्चमत्कृतिः।
ध्वनौ सारश्चमत्कारः सोऽलङ्कारेऽपि वर्तते॥ 8॥

यथा वद्योनदाः सर्वे गच्छन्ति सागरं प्रति।
निखिलाः सम्प्रदायास्ते चमत्कारं तथा गताः॥ 9॥

सर्वेषां सम्प्रदायानां येनास्ति सम्प्रदायता।
चमत्कारः कथं सोऽयं सम्प्रदायो न कथ्यते॥ 10॥

काव्यस्यात्मा चमत्कारः काव्यसारश्चमत्कृतिः।
लोकोत्तरमिदं तत्त्वं काव्ये कथमुपेक्ष्यते॥ 11॥

*

IA & P-14

भारतीय-सौन्दर्यशास्त्र-काव्यशास्त्र-समीक्षणम्

प्रो. हरिदत्त शर्मा, इलाहाबाद

शब्दब्रह्म सनातनं न विदितं शास्त्रैः क्वचित् केनचित्।
तद्देवी हि सरस्वती स्वयमभूत् काश्मीरदेशे पुमान्॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नूनं काश्मीरभूमिरेव नैकेषां संस्कृत-साहित्यशास्त्रिणामाचार्याणां जन्मभूमिः कर्मभूमिश्च, तथैव संस्कृत-साहित्यशास्त्रस्य विवेचनभूमिः, पल्लवनभूमिश्च। भारते प्रायेण त्रिसहस्रवर्षात्मकः कालः सौन्दर्यशास्त्रकाव्यशास्त्रयोः विकासकालः। पौराणिक-महाकाव्यादिग्रन्थेषु प्ररूढो नाट्यशास्त्र-काव्यशास्त्र-बीजाङ्कुर अद्यावधि पल्लव-पुष्प-फलतामापन्नो दरीदृश्यते। काव्यलक्षण-काव्यप्रयोजन-काव्यहेतु-काव्यभेद-शब्दशक्ति-रस-भाव-गुण-दोषालङ्कारादिविविधविषयेषु आचार्यैर्यद् व्याख्यातं तदेव सर्वं काव्यसर्जनादारभ्य काव्यास्वादपर्यन्तं साहित्यशास्त्रविचारसारम्। काव्यात्मतत्त्व-विचारणायां रसालङ्काररीति-ध्वनि-वक्रौक्त्यौचित्यादयः ये सिद्धान्ता आचार्यैः प्रवर्तितास्तेषु कर्तव्यः कथञ्चाङ्गीकार्यः श्रेष्ठत्वेनेति विचारपरम्परा प्रचलिता सर्वदैव। मध्यकाले कविशिक्षासम्प्रदायोऽपि प्रादुर्बभूव, छन्दःशास्त्रग्रन्था अपि विलिखिताः। पण्डितराजोन्तरकालेऽपि संस्कृत-काव्यशास्त्र-लेखनपरम्परा अविच्छिन्नरूपेण प्रवर्तिता। आधुनिककाले नवयुगबोधानुसारं संस्कृतकवितायाः स्वरूपं परिवर्तितम्। काव्यक्षेत्रे नवनवा भावाः प्रविष्टाः, ततस्तदनुसारं काव्यनिकषायमाणानां काव्यशास्त्रीयाणां मानदण्डानामपि नवोन्मेष अभिनवकाव्यशास्त्रक्षेत्रे जागर्ति। लक्ष्यग्रन्थानामान्तर-बाह्यस्वरूपपरिवर्तनमिव लक्षणग्रन्थेष्वपि तथ्य-कथ्य-परिवर्तनं दरीदृश्यते। पाश्चात्य-काव्य-समीक्षा-सिद्धान्तैः सह तुलनात्मिका दृष्टिरपि प्राबल्येन प्रवृत्ता। नैकैराधुनिकैः काव्यसमीक्षकैर्नवदृशा नवाः काव्यसमीक्षासिद्धान्ताः पर्यालोच्यन्ते, नवप्रयोगाः पर्यवेक्ष्यन्ते च। भारतीयसौन्दर्यशास्त्रस्य संस्कृत-काव्यशास्त्रस्य च विलासः सम्प्रति नववैश्विकपरिप्रेक्ष्ये सञ्जायते।

*

IA & P-15

गीतगिरीशम् : एक परिचय

डॉ. शालिमा तबस्सुम, अल्मोड़ा

रामभट्ट अथवा रामजित भट्ट द्वारा रचित 'गीतगिरीशम्' संस्कृत वाङ्मय का एक सशक्त, सुप्रमाणित राग काव्य है काव्य में बारह सर्ग हैं। काव्य का प्रारंभ मंगलाचरण से करते हुए बड़ी श्रद्धा एवं आदरभाव से कवि के द्वारा श्रीहर्ष, कालिदास इत्यादि कवियों को स्मरण किया गया है। इसके पश्चात् विघ्नहारी गणेश जी की वन्दना में एक गीत लिखा गया है, तदनन्तर भगवान् के विराट् स्वरूप अष्टमूर्ति का वर्णन करते हुए कौतूहलकारी पद्धति के द्वारा कवि के द्वारा काव्य की कथा का सूत्रपात किया गया है।

यद्यपि कवि के द्वारा स्वयं स्वीकार किया गया है कि जयदेव के गीतगोविन्द का अनुकरण करके यह रागकाव्य लिखा गया है तथापि अनुकरणात्मक होते हुए भी सर्वथा मौलिक भावनाओं एवं कोमलकान्त पदावली से ओत-प्रोत गीत गिरीशम् एक रागकाव्य है। रागकाव्यों के विषय में मान्य

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

परम्परा है कि ऐसे काव्यों में कथा की योजना बहुत अल्प होती है, भावों की उद्भावना में ही उनका विस्तार होता है, प्रणय के वियोग में उनका आदि-अन्त होता है। रामभट्ट द्वारा इसी परम्परा का पालन किया गया है। प्रस्तुत कृति में प्रणयबद्ध शिव-पार्वती के वियोग एवं संयोग की घटनाएं, आलम्बन, उद्दीपन के रूप में ऋतुवर्णन तथा शिव-पार्वती, गंगा दो सखियाँ जया एवं विजया ये पाँच पात्र हैं। प्रत्येक सर्ग के अन्त में शिव-पार्वती के प्रेम-व्यवहार की किसी न किसी घटना का चामत्कारिक वर्णन कवि के आशीर्वचन के रूप में हुआ है।

गीतगिरीशम् यद्यपि एक गीतकाव्य है फिर भी प्रबन्ध काव्य के समान इस काव्य का कथानक एक सूत्र में आबद्ध है। काव्य में रस, छन्द एवं अलंकारों का कुशलता से प्रयोग किया गया है। रसों में प्रमुख रस विप्रलम्भ शृंगार है, शार्दूलविक्रीडितम् छन्द कवि का प्रिय छन्द है इसके पश्चात् शिखरिणी छन्द का काव्य में अधिक प्रयोग किया गया है। अलंकारों में सर्वाधिक सांगरूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है। रागकाव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कवि व्याकरण-शास्त्र के अच्छे ज्ञाता है क्योंकि काव्य में व्याकरण-प्रत्ययों से निर्मित सौरी, हैमवती, नैत्य इत्यादि-इत्यादि तद्धित प्रत्ययान्त शब्दों का बड़ी कुशलता से प्रयोग किया गया है।

प्रस्तुत काव्य देवकाव्य की कोटि में आता है परन्तु कथा-वर्णन में कवि कहीं-कहीं पर इतना भावुक हो गया है कि अधिकांश स्थल ऐसे प्रतीत होते हैं मानो कोई साधारण नर काव्य हो। काव्य के प्रत्येक गीत में मानव मन की विभिन्न भावनाएं बड़ी शिष्टता और सजगता के साथ प्रकट की गयी हैं। निष्कर्षतः गीतगिरीशम् की कथावस्तु को पढ़ने से प्रतीत होता है कि कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। काव्य के प्रत्येक सर्ग का वर्णन मन को रसासिक्त कर देता है। इस प्रकार भाव एवं कला समस्त दृष्टियों से गीतगिरीशम् कवि की सफल कृति है।

*

IA & P-16

रस स्वरूप विमर्श

गोविन्द कुमार मिश्र, वाराणसी

भारतीय आलोचना का अत्यन्त समृद्ध एवं उन्नत पद है—'रस', जिसे काव्य का जीवातुभूत (प्राणस्वरूप) स्वीकार किया गया है। रसवादी आचार्यों ने 'रसः आत्मा तु काव्यस्य' अथवा 'काव्यस्यात्मा रसः' आदि साधुसूक्तियों की प्रतिष्ठा की है। 'रस-आस्वादन-स्नेहनयोः' धातु से रस शब्द निष्पन्न होता है। रस्यते आस्वाद्यते इति रसः, रस्यन्ते आस्वाद्यन्ते इति रसः आदि व्युत्पत्तियां प्राचीन भारतीय कोशों में मिलती हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भारतीय आलोचना में आचार्य 'भरत' प्रथम रसाचार्य माने जाते हैं। उनका रस सूत्र प्रसिद्ध है—तत्र विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः। इसी सूत्र को लेकर ही बाद के आलोचकों ने रस-स्वरूप का विमर्शन किया है। वासना रूप में विद्यमान स्थाई भाव, विभाव, अनुभाव एवं संचारियों की सहायता से रस दशा को प्राप्त करते हैं।

प्रस्तुत शोध-निबन्ध में रस शब्द की व्युत्पत्ति, स्वरूप, लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक तथा अभिनवगुप्तादि की दृष्टि से 'रस' की आलोचना, समीक्षा कर 'काव्य में रस की आवश्यकता' का प्रतिपादन किया गया है।

*

IA & P-17

सितारों के आगे यह कैसा जहान् है

जितेन्द्र महाजन, पंजाब

1. प्रकृति विकृति से विकृति की ओर।
2. सृष्टि का क्रमिक विकास।
3. विश्व विकास का प्रारम्भिक रूप।
4. सूक्ष्म शरीर में सहद का निर्माण।
5. सूक्ष्म शरीर में शरीरस्थ तरंगों का आवागमन।
6. विभिन्न तरंगों का स्थूल रूप होकर पिण्ड बनना।
7. अर्ध चक्राकार गति का बनना।
8. आकाश गंगा से तारों का प्रादुर्भाव होना।
9. बन्धन रहित तारे (तारा मण्डल में)
10. बन्धन रहित आकाश उत्तरी ध्रुव में (Boundless sky in North Pole)
11. अंतरिक्ष में छिटकती विभिन्न प्रकार की तरंगें।
12. चक्राकार ऊर्जा का ठोस में परिवर्तन होने की प्रक्रिया।
13. पिण्ड रूप में घटित होना।
14. तारक मण्डल।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

15. पिण्ड का ठोस रूप लेना।
16. भ्रमर ग्रह में प्रवेश होना।
17. पिण्ड की सूक्ष्म अवस्था।
18. पिण्डों की श्ररणं में अलग-अलग होना।
19. निहारिका समुद्र।
20. अणुओं के गुच्छों से बना विशाल पिण्ड।
21. निहारिका से छटकते पिण्ड।
22. पिण्डी की चक्राकार गति।
23. अंतरिक्ष तरंगें।
24. पिण्ड में परमाणुविक परिक्रमा।
25. विश्व में धीरे-धीरे क्रमशः विकसित होने का स्वरूप।
26. सप्त स्त्रोम।
27. निहारिका अर्षवे (वेद अध्मर्षण)।
28. संवत्सर।
29. कृष्ण पिण्ड (अज्योति)।
30. मेराभोरा फिकल यंगर रूप में परिवर्तन।

*

IA & P-18

आनन्दवर्धनकृत औचित्य-विचार

कु. आभा शुक्ला, लखनऊ

आचार्य आनन्दवर्धन ने '**ध्वन्यालोक**' में औचित्य तत्त्व का सर्वाधिक महत्व प्रतिपादन किया है। यूँ तो आचार्य क्षेमेन्द्र ने '**औचित्य**' की सर्वाधिक उपादेयता प्रतिपादित की है, जिसका मूल आनन्दवर्धन के औचित्य विचार में देखा गया है।

आनन्दवर्धन ने रसनिबंधन में औचित्य पर बहुत बल दिया है। इनके अनुसार औचित्य का आश्रय लेकर ही रचना सर्वत्र सुशोभित होती है। इसी प्रकार रसाभिव्यञ्जना के विषय में भी आचार्य ने कहा है कि ''सर्गबंध काव्य में'' औचित्य रस के अनुसार होना चाहिये तभी वह अपनी उपादेयता

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

को प्रतिपादित कर सकता है। आनन्दवर्धन ने विभावौचित्य पर विचार करते हुए श्रृंगार रस चित्रण में प्रकृत्यौचित्य को महत्वपूर्ण माना है। इन्होंने प्रकृति के औचित्य और अनौचित्य की अत्यन्त विवेक की सीमा के अन्तर्गत स्थापित कर औचित्य का मार्ग यत्र-तत्र सभी के लिए खोल दिया है।

स्पष्ट है कि औचित्य सिद्धान्त के व्यापक काव्य तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित होने में आनन्दवर्धन के विचार का पर्याप्त महत्त्व है।

प्रस्तुत शोध पत्र में मैं आनन्दवर्धन के औचित्य सम्बन्धी विचारों को प्रस्तुत करने का किञ्चित प्रयास करूँगी।

*

IA & P-19

काव्य का स्वरूप एवं आनन्दवर्धन

डॉ. दीपा अग्रवाल, इलाहाबाद

ध्वनि सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में काव्य के सामान्य तथा विशेष- दोनों लक्षणों को प्रस्तुत किया है। अमरकोश मे आत्मा शब्द यत्न, बुद्धि, धृति, स्वभाव, ब्रह्म तथा शरीर अर्थ में आया है - **'आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्म वर्ष्म च।'** नानार्थ वर्ग। **'काव्यस्यात्मा ध्वनिः'** - ध्वनि काव्य की आत्मा अर्थात् स्वरूप या स्वभाव है। और ध्वनि का अर्थ है व्यञ्जकता-ध्वन्यतेऽनेनेति ध्वनिः। आनन्दवर्धन ने ध्वनि शब्द का व्युत्पत्तिपरक एवं प्रवृत्तिपरक दोनों अर्थ किया है। ध्वनि शब्द का व्युत्पत्तिनिमित्तक अर्थ है **ध्वन्यतेऽनेनेति ध्वनिः** अर्थात् व्यंजक तथाप्रवृत्तिनिमित्तक अर्थ है- व्यङ्ग्यार्थ को प्रधान रूप से व्यक्त करने वाला काव्य विशेष। व्यङ्ग्यप्राधान्ये हि ध्वनिः। **'व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।'** आनन्दवर्धन ने व्यञ्जकता को ही काव्य का स्वरूप मानते हुए काव्य के केवल दो भेद स्वीकार किए। प्रथम ध्वनिकाव्य जहाँ त्रिविध व्यङ्ग्यार्थ की प्रधानता होती है तथा गुणीभूतव्यङ्ग्य जहाँ व्यंग्य वाच्यानुगामी, वाच्यसमकक्ष या वाच्य से अवर होता है। इसी कारण आनन्दवर्धन ने व्यङ्ग्यानुप्राणित वाच्यार्थ को भी सहृदयश्लाघ्य काव्य की आत्मा कहा है। रीति, अलङ्कार, वक्रोक्ति सभी मूलतः वाणी की विच्छितियाँ हैं। अतः सभी के उचित स्थान को निर्धारित किया। **'आलोकार्थी यथा दीपशिखायां यत्नवाञ्जनः'** के द्वारा व्यङ्ग्यार्थ प्रतीति के लिए विशिष्ट-पद-रचना, वैदग्ध्यभंगीभणिति स्वरूपावक्रोक्ति, शब्दालंकार, अर्थालंकार, सभी का काव्य में विशेष महत्त्व है- पद-रचना, वैदग्ध्यभंगीभणिति स्वरूपावक्रोक्ति, शब्दालंकार, अर्थालंकार, सभी का काव्य में विशेष महत्त्व है- इसे प्रतिपादित किया।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ध्वनि को काव्य का स्वरूप या स्वभाव मानकर आनन्दवर्धन ने कविप्रतिभा के साथ उसके अविनाभाव सम्बन्ध तथा लोकातिशायिनी कवित्वशक्ति को ही **कवित्व** तथा **महाकवित्व** का मूल कारण मान है।

लोक में भी ध्वनि सहज या कृत्रिम मनुष्य, पशु, पक्षी, नदी आदि की अनेकानेक ध्वनियां शिष्टार्थ की सूचक होती है। इसे सभी आचार्य स्वीकार करते हैं। किसी भी ध्वनि का वह शिष्टार्थ अप्रस्तुत, प्रतीयमान, द्योतित व्यङ्ग्य ही है। आस्वादनीयता या रसत्व को प्रारम्भ से ही सभी आचार्य स्वीकार करते हैं। आचार्य भरत ने दृश्यकाव्य के वर्णन द्वारा अभिनयरंगमंचप्रकाशादि के द्वारा अनेक प्रकार की व्यङ्ग्यकता का संकेत नाट्यशास्त्र में किया है। आनन्दवर्धन का ध्वनि सिद्धान्त तथा **काव्यस्यात्माध्वनिः** काव्य के सामान्य एवं विशेष दोनों प्रकार के काव्य लक्षण को प्रस्तुत करता हुआ समस्त काव्य वैमत्य को अपने में समाहित करता है तथा सभी को काव्य के अनिवार्य घटक रूप में मान्यता देता है। प्रस्तुत शोध पत्र इसी के विशेष विवेचन से सम्बन्द्ध है।

❋

IA & P-20

काव्य हेतु : प्राचीन व अर्वाचीन दृष्टि डॉ. ब्रह्मानन्द शर्मा के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. डॉली जैन, राजस्थान

डॉ. शर्मा ने काव्यहेतु निर्धारण में अपनी मौलिक चिन्तना प्रकट की है। इन्होंने काव्य हेतुओं की संख्या दो स्वीकार की है- शक्ति और श्रम।

शक्तिः श्रमश्च काव्यस्य कारणमिति मे मतिः।
शक्तिरत्र प्रधाना स्यात् श्रमस्याप्युपयोगिता॥ -काव्यसत्यालोकः 5/68

शक्ति श्रम की दिशा निर्धारिका है। साथ ही श्रम के परिणाम में भी इसका योग है। इतना होने पर भी शक्ति का श्रम के माध्यम से ही परिस्फुरण होता है। अतः श्रम उपेक्षणीय नहीं है। अत्रायं हेतुर्यच्छक्तिर्न हि केवलं श्रमस्य दिशानिर्धारिणी अपितु श्रमपरिणामेऽप्यस्या योगः सत्यप्येवमस्याः शक्तेः श्रममाध्यमेनैव परिस्फुरणमिति श्रमस्यानुपेक्षणीयता॥ -काव्यसत्यालोकः, पृ. 75

इस प्रकार डॉ. शर्मा ने व्युत्पत्ति नामक हेतु को पृथक् रूपेण नहीं माना है। श्रम नामक हेतु में अभ्यास और निपुणता या व्युत्पत्ति पद का स्वतः ही अन्तर्भाव हो जाता है

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IA & P-21

मधुपर्णी में लालित्य विधान

डॉ. सुशीलकुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु', सुलतानपुर

लालित्य का आशय है प्रियता, लावण्य, सौन्दर्य तथा माधुर्य। लालित्य के समुचित सन्निवेश से कविता उसी प्रकार अलंकृत हो जाती है जिस प्रकार आभूषणों के प्रयोग से वनिता सुभूषित होकर सहृदय का मन आकृष्ट कर लेती है। दण्डी की प्रतिष्ठा उनके पदलालित्य पर ही अवलम्बित है। लालित्य के आधान से काव्य का आन्तरिक एवं बहिरंग पक्ष चमत्कृत हो उठते हैं। वस्तुतः काव्य सौन्दर्य का प्राण लालित्य ही है। काव्य लालित्य के बाह्य पक्ष में वर्ण तथा पदगत लालित्य होते हैं तथा आन्तरिक पक्ष में अनेक प्रकार के लालित्य होते हैं। यथा भाव, प्राकृतिक, नाद तथा मनोविज्ञान परक लालित्य आदि। पूर्व कुलपति त्रिवेणी कवि अभिराज डॉ0 राजेन्द्र मिश्र की काव्य कीर्ति भारतीय मनीषा की उत्कृष्ठ धरोहर है। उनकी अनेकानेक कृतियों में 'मधुपर्णी' का विशिष्ट स्थान है। 'मधुपर्णी' का वर्णगत लालित्य मनाकहर, पदगत लालित्य चित्ताकर्षक, तथा भावगत लालित्य विलक्षण मूर्तिमन्त प्रभावोत्पादक है। प्राकृतिक लालित्य सजीव, सुबोध, यथार्थपरक तथा नादगत लालित्य कर्णप्रिय है। मधुपर्णी का मनोविज्ञान परक लालित्य सूक्ष्म मानवीय सम्वेदनाओं का अद्भुत कोश है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुतिकार ने भोगा हुआ यथार्थ लिखा ही है साथ ही जहाँ कल्पना का समावेश किया है वे स्थल भी मानव-वृत्तियों के अनुकूल हैं। मधुपर्णी का अलंकारगत लालित्य कथ्य को सुरूप बनाने में सर्वथा सफल है। कृति का लालित्य विधान औचित्य के निष्कर्ष पर खरा उतरता है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मधुपर्णी का लालित्य विधान उसकी काव्य कला की उत्कृष्टता का परिचायक है।

*

IA & P-22

लहरीदशकम् में उपमा अलंकार विषयक सौन्दर्य विधान

समीर कुमार पाण्डेय, सुल्तानपुर

आधुनिक युग के प्रसिद्ध संस्कृत नाट्याचार्य, विख्यात कवि, प्रसिद्ध समालोचक तथा विविध पुरस्कारों से समलंकृत प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी (सागर विश्वविद्यालय) की कुशल काव्यकृति 'लहरीदशकम्' उपमा अलङ्कार विषयक सौन्दर्य विधान सौन्दर्य विधान का अद्भुत निधान है। कारयित्रि तथा भावयित्री प्रतिभा के धनी कविकुलरत्न प्रो० राधावल्लभ जी उपमाओं के चयन में अपनी विचक्षणता तथा विलक्षणता का भरपूर परिचय देते हैं। लहरीदशकम् की उपमायें प्राकृतिक सौन्दर्य

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jaipur. Digitized by S3 Foundation USA

से मण्डित तथा भावगत लालित्य से समलङ्कृत हैं। उनमें मात्र अलङ्कार का ही पुट ही नहीं प्रत्युत सर्वत्रजीवन्तता एवं मौलिकता है। उनमें जीवन-बोध के साथ ही कलिता कल्पना का ललित वितान भी है। ये उपमायें दूर की कौड़ी नहीं प्रत्यत् सर्वत्रजीवन्तता एवं मौलिकता है। उनमें जीवन-बोध के साथ ही कलिता कल्पना का ललित वितान भी है। ये उपमायें दूर की कौड़ी नहीं प्रत्युत् जीवन का भोगा हुआ यथार्थ भी हैं। उदाहरणार्थ भीषण वर्षा के आघात को वृक्ष उसी प्रकार सहते हैं जिस प्रकार सज्जन दुष्ट के प्रहार को झेलते हैं। वसन्त जाल में फँसी हुई मछली के उसी प्रकार लटका है जैसे त्रिशङ्कु आकाश में लटके हुये थे। त्रिशङ्कु एक पौराणिक पात्र हैं। कवि ने पौराणिक पात्रों को उपमा के माध्यम से सुन्दर रीति, आधुनिक सन्दर्भों में प्रस्तुत किया है। आज के वैज्ञानिकीकरण तथा आधुनिकीकरण की पृष्ठभूमि में बसन्त की प्रतीति बड़ी कठिनाई से हो रही है जिस प्रकार शब्द स्मृति तक आते-आते (प्रायः) विलीन हो जाते हैं और चित्त के किसी कोने में तड़पते रहते हैं या जैसे कवि के मन में कविता का अङ्कुर उगता है फिर नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार की अनेक सम्वेदनात्मक उपमाओं का आलोच्य कृति में समावेश है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि लहरीदशकम् में उपमा अलङ्कार विषयक सौन्दर्य-विधान विशद् प्रशस्त एवं प्राञ्जल हैं जो सहृदयों को बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं।

*

IA & P-23

पंचकुल्या में गुण-विधान

डॉ. बीना सिंह, गोण्डा

जिस तरह मानव अपने गुणों के कारण उत्तम माना जाता है उसी प्रकार काव्यगुणों के कारण काव्य उदात्त माना जाता है। काव्यशास्त्रियों ने काव्यगुणों की विस्तार से मीमांसा की है। अन्ततः तीन गुण प्रमुख माने गये - माधुर्य, ओज तथा प्रसाद। गुणों का आधिक्य पाठक को रचना की प्रशंसा करने के लिये विवश कर देता है। पूर्व कुलपति त्रिवेणी कवि अभिराज डॉ० राजेन्द्र मिश्र की अनेक सुप्रतिष्ठित संस्कृत रचनायें प्रकाशित हैं। डॉ० राजेन्द्र मिश्र जब उदयन विश्वविद्यालय डेनपसोर बाली अभ्यागत आचार्य के रूप में गये थे तब उन्होंने अपने यात्रा वृतान्त के रूप में 'विमानयात्राशतकम्' 'बाली प्रत्यभिज्ञानशतकम्' तथा 'यवद्वीप साहित्यशतकम्' लिखा था। आपने संस्कृत-कीर्ति-कीर्तन के रूप में 'देववाणीहुंकारशतकम्' तथा 'संस्कृतशतकम्' लिखा था। इन्हीं पाँच शतकों का संग्रह है 'पंचकुल्या'। पंचकुल्या का गुण विधान सरस, सरल तथा प्रांजल है। प्रसाद गुण का क्या कहना? पाठक प्रसाद गुण से इतना मन्त्रमुग्ध हो जाता है कि वह प्रसन्नता का अनुभव करने लगता है। प्रतीत होता है कि मानो वह भी यात्रा में सहभागी हो। ऐसे स्थलों पर वर्ण तथा पद यचन चमत्कारी तो

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हैं, भाव विन्यास अद्‌भुत है। माधुर्य गुण की पराकाष्ठा अनेकशः है। माधुर्य गुण विषयक नादात्मक रणरणकता से पाठक प्रफुल्ल हो उठता है तथा मनोहारी मनोभाव हृदय को संस्पर्श करने लगते हैं। इस कृति में ओज गुण अल्प परिमाण में विद्यमान है। निष्कर्ष रूप में पञ्चकुल्या का गुण विधान आकर्षक है।

*

IA & P-24

रघुवंश में करुण रस : एक विवेचनापरक समीक्षा

सुनील कुमार विश्वकर्मा, इलाहाबाद

काव्य के प्राण तत्व के रूप में रस की महत्ता सुविदित है। विश्वनाथ कविराज तो यहाँ तक कहते हैं कि 'रसात्मकं वाक्यं काव्यम्' दूसरे शब्दों में यदि वाक्य में रस नहीं है तो वह काव्य कहलाने का अधिकारी नहीं होता। रस आनन्दस्वरूप है यही कारण है भारतीय मनीषा ने रस तत्व की विशद्, विस्तृत तथा गम्भीर विवेचना की है। नौ काव्य रसों में करुण रस की उत्पत्ति शोक, क्लेश, इष्टजन विप्रयोग, तथा विभव नाश आदि के द्वारा होती है। कविकुलगुरु का कीर्तिकेतु रघुवंश अद्‌भुत महाकाव्य है।

रघुकार कालिदास की सारस्वत महत्ता की इयत्ता का समाकलन करते हुये आलोचकों ने यहाँ तक कह दिया कि 'क इह रघुकारे न रमते' रघुवंश के अनेक स्थलों पर करुण रस प्रभावी उपस्थिति अवलोकनीय है अज विलाप में करुणा का वरुणालय ही प्रवाहित हो उठा है। अज के मुख से विलाप की वेला में फूटने वाले एक एक स्वर तथा व्यञ्जन करुणा की कोख से जन्में हैं। सहृदय पाठक अधिक रोता है कि अज, कह पाना कठिन है। सीता निर्वासन के प्रकरण में करुणा स्वयं क्रन्दन करने लगती है। शोक शोकाकुल होकर सिसकने-फफकने लगता है। सीता को तो छोड़िये उनके दुःख से दुखित होकर मयूर नृत्य विरत हो जाते हैं वृक्ष फूल गिराने के माध्यम से अश्रुपात करने लगते हैं। क्या-क्या गिनाया जाय सारा कानन करुण क्रन्दन कर चीत्कार कर उठा। राजा दशरथ के तीर से मुनिकुमार के प्राण पखेरू के उड़ जाने पर मुनिकुमार के माता-पिता विदीर्ण हृदय से विलाप करने लगते हैं। उनका शोक इतना प्रबल हो उठा कि वे दोनों चिता में भस्म हो जाते हैं। रामराज्य में ब्राह्मण पुत्र की मृत्यु तथा महाराज कुश के देहावसान पर करुण रस सशरीर उपस्थित है जो कालिदास की विलक्षण प्रतिभा का अद्‌भुत परिणाम है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IA & P-25

राजशेखरकृत काव्यमीमांसा में कवि शिक्षण परम्परा

अनीता विश्वकर्मा, लखनऊ

संस्कृत साहित्य में ऐसे ग्रंथ तो दो चार ही हैं जिनमें कवि शिक्षण साक्षात रूप से प्रस्तुत है यह काव्य शास्त्र का व्यवहारिक पक्षी है जो काव्य शास्त्र के अनुशासनात्मक पहलू पर बल देता है।

काव्य सृजन के अत्मुपयोगी सौन्दर्याभिव्यक्ति के लिए विशिष्ट की विशिष्टता के उपार्जन के लिये राजशेखर काव्य मीमांसा में प्रस्तुत शिक्षा का विशेष योगदान है। राजशेखरानुसार कवि शब्द प्रतिभा और व्युत्पत्ति से युक्त माना गया है।

प्रतिभाव्युत्पत्तिमांश्च कवि कविरित्युच्यते।

कवि बनने की सामर्थ्य प्रत्येक व्यक्ति में संभव नहीं होती इसके लिए अदभुत कल्पना शक्ति, सूक्ष्म निरीक्षण में प्रवीणता, स्थिति के संश्लेषण विश्लेषण में सक्षमता, संवेदनशीलता, भावाभिव्यक्ति आदि की कला से परिचित होना आवश्यक है।

प्रतिभा और व्युत्पत्ति से विशिष्ट कवित्व सामर्थ्य शक्ति उदित होती है। इसके सहित चार विद्याओं, चौंसठ उप विद्याओं की निपुणता सहित सृजनों एवं उच्च स्तरीय कवियों का आश्रय, देश-विदेश के समाचार, विद्वानों की सूक्तियों लोकव्यवहार, विद्वद्गोष्ठी और प्राचीन कवियों के प्रबंध का मनन करना कवि बनने परमावश्यक तत्व हैं।

इसके साथ-साथ काव्यार्थ ज्ञान, उचित काव्योपयोगी रहन-सहन तथा आचार-विचार तथा वर्ण्य विषय कवियों के भेद सहित लेखन सामग्री या काव्योपयोगी लेखन सामग्रियों का पूर्ण रूपेण ज्ञान आवश्यक है।

*

IA & P-26

"मधुच्छन्दा" गीतिकाव्य

मधु शर्मा, कोटा

डा० हरिराम आचार्य जी की लेखनी से प्रसूत मधुच्छन्दा गीतिकाव्य सरस और सुमधुर गीतियों का सुन्दर संकलन है। आचार्य जी ने "महर्षि मधुच्छन्दा" को श्रद्धासुमन अर्पित करते हुए

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इस गीतिमालिका को मधुच्छन्दा शीर्षक प्रदान किया है, तथापि मधुर मधुर छन्दों से निर्मित इस कृति का मधुच्छन्दा ही सर्वथा सार्थक नाम है।

प्रस्तुत कृति का वर्ण्यविषय माङ्गल्यम्, राष्ट्रियम्, नवोन्मेषीयम्, ऋतुचक्रीयम्, वैदिकीयम् पर्यावरणीयम्, प्रशस्तिकीयम्, प्राकीर्णकीयम् - इन आठ शीर्षकों एवं 63 उप शीर्षकों में उपनिबद्ध है। विविध विषयक संस्कृत गीतियों में सुगुम्फित प्रस्तुत काव्य में मुख्यतः राष्ट्रियता, सामाजिक यथार्थ, राजनैतिक भ्रष्टाचार, जन चेतना, पर्यावरण चेतना, वैज्ञानिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना, सर्वधर्मसमभाव, विश्वबंधुत्व, लोक संवेदना जैसे सम सामयिक विषय वर्णित हैं। यथास्थान कवि ने भक्ति, नीति, शृंगार जैसे पारम्परिक विषयों का चित्रण भी किया है। तथ्य, कथ्य, शिल्प, वाक्यविन्यास, नादसौन्दर्य आदि सभी दृष्टि से 'मधुच्छन्दा' गीतिकाव्य आधुनिक संस्कृत साहित्य की अद्वितीय रचना है।

प्रस्तुत शोध पत्र में ''मधुच्छन्दा'' गीतिकाव्य की समस्त विशेषताओं का आकलन करते हुए समीक्षा प्रस्तुत की जायेगी।

*

IA & P-27

श्लेषालङ्कार तथा अभिधामूलक ध्वनिः

रितु बाला

भरतमुनि से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक जिस प्रकार श्लेषालङ्कार के लक्षण, भेद तथा उदाहरण के विषय में मतभेद रहा उसी प्रकार रसवादी या ध्वनिवादी आचार्यों का अभिधामूलक ध्वनि के स्वरूप मान्यता एवं उदाहरण के विषय में वैमत्य रहा। इस विषय में अलङ्कारिक आचार्यों ने जो जो समाधान उपस्थित किये उनमें अभी भी कुछ न कुछ विचारणीय है। यही इस शोध पत्र का लक्ष्य है।

श्लेषः- भामह, रुद्रट, वामन रुद्यक, मम्मट इत्यादि सभी आचार्यों ने श्लेष को अलङ्कार के रूप में तो एक मत होकर स्वीकार किया पर साथ ही इसके सभंग और अभंग दो भेद भी निर्विरोध स्वीकार किया पर यह शब्दालङ्कार है या अर्थालङ्कार इस विषय में मतभेद रहा। रुद्यक ने सभङ्ग और अभङ्ग दोनों भेदों को अर्थालङ्कार के प्रकरण में रखा। उद्भट ने सभङ्ग श्लेष को शब्दालङ्कार कहते हुए भी अर्थालङ्कारों में उसकी गणना की है। जिस पर मम्मट ने काव्य प्रकाश के नवम उल्लास में आपत्ति तो की पर उस आपत्ति के समाधान में वह मौन धारण कर गये।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IA & P-28

पण्डितराज जगन्नाथ की औचित्य दृष्टि

वेद प्रकाश डिंडोरिया, होशियारपुर

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल् यस्य यत्।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते॥

(औचित्यविचारचर्चा-7)

आचार्य क्षेमेन्द्र की इस औचित्य विषयक परिकल्पना में 'उचितं प्राहुराचार्याः' यह उक्ति केवल क्षेमेन्द्र पूर्ववर्ती आचार्यों तक ही सीमित नहीं है, अपितु औचित्य विषयक यह अवधारणा क्षेमेन्द्र परवर्ती काव्यशास्त्रियों के लक्षणग्रन्थों में भी पूर्णरूपेण पुष्पित एवं पल्लवित हुयी है।

पण्डितराज जगन्नाथ भी आचार्य आनन्दवर्धन के स्वर में स्वर मिलाकर कहते हैं-

'अनौचित्यं तु रसभङ्गहेतुत्वात्परिहरणीयम्'

अर्थात् अनौचित्य रसभङ्ग का करण होने से काव्य में परिहरणीय है। अनौचित्य का तात्पर्य क्या है? इस विषय में पण्डितराज कहते हैं- जाति, देश, काल, वर्ण, आश्रम, अवस्था, स्वभाव और व्यवहार आदि सांसारिक पदार्थों के विषय में जो लोक एवं शास्त्र में सिद्ध तथा उचित द्रव्य, गुण अथवा क्रिया आदि हैं, उनसे भिन्न होना।

पण्डितराज ने रसगङ्गाधर के प्रथम आनन में देश, काल, वर्ण, आश्रम, अवस्था, प्रकृति एवं व्यवहार विषयक औचित्य की विवेचना की है। परन्तु यह सम्पूर्ण विवेचना रस को काव्य का प्रमुख तत्त्व मानकर ही की गयी है।

*

IA & P-29

वाक्य का लक्षण

राजेन्द्र कुमार वर्मा, होशियारपुर

तर्कभाषा के अनुसार आचार्य केशव मिश्र ने वाक्य का लक्षण इस प्रकार किया है- आकांक्षा, योग्यता तथा सन्निधि वाले पदों का समूह वाक्य होता है। इसलिए गौ, अश्व, पुरुष, हस्ती ये पद (पदसमूह) वाक्य नहीं है; क्योंकि इनमें परस्पर आकाङ्क्षा का अभाव है। 'वह्निना सिञ्चति' 'आग

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

से सींचे' यह पद भी वाक्य नहीं; क्योंकि यहां योग्यता नहीं है। अग्नि तथा सेचन में परस्पर अन्वय की नहीं होती। अभिप्राय यह है कि अग्निना इस तृतीय विभक्ति के द्वारा सेचनरूप कार्य के प्रति अग्नि का करणत्व बतलाया गया है; किन्तु अग्नि तो सेचन का साधन होने योग्य नहीं है। इस प्रकार कार्यकारण भाव रूप सम्बन्ध में अग्नि तथा सेचन की योग्यता न होने से 'अग्नि से सींचे' यह वाक्य नहीं है। इसी प्रकार एक-एक करके पहर-पहर में एक साथ उच्चारित न किये गए 'गाम को लाओ' इत्यादि परद वाक्य नहीं होते, क्योंकि वहां परस्पर आकांक्षा होने पर सन्निधि का अभाव है।

*

IA & P-30

मुक्तक-काव्य एवं गीति-काव्य : तुलनात्मक स्वरूप

डॉ० ताराकान्त शुक्ल, झाड़खण्ड

शास्त्रकारों ने बन्ध अथवा रचना के आधार पर श्रव्यकाव्य को विविध रूप से विभाजित करने का प्रयत्न किया है। इन भेद-निरूपणों में महाकाव्य एवं खण्डकाव्य सर्वमान्य हैं। कुछ शास्त्रकार अलग से मुक्तक-काव्य का भी उल्लेख करते हैं। मुक्तक शब्द के व्युत्पत्तिजन्य अर्थ पर विचार करते हुए आचार्य अभिनवगुप्त ने कहा है मुक्त ये कन् प्रत्यय कहने पर बने मुक्तक के श्लोक अपने आप में पूर्ण अथवा अन्य निरपेक्ष होते हैं- "मुक्तमन्येनालिङ्गितं तस्य संसायां कन्।"

यद्यपि कुछ काव्यशास्त्री काव्यभेद-निरूपण में मुक्तक का उल्लेख भी नहीं करते हैं तो कुछ उसे उपेक्षणीय मानते हैं, परन्तु अनेक काव्यशास्त्री ऐसे भी हैं जो इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं। पाश्चात्य काव्यशास्त्र से प्रभावित हो कर सम्प्रति आलोचनाजगत् में काव्य का एक भेट 'जीति-काव्य' अत्यधिक प्रचलित हो गया है। इस शब्द को संस्कृत-काव्य-शास्त्र के आलोक में देखने परखने का प्रयत्न इस शोध-पत्र में किया गया है।

*

IA & P-31

कालिदासीय विशेषण : औचित्य-विमर्श

डॉ. शशिकान्त राय, चण्डीगढ़

कवि कुलगुरु कालिदास के काव्यों में प्रयुक्त विशेषण विशेष्य पदों की चाहता और रमणीयता को बहुगुणित करते हुए परिलक्षित होते हैं। कवि के विशिष्टार्थ को मर्मस्पर्शी, तलस्पर्शी और सहृदय-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संवेद्य बनाने में इनका श्लाघ्य योगदान है। कालिदास की प्रथम कृति 'ऋतुसंहार' के प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक में सूर्य के विशेषण 'प्रचण्ड' और चन्द्रमा के विशेषण 'स्पृहणीय' इन दोनों पदों के 'उग्र' और मृदु स्वभाव सूर्य के दाहकता और चन्द्रमा के शीतलता गुण को दोनों ही विशेषण सुतराम् अभिव्यंजित करते हैं। इसी कारण यहाँ विशेषणौचित्य है।

कविकुललालाम के खण्डकाव्य 'मेघदूत' के प्रथम श्लोक में 'उदक' के विशेषण रूप में पुण्य विशेषण का उपन्यास भी मार्मिक है। यहाँ कवि ने उत्पत्तिपरिपूता जनकतनया के स्नान से उदक की अतिशय पवित्रता को ध्वनित करने के लिए ही पुण्य विशेषण का प्रयोग किया है। यहाँ विशेषणौचित्य है।

रघुवंश महाकाव्य के प्रथम सर्ग के द्वितीय श्लोक में 'वंशः' का विशेषण 'सूर्यप्रभवः' रघुकुल के तेजोत्कर्ष को प्रख्यापित कर रहा है। उसके सतत विस्तार और प्रविकास को भी द्योतित कर रहा है। इसी प्रकार इसी श्लोक में 'मतिः' का विशेषण 'अल्पविषया' पद भी कवि की अल्पज्ञता, अक्षमता एवं तज्जन्य विनम्रता की अतिशयता प्रभृति गुणों को सहजता से सहृदय-हृदय को हृदयंगम कराने में अपनी समर्थता अभव्यक्त कर रहा है। यहाँ विशेषण में औचिती दर्शन युक्ति युक्त है।

*

IA & P-32

मम्मटकाव्यलक्षणाक्षेपनिराकरणम्

प्रो० रहसविहारी द्विवेदी

'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि----क्वापीत्यनेनैतदाह- यत् सर्वत्र सालङ्कारौ क्वचित्तु स्फुटालङ्कारविरहेऽपि न काव्यत्वहानिः।' काव्यप्रकाशस्यायमंशः प्रायशः काव्यशास्त्रिभिः समुद्धृतम्, क्वचिन्मम्मटमतं प्रस्तोतुं क्वचिच्य खण्डनार्थम्। अस्मिन् काव्यस्वरूपं विश्वनाथ- जयदेव पण्डितराजादीनां काव्यशास्त्रीयग्रन्थेषु-आक्षेपा विदितचरा एव। लक्षणं त्वसाधारणधर्मवचनं भवति तत्र चाव्याप्त्यतिव्यात्यसंभव-दोषसहित्वयमप्यभीक्षितं सुधियाम्। वाग्देवतावतारो मम्मटः किं दोषपूर्णं काव्यस्वरूपं निर्धारितवान् येनात्राक्षेपाः सम्भव्यन्ते? काव्यप्रकाशप्रथमोल्लासस्य मङ्गलपद्यतः- 'तददोषाविंतियावत् साकल्येन कारिकावृत्तिभागावलोकनेन-आक्षेपा वैयर्थ्यं यान्ति।'

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IA & P-33

काव्यात्मा रस पुनरावलोकन

अरविन्द कुमार द्विवेदी, चंडीगढ़

काव्यात्मा का अर्थ-काव्य का सार तत्त्व जिसके माध्यम से सहृदय पाठक अथवा दर्शक को काव्य के प्रमुख प्रयोजन काव्यानंद और रस की प्राप्ति होती है।

आनंदवर्धन के शब्दों में - ''आत्मशब्दस्य तत्त्वशष्देनार्थ-विवृण्वान सारत्वं.....दर्शयति॥'' ध्वन्यालोकलोचन

भारतीय छहों काव्य सिद्धान्तों के प्रवर्तक एवं उनके अनुयायी आचार्यों ने अपने-अपने सिद्धान्तों को काव्यात्मा के रूप में स्वीकार किया है। भामह, दंडी, उदभट, जयदेव, अप्पय दीक्षित, केशवदास, रामदरश मिश्र आदि ने अलंकार को काव्यात्मा के रूप में स्वीकार किया है। वामन ने रीति को, कुंतक ने वक्रोक्ति को आनंदवर्धन ने ध्वनि को, क्षेमेन्द्र ने औचित्य को काव्यात्मा के रूप में स्वीकार किया। लेकिन काव्यात्मा के रूप में जिसको सर्वाधिक समादर मिला वह 'रस' सिद्धान्त है। लेकिन 1950 के बाद लय, छंद, तुक, ताल के आवरण को फाड़कर कविता-कामिनी बाहर आ गई और अपने रसार्द्र रूप को त्यागकर चारूता से अधिक चोट करने लगी। वाक्छल, वाक्प्रपंच, एवं खंडनात्मक दृष्टिकोण प्रबल हो गया। ऐसे में रस का काव्यात्मा के रूप में पूर्व स्वीकृत दृष्टिकोण विखरता नजर आ रहा है। रस अद्वंद्व, समाहित और चेतना का विस्तार करता है जबकि-आज मनुष्य चेतना का विस्तार नहीं बल्कि चेतना से मुक्ति चाहता है। जीवन में समाहित की बजाय द्वन्द्व भरा हुआ है। ऐसे में कविता में तन्मयता की भावना का उदय नहीं हो पाता।

हिन्दी साहित्य में- अज्ञेय, रामविलाश शर्मा, डॉ० जगदीश गुप्त, डॉ० रघुवंश, गिरजाकुमार माथुर आदि ने रस को काव्यात्मा के रूप में अस्वीकृत कर दिया है।

❋

IA & P-34

20वीं शताब्दी के कतिपय काव्यशास्त्रियों की काव्यप्रयोजन विषयक मीमांसा

राजमङ्गल यादव, दिल्ली

किसी विशेष प्रयोजन या उद्देश्य का निर्धारण करके ही मानव किसी कार्य में प्रवृत्त होता है। विद्वानों के द्वारा शास्त्रोक्त यह वचन इसमें प्रमाण है कि ''प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते''

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अत: इस न्याय के अनुसार किसी भी कार्य का सम्पादन निष्प्रयोजित नहीं होता। इसलिए काव्य रचना का भी कोई न कोई प्रयोजन अवश्य होता है। भरतमुनि से लेकर वर्तमान समय तक के समस्त काव्यशास्त्रियों ने काव्य के प्रयोजन पर प्रचुर वैचारिक विष्लेषण प्रस्तुत किया है। 20वीं शताब्दी के भी प्रमुख आचार्यों ने अपनी-अपनी मौलिक कृतियों में काव्यप्रयोजन विषयक अपनी नूतन मौलिक उद्भावनाओं को विवेचित किया है। इस शताब्दी के प्रमुख आचार्यों में हैं- डॉ. ब्रह्मानन्द शर्मा, डॉ. कौत्स अप्पल्ल सोमेश्वर शर्मा, श्री छज्जूराम शास्त्री विद्यासागर, प्रो. शिवजी उपाध्याय, प्रो. रेवा प्रसाद द्विवेदी, प्रो. राधा बल्लभ त्रिपाठी, प्रो. राजेन्द्र मिश्र, प्रो. रहस विहारी द्विवेदी, प्रो. टी. एस नान्दी, प्रो. राम प्रताप बेदालङ्काकार तथा डॉ. शङ्कर देव अवतरे प्रभृति।

डॉ. ब्रह्मानन्द शर्मा ने सुख की प्राप्ति को काव्य का प्रयोजन माना है तथा यश एवं कीर्ति को भी इसी से सम्बद्ध बतलाया है। आचार्य छज्जूराम शास्त्री ने पुरूषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की प्राप्ति को काव्य का प्रयोजन माना है। प्रो. रेवा प्रसाद द्विवेदी ने काव्य प्रयोजन को कवि की दृष्टि से सप्रयोजन एवं निष्प्रयोजन तथा सहृदय की दृष्टि से सदैव सप्रयोजन माना है। उन्होंने मम्मट पतिपादित काव्य के छ: प्रयोजनों के अतिरिक्त युगावश्यकतापूर्ति, स्वधर्मरक्षण और राष्ट्रदेवप्रबोध को भी काव्य का प्रयोजन स्वीकार किया है।

*

IA & P-35

आनन्दवर्धन कृत औचित्य विचार

आभा शुक्ला, लखनऊ

औचित्य के संबंध में आचार्य आनन्दवर्धन की मान्यता है कि रसादि व्यंजन में उपयोगी प्रकारों के भीतर जिस औचित्य को बताया गया है उसका निर्वहन करने पर भी सर्वत्र दोष की स्थिति स्वीकार नहीं की और न ही उन्होंने रसादि के विरूद्ध होने पर भी दोष न कहकर निरोध की संज्ञा दी है।

आनन्दवर्धन ने रसनिबंधन में औचित्य पर बहुत बल दिया इनके अनुसार औचित्य का आश्रय लेकर ही रचना सर्वत्र सुशोभित होती है। इसी प्रकार रसाभिव्यञ्जना के विषय में भी आचार्य ने कहा है कि "सर्गबंध काव्य में औचित्य रस के अनुसार होना चाहिये तभी वह अपनी उपादेयता को प्रतिपादित कर सकता है।" आनन्दवर्धन ने विभावौचित्य पर विचार करते हुए श्रृंगार रस चित्रण में प्रकृत्यौचित्य को महत्वपूर्ण माना है। इन्होंने प्रकृति के औचित्य और अनौचित्य की अत्यन्त विवेक की सीमा के अन्तर्गत स्थापित कर औचित्य का मार्ग यत्र-तत्र सभी के लिए खोल दिया है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्पष्ट है कि औचित्य सिद्धान्त को व्यापक काव्य तत्व के रूप में प्रतिष्ठित करने में आनन्दवर्धन के विचार का पर्याप्त महत्त्व है।

प्रस्तुत शोध पत्र में मैं आनन्दवर्धन के औचित्य संबंधी विचारों को प्रस्तुत करने का किञ्चित् प्रयास करूँगी।

*

IA & P-36

संस्कृतसाहित्यशास्त्र में चमत्कारतत्त्व

लीना केशवानी, काशी

चमत् पूर्वक कृ धातु से भाव में घञ् प्रत्यय करने पर चमत्कार शब्द बनता है, जिसका तात्पर्य चित्तविस्तार रूप है संस्कृतसाहित्यशास्त्र के इतिहास में आचार्यों द्वारा चमत्कार शब्द का प्रयोग कई बार हुआ है कभी साक्षात् तो कभी रमणीयता, आह्लादकता, चारुता इत्यादि पर्यायवाची शब्दों के रूप में। वस्तुतः आचार्यों ने चमत्कार-तत्त्व का अप्रत्यक्ष रूप से स्पर्श तो किया परन्तु उसका उसे उतना महत्व नहीं दिया, परिणामस्वरूप किन्हीं आचार्यों ने अलंकार को मुख्य तत्व माना तो कुछ आचार्यों ने रीति, रस, ध्वनि, वक्रोक्ति, औचित्य इत्यादि को काव्यात्मा कहा। वस्तुतः रस, अलंकारादि समस्त काव्यसामग्री काव्य में सौन्दर्य उत्पन्न करके चमत्कार का ही आस्वाद कराती है। इसी आस्वाद की भावना पर आधारित 'चमत्कारतत्त्व' काव्यशास्त्र का अनिवार्य तत्व है। प्रस्तुत शोधपत्र में इसी 'चमत्कारतत्त्व' के स्वरूप व महत्व का वर्णन किया जायेगा।

*

IA & P-37

ध्वनि सिद्धान्त की वर्तमान प्रासंगिकता

डॉ. ज़मीरपाल कौर, परिमाला

भारतीय काव्यशास्त्र के छः सम्प्रदायों के अंतर्गत ध्वनि सिद्धान्त एक महत्वपूर्ण सम्प्रदाय के रूप में अपनी पहचान रखता है। इस सिद्धांत के संस्थापक आचार्य आनंदवर्धन थे, जो भारतीय काव्य-शास्त्र के इतिहास में एक युग प्रवर्तक आचार्य के तौर पर मान्य हैं। यह सिद्धांत अपनी कुछ विशेष मान्यताओं के कारण संस्कृत काव्यशास्त्र में एक चर्चित सिद्धांत के रूप में प्रचलित रहा है। आचार्य आनन्दवर्धन के पश्चात् इसके समर्थक आचार्य मम्मट, विश्वनाथ, अभिनवगुप्त, जगन्नाथ आदि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

में से मम्मट प्रमुख थे, जिन्होंने अपने ग्रंथ 'काव्य-प्रकाश' द्वारा इस सिद्धांत को पुनः स्थापित किया। इसलिए आचार्य मम्मट को 'ध्वनि प्रतिस्थापक आचार्य' के तौर पर जाना जाता है।

इस सिद्धांत के अंतर्गत ध्वनि का स्वरूप, लक्षण, भेद आदि के साथ, शब्द शक्तियाँ, काव्य के भेद, गुणीभूत व्यंग्य काव्य,चित्र काव्य, ध्वनि का संकर तथा संसृष्टि आदि विभिन्न विषयों के संबंध में विस्तृत चर्चा की गई। जबकि शब्द शक्तियों का निरूपण इस सिद्धांत की प्रमुख उपलब्धि है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि शब्द शक्तियों की यह काल-विजयी संकल्पना किसी भी साहित्यिक कृति के भाषा-शास्त्रीय विवेचन हेतु सामर्थ है तथा यही तथ्य ध्वनि सिद्धांत की व्यापकता तथा वर्तमान प्रासांगिकता का ठोस आधार भी है। प्रस्तावित शोध-पत्र में इन शब्द शक्तियों को आधार बनाते हुए पंजाबी लोक-साहित्य तथा आधुनिक साहित्य में से दो उदाहरण (सैम्पल) चुन कर उनका काव्य-शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा।

*

IA & P-38

पूर्वराग : औचित्य और उपादेयता

डॉ. ए. के. दीक्षित, उन्नाव

श्रृंगार रस की आधारश्रि मन्मथोदमेद ही मानी गई है क्योंकि सम्पूर्ण मानवीय सुखों का समापन काममय होता है। काम की तदवत्ता रति पर निर्भर है। काम और रति का द्वन्द जहाँ एक और लौकिक और व्यवहारिक पक्ष से दाम्पत्य के अद्वैत पक्ष का पोषण करता है वहीं उसका दूसरा पक्ष श्रृंगार रस की अलौकिकता एवं रसनीयता का बीज है। इसीलिए रसशास्त्रियों ने रति को श्रृंगार रस के स्थायीभाव के रूप में सर्वतोभावेन मान्यता दी है। "स्थायीभावो रसः स्मूलः के अनुसार रति ही श्रृंगार है। श्रृंगार के द्विविध पक्ष सम्भोग एवं विप्रलम्भ सम्मिलन और पार्थक्य रूप उभव पक्षों की अनिवार्यता के द्योतक है। समागम के पूर्व भी कुछ ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं जिनमें सहृदय के हृदय में राग संचरण होता है। राम का अंकुरित रूप श्रंगार की यथार्थ मौलिकता है। श्रंगार रस के परिपाक में राग की पूर्वाभिव्यक्ति होना नितान्त स्वाभाविक है। जिस प्रकार उच्च प्रासाद की सुस्थिरता के लिए सुदृढ़ आधारशिला अपेक्षित है उसी प्रकार रसराज श्रंगार के सुदृढ़ परिपाक हेतु पूर्वराग की उपयुक्त रूपरेखा का होना भी अनिवार्य एवं अपरिहार्य है। यद्यपि पूर्वराग श्रंगार के विप्रलम्भ पक्ष का प्रमुख अंग है जो समागम के पूर्व की परिस्थितियों पर आधारित होता है किन्तु समागम की स्थिति को व्यवस्थित रूप देने में पूर्वराग की वही भूमिका है जो सम्पूर्ण शरीर के संचालन में चेतना की होती है। अतः निर्विवाद रूप से यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कि श्रंगार रस की समीचीनता में पूर्वराग का महत्वपूर्ण योगदान है। व्यावहारिक रूप में प्राय: देखा जाता है कि श्रंगार रस की निष्पत्ति बहुत कुछ श्रंगारिक चेष्टाओं और क्रियाकलापों पर निर्भर है। वस्तुत: नायक और नायिका के प्रणय व्यापार जो उन्हें कालान्तर में दाम्पत्य जीवन की सुखद परिणति में पहुँचाते हैं।

पुरुष के अन्त:करण में जागृत अनुराग का अंकुरण कामरूप और स्त्री के अन्त:करण में उदबुद राग रति रूप में स्वीकार किया जाता है। काम और रति का अद्वैत स्वरूप रस मर्मकों की दृष्टि में श्रंगार रस की पदवी पर आरूढ़ हुआ है। अत: श्रंगार के व्यावहारिक पक्ष के रूप में राग को मान्यता मिली वहां दूसरे सैद्धान्तिक पक्ष में स्थायीभाव रति को ही श्रंगार का सर्वस्व माना गया। अस्तु रति के पोषक पूर्वराग का महत्व अक्षुण्ण एवं अपरिहार्य है।

*

IA & P-39

डोगरी महाकाव्य में अलंकार योजना

प्रो. अर्चना केसर, जम्मू

जिस तरह दुल्हन के मुखमण्डल पर्अन्त: प्रसन्नता तो प्रतिबिम्बित होती है किन्तु उसे बाह्य अलंकरणों से जितना सजाया जाए उतना कम होता है ठीक उसी तरह महाकाव्य एक ऐसी महत्त्वपूर्ण एवं वृहत ग्रन्थ होता है जिस के प्रभावपूर्ण भाव पक्ष के इलावा कलापक्ष को संवारने हेतु जितने भी अलंकारों को जुटाया जाए उतना ही कम है चाहे वे अलंकार रस के रूप में हों या वक्रोक्ति के रूप में, रस के रूप में हों या अलंकारों के रूप, मुहावरों के रूप में हों या लोकोक्तियों के रूप में।

जहाँ तक डोगरी महाकाव्य का प्रश्न है उस में अभी तक पाँच महाकाव्य प्रकाशित हो चुके हैं जिन में रामायण एवं 'वेददन' धरती दी दो ऐसे महाकाव्य हैं जिन्हें शब्दालंकार, अर्थालंकार एव उभयालंकारों ने इस तरह सजाया है जैसे दीपावली की रात किसी घर को दीप जला कर सजाया जाता है। इन दोनों महाकाव्यों में विशेष बात यह है कि डोगरी काव्य में यमक एवं वक्रोक्ति (काकु) दे उताहरण नहीं के बराबर मिलते हैं किन्तु उक्त महाकाव्यों यमक भरा पड़ा है और काकु वक्रोक्ति भी किसी अमूल्य वस्तु की भाँति मिल ही जाती है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IA & P-40

ध्वन्यालोक के आलोक में अन्य सम्प्रदाय

डॉ. श्रद्धा सिंह, भुसावर

ध्वन्यालोक साहित्यशास्त्र की महनीय कृति है। आचार्य आनन्दवर्धन इसी ग्रन्थ से साहित्यशास्त्र की आत्मा का परिज्ञान कराते हैं। उनसे पूर्व के आचार्य भी साहित्य की आत्मा को खोज रहे थे, लेकिन वे इसके यथार्थ रूप से अपरिचित थे। आनन्दवर्धन की मुख्य स्थापना यही थी 'काव्यस्यात्मा ध्वनि:'। उन्होंने ध्वनि को इतना व्यापक स्वरूप प्रदान किया कि पूर्ववर्ती और परवर्ती सभी सम्प्रदाय उसके अङ्गों के रूप में समाविष्ट हो गये। 'विविध विशिष्टवाच्यवाचक रचना प्रपञ्च चारुण:' काव्यस्य स एवार्थ: सारभूत:।

ध्वन्यालोक का वैशिष्ट्य मात्र ध्वनि पर किया गया विचार ही नहीं है, अपितु आचार्य जहाँ पूर्ववर्ती सम्प्रदायों का भली-भांति विचार करते हैं और बाद में आने वाले सम्प्रदायों के लिये भी आधारभूमि तैयार कर देते हैं यह उनकी बहुत बड़ी विशेषता है, 'धवन्यालोक' को अवश्य ही इस दृष्टि से देखा जाना चाहिये। ध्वन्यालोक के आलोक में दृष्ट प्रमुख सम्प्रदायों का वर्णन इस प्रकार है-रससम्प्रदाय रस प्राचीनतम सम्प्रदाय है। आनन्दवर्धन गुण रीति अलंकार आदि तत्त्वों का समावेश ध्वनि में करते हैं, लेकिन रस ही वह तत्त्व है जिस पर वह ध्वनि को अवलम्बित करते हैं। वस्तुत: काव्य की आत्मा रसध्वनि ही है।

द्वितीय उद्योत में वह रस की चिन्ता विस्तार से करते हैं; कि कब रस रस रहता है, कब गुणीभूत हो जाता है, रस के बाधक कौन-2 से है। 'नहि रसादृते कश्चिदर्थ: प्रवर्तते' ध्वनिकार इस उक्ति के पक्षपाती हैं। काव्य के समस्त चारुत्व हेतुओं का रसपरायण होना ही ध्वनि का विषय है।

*

IA & P-41

संस्कृत काव्यशास्त्र को महर्षि वाल्मीकि का योगदान

प्रो. रविन्दर कौर, पटियाला

आदि कवि के रूप में विख्यात आर्ष प्रतिभा से सम्पन्न महर्षि वाल्मीकि सम्पूर्ण साहित्य जगत् के लिए निरन्तर प्रेरणा स्रोत रहे हैं। शाणोल्लीढ़ संस्कार से संस्कृत रत्न सदृश उनके कवित्व से प्रभावित प्राय: सभी काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में अनेकत्र वाल्मीकि की अमर कृति रामायण से उदाहरणों को उद्धृत कर अपने शास्त्रीय सिद्धान्तों का समर्थन किया है। रस, ध्वनि,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वक्रोक्ति आदि विभिन्न काव्यात्मस्थानय तत्व हों या गुण, कविसमय आदि अन्य तत्व सभी का समन्वित रामायणगत प्रयोग महर्षि वाल्मीकि की निजी विशेषता है। काव्यशास्त्रीयपरम्परा के शिरोमणि आचार्य आनन्दवर्धन ने उक्त कवि की स्वभावत: नि:स्यूत 'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वगम: शाश्वती समा...' वाणी को ध्वनि सिद्धान्त का प्रेरणा स्रोत स्वीकार किया है और लक्ष्य ग्रन्थों में ध्वनि की सत्ता सिद्ध करने के लिए रामायण का नाम सर्वप्रथम परिगणित कर उक्त ग्रन्थ की प्रथम ध्वनिकाव्यता को स्वीकार किया है। वस्तुत: आचार्य भरत द्वारा परिकल्पित रस के पवित्र रूप का, ध्वनिवादियों के रसानुकूल अलङ्कार सन्निवेश का, रीतिवादियों के रीतिप्रयोग का, औचित्यवादियों के औचित्य प्रसङ्गों का तथा वक्रोक्तिवाद के विविध वक्रोक्ति प्रकारों का सम्यक् निर्वाह यदि एकत्र देखना हो तो वाल्मीकि कृत रामायण उसका अतीव सुन्दर निदर्शन है। महर्षि वाल्मीकि की इन्हीं विशेषताओं के आधार पर उनके काव्यशास्त्रीय परम्परा में योगदान की चर्चा को रेखाङ्कित करना ही प्रस्तावित पत्र का उद्देश्य है।

*

IA & P-42

Literary Contributions of Venidutta Jha

Dr. H.P. Varma, Patna

Mahamahopadhyaya Venidutta Jha, the literary prodigy in the Sanskrit and Maithili was rare genius. He lived some 300 years ago. He was born in 17th century in a village called Bittho. He belonged to the Karamaha family of the village and as such he was a chief of the monastery of the Vaishnava religion. Bittho is in Pandaul block of Madhubani district of the Bihar state. As a member of the Karamaha Behat family of the Shrotriya, he studied Veda, Purana, Nighantu, Vyakarana, Tarka, Kavya, Nataka, Chandolankara etc. Venidutta Jha completed his learning at an early age and become profound scholar very soon. He has paid rich tributes to his teacher in his poetic compositions.

Bhairavodayanataka is unique work on dramaturgy containing within itself items from Bharata's Natyashastra and Rasarnavasudhakara of Simhabhupala. In this work, a huge number of illustrations of dramatic techniques have been drawn from Mudrarakshasa and Anargharaghava. His another drama Shree Krishnaleela is a work on dramaturgy wherein he has attempted to bring Vaishnava ideas to bear upon the general them of dramatic rasa.

CC0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

In the present paper, a comparative study has been made to show how far Venidutta is identified to Bharata with regard to the definition illustration of Nataka and how far Venidutta has been able to retain his originality.

*

IA & P-43

The role of language in literary aesthetic delight: A Comparative Study of Indian and Western thoughts

Dr. (Mrs.) A.R. Tripathi, Lucknow

Language is the only tool for the aesthetic transformation of poet's intuitive power. Indian literary critics were aware of the different elements relevant to the language of the poetry, which underwent a subtle evolution of new theories for making the poetic language more effective, striking, charming and capable of surprising the Veda, where the Vāc has been treated as pure consciousness. Poetry is just a stylized linguistic organization of the poet's inner consciousness and contains the power of illumining even the ordinary worldly objects. According to Indian philosophy language as such is beyond beginning and end.

The western philosophy, culture and expressions are different than Indian way of thinking. It is not very easy to find out exact similarity between Indian and western thoughts. But most of the western critics are conscious of the use of the poetic language. Aristotle has accepted the obliquity of the poetic language. Longinus expounds the detail structure of speech and all the devices leading to the sublimity of the language. Dante agrees that a poet must have a stately language. The French symbolists favour the indirectness of the langauge. The language should be capable of producing an effect. During romantic revival, the sense of novelty and freshness were added to poetic language. Matthew Arnold insisted that the poetic language must have to minister the emotions and to turn the human mind inward by rejecting the external pressures. I. A. Richards supports the use of irony in poetic language. The critics like T.S. Eliot tried to revive the obliqueness of the poetic language. Ezra pound and Elizabeth Drew supported the indirectness of the modern poetry. Many new critics came closer to stylistic language. Paradox and irony became the essential part of Brook.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

The entire pattern of thoughts about poetic language expressed by both Indian and western scholars are of assumption that there is a clear distinction between 'normal' and 'poetic' expressions. The poetic language violates the style of normal discourses. The poetic language must posses certain indirectness. Indian theories related to the language of poetry are more comprehensive and assertive, as they are based on the ligical abstractness of the expression. The theory of language supported by Indian aesthetics is an amalgamation of the elements of grammar, philosophy and intuitive fancy. The foundation of the Indian poetic activity is on the firm ground of linguistic maturity and aims to generate an eternal aesthetic delight.

❋

IA & P-44

Shaḍakshara's Poetic Beauty

Prof. Jaya G. Dandavatimath, Dharwad (Karnataka)

Some of the great poets lived in Christian era and Shadakshara is one of them. Shaḍakshara was a literary prodigy both in Sanskrit and Kannada. He was a rare genious. He was the chief of the monastery of Lingayat Religion. According to him, the talent, the genius and the mastery over Kannada and Sanskrit are the pious deeds in his previous births. He has written three epics, namely Rājashekhara Vilāsa, Vriṣhabheṅdra Vijaya and Shabarshankar Vilas. He has composed 20 Sanskrit works, Kavikarṇarasāyanam, Shivādhikyaratnāvali, Bhaktādhikyaratnāvali, Shivastavamañjari are his noted works. He makes distinction between a सहदय and a दुर्जन through Roopakalankar. Like this we get many verses wherein we find Shadaksharas concept of poetic beauty in his epic. He dedicated his poetic compostions to Lord Shiva only.

❋

IA & P-45

Treatment of Lakṣaṇā in the text of Sāhityasāra

Dr. Jayanti Tripathi, Poona

Sāhityasāra is a text of poetics by Acyutraya Modak who flourished during 19th cen. A.D. The text is organized in 12 chapters devoted to various topics. In

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

the first chapter he defines poetry thus: śabda and artha devoid of poetic blemishes adorned with guṇas is poetry. In the second chapter the relation between śabda and artha like abhidhā, lakṣaṇā and vyañjanā are discussed.

In the present paper it is proposed to discuss the concept of Lakṣaṇā and its divisions in the light of Sāhityasāra in its historical prespectives.

*

IA & P-46

Vāmana's Purposes of Poetry - A Review

Prof. K.V. Venkateswara Rao, Visakhapatnam

Vāmana, as the founder and the foremost representative of the Rītī theory, deserves an illustrius mention in the field of Poetics. His work the Kāvyālaṅkāra sūtra is an authoritative work on the theory of Rītī. He was so bold to declare that Rītī is the soul of poetry. Daṇḍin also in his Kāvyādarśa devotes considerable space to explain what are called Rītīs by others but he never declared that it is the soul of poetry. He never used the term 'rītī' but spoke of Mārgas. He said that there is a wide variety of styles in speech with slight variations between each other. Of them, the Vaidarbhī and Gauḍī styles with clear distinctions are dealt with.

Before the Dhvani theory was established by Ānandavardhana, the earlier Ālaṅkārikas, not only Daṇḍin and Vāmana but many others were in support of their theories like Alaṅkāra, Rīti and so on. It is not to be construed by this that they were all unaware of the Dhvani theory, which they did, but never accepted Dhvani as the soul of poetry.

*

IA & P-47

Poetology of Brahma-Vaivatra-Purāṇa

Arun Ranjan Mishra, Orissa

It is a common notion that baring *Agnipurāṇa* and *Viṣṇudharmottara-purāṇa*, no other Puranic text is expressive of the norms of poetics. No doubt, the Vedas

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri USA

happen to be the fountain-heads of Indian poetics and aesthetics. *Rāmāyaṇa* and *Mahābhārata* carried forward, though implicily, the normative ideas of Indian poetics and aesthetics. But a closer study of all the major purāṇas (whatever their dates may be) would strike a factual note that they constituted the popular foundations of the norms of poetry. What is more important, they preserved the ancient ideas on the core concept of poet, whcih may help in building up the edifices for the sudy of Ancient Indian Poetology - an aspect which is rarely touched by the Indian poeticians except for some texts or references on *kaviśikṣā*. That the Puranas are replete with the guidance to any poetic activity is also evident from the fact that classical Sanskrit poets have made profuse references to the Puranic episodes and to the knowledge stored in those texts. They have also utilised the puranic expressions very widely. This is because, these texts poetically codify the Indian life-style, etiquettes and the highest goals of life. Not only that, the Puranas along with *Rāmāyaṇa* and *Mahābhārata*, are also the chief source of poetic justice.

❋

IA & P-48

Rasa Theory & Health Care: A Medical Approach to poetics

Dr. Khagendra Patra, Orissa

Poetics or Kavyashastra is regarded as the constitution or theory of creative literature. It's objective is to guide concerned authors and critics about the techniques of creative writing. To guide any aspirant writer, the exponents of Poetics advocate the significant role of ''*Rasa*'' in promoting the quality or standard of literature. According the them ''*Rasa*'' is the essence or life force of literary art. So, they have analysed ''*Rasa*'' in detail for its proper arrangement in the creative writing. They are of the opinion that creative writing can be much appealing for the concerned reader, if there is the existence of ''*Rasa*''. Supporting this view Bharata Muni says: ***''Na Hi Rasadrte Kaschidarthaha Prvatate''***- (*Natyashastra-VI/32*)

Thus, literature must create and project ''*Rasa*'' which is meant for the realization of aesthetic pleasure. It is an impersonal or universal joy to be relished or enjoyed (***Rasyate Aswadyata Iti Rasaha***). The idea of ''*Rasa*'' in creative writing owes its origin to the Indian Spiritual Science, whcih deals with Spirit, or Divine Power. According to Indian Tradition of Spiritual Science, ''*Rasa*'' is the

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri

invisible form of Brahman (God) who is the substance of bliss or pleasure. So it is said in Taittiryopanishad as ''***Raso Vai Saha, Rasam Hyevayam Labdhwanandee Bhavati***''. (*Taittiroya-2/7*). Since ''*Rasa*'' is a state of bliss, it can help in relieving stress and strain of both mind and body respectively. So ''*Rasa*'' may be considered as a holistic means for taking care of health. But exponents of Poetics have not clearly discussed about the therapeutic aspect of ''*Rasa*''. So with a view to developing special awareness about the medical value of Literature and Poetics it is proposed here to throw some light on ''***Rasa Theory & Health Care - A Medical Approach to Poetics***'' with relevant quotations.

❋

IA & P-49

A Note on Bharata's treatment of metres

Goutam Choudhury, Assam

Bharata's *Nāṭyaśāstra*, the earliest treatise on Indian aesthetics, reveals a considerable account of Sanskrit metres. The discussion arises in the chapters 15th & 16th of his *Nāṭyaśāstra*. There exist the definitions and illustrations of various metres starting from *Makaraśīrṣā* to *Sarvacapalā* where the author exhibits singularity in considering many aspects of Sanskrit metrics.

❋

IA & P-50

The Unpublished One-Act Plays of Orissa based on devotion towards Lord Viṣṇu

Dr. Trinath Hota, Orissa

The Orissan Authors have composed a lot of Rūpakas and Upa-rūpakas based on Bhakti towards Lord Vissṇu such as Bhakti Vaibhava nāṭakam of Kaviḍiṇḍima Jivadevācārya, Jagannāth Ballabha of Rāya Rāmānanda etc. But here I have discussed only four unpublished one Act-Plays of Orissa based on devotion towards Lord Viṣṇu which were enacted before the Lord Jagannāth in His different festivities during the period from 15th to 18th century A.D.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

The One Act-Plays such as -

1. The Śrīkṛṣṇa-Bhakta-Vātsalya-caritam -

Gajapati Ramachandra Deva-I (son of Janārdan Vidyādhara, the Prime Minister and general of Govinda Vidyādhara-1533-1541 A.D) otherwise known as Abhinava Indradyumna has composed this One-Act Play the Śrīkṛṣṇa-Bhakta-Vātsalya-Carita in about 1574-1575 A.D.

2. The Ambarīṣa-durvāsāṅka -

Vāṇināth Pattnaik the court poet of Gajapati Śrī Mukunda Deva (1560-156 And A.D) has composed this Aṅka type of One-Act Play for the purpose of entertaining the people assembled for the Holi festival in the land of Lord Jagannāth.

3. Pīyūṣa-Laharī -

The One Act Play Pīyūṣa-Laharī composed by Jayadev-II in the last part of 16th Century was staged in the premises of Lord Jagannāth Temple.

4. Rāsa-Goṣṭhī-Rūpakam

Anādi Mishra, the court poet of Nārāyaṇa, Mangaraj, the ruler of Khaṇḍaparā has composed the One-Act Play Rāsa-goṣṭhī rūpakam in between 1650-1745 A.C.

❋

IA & P-51

Erotic Elements in Goṣṭhīrūpakas of Orissa

Bijayalaxmi Acharya, Bhubaneswar

Orissa has a great contibution to different fields of Sanskrit literature that come under Śravya and Dṛśya Kāvyas. As we know, Dṛśyakāvyas are of two types-Rūpakas and Uparūpakas. Rūpakas are ten in number where as Uparūpakas are eighteen in number. Among these, Goṣṭhīrūpakas occupy a very significant position in Sanskrit uparūpakas. Though their number is very few in the whole sanskrit literature, Orissan Poets have written two works on it. They are - Piyūṣalaharī nāṭikā of Jayadevācārya and Rāsagoṣṭhīrūpakam of poet Anādi Miśra. Both these works though have been written in theimitation of Gīta Govinda of celebrated Poet Jayadeva, Still then the characteristics of a goṣṭhīrūpaka have been strictly followed

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

by the poets. The beautiful dalliance of Lord Kṛṣṇa with Rādhā and other Gopikās in thenight of Autumnal season has been picurised in both the works. In addition to that, the Erotic Elements have been described in such a beautiful manner that the works create an amazing situation in the eyes of beholders.

An attempt has been made in this paper to highlight the Erotic elements described in different places of both the above mentioned Goṣṭhīrūpakas of Orissa.

❋

IA & P-52

Rasasutra and Objective : Correlative

Dr. H.Sudharmany, Kerala

Most of the critics agreed that Vibhavanubhava vyabhicari samyogat Rasanipattih and Eliots theory of objective correlative are connected each other basically. The emotions of a character or a situation should be expressed in suitable vibhavadih same as the objective correlative. The importance of the poetic talents lies in producing such a situation in its fullest mobility.

❋

IA & P-53

Aucity

Vijayakumari P.V., Kerala

The discovery and recognition of the principle of Aucitya can be reckoned as a significant advancement in aesthetic thought in Sanskrit. In the absence of aucitya, no literature would achieve its purpose. According to ''Sanskrit ālamkārikās'' the concept of aucitya is the way of explaining the balance and harmony of the components of poetry. The beauty of every object is enhanced by its proper placing or Aucitya. So it is considered to be the basic factor of poetry. The well-known doctrines of rasa, alamkāra and dhvani held the ground when Kṣemendra propounded the theory of Aucitya. The concept of Aucitya had been felt by the elders but it was given to Kṣemendra to develop it into a system and declare that Aucitya is the life of poetry.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IA & P-54

Kumarasambhavam Canto and Acarya Mommata's followed Judgement

Dr. Vijay Pandya, Ahmedabad

Ācārya Mamaṭa, the celebrated rhetorician of the Sanskrit Literature has adversely criticized Kālidāsa for the delineation of pathos in the episode Rativilāpa of the Kumārasasmbhavam. Mammaṭa while dealing with the Kāvyadoṣas has found fault with Kālidāsa for arousing the sentiment Pathos again and again. Mammaṭa does not elaborate this point except making a very cryptic remark. But the rhetoricians following Mammaṭa, taking a cue from Mammaṭa have elaborated this point and have fallen in line with Mammaṭa way of thinking.

According to the present writer, in no way Kālidāsa can be said to have committed this blemish. If we examine the structure of the 4th canto of the Kumārasambhavam, Kālidasa has presented a very artistic design of the fourth canto and what Mammaṭa terms as the fault of rousing the sentiment pathos again and again is no fault at all. In fact Acārya Mamamṭa has failed to perceive the subtle art in teh delineation of pathos and structure of the fourth canto.

*

IA & P-55

Kaṅsamaya and Bhavabhūti

Dr. Ajay Kumar Jha, Delhi

Karisamaya is a less known but important concept in the Sanskrit Poeics. Popular texts on poetics like Nātyaśāstra, Dhvanyāloka, Kāvyaprakaśa, Sāhityadarpana, Rasagangādhara etc. do not discuss about this concept. In the history of Sanskrit poetics, first of all, Rājaśekhara gives some details of kaṅsamaya. The style in which he describes this concept indictes that this concept is very important in the writing of poetry. This assumption is supported by the Mahābhārata and the Janagarh inscription of Rudradāmana.

In the Ādiparva of Mahābhārata Samaya has been quoted as an essentiol factor for Kārya :

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अलंकृतं शुभैः शब्दैः समयैर्दिव्यमानुषैः।
छन्दोवृत्तैश्च विविधैरन्वितं विदुषां प्रियम्॥

Similarly, in the Junāgarh inscription of Rudradāmana it has been quoted as an important factor for Kāvya :

स्फुटलघुमधुरचित्रकान्तशब्दसमयोदारलंकृत गद्यपद्यमभ.....।

In there two quotations we find Samaya, not kaṅsamaya and this may confuse us that samaya and kaṅsamaya are two different concepts. But when we compare these two terms in terms of their use, meaning and sense we find them identical forms.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

Section - 21

KASHMIR SHAIVA DARSHAN

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

KS-1

न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः

श्रीमती तारा पाण्डेयः, राँची

भगवान् आशुतोषः शंकरः परमतत्त्वपूर्णः सर्वत्र अनुस्यूतश्चास्ति। सर्वेषां कारणानां कारणम्। सः सर्वेषाम् अधिपतिः रचयिता, पालयिता संहर्त्ता च विद्यते। परात्परः सच्चिदानन्दः परमेश्वरः शिवः एकः अस्ति परन्तु सः विश्वातीतः विश्वमयश्चास्ति। सः गुणातीतः गुणमयोऽपि विद्यते। एकरूपः भूत्वापि अनेक रूपधारी अपि अस्ति। सः विभिन्नेषु रूपेषु प्रकटं भूत्वा उपास्योपासकरूपेण स्वामिसेवकरूपेण राजा-प्रजारूपेण शासकशासितरूपेण च लीलां करोति।

पिनाकी शिवः देवेषु महादेवः अव्ययः अनन्तः अटलः अमरः नित्यः आनन्दरूपश्च विद्यते। भयंकरः रूपरुद्रः आशुतोषः 'भोलेनाथ'श्च। दुष्टदैत्यसंहारकः दीनानां प्रतिपालकश्च। भगवतः पिनाकिनः औदार्यम् सीमारहितम् त्यागः अनुपमः। एकपत्नीव्रतधारी शिवः अनुपमः अद्वितीयः भव्यः अद्भुतः देदीप्यमानश्च। तस्य ब्रह्मचर्यव्रतम् अचलम्, चरित्रं गंगाजलमिव पवित्रम्।

सः निर्धनः परन्तु सम्पदां प्रभवः विद्यते। श्मशानवासी भूत्वापि त्रिलोकनाथः विद्यते। यद्यपि सः भयंकररूपः परन्तु शिवः कथ्यते। वस्तुतः पिनाकधारिणः शिवस्य वास्तविकं रूपं कोऽपि न जानाति। इत्थं 'न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः' कथनं सर्वथा समीचीनम्।

❋

KS-2

शक्ति विज्ञान

डॉ. जागीर सिंह, जम्मू वि०वि०, जम्मू

काश्मीर अद्वैत शैव दर्शन में शक्ति को पराशक्ति, पराचिति, परासंवित्, परावाक्, स्फुरत्ता, हृदय, स्पन्द, महासत्ता एवं स्वातन्त्र्य आदि नामों से अभिहित किया गया है। जैसे अग्नि से उष्णत्व, जल से शीतलत्व, पुष्प से सुगन्धि एवं सूर्य से उसका प्रकाश पृथक् नहीं होते, उसी प्रकार शिव से शक्ति कभी पृथक् नहीं होती। वास्तव में यह सम्पूर्ण चराचर जगत् शक्ति का ही विस्फार रूप है। वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण एवं रामायण-महाभारतादि में भी इस तथ्य की पुष्टि की गई है। आज का विज्ञान भी सार्वभौम अथवा सौर ऊर्जा के रूप (Universal/Solar Energy) में सभी तत्त्वों के रूप एवं सत्ता में Force (शक्ति) को कारण मानता है। यह शक्ति सर्वात्मक है, सब की स्वात्मा (Self Read Self) है। इसके बिना किसी भाव अथवा अभाव वस्तु की कल्पना भी नहीं की जा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सकती। देखना, सुनना, खाना-पीना, श्वास-प्रश्वास, मनन-चिन्तन किंवा मन-वाणी-काय तथा अन्त:करण-बहिष्करण आदि के रूप में शक्ति से ही सब सम्भव होता है। योगीजन इस शक्ति के सर्वरूप विज्ञान से ही अभीष्ट वस्तु का जिस किसी वस्तु अथवा कारण से निर्माण कर लेते थे। वाल्मीकि का कुशा से कुश (सीता पुत्र) पार्वती का मैल से गणेश प्राकट्य, विष्णु का स्तम्भ से नृसिंह, श्रीकृष्ण का विराट रूप आदि शक्ति विज्ञान का ही माहात्म्य है। पातञ्जलि योगदर्शन में प्रकृति शक्ति का 'जात्यान्तर परिणाम' आदि इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं। योगवासिष्ठ महारामायण में भगवान् श्रीराम से ब्रहर्षि वसिष्ठ भी शक्ति की सर्वात्मकता का उपदेश करते हुये कहते हैं कि वायु का स्पन्दन, पृथिवी का ठोसत्व, जल का द्रवत्व, अग्नि का उष्णत्व आदि-आदि सभी शक्ति से ही सम्भव हैं। इसीलिये त्रिशिरो भैरव कहता है कि शक्ति कण-कण में विद्यमान है। स्पन्दशास्त्र के अनुसार शक्ति की इसी सर्वरूपता के कारण सभी शिवमय अथवा शक्तिमय हैं। आद्य गुरु शङ्कराचार्य भी शक्ति के कारण ही ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि देवों द्वारा जगत् का सृष्टि-पालन-संहार आदि तत्-तत् कार्य सम्भव होना मानते हैं। अतएव स्वात्मरूप शक्ति का विज्ञान करना परमावश्यक एवं सर्वथा मङ्गलकारी है, अन्यथा कस्तूरी मृग की तरह बाह्य खोज में प्राणी सुख की प्राप्ति नहीं कर सकता। वह तो परमानन्दस्वरूपा शक्ति के विज्ञान से ही सुलभ है।

*

KS-3

तांत्रिक शिवाद्वयवाद का समग्रतावादी चिन्तन और आधुनिक सन्दर्भ

डॉ. मीरा रस्तोगी, लखनऊ

तंत्र भारतीय संस्कृति का अविभाज्य अंग है। इस तांत्रिक परम्परा में शैव तंत्रों का विशिष्ट स्थान है जहाँ शिव तथा शक्ति को केन्द्र में रखकर सारा चिन्तन विकसित हुआ है। इन शैव तंत्रों के अद्वयवादी वर्ग में लगभग नवीं शताब्दी में काश्मीर शिवाद्वयवाद का उद्भव हुआ। इस सम्प्रदाय ने पूर्णाद्वैत की विशिष्ट दृष्टि का प्रतिपादन किया है। पूर्णता की यह धारणा यहाँ समग्रतापरक है। यहाँ समग्रतापरक है। यहाँ समग्रता में सारी संभावनायें सिमटी हुई हैं—अपूर्णता, भेद, विरोध सब इस समग्र पूर्ण तत्त्व के अंग हैं। इस प्रकार सारे विरोधों को आत्मसात कर यहाँ एक ऐसा चिन्तन विकसित हुआ है जहाँ न कुछ त्याज्य है और न कुछ ग्राह्य। यह सारा जगत् उस पूर्ण तत्त्व का ही संकोच और विकास है। एक ही पूर्ण तत्त्व अपने स्वरूप को छिपा कर नाना अपूर्ण रूपों में भासित होता है और इस संसार का व्यवहार इसी अपूर्णता से पूर्णता की ओर जाने की प्रक्रिया है। किसी भी पदार्थ से ममत्व भाव अज्ञान का परिणाम न होकर उस पदार्थ का स्वात्मीकरण है। अत: आत्मानुभूति के लिये यहाँ संसार के त्याग की आवश्यकता नहीं है वरन् संसार को पूर्णता के

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रत्यभिज्ञान का सोपान बनाने की आवश्यकता है। व्यक्ति का प्रत्येक अनुभव उसे उसके पूर्ण स्वरूप की ओर ले जाने वाला एक कदम है। हमारा कलानुभव तो इस बात का पुष्ट प्रमाण है।

इसी समग्रतावादी दृष्टि को सांसारिक जीवन में लागू करने पर आज समाज की बहुत सी समस्याओं का हल खोजा जा सकता है।

*

KS-4

सिद्ध सम्प्रदाय में साधना का स्वरूप

डॉ. (श्रीमती) लक्ष्मी शुक्ला, ग्वालियर

सिद्धजन अपनी साधना के बल पर विलक्षण शक्तियों के स्वामी बनते हैं। भारतीय दर्शन एवं साधना के क्षेत्र में सिद्धों की लम्बी परम्परा है। इनका एक सम्प्रदाय तो अगणित सिद्ध-संख्या तथा सद्य: सिद्धिदायिनी साधना के कारण 'सिद्ध सम्प्रदाय' अभिधान से ही प्रख्यात हो गया। इसमें अद्भुत् व्यक्तित्व के धनी महागुरु गोरक्षनाथ जैसे परम सिद्ध हुये। भारत की हर भाषा एवं क्षेत्र में उनके सम्बन्ध में कहानियाँ तथा किम्वदन्तियाँ प्रचलित हैं।

ये सिद्धजन साकार और निराकार दोनों स्वरूपों के उपासक हैं, विशेष नियम बन्धनों से परे रहकर भी साधना एवं अर्चना के नियमों को स्वीकार करते हैं। साधना की विधि गुरु-मुख से ही जानी जाती है।

सिद्ध अथवा नाथ सम्प्रदाय से साम्य रखने वाले कौलमत, तन्त्र-शास्त्र, सहज साधना और रस सिद्धान्त—इन सभी मतों में साधना के अनेक बिन्दु सामान्य हैं तथा साधना में योगाङ्गों का स्थान, ब्रह्मचर्य की आवश्यकता, गुरु का माहात्म्य एवं ध्यान की साधना पर बल—उक्त सभी मतों में समान रूप से स्वीकृत हैं।

नाथ सिद्ध प्राय: शैव रहे हैं किन्तु शक्ति की पूजा भी करते हैं। वे शिव और शक्ति को सम्पूर्ण सत्ता का एक मात्र कारण मानकर उनकी पूजा करते हैं। साथ ही गुरु के प्रति आत्म समर्पण की भावना पर भी अत्यधिक बल दिया जाता है। गुरु अपनी जाग्रत् आध्यात्मिक शक्ति को शिष्य में संक्रान्त कर उसकी गुप्त शक्तियों को जाग्रत् कर देता है। बाह्यपूजा की स्वीकृति एवं मान्यता होने पर भी सिद्धों की साधना में अन्तर्दृष्टि एवं आन्तर प्रयत्न प्रधान हैं।

ये सिद्ध षडंग योग के साधक हैं। हठयोग का नाथ सिद्धों से विशेष सम्बन्ध रहा है। इसमें प्राण-नियमन को प्रधानता दी गई है। साथ ही नाड़ी-शोधन, चक्र, नाड़ी, कुण्डलिनी आदि से सम्बद्ध

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अभ्यास विहित हैं। सिद्ध दर्शन के अनुसार जीवनमुक्ति ही परमादर्श है। देहपात से जो मुक्ति होती है, वह यथार्थ मुक्ति नहीं है। इनकी मान्यता है कि जिस देह से परमपद की प्राप्ति होती है, उस देह की रक्षा करके उसे अजर-अमर बनाना कर्त्तव्य है। कार्य सिद्धि जाने पर इच्छामृत्यु का वरण सम्भव हो जाता है। सिद्ध योगी प्रारब्ध का क्षय करके कालजयी बनता है। परा मुक्ति होने पर देहपात नहीं होता। उनका लक्ष्य है पिण्ड पद का परमपद में समरसीकरण।

*

KS-5

स्वात्मस्वरूप की प्राप्ति ही भैरवावाप्ति है—एक दृष्टि

डॉ. रामबहादुर शुक्ल, जम्मू

अगर धर्म जीवन की आचार पद्धति है, तो चिन्तन से प्रादुर्भूत दर्शन मनुष्य की बौद्धिक परिपुष्टि का दस्तावेज या जीवन की जीवन्त दृष्टि माना जा सकता है। इसी चिन्तन में प्रौढ़िमा अर्जित करने के उपरान्त सामान्य मानव जब स्वयं से प्रश्न करता है कि आखिर ''मैं कौन हूँ?, क्या हूँ?'' तब वह स्वात्मस्वरूप की प्राप्ति की तरफ अग्रसर होने लगता है, एवं इस दिशा में उपनिषद् वाक्य—''सर्वं खलु इदं ब्रह्म, एकमेवाद्वितीयम्, अयमात्मा ब्रह्म, तत्त्वमसि एवं अहं ब्रह्मास्मि'' आदि मानव को स्वात्मस्वरूप की अवाप्ति हेतु अनुप्राणित भी करते हैं। उपनिषदों से प्रभावित कश्मीर शैव दर्शन के महनीय ग्रंथ—''विज्ञानभैरव'' में भैरव रूप शिवजी ने भैरवी देवी को जिज्ञासावश भैरव (परमतत्त्व) के स्वरूप का, प्रश्नोत्तर विधा में एक सौ बारह धारणाओं में उत्तर देकर स्वात्मस्वरूप का विवेचन किया है। शिव भैरवी द्वारा उपस्थापित अपने आठ स्वरूपों को नकारने के उपरान्त कहते हैं कि हे प्रिये! संकल्पात्मक मन, चेतनात्मक बुद्धि, प्राण नामक शक्ति और इनसे उपहित परिमित प्रमाता—ये चारों जब सम्पूर्ण रूप में विलीन हो जाते हैं, अर्थात् जब ये साधक को चिति के चमत्कार मात्र प्रतीत होने लगते हैं, तब साधक ''अन्तः स्वानुभवानन्दा'' रूप में भैरवस्वरूप को प्राप्त कर लेता है। विज्ञान भैरव की महनीयता इसी से स्पष्ट होती है कि इसे विद्वानों ने आगम, शिवविज्ञानोपनिषद्, रुद्रयामलसार, शैवोपनिषद्, विज्ञानभैरवभट्टारक, एवं विज्ञानभट्टारक आदि नामों से संज्ञायित किया है। विज्ञानभैरव में प्रतिपादित 112 धारणाओं में निर्विकल्पक अवस्था की प्राप्ति का विवेचन है। इनमें से किसी एक धारणा में चित्त को एकाग्र करने वाला साधक जीवनपर्यन्त जीवन्मुक्तदशा में रहता है, और मृत्यु के उपरान्त विदेहमुक्ति को प्राप्त कर, परमेश्वर के स्वरूप से अभिन्नता स्थापित कर वह ईश्वर भी बन जाता है। जब जीव की पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ निष्क्रिय एवं बुद्धि शून्य हो जाती है, तो इसी स्थिति को परम गति कहा जाता है, पर परमगति की वही स्थिति होती है, जो भैरवी मुद्रा या शाम्भवी मुद्रा की। इस प्रकार देह के रहते जीवन्मुक्ति तथा शरीरपात के अनन्तर साधक का

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शान्तबोधस्वरूप, जब दूसरे दिव्य देह की प्राप्ति करता है, तो उस समय वह परमेश्वरस्वरूप की प्राप्ति या भैरवावाप्ति कर ही लेता है। विज्ञानभैरव में प्रतिपादित स्वात्मस्वरूप की अवाप्ति का सविस्तार विवेचन शोधपत्र में अभिहित किया गया है।

❋

KS-6

दशमहाविद्या का स्वरूप—विवेचन

डॉ. जगन्नाथ झा, वेगूसराय

केनोपनिषद् के अनुसार भगवती उमा—जो पराविद्या रूपिणी हैं—देवताओं के प्रति यक्ष-स्वरूप ब्रह्म का परिचय देती हैं। पुराणादि ग्रन्थों में भगवती की लीला-वैचित्री का बहुविध वर्णन हुआ है। ये विद्याविद्या रूपा वर्णित हैं। साधकों, उपासकों के निमित्त भगवती विद्या हैं। इनके द्वारा परा प्रथित होती है। असुरों को ये अविद्या में बद्ध करती हैं। यह कथा सर्वविदित है कि शिव के समक्ष जगदम्बा के दश विग्रह प्रकट हुए थे, जिन्हें दश महाविद्या कहा गया है। शाक्तमत में काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी तथा कमला की महती साधना पल्लवित है। प्रथमा महाविद्या काली है। 'कलयति जनयतीति काली' के रूप में काली शब्द की व्युत्पत्ति दी जाती है। काली जनयित्री, संहारकर्त्री हैं तथा महाकाल की शक्ति भी हैं। इसी प्रकार द्वितीया तारा, सीताराम की मध्यवर्तिनी कही गयी हैं। निशीथ गायत्री, नील-सरस्वती के रूप में, तुरीया-सन्ध्या-क्रम में उनकी आराधना होती है। पुनः भगवती भैरवी उदय, पालन तथा प्रलय कर्त्री कही गयी हैं। दशमहाविद्या की आराधना से सकल सिद्धियाँ सहज ही आयत्त होती हैं तथा प्रज्ञापारमिता का रहस्य अवतरित होता है।

❋

KS-7

कश्मीर शैव दर्शन में योग विवेचन

जिया लाल, जम्मू

कश्मीर शैव दर्शन को प्रत्यभिज्ञा दर्शन एवं त्रिक् दर्शन भी कहते हैं। इसमें 36 तत्त्व प्रधान माने गये हैं, लेकिन उन्हें तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—शिव तत्त्व, विद्या तत्त्व एवं आत्म तत्त्व। प्रत्यभिज्ञा के कारण ही जीवन को "तू शिव रूप ही है" का ज्ञान प्राप्त होता है, जीव चितिशक्ति में स्वातन्त्र्य और आनन्द को जब प्राप्त कर लेता है, तो यही दर्शन के अनुसार मुक्ति या मोक्ष है। जो षडंग एवं अष्टांग योग के द्वारा पौरुष ज्ञान के अर्जन एवं तदनन्तर अज्ञान रूपी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आणवमल के दूर हो जाने पर सम्भव होता है। यह दर्शन जीवनमुक्ति को भी स्वीकारता है, एवं इस दर्शन की मान्यता है कि जीवनमुक्त व्यक्ति सभी आभासों को शिवरूप में ही देखता है। आसन एवं प्राणायाम का पातञ्जल प्रोक्त वर्णन कश्मीर शैव दर्शन में उसी रूप में नहीं मिलता, एवं समाधि के बारे में भी इस दर्शन की मान्यता है कि जब योगी चितिशक्ति में ही अपने चित्त को लीन कर देता है तब सुख दु:खादि संवेदनों के लय और उदय नियन्त्रित करता हुआ, भोक्तृत्व पद को प्राप्त करके साधक सर्वाधिपति बन जाता है। उपर्युक्त विवेचन शोधपत्र में विस्तार से वर्णित हैं।

*

KS-8

श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानकर्मसमुच्चय सिद्धान्त

(आनन्दवर्धिनी व्याख्या के आलोक में)

डॉ. सी.के. झा, अम्बाला, हरियाणा

भगवद्गीता का ही यह असाधारण वैशिष्ट्य है कि वह अध्येताओं को परस्पर विरोधी विचारों के पोषण की सामग्री प्रस्तुत करती है; अत: प्रत्येक अध्येता अपने मन्तव्य की पुष्टि के लिए उसका सहारा लेता है।

राजानक आनन्द ने भी अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित करने के लिए गीता पर 'आनन्दवर्धिनी' टीका की रचना की जो ज्ञान-कर्म-समुच्चय सिद्धान्त पर आधारित है। राजानक आनन्द कृत 'आनन्दवर्धिनी' कालक्रम की दृष्टि से अन्य काश्मीरी टीकाओं से परवर्ती हैं। वस्तुत: राजानक आनन्द महान् दार्शनिक तथा शैवदर्शन के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों तथा दर्शनों के ज्ञाता भी थे।

वस्तुत: शैव परम्परा का अनुसरण करते हुए इन्होंने ज्ञान कर्म-समुच्चय की बात कही है। शैव परम्परा में परमशिव की स्वात्मा भिन्न स्वातन्त्र्य शक्ति ही चिद्, आनन्द, ज्ञान, इच्छा, क्रिया-संवलित है।

अत: चिदानन्दज्ञानेच्छाक्रिया स्वातन्त्र्य शक्ति का स्वभाव होने से ज्ञान और क्रिया स्वरूप में अलग-अलग नहीं रह सकती। परमेश्वर की इच्छाशक्ति ही उसकी स्वातन्त्र्य शक्ति कहलाती है, जिसमें ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति सदैव अभेद रूप में स्फुरित होती है। अतएव आत्मा ज्ञातृ-कर्तृरूप है। प्रत्येक क्रिया का कोई न कोई कर्ता अवश्य होता है। ज्ञान भी एक क्रिया है; अतएव उसका भी कोई कर्ता होता है इसी तरह प्रत्येक क्रिया कर्ता में होती है तथा वह कर्ता उस क्रिया का आश्रय होता है। इस प्रकार ज्ञान और क्रिया अभिन्न और एक ही है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

KS-9

काश्मीर शैव दर्शन

बलदेव चंद, जम्मू

इस पराद्वैत सिद्धान्त के अनुसार जो कुछ भी है यह सब स्वयं शिव ही है। वही अपनी इच्छा के अनुसार अपनी पारमेश्वरी लीला का अभिनय करता हुआ आपेक्षित ईश्वरों के रूप में, जीव के रूप में और जगत् के रूप में प्रकट होता रहता है स्वयं जीवरूप में प्रकट होता हुआ बन्धन की लीला का अभिनय करता है, इतनी सारी लीला का अभिनय करते हुए भी वह अपने वास्तविक शुद्ध चैतन्य रूप से जरा भर भी विचलित नहीं होता है।

कश्मीर के शैव इस मिथ्यवाद से सहमत नहीं। वे जगत् के बीज को अनादि अविद्या के भीतर न देखकर परब्रह्म की ही पराशक्ति के भीतर देखते हैं उनके मत में परब्रह्म की वही पराशक्ति जब उसी की इच्छा से उसी के प्रकाश के भीतर बहिर्मुखतया प्रतिविम्बित हो जाती है इस प्रतिविम्बवाद को मान लेने से परब्रह्म के विषय में विकारशीलता और परिणामशीलता की शंका भी दूर हो जाती है। इस तरह से शैव दर्शन की दृष्टि में मूल तत्त्व एक ओर से शुद्ध चैतन्यात्मक ही है और सदा उसी रूप में ठहरता है, परन्तु दूसरी ओर से यह परिपूर्ण परमेश्वर भी है। अतः अपनी परमेश्वरी शक्ति से जगत् की लीला का ही अभिनय करता ही रहता है।

*

KS-10

योगतन्त्र की दृष्टि में कुण्डली (चक्र) तत्त्व विमर्श

डॉ. रोहित पाण्डेय, वाराणसी

तत्वज्ञान के लिये समाधि आवश्यक है। योगियों ने शरीर में षट्चक्रों की परिकल्पना की है, ये शरीरस्थ भावचक्र हैं जिनका ज्ञान योगी समाध्यवस्था में प्राप्त करते हैं। कन्द से निकलने वाली बहत्तर हजार नाड़ियों में दश प्रमुख हैं और उनमें भी तीन अत्यन्त मुख्य है—इडा, पिंगला और सुषुम्णा। इडा मेरुदण्ड के वामभाग में स्थित है, यह शीतल स्वभाव की नाड़ी है, क्योंकि इसका देवता चन्द्रमा है इसी कारण इसे चन्द्रनाड़ी भी कहते हैं। मेरुदण्ड के दक्षिण भाग में पिंगला या सूर्यनाड़ी स्थित है जो ऊष्ण स्वभाव की होती है, इसका देवता सूर्य है। इन दोनों के मध्य में सुषुम्णा नाड़ी अवस्थित है जिसका देवता अग्नि है। यह नाड़ी ज्ञानस्वरूपिणी है जिसके अन्दर सम्पूर्ण ज्ञान-राशि प्रसुप्त रहती है। प्राण का प्रवाह इडा व पिंगला से निरन्तर होता रहता है। योगी इडा व पिंगला

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

में प्राण के प्रवाहन को रोककर सुषुम्णा में प्रवाहित करते हैं। सुषुम्णा के मध्य वज्रा नाड़ी, वज्रा के मध्य में चित्रिणी नाड़ी है ब्रह्म नाड़ी चित्रिती के मध्य में अवस्थित है जो आदिदेव का परमस्थान है।

वह कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्णा को ही आधार बनाकर बसती हैं। शरीर में नीचे से ऊपर की ओर क्रम से छः चक्र बसते हैं जिनके नाम क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान मूल, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञाचक्र हैं।

मूलाधार चतुर्दल कमल है जिसके प्रत्येक दल में क्रमशः **''व, श, ष, स''** ये चार वर्ण अंकित हैं। यहीं पर बालरूप ब्रह्मा, ब्रह्माणी के साथ बैठे हैं। आधार में 'डाकिनी शक्ति', हाँथों में वेद लेकर विराजमान हैं। वज्रा नाड़ी के मुख देश में एक कर्णिका है जिसके मध्य में एक त्रिकोण है। त्रिकोण के मध्य में पृथ्वी बीज 'लं' विद्यमान हैं त्रिकोण के तीनों रेखाओं को वामा, ज्येष्ठा और रौद्री के नाम से अभिहित किया जाता है। त्रिकोण के मध्य में एक शिवलिंग है जिसे **'स्वयंभूलिंग'** के नाम से जाना जाता है।

*

KS-11

योगतन्त्रागमदृष्ट्या मुद्रा स्वरूप विमर्शः

डॉ. राघवेन्द्र जी दूबे, वाराणसी

आगमयोगतन्त्रादि परम्परा में मुद्राओं का अपना एक विशिष्ट स्थान है। योगिजन अपने शरीर को शुद्ध, स्वस्थ व युवा रखने हेतु जिस वैज्ञानिक विधि का प्रयोग किया करते थे वे मुद्रायें ही हैं। मुद्राओं के अभ्यास से न केवल विभिन्न रोगों से मुक्ति मिलती है अपितु कुण्डली का प्रबोधन हो सहस्त्रारावस्थित शिव से सायुज्य भी प्राप्त होता है—

सुषुम्ना शून्यपदवी ब्रह्मरंध्रं महापथः।
श्मशानं शांभवी मध्यमार्गश्चेत्येकवाचकाः॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुमीश्वरीम्।
ब्रह्मद्वारमुखे सुप्तां मुद्राभ्यासं समाचरेत्॥

योगविदों ने उस कुटिलाकारा कुण्डली को जागृत करने के लिये दशमहामुद्राओं को बतलाया हैं जिनके अभ्यास से योगी शक्ति जागरण में सफल हो जाता है और स्वात्मविश्रान्ति को प्राप्त कर पूर्ण बन जाता है। दशमहामुद्रायें इस प्रकार हैं—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

महामुद्रा महाबंधों महावेधश्च खेचरी।
उड्यानं मूलबंधश्च बंधो जालंधराभिधः॥

करणी विपरीताख्या वज्रोली शक्तिचालनम्।
इदं हि मुद्रादशकं जरामरणनाशनम्॥

अर्थात् महामुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी, उड्डीयान, मूलबंध, जालंधरबंध, विपरीतकरणी, वज्रोली, शक्तिचालन ये दश मुद्रायें जरा और मरण का नाश करती हैं तथा अष्टैश्वर्य (अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशता एवं वशिता) सिद्ध कराती हैं।

*

KS-12

काश्मीर शैवागम में मातृकाविलास

डॉ. ओम कुमार, जम्मू

काश्मीर शैवागम आगमशास्त्रों की स्थापित परम्परा में अपना विशिष्ट स्थान रखता है, प्रस्तुत शोधपत्र उक्तागम में 'मातृकाविलास' के विषय से सम्बन्धित है। इसमें मातृका (विमर्श, शब्दराशि, ध्वन्यात्मक, हृदय) के अनेक गम्भीरार्थक पदों के अर्थों का संक्षिप्त विवेचन सारभूत रूप से किया गया है।

मातृका विश्व के सनातन शाश्वत सिद्धान्त की स्वयंभू प्रक्रिया को, जो कि उसकी उत्पत्ति-स्थिति-लय व पारमार्थिक स्वरूप को भी सुदृढ़ आधारशिला पर स्थापित करती है, यह पराहन्ता, परावाक् शुद्ध मन्त्रात्मक, नादात्मक, दृगात्मक स्वरूप द्विविध धार्यधारक स्वरूपों से संयुक्त होती है। तथा इसकी मयूराण्डवत् व्याप्ति वाच्यवाचकात्मक, षडध्वरूप में ब्राह्म्यादि अष्टविधशक्तियों, नववर्गों (वर्णात्मक), पञ्च निवृत्त्यादि कलाओं, परावागादि चतुर्विध वापियों से परमतत्त्व के धर्मधर्मिभाव को सामानाधिकरण्य द्वारा धर्मवाचकोपलक्षण से भी सिद्ध करती है।

मातृका में ही वर्ण-पद-मन्त्र तथा कला-तत्त्व-भुवन समस्त ब्रह्माण्ड के समस्त भुवनों का भी अन्तर्भाव हो जाता है। अतः मातृका काश्मीर शैवागम का अधिपति विज्ञान भी कह दिया जाए तो यह तर्कसंगत भी होगा।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

KS-13

काश्मीर शैव दर्शन एवं सांख्य दर्शन में तत्त्वों का विवेचन

डॉ. धमेन्द्र शर्मा ''पुन्छी''

सांख्य दर्शन के अनुसार जगत् की उत्पत्ति ''प्रकृति'' से सम्पन्न होती है अर्थात् सूक्ष्म एवं स्थूल जगत् की उत्पादिका ''प्रकृति'' है। प्रकृति और पुरुष—दो मूल तत्त्व हैं जो अनादि एवं नित्य सत्य हैं। प्रकृति जड़ है और परिणामशील है (एक है) जबकि पुरुष अनन्त, चेतन और परिणाम रहित है। पुरुष की भावात्मक विशेषता चैतन्य है।

प्रकृति के विकार रूप तेईस तत्त्व हैं, जिन्हें व्यक्त तत्त्व कहा जाता है। वे हैं—महत् (बुद्धि), अहंकार, **पंचतन्मात्राएं**—(शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध तन्मात्राएँ) मन **पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ**—(श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और घ्राण) **पाँच कर्मेन्द्रियाँ**—(वाक्, पाणि, पाद्, पायु, उपस्थ) **पंच महाभूत**—(स्थूलभूत - आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी)। यही पच्चीस तत्त्व सृष्टि-प्रक्रिया के लिए सांख्यदर्शनानुसार महत्त्वपूर्ण हैं।

कश्मीर शैव दर्शन में छत्तीस तत्त्वों की मान्यता है। जिनमें पृथिवी से लेकर पुरुष तत्त्व पर्यन्त तो सांख्य दर्शन की भाँति सम्मत हैं, यद्यपि कुछ तत्त्वों की स्वरूप धारणा में न्यूनाधिक मतभेद हैं। सांख्य दर्शन के पच्चीस तत्त्वों को विश्व के सभी दर्शनों एवं आधुनिक युग के वैज्ञानिकों ने न केवल सराहा है परन्तु प्रत्यभिज्ञा दर्शन अर्थात् कश्मीर शैव दर्शन ने इसमें 11 (ग्यारह) तत्त्व और जोड़कर विश्व को अचंभे में डाल दिया तथा सराहना के साथ-साथ अध्यात्म पथ के मार्ग को और सुगम किया। वे ग्यारह तत्त्व इस प्रकार से हैं—(1) शिव (2) शक्ति (3) सदाशिव (4) ईश्वर (5) विद्या (6) माया (7) कला (8) विद्या (9) राग (10) काल और (11) नियति।

*

KS-14

काश्मीरी-शैव-दार्शनिक परम्परा में आचार्य योगराज का योगदान

डॉ. क्षमा शुक्ला, इलाहाबाद

आचार्य 'योगराज' के गुरु क्षेमराज थे तथा इनका निवास स्थान वितस्तापुरी था। महामहेश्वराचार्य अभिनवगुप्त के प्रशिष्य और राजानक क्षेमराज के शिष्य 'योगराज' की लेखन शैली पर अपने गुरुओं का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। पूर्णाद्वमयी नाम से विख्यात अपनी टीका परमार्थसारसंग्रहविवृति को पुष्पिका 'योगराज' ने अपना संक्षिप्त परिचय दिया है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आचार्य 'योगराज' ने अपनी टीका परमार्थसारसंग्रहविवृति में शैव दर्शन के सिद्धान्तों को समाहित करते हुये इस कौशल से टीका प्रस्तुत की है जिससे एक ओर शैवागम से उसका सम्बन्ध बना रहे और दूसरी ओर यह स्वतंत्र दार्शनिक ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित हो सके। 'योगराज' ने अपने गुरुओं से त्रिक दर्शन का ज्ञान प्राप्त करके इस दर्शन के सिद्धान्तों का स्वविवेक से परिमार्जन करके अपनी टीका प्रस्तुत की है।

आचार्य 'योगराज' की टीका परवर्ती आचार्यों के लिये भी प्रेरणा स्रोत रही है। योगराज के पश्चात् महेश्वरानन्द ने परमार्थसार के प्रत्यभिज्ञा सिद्धान्त का आश्रय लेकर महार्थमंजरी की रचना की। इसके अतिरिक्त देवीनामविलास काव्य, कल्पवृक्ष, शिवजीवदशक महानयप्रकाश, षट्त्रिंशततत्त्वसंदोह, परात्रिंशिकाविवृति आदि ग्रन्थ भी योगराज से प्रेरणा प्राप्त कर रचित हुये।

❋

KS-15

प्रत्यभिज्ञादर्शन में बन्ध और मोक्ष

डॉ. वीना कुमारी, जम्मू

प्रत्यभिज्ञादर्शन में अपूर्ण ज्ञान अथवा आत्मा के वास्तविक स्वरूप को जानना ही मोक्ष है। आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप में सच्चिदानन्द रूप, असीम, सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान है किन्तु बन्धन अथवा अपूर्ण ज्ञान के कारण उसे अपने वास्तविक स्वरूप की विस्मृति हो जाती है। फलतः वह अपने आपको सीमित समझने लगता है। पुनः अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित होना अथवा अपनी वास्तविक सभी शक्तियों को पहचानना ही प्रत्यभिज्ञादर्शन में मोक्ष कहा गया है।

इस पराद्वैत के अनुसार बन्ध और मोक्ष की कल्पना केवल व्यवहार मात्र ही है। केवल तब तक ही दोनों इस परस्पर विरुद्ध द्वन्द्व के आकार में प्रतीत होते हैं जब तक पराद्वैत की दृष्टि खुलती नहीं। उसके खुल जाने पर समस्त विश्व को समान रूप से परमशिव ही जाना जाता है।

इस प्रकार प्रत्यभिज्ञादर्शन में यह सिद्ध किया गया है कि पारमार्थिक दृष्टि से जीव शिव ही होता है। और इस पारमार्थिक स्वरूप की प्रत्यभिज्ञा ही मोक्ष है—

''शक्तिदरिद्रः तु संसारी शक्ति विकासो तु शिव एव॥''

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

KS-16

काश्मीर शैव दर्शन के प्रमुख ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार—एक सर्वेक्षण

सुरेश बाला, जम्मू

कश्मीर शैव दर्शन षड्दर्शन के अन्तर्गत नहीं माना जाता, लेकिन फिर भी दर्शन जगत् में कश्मीर शैव दर्शन का अध्ययन-अध्यापन होता है, परन्तु अन्य दर्शनों की भाँति इस दर्शन के ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों से सामान्य जन अपरिचित सा दिखता है, इस कमी को पूरा करना ही इस शोध का औचित्य है। कश्मीर शैव दर्शन के प्रमुख ग्रन्थों एवं ग्रन्थकारों, व्याख्याकारों के नाम क्रमशः—आचार्य अभिनवगुप्त सोमानन्द, क्षेमेन्द्र, कल्लट, महेश्वरानन्द, जयरथ, क्षेमराज, वसुगुप्त उत्पलदेव, वरदराज, शिवाग्रयोगीन्द्रज्ञानशिवाचार्य, राजानक आनन्द, माधवाचार्य आदि हैं। एवं आधुनिक कश्मीर शैवदर्शन के प्रमुख विद्वानों में डॉ. कान्तिचन्द्र पाण्डेय, डॉ. ए.के. मजूमदार, डॉ. आर.डी. रानाडे, डॉ. वी.एस. पाठक, डॉ. एस.वी. दासगुप्ता, डॉ. कौशिल्या वल्ली एवं आस्ट्रिया की प्रो. बैटिना बामर। प्रमुख ग्रन्थों में तंत्रालोक, तत्त्वार्थचिन्तामणि, शैवपरिभाषा, तंत्रसार, प्रत्यभिज्ञाहृदयम् महार्थमंजरी, मालिनीविजयोत्तरतंत्र, विज्ञानभैरव, परमार्थसार, शिवसूत्रविमर्शिनी, षट्त्रिशतसंदोह, स्पन्दकारिका, स्वच्छंदतंत्र, स्पन्दसंदोह स्तवचिन्तामणि, परात्रिंशिका, नेत्रतंत्र, मृगेन्द्रतंत्र, रुद्रयामलतंत्र, विशदृष्टि, ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, शिवसूत्रवार्तिक, पराप्रवेशिका, बोधविलास आदि। उपरोक्त के साथ-साथ अन्य टीका एवं टीकाकारों तथा ग्रन्थकारों के ग्रन्थों का परिचय शोधपत्र में विस्तार से विवेचित किया गया है।

❋

KS-17

वामन पुराण में वर्णित शैव सम्प्रदाय

पूनम शर्मा, जम्मू

अष्टादश पुराणों में वामन पुराण का महनीय स्थान है। विष्णु के वामन रूप से सम्बन्धित इस पुराण में कुल 69 अध्याय हैं जिसमें शिव विवरण की प्रमुखता है। शिव की अनेक सारगर्भित तथा दार्शनिक स्थितियों के साथ-साथ शंकर के काल रूप, गणेश एवं कार्तिकेय भैरव की आठ मूर्तियों शंकर की विविध प्रकार की पूजोपासना एवं चार शैव सम्प्रदायों का विवरण भी वर्णित मिलता है जिनके नाम हैं शैव, पाशुपत, कालवदन तथा कापालिक। इन चारों सम्प्रदायों की उत्पत्ति तो शिव से मानी ही जाती है परन्तु वामन पुराण के अनुसार इनके प्रचार-प्रसार का श्रेय चार प्रमुख व्यक्तियों को दिया जाता है। उनमें वशिष्ठ के पुत्र शक्ति तथा उसके शिष्य गोपायन, भारद्वाज एवं उनके शिष्य

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सोमकेश्वर, आपस्तम्ब ऋषि तथा उनके शिष्य क्राथेश्वर तथा कुबेर तथा उनके शिष्य कर्णोदर क्रमशः शैव पाशुपत, कालवंदन तथा कापालिक के प्रचारक एवं प्रसारक माने जाते हैं। शैव सम्प्रदाय का सम्बन्ध ब्राह्मण के साथ, पाशुपत का क्षत्रिय के साथ, कालवदन का वैश्य से तथा कापालिक का शूद्र से सम्बन्ध इस पुराण निर्णीत किया गया है। इस पुराण में पाशुपत मत शैव सम्प्रदाय का एक विशिष्ट मत है जिसमें पशुपति पशु एवं पाश का विशिष्ट विवेचन किया गया है, कालवदन सम्प्रदाय में शिव के मृत्युंजय रूप की उपासना एवं कापालिक सम्प्रदाय में शिव के कपाली रूप की उपासना स्वीकृत की गई है।

❋

KS-18

पर्यन्त-पञ्चाशिका में प्रतिपादित मत विषयक आलोचन

विनोद, जम्मू

आचार्य अभिनवगुप्त ने ''पर्यन्त-पञ्चाशिका'' में जिस विशवाद्वयनय की अभिव्यञ्जना की है, वह उसे प्रत्यभिज्ञादि प्रस्थानों से किञ्चित् भिन्नता लक्षित करता है, तदपि अनेक स्थलों पर साम्यता भी द्योतित होती है। इन्हीं भिन्नता व साम्य के स्थलों का दिग्दर्शन निम्नलिखित रूप से किया जा रहा है—ईश्वर प्रत्यभिज्ञाकार उत्पलाचार्य ने अपनी कारिकाओं में ''छत्तीस'' तत्त्वों का ही विवेचन किया है, जबकि अभिनवगुप्त ने ''पञ्चाशिका'' में ''सैंतीस'' तत्त्वों की सिद्धि की है। क्योंकि उत्पालचार्य ने शिवतत्त्व को ही सर्वोपरि तत्त्व सिद्ध किया है, जबकि अभिनवगुप्तपाद ने ''अनुत्तरभैरव'' व ''अनाश्रित शिव'' रूपी विभाजन करके उत्पलाचार्योक्त ''शिवत्तत्व'' को ''अनाश्रित शिव'' में ही अन्तर्भावित किया है तथा तदुत्तीर्ण ''अनुत्तर परमभैरव'' को ही सर्वोपरि माना है। यह सम्पूर्ण ''पञ्चाशात'' वर्णमयी परावाक् ही शैवागमोक्त ''सदाशिवादि-भूम्यन्त'' 36 तत्त्वों की सृष्टि करती है।

❋

KS-19

वीरशैवागमों का विकास

विनय प्रकाश मिश्र, सुलतानपुर

वीर शैव धर्म के संस्थापक पाँच आचार्य हैं। इन्हें पंचाचार्य कहते हैं। शिव के सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशानमुख के रूप में विराजमान कुल्यपाक के श्री सोमेश्वरलिङ्ग, द्राक्षाराम क्षेत्र के श्रीरामनाथलिंग, सुधाकुण्ड क्षेत्र के मल्लिकार्जुन लिंग और काशी क्षेत्र के श्री विश्वनाथ लिंग

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इन पाँचों शिवलिंगों से क्रमशः श्रीरेवणाराध्य, श्री मरुलाराध्य, श्री एकोरामाराध्य, श्रीपण्डिताराध्य और श्री विश्वाराध्य नाम के पाँच आचार्य भगवान् शिव के आदेश से प्रत्येक युग में अवतरित होकर वीर शैव धर्म की स्थापना करते आये हैं।

वीर शैव सदाचार संग्रह में कहा गया है कि ये पाँचों आचार्य कृतयुग में एकाक्षर शिवाचार्य, द्व्यक्षर शिवाचार्य, त्र्यक्षर शिवाचार्य, चतुरक्षर शिवाचार्य तथा पंचाक्षर शिवाचार्य कहलाते थे। यही आचार्य त्रेतायुग में क्रमशः एकवक्त्र शिवाचार्य, द्विवक्त्र शिवाचार्य, त्रिवक्त्र शिवाचार्य, चतुर्वक्त्र शिवाचार्य और पञ्चवक्त्र शिवाचार्य के नाम से जाने जाते थे। इसी प्रकार से यही आचार्य द्वापर युग में क्रमशः रेणुक शिवाचार्य, दारुक शिवाचार्य, घण्टाकर्ण शिवाचार्य (शंकुकर्ण शिवाचार्य), धेनुकर्ण शिवाचार्य और विश्वकर्ण शिवाचार्य के नाम से प्रसिद्ध थे। ये ही आचार्य कलियुग में क्रमशः रेवणाराध्य, मरुलाराध्य, एकोरामाराध्य, पण्डिताराध्य, और विश्वाराध्य के नाम से जाने जाते हैं।

यह प्रवाद सुनने में आता है कि 12वीं शताब्दी में कर्नाटक में अत्यन्त प्रख्यात चालुक्य वंश के विज्जल नामक महाराजा के प्रधानमंत्री श्री बसवेश्वर के द्वारा इस धर्म की स्थापना हुई थी। किन्तु यह कथमपि सत्य नहीं है। डॉ. एस.सी. नन्दीमठ, श्री के.ए. नीलकण्ठ शास्त्री, डॉ. जे.एन. फर्क्यूहर, डॉ. यदुवंशी, श्री रामदास गौड़ तथा डॉ. कान्तिचन्द्र पाण्डेय आदि विद्वानों ने श्री बसव को वीरशैव धर्म का पुनरुज्जीवक ही माना है, न कि संस्थापक।

*

KS-20

काश्मीर शारदापीठ एवं द्वारका शारदापीठ शांकरमत विवेचन

डॉ. रमेश चन्द्र मुरारी, द्वारका

श्री मदादिशंकराचार्य ने समस्त भारत में दिग्विजय करके चारों दिशाओं में चार पीठें स्थापित कीं। प्रथम ''पश्चिमाम्नायः शारदा मठ उच्यते'' शास्त्रार्थ में पराजित आचार्य मण्डन मिश्र द्वारा शिष्यत्व ग्रहण कर लेने के बाद सुरेश्वराचार्य नाम संज्ञा देकर इन्हें शारदापीठ द्वारका का प्रथम अधिपति रूप में नियुक्ति की। आचार्य शंकर ने प्रयाग-कुमारिल भट्ट, माहिष्मती, बदरीकाश्रम में ज्ञान चर्चा एवं विविध शास्त्रों का प्रणयन कर, भाष्य लिखकर अपने भाष्य को काश्मीर शारदापीठ, सर्वज्ञपीठ में प्रमाणित कराया, जहाँ शारदा स्वयं उपस्थित थीं।

जम्बूद्वीपं शस्यतेऽस्यां पृथिव्यां तत्राप्येतन्मण्डलं भारताख्यम्।
काश्मीराख्यं मण्डलं तत्र शस्तं यत्राऽऽस्तेऽसौ शारदा वागधीशा॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चार दरवाजे वाले इस सर्वज्ञ पीठ का दक्षिण द्वार सदैव बन्द था आदि शंकराचार्य ने सर्वप्रथम यह दरवाजा खोला, तभी देवी सरस्वती से शास्त्रार्थ हुआ, देवी ने कहा—

सर्वज्ञता तेऽस्ति पुरैव यस्मात् सर्वत्र पर्यैक्षिभवान्न चेत्ते।
विरिञ्चिरूपान्तर विश्वरूपः शिष्यः कथं स्यात् प्रथिताग्रणीः सः॥

तत्रैव 16/83

आचार्य शंकर ने शृंगेरी में सर्वज्ञ पीठ की स्थापना की, जिसकी परम्परा द्वारा शारदापीठ के अन्तर्गत चलती है। आचार्य शंकर की यह सर्वदिक् एकता का उदाहरण सर्वग्राही है।

❋

KS-21

शैव धर्म

डॉ. करतार चन्द शर्मा, जम्मू

शैव धर्म में शिव की प्रधानता है। शिव ही संसार के आदिकर्ता हैं, उन्ही से यह जगत् उत्पन्न होता है। शिव की पूजा वैदिककाल से भी काफी पूर्व समय से इस देश में प्रचलित थी। द्रविड़ लोगों के प्रमुख देवता शिव ही थे। वेदों में शिव को रुद्र कहा गया है।

शिव के उपासकों को शैव कहते हैं। शैव सम्प्रदाय के ग्रन्थ "आगम" नाम से जाने जाते हैं। शैव-सम्प्रदाय भी तीन प्रकार की भिन्न-भिन्न विचारधारा रखने के कारण तीन उप-सम्प्रदायों में विभक्त हैं। जिन्हें पाशुपत, कापालिक और लिंगायत कहते हैं।

शैव धर्म का मुख्य पर्व है—शिवरात्रि।

शैव धर्म में तीन नित्य पदार्थ माने गए हैं पति, पशु और पाश अर्थात् शिव-जीव और कर्म। जीव कर्म रूपी पाश में बंधा है। इस बन्धन से शिव ही उसे मुक्त कर सकता है। सेवा, आराधना और ध्यान के द्वारा शिव प्रसन्न होते हैं, जिससे जीव को मोक्ष प्राप्त होता है। शिव की कृपा से ही जीव को पाश ज्ञान के बजाय पति ज्ञान होता है। इसी को उपनिषदों में विद्या और अविद्या कहा गया है। विद्या है पति अर्थात् आत्मज्ञान और अविद्या है पाश अर्थात् कर्म का ज्ञान। मोक्ष प्राप्त जीव को शिव मय कहा जाता है।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

KS-22

काश्मीर शैव दर्शन के अनुसार तत्त्वों का वर्गीकरण

गीतारानी, जम्मू

काश्मीर शैव दर्शन में जगत् का वर्गीकरण चार प्रकार से मिलता है—

(क) पञ्चकलात्मक वर्गीकरण

(ख) अण्डचतुष्ट्यात्मक वर्गीकरण

(ग) षड्ध्वा वर्गीकरण

(घ) छत्तीसतत्त्वात्मक वर्गीकरण

(क) पञ्चकलात्मक वर्गीकरण

1. **निवृत्ति कला**—पृथिवी तत्त्व को व्याप्त करने वाली कला 'निवृत्ति कला' अभिहित होती है।

2. **प्रतिष्ठा कला**—जल तत्त्व से लेकर प्रकृति तत्त्व पर्यन्त प्रपञ्च को व्याप्त करने वाली कला को 'प्रतिष्ठा' का नाम दिया जाता है।

3. **विद्या कला**—पुरुष तत्त्व से माया तत्त्व पर्यन्त व्यापक भाव से विद्यमान रहने वाली कला 'विद्या कला' कहलाती है।

4. **शान्ति कला**—शान्ति अथवा 'शान्ताकला' शुद्धविद्या से लेकर सदाशिव तत्त्व पर्यन्त व्याप्त रहने वाली होती है।

5. **शान्त्यातीता कला**—शान्ता कला से भी ऊर्ध्ववर्ती शिवतत्त्वान्तर्वर्ती कला ''शान्त्यतीता कला'' कहलाती है।

(ख) अण्डचतुष्ट्यात्मक वर्गीकरण

अण्डचतुष्ट्यात्मक वर्गीकरण के अनुसार शान्ता, विद्या, प्रतिष्ठा और निवृत्ति कलायें ही क्रमशः शाक्ताण्ड, मायीयाण्ड, प्राकृताण्ड और पार्थिवाण्ड कहलाती हैं।

(ग) षड्ध्वा वर्गीकरण

'अध्वा' का अर्थ है शिवभाव को पहचानने का आणव मार्ग। सृष्टि की छः अध्वा या अवस्थाएँ होती है, जिन्हें षड्ध्वा कहते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रथम अवस्था (अध्वा)

प्रथम अध्वा वर्ण और कला की है।

द्वितीय अध्वा (अवस्था)

सूक्ष्म भूमि में परवर्ती अध्वा 'मन्त्र' और 'तत्त्व' हैं।

तृतीय अध्वा (अवस्था)

तीसरा और अन्तिम द्वन्द्व 'पद' और 'भुवन' का है।

(घ) छत्तीसतत्त्वात्मक वर्गीकरण

काश्मीर शैव दर्शन में जगत् का छत्तीस तत्त्वों के रूप में भी विवरण मिलता है। काश्मीर शैव दर्शन मूलतः अद्वैतवादी दर्शन है।

*

KS-23

संस्कृत साहित्य में ''अर्द्धनारीश्वर''

सुश्री रश्मि शाक्या, सागर

काव्य साहित्य में अर्द्धनारीश्वर का प्रतिपादन भिन्न भिन्नतया हुआ है उसके आधारभूत कारण निम्नलिखित हैं—

1. अर्द्धनारीश्वर की उपासना व माहात्म्य प्रदर्शन—

पुराणों और इतिहास ग्रंथों के अनुरूप ही महाकाव्य नारकादि ग्रन्थों में भी अर्द्धनारीश्वर की वंदना व महाकाव्य का वर्णन हमें काव्यात्मक ढंग से प्राप्त होता है। श्री महाकवि हर्ष द्वारा रचित नैषधीय चरित राजा नल को सिद्धि प्राप्ति हेतु चिन्तामणि जपने के संदर्भ में अर्द्धनारीश्वर स्वरूप की उपासना का कथन प्राप्त होता है।

2. अर्द्धनारीश्वर की कथा तथा विभिन्न चेष्टाओं का प्रदर्शन—

पुराण ग्रंथों की तरह महाकाव्यादि ग्रंथों से हमें अर्द्धनारीश्वर विषयक कथायें विकास से प्राप्त होती हैं इस संदर्भ में सर्वप्रथम कालिदास प्रणीत कुमारसंभव के श्लोकों में अर्द्धनारीश्वर की कथा का सङ्केत प्राप्त होता है कि शिव ने अर्द्धनारीश्वर का अवतार पार्वती के प्रति अभिन्न प्रेम और स्त्री तथा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पुरुष की सृष्टि कार्य में अनिवार्यता प्रदर्शन हेतु किया गया है।

3. नायक-नायिका के संयोग व प्रेम की एक निष्ठा—

काव्यों में अर्द्धनारीश्वर विषयक वर्णन नायक-नायिका के प्रेम के विभिन्नता व एक निष्ठता प्रदर्शन हेतु भी किया गया है।

4. अलंकार एवं रसोत्कर्ष—

काव्य जगत् में अर्द्धनारीश्वरीय प्रयोग सर्वाधिक रूप से मनोत्म कल्पनाओं के द्वारा भावोत्कर्ष संवर्धन तथा अलंकारों की छटा दिखाने के लिए हुआ है। इस संदर्भ में सर्वप्रथम **महाकवि भास** ने अविमारक के **द्वितीय अंक** में संध्या में संध्या समय आकाश की शोभा को अर्द्धनारीश्वर से उपमित किया है।

कलाओं का प्रवर्तक—

शिव को हमारी संस्कृति में अनादि देव माना है सृष्टि के पूर्व की सत्ता विद्यमान थी तथा उन्हीं के द्वारा शक्ति के सहयोग जगत् सृष्टि का कार्य प्रारंभ हुआ। सृष्टि के अतिरिक्त समस्त विद्याओं का प्रवर्तन भी शिव से जिससे उन्हें आदि गुरु की संज्ञा प्राप्त हुई।

उपर्युक्त तत्त्वों के अतिरिक्त अर्धनारीश्वर का सन्दर्भ दार्शनिक रूप से भी प्राप्त होता है जैसे संसार का प्रवर्तन एक विशिष्ट तत्त्व से हुआ है वह तत्त्व भी किसी शक्ति तत्त्व के सहयोग से सृष्टि करने में सक्षम होता है अन्यथा नहीं। उक्त दोनों तत्त्व शिव और शक्ति संज्ञक है इन दोनों तत्त्वों में मनीषी अभेद देखते हैं और दोनों को अन्योन्याश्रित बतलाते हैं।

*

KS-24

प्रतीक नाटक अमृतोदय में आगमिक सिद्धान्त

डॉ. नन्द किशोर चौधरी, दरभंगा

अमृतोदय सतरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, मिथिलान्तर्गत मंगरौनी के म० म० गोकुलनाथोपाध्याय द्वारा विरचित न्यायदर्शनाधारित पंचाङ्कात्मक प्रतीक नाटक है।

इसमें आस्तिक (वेदाधारित / न्यायवैशेषिक, सांख्ययोगादि), / नास्तिक (जैनबौद्धचार्वाक) एवं आगमिक (सोम, कापालिक एवं पाशुपत) सिद्धान्त पात्रीकृत हैं। नाटक का उद्देश्य न्यायशास्त्रानुमोदित

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अपवर्गस्थापना है परन्तु पूर्वपक्ष के रूप में अन्य सिद्धान्त की भी आलोचना है। नाटक के 'मननसिद्धि' नामक द्वितीयाङ्क में वेददर्शनविरुद्ध तर्क उपन्यस्त हैं जिसमें सोमसिद्धान्त के साथ-साथ उसके अनुचरात्मक कापालिक, नीललोहित, उमामहेश्वर, भूतडामर, महाभैरव इन शैवतन्त्रानुयायियों का दर्शन होता है। सोमसिद्धान्त को 'चार्वाकस्य बन्धुरतिनृशंसः' कहकर इनकी साधना एवं आचारपद्धति पर कटाक्षपात है साथ ही चार्वाकवत् ऐहिक दर्शनवादी होना भी आक्षेपगम्य है। नरकपालधारण फलतः भयानक स्वरूप, सुरापान से रक्तनेत्रद्वय, नरक का सजीव रूप—'नरकपालमालयाभीषणकलेवरः सुराचषका-स्वादकषायलोचनः समुच्चित इव नरकराशिः'—कापालिक की 'पाषण्डमहाव्रतसिद्धान्तोऽयम्' पद से श्रुतिस्मृत्युदित आचारहीन, सर्वलोकगर्हित, स्वच्छन्दाचारी कहकर भर्त्सना की गई है।

इसके बाद 'अपवर्गप्रतिष्ठा' नामक अन्तिम पंचम अंक में पाशुपत सम्मत मोक्ष सिद्धान्त से परिचय होता है। सर्वप्रथम भगवान् पशुपति के अलौकिक सामर्थ्य एवं जगत्कल्याण भावना की विलक्षणीयता का दर्शन होता है। भगवान् विद्विषों के मोहनार्थ सर्पधारण करते हैं; तृतीय नेत्र स्थित अग्निज्वाला से कामदहनपूर्वक वैरागियों का मार्ग प्रशस्त करते हैं तथा समुद्रमन्थनोपरान्त जगत्त्राणार्थ स्वयं हलाहल निगरण करते हैं। आगे शिव को स्वतन्त्र, सर्वशक्तिमान्, कर्मनिर्लेप कहकर उनके देवत्व का अनुवाद किया जाता है—"अये लोकविरुद्धैः सर्पदहनधारणगरप्राशनादिभिर्वेदविरुद्धैर्ब्रह्ममूर्धव्रश्चन" दारुवनद्विजविध्वंसनादिभिरपि निर्लेपस्य स्वतन्त्रतया वशीकृतसिद्धेर्न केवल पशूनामेव किन्तु पशुपाशबन्धमोक्षाणामपि प्रभवतो दुरवगाहा विभूतयः।

पाशुपती न्यायशास्त्रानुमोदित 'तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः' सिद्धान्त की हेयता दर्शाते हुए शिवसारूप्योपलब्धि को ही मोक्ष मानता है—भवच्छरीरसारूप्यलब्धविभुरेव मोक्ष। इनके अनुसार जीव शिव के भजनाधीन हैं अतः इन्हीं की भक्ति से मुक्त अर्थात् जन्ममरण परम्परा से विरहित हुआ जाता है। इस प्रकार, प्रस्तुत नाटक में शाक्त-शैवतान्त्रिक साधनानुयायी सोम, कापालिक एवं पाशुपत सिद्धान्तों का सूत्रात्मक सारगर्भित परिचयात्मक स्वरूप का दिग्दर्शन होता है जो प्राचीन सिद्धान्तसाहित्य के आलोक में विस्तृत व्याख्या की नितान्त अपेक्षा रखता है।

❋

KS-25

वसुगुप्त के शिवसूत्रों की समीक्षा

डॉ. वाहिद नसरू, श्रीनगर

शैव धर्म संसार का सबसे प्राचीन धर्म है। कर्णाटक का वीर शैव, तमिलनाडु का सिद्धान्त शैव और कश्मीर का अद्वैत शैव धर्म। कश्मीर का अद्वैत शैव दर्शन यथार्थ पर आधारित एवं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

व्यवहारिक है। भारत के लिए दर्शन केवल चिन्तन सरणि नहीं है, अपितु जीवन सरणि है। भारत में प्रत्येक दर्शन धर्म है और प्रत्येक धर्म का दार्शनिक आधार है। यद्यपि काश्मीर शैव दर्शन को प्राचीन धर्म के रूप में माना गया है। परन्तु कालान्तर में केवल उपासना और अधष्ठिान की पद्धति रह गई है। शैव दर्शन के दार्शनिक सिद्धान्त को लोग भूल गये, किन्तु इतिहास के द्वारा लिखित रूप में प्रस्तुत करने वाले वसुगुप्त ही है। इस प्रकार कश्मीर में त्रिक् दर्शन का प्रचार वसुगुप्त ही है। इस प्रकार कश्मीर में त्रिक् दर्शन का प्रचार वसुगुप्त के शिवसूत्रों से हुआ। शिवसूत्रों की संख्या 77 है। शैव आगम के अनुसार इन 77 शिवसूत्रों को तीन उपायों में बाटा गया है।

कश्मीरी शैव दर्शन आभासवाद है, आभासवाद को यथाशक्ति शिव सूत्रों में वर्णित किया गया है।

*

KS-26

स्पन्दवाद और सृष्टिविज्ञान

डॉ. देवेन्द्र सिंह, इलाहाबाद

यह प्रकृति ही इस सृष्टि का निर्माण करती है, जिसकी सर्वाधिक वैज्ञानिक संज्ञा अव्यक्त है। यह अव्यक्त ही है जिससे अणु, परमाणु, शक्ति, बुद्धि या महत् आदि तत्व उत्पन्न होते हैं। यह अव्यक्त पुरुष से स्पन्दित होकर सचेतनवत् हो जाता है, जिसका प्रथम स्पन्दन महत् या बुद्धि तत्व के रूप में होता है। वर्तमान भौतिक विज्ञान बुद्धि को भौतिक तत्व मानता है, किन्तु प्रश्न है कि बुद्धि को भौतिक पदार्थ मानकर क्या सिद्ध करना चाहते हैं? बुद्धि भी देह की तरह प्रकृति का उत्पादन मात्र है, जो हमारी वैचारिक क्षमता को संचालित करती है। वहीं हम, सांख्य की दृष्टि, जो कि सत्य के अत्यधिक सन्निकट है कह सकते हैं कि महत् या बुद्धि की उत्पत्ति तीन शक्तियों के माध्यम से होती है सत्व, रजस् तथा तमस्।

सांख्य के इस सृष्टि विज्ञान का कालान्तर में शैव-शाक्त दर्शनों में अत्यधिक विकास हुआ, जिसने उस सूक्ष्म प्रक्रिया को भी स्पष्ट किया जिससे प्रकृति से महत् प्रभृति तत्व का निष्पादन संभव हो सका, उसे ही हम स्पन्दवाद के नाम से जानते हैं।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

KS-27

The Mystical Experience According to Abhinavagupta

Dr. Narasingha Ch. Panda, Varanasi

Mystical experience is marked by the emergence of a type of consciousness which is not sharply focalized or clearly differentiated into a subject object state. Whatever is seen, heard or felt in these moments is flooded with in rush from the abysses (spiritual profundity) of the inner life. Deep-lying powers, not oridnarily put into play, seem suddenly liberated.

Abinavagupta was the leading exponent and staunch adherent of the Trika philosophy of Kashmir. He was a mystic, a profoundly religious man, a scholar of great intellectual powers, a philosopher and a literary critic of great repute. He revolutionised Indian aesthetics by providing a strong and philosophical foundation. He succeeded largely in confirming the aesthetic experience of all art forms-- poetry, music, dance, drama, etc. with mystic and religious status of ecstasy. He visualised and established intimate associations between religion, philosophy and aesthetics.

❋

KS-28

Applied Aspects of Āgamic Philosophy

Dr. Shitala Parasad Pandey, Kurahauan, Varanasi

There are two systems of thinking in the field of Indian Philosophy and religion Nigama and Āgama Or Tantra. Āgama is the Practical aspect of theoretical conception. Thus, Āgama Contains all those human activities that influence the day to day behaviour of individuals towards the Natural and social world-that is, it contains cultural, aesthetic, ethical, artistic, scientific, architecural, astrological, legal, environmental and yogic practices ect. in daily practices of devotional deeds.

Mainly, it has two parts-Vedic-and non Vedic. In Vedic Śaiva, Śākta. Saura, Gānapatya, Pāñcarātra and Vaikhānasa and in non vedic-Bauddha and Jaina. But almost all of these branches recognize the one and All-Pervading-universal Energy and the devotee attempts to establish and visualize the unity between the individual

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

and universal energy. In order to achieve this end the devotee adopts the methods of the purification of body and mind, Initiation (Dīkṣā)-by a preceptor (Guru). The essential characterstics and appropriateness of Guru and disciples (Śisya) are laid down in these sāstraās in detail. Then there are secraments, repetition of Mantrās (Japa) and worship of Yantrās-following the prescribed physical postures (Mudrās) and meditation (Dhyāna).

*

KS-29

Rudra And Kāma

Dr. T. Devarajan, Trivandrum

He is called Rudra because he cried aloud (rodanāt) after he was born. In later life he became terrific, dreadful, violent and horrible that he made others cry. His close association with Agni or Indra made him destroying deity. He is also identified with Kāla, the all consuming force. Generally represented as a destroy8ing deity, his shafts bring death or disease to men and cattle. His violent annihilation is witnessed by the participants of Dakṣa's sacrifice. Kāma is conceived as one aspect of Siva, and Siva is Kāma himself. Both of them are fertility gods but Siva is ascetic and more divine and has got a significant role in religious fables. But his presence is felt in the worship of every god. Each god is worshipped in the form of Kāma for getting a desire satisfied. Whoever is worshipped for satisfying a desire, truely Kāma is worshipped because he is the lord fulfilling desires.

*

KS-30

Tantric Texts of Orissa

Dr. Balaram Panda, Orissa

As many as eighteen tantric works have been discovered in Orissa by now through careful investigation. They are preseved in the state museum, Bhubaneswar. This paper will focus on these works minutely in order to consider their merits.

1. Uḍḍīśa Tantram

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

2. Bhubaneśvarī pūjā
3. Durgotsava
4. Śāradāśaradarccana Paddhati
5. Tantra Cintāmaṇi
6. Yantra Cintāmaṇi
7. Durgotsava Canrikā
8. Durgāyajana Dīpikā
9. Tārārccana Taraṇgiṇī
10. Tāriṇīkulasudhā Taraṇgiṇī
11. Bhubaneśvarī Prakāśa

❋

KS-31

Rudra in the Vedic Rituals

Bani Bhattacharyya, Kolkata

The verses of different Samhitas and stories of the different Brahmanas have made a special image of Rudra, who has achieved rather special treatment than that of other vedic gods in the Vedic society. So, it is very significant in what manner Rudra is presented in different sacrifices.

Rudra's name was not entitled in the sacrifice before but later he became the sharer of oblation in almost every sacrifices gradually. Extra care has been taken to save animals and cattles from the wrath of Rudra in these sacrifices. From various sacrificial descriptions we get a hint of the outlook of Vedic society.

❋

KS-32

Kashmir Saivism in the Kathāsaritsāgara

Dr. (Mrs.) Nirmal Trikha, Delhi

The Kathāsaritsāgara (1063-1081 A.D.) is a voluminous work of Kashmirian poet somadeva Bhatt. The poet is a Śaiva Brāhmaṇa of Kashmira Śiva is the most

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

prominent god in the KSS. The invocation of Śiva in the text shows his unbounded devotion to the god. The prominence of Śiva in the Kāśmīrian version somadeva confirms that the poet is influenced by that form of Śaiva Faith whihc was introduced into KaŚmīra by vasugupta about two hundred and fifty years before Somadeva. This form of the Hindu Faith was further spread by Bhāskara, and then in Somadeva's own time made popular by Abhinavagupta and his pupil Kṣemarāja and Yogarāja. The Śaivas form a powerful seat in the kathāsaritsāgara. The Śaiva was the most prominent Faith. It was influenced by Tāntricism. Influence of Tāntricism was quite evident in the case of the Śāktas who observed one of the three main paths of the supreme god mentioned in the Śiva sūtras of Vasugupta (VIII-IX cen. A.D.) The Tāntrika practices had become very popular in the society of the kss. Performance of these practices was considered to be a certain way of attaining every desired object. The doctrine of Divine grace was considered as an important spiritual system.

*

KS-33

Bhāvapuṣpa a Saiddhāntika-concept of worship : A Study

Dr. Nibedita Rout, Pondicherry

In the Śaiva system it was widely practiced that the worshiper of Śiva should worship Śiva by contemplating himself as Śiva, thus we find sayings like śivībhutaḥ prasannātmā śivasyārcanamācaret, that means the tranquil soul (eventually), becoming Śiva, may perform the worship of Śiva, another saying is śivo bhūtvā śivaṃ yajet which says one should worship Śiva by becoming Śiva. Such words like śivībhūtaḥ and śivo bhūtvā clearly means that the state of the consciousness of the worshipper should be transformed in the consciousness of Śiva while one performs worshipping Śva. He should be as pure as Śiva is. In another words the divinity or the quality of divinity (divyatva/divyabhāva) should be achieved before one sits for worshipping Śiva. The divinity consists of the qualities or the sentiments of nonviolence (ahiṃsā), control over sense (indriyāṇāṃ nigrahaḥ), forgiveness (kṣāntiḥ), compassion (dayā), knowledge (jñāna), austerity (tapaḥ), truthfulness (satya) and the capability of becoming (bhāva). These eight sentiments are expressed symbolically as flowers, those have to blossom in the heart of worshipper so that

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

the worshipper could make himself as a perfect medium like flowers to receive the divine Light and grace. This is the reason these sentiments are expressed symbolically as eight flowers in one of the earlist śaiva canon, the Vātulāgama and later that was adorably followed and repeatedly expressed in later śaiva literature.

However from various puranic and tantric textual sources it is found that these flowers of sentiments are alway a part of inner worship in Saiva cult. These flowers (puṣpas) are offered in special occasions like the worship is intended to achieve all success, prosperity etc. The best and effective way of offering of these eight-flowers is the juncture of three divisions of the day (the Dawn, the Noon and the Evenning). Interestingly there are few classical literary instances refers the association of these eight flowers with the well known Aṣṭamūrti form of Śiva.

❋

KS-34

A General Introduction of Siddha Philosophy

Swami Dharmananda Saraswathi, Kerala

The Siddha system of philosophy is one of the ancient systems contemporaneous with those of the submerged lands, Egyptian, Mesopotamian, Chinese and Grecian. Siddha system of philosophy is evolved with the evaluation of Mankind. The Tamils who are inhabiting the southern peninsula of the subcontinent of India udnertook a systemic study of nature and its elements and form what they were able to grasp they had developed highly systematized philosophy which is now known as 'Siddha', This system of philosophy is propounded by 'Siddhars', it can be traced to the pre-vedic period.

Historians of Dravidian culture claim that Siddha was highly developed much before the advent of veda traditions in Southern India. Siddha philosophical tradition was highly developed in the fields of spirituality, philosophy, psychology, technical knowledge, medical treatment, culture, moral awareness, community development etc. Siddha philosophy is named after the word 'siddhi' which means attainment of perfection or to identify with the Supreme.This is the highest goal of life. Sage 'Agartyar' is considered as the most reverent and prominent preceptor of Siddha Philosophy. This system inclined and turned towards Shaivism.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

According to Siddha Philosophy there are three categories, viz. Pati (Almighty), Paśu (individual soul) and Pāśam (Bondage). The realization of Ātman is with the blessings of Śiva.

*

KS-35

Svarṇagrāma-Vāsudeva and his commentaries on Tantrasārasaṅgraha and Prayogasāra

S.A.S. Sarma, EFEO Pondicherry

Kerala has had, from early times, a continuous and comparatively rich tradition of scientific and technical advances, as evidenced by the volume of literature of these disciplines presently available to us. The major scientific disciplines, which have been depicted in the literature produced in Kerala, are Tantra, Āyurveda and Jyotiṣa. The tantra literature produced in Kerala not only includes major manuals but also commentaries on them. This paper will bring light on the contribution of Svarṇagräma-Vāsudeva of Kerala (16th century) who wrote commentaries namely *Mantravimarśinī* on *Tantrasārasaṅgraha* and *Sarvāṅgasundarī* on *Prayogasāra*. His date, works, features of the commentary, texts quoted in the commentaries are some of the points which will be discussed in detail. Svarṇagrāma-Vāsudeva needs special mention for bringing back the discussion on theological part of the tantra literature which was neglected by the later authors of Kerala tantra.

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

SUPPLEMENTARY LIST OF SUMMARIES

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-1

वैदिकवर्णव्यवस्थायाःमूलाधारः

डॉ. राजेश्वरमिश्रः, कुरुक्षेत्रम्

वैदिकयुगीने समाजे वर्णव्यवस्थायाः मूलाधारस्य यद्यपि जन्ममूलकः कर्ममूकश्चोभयविधः सङ्केतः उपलभ्यते, परन्तु तदानीन्तना जनाः पारस्परिकीभावश्यकतां मनसिकृत्य स्व-रुचि-प्रकृति-क्षमता-योग्यतानुसारं कार्यं कुर्वन्ति स्म। प्रायो जनाः स्वकीयेन व्यवसायेनोत्कृष्टाः निकृष्टा वा न मन्यन्ते स्म, यतो ह्येस्यैव संयुक्तपरिवारस्य सदस्या अपि पृथक्-पृथक् व्यवसायमङ्गीकर्तुं स्वतन्त्रा आसन्। तथा हि—ऋग्वेदस्यैकस्मिन्मन्त्रे ऋषिणोक्तं यदहं स्तोमानां कर्त्तास्मि, मम पिता चिकित्सको भिषगस्ति, माता च दृषदादिषूपलेषु भृष्टानां यवानाञ्च चूर्णयित्री परिचारिका अस्ति। एवं सर्वेषां परिचरणेन नानाकर्माणः धनकामा वयं लोकेऽस्मिनवस्थिताः (कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी ननां—ऋ० 9.112.3)। तस्मिन्युगेऽङ्गीकृतेन सत्कर्मणा निम्नवर्णस्य जना अप्यात्मानमुच्चवर्णे स्थापयितुं पारयन्ति स्म। ऋग्वेदस्यान्य-स्मिन्मन्त्रे एवं प्रतिपादितं वर्तते यदार्यः दासो भवितुमर्हति स्म, दासश्चाप्यार्यो भवतिमापारयत् (ऋ० 6.22.10)। एवमेवान्यान्यपि बहूनि प्रमाणानि वेदेषूपलभ्यन्ते, यानि कर्माश्रितवर्णव्यवस्थां प्रमाणयन्ति। अतो वयं वक्तुं पारयामो यद् यत्र-तत्र जन्माधृतवर्णव्यवस्थायाः सङ्केते सत्यपि कर्ममूलकवर्णव्यवस्थापोषकानि बहूनि साक्ष्यानि संकीर्तयन्ति यद् वैदिकवर्णव्यवस्था गुणकर्मावलम्बिता आसीत्। वैदिकवाङ्मये आपतितान् वर्णव्यवस्थाविषयकान् सन्दर्भान् सम्यक् समीक्ष्य शोधपत्रेऽस्मिन् युक्तयुक्तिभिः स्वाभीष्टं मतं स्थापयितुं प्रयत्नो विहितः।

❋

V-2

गौतम-धर्मसूत्र में वर्णित राजधर्म (मनुस्मृति के आलोक में)

वेदप्रकाश, कुरुक्षेत्र

प्रस्तुत शोध-पत्र में सर्वप्रथम राजा शब्द की व्युत्पत्ति एवं उसका कोशगत अर्थ स्पष्ट किया गया है; उसके बाद राजा की उत्पत्ति विषय विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। राजा को निर्वाचित किया जाता था या राजा वंशानुगत या फिर इस विषय में दैवीय सिद्धान्त प्रचलित था; इसके लिए वैदिक-संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों, धर्मशास्त्रों, स्मृतिग्रन्थों से अनेक अंशों को उद्धृत करके

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रमाणित किया गया है। इसके पश्चात् गौतम धर्मसूत्र एवं मनुस्मृति में राजा के प्रमुख कर्त्तव्य बताये गये हैं; कि किस प्रकार अपने राज्य में चारों वर्णों और चारों आश्रमों की रक्षा करते हुए राजधर्म का पालन करना चाहिए। इसके पश्चात् दण्ड शब्द की व्युत्पत्ति एवं कोशगत अर्थ को स्पष्ट किया गया है; इसके साथ-साथ गौतम धर्म स्मृति एवं मनुस्मृति में विहित न्याय-विधान को आधुनिक युग में उसकी क्या उपयोगिता है, इस विषय पर गम्भीर चिन्तन किया गया है। इसकि बाद गौतम धर्मसूत्र एवं मनुस्मृति में विहित कर व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

❋

V-3

वैदिक संहिताओं में गो-महिमा

डॉ. कृष्णा देवी, कुरुक्षेत्र

वैदिक संहिताओं में गौ शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है। जैसे—पृथिवी, गाय, रश्मि, ज्ञान, वेदवाणी आदि। गौ शब्द का निर्वचन करते हुए यास्क कहते हैं—गौरिति पृथिव्या नामधेयम्। यद् दूरं गता भवति, यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति। अर्थात् यह पृथ्वी का नाम है क्योंकि यह दूर तक फैली हुई है या इस पर (भौतिक) पदार्थ गमन करते हैं। गौ शब्द एक ही अर्थ वाली दो धातुओं—गम् और गा से निष्पन्न है। गमन करने के कारण या गो शब्द पशु का भी वाचक है। वैदिक संहिताओं में गौ को देवत्व प्राप्त है। यह माता के समान उपकारी और आरोग्यदायिनी है। इसके उपकार से मनुष्य कभी भी उऋण नहीं हो सकता है। आधुनिक वैज्ञानिक भी मानते हैं कि गाय के दूध, दही, घी, गोबर आदि में अनेक कीटाणुओं को मारने की सामर्थ्य है। गोमूत्र से अनेक प्रकार के संरक्षण के लिए गो एक सर्वोत्तम पशु है, इसीलिये ही मैंने वैदिक संहिताओं में गो-महिमा को अपने शोध-पत्र का विषय बनाया है ताकि गो के बारे में सम्पूर्ण जानकारी उपलब्ध हो सके।

❋

V-4

सरस्वती का ऋग्वेदीय आधार

सदानन्द, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

ऋग्वेद न केवल भारत का अपितु सम्पूर्ण विश्व साहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ तत्कालीन सभ्यता एवं संस्कृति का दर्पण है। विश्व की प्राय: प्राचीन सभ्यताएँ नदी तट पर ही विकसित एवं समृद्ध हुई हैं। उसी प्रकार वैदिक सभ्यता भी नदियों के किनारे पर समृद्ध हुई। 'सरस्वती'

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तत्कालीन सभ्यता की श्रेष्ठतमा नदी थी। ब्राह्मण ग्रन्थों में सरस्वती को वाग्देवी के रूप में वर्णित किया गया है। पुराणों में इस का स्वरूप विद्या की देवी और ब्रह्मा की पत्नी के रूप में प्राप्त होता है। वहीं ऋग्वेद में यह नदी और देवी दोनों रूपों को धारण करती हैं। नदी रूप में यह वैदिक काल की सात मुख्य नदियों में से एक श्रेष्ठ नदी है। ऋग्वेद में सरस्वती की नदी व देवी दोनों ही रूपों में **''अम्बितमे नदीतमे देवितमे''** स्तुति की गई है। वैदिक सभ्यता का आधार सरस्वती नदी उस समय यह अत्यन्त वेगवती नदी थी। उस समय यह नदी हिमालय के उत्तरी भाग से निकलकर हरियाणा प्रान्त व राजस्थान के कुछ स्थलों से बहती हुई पश्चिमी समुद्र में गिरती थी। नदी का यह भौगोलिक परिचय अनेक ग्रन्थों में प्राप्त होता है। यथा समय धरातल पर अनेक भौगोलिक परिवर्तन हुए जिनके कारण यह नदी धरातल की ऊपरी सतह से प्रायः लुप्त हो गई। यत्र तत्र कुछ बरसाती नालों के रूप में आज भी यह नदी देखी जा सकती है।

आधुनिक काल में सरस्वती पर अनेक शोध कार्य चल रहे हैं। उपग्रहों से प्राप्त चित्रों और अनेक अनुसन्धानों के पश्चात् सरस्वती नदी का गन्तव्य मार्ग ज्ञात हुआ है। तदनुसार **''आदिबद्री''** को सरस्वती का उद्गम स्थल माना जाता है। वहाँ से प्रवाहित होकर यह पश्चिम-समुद्र की ओर जाती है। अनेक स्थलों पर तो इसका धरातल में वेग से प्रवाहित होने का भी संकेत मिलता है। इस वर्ष हरियाणा प्रान्त के **''कलायत''** आदि कुछ स्थलों पर तो इसका शुद्ध, स्वच्छ व निर्मल जल भी प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत शोधपत्र में ऋग्वेदीय सरस्वती नदी के सम्बद्ध आधुनिक परिप्रेक्ष्य में किये गये नूतन अनुसन्धानों के आधार पर इस विषय में सविस्तार विचार किया जाएगा।

*

V-5

वैदिक उषासानक्ता का स्वरूप

वैदिक देवशास्त्र में ऋषियों द्वारा अनेक युग्म देवताओं की परिकल्पना की गयी हैं जिनमें अश्विनौ, मित्रावरुणौ, इन्द्राग्नी, द्यावापृथिवी, इन्द्रावरुणौ आदि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और प्रसिद्ध युग्मदेव हैं। इनमें उषासानक्ता ऋग्वेदीय देवता-युग्मों की उस श्रेणी में आती हैं जिनका आह्वान् एकाकी मन्त्रों में हुआ है। उदयकाल की अधिष्ठात्री देवी उषा तथा रात्रि में प्रसिद्ध है। यास्क और शौनक दोनों ने ही उन्हें 'रात्रि' का 'अपरकाल' माना है, सूर्य से पूर्व रात्रि का नाम ही उषस् हो जाता है। इन्हें दो ऐसी सौभाग्यशालिनी देवियों के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो एक के बाद दूसरी प्रकट होती है और सम्पूर्ण जीवनों को प्ररित करती है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-6

वेदे रुद्र पदार्थस्य चर्चा

डॉ. शिव प्रसाद अग्निहोत्री, कर्णपुरम्

वेदमाश्रित्य रुद्रनामादिविवेचनमारभ्यते। तत्र प्रथमं प्रसिद्धतमे कोशे (अमर-कोशे) प्रसिद्धानां रुद्रानाम्नां मध्ये यानि वैदिके संहिताभागे लभ्यन्ते तानि स्थलनिर्देशपूर्वकं प्रदर्श्य, ततोऽधुनातन-कोशेष्वनुपलब्धानां परन्तु वेदभागे रुद्रानामत्वेन संभाव्यमानानां नाम्नां संकलनं च कृत्वा, श्रीरुद्रविषयकस्य कथाजातस्य पुराणेतिहासवाङ्मये प्राचुर्येणोपलब्धस्य बीजभूतानि वैदिकस्थलानि प्रदर्शयामहे।

प्रथमत आवश्यकमेंक निवेद्यते—सर्वत्र प्रथमतो यौगिकार्थमुद्दिश्य प्रयुज्यमानानि सर्वाण्यपि पदानि विशेषणरूपाण्येव भवन्ति। ततः प्राचुर्येण प्रयोगे यौगिकार्थ विस्मार्य सर्वथा रूढत्वं प्राप्य विशेषणरूपाण्येव विदधतीति सार्वजनीनमेतत्। प्रकृते रुद्रविषयेऽप्येतत्सर्वं समानम्।

एकत्र रुद्रपदयुतान्यप्यनन्तरं केवलं प्रयुज्यमानानि सर्वविभक्त्यन्तानि नामपदानि विशेष्यत्वेना-वागन्तव्यानीति स्वीकृत्याग्रिमो विचारः प्रवर्तत इति।

ऋग्वेदादिसंहिताभागे स्थितं रुद्रपदं द्विविधम्, एकं साक्षाद्रुद्रवाचकमपरमग्न्यादिदेवता विशेषणभूतम्। तत्र रुद्रदेवतावाचकं रुद्रपदं द्वितीयगणीयाश्रुविमोचनार्थकरुद्धातोर्णिजन्तादेव प्रथमतो निष्पन्नम्। श्रीभगवता यास्केन तु त्रिधा निरुक्तं रुद्रपदम्।

तत्र रुद्रदेवता-विषये रोदयतेर्निष्पन्नं यास्कबोधितं स्वीक्रियते। उणादिसूत्रमपि सर्वथाऽनुकूलम्। केचन रुद्रधारोरर्थविषये विवदन्ते, परन्तु तैत्तिरीयसंहितालोचनेन रुद्धातोरश्रुविमोचनार्थकत्वमेव स्वीकार्यमिति प्रतीयते। अत एव यास्केनापि निरुक्तित्रयं प्रदर्श्यार्थनिर्णयार्थं 'यदरुदद्' इति प्रदर्शितम्।

रुद्र नामानि प्रायः सर्वत्र संहिताभागे रुद्रविषयेऽनेकविभक्त्यतान्युपलभ्यन्ते, रुद्रस्यैवैतानि नामानीति बोधनाय रुद्रपदयुतैतन्नामघटितप्रमाणप्रदर्शनप्रयासः संपादितः अत्र प्रमाणस्थलनिर्देशो दिक्प्रदर्शनाय कृतः, विशेषविचारं तु शोध पत्र वाचने वक्ष्यामि।

''श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सपि उक्तं
भगवता श्रीकृष्णेन-रुद्राणां शङ्करश्चास्मि''

(अ० 10.23)

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

V-7

ऋग्वैदिक उषस् सूक्तों का समीक्षात्मक अध्ययन

कु. तृप्ति गोस्वामी, पीलीभीत (यू०पी०)

वैदिक संहिताओं में देवता ही प्रमुख रूप से स्तुत है तथा उनसे सम्बन्धित सूक्तों का ही अदाय भण्डार है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि वैदिक विश्वास एवं उपासना में देवियों का स्थान अपेक्षाकृत गौण है तथापि उनका महत्व ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। ऋग्वेद की सर्वाधिक गौरवशाली एवं महिमामण्डित देवी है—उषस्।

उषा देवी के निमित्त ऋग्वेद में 20 सूक्त कहे गये हैं तथा 300 बार उनका नामोल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद में उषा देवी की प्रशस्ति में जो मन्त्र है, वह सम्पूर्ण संहिता में सबसे सुन्दर, आकर्षक एवं गीतिमय है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो ऋग्वैदिक ऋषियों ने अपनी हृदय की सम्पूर्ण कमनीय कल्पनाओं का उषस् सूक्तों के प्रणयन में कर दिया, जिससे ये सूक्त इतने अधिक चित्ताकर्षक रूप से प्रस्फुटित हुये।

उषस् की प्रशंसा में वैदिक ऋषियों ने बड़ी भावुकता दिखलायी है। यह प्राणियों की नेत्री, फलों को उत्पन्न करने वाली, दिवदुहिता अपनी सहोदरा रात्रि के अन्धकार को दूर करती हुई दिखायी पड़ती है—

प्रति भद्रा अदृदात गवां सर्गा न रश्मयः।
ओषा अप्रा उरु जयः॥ 4/52/5

उषस् के स्वरूप की तेजस्विता न तो याजकीय कल्पनाओं द्वारा अवरुद्ध हुई है और न यज्ञ सम्बन्धी सन्दर्भों के कारण कहीं भी उनके स्वरूप में बोझिलता आयी है। अपितु यह तो एक नर्तकी की भाँति चमकीले वस्त्राभूषणों से सुसज्जित है तथा अपनी माता द्वारा अलंकृत एक कन्या के समान वह अपने सौन्दर्यमय स्वरूप का उद्घाटन करती है।

उषस् एक गृहस्थ पत्नी के समान है जिस प्रकार वह स्वयं सर्वप्रथम जागती है तत्पश्चात् सबको जगाती है,उसी प्रकार उषा ही सर्वप्रथम स्वयं प्रकट होती है तत्पश्चात् सम्पूर्ण संसार अपने-2 कार्यों में प्रवृत्त होता है।

उषस् का सम्बन्ध विभिन्न देवी-देवताओं के साथ पाया जाता है। उषा का सर्वाधिक निकटतम सम्बन्ध रात्रि से है। उषस् व रात्रि को सगी बहनें कहा गया है। उषा के शुभागमन पर रात्रि प्रेमपूर्वक अपने स्वरूप को समेटकर उषस् के लिये मार्ग प्रशस्त करती है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रात्रि के साथ उषा का घनिष्ठ सम्बन्ध सूर्य से पाया जाता है। उषा को वैदिक ऋचाओं में सूर्य की पत्नी-स्वसरस्य पत्नी कहा गया है। इसके अतिरिक्त उषा का अग्नि, मग व अश्विनी कुमारों से भी सम्बन्ध पाया जाता है। ऋग्वेद में उषस् की स्तुति करते हुये वैदिक ऋषियों ने उनसे अनेक प्रकार की कामनायें भी की है जिसमें धन, आयु, यश, वीर पुत्र, अन्न, सुख, शान्ति, समृद्धि व कल्याण की कामनाएँ प्रमुख हैं। वह प्रकाश की अधिष्ठात्री देवी है अतः ऋषिगण उनसे अमृततुल्य प्रकाश की कामना करते हैं— **महे नो अद्य बोधय राये दिवित्मती॥**

*

V-8

Vedic Idea : Peace And Harmony in Contemporary Crisis

Dr. Vimla Devi, Zamania

The Vedic Tradition has a powerful message for contemporary huminity which is gripped with a crisis, the nature of which is difficuld to be described in the ordinary and familiar terms of socialogy economics and polity. But this message can be discerned only if we consent to look upon the Vedic tradition not merely in its outer religions import but in deeper persuit of knowledge relating to which the Vedas call Prithvi, the Earth, Antariksha, Subtle levels of existence between matter and mind, Dyau, the plane of the mind Svah ( ), the world of light and Surya, the world of everlasting day or of the supramental light, and still beyond of the transcendental unity and oneness. For Veda is essentially and esaterically a book of knowledge. The knowledge that is only when is contained in the Vedic seed of integral knowledge that we can get its right clues and discover also its power of renewal and its capacity to initiate discoveries of newer knowledge and newer solutions to the problems of individuals and of the collectivity.

*

CS-9

कालिदास की सूक्तियों में राजधर्म

कमलेश, कुरुक्षेत्र

राजधर्म का अर्थ है—राजा का धर्म। धार्मिक मान्यता के अनुसार क्षत्रिय को ही राजा होना उचित है। प्रजा की रक्षा एवं पालन राजा का मुख्य धर्म है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सामाजिक जीवन के सम्यक् निर्वाह के लिए किसी भूमि विशेष के निवासी उस देश में स्थापित राज्य-संस्था का शासन स्वीकार किया करते हैं। उस देश के नागरिकों के जीवन में राज्य का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। अतः मानव-जीवन से सम्बद्ध साहित्य में राज्य का वर्णन और सूक्तिसृजन पर राजनैतिक दशा का प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी है। कालिदास की अधिकतर काव्य कृतियाँ, राजाओं के जीवन से सम्बन्धित है। वे राजाओं के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को चित्रित करने के साथ-साथ राजा और राज्य सम्बन्धी सूक्तियां भी कहते हैं।

*

CS-10

महाकाव्यों की परम्परा और विकास-कुमारसम्भव के विशेष सन्दर्भ में

प्रो. वेदप्रकाश उपाध्याय, चण्डीगढ़

महाकाव्यों का उद्भवकाल कालिदास से पूर्व का है और विकासकाल कालिदास से लेकर श्रीहर्ष तक है। क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय ने कालिदास को अश्वघोष से पूर्ववर्ती सिद्ध किया है। महाकवि कालिदास द्वारा रचित दो महाकाव्य हैं, जो कुमारसंभव और रघुवंश नाम से प्रसिद्ध हैं। इस महाकाव्य में हिमालय-वर्णन, पार्वती की उत्पत्ति, तारकासुर से पीड़ित लोगों का ब्रह्मा जी के पास जाना और उनके द्वारा शिव-पार्वती के पुत्र स्कन्द द्वारा तारकासुर के वध का उपाय बताया जाना, कामदेव द्वारा शिव की तपस्या में विघ्न डालना और शिव द्वारा उसे भस्मसात् किया जाना, पति के नाश पर रति का विलाप, पार्वती का संलाप और समागम विवाहेच्छुक शिव का हिमालय के पास सप्तर्षियों को भेजना, शिव की वरयात्रा और पार्वती से विवाह, शिव-पार्वती का दाम्पत्य-जीवन, विविध पर्वतों का भ्रमण और कैलाश पर्वत पर वापस आना, कार्त्तिकेय (कुमार) का गर्भ में आना, कुमार जन्म, कुमार का सेनापतित्व, कुमार का सैन्य संचालन, देवसेन का आक्रमणार्थ प्रस्थान, देवासुरसंग्राम, युद्धवर्णन और तारकासुर वध आदि विषय कुमारसम्भव में मिलते हैं। कुमारसम्भव के प्रथम आठ सर्ग ही कालिदास की कृति माने जाते हैं। काव्यशास्त्र की कसौटी पर परीक्षण करने पर कुमारसम्भव एक महाकाव्य सिद्ध होता है। इसी प्रकार रघुवंश भी कालिदास के उत्कृष्ट महाकाव्य का एक निदर्शन है।

कुमारसम्भव का स्थान महाकाव्यों के विकास की परम्परा में प्रारम्भ में ही आता है। इसमें कालिदास की प्रतिभा अभिव्यक्त हुई है। कलापक्ष तथा भावपक्ष का सुन्दर समन्वय कुमारसम्भव में देखने को मिलता है। कुमारसम्भव में सजीव वर्णन की स्वाभाविक छटा दृष्टिगत है। अलंकारों का

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कुशल प्रयोग, सौष्ठवपूर्ण छन्दोविधान, भाषा का परिष्कार और भावों की मनोज्ञता स्थान-स्थान पर मिलती है। कुमारसम्भव में वसन्त का स्निग्ध वर्णन विवाहित सुखों की सर्जना और प्रियतम के वियोग से होने वाली व्याकुलता आदि के वर्णन मिलते हैं। कुमारसम्भव को महाकाव्य के लक्षणों की दृष्टि से विचार करने पर एक सफल महाकाव्य स्वीकार किया जा सकता है। सत्य तो यह है कि काव्यशास्त्रकारों ने कालिदास और अश्वघोष आदि के महाकाव्यों को देखकर ही महाकाव्य के लक्षणों का निर्माण किया।

*

CS-11

माघ में पदपूर्वार्ध वक्रता

डॉ. जयप्रकाश नारायण, लखनऊ

महाकवि माघ विचित्रमार्ग एवं अलंकृत शैली के कवि हैं। अत: उन्होंने काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए काफी प्रयास किये हैं जो कुन्तक द्वारा प्रतिपादित प्राय: सभी वक्रताओं के उदाहरण के रूप में प्राप्त होते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि कुन्तक के वक्रोक्ति सिद्धान्त का प्रेरणा स्रोत माघ ही रहे होंगे।

पदपूर्वार्ध वक्रता के जितने भेद आचार्य कुन्तक ने विवेचित किये हैं उन सभी भेद-प्रभेदों के प्रयोग किसी न किसी रूप में माघ के शिशुपालवध में अवश्य मिल जाते हैं। माघ शब्द-प्रयोग की प्रक्रिया के सम्पन्न महाकवि थे। इसलिए शब्दों के चयन में जो भी कौशल अपेक्षित है वे उनका प्रयोग प्रयासपूर्वक किये हैं। आचार्य कुन्तक ने कविकौशल रूप पदपूर्वार्ध वक्रता के आठ भेद किये हैं—1. रूढ़िवैचित्र्य वक्रता, 2. पर्याय वक्रता, 3. उपचार वक्रता, 4. विशेषण वक्रता, 5. संवृत्ति वक्रता, 6. वृत्तिवैचित्र्य वक्रता, 7. लिङ्गवैचित्र्य वक्रता, 8. क्रियावैचित्र्य वक्रता।

*

P&B-12

धर्मकीर्ति के अनुसार स्वभाव हेतु विचार

देवीसिंह, कुरुक्षेत्र

बौद्धन्याय के प्रसिद्ध आचार्य धर्मकीर्ति ने हेतु के तीन भेद स्वीकार किए हैं। जिनमें क्रमश: स्वभाव हेतु, कार्य हेतु और अनुपलब्धि हेतु हैं। स्वभाव हेतु के विषय में सामान्यत: कहा जा सकता

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

है कि अपनी सत्ता, तत्त्व, साध्य का अपना रूप और तादात्म्यभाव से होने वाला हेतु ही 'स्वभाव' हेतु कहलाता है। जैसे—'अयं वृक्षः शिंशपात्वात्' यह वृक्ष है, क्योंकि यह शिंशपा है। इस प्रकार के अनुमान में 'शिंशपात्व' (शिंशपा होना) स्वभाव हेतु है। बौद्धजन्य के अनुसार किसी वस्तु का प्रत्येक धर्म, जो वस्तु के क्षण में रहता है, उस वस्तु का स्वभाव, स्वरूप या तद्रूप ही है, उससे साथ वस्तु का तादात्म्य मात्र ही है। इस तादात्म्य से होने वाली व्याप्ति को बौद्धन्याय में तदुत्पत्ति से होनी वाली व्याप्ति की अपेक्षा भिन्न माना गया है। क्योंकि वस्तु का स्वभाव उसके कार्य से भिन्न होता है।

*

P&B-13

आर्यदेव कृत चतुःशतक में शून्यवाद की अवधारणा

बौद्ध दार्शनिक सम्प्रदायों में शून्यवाद या माध्यमिक सम्प्रदाय का अपना विशेष स्थान है। यह मत बुद्ध दर्शन का चूडान्त विकास माना जाता है। इसका मूल भगवान तथागत की शिक्षाओं में ही निहित है। 'प्रज्ञापारमिता सूत्रों' में इस मत का विस्तृत विवेचन पहले से ही किया गया था। आचार्य नागार्जुन ने इस मत की पुष्टि के लिए 'माध्यमिक कारिका' की रचना की जो माध्यमिकों के सिद्धान्त प्रतिपादन के लिए सर्वप्रधान ग्रन्थरत्न है। बुद्ध के 'मध्यम मार्ग' के अनुयायी होने के कारण ही इस मत का यह नामकरण है। भगवान बुद्ध के द्वारा प्रतिपादित 'प्रतीत्यसमुत्पाद' के सिद्धान्त को विकसित कर 'शून्यवाद' की प्रतिष्ठा की गई है इस कारण इसे 'शून्यवाद' भी कहते हैं।

आचार्य नागार्जुन 'शून्यवाद' के प्रतिष्ठापक आचार्य थे। उन्हीं के समान उनके शिष्य आर्यदेव भी शून्यवाद के प्रतिष्ठापक आचार्यों में से अन्यतम थे। आचार्य आर्यदेव ने भी शून्यवाद की स्थापना के लिए अनेक ग्रंथों की रचना की। उनका 'चतुःशतक' शून्यवाद का प्रतिस्थापन ग्रंथ है।

*

P&B-14

बौद्ध दर्शन में अनात्मवाद का स्वरूप
(मिलिन्दपञ्ह के विशेष परिप्रेक्ष्य)

मञ्जु बाला, कुरुक्षेत्र

भारतीय दर्शन में दो धाराओं का उल्लेख किया गया है। आत्मवाद एवं अनात्मवाद। आत्मवाद को मानने वाले दर्शनों में मुख्य रूप से न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसक, वेदान्ती और जैन

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दर्शन आते हैं इसके विपरीत एक दार्शनिक धारा बौद्धों की है, जिसका मुख्य सिद्धान्त 'अनात्मवाद' है। यह सिद्धान्त (अनात्मवाद) जितना विरोधी उपनिषदों के 'आत्मवाद' का है उतना ही विरोधी वैशेषिक के द्रव्यवाद का भी है। बौद्धों का प्रमुख सिद्धान्त है—''सर्वमानात्मम्'' अर्थात् इस जगत् में जो कुछ भी है वह आत्मा से शून्य है। अनात्म (नैरात्म्य) का अर्थ है—आत्मा को न मानने वाला सिद्धान्त या आत्मा के न होने का भाव।

*

P&B-15

सुवर्णप्रभाससूत्र में षट्पारमिताएँ

बौद्धदर्शन के अन्तर्गत महायानसम्प्रदाय में 'सुवर्णप्रभाससूत्र' द्वितीय शताब्दी का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। सुवर्णप्रभाससूत्र में 21 परिवर्त है। इसमें न केवल महायान. के धार्मिक विश्वासों की चर्चा है, अपितु आचार, व्यवहार, तन्त्र, नीति दर्शन आदि का भी वर्णन है। इसलिए यह सूत्र जहाँ धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, वहीं सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन के लिए भी इसमें प्रभूत सामग्री उपलब्ध हो जाती है। प्रस्तुत ग्रन्थ में बोधिसत्त्वचर्या के अन्तर्गत षट् पारमिताओं का वर्णन उपलब्ध होता है जिनको पूर्ण करना प्रत्येक बोधिसत्त्व के लिए आवश्यक है। 1. दान, 2. शील, 3. क्षान्ति, 4. वीर्य, 5. ध्यान तथा 6. प्रज्ञा आदि षट् पारमिताएँ हैं। पारमिता से अभिप्राय है—साधना की उच्चतम कोटि तक पहुँच जाना। दान पारमिता के अन्तर्गत बोधिसत्त्व अपने दु:ख के निरोध के साथ-साथ अन्य आर्त प्राणियों के दु:खों को भी दूर करने का प्रयास करता है। सभी प्राणियों के लिए सर्वस्व त्याग कर देता है। शील पारमिता के अन्तर्गत संकीर्ण भावों को त्यागने के लिए उत्कृष्ट चेतना में काय, वाक् और मन का विनिमय एवं अनुशासन अनिवार्य है। क्षान्ति पारमिता में बोधिसत्त्व क्षान्ति पारमिता का अभ्यास करते हुए दूसरों के अपराधों को क्षमा कर देता है, मन के भीतर विकार नहीं आने देता बल्कि सब बातों को सह लेता है। किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए अधिकतम परिश्रम करने की शक्ति वीर्य पारमिता कहलाती है। ध्यान पारमिता चित्त की अविचल स्थिति है। ध्यान का अर्थ है चित्त की एकाग्रता। चित्त को एकाग्र किए बिना मन को वश में करना कठिन है।

प्रज्ञा पारमिता सर्वश्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति या मन और बुद्धि की सर्वोच्च सम्बुद्ध स्थिति, जिसमें मानव सब कुछ जान लेता है और उसी ज्ञान से जो प्राप्तव्य है, उसे प्राप्त भी कर लेता है। सुवर्णप्रभाससूत्र में बोधिसत्त्व षट् पारमिताओं को पूर्व बुद्धों के समान पूर्ण करने का व्रत लेता है जिससे उसके समग्र दु:खों की परिसमाप्ति हो सके।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PJ-16

Concept of Matter

Ramashish Prasad Singh, Begusarai

According to the Jain-Darshan in India seven types of elements supported as :

''जीवा जीवा स्त्रवबन्ध संवर निर्जर मोक्षास्तत्वानि''

जीव अजीव, आस्त्रव बन्ध संवर निर्जर और मोक्ष तत्व हैं।

In Jain philosophy matter and living are all different from each other and are independent to each other and having in finite properties Describing a book named anyayoga as :

अनंत धर्मकम् वस्तु अनंत धर्मात्यकमेव तत्वम्।

Matter is defined as :

गुणपर्यायवद द्रव्यम

So the matter can be generated, destroy and having a stable specific properties made and having physical existence are called matter in Jain's book It is termed as ''pudgal''

पूरयन्ति गलन्ति चेति पुद्गलः

It has capacity of combining with each other and can be detached from each other. Matter is further divided into two parts as molecule and matter. Rishi kanadi said,

''all things are made of atoms''

Evolutions of universe and its propagation as described in Bidas as :

If you see the statement of lord Krishna in Gita

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृति यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुरस्तानि कल्पाद्रो विसृजाम्यहम्

All beings and things go to me in the last time of destination and again they created in beginnings of universe. Now we come to think in the view of modern science, matter can be converted in energy and energy can be converted

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

in matter. Matter and energy are aquivalent to each other as in Einstein equation $E = mc^2$

Where e = energy

M = mass

C = $3*10^8$m/s

It is support of Vedic statement that

It manages the all matter which has physical existence are the reformation of energy called ''Tej''.

When the matter is divided by the method of fission or fusion, we get enough and unlimited amount of energy.

❋

PJ-17

Indian Marriage as Depicted in Jain Literture

Dr. Vimal A. Bafana, Pune

In the Jain society there is no specification about the certain age of the girl or boy for marriage but we can guess it. After completing studies and various arts, marriage had to be performed. The bride had to be searched by the parents of the groom. There are evidences that the groom's father paid some fee to the parents of the bride. This was a sort of bethrothal. In some descriptions it would be noticed that generally there is a convention that groom's father offered 'kanyāśulka' (bride's fee) to the bride's father. But it was not universal. There was no custom of child marriage.

The sons got married by their parents choice. For those who had no father, the mother would take a lead for their marriages. Sometimes the sons agreed to marry at the instance of his parents inspite of his dislike. The arranged marriages insured equal status in lineage, family, business and financial position. In this way special care was taken of purity of blood. But marriages called anuloma-pratiloma in the smṛtigrantha or marriges called intercast in modern India, both are found in the jain literature.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PJ-18

जैन दर्शन में अर्थक्रियाकारित्व

डॉ. दामोदर शास्त्री, नई दिल्ली

जैन दर्शन की मान्यता के अनुसार, इस लोक में जो कुछ भी 'सत्' है, या जो भी अस्तित्व वाला है, उसे 'द्रव्य' के नाम से जाना जाता है। प्रत्येक वस्तु का द्रव्य 'वस्तुत्व' गुण अन्तर्निहित, तदात्मभूत रहता है जिसके कारण उसमें अर्थक्रियाकारित्व संगत होता है अर्थात् वस्तु अपनी प्रयोजन-क्रिया से युक्त होती है।

अर्थक्रियाकारित्व

स्थूल रूप से अर्थक्रिया का अर्थ है—व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि से पदार्थ का क्रियान्वित होना। भौतिक पदार्थों में इसे स्पष्टतया समझा जा सकता है। जैसे मिट्टी से घड़े का निर्माण करते हैं, घड़े से पानी लाने व भरने आदि का काम लेते हैं। रूई से धागों का निर्माण करते हैं और धागों को वस्त्र का स्वरूप देते हैं। वस्त्र को पहनने-ओढ़ने व शीत-निवारण आदि के काम में लेते हैं। सोने से विविध आभूषण बनाते हैं और उन्हें विभिन्न अंगों पर धारण करते हैं। इन सब क्रियाओं में, पदार्थ का क्रियान्वित होना स्पष्ट देखा जा सकता है। दार्शनिक क्षेत्र में सामान्यतः 'अर्थक्रिया' से तात्पर्य है—व्यावहारिक उपयोगिता के विषय बनने के क्रम में क्रियान्वित होना। इस दृष्टि से वस्तु का ज्ञान व अनुभूतियों को विषय बनना, प्रयोजनानुसार विविध परिणतियों से युक्त होना आदि सभी स्थितियाँ 'अर्थक्रिया' में अन्तर्भूत हैं।

जैन आचार्यों ने अर्थक्रिया व अर्थक्रियाकारित्व—इन दोनों के सम्बन्ध में सूक्ष्म व मौलिक चिन्तन करते हुए इन्हें व्याख्यायित किया है। जैन दर्शन की मान्यता के अनुसार, अर्थक्रिया व अर्थक्रियाकारित्व को इस प्रकार परिभाषित किया जाता है—

अपने मौलिक अस्तित्व, सार्थकता व उपयोगिता को निरन्तर बनाये रखते हुए, देश-कालानुरूप सदृश या विसदृश, सूक्ष्म या स्थूल परिणतियों-रूपान्तरणों के माध्यम से क्रियान्वित होना ही पदार्थ की 'अर्थक्रिया' है, और उस क्रिया से सम्पन्न होते रहने की सहज योग्यता 'अर्थक्रियाकारित्व' है।

उक्त अर्थक्रिया सक्रिय-निष्क्रिय, मूर्त-अमूर्त आदि समस्त अस्तित्वयुक्त पदार्थों में अनादिनिधन रूप से, सूक्ष्मतम निरवच्छिन्न आन्तरिक परिणति-परम्पराओं के रूप से प्रवर्तमान रहती है। जैन दार्शनिकों ने क्रिया, परिणाम (भाव) व वर्तना—इनमें कुछ निरन्तर किया है। किन्तु अर्थक्रिया के प्रसंग में परिणाम आदि को भी 'क्रिया' के रूप में स्वीकार किया है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रत्येक पदार्थ में निहित 'अगुरुलघु' गुण व उसके अविभागी गुणांशों में प्रतिसमय होने वाली षड्विध हानि-वृद्धि का निरूपण भी इस 'अर्थक्रिया' के प्रसंग में किया गया है जिसमें जैन दर्शन की मौलिकता स्पष्ट झलकती है।

❋

PJ-19

मानवाधिकार तथा जैन दर्शन

कु० सीमा जैन, जयपुर (राज०)

जैन धर्म जिनों का धर्म है। जैन धर्म न केवल समाज तक सीमित है बल्कि यह विश्व धर्म है, यह धर्म सार्वजनिक है, सार्वकालिक है, सार्वभौमिक है। जैन धर्म मूलत: जैन दर्शन के चार सैद्धान्तिक स्तम्भों पर खड़ा है।

प्रो० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य ने अपनी महत्त्वपूर्ण कृति जैन दर्शन में लिखा है कि अहिंसा की दिव्य ज्योति विचार के क्षेत्र में अनेकानत के रूप में प्रकट होती है तो वचन व्यवहार के क्षेत्र में स्याद्ववाद के रूप में जगमगाती है और समाज शान्ति के लिए अपरिग्रह के रूप में स्थिर आधार बनती है अर्थात् आचार में अहिंसा, विचार में अनेकान्त, वाणी में स्याद्वाद और समाज में अपरिग्रह ये चार महान स्तम्भ हैं जिन पर जैनधर्म का सर्वोदयी भव्य, प्रसाद खड़ा हुआ है।

वैर, विद्वेष, काम-वासना, कषाय परिणति के चक्रवात में घिरे हुये मानव को इसने परित्राण और आत्मकल्याण के तट बन्ध दिये और श्रेयोमार्ग पर लगाया। अहिंसा प्रधान जैन धर्म में प्रतिपादित जीवन-शैली हिंसादि पाँच पापों के नियन्त्रण की शैली है।

हिंसादि पापों के विपर्याय में ही अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य ये पाँच व्रत कहे गये हैं। इन पाँच व्रतों का पूर्णतया पालन श्रमण तथा एकदेश पालन श्रावक जन करते हैं। आत्मसाधना की भावना से धर्माचरण में तत्पर साधु व गृहस्थ जन की जीवनचर्या ही प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप में प्रकृति से सम्पर्क कर पर्यावरण सन्तुलन तथा मानव के अधिकारों के संरक्षण तथा सम्बर्धन की पर्याय बन जाती है।

अत: यह कहने में अतिशयोक्ति न होगी कि जैन आचरण व जैनधर्म व दर्शन का भारतीय मानवाधिकार में उल्लेखनीय योगदान है।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

H-20

प्राचीन भारत में शूद्र नारी

डॉ. पाण्डेय अजय शंकर, पटना

प्राचीन भारतीय साहित्यों एवं विदशी वृत्तान्तों तथा पुरातात्त्विक साक्ष्यों से शूद्र महिलाओं की स्थिति का जाँच करना एक बहुत ही कठिन काम है। आधुनिक विद्वानों एवं इतिहासकारों ने जो कलम चलायी है उस से दो तथ्य सामने आती है। पहले साबित किया गया कि ब्राह्मणों का वर्चस्व था और शूद्रों की स्थिति दयनीय थी और दलित को शोषित करने वाले ब्राह्मणवाद ही थे। ऐसी वामपंथियों की धारणा हैं। किन्तु यह झूठ के पुलिन्दे के अतिरिक्त कुछ नहीं है। जब हम प्राचीन काल को गहन रूप से अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि भले ही कुछ शूद्रों की स्थिति दयनीय रही हो, वहीं बड़े संख्या में स्थिति अच्छी थी। **(शान्तनु, पराशर, बिदुर, विश्वमामित्र, वाल्मीकि)** आदि एक से बढ़ कर एक चिन्तक थे जो शूद्र कन्याओं को उत्तम मानकर वैवाहिक संबंध बनाये थे। इतना ही नहीं अनेक प्रतापी राजा तो शूद्र ही होते रहे जो नामी-ग्रामी थे। यथा **नन्द वंश, मौर्य वंश पाल वंश** आदि-आदि अनेक वंशों का हम नाम गिना सकते हैं। दक्षिण भारत में तो शूद्र ही कुलीन और प्रभावशाली होते रहे हैं। **वैदिक एवं उत्तर वैदिक ग्रंथों** को उठाकर आप देखें तो स्पष्ट कहेंगे कि शूद्रों के बारे में जो आधुनिक विद्वानों ने एलबम बनाकर रखा है वे तथ्यहीन है समझना चाहिए कि महिलाएँ, शिल्पी और नौकरी करने वाले शूद्रों की श्रेणी में आते हैं।

❋

H-21

Antiquity of the term 'mandir' and its synonyms

Dr. Samarendra Narayan Arya, Patna

Though the concept of dwelling place for image-worship seems to be clear in the Sutra literature of early centuries B.C., the process of the construction of temple as an institution starts only from the fourth-fifth centuries AD in order to serve the social values and material needs following endowments, landgrants and benefices all over the country. The meaning of the **'mandir'** as a temple like structure seems to be evident in literature from the sixth-seventh centuries and in inscriptions from the early eighth century onwards, but a number of its synonyms like **ashramam, dhamam, mandapam, sthanam, griham, devakulam, prasadam, alayam, bhavanam, niketanam, ayatanam** and so on significantly dominate in our sources from the Sutra period to early medievel phace.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

H-22

जैनराजतरङ्गिणी में वर्णित कश्मीर की ऐतिहासिक व राजनैतिक अवस्था

डॉ. अरुणा शर्मा, जम्मू

संस्कृत साहित्य में कल्हण ने सर्वप्रथम राजतरङ्गिणी शब्द का प्रयोग इतिहास रचना के लिए किया था तदुपरान्त जोनराज, श्रीवर, प्राज्यभट्ट व शुक आदि इतिहासकारों ने काश्मीर का इतिहास इसी नाम के अधीन रह लिपिबद्ध किया।

जोनराज के शिष्य श्रीवर ने 'जैनराजतरङ्गिणी' नाम से शहमीर वंश के चार सुल्तानों का क्रमबद्ध इतिहास लिखा जिसमें सत्ताईस वर्षों का (1459 ई० से लेकर 1486 ई० के बीच का) इतिहास 2241 श्लोकों में वर्णित है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

श्रीवर ने पूर्वकालीन इतिहास ग्रन्थों तथा अपने द्वारा प्रयुक्त इतिहास सामग्री के विषय में कुछ नहीं लिखा। उसे किसी सहायक ग्रन्थ की आवश्यकता ही न रही होगी क्योंकि वह आँखों देखा जो उसके वर्तमान में घट रहा था उसे ही वर्णन कर रहा था।

श्रीवर के ग्रन्थ में समकालीन एवम् श्रीमान्त राजाओं का उल्लेख भी मिलता है। श्रीवर द्वारा दिए गए अधिकतर नाम आधुनिक अनुसंधानों में ठीक उतरें हैं। यह जैनराजतरङ्गिणी की काश्मीर इतिहास को महत्त्वपूर्ण देन है।

राजनैतिक अवस्था

श्रीवर ने जैनुलाब्दीन के राज्य काल की प्रशंसा की है। अनेक दिशाओं में फैले हुए शत्रुओं को मारकर पैतृक देश में आकर राम के समान राज्य को प्राप्त किया। श्रीवर ने काश्मीर में तत्कालीन शासन तन्त्र में आ रहे परिवर्तन का वर्णन भी किया है और पूरी निष्पक्षता के साथ किया है। सैय्यदों का प्रभाव, राजवंश से वैवाहिक संबंध स्थापित होने से, बढ़ गया था। जैनुलाब्दीन भी सैय्यदों के बढ़ते प्रभाव से आशंकित था। एक बार उसके द्वारा सैय्यदों को काश्मीर से निष्कासित करने का उल्लेख भी जैनराजतङ्गिणी में मिलता है। श्रीवर ने भी तृतीय तरंग में काश्मीर की इस स्थिति के लिए शोक प्रकट किया है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

H-23

सीतामहीमण्डलस्य धरहरवाग्रामः

प्रो. राधारमण ठाकुरः, देवघरस्य

सीरध्वजो जनकः शुभे लग्ने हलकर्षणं कुर्वन् सीरसम्पर्केण भूगर्भादेकां कन्यां प्राप्तवान्। सैव कन्या सीतानाम्ना विख्याता। सीतायाः जनित्वेन सीतामही (सीतामढ़ी) सुविख्यातास्ति। बिहारराज्यस्य जनपदः सीतामही (सीतामढ़ी) वर्तते। प्राचीनमिथिलायाः राजधानी जनकपुरधाम वर्तते सम्प्रति नेपालराष्ट्रे। सीतामहीनगरतः प्रायशश्चत्वारिंशत् कि.मी. (40) पूर्वोत्तरे जनकपुरधाम अस्ति। सीरध्वजो जनको जनक-पुरादारभ्य सीतामहीनगरपर्यन्तं हलकर्षणं चकार। अत एवोक्तयोर्नगरयोर्मध्ववर्तिनी भूमिरतीवोर्वरा-शक्तिसम्पन्ना वर्तते।

सीतामहीजनकपुरमध्ये वरीवर्ति धरहरवाग्रामः। धरति (सद्गुणान्) इति धरः हरति (दुर्गुणान्) इति हरः द्वयोः कर्मणि गतिशीला सुगन्धिता च वाति (वा) इति धरहरवा नगरी। धरहरवाग्रामात् पश्चिमे बज्जिकाभाषाभाषिभिरुक्तं कदापि यदयं ग्रामः "धरोहर बा"। इदमेव प्राञ्जलीकृत्य संस्कृतिकृत्य च नामकरणं जातं यद् "धरहरवा" इति। ग्रामोऽयं विदुषाभागारो दुर्लभवस्तुभाण्डागारोऽपि वर्तते।

❋

IL-24

संस्कृत व्याकरण में लिङ्ग विचार

लिङ्ग के विषय में जितने विस्तार से संस्कृत भाषा में चर्चा की गई है उतने विस्तार से किसी अन्य भाषा में नहीं कहा गया है। तदनुसार यौन चिह्न स्त्री व पुरुष के भेदक हैं अर्थात् कुछ शारीरिक विशेषताएँ हैं जिनके कारण स्त्री को स्त्री व व्यक्ति को पुरुष कहते है। ये विशेषताएँ ही लिङ्ग भेद का कारण हैं। परन्तु शारीरिक चिह्नों के आधार पर शाब्दशास्त्र में लिङ्ग व्यवस्था करना अत्यन्त कठिन है। अतः वैयाकरण लिङ्ग विषयक अपनी शास्त्रीय परिभाषा प्रस्तुत करते हैं।

यद्यपि संस्कृत विद्वानों ने यह अनुभव कर लिया था कि लिङ्ग के नियम व्याकरण द्वारा सर्वथा नियन्त्रित नहीं किए जा सकते और यह उद्घोषणा की थी कि इस सम्बन्ध में शास्त्रोपदेश अनिवार्य नहीं है फिर भी पाणिनि आदि ने उपलक्षणार्थ लिङ्ग के विषय में अनेक नियमों का उल्लेख किया है जिनमें से विशेष नियम लिङ्गानुशासन में वर्णित हैं।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

IL-25

पदविभाजन में उपसर्गों का स्थान

सुनीता तक्षक, कुरुक्षेत्र

संस्कृत भाषा का विश्लेषण करते समय अधिकांश भाषाशास्त्रियों ने संस्कृतशब्दराशि को चार भागों में वर्गीकृत किया है—नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। आचार्य यास्क ने निरुक्त शास्त्र की आधारशिला रखते हुए अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात—इन चार प्रकार की पदजातियों का निरूपण किया है। जितना ही समुदाय है, वह उपर्युक्त पद के चार विभागों में समाहित है और यास्क के व्याख्येय ग्रन्थ निघण्टु पदकोष का सम्पूर्ण पदसमूह भी इनसे व्यतिरिक्त नहीं है। पाणिनि अपने व्याकरण में साक्षात् रूप से सुबन्त और तिङन्त दो प्रकार के पद मानते हैं। इसके अतिरिक्त उपसर्ग और निपात को एक करके तीन पद माने जा सकते हैं, या फिर गति और कर्मप्रवचनीय को उपसर्ग और निपात से भिन्न मानकर पाँच या छह प्रकार का भी पदविभाग माना जा सकता है। पद की विभिन्नता होते हुए भी यास्क ने पद-चतुष्टय को ही मान्यता दी है। ऋग्वेद प्रातिशाख्य में भी इसी वर्गीकरण के दर्शन होते हैं। ''नामाख्यातमुपसर्गो निपातश्चत्वार्याहुः पदजातानि शब्दाः'' अर्थात् शब्दस्वरूपवेत्ता वैयाकरण नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात इन चार प्रकार की पदजातियों का निरूपण करते हैं।

*

IL-26

श्री विष्णुसहस्रनामान्तर्गते दशप्रमुखनाम्नां व्युत्पत्तिविवेचनम्

(शाङ्करभाष्यस्य - आलोके)

कुमारी शिवानी, कुरुक्षेत्रम्

अस्मिन् शोधपत्रे मया दशसु नामसु पुँल्लिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग-नपुंसकलिङ्गवर्तिषु, तेषां व्युत्पत्ति-चिन्तनं कृतम्। शङ्कराचार्यस्य व्युत्पत्तिम् आधारभूतां स्वीकृत्य अन्येषाम् आचार्याणां व्युत्पत्ति-विश्लेषणमपि मया दर्शितम्। यथा कृतिः, अस्य शब्दस्य लक्षणं शङ्कराचार्येण इत्थं दर्शितम्—पुरुषप्रयत्नः कृतिः क्रिया वा, सर्वात्मकत्वात्तदाधारतया वा लक्ष्यते कृत्येति वा कृतिः। तदनुसारं कृधातोः भावे क्तिन् प्रत्यये सति स्त्रीलिङ्गे, एकवचने कृतिशब्दो निष्पद्यते। अस्य पर्यालोचने इत्थं दर्शितम्—कृत्यालक्ष्यत इति कृतिः, कृतेः कर्त्ता इत्यर्थः। अत एव कृतिरिति नाम्ना कर्त्ता नारायण एव बोध्यते, यद्वा कृतिः प्रयत्नस्तद्रूपो भगवान् नारायणस्तन्नाम्नोपास्यते। सत्यभाष्यकारः 'डु कृञ् करणे तनादिकः', तस्माद् भावेक्तिन् प्रत्यये सति शब्दस्य सिद्धिं करोति। वैदिककोशे कृत् धातोः क्तिन् प्रत्ययः, कर्तनयन्त्रम् अर्थात् कृपाणः, क्रिया

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कौशलं कर्त्तव्यम् इत्यादयः अर्थाः गृहीताः। द्वितीयः अर्थः यशः, अन्नम् इति। (i) यशः—द्वेषीजनानां मर्म कष्टं वा कर्तयति अर्थात् यशोहि द्विषां मर्माणि कृन्तति। (ii) एवमेव सम्यक् रूपेण उपयोगं न कुर्वद् अन्नमपि आयुः क्षीणं करोति अर्थात् अन्नमपि असम्यक् आयुः एव कृन्तति। आंग्लभाषायाः corn (कार्न) शब्दः कृत् निष्पद्यते। यशसोऽर्थे इन्द्रस्य उद्धरणमस्ति—

तमुत्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे।
महीव कृतिः शरणत इन्द्र प्र ते सुम्मानो अश्नवन्॥

*

IL-27

निरुक्त के प्रथम अध्याय में वर्णित कृदन्त

वेद के षडङ्गों में निरुक्त का स्तोत्र की संज्ञा दी गई है। वेदार्थज्ञान में यास्कीय निरुक्त परमावश्यक है। निरुक्त एक विज्ञान है। निर्वचन शास्त्र की प्रक्रिया के ज्ञान के लिए भी इसका अध्ययन किया जाना चाहिए। क्योंकि 'ज्ञान की प्रशंसा होती है तथा अज्ञान की निन्दा'। वस्तुतः निरुक्त वेदमन्त्रों की व्याख्या-पद्धतियों का प्रकाशक ग्रन्थ है।

वर्तमान शोधपत्र में निरुक्त के प्रथम अध्याय में उपलब्ध वर्तमानकालिक क्रियावाची कृदन्त-पदों का विश्लेषण प्रस्तुत करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया गया है।

*

IL-28

बांदा जनपद की बोली में अवशिष्ट संस्कृत भाषा

डॉ. रामप्रकाश गुप्त, बांदा (उ०प्र०)

संस्कृत भाषा के बारे में अधिकांशतः यह भ्रमित किया जाता है कि यह भाषा मृत भाषा है तथा यह कभी जन साधारण की बोलचाल में नहीं रही, यदि थी भी तो कब तक रही? अधिकांशतः यह मानते हैं कि यह विद्वानों एवं ब्राह्मणों की भाषा रही है। जन साधारण से इसका कोई सम्बन्ध नहीं रहा।

इन्हीं शंकाओं को लेते हुए उत्तर प्रदेश के अति पिछड़े भाग में स्थित बांदा जनपदीय बोली को आधार बनाकर इस शोध के द्वारा एक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसमें जनपदीय बोली के शब्द भण्डार, शब्दांश, वाक्य विन्यास, ध्वनि, ध्वनि परिवर्तन आदि का संस्कृत भाषा के शब्द भण्डार,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वाक्य प्रयोग आदि से साम्यता प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध करने की कोशिश की गई है। कि संस्कृत कभी जन सामान्य की बोली रही होगी। यथा—

वाक्य विन्यास — का करसि < किं कोरिसि (संस्कृत)
कहां जासि < कुत्र गच्छसि
या जल तुम्हार योग नाहि < इदं जलं त्वया योग्यं नास्ति।
शब्द भण्डार — बम्बुर < बर्बुर, अम्ली < अम्ल
नीम्बी < निम्ब आदि।

*

IL-29

The Influence of Sanskrit on Comparative Philology and Linguistics

Dr. A.P. Francis, IIAS Shimla HP

India may rightly claim to be the original home of scientific linguistics. It is universally accepted that the discovery of the Sanskrit language by European scholars at teh end of the eighteenth century was the starting point from which developed the study of the Comparative Philology of the Indo-European languages and eventually the whole science of modern linguistics. Scholars engaged in the study of linguistics have paid high tributes to the ancient grammarians of India like Pānini for their keen observation and accurate description of language behaviour. A general sruvey of the part played by the 'discovery' of Sanskrit and writings of ancient Indian grammarians will show this fact. The inspiration that India has ben giving to the study of the various aspects of language is still continuing.

*

PR-30

वाधूल स्मृति में प्रतिपादित नित्यं एवं नैमित्तिक कर्म एक विवेचन

वाधूल स्मृति एक लघु स्मृति है। इसमें कुल 233 श्लोक हैं। इसमें केवल गृहस्थ ब्राह्मण के ब्रह्ममुहूर्त से लेकर सायं सन्ध्यापर्यन्त नित्य तथा नैमितित्तक कर्मों का विधान है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जीवन के साधारण से साधारण क्रिया-कलापों का भी धर्मसूत्र ग्रन्थों ने तथा स्मृति ग्रन्थों ने विवेचन किया है। मनु, याज्ञवल्क्य, दक्ष इत्यादि स्मृतिकारों ने साधारण से साधारण नित्य कर्मों के जो निर्धारित किए थे वह ब्राह्मण को आचारवान् बनाने के उद्देश्य से ही किए थे। वाधूलस्मृति का प्रणयन भी ब्राह्मण को आचारवान् बनाने के उद्देश्य से किया गया है क्योंकि वह समाज का तथा राष्ट्र का पुरोहित है, अगर वह आचारसम्पन्न नहीं होगा तो समाज तथा राष्ट्र पथप्रदर्शक नहीं बन सकता।

*

PR-31

गौडपाद कृत माण्डूक्यकारिका के अन्तर्गत 'अजातवाद' का स्वरूप

सीमा रानी, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

आचार्य गौडपादकृत 'माण्डूक्यकारिका' अद्वैत-दर्शन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह मूलतः 'माण्डूक्योपनिषद्' पर आधारित है। इस ग्रन्थ में 215 कारिकाएँ हैं तथा ये चार प्रकरणों में विभक्त हैं—

(i) आगम प्रकरण (ii) वैतथ्य प्रकरण (iii) अद्वैत प्रकरण (iv) अलातशान्ति प्रकरण।

आचार्य गौडपाद ने अलातशान्ति नामक चतुर्थ प्रकरण में अन्यान्य दार्शनिकों के कार्यकारणवाद सम्बन्धी विभिन्न मतों को प्रस्तुत कर उनका खण्डन किया है तथा अपने सिद्धान्त 'अजातवाद' की स्थापना की है। 'अजात' शब्द का अर्थ है—अनुत्पन्न। जनि प्रादुर्भावे धातु से 'क्त' प्रत्यय लगाकर 'जात' शब्द बनता है तथा नञ् (अ) जातः इति अजातः, इस अर्थ में नञ् तत्पुरुष समास से अजात शब्द निष्पन्न होता है। अतः जो जन्म से रहित अर्थात् अनुत्पन्न है, वह अजात है।

*

PR-32

कर्म एवं पुनर्जन्म की धर्मशास्त्रीय अवधारणा

कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धान्त भारतीय धर्मों का अत्यन्त मौलिक सिद्धान्त है। यह उस प्रश्न का समाधान है, सभी विचारशील व्यक्तियों के मन में उठा करता है। पुनर्जन्म का उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है। मनुष्य अपने कर्मों एवं आचरण से अपना भविष्य बनाता है, इस सिद्धान्त की

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शिक्षा उपनिषदों में मिलती है—जो जैसा आचरण करता है वह वैसा ही होगा, अच्छे कर्मों वाला अच्छा (जन्म) पायेगा, दुष्कर्मों वाला बुरा (जन्म) पायेगा, पुण्य कर्मों से पुण्य (पवित्र) होता। दुष्कर्मों से बुरा, मनुष्य काममय है, उसकी जैसी कामना होगी वैसी ही उसकी इच्छा शक्ति होगी, उसकी जैसी इच्छा होगी वैसा ही उसका कर्म होगा और जो कुछ कर्म वह करता है वैसा ही फल वह प्राप्त करेगा। वास्तव में कर्म सिद्धान्त तीन बातों पर बल देता है—1. यह वर्तमान अस्तित्व को अतीत अस्तित्व अथवा अस्तित्वों में किये गये कर्मों का फल मानता है, एक प्रकार प्रायश्चित्त मानता है, 2. बुरे कर्मों का नाश सत्कर्मों से नहीं हो सकता है, दुष्कर्मों का भोग तो भोगता ही है, 3. दुष्कर्म के लिए जो दण्ड होता है, वह व्यक्तिगत एवं स्वयं होने वाला होता है। यहाँ पर संयोग एवं भाग्य की बात ही नहीं उठती।

पापों के फलस्वरूप पुनर्जन्म पाने से सम्बन्धित उल्लेखों से धर्मशास्त्र भरे पड़े हैं, इनमें प्रमुख रूप से जिनमें दुष्कर्मों के परिणाम स्वरूप निकृष्ट योनियों में जन्म के उदाहरण बहुधा दिये गये हैं अर्थात् जो मनुष्य नीच कर्म करता है उसे वैसा ही नीच जन्म अगले जन्म में मिलता है।

भौतिक जगत् में यह नियम सब लोग जानते हैं कि प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया अनिवार्यतः होती है। मानव जगत में प्रत्यक्ष रूप से यह अनुभव होता है कि जो जैसा करेगा, वैसा उसे भोगना पड़ेगा। प्रत्येक कर्म का तदनुरूप फल भोगना ही होता है।

❋

PR-33

Yoga based on the Experiential knowledge in Bhagavad Gītā

The philosophy of Rājayoga is based on 4 basic principles of yoga namely wisdom, compassion, surrender and non violence. Srikṛṣṇa is considered as the king of yogis. According to him yoga have been practicing traditionally by Rājarṣis who were married having children living a abundance. Faith, family, federation, fratenity and faith in the fatherhood of God were inevitable for yogins. Though it is highly secret, it can be studied by any one irrespective of cast, colour continent and even by women. The important techniques of Rājayoga are :

i. meditating at the sport between eyebrows and

ii. meditating at the spot in innermost recess of human heart. This is the most important technique.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

These techniques should not be instructed; it can only be transmited by divine person.

Gītā's vision is connected with body, world and God.

Kṛṣṇa gives importance to meditation on the unmanifest which results in altruism.

In Bhagavad Gītā Śrīkṛṣṇa says the yardstick of spiritualism is the totality of eternal bliss, unconditional mercy and supreme peace.

❋

PR-34

अग्निहोत्रकर्म्मणः सोपपत्ति निरूपणम्

प्रो. लक्ष्मीश्वर झा वेदविभागे, नई दिल्ली

यज्ञस्य लक्षणं द्रव्यं देवतात्यागः याग इति कात्यायमः। अग्नौसोमाहुतिर्यज्ञ इति याज्ञवल्क्यः उमाभ्यां लक्षणाभ्यामेक एव पदार्थः सिद्धो भवति। तत्र द्रव्यदेवतयोः संयोगात् कस्यचिद् पदार्थ विशिष्टस्योत्पतिर्भवति तदैव यज्ञस्य यज्ञत्वम्। द्रव्यं नाम समस्तं भूतंभौतिकं वस्तुजातमित्येकः पक्षः। अन्ये च हविपुरोडाश सोमपशुप्रभृतिभ्यो निष्पन्नः पदार्थः द्रव्यम्। तत्र देवताभिः सम्पद्यमानेषु यज्ञेषु सर्वाणि वस्तुजातानि भूतानि भौतिकानि दृष्टिपथिसमागतानि द्रव्यत्त्वेन हूयन्ते तस्मात्सर्वहुतयज्ञ इति संज्ञा परन्तु मनुष्यादिभिः द्विजातिभिश्नुष्ठीयमानेषु यज्ञेषु हविपुरोडाशपशुसोमप्रभृतयः एवद्रव्यं नेतरयः।

इत्थं यज्ञः द्विविधः देवतादिभिः सम्पद्यमानः प्रकृतौ प्रतिक्षणं प्रवर्तमानः प्रकृतियज्ञ अपरश्च द्विजातिभिः होताब्रह्माध्वर्युप्रभृतिभिः ऋत्विग्भिः सम्पद्यमानः। तत्र मनुष्यादिरनुष्ठीयमानस्य यज्ञस्य फलं स्वर्गप्राप्तिः देवादिभिश्च सम्पद्यमानस्य यज्ञस्यफलं विश्वसृष्टिः। तेषु यज्ञेषु अग्निहोत्राख्यः यज्ञः सर्वप्रथमः। दर्शपौर्णमासाभ्यां अस्य विश्वस्यसृष्टिः तथाचाग्निहोत्रेणोतन्नस्य विश्वस्य संरक्षणं सम्पोषणंञ्च।

❋

PR-35

Impact of Indian Philosophy on William Cowper

Dr. D.N. Pandey, Banasthali, Rajasthan

William Cowper, in the History of English literature is famous for his writing of the satiric verses. The Critics of Cowper though have judged him by

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

various angles but they fail to find out the philosophical phenomenon existing in his satric verses. The pun used by him in his verses revcals the elements of Indian philosophies. He presents the real philosophical face of a man and being inflicted with depression when he peeps inside his body, he touches the height of the light of Indian philosophy to overcome depression. For instance he says, ''God moves in a mysterious way'', that matches with the sense of Upanishads in which the supreme Brahma is described in allegoric way. In another piece of poem he says-

"Judge not he Lord by feeble sense",
but trust hism for his grace

The same idea about great soul is illustrated in Kathopanishad also as such- ***Nayamaatma pravachanena labhayah*** etc. Hence, the paper brings about the common philosophical approach of Cowper and Indian philosophical ideology. It sheds light also on the elements of the Indian philosophy mentioned in semantic on the works of William Cowper.

Therefore, it succeeds to bring to light the new finding in the light of Indian philosophies from the comprehensive study of the satiric verses of William Cowper.

❋

PR-36

The Concept of Ultimate Reality in the Upaniṣads

Bagmita Sandilya

The Upaniṣads are regarded as a class of literature independent of the vedic hymns and the Brāhmanas. They attempt to monalise the religion of the Vedas without disturbing its form, by giving the emphasis on the aspect of knowledge nather than on karma. In simple words, it may be described as 'a shifting of the centre from the outer to the inner world.' Infact, in some hymns, the conception of a single central power was formulated in the Samhitās and Brāhmanas. In the Ṛgveda also, we have found different approaches of the seers towards the development of this unity on central power. The Upaniṣads carry out this monistic tendency of the samhitas to its logical extreme. They recognise only one spinit-almighty, eternal, incomprehensible etc.' In the present write-up, we propose to discuss to different conceptions of this ultimate reality on Brahman in order th bring out the main significance of the Upaniṣads.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

PR-37

Liberation : A meeting point of Sankara and Aquinas

Dr. A.P. Francis, IIAS, Shimla HP

Liberation is the all-orienting goal of the teaching of St. Thomas Aquinas as it is of the teaching of Sri Sankaracharya. Both defined it as the blissful intellectual experience of the Godhead and the complete cessation of man's ignorance. Each one of them is regarded within his own tradition as a thinker of genius and standard-bearer of orthodoxy. They are remarkably akin in their leading concern, their exegetico-philosophical method, and in many of their settled conclusions. To the Scriptures, Sruti or Bible, which were their home-basis, and to all the significant doctrine which they found in their cultural heritage they gave that kind of illuminating critical treatment which without canceling faith, places the accent on the elements of truth and casts out untruth and confusion. It is, therefore of no small interest to devise an encounter between them and to compare their respective teaching on the important subject of liberation. The famous citations from the basic texts are self-explanatory in this regard.

The topic liberation is so central in the writings of Sankara and Aquinas that a short paper cannot be expected to do justice to it. Only the salient points of their teaching could be gathered here but they suffice to show that their doctrines are much less heterogeneous than might be expected from their different backgrounds. I venture to say that their similarities are due to the fact that their metaphysics of the Godhead is largely identical whereas their differences arise from their diverse epistemologies. This suggestion may open the way to further fruitful comparison.

TS & FA-38

कुमाऊँनी लोककला (रंग एवं रंगयोजना)

डॉ. कृष्णा बैराठी, अल्मोड़ा

कुमाऊँनी लोक-चित्रों की अपनी विशेषता एवं अपना एक निश्चित स्वरूप है। जिसके द्वारा उनके कुमाऊनी होने का दावा किया जा सकता है। इसके पृष्ठ में कोई और तथ्य नहीं वरन् एकमात्र कारण है, इनका आकारबद्ध स्वरूप। जो मुख्यत: कला के आधारभूत तत्वों में गुंथा होता है। इन तत्वों से अभिप्राय है, रंग-योजन, आकार, पोत, अन्तराल, रेखा आदि का समायोजन। इस कला में इन तत्वों का समायोजन किस प्रकार हुआ है इसे हमें निम्न प्रकार से स्पष्ट करते हैं—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

1. रंग एवं रंग-योजना

2. कुमाऊँनी लोक-चित्रों की शैलियाँ

1. **रंग एवं रंग-योजना :** किसी भी कला में भाव या लावण्य के प्रतिस्थापन के लिए रंग का महत्वपूर्ण स्थान होता है। कुमाऊँनी कला के चितेरे भी रंगों के मोह को छोड़ नहीं पाये हैं। वह जिस भी स्रोत से रंग तैयार कर सकते थे, करने का प्रयास किया है। इन लोक चित्रों में रंगों का प्रयोग कहाँ-कहाँ व किस प्रकार हुआ है उससे पूर्व इन रंगां की प्रकृति, स्रोतों को जान लें तो बेहतर होगा।

2. **रंगों की प्रकृति व स्रोत :** कुमाऊँनी लोक-चित्रों के अंकन में कई प्रकार के रंगों का प्रयोग हुआ है, जिनमें वानस्पतिक रंग, खनिज रंग, मृण्यम या पार्थिव रंग, रासायनिक रंग, धान या आटे से तैयार किये गये रंग तो आते ही हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार से तैयार किये गये रंग व पदार्थ भी इनके अंकन में उपयुक्त हुए हैं, जिनमें स्याही, अष्ट गंध, अभ्रक या चिलचिला रंग, चंदन, कोयले से तैयार किया गया काला रंग, घृत आदि आते हैं। आधुनिक युग की रंग योजना में ''तैल रंगों'' का प्रयोग किया जाने लगा है। बहुत प्राचीन काल में जब बनाये पाउडर के रंग बाजार में उपलब्ध नहीं होते थे तब इन रंगों को हाथों से तैयार किया जाता है। सम्पूर्ण विवरण शोधपत्र में द्रष्टव्य है।

*

TS & FA-39

A Glimps of the Golden History of Indian Medical Scientists

Dr. Kanwal K. Sharma, Meerut (U.P.)

The Indian system of medicine and surgery is available in the ancient books of Ayurveda like Charka-samhita (500 BC), Sushruta-samhita (500 BC) and Bhel-samhita (700 BC). Out of the fine symposia quoted in Charaka-samhita, the description of the proceedings of only symposium has been reproduced int the present communique. The subject of this symposium was ''The salutary and unsalutary influences of Vata''.

Various participants expressed their view regarding the characteristics of Vata, provoking factor, allaying agents and doings of Vata moving within bodies

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri

and outside bodies both when excited and when quiscent, both within the body and when at large in the universe.

They discussed the six charactersitics of Vata, the two kinds of affecting factors, the multifarious activity and the four distinct functional variations of Vata and the individual actions of Kapha And Pitta.

The standard of ideas expressed in the symposium has smashed the foundation of the building erected on prejudiced and false assumptions held by foreigners. Rewriting of an unbaised and true history of India has been suggested.

*

TS & FA-40

वास्तु एवं धर्म

तिलकराज शर्मा, जम्मू

भारतीय संस्कृति देवमय है और इसमें जितने भी सांसारिक पदार्थ एवं प्राणियों की उत्पत्ति का स्वरूप दिखाई देता है, वह देवमय माना जाता है। इसलिए सभी सत् एवं शास्त्र सम्मत् कार्यों को धर्म और असत् एवं क्रियाहीन कार्यों को अधर्म की श्रेणी में रखा जाता है।

संसार की सभी मानव सभ्यताएँ भवन निर्माण को एक सांसारिक कृत्य मानती हैं जबकि भारत में भवन निर्माण को धार्मिक कृत्य माना जाता है। जब तक हम इस धार्मिक रहस्य को नहीं समझ पायेंगे हमारे लिए वास्तु ज्ञान होना दुर्लभ है।

भारतीय दर्शनानुसार मनुष्य को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिए शरीर, मन, और बुद्धि का अनुकूल होना परम अनिवार्य है। अंत: स्वस्थ शरीर के आधार पर ही चार वर्गों की प्राप्ति का साधन प्राप्त हो सकता है।

वास्तु से धार्मिक कृत्यों को जोड़कर हम साकार ब्रह्म से अपना सम्बन्ध स्थापित करके, अपने भवन को मन्दिर सदृश मानकर पूजा-आराधना एवं साधना हेतु (धार्मिक कृत्य) उसी में उपयुक्त स्थान प्राप्त करते हैं। जिसमें हमें सुख, समृद्धि, धन, ऐश्वर्य एवं आत्मिक शान्ति प्राप्त होती है।

वस्तुत वास्तुशास्त्र धर्म के साथ प्राय: जनकल्याण करता है और उसका लक्ष्य सभी को सुखी एवं समृद्ध बनाना है।

*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

MS-41

आसफविलास - एक अध्ययन

प्रो. डॉ. आर.पी. मेहता, अहमदाबाद

पण्डितराज जगन्नाथ (ई० 1572-1665) बहु-आयामी प्रतिभा के धनी थे। उनकी लघु परिमाणी रचना 'आसफविलास' का प्रथम निर्देश लिपझिग् से प्रकाशित ऑफ्रेट के सूचीपत्र (1-196) से मिलता है। तत्पश्चात् निर्णय सागर की काव्यमाला श्रेणी के द्वितीय गुच्छक में इस रचना का प्रकाशन हुआ। इसमें—

1. वाक्य

4. श्लोक — 69 मुद्रित गद्यपङ्क्ति समाविष्ट हैं।

6. वाव्य

शाहजहाँ कश्मीर देश में आता है। इस प्रदेश का सौन्दर्य अद्भुत है। सम्राट के पास नबाव आसफखान हैं। उनके सूचना पर सम्राट ने जगन्नाथ को 'पण्डितराय' पदवी से अलङ्कृत किया है।

इस कथानक वाली रचना 'आसफविलास' स्वरूपदृष्ट्या 'आख्यायिका' है। निशात बाग एवं अमरनाथ के वर्णन से प्रतीत होता है कि जगन्नाथ इसी वक्त शाहजहाँ के साथ में थे। इन वर्णनों की प्रशंसा री रा०ब० आहव़ले ने भी की है। यह रचना जगन्नाथ के लिए यशोवर्धक हुई है।

*

MSS-42

शारदालिपि का उद्भव एवं विकास

कु० वर्षा जैन, सागर (म०प्र०)

लिपि क्या है? भाषा को दृश्य रूप में स्थायित्व प्रदान करने वाले यादृच्छिक वर्ण प्रतीकों की परम्परागत व्यवस्था लिपि कहलाती है।

"वाणी का दृश्य रूप ही लिपि है।"

लिपि का स्वरूप—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ब्राह्मी

उत्तरी शैली दक्षिणी शैली

गुप्तलिपि

कुटिल

नागरी शारदा

शारदालिपि—यह कश्मीर में सुप्रसिद्ध देवी शारदा के नाम से प्रचलित हुई। ब्राह्मी से कुटिल द्वारा 10वीं शताब्दी में इसकी उत्पत्ति हुई जिसका प्रमाण सराहां लेखों से प्राप्त हुआ है।

शारदालिपि का उद्भव एवं विकास—इसका उद्भव एवं प्रचार भारतवर्ष के उत्तरपश्चिम हिस्सों अर्थात् कश्मीर एवं पंजाब में 8वीं शताब्दी के आसपास हुआ था। 8वीं सदी के राजा मेरु वर्मा के लेखों से पता चलता है कि उस समय पंजाब में कुटिललिपि का प्रचार था। आगे चलकर उसी से शारदालिपि का उद्भव हुआ।

शारदालिपि से अन्य लिपियाँ आगे चलकर शारदालिपि से ही कश्टवारी, सिरमौरी, कोछी, वर्तमान कश्मीरी, टाकरी, चम्बा, मण्डेआली, जौनसारी, कुल्लई, लण्डा तथा डोगरी आदि लिपियों का विकास हुआ।

शारदालिपि की विशेषताएँ—शारदालिपि की विशेषता इसकी रूची मोटी लकीरें हैं जिससे अक्षर बेडौल दिखते हैं और कुषानकाल की लिपि से कुछ-कुछ मिलते हैं।

❋

EP-43

Draupadi Re-created

M.N. Shylaja, Bangalore

Our epic Mahabharata has been rewritten in many forms over Centuries in all Indian languages. Kannada literature is no exception to this. Pampa, Ranna, Kumara Vyasa have glorified Kannada literature with works based on Vyasa. Written in Verse forms, they are being sung in cities and villages alike by people. Modern contemporary kannada literature became richer in the year 1979 when Dr. S.L. Bhayrappa presented his novel 'Parva' to the world. The fact that Parva has been translated into 7 languages including English and that it has generated

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

infinite discussions and insight makes its study important. Parva reminds one of Iravati Karvey's Yuganta in depicting the turmoil of its lady characters. But parva generates mammoth astonishment as all the characters are recreated here. The factors sex and death predominate the novel. Poly-andry thrust upon Draupadi, the joys and sorrows of such relationship, its fullness and emptiness are intricately woven into various incidents.

*

EP-44

रामायणयुगीन नारी के दायाधिकार

डॉ. मंजू शर्मा, जम्मू

महर्षि वाल्मीकि कृत् रामायण में नारी के दायाधिकार के बारे में भी वर्णन मिलता है, लेकिन वहाँ स्त्रीधन अर्थात् दायाधिकार की अपेक्षा कन्या धन का प्रयोग हुआ है। राजा जनक ने अपनी पुत्री वैदेही के विवाहोपरान्त जो उपहार दिये थे, उनमें विविध प्रकार के वस्त्र, पशु, रजत एवं स्वर्ण मुद्रायें, मूंगा एवं मोती रत्न तथा सेवक एवं सेविकायें भी शामिल थीं।

महारानी कौशल्या को अपना एवं अपने आश्रितों का पालन करने के लिए एक सहस्त्र गाँव अधिकार प्राप्त थे, स्पष्ट है कि रामायणयुगीन समय में स्त्रीधन या दायाधिकार पर नारी का पूर्ण स्वामित्व था। सम्पूर्ण विवरण शोध-पत्रमें द्रष्टव्य है।

*

EP-45

स्कन्दपुराणे स्त्रीविमर्शः

हेमा देवी, छपरा

सम्प्रति सर्वेषु क्षेत्रेषु नारीणां स्थितिम् आश्रित्य अनुसंधानम् अनुशील्यमानं वर्तते। अस्मिन् एव प्रसंगे स्कन्दपुराणे चित्रितानां स्त्रीस्थितीनाम् अनुशीलनं विधाय स्त्रीविमर्शः प्रस्तूयते, स्कन्दपुराणे नानाविधानि स्त्रीरूपाणि दृश्यन्ते यथा—कन्यारूपा, पत्नीरूपा, मातृरूपा, विधवा, सामान्या स्त्रीः, दासी, वेश्या चादयः।

स्कन्दपुराणे यथा वर्णनम् आगच्छति तदनुसारं कन्यायाः जन्म दशसरोवरसदृशम् आसीत्—"दशसरः समाकन्या" किन्तु तत्रैव कन्यायाः जन्म प्रियकरं न आसीत्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

"प्रियं न भवति स्त्रीणां कन्याजननमेव च।"

पत्नीरूपा स्त्रियाः वर्णनम् अधिकतया दृश्यते। पत्नीकृते पतिरेव नाथः, गुरुः, देवः, स्वामी, मित्रं, परमपदं च वर्तते यथोक्तम्—

भर्तानाथो गुरुर्भर्ता वै देवतं परम
भर्ता स्वामी सुहृदभर्ता च परमं पदम्॥

एवमेव अन्यदशानां चित्रणं प्रस्तुत शोधपत्रे करिष्यते।

❋

EP-46

महापुराण में उल्लेखित वस्त्राभूषण

डॉ. सुदर्शन मिश्र, आरा (बिहार)

वस्त्र और आभूषणों का संस्कृति के परिचायक तत्त्वों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। महापुराण में प्रसंगवश निवसन, चेलिक, चीनपट्ट, उत्तरीय, उपरितन, कंचुक, कंचुलिक, वस्त्र, वास, पोति, साड़ी, निपासन, परिधान, कौपीन, वलकल, कपड़ा, पंगुरण , तूलि, हंसतूलक्क, पइंधण, कडिल्ला, देवांगवस्त्र, चीर, उच्चोलि, उपानट के नामोल्लेख उपलब्ध होते हैं। आभूषणों के अन्तर्गत सिर के आभूषणों में उत्तंसी, किरीट, चूड़ामणि, पट्ट, मुकुट; कर्णाभूषणों में कणयुक्त, कुण्डल; कण्ठाभूषणों कण्ठाभरण, दोर, मणिहार, मौक्तिक हार, मौक्तिकदाम, हार; कारभूषणों में कंकण, कटक, कडउल्ल, केपूर, वलय; अंगुलियों के आभूषण में अंगुत्थलक; कटि के आभूषणों में किंकिणी, काँची कलाप, काँचीदाम, कटिसूत्र, धर्धरमाला, मेखला पदाभूषणों में तुलाकोडि, नूपुर, मंजीर के प्रयोग प्राप्त हैं।

वस्त्राभूषणों के अतिरिक्त शरीर के सौंदर्य निखार के लिए अन्य प्रसाधनों के उल्लेख भी महापुराण में उपलब्ध होते हैं। स्नान से पहले तेल तथा बाद में विलेपन का प्रयोग दिखाई पड़ता है। विलेपनों में मस्तक पर कुंकुम के तिलक, शरीर में चन्दर तथा पंडुर के लेप और पैरों में कुंकुम लेप आदि के उल्लेख हैं। केश-विन्यासों में धम्मिल तथा कोतंल (केश रचना की विशेष-विधि) वर्णित हैं। बालों में फूल भी खोंसे जाते थे। मुकुटों पर मन्दार की माला धारण करने के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। नयनों की शोभा काजल से बतायी गयी है। अन्य प्रसाधन सामग्रियों में ताम्बूल, दर्पण, पुष्प आदि के वर्णन उपलब्ध हैं।

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

EP-47

रामायणयुगीन नारी के दायाधिकार

मञ्जुशर्मा, जम्मू

दाय + अधिकार—दायाधिकार, अर्थात् पैतृक् सम्पत्ति का अधिकारी। आधुनिक युग की भाँति यद्यपि प्राचीन काल में नारी को मातृ-पितृ गृह में शिक्षा, तथा पति गृह में यज्ञादि का अधिकार प्राप्त था, लेकिन साम्पत्तिक अधिकार प्राप्त थे अथवा नहीं, इसका कोई प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं मिलता। वंश वृद्धि की दृष्टि से पुत्र की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण होते हुए भी भारतीय समाज में कन्या उपेक्षा का पात्र तथा विषाद का कारण समझी जाती रही हैं। कन्या की इस दयनीय दशा में अतिरिक्त अन्य अनेक कारणों से भी उसके साम्पत्तिक अधिकारों की उपेक्षा हुई है। जिनमें विवाह की अनिवार्यता और छठी शती ई०पू० से बाल-विवाह के प्रचलन से कन्या को पैतृक सम्पत्ति देने की क्रियात्मक आवश्यकता बहुत कम अनुभव हुई क्योंकि दहेज और स्त्रीधन के रूप में उसे पितृ एवं श्वसूर कुल से पर्याप्त धन मिल जाता था। अतः कन्या के साम्पत्तिक अधिकारों का विकास बड़ी मन्थर गति से हुआ है।

वैदिक युग में कन्या को पिता की सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त था। उत्तर वैदिक युग में स्त्री को अदादायी माना जाने लगा। रामायण काल तक आते-आते कन्या के दायाधिकारों के संबंध में कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता। किंतु इतना निश्चित है कि अविवाहित कन्या, पिता से संरक्षण एवं भरण-पोषण प्राप्त करती थी। स्त्री को पिता, पुत्र तथा पति इन तीन पुरुषों से सुख मिलने की आशा रहती थी। पिता व भ्राता कन्या को सुख एवं सुरक्षा प्रदान करते हुए उसके लिए योग्यातियोग्य वर का चुनाव करते थे। विवाह के समय वे प्रभूत धन-सामग्री उसे कन्या-धन के रूप में प्रदान करते थे।

❋

EP-48

Man - Woman relationship as depicted in the epics

Tapati Mukerjee, Kolkata

The man-woman relationship in ancient India appears to be ratter queer. In the famour Yama-Yami hymn of the Rgveda a hint of clandestine relationship between brother and sister is none the less apparent enough to a modern reader. The story of Jabala and Satyakama reveals the preponderance of extra marital

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

relationship prevalent in ancient society. In the two great epics viz the Ramayana and Mahabharata which had been considered as the perennial source of ancient Indian Wisdom, man-woman relationship assumes a more complicated character. While polygamy and breach of trust towards wife was quite favourably accepted in society, idea of chastity has chained the women with fetters and prevented them to throw any channange to the all-pervasive man.

Again, apart from sexual, there are other faces of man-woman relationship too viz mother-son, father-daughter, brother-sister etc. In the epics, these relationship also are indeed interesting in nature and reveal a reliable picture of contemporary society.

❋

EP-49

Treatment of Rāmakathā in Śri Sankaradeva's Nāta

Dr. Juhu Mahanta, Assam

In this paper an ernest endeavour is made to discuss how great saint poet used material of the Ramayana in his drama the Ramavijaya or Sita Svayambara along with a brief introduction on Ankiya Nata (drama).

''The Ankiya Nat of Assam represented by works of Sankaradeva (1449-1568) and his followers is a type of drama which may be easily mistaken for folk plays of not very early date. But after a careful examination of its different features, it appears to be the relic of a form of drama which in all probability existed in India in the prehistoric periods of this art.'' In restricted form the term Ankiya Nat is used to signify the six dramas composed by Sri Sankaradeva and one by Sri Madhavadeva, the chief apostle of Sankaradeva. He wrote these dramas making them suitable for contemporary society and also to achieve the desired objective of spreading the cult of Bhakti. The main purpose of enactment of these dramas which is popularly known as ''Bhaona'' was the present the grandeur of God and Godesses in visual form in order to attract the people to this fold of Dharma. Hence the main theme of these dramas was the Kṛṣṇa Bhakti. He used this type of drama as a significant tool for the spead of Vaisnava faith and religion. The source of the five plays of this poet was the Bhagavata Purana as this book has a tremendous impact upon the mind and psycl people of India. On the other hand the source of the play on which we want to make the present discussion is the Ramayana. Never before Sankaradeva, tradition of writing plays

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

in vernacular language was vogue in Assam. In this play the saint poet used Brajabali language which was used in the Vaisnava literature of the middle aga. To make the common people attracted, he introduced dance, music and also gave the direction of the stage and the development of the course of action by occasional commentary of the character known as the 'Sutradhara'--The presence of whose can be felt from beginning to the end of the play. People enjoyed the sportive plays of Rama and Kṛṣṇa in the form of visual art which made the spread of the message of Dharma easy in the period of Vaisnava renaissance.

❋

EP-50

स्कन्दपुराणे स्त्रीविमर्शः,

हेमादेवी, छपरा

पुराण ग्रन्थेषु स्कन्दपुराण: अन्यतम: अस्ति। अस्मिन् ग्रन्थे स्त्रीणाम् अधिकारकर्त्तव्यानाम् चर्चा समुपलभ्यते। शोधपत्रेऽस्मिन् स्त्रीसम्बद्ध विषयाणाम् स्कन्दपुराणानुसार उल्लेख: विहितो विद्यते।

❋

KS-51

देवी कालोत्तरागम से मुक्ति

दीपा गुप्ता, लखनऊ

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में वेद और आगम प्रमुख माने जाते हैं। वेदों की संख्या चार निश्चित् है आगमों की संख्या शैव तथा शक्तिोदि भेद से अनन्त है इनमें कामिकागम से लेकर वातुलागम के उपागमों में कालज्ञान का नाम उपलब्ध है। इस आगम में साक्षात् परमशिव ने देवी पार्वती को निमित बनाकर सम्पूर्ण मानव समाज के कल्याण के लिए ज्ञान सम्बन्धी विषय वस्तु का उपदेश दिया है। अतएव इस आगम को **देवी कालोत्तरागम** कहा जाता है।

दिव्यागम के ज्ञानपाद में श्री सम्पन्न परमेश्वर भगवान् शिव के मुख से देवी कालोत्तर नामक "आगम" का उदय हुआ। सामान्यत: सिद्धान्त शास्त्र के 28 आगमों को दिव्यागम कहा जाता है एवं चित्त की चंचलता से ऊपर निर्विकल्प स्थिति में पहुँचने को कालोत्तर कहा गया है। अत: अभिप्राय यह है कि कालोत्तर ज्ञान एवं आचार के लिए साधक को सब कुछ छोड़कर निर्विकल्प समाधि में प्रतिष्ठित हो जाना चाहिए। तभी मोक्ष की प्राप्ति संभव है ज्ञान और आचार इन दोनों को

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एक साथ मिलाने से ही दोनों का साथ-साथ अभ्यास करने से परम निःश्रेयस मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है, मोक्ष की आकांक्षा वाला ऐसा व्यक्ति कालोत्तर की उपासना करें जो मुक्ति का साधन है।

इसलिए इसका नाम (देवी कालोत्तरागम में मुक्ति) है।

❋

KS-52

कश्मीर शैव दर्शन में शक्तितत्त्व की अवधारणा

डॉ. श्रद्धा सिंह, भुसावर

कश्मीर शैव दर्शन अद्वैतवादी है, शिव ही यहाँ परमतत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित हैं। वे शिव अनन्त शक्तिरूप रत्नों के आश्रय हैं—

अनन्तशक्तिरत्नानां यदेकाश्रय संश्रयात्।
विचित्रचन्द्रिकोल्लास संसिद्धिस्तं स्तुमः शिवम्॥ ई०प्र० 1.7

शक्ति वस्तुतः सामर्थ्य का ही नाम है, जिससे कुछ भी करने या जानने में समर्थ होते हैं जो जितने बड़े क्षेत्र के कार्य करने का सामर्थ्य रखता है वह उतना ही शक्तिमान् कहा जाता है, फिर जिसने निमेष मात्र में इस विशाल सृष्टि प्रपञ्च की रचना इच्छा मात्र से कर दी, उस शक्तिमान् के विषय में क्या कहा जा सकता है, इसी की शक्ति से सभी अनुप्राणित हैं—

यस्योन्मेषनिमेषाभ्यां जगतः प्रलयोदयौ।
तं शक्तिचक्रविभवप्रभवं शंकरं स्तुमः॥ मंगला० स्पन्द कारिका

यह शक्ति ही जीव को शिवरूप बनाने में सहायता करती है यह शक्ति शाश्वत् स्फुरणशीला और नित्य उदीयमान हैं। शक्ति और शक्तिमान् की कल्पना के बावजूद शक्तिमान् की अद्वैपस्थिति स्वीकार की है, जहाँ शिव विविध ऐश्वर्यों से परिपूर्ण हैं, वही उस ऐश्वर्य को धारण करने वाली सहयोगिनी शक्ति है।

शक्तिश्च शक्तिमांश्चैव पदार्थद्वयमुच्यते।
शक्तयोऽस्य जगत्कृत्स्नं शक्तिमांस्तु महेश्वरः॥ शिवदृ० 3/5 में उद्धृत

शिव की यह शक्ति हम सभी में समाविष्ट है, इसीलिये अस्मद्रूप में समाविष्ट उस शक्ति को ही स्पन्दकारिकाकार प्रणाम करते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जब शिव और शक्ति दो नाम दिखाई देते हैं जो सहज जिज्ञासा होती है कि इन दोनों का क्या सम्बन्ध है। यदि दोनों एक है तो द्वित्व क्यों? इसका बहुत सुन्दर, व्यवस्थित और विस्तृत समाधान शैव दार्शनिकों ने किया है।

शिव और शक्ति का अभेद सम्बन्ध है न कभी शिव शक्ति से रहित है और न शक्ति शिव से। शिव में इकार शक्ति का ही परिचायक है—इकार: शक्ति:। स्वरूप की दृष्टि से शिव प्रकाशरूप है तो शक्ति विमर्शरूप, इसमें भी दोनों का अन्योन्याश्रयता ही सिद्ध होती है। शिव और शक्ति का सामरस्य दो तत्त्वों का नहीं है, अपितु एक ही रूप का विस्तार है।

*

KS-53

Kali Myth in Southern Kerala

Dr. Sheeja R.S., Thiruvanathapuram, Kerala

Folklore is the mirror that reflects man's lifestyle and cultural traditions. Kerala is renowned for its rich and varied folklore. It is really interesting to note that folklore is related to custom, performance or practice, worship, celebrations, rites, folkdance and folksongs of the region. Ceremonies, whether individually conducted or in groups, might have received full support from the society in the past.

Any ceremony, based on a faith, could definitely unite people spiritually, emotionally and materially. The rural folk had alwasy been led and controlled by their religious convictions. The awe striken human being was always, under the impression that a certain 'Power' had been controlling him. Ofcourse, 'the power' was different, depending on various regions.

It is believed that the system of Worshipping 'Mother Goddess' was prevalent in the ancient India and 'Kali' is considered as one of the chief dieties. As far as the myth of 'Kali' is concerned, it is different in Southern and Northern Kerala, depending on the ritual performances that take place periodically.

It is not easy, rather impossible to assess how exactly was Kalipooja keld at different regions, in the distant past. Kings and the valiant youth of the country had always believed that it was Kalipooja that sustained their valiant lives. The most common image of the Kali, Devi hold's the head of the 'Asura' in her hands and in Kerala the Asura is known as 'Darikan'.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

A host of ritual performances and ceremonies take place at various Kali temple of south Keraia so as to please the Mother Goddess. 'Thottampattu', 'Kalamezthumpattu', Thalappoli, Kuthiyottam, Mudiyettu, Garudan-Thookkam, Vela-these are certain practices that are celebrated most piously, even these days throughout Kerala. The believers have always been offering Kalisongs and Kalipooja- even after millennium-the ceremonies and celebrations continue, very piously, although with slight chages that might have been necessitated, as demanded by the passage of time.

Sarkara Devi Temple, Chirayinkeezhu at Trivandrum District is one of the most prominent Devi temples of Southern Kerala. Thousands throng at the holy feet of Sarkara Devi, every year, for performing Kaliyoottu, Garudan Thookkam, Kalamezhuthumpattu and Bhagavathiseva.

The relevance of the performing art of the past is slowly disappearing and it has to be stressed that we should leave no stone unturned to preserve it for posterity so as to remind them of the rich and varied cultural traditions of our country.

❋

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

SHREE RANVEERESHWAR MANDIR, JAMMU

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

View of ancient Shiv Ji Temple, Purmandal.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA